श्री धन्वन्तरयेनमः ।

निखिलभारतवर्षीय

आयुर्वेदमहामण्डल

का

[रजतजयन्ती ग्रन्थ]

दिसम्बर सन् १९३५.

प्रथम भाग

सम्पादक—

रसायनाचार्य कविराज प्रतापसिंह,
भिषङ्मणि, सुपरिन्टेन्डेन्ट आयुर्वेदिक फार्मेसी
बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।

अध्यक्ष—चतुर्विंशतितम निखिलभारतवर्षीय
आयुर्वेदमहामण्डल ।



प्रथम संस्करण] सन् १९३५ ई०

प्रकाशक—

प्रधान मंत्री निखिल भारतीय

आयुर्वेदमहामण्डल, पूना।

मुद्रक—

एन० पी० भारती

महाशक्ति-प्रेस, बुलानाला

बनारस सिटी।



श्री धन्वन्तरि भगवान्।

प्राक्कथन

जगन्नियन्ता जगदीश्वरकी परम कृपासे निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामंडलके अधिवेशन होते आज शताब्दीका चतुर्थांश समाप्त हो रहा है। पर उसके कार्योंका क्रमबद्ध विवरण कहीं भी उपलब्ध नहीं है। गत अधिवेशनके अवसरपर मुझे प्रमुख-पद प्रदान कर सेवा करनेका आदेश किया गया था। उसी सिलसिलेमें पूर्व अधिवेशनके अधिनायकोंके भाषण पढ़नेकी उत्कट अभिलाषा उद्गम हुई। किन्तु खेद है कि पाँच-सात अधिनायकोंके अभिभाषणोंके अतिरिक्त कोई अन्य सामग्री समयपर उपलब्ध न हो सकी। पूज्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य महोदयके अनुग्रहसे कुछ काम चलाने लायक सामग्री मिली। यत्र-तत्रसे सामग्री एकत्रित कर अपने भाषणका उपक्रम किया। पर हृदय अतीव व्यथित हुआ और यह अभिलाषा हुई कि यदि निखिल भारतीय आयुर्वेद महामंडलके सदस्य सहमत हो सकें, तो सम्मेलनकी पचीसवीं वर्षगाँठपर महामंडलकी रजतजयन्तीका उत्सव मनाया जाय और उसी सुअवसर पर अनुसंधानपूर्वक महामंडल एवं आयुर्वेद सम्बन्धी साहित्यका सुसंग्रह कर एक सुसम्पादित ग्रंथका प्रकाशन किया जाय जिससे भावी सभानायकों-को सहजमें ही अपने पूर्ववर्ती सभानायकोंका भावसंग्रह एक ही स्थलपर प्राप्त हो सके।

यह परम हर्षका विषय है कि मेरे इस सामयिक प्रस्तावको वैद्य जगत्‌ने अभि-नन्दित किया और निखिल भारतीय आयुर्वेद महामंडलकी स्थायिसमितिने १५००) रुपए इस कार्य-समारम्भके लिए स्वीकृत किए। स्थायिसमितिकी अनुमति प्राप्त होते ही मैंने देशके विभिन्न प्रान्तोंकी वैद्यसभाओं, म्युनिसिपलबोर्ड, डिस्ट्रिक्टबोर्ड, नोटि-फाइड एरिया, देशी राज्य, प्रान्तीय और केंद्रीय सरकारके अधिकारियोंसे प्रार्थना की, कि वे कृपाकर अपने यहाँके आयुर्वेद सम्बन्धी कार्योंका विवरण मेरे पास भेजनेका कष्ट करें। प्रार्थना पर प्रायः सब प्रान्तीय सरकारोंके अधिकारियोंने यथा-समय उचित उत्तर प्रदान किए। अनेक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्युनिसिपलबोर्डके अधि-कारियोंने भी उत्तर देनेकी व्यवस्था की। पर उनकी संख्या देखते हुए उत्तर अपर्याप्त और असन्तोषप्रद ही रहे। अनेक सज्जनोंने तो मेरे ही पत्रोंपर 'हाँ' और 'ना' सूचक शब्दोंका ही प्रयोग कर अपना भार टालनेकी कृपा की।

देशी राज्योंकी व्यवस्था तो इससे भी कहीं अधिक विचित्र मालूम हुई। राजा-ओंके प्राइवेट सेक्रेटरियोंके उत्तर आशाजनक आनेपर भी उनके मेडिकल आफिसरोंके उत्तरोंकी प्रतीक्षामें ही दो वर्षका बहुमूल्य समय व्यतीत हो गया; किन्तु अभी तक उन लोगके किसी प्रकारके भी उत्तर प्राप्त न हो सके। पर यह अवश्य मानना पड़ेगा

कि अनेक उन्नतिशील देशी राज्य—बड़ोदा, बीकानेर, मैसोर, ट्रावनकोर, कोचीन, जयपुर, जोधपुर और उदयपुर आदिने अपने यहाँके आयुर्वेद सम्बन्धी कार्योंके विवरण भेजकर बड़ी सहायता की है।

मैंने भारतीय विश्वविद्यालयों और भारतके सुप्रसिद्ध पुस्तकालयों—तंजोर संस्कृत पुस्तकालय, रायल ऐशियाटिक सोसायटी कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, भंडारकर ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट पूना तथा काश्मीर, बीकानेर, जयपुर, बड़ोदा, कोचीन, ट्रावनकोर, मैसोर प्रभृति देशी राज्योंके सरस्वती-भंडारोंके अभिभावकोंसे भी प्रार्थना की, कि वे कृपाकर आयुर्वेद सम्बन्धी ग्रंथोंकी सूची जयन्तीग्रन्थमें प्रकाशित करनेके निमित्त प्रदान करें। काशीके सरस्वती-भवन आदि पुस्तकागारोंकी सूची भी प्राप्त करनेका प्रयास किया। इनकी सूचियाँ समयपर प्राप्त भी हो गईं। किन्तु स्थानाभावके कारण इस प्रथम भागमें, परम उपादेय होनेपर भी प्रकाशित न कर सका। आशा है, द्वितीय भागमें इस सामग्रीका भी शीघ्रही प्रकाशन होगा।

भारतीय वनोंमें वनस्पतियोंके अटूट भण्डार हैं, अतएव मैंने प्रान्तीय कंजर्वेटर आफ़ गवर्नमेंट फारेस्ट और देशी राज्योंके जंगल-विभागके अधिकारियोंकी लिखी हुई व्यापारार्थ प्रकाशित होनेवाली सूचीकी सहायतासे वनस्पतियोंकी सूची भी तैयारकी परंतु वह भी उपर्युक्त कारणसे ही इस भागमें न आ सकी।

हमारे वैद्य समाजमें आयुर्वेद सम्बन्धी ऐतिहासिक साहित्य-संग्रह करनेका अभीतक विधिवत् प्रचार नहीं है। बड़े-बड़े प्रसिद्ध विद्वानोंके परिवारोंमें उपयुक्त सामग्रीके रहते हुए भी क्रमबद्ध लिखकर देनेवालोंकी बड़ी कमी है। प्राचीन प्रसिद्ध वैद्योंके चित्र-चरित्र सम्पादन करनेमें इतनी कठिनाई हुई है कि ग्रंथके मुद्रण-काल तक—निरन्तर दो वर्ष पर्यन्त प्रयत्न करते रहने पर भी पूर्ण सफलता प्राप्त न हो सकी, और इसी कठिनाईके कारण अनेक बार ग्रंथके क्रमका परिवर्तन करना पड़ा। जिसका पाठकगण स्थान-स्थान पर अनुभव करेंगे। यह ईश्वरका अनुग्रह ही कहना चाहिए कि अनेक कठिनाइयों और त्रुटियोंके रहते हुए भी इतनी सामग्री एकत्रित हो गई कि आठ-आठ सौ पृष्ठोंके दो भाग करनेपर कहीं उन सामग्रियोंका यथोचित प्रकाशन हो सकेगा।

पाठकोंको ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए कि यह इस क्षेत्रमें प्रथम प्रयास है। इस मार्गमें अबतक कोई पथप्रदर्शक नहीं हुआ। इसलिए इसमें अनेक त्रुटियाँ दृष्टिगोचर होंगी। अतएव मेरा सविनय निवेदन है कि इन त्रुटियोंको दूर करनेके लिए आवश्यक सामग्री और सत्परामर्श—नित्य-नैमित्तिक कर्मोंकी भाँति—सदा देनेके लिए सर्वथा कटिबद्ध और प्रयत्नशील रहें। वैद्य महानुभावोंको तो इसपर विशेष ध्यान देना चाहिए; क्योंकि यह उनका व्यावसायिक इतिहास है। इसका बनाना, इसको पूर्ण करना हमारा-आपका परम ध्येय और जीवनका एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए।

भारतमें विदेशीय शासनके प्रभावसे एक विशेष चिकित्सा-पद्धतिका दौर-दौरा है। उसका चाकचक्यपूर्ण चमत्कार निरीह जनताको बलपूर्वक दिखाया जा रहा है और उसके लिए गरीब भारतीयोंके श्रमकी विपुलधनराशि पानीकी तरह बहाई जा रही है। उसका गुण-गान जनसाधारणमें अनेक रूपसे किया जा रहा है। अधिकारिवर्ग समय-समय पर अपने पक्षपातपूर्ण अभिप्रायोंको ऐसे ढंगसे व्यक्त करते हैं कि दबी हुई जनता उनसे प्रभावित होकर देशीय चिकित्सापद्धतिकी उन्नति करनेका साहस ही न कर सके।

मुझे देशभरके आयुर्वेद व्यवसायियोंके साथ पत्र व्यवहार करनेका सौभाग्य प्राप्त हो चुका है, और उससे यह अनुभव हुआ है, कि आयुर्वेद-चिकित्सा-पद्धति अब भी व्यापक रूपसे दीन-हीन और आयुर्वेद-प्रेमी धनी-समुदायकी अच्छी सेवा कर रही है। आवश्यकता इस बातकी है कि इस सर्वव्यापी सेवाकार्यका पूर्ण विवरण क्रमबद्ध लिखकर राज और प्रजाके प्रमुखोंके संमुख उपस्थित किया जाय, जिससे उनकी आँखें खुलें और हम उनकी सहानुभूति प्राप्त करनेका अवसर पा सकें। इस ग्रंथमें यह प्रयत्न किया गया है कि देशकी आयुर्वेद सम्बन्धी सेवाओंका दिग्दर्शन कराया जाय। उस प्रयत्नमें कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है, इसका निर्णयभार मैं अपने सुहृद पाठकों, विद्वान् समालोचकों एवं सहयोगियोंपर ही छोड़ता हूँ।

भविष्यके लिए मेरी प्रार्थना है कि निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन निर्णय कर मंत्रीजीको यह आदेश देवें कि वे आयुर्वेद जगत्का वार्षिक इतिहास अवश्यमेव निखिलभारतीय वैद्यसम्मेलनके अधिवेशनावसर पर प्रकाशित किया करें। उसमें भारतवर्षका आयुर्वेद सम्बन्धी इतिवृत्त अवश्य होना चाहिए। कहाँ-कहाँ कितने दातव्य औषधालय हैं? किसमें कितनी रोगी-संख्या है? और उनमें वार्षिक व्यय किस अनुपातसे होता है? इत्यादि विषयोंका स्पष्ट विवरण रहे। निम्नलिखित विषय भी अवश्यमेव संकलित किए जायँ।

१—आयुर्वेद विद्यालयोंकी विद्यार्थी-संख्या। भिन्न-भिन्न प्रणालियोंकी समालोचना। अध्यक्ष और अध्यापकोंकी नामावली और वार्षिक आय-व्यय। इत्यादि विषयोंका पूरा विवरण प्रकाशित किया जाय।

२—सम्मानित वैद्योंके चित्र-चरित्र और उनके ग्रन्थोंकी सूची भी दी जाय। आयुर्वेद सम्बन्धी सामयिक साहित्य कहाँ और कितना उपलब्ध है? उसका भी विवरण अवश्य प्रकाशित किया जाय।

३—आयुर्वेदकी कितनी परीक्षायें देशमें प्रचलित हैं? उनमें कितनी संख्यामें छात्र बैठते हैं? और उनके फलाफल आदि विषय भी आलोचनाके साथ प्रकाशित किए जायँ।

४—औषध निर्माणशाला सम्बन्धी विवरण और उनकी व्यवसाय सम्बन्धी

आलोचनायें भी प्रकाशित की जायँ। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंकी आयुर्वेद-सम्बन्धी रीति-नीतिका समीक्षा पूर्णरूपसे जनताके समक्ष उपस्थित की जाय।

५—वैद्योंके अन्वेषण और अविष्कारोंका पूर्णरूपसे विवेचन किया जाय।

६—देशके आयुर्वेद सम्बन्धी आयात-निर्यातके आँकड़े प्रकाशित किए जायँ।

७—आयुर्वेद सम्बन्धी अस्पताल, सेनेटोरियम, नरसिंगहोम (Nursing Home) प्रसूतिगृह आदिकी रोगि-संख्या, आय-व्यय और सेवा विशेषका महत्त्वपूर्ण वर्णन दिया जाय।

८—शल्य-शालाक्य कर्ममें प्रवृत्त वैद्योंके चित्र-चरित्र और स्थानादिका पूरा विवरण विशेष रूपसे दिया जाय।

९—विदेशसे आनेवाले औषधसम्बन्धी खनिजोंके विशेषकर पारद, लौह, ताम्र, यशद, नाग, चपल (Bismuth), गंधक, वैक्रान्त आदिके आयात-निर्यातके अंक दिए जायँ। और इनकी खानोंका तथा प्राप्तिके प्रदेशोंका विशेप रूपसे उल्लेख किया जाय।

१०—भारतीय विश्वविद्यालयोंके आयुर्वेद सम्बन्धी कार्योंकी विस्तृत समालोचना प्रकाशित की जाय।

यदि उक्त विधानके अनुसार हमारे प्रधानमंत्री प्रतिवर्ष निखिल भारतीय आयुर्वेद महामंडलका विवरण तैयार करें तो स्वर्णजयन्तीके अवसरपर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साहित्य संगृहीत हो सकता है और विदेशीय चिकित्सापद्धतियोंके सम्मुख गौरवपूर्ण स्थल-उपलब्ध हो सकता है। आयुर्वेद महामंडल निखिल भारतीय संस्था है। खेद है, अभीतक इसका कोई स्थायी कार्यालय नहीं है। जिसका परिणाम यह हो रहा है कि कार्यालयके स्थानान्तरित होते समय बहुत-सा महत्त्वपूर्ण रिकर्ड अस्त-व्यस्त हो जाता है। जिससे नवीन स्थानवाले कार्यप्रणालीको सुंदर बनानेमें असमर्थ हो जाते हैं और पुराने कार्यकर्ता उदासीन होकर बैठ जाते हैं। इस दशामें उभयपक्ष अपने गुरुतरदायित्वका महत्त्व नहीं समझ सकता और स्वेच्छापूर्वक उठाए हुए भारको सफलतापूर्वक लक्ष्य तक पहुँचानेमें असमर्थ हो जाता है। इस दयनीय दशाके सुधार-का एकमात्र उपाय यही है कि निखिल भारतीय आयुर्वेद महामंडलका एक स्थायी कार्यालय बनाया जाय और वहाँ कार्यकारिमंडल वेतन-भोगी रहें, जो अवैतनिक मंत्री और प्रमुखकी अधीनतामें कार्य करें। स्थायी कार्यालयके बननेसे निखिल भारतीय आयुर्वेद महामंडल अपने स्थायी साहित्यका समुचित प्रचार और प्रबंध कर सकता है और अपने वयोवृद्ध विद्वानोंके चित्रोंका संग्रह कर स्थायी चित्रशाला भी बना सकता है एवं हस्तलिखित, दुष्प्राप्य, लुप्तप्राय ग्रंथरत्नोंको एकत्रितकर आयुर्वेदीय ग्रंथमालाका प्रकाशन कार्य करते हुए स्थायी आयका उपाय भी कर सकता है। इतना ही नहीं स्थायी कार्यालय होनेसे निखिल भारतीय आयुर्वेद महामंडल—प्रेस, पुस्तकालय, वाचनालय आदि शाखायें संस्थापित कर जनताकी दृष्टिमें विशेप गौरव प्राप्त कर सकता है। पाश्चात्य

देश इस प्रकारकी प्रणालीसे अधिकाधिक लाभ उठा रहे हैं। और यदि हम इस विधि विहित-विधानका अवलम्बन न करेंगे, तो इस युगके पारस्परिक संघर्षणमें कभी आवश्यक प्रगति प्राप्त न कर सकेंगे। यदि यह प्रस्ताव निखिल भारतीय आयुर्वेद महामंडल स्वीकार करे, तो ऐसे उदार दानियोंकी कमी नहीं है, जो स्थायी कार्यालयके लिए तन-मन-धनसे सेवा करनेके लिए उत्सुक हैं।

देशमें आयुर्वेदिक संस्था चलानेवाले अनेकानेक ट्रस्ट हैं। नि० भा० आयुर्वेद महामंडलको उन ट्रस्टोंमें अपना एक-एक प्रतिनिधि भेजकर उनके द्वारा होनेवाले व्ययका आयुर्वेदके विशेष महत्त्वपूर्ण कार्यों में उपयोग करनेका यत्न करना चाहिए। इस भागमें अनेक ट्रस्टोंके श्रुत और प्राप्त ज्ञानका संचय किया गया है। इससे लाभ उठाकर नि० भा० आ० महामंडलके मंत्री देशभरके आयुर्वेदीय ट्रस्टोंकी सूची बनावें एवं उनकी नीतिका अध्ययन कर एक व्यापक आयोजना उनके अधिकारियोंके संमुख उपस्थित करें। जिससे आयुर्वेदका गौरवपूर्ण प्रचार विशेष रूपसे हो सके।

नि० भा० आयुर्वेद महामंडलके अधिकारियोंको 'वृटिश मेडिकल कौंसिल' की रीति-नीतिका विशेष अध्ययन करना चाहिए और प्रायः उसी सिद्धान्तपर आयुर्वेद शास्त्रकी शिक्षा-दीक्षाका संगठनकर देशभरमें एक ही प्रकारकी शिक्षाप्रणाली और एक ही पदवीकी व्यवस्था करनी चाहिए। आयुर्वेदके विकलाङ्गोंके समीकरणके लिए भगीरथ प्रयत्नकी आवश्यकता है। जो विद्यालय आयुर्वेदके सम्पूर्ण अंगोंकी शिक्षा न दे सकें, उनके कार्योंको स्थगित कराकर उस धनका सर्वांगपूर्ण शिक्षाके अध्ययनमें उपयोग करानेसे विकलाङ्गोंकी क्षतिपूर्ति शीघ्र हो सकती है। अब तक नि० भा० आयुर्वेद महामंडलकी जो कार्य प्रणाली रहती आई है, उसमें कुछ सामयिक परिवर्तन कर इसे जीवित संस्था बनानेकी आवश्यकता है। अन्यथा इस मन्थर गतिसे हम कभी भी अपने लक्ष्यको प्राप्त नहीं कर सकते।

यह आवश्यकसुधार-सूचना आपकी सेवामें पेश की गई, अब प्रकृत-ग्रन्थके विषयमें निवेदन यह है कि आयुर्वेद महामंडल और विद्यापीठका इतिवृत्त बहुत विलम्बसे प्राप्त हुआ और प्राप्त उपकरण इतना विस्तृत है कि उसके प्रकाशनसे एक विशेष भाग प्रस्तुत हो सकता है। इसलिये इस भागमें उसका संक्षिप्त सार ही दिया गया है और पूर्ण प्रकाशन द्वितीय भागमें किया जायगा।

भूतपूर्व सभापतियोंके चित्र, चरित्र और भाषणोंके संग्रहमें बंबई निवासी स्वनाम धन्य आचार्य यादवजी त्रिकमजी महोदयने अत्यन्त परिश्रम किया है। आपके अनुग्रहसे अबतक अनेक भाषण प्राप्त हो रहे हैं। स्वर्गीय कविराज योगीन्द्रनाथजी सेन वैद्यरत्नका कोलम्बो (सिलोन) वाला भाषण और स्वर्गीय डी० गोपालाचार्लुजी-का लाहौर अधिवेशनके अध्यक्ष पदसे दिया हुआ भाषण, आपकी कृपासे अब प्राप्त हुए हैं। ये द्वितीयभागमें प्रकाशित हो सकेंगे।

अति प्रयत्न करने पर भी स्वर्गीय कुँवर सरयू प्रसाद सिंह, पण्डितवर गङ्गाधरजी भट्ट और कविराज उमाचरण भट्टाचार्यका भाषण प्राप्त न हो सका। जिन महानुभावोंके पास इन स्वर्गीय सभानायकोंके भाषण हों, वे कृपाकर द्वितीयखण्डमें प्रकाशनार्थ भेजनेकी कृपा करें।

अनेक महानुभावोंके जीवनचरित्र भी अभीतक नहीं मिल सके हैं और चित्र भी ग्रन्थ छपजानेके बाद प्राप्त हुए हैं। अतएव ग्रन्थमें उन चित्रोंकी अप्राप्तिकी सूचना प्रकाशित हो गई और बादमें वे छपे हैं। पाठक इस ओर सुधारकी दृष्टिसे ध्यान देनेकी कृपा करें।

आचार्य यादवजी त्रिकमजी महाराजने चित्र और अनेक ब्लाक बनानेका समस्त-भार अपने ऊपर लेकर ग्रन्थ प्रकाशनमें परम सहायता की है। यदि आप अपना अमूल्य समय देकर यह सहायता न करते तो चित्रोंका प्रकाशन करना विशेष कठिन होता। आपने केवल ब्लाक ही बनवानेका श्रम नहीं किया; किन्तु चित्र प्राप्तिमें अपना धन-व्यय भी पर्याप्त किया है। इसके अतिरिक्त सदा उत्साह प्रदानकर ग्रन्थ प्रकाशन-की शीघ्रताके लिये भी आप बार-बार आदेश करते रहे हैं। पञ्चमहाभूत और त्रिदोषसम्भाषापरिषद्के अवसरपर विद्यापीठ और महामण्डलके प्रधान मन्त्रियोंको साथ लेकर आपने ग्रन्थके संभारका निरीक्षण कर उपयुक्त परामर्श भी प्रदान किया है। इन सब कृपाओंके लिये मैं और महामण्डलकी स्थायिसमितिके सदस्य आपके सर्वदा आभारी रहेंगे।

ग्रन्थ प्रकाशनमें इतनी शीघ्रता करनेकी आवश्यकता हुई कि उसकी प्रकाशन प्रणाली ठीक तरह देखी भी नहीं जासकी। प्रथम तो वैद्य महानुभावोंने उपयुक्त उपकरण भेजनेमें ही बड़ा विलम्ब किया, द्वितीय पञ्चमहाभूतत्रिदोष–संभाषापरिषद्का महत्त्वपूर्ण कार्य नवंबरके प्रथम सप्ताहमें ही आपड़ा। उसमें स्वागतसमितिका उप-सभापति रहनेके कारण मुझे और मेरे परम सहयोगी मित्र श्रीदुर्गादत्तजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्यको उपमंत्री होनेके कारण समागत सभ्योंके निवासादिकी पूर्णव्यवस्थामें एक माससे अधिक समय लगाना पड़ा। पर ज्यों-त्यों प्रेसमें ग्रन्थ प्रकाशनार्थ दिया गया, तो अकस्मात् एक नवीन समस्या उपस्थित हो गई। मुझे एक राजपरिवारकी चिकित्साके लिये सुदूर प्रदेशमें जाना पड़ा। इसमें मेरे २० दिन बीत गये और समस्त भार पण्डित दुर्गादत्तजी शास्त्री, पण्डित हनूमानप्रसादजी वैद्यशास्त्री अध्यक्ष—महाशक्ति-औषधालय तथा वैद्यवर पण्डित नागेश्वरप्रसादजी मिश्र 'भारती' जी पर आपड़ा। आपलोगोंने निरन्तर अपने बढ़े हुए चिकित्सा-व्यवसायमें संलग्न रहते हुए भी जिस प्रकार दिन-रात कठिन परिश्रमकर इस कार्यको पूरा किया है वह आपही तीनों सज्जनों-जैसे परिश्रमी एवं उत्साही व्यक्तियोंका कार्य है। संभव है, इस अत्यधिक शीघ्रतामें दृष्टिदोषके कारण अनेक अशुद्धियाँ रह गई हों। आशा है, गुणग्राही पाठक उन

त्रुटियोंको सुधारकर मुझे सूचित करेंगे ताकि अगले संस्करणमें उनका सुधार किया जासके। मैं पण्डित हनूमानप्रसादजी वैद्यशास्त्रीका विशेष रूपसे धन्यवाद करता हूँ कि आप अनेक दिनतक तीव्र ज्वरसे पीड़ित रहकर भी पूर्ण स्वास्थ्य लाभके पूर्वही इस ग्रन्थके कार्यमें संलग्न हो गये और बड़े कठिन परिश्रमसे ग्रन्थके समस्तकार्योंका संपादन सुचारु रूपसे समयपर कर सके। मैं इन तीनों सज्जनोंका अत्यन्त ऋणी हूँ। यदि ग्रन्थका प्रकाशनभार समय पर आप लोग न संभालते, तो कदाचित् इस समय ग्रन्थका प्रकाशन संभव नहीं था।

इस ग्रन्थमें जितना सुन्दर कार्य हुआ है, उसका सारा श्रेय मेरे उक्त तीनों मित्रों-के कठिन परिश्रमका फल है। जितनी त्रुटियाँ हैं, वे मेरे कारण हुई हैं; इसलिये मैं पाठकोंसे क्षमा याचना करता हूँ और आगे सुधारकी सूचनाके लिये विनति करता हूँ।

इस ग्रन्थका संपादन केवल नि० भा० आयुर्वेद महामण्डलके स्थायी साहित्यके संग्रहके उद्देश्यसे ही किया गया है। इस कार्यमें मेरे सहकारी पण्डित भैरवप्रसादजी आयुर्वेदाचार्यने बड़ी सहायताकी है, इसलिये मैं उनका भी विशेष धन्यवाद करता हूँ। इनके अतिरिक्त और भी जो-जो सज्जन ज्ञात वा अज्ञात रूपमें इस कार्यमें सहायक हुए हैं वे भी धन्यवादके पात्र हैं।

अन्तमें नम्र निवेदन है कि इसमें मैं अनेक त्रुटियोंका पद-पद पर अनुभव करता हूँ और साथ ही अपनी इस गुरुतर कार्यसम्पादनकी अक्षमताका भी। किसीने सत्य कहा है—

मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले मोहादुद्बाहुरिव वामनः॥

प्रताप-प्रासाद—
बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी
पौष, १९९२ वि.

कविराज प्रतापसिंह

विषयानुक्रमणिका



आयुर्वेदमहामंडल

का

[रजतजयन्ती ग्रंथ]

दिसम्बर सन् १९३५.

उपक्रम

परमेश्वरके अनुग्रहसे अखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलनका यह पचीसवां वर्ष समाप्त होता है। इन पचीस वर्षोंमे जो कार्य वैद्य सम्मेलन द्वारा हुआ है उसका संक्षिप्त इतिहास आपके सामने उपस्थित किया जाता है। इस सम्मेलनको देशके प्रमुख वैद्य, राजा, महाराजा और मान्यनेतागणोंने आश्रय देकर सम्वर्द्धित और परिपुष्ट किया है। आगे लिखे महानुभावोंने समय-समयपर सभापतिका आसन ग्रहण कर आयुर्वेदके गत गौरवको और उसके आवश्यक अंगोंकी पूर्तिके उपायोंको जनसाधारणके सामने एवं विशेषकर वैद्य समाजके समक्ष युक्ति-युक्त प्रमाणोंसे उपस्थितकर जागृति पैदा की है, और उसका जो सुफल हुआ है; वह आपको इस पुस्तकके पढ़नेसे स्पष्टतः ज्ञात होगा।

वैद्य सम्मेलनका बीजारोपण स्वर्गीय पूज्यपाद शंकरदाजी शास्त्री पदेने किया था। उनके प्रवर शिष्य पंडित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, प्रयाग-निवासी तन-मन-धनसे इसका सिंचन कर इसे वटवृक्षकी भांति बृहदाकार बनानेमें कारणभूत हैं। आप अब भी उत्साहपूर्वक आयुर्वेदके गौरव संरक्षणका कार्य करते ही रहते हैं।

शंकरदाजी शास्त्री पदेने वैद्य सम्मेलनके स्थिर कार्य संचलानके लिये एक मंडल बनाया था, उसका नाम अखिलभारतवर्षीय आयुर्वेदमहामंडल है। यही महामंडल सम्मेलनके उपरान्त वर्ष पर्यन्त सम्मेलन-द्वारा स्थिर की हुई नीतिके अनुसार कार्य-संचालन करता है। सम्मेलनने इसी प्रकार आयुर्वेद विद्याके पठन-पाठन और परीक्षा की विधिको एक निश्चित पद्धतिसे प्रचलित करनेके लिये आयुर्वेदविद्यापीठ नामक संस्था कायम कर रखी है। इस विद्यापीठका काम नियत पाठ्य-प्रणालीके अनुसार तैयार हुए विद्यार्थियोंकी परीक्षा लेना, उत्तीर्ण होनेपर उन्हें भिषक्, आयुर्वेद-विशारद और आयुर्वेदाचार्य पदवियां वैद्य सम्मेलनके अवसरपर प्रदान कर प्रोत्साहित करना है।

आयुर्वेद महामंडल और विद्यापीठकी परिशोधित नियमावली वर्तमानमें इस प्रकार है।



❀ श्रीधन्वन्तरये नमः ❀

निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलस्य

नियमावलिः ।

द्वाविंशतितमे वैद्यसंमेलने ग्वालियरनगरे संशोधिता

१. नाम ।

अस्याः संस्थाया "निखिलभारतवर्षीयमायुर्वेदमहामण्डलम्" (The All-India Ayurveda Mahamandal) इति नामास्ति ।

२. उद्देश्यम् ।

अस्य महामण्डलस्योद्देश्यमधो निर्दिश्यते तद्यथा—

(क) भारतीयानां निखिलवैद्यसभानां परस्परसम्बन्धव्यवस्थापनायायुर्वेदसमुन्नायके कर्मणि प्रवर्तनम् ।

(ख) निखिलभारतीयवैद्यानां पुरः सङ्घशक्तेः स्वरूपं फलञ्चोपस्थाप्य, तेषां पारस्परिकमैक्यवर्धनम्, प्रेम्णा समवेतेभ्यो वैद्येभ्य आत्मन आयुर्वेदस्य चोन्नतिपथ-प्रदर्शनम्, तस्मिंस्तन्नियोजनञ्च ।

(ग) सभासम्मेलनप्रदर्शनव्याख्यानपाठशालातुरालयस्थापनसामयिकपत्रलेखपुस्तक-निर्माणसमालोचनादिभिः टीकाटिप्पणीसमेतप्राचीनपुस्तकादीनां प्रकाशनादिभिरौषध-द्रव्याणां सुलभायासप्राप्तये तेषां परिज्ञानाय च साधारणजनानां वैद्यानाञ्च प्रवर्तनम् । येन सर्वाङ्गीणामुन्नतिमाकलयेदस्माकमायुर्वेदशास्त्रम्, तच्च यथाधिकमुपयोगि भवेत् ।

(घ) सामयिकवैद्यान् प्रबोध्य तस्मिन् कर्तव्यक्षेत्रे तेषां प्रवर्तनम्, येन ते पूर्णां प्रतिष्ठामाप्तुं शक्नुयुः, आत्मनः सत्ताञ्चोपलब्धुं प्रयतेरन् ।

(ङ) आयुर्वेदाज्ञानपूर्णाः साम्प्रतिकावश्यकक्रियाकुशलाश्च वैद्याः यथा सम्पद्येरं-स्तदर्थं पाठशालाविद्यालयस्थापनोद्योगविधानम् कार्यान्तराणामपि साध्यैरुपायैः सम्पा-दनम् ।

(च) शास्त्रविरोधानां; भ्रमाणाञ्च दूरतो निरसनम्, यथार्थव्यवहारस्य पद्धत्याश्च प्रचारणम् ।

(छ) आयुर्वेदसेवकानां, तदुन्नत्या तन्महत्त्ववर्धकानां, चिकित्साकौशलेन जनतां व्याधिविमुक्तां विधाय आयुर्वेदचिकित्सायाः सत्यत्वे जनविश्वासोत्पादकानां यथासमयं सम्मानमुल्लाहनम् तद्गौरववर्धनञ्च ।

(ज) आयुर्वेदसमुन्नायकानामपरेषाञ्च कार्याणां यथासमयमनुष्ठानम्, तेषां चर्चा, यानि च समयोपयुक्तानि भवेयुः ।

(झ) वैद्यसंमेलनपत्रिकायाः मासिकरूपेण प्रकाशनम् ।

आयुर्वेदमहामण्डल सभासदाः

निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलस्य सभासदाः षड्विधा भविष्यन्ति— १—संरक्षकाः, २—आश्रयदातारः, ३—आजीवनसभासदाश्च ४—सामान्यसभासदाः ५—वैद्यसभासदाः ६—सहायकसभासदाः । नैषां संख्या नियता ।

(१) ये महोदयाः द्विशतं मुद्राणां इतोऽधिकं वा सम्मेलनाय प्रदास्यन्ति, प्रतिवत्सरं साहाय्यं दशरूपकाण्यपि प्रदास्यन्ति ते निखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलनस्य "संरक्षका" भविष्यन्ति । ये युगपदेव सहस्रं रूप्यकाणां दास्यन्ति तेऽपि "संरक्षका" भविष्यन्ति । एवं कृते वात्सरिकसाहाय्यदानं नावश्यकम् । वात्सरिकसाहाय्यदानेऽदाने वा ते सर्वथा स्वतन्त्राः ।

(२) ये महोदया युगपदेव आयुर्वेदमहामण्डलाय ५० रूप्यकाणि प्रदाय वार्षिकं रूप्यकषट्कं दास्यन्ति, ते "आश्रयदातारो" भविष्यन्ति, ये चैकवारमेव शतं रूप्यकाणां प्रदास्यन्ति, तेऽपि "आश्रयदातार" एव भविष्यन्ति । वार्षिकसाहाय्यदानेऽदाने वा ते सर्वथा स्वतन्त्राः ।

(३) आजीवनसभासदा स्त एव भवितुमर्हन्ति ये युगपदेव पंचाशन्मुद्राः प्रदास्यन्ति ।

(४) ये आयुर्वेदमहामण्डलस्य, आयुर्वेदविद्यापीठस्य, आयुर्वेदमहामण्डलस्योपसमितीनां च सभासदाः प्रतिवत्सरं सहायतया रूप्यकपञ्चकं नि० भा० आयुर्वेदमहामण्डलाय प्रदास्यन्ति, निखिलभारतीयायुर्वेदविद्यापीठस्नातकाश्च ये वार्षिकं रूप्यकत्रयं दास्यन्ति ते सामान्यसभासदा भविष्यन्ति ।

(५) वैद्यसभासदास्ते भविष्यन्ति ये कस्या अपि मान्यसंस्थायाः समुत्तीर्णपरीक्षाः, प्रान्तिकसभाभिर्वृताः, ये यथानियमं कस्मादपि गुरोरधीतलघुत्रयीग्रंथाः, येषां वरणं च वैद्यसम्मेलनस्य द्वौ सदस्यावनुमन्येताम् । वैद्यसभासदैः आयुर्वेदमहामण्डलसाहाय्याय प्रतिवर्षं रूप्यकत्रयं प्रदेयं भविष्यति ।

(६) ये वैद्यवृत्तय आयुर्वेदप्रेमवन्तो वा सज्जना आयुर्वेदहितकामनया आयुर्वेदमहामण्डलसाहाय्यं प्रत्यब्दं मुद्राद्वयं प्रेषयिष्यन्ति ते नाम "सहायक सभासदाः" स्युः ।

विशेषः—संरक्षकाः, आश्रयदातारः, आजीवनसभासदाः, सामान्यसभासदाश्च

आयुर्वेदमहामण्डलस्य कार्यकारिण्यामन्तर्भविष्यन्ति, त एव च वैद्यसम्मेलनपत्रिकां निःशुल्कां लप्स्यन्ति। नेतरे वैद्यसभासदाः सहायकसभासदा वा।

ये महोदया विद्यया बुद्ध्या परिश्रमेणात्मनः प्रभुतया च निखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलनस्योद्देश्यं साधयिष्यन्ति, तेऽपि स्थायिसमितेरिच्छया संरक्षका आश्रयदातारः सहायकसभासदाश्च भवितुमर्हन्ति।

८. निखिलभारतवर्षीयवैद्यसम्मेलनस्यान्तर्गताः सभाः समितयश्च—

एताः सभाः समितयश्च, वैद्यसम्मेलनान्तर्भूता विज्ञायेरन्।

(क) निखिलभारतवर्षीय-वैद्यसम्मेलनस्य स्थायिसमितिः (आयुर्वेदमहामण्डलम्)।

(ख) आयुर्वेद-विद्यापीठम्—अर्थात् आयुर्वेदविज्ञानकार्याणां प्रबन्धिका समितिः।

(ग) आयुर्वेदनिधिसमितिः, आयुर्वेदोद्धाराय प्रतिष्ठापिता स्थायिकोशसमितिः।

९. निखिलभारतवर्षीयवैद्यसम्मेलनसम्बद्धाः सभाः समितयश्च।

(क) ताः सभाः समितयश्च, या आयुर्वेदसमुन्नतये प्रचाराय च स्थापिताः याश्चायुर्वेदसमुन्नायककार्याणि सादरमङ्गीकुर्वन्ति। एता यदा स्वनियमानुसारेणोपक्षेमपङ्गीकृत्याधोनिर्दिष्टपत्रानुसारिपत्रेण निखिलभारतवर्षीय-वैद्यसम्मेलनेन सममात्मनः सम्बन्धं स्थापयेयुः।

प्रतिलिपिः पत्रस्य

आयुर्वेदमहामण्डलसम्बद्धसभापत्रम्।

श्रीमान् प्रधानमन्त्री

निखिलभारतायुर्वेदमहामण्डलस्थायिसमितिकार्यालयः

पुण्यपत्तनम् २.

महाशयाः,

सादरं सप्रमोदं च विनिवेद्यते यदत्रस्थानां भिषग्वराणां प्रयत्नेन आयुर्वेदोद्धारार्थं अत्र..................इत्याख्या सभा संस्था वा स्थापिता विद्यते। सभयाऽनया चास्मिन्प्रान्ते आयुर्वेदोद्धारविषयकं कार्यं क्रियते। सर्वेषामभीप्सितः आयुर्वेदोद्धारश्च भारतवर्षीयभिषजां संघटनाद्विना अशक्यप्राय एवेति सर्वसंमतम्। अतो भारतीयायुर्वेदीयसंस्थानां संग्रन्थनमत्यन्तमावश्यकमिति सभेयं...........तिथौ वासरे प्रस्तावं कृतवती यत् इयं...........नाम्नी सभा संस्था वा आयुर्वेदमण्डलेन सह सम्बन्धमभिलषति आयुर्वेदमहामण्डलोद्देश्यान् सादरमङ्गीकृत्य आयुर्वेदसमुन्नतये सर्वात्मना प्रयतितुं सिद्धा चेति।

आयुर्वेदमहामण्डलस्य निखिलान्नियमान् इयं सभा स्वीकरोति। आयुर्वेदमहामण्डलोद्देश्यसिद्धये च सभायाऽनया यथाशक्ति प्रयतिष्यते, तत्साहाय्यं च प्रतिवर्षं दशरूप्यकमितं वार्षिकं शुल्कं प्रेषयिष्यते।

आशासे च प्रार्थनानुसारं इयं सभा आयुर्वेदमहामण्डलसम्बद्धतासूचकं संमति-पत्रं शीघ्रं लभेत इति ।

आयुर्वेदमहामण्डलनियमानुसारं दशरूपकात्मकं वार्षिकं शुल्कमितः प्रेषितम् । शुल्कस्वीकृतिः आयुर्वेदमहामण्डलप्रतिनिधिनिर्वाचनाधिकारपत्रं च अचिरादेव कार्यालयात्प्राप्स्यतीति शम् ।

स्थानम्··············
तिथिः···············
} मंत्री सभा, संस्था वा.

सभायाः संस्थायाः वा संपूर्णं नाम ············
स्थानं मुखविलासश्च ············

अध्यक्षाः ············
मंत्रिणः ————————

(ख) आयुर्वेदमहामण्डलेन समं सम्बन्धं स्थापयितुमिच्छन्तीभिः सभाभिरुपरिनिर्दिष्टरीत्या पत्रेण सह आयुर्वेदमहामण्डलसाहाय्याय दशरूप्यकाणि प्रेषणीयानि आयुर्वेदमहामण्डलाधिवेशने प्रतिनिधिश्च प्रेषणीयः स्यात् ।

(ग) एवंविधाभिः सभाभिरात्मना सम्पादितानि कार्याणि सूचनीयानि यथासमयम् । प्रतिवत्सरं स्थायिसमितिकार्यविवरणेन सह प्रकाशनायात्मनः कार्यविवरणानि च प्रेषणीयानि ।

(घ) तत्तत्प्रान्तेषु स्थापितानि वैद्यसम्मेलनानि अपराश्चायुर्वेदसभा एतन्नियमानुसारेण निखिलभारतायुर्वेदमहामण्डलेनान्तर्भूता एव विज्ञायेरन् ।

६. स्थायिसमितिः (आयुर्वेदमहामण्डलम्)

(क) सम्मेलनाधिवेशने स्वीकृतानां प्रस्तावानामनुसारेण यावद्वत्सरं निरन्तरं कार्यसम्पादनाय निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलस्य कापि पञ्चाशत्सदस्यानां कार्यकारिणी समितिः महामण्डलाधिवेशने प्रतिष्ठाप्यते । यस्याः " स्थायिसमितिः " (आयुर्वेदमहामण्डलं) इति नाम ।

(ख) अत्र समितौ सभापतिरेको द्वावुपसभापती, एकः प्रधानमन्त्री, द्वावुपमंत्रिणौ, एकश्च सहकारी मन्त्री, *बहवः प्रादेशिकमंत्रिणः कोशाध्यक्षश्चैको भविष्यति ।

(ग) एषु कार्यसम्पादकेषु एक उपसभापतिर्द्वौमन्त्रिणौ कोशाध्यक्षश्च स्थानीय एव भवितुमर्हति । यत्र निखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलनस्य प्रधानकार्यालयस्तत्रस्था एवैते भवितुमर्हन्ति ।

* सहकारी मन्त्री वैतनिकोऽपि भविष्यति ।

(घ) उपरिनिर्दिष्टाः सभासदा वैद्यसम्मेलनस्य वार्षिकाधिवेशने वृता भविष्यन्ति ।

(ङ) एतदतिरिक्ता निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलस्य स्थायिसमितौ प्रान्तिकसमितिवृताः सभासदा अपि प्रवेशं लभेरन् । आयुर्वेदमहामण्डलकार्याणां प्रचाराय विस्ताराय च प्रान्तिकायुर्वेदविषयाणामनुसन्धानाय च प्रतिप्रान्तमेका समितिः स्थापिता भविष्यति । इमाः समितयो निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलस्य वार्षिकाधिवेशनतो मासादेकात् प्राक् आत्मीयसभासदानां दशांशसंख्याकान् प्रतिनिधीन् वरिष्यन्ति तेषां नामानि स्थायिसमितौ प्रेषयिष्यन्ति । सम्मेलनानुमतास्ते सभासदा भविष्यन्ति । एताः समितयः स्थायिसमितेः सम्मत्या सहयोगेन च तत्तत्प्रान्तिकायुर्वेदकार्याणि सम्पादयिष्यन्ति । प्रांतीयान् विषयान् स्थायिसमितये निवेदयिष्यन्ति, स्थायिसमित्यभिप्रायांश्चात्मनः प्रान्ते प्रचारयिष्यन्ति ।

(च) एतदतिरिक्ता निर्वृत्तानामधिवेशनानां सभापतयः प्रधानमन्त्रिणः सम्मेलनान्तर्गतसमितीनां मन्त्रिणः निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डल—संबद्धसमितीनां मन्त्रिणश्चैत्येतेऽपि सभासदा भविष्यन्ति ।

(छ) सम्मेलनसभापतय एव स्थायिसमितेरपि सभापतयो भविष्यन्ति, यावदपरमधिवेशनं न निर्वर्त्यते तत्र चापरः सभापतिर्न प्रतिष्ठाप्येत ।

(ज) यदि वर्षमध्य एव कस्यापि सभासदस्य स्थानं केनापि कारणेन रिक्तं भवेत् तदा स्थायिसमितिस्तत्प्रान्तीयमेव कमपि तस्मिन् पदे प्रतिष्ठापयितुं क्षमते ।

(झ) स्थायिसमितेरधिवेशनं सभापतिर्मन्त्री वा विधातुं पारयति तस्याधिवेशनं प्रधानस्थान एव भविष्यति । सत्यावश्यके दश सभासदानां सहेतुकमावेदनपत्रं प्राप्य तैर्नियमिते स्थानेऽपि समितेरधिवेशनं मन्त्री करिष्यति, यदि मासाभ्यन्तर आवेदनपत्रं प्राप्याधिवेशनविधानेऽसमर्थे मन्त्रिणि सभापतेरुपसभापतिद्वयस्य वाऽऽज्ञया समितेरधिवेशनं कर्तुं शक्यते, एवंविधस्याधिवेशनस्योत्तरदातृत्वं सर्वथा तेष्वेव ।

(ञ) दश दिनेभ्यः पूर्वमेव निखिलान्यधिवेशनानि वैद्यसंमेलनपत्रिकाद्वारा सूचयितव्यानि । सत्यावश्यके समाचारपत्रेष्वपि भाविनोऽधिवेशनस्य सूचना प्रकाशयितव्या । किञ्चावश्यके सति सभापतेर्वाऽऽज्ञया सप्तसदस्यान् संसूच्य "विशेषाधिवेशनं" कर्तुं पार्यते ।

(ट) प्रत्यधिवेशनं पंच सभासदानामुपस्थितिर्दश सभासदानाञ्च पत्रमुखप्राप्ता सम्मतिरावश्यकी, एतदन्तरा नाधिवेशनं भवितुं शक्नोति । यदि कस्मिन्नप्यधिवेशने सा संख्या न पूर्येत तदा मन्त्री अन्यदाधिवेशनं भविष्यतीति संसूच्य ततो नियतदिने चोपस्थितैः सभासदैः सम्मतिभिश्च कार्याणि सम्पादयितुं शक्नोति ।

(ठ) उपक्षेपनिर्धारणसमये पत्रमुखेन प्राप्तानां सम्मतीनामवलम्बादेव तन्निर्धारणं कर्त्तव्यम्, तदुपक्षेपप्रतिकूलासु तासु बह्वीषु सम्मतिषु न स उपक्षेपस्तस्मिन्नधिवेशने स्वीकर्तुं शक्यते । यदि पत्रमुखप्राप्तानां सम्मतीनां प्रतिकूलाः समागतानां सभासदानां

सम्मतयो भवेयुस्तदा मन्त्रिणा हेतुनिर्देशपुरस्सरमन्यस्मिन्नधिवेशने स उपक्षेपो भूय उपस्थापनीयः ।

(ङ) यदि कश्चन सभासद एकस्मिन्नप्यधिवेशने समुपस्थितो सम्मतिप्रदो वा न भवेत्, तदायमागामिनि वर्षे सभासदो भवितुं न शक्नुयात् ।

(ढ) आयव्ययनिर्देशपुरःसरं वार्षिकं कार्यविवरणं स्थायिसमितिमन्त्री सम्मेलनाधिवेशने समुपस्थापयेत् ।

(ण) सम्मेलनान्तर्गतसमितीनां कार्यसम्पादका अपि स्थायिसमितेरधिवेशन आत्मनः सम्मतिं दातुं शक्नुयुः । इत्थं निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलस्य संरक्षका आश्रयदातारः आजीवनसभासदाश्च स्वयमुपस्थिताः सम्मतिप्रदानाधिकारिणो भविष्यन्ति ।

(त) निखिला एव सभासदाः प्रतिवर्षं वर्षारंभे एव रूप्यकपश्चकं प्रदास्यन्ति स्थायिसमित्यै । एतद्रूप्यकप्रदानानन्तरमेव ते भविष्यन्ति सभासदाः पदाधिकारिणः येषां सदस्यशुल्कं कार्यालये न समागच्छेत्तेभ्यो सदस्यशुल्कार्थं कार्यालयतः वैद्यसंमेलनपत्रिकायाः, प्रथमोऽङ्को देयमूल्य (व्ही. पी.) द्वारा प्रेष्यते । परं निखिलभारतवर्षीयवैद्यसम्मेलनसमितिरन्तरापि रूप्यकप्रदानं कांश्चन् योग्यान् सभासदान् विधातुं शक्नुयात् ।

(थ) आयुर्वेदमहामण्डलस्य तदन्तर्भूतसंस्थानाञ्च सभासदाः स्थायिसमित्या तद्वर्षे प्रकाशितानि पुस्तकानि अर्धमूल्येन प्राप्तुं शक्नुयुः, यस्मिन् वर्षे ते सभासदा निरूपिताः ।

(द) आवश्यकानां झटिति निर्वर्त्तनीयानां कार्यविशेषाणां समालोच्य निर्वहणाय स्थानिकसमितिरेका नियुज्यते, तत्र षोडशसंख्याकाः सभ्या भवेयुः । अत्र मंत्री, अन्ये च पंचदशसंख्याकाः सभ्या भवेयुः, तत्र महामण्डलस्य प्रधानमंत्री मंत्रित्वेन सर्वमपि कार्यं निर्वहेत् ।

७. कार्यकर्तॄणां कर्तव्यनिर्देशः ।

१. सभापतेः कर्तव्यम् ।

(क) स्थायिसमितिकार्याणां स्वयं प्रतिनिधिद्वारा वा नियमतः निरीक्षणं कार्यं तत्संपादनप्रयत्नश्च ।

(ख) यथासमयं विधेयानां कार्याणां स्थायिसमित्यै सूचनम् ।

(ग) कार्यसञ्चालनविषये मन्त्रिणे सम्मतिप्रदानञ्च ।

(घ) समितेः प्रत्यधिवेशनं यथासम्भवं स्वयमुपस्थाय नियमानुसारेण कार्यसम्पादनं, पत्रमुखेन वा विचार्येषु विषयेष्वात्मनः सम्मतिप्रदानम् ।

(ङ) विवादिविषयाणां सम्यक्समाधानञ्च ।

२. उपसभापतेः कर्तव्यम् ।

(क) सभापतेः कार्येषु साहाय्याधानम् ।

(ख) समितेरधिवेशनेष्वनुपस्थिते सभापतौ, तस्यासनग्रहणं कार्यनिर्वहणञ्च ।

३. प्रधानमन्त्रिणः कर्तव्यम् ।

(क) निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलस्य निखिलानां सम्पाद्यमानकार्याणां यथावन्निरीक्षणम् ।

(ख) मन्त्रिणामन्येषाञ्च कार्यकर्तॄणां कृते कार्यविभाजनम्, वैतनिककर्मचारिणां नियुक्तिव्यवस्था तेषां कार्याणां निरीक्षणं कार्ये नियोगश्च ।

(ग) निखिलभारतवर्षीयायुर्वेद-महामण्डलस्योद्देश्यानां प्रचारस्तदङ्गीकृतोपक्षेपानुसारेण कार्यसम्पादनव्यवस्था च ।

(घ) निर्णेतव्यानां विषयाणां निर्णयाय यथासमयमधिवेशनविधानम् ।

(ङ) आयव्ययलेखनं तथा स्थायिसमितेर्वात्सरिकं विवरणं सम्पाद्य निखिलभारतवर्षीयायुर्वेद-महामण्डलस्याधिवेशने आयव्ययविवरणेन सह तदुपस्थानम् ।

(च) निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलेन तदन्तर्गतसंस्थाशाखासभाभ्योऽधिगतद्रव्याणां प्राप्तिसूचनम् । आवश्यकव्ययनिर्वाहाय अपेक्षितं द्रव्यं स्वसमीपे स्थापयित्वा शेषं कोशाध्यक्षसमीपे धनागारे वा प्रेषणीयम् ।

(छ) निखिलभारतवर्षीयवैद्यसंमेलनस्याधिवेशनात्पूर्वमेव आगामिनो वत्सरस्य कृते आनुमानिकआयव्ययपत्रं निर्माय विषयनिर्वाचनसमितौ संस्थापनीयं समित्या च निर्णीतं संशोधितं तदायव्ययपत्रं संम्मेलने स्वीकरणाय संस्थापनीयमिति ।

(ज) केनापि विशेषनिमित्तेन विंशतिरूप्यकतोऽधिकव्ययसम्भावनायां स्थायिसमितेः सभापतेर्वाज्ञया मन्त्री व्ययितुं प्रभवति ।

(झ) प्रतिवत्सरं सम्मेलने समुपस्थाप्यं वर्तमानवत्सरस्यायव्ययपत्रं सभापतिमहोदयसमनुमोदितेन (Chartered-Accountant) आयव्ययनिरीक्षकेण सम्यक् निरीक्षितं कारयित्वा प्रधानमंत्रिणा संमेलनावसरे संस्थापनीयम् । एतस्मै निरीक्षकाय पंचसप्ततिमुद्रापर्यंतं पारिश्रमिकं देयम् ।

४. उपमन्त्रिणां कर्तव्यम् ।

(क) प्रधानमन्त्रिणः सम्मत्या स्थायिसमितेः कार्यसम्पादनम् । वैतनिककार्यकर्तृभ्यो नियमेन कार्यादानञ्च ।

(ख) प्रधानमन्त्रिणः कार्येषु सहाय्याधानं तदनुपस्थितौ तत्कार्याणां सम्पादनञ्च ।

(ग) स्वकर्तव्यकार्याणां सम्पादनञ्च ।

(घ) सम्बद्धसभानामायुर्वेदीयसंस्थानाञ्च कार्यनिरीक्षणम् ।

(ङ) समित्यधिवेशनानां कार्यविवरणं विलिख्य अधिवेशनान्तरे स्वीकाराय तदुपस्थापनम् ।

५. प्रादेशिकमन्त्रिणां कार्याणि ।

(क) निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलोद्देश्यानां कार्याणाञ्च आत्मनः प्रान्ते प्रचारणाय प्रान्तिकसभास्थापनम् ।

(ख) उपदेशकैः सभाभिः समाचारपत्रैर्व्याख्यानैश्च आत्मनः प्रान्ते, आयुर्वेदविषयकं लोकानुरागोद्बोधनम् ।

(ग) आत्मनः प्रान्ते यत्र यदा कस्याप्यायुर्वेदसम्बन्धिनः कार्यस्य सम्पादनमावश्यकं प्रतीयेत तदा प्रधानकार्यालयसम्मत्या सम्पादनम् ।

(घ) निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलस्य स्थायिसमितेरायुर्वेदविद्यापीठकार्यालयतो वा यथासमयं प्रकाशितानामाज्ञानां सम्पादनं प्रधानकार्यालयसाहाय्यं च ।

(ङ) आत्मनः प्रान्ते आयुर्वेदसम्बन्धिनां सभानामादर्शौषधालयानामातुरालयानां पाठशालानां विद्यालयानामायुर्वेदनिधेश्च स्थापनप्रयासः । प्रतिष्ठितानां चैषां कृते परामर्शेण निरीक्षणेन च साहाय्यदानम् ।

(च) आत्मनः प्रान्तस्थानां वैद्यानामायुर्वेदानुरागिणामायुर्वेदसहायकनाञ्च स्थानसङ्केतं (address) संगृह्य प्रधानकार्यालये प्रेषणम् ।

(छ) आयुर्वेदाध्येतॄणां प्रोत्साहनमायुर्वेदविद्यापीठपरीक्षायै ।

(ज) आयुर्वेदगौरवभूतानां आयुर्वेदमहामण्डलविद्यापीठसहकर्तॄणां वैद्यानामायुर्वेदविद्यापीठाय निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलस्थायिसमित्यै च तेषां नाम्नां सूचनम् ।

(झ) आत्मनः प्रान्तेषु आयुर्वेदनिधिसंस्थास्थापनोद्योगः ताः व्यवस्थाप्य प्रधानकार्यालये प्राप्तद्रव्यप्रेषणम् ।

(ञ) निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलस्थायिसमितेरायुर्वेदविद्यापीठस्य च आवश्यकपत्राणां प्रादेशिकभाषयाऽनुवादः प्रान्तिकपत्रेषु तत्प्रकाशनं सत्यावश्यके वैद्यानां समीपे प्रेरणं च ।

(ट) अन्येषामावश्यकानां कार्याणां सम्पादनम् ।

६. कोषाध्यक्षस्य कर्तव्यम् ।

(क) मन्त्रिणा प्रदत्तस्य धनस्यायव्ययसङ्कलनम् ।

(ख) मन्त्रिणा दत्तं धनं प्राप्य तस्मै प्राप्तिसूचनम् आयुर्वेदमहामण्डलप्रस्तावानुसारं सम्मेलनव्ययाय तस्मै धनं प्रदाय प्राप्तिसूचकपत्रग्रहणम् एतत्कार्यनियमितपुस्तके हस्ताक्षरग्रहणं वा ।

(ग) पञ्चाशद्रूप्यकतोऽधिकधनस्य कस्मिन्नपि धनागारे (Bank) न्यासः ।

(घ) आयव्ययनिरीक्षकस्य संमत्या निर्णीतेषु धनागारेषु स्वनाम्ना प्रधानमंत्रिनाम्ना च धनन्यासकरणम् ।

७. आयव्ययनिरीक्षककर्तव्यम् ।

(क) सभाया आयव्ययं निरीक्ष्य आत्मनोऽभिप्रायेण सह तत्पत्रे हस्ताक्षरकरणम् ।

(ख) आयुर्वेदमहामण्डलधनन्यासविषये तथा आयव्ययलेखनविषये संमति-प्रदानम् ।

(ग) अपेक्षितं संशोधनं मन्त्रिणे सूचयित्वा तद्द्वारा स्थायिसमितौ विचारायो-पस्थापनम् ।

८. आयुर्वेदनिधिसमितिः ।

(क) आयुर्वेदोद्धारककार्याणि सम्पादयितुमायुर्वेदविद्यापीठञ्च धनेन सहकर्तुं "आयुर्वेदनिधि" नामकः कोशः स्थापयिष्यते । विद्यालयातुरालयपुस्तकप्रकाशनादि-कार्याय प्राप्तं धनमत्र रक्षितं भविष्यति ।

(ख) निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलसम्बद्धाभिः सभाभिःसभासदैर्हितैषिभिः कार्यकर्तृभिश्चायुर्वेदनिधौ धनमर्जयितुं प्रयत्नो विधास्यते ।

(ग) प्रतिनगरमुत्साहवन्तो वैद्या आयुर्वेदोन्निनीषवश्चायुर्वेदनिधिशाखां स्थापयितुं शक्नुयुः । पञ्च जनाः समितिमेतां स्थापयितुमाज्ञां प्राप्नुयुः ।

(घ) एवंविधाः समितयो निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलाज्ञानुसारेणात्मनः कार्यविवरणं निधिगणनञ्च यथासमयं प्रेषयिष्यन्ति ।

(ङ) अत्रावश्यकव्ययायैव धनं रक्षितं भविष्यति, अधिकं कस्मिन्नपि धनागारे ।

(च) भिन्नभिन्नस्थानेषु वैद्या अन्ये चायुर्वेदहितैषिणो महोदयाः धन्वन्तरिमहोत्सव-द्वारा अर्जितस्य धनस्य भागत्रयं तत्स्थानिकसमित्यै विनियुज्य चतुर्थांशमत्र प्रेषयिष्यन्ति निधिपोषणाय ।

९. स्वागतकारिणी सभा ।

(क) यत्र निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलस्य वात्सरिकाधिवेशनं निश्चितं भवेत् तत्र सम्मेलनकार्य्यसम्पादनाय कापि समितिः स्थापनीया, यस्याः "स्वागतकारिणी सभा" इति नाम भविष्यति । इयं सभा तत्र पूर्वसम्मेलनाधिवेशनात्परं षण्मासाभ्यन्तरे प्रतिष्ठिता भविष्यति ।

(ख) स्वागतकारिण्याः सभायाः सभापतिर्मन्त्री वा सभाया अस्याः वृत्तान्तं स्थायिसमितिमन्त्रिसविधे त्वरितं सूचयेत् ।

(ग) सम्मेलने प्रस्तोष्यमाणानामुपक्षेपाणां सोपपत्तिकां सूचनिकां स्थायिसमित्यनु-मत्या सम्मेलनसमयस्यैकमासात् पूर्वं निर्माय स्वागतकारिणी सभा प्रकाशयेत् येन जना आत्मीयाभिप्रायं प्रकटयितुं शक्नुयुः ।

(घ) निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलेन समित्यनुमत्या सम्मेलनसमया-

न्मासत्रयपूर्वं कार्यविषयसूचनिका प्रस्तोतव्या भविष्यति। समित्यानया यदनुसारेणा-युर्वेदविदः प्रबन्धविरचनाय प्रार्थिता भविष्यन्ति।

(ङ) प्रतिनिधिभ्यः शुल्करूपतया प्राप्तस्यार्द्धभागं स्वागतकारिणी समितिः निखिल-भारतवर्षीयवैद्यसम्मेलनस्थायिसमितये प्रदास्यति। अर्धञ्चात्मनोपयोक्ष्यति।

(च) स्वागतसमितिः समागतानां प्रतिनिधीनां वासाय अष्टदिनावधिकं प्रबन्धं विधास्यति दीपभृत्यादीनाञ्च। एवं भोजनव्यवस्थाऽपीयमेव करिष्यति। सत्यावश्यके स्वागतकारिणी सभा पूर्वतः संसूच्य प्रतिनिधिभ्यः प्रतिदिनं एकरूप्यकपर्यन्तं भोजन-व्यवस्थायै ग्रहीतुं पारयति।

(छ) आगमनसमयं संसूच्य समागतानां प्रतिनिधीनां यथास्थानं (वाष्पयानमार्गा-धिष्ठानेऽन्यत्र वा) साक्षात्कारः, यानप्रबन्धेन नियमितवासस्थाने तत्प्रापणं चेति स्वागतसमित्याः कर्तव्यम्।

(ज) सम्मेलनवृत्तान्तग्रहणार्थं प्रतिनिधिप्रेषणाय स्वागतसमितिः स्थानीयपत्रसम्पाद-कान् अपरान् वा समीपस्थान् सम्पादकान् सानुरोधमभ्यर्थयेत्। अन्यश्च स्वकीयोपि एको (द्वौ वा) वैतनिकोऽवैतनिको वा प्रतिनिधिर्निश्चेतव्यः सम्मेलनवृत्तान्तग्रहणाय।

(झ) विषयनिर्वाचनसमित्या स्थिरीकृतानुपक्षेपान् दिनान्तरे सम्मेलनसमयात्पूर्वं मुद्रापयेत् स्वागतसमितिः।

(ञ) प्रतिदिनगृहीतविवरणमुपष्टभ्य विरचितमाह्निकं सम्मेलनविवरणं समाचार-पत्रेषु प्रकाशनाय प्रेषणम्, निर्वृत्ते चाधिवेशने तत्प्रकाशितं विवरणं प्राप्ताश्च निबन्धा यथासम्भवं सङ्गृह्य पुस्तकरूपेण प्रकाशनमिति स्वागतसमित्या सम्पादनीयम्।

(ट) स्थायिसमित्यनुमत्या निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलस्य तिथौ निर्णीतायां तस्याः प्रकटीकरणं सर्वेषामवगमाय, प्रतिनिधिनिर्वाचकसंस्था मन्त्रिणां समीपे यथावद्विलिख्य पुनः परावर्तनाय प्रेषयेत् समागतेषु च तेषु यथासमयं तान् निमन्त्रयेत्।

(ठ) यदि स्वागतसमितिरायुर्वेदीयपदार्थानां प्रदर्शनं स्थापयेत्, तर्हि पञ्चजनानां परीक्षकसमितिः स्थापनीया, यत्र हि त्रयस्तत्स्थानस्था द्वौ चापरस्थानस्थौ एते सर्वेऽपि स्थायिसमितेः सदस्याः भवेयुः। इयं समितिः पदार्थस्वामिभ्यः प्रशंसापत्रपदकदानं व्यवस्थापयिष्यति। परमत्र समितौ पदार्थस्वामिनो न प्रवेष्टुमर्हन्ति।

(ड) स्वागतसमितिर्यथाशक्ति प्रशंसापत्रपदकदानव्यवस्थां कर्तुं प्रभवेत्।

(ढ) निर्वृत्ते सम्मेलनाधिवेशने तस्या हस्ते विद्यमानधनं विवरणं निबन्धादिकञ्च यदवशिष्टं भवेत् तत्सर्वं सम्मेलनाधिवेशनान्मासत्रयं प्राक् स्थायिसमित्यै प्रेषणीयम्, आयव्ययगणनञ्च सम्मेलनाधिवेशनात् एकमासात् प्राक् प्रेषणीयं स्वागतसमित्या।

१०. वैद्यसम्मेलनाधिवेशनम्।

(क) निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलस्याधिवेशनं प्रतिवर्षं तस्मिन् स्थाने भविष्यति यत्स्थानं तत्पूर्वतनेऽधिवेशने निर्धारितं भवेत्।

(ख) अधिवेशनमेतत् प्रतिवर्षमांग्लदिसम्बरमासस्य विंशतितमम् दिनमारभ्य जनवरीमासस्य पञ्चमदिनं यावत् केष्वपि दिवसेषु भविष्यति यथानुकूल्यम् ।

(ग) यदि पूर्वतनेऽधिवेशने स्थानं निर्णीतं न भवेत् तदा निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामंडलस्थायिसमितिरेतद्विनिश्चेतुं शक्नोति ।

(घ) वार्षिकाधिवेशनमपहायान्यदप्यधिवेशनमावश्यकं प्रतीयेत चेत् तदात्र स्थायिसमितिरेतद्व्यवस्थायै प्रबन्धं कर्तुमधिकृता भविष्यति ।

(ङ) सति कारणे स्थायिसमितिः समयं स्थानञ्चापि परावर्तयितुं शक्नोति ।

(च) एतदधिवेशनातिरिक्तं प्रादेशिकसम्मेलनान्यपि भविष्यन्ति तद्व्यवस्थायै तत्प्रदेशस्था वैद्या एव प्रभवन्ति ।

११. प्रतिनिधिनिर्धारणम् ।

(क) निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहामण्डलाधिवेशने त एव महाभागा उपस्थातुं शक्नुवन्ति, ये कयापि नियमानुकूलया सभया संस्थया च प्रतिनिधित्वेन निर्धारिता भवेयुः, स्वागतसमित्या स्थायिसमित्या वा यथावन्निमंत्रिता भवेयुः ।

(ख) पंचमनियमनिर्दिष्टाः सभाः समितयः प्रतिनिधिनिर्धारणं कर्तुं शक्नुयुः । एवंविधा अपि अपरा सभाः प्रतिनिधिप्रेषणेऽधिकारिण्यो भविष्यन्ति यासां सभासदा दशतो न्यूना न भवेयुः । सम्मेलनाधिवेशनप्रतिनिधीनां साधारणनिर्धारणमपि भविष्यति परं तत्र दशमहाभागानामुपस्थितिरावश्यकी ।

(ग) सर्वोऽपि प्रतिनिधी रूप्यकत्रयं स्वागतसमित्यै प्रतिनिधिशुल्कं प्रदास्यति ।

(घ) शुल्कप्रमाणपत्रमादाय सर्वोऽपि प्रतिनिधिः सम्मेलनकार्येषु सम्मिलितुमात्मनोऽभिप्रायांश्च प्रकटयितुं शक्नोति ।

(ङ) सम्माननीयेभ्यो महाभागेभ्योऽगृहीत्वैव शुल्कं तेभ्यः प्रतिनिध्यधिकारं स्थायिसमितिः स्वागतसमितिश्च प्रदातुं प्रभवतः ।

१२. सभापतिनिर्धारणम् ।

(क) निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदमहासंमेलनस्य सभापतिपदनिर्धारणार्थं स्वागतसमितिः आयुर्वेदमहामण्डलाङ्गभूताभ्यस्तत्तत्प्रान्तीयायुर्वेदीयसमितिभ्यः सभापतिपदयोग्यानां महानुभावानां नामानि संपाद्य भाविसंमेलनात्पूर्वं त्रिवारं सभापतिपदमलङ्कृतवतां महानुभावानां नामानि सभापतिपदार्थं संसूचितान्यपि नियमानुसारं न कदापि ग्राह्याणि स्युरिति मनसि कृत्वा तेभ्यस्त्राणां महाभागानां नामानि संमेलनमासादर्वाक् मासत्रितयं आयुर्वेदमहामण्डलाय संप्रेषयेत् । आयुर्वेदमहामण्डलं चैतानि त्रीणि नामानि समाचारपत्रेषु प्रकाशयित्वा आयुर्वेदमहामण्डलसदस्यानां मतानि यथोचितमतपत्रिकाद्वारा संप्रार्थ्य एवं समागतेभ्यो मताधिक्येन सभापतिनिर्धारणं कुर्यात् ।

(ख) सम्मेलनाधिवेशनतो मासमेकं प्राक् सभापतिनिर्धारणं भविष्यति ।

१३. विषयनिर्धारणसमितिः ।

(क) प्रतिसम्मेलनं सभापतिभाषणानन्तरं संमेलनकार्यनिर्णयाय निखिलभारत-वर्षीयवैद्यसंमेलने कापि विषयनिर्धारणसमितिः स्थापिता भविष्यति या सम्मेलनसम्पाद्यानि कार्याणि निश्चेष्यति ।

(ख) अत्र सभापतिसमेताः अन्यप्रान्तस्थाः समागताः सर्वे एव प्रतिनिधयः सम्मिलिता भविष्यन्ति। परमधिवेशनस्थानप्रान्तस्थाः प्रतिनिधयश्चतुर्थांशा भविष्यन्ति । प्रतिशतं पंचसप्तति भिन्नप्रान्तस्थाः पंचविंशतिश्च तत्प्रान्तस्था भविष्यन्ति । शतसंख्याकेषु भिन्नप्रान्तस्थप्रतिनिधिषु त्रयस्त्रिंशत्तत्प्रान्तस्था भविष्यन्ति, प्रान्तनिर्णयश्च राजविभागानुसारेण भविष्यति ।

(ग) विषयनिर्वाचनसमितिनिर्णीतानि कार्याणि सम्मेलनाधिवेशने स्थापयिष्यन्ते; सम्मेलनप्रतिनिधयश्च तानि निर्णेष्यति ।

(घ) विषयनिर्वाचनसमितिनिर्धारिता एवोपक्षेपाः सम्मेलन उपस्थापिता भविष्यन्ति । प्रभवति सर्वोऽपि प्रतिनिधिवर्ग उपस्थापित उपक्षेपे सभापतिं संसूच्यात्मनोऽभिप्रायान् प्रकाशयितुम् , तत्र परिवृत्त्युपक्षेपमपि कर्तुं स प्रभवति ।

(ङ) यदि कश्चन कमपि विषयं सम्मेलन उपस्थापयितुमिच्छति, स विलिख्य सभापतये प्रधानमन्त्रिणे वा प्रदातुमर्हति । यस्य विषयस्य सूचना सभापतये प्रधानमन्त्रिणे वा न प्रदत्ता स्यात्तस्य उपस्थापनं कर्तुं न कोऽपि प्रभवेत् ।

१४. सम्मतिग्रहणक्रमः ।

(क) सम्मेलनस्य तत्संबद्धसभायाश्च सर्वाणि कार्याणि मताधिक्येन भविष्यन्ति । मताधिक्यं सभापतिरेव निर्णेष्यति ।

(ख) अधिवेशनेषु कस्मिन्नपि विषये मतभेद उपस्थिते सभापतिरेव प्रमाणयितव्यो भविष्यति ।

(ग) विवादास्पदीभूतस्य विषयस्य निर्णये त एव प्रतिनिधयो मतं दातुं प्रभवन्ति ये स्थायिसमितिसदस्याः ।

१५. आयुर्वेदमहामण्डलस्य स्थाननिर्देशः ।

(क) आयुर्वेदमहामण्डलं समस्तस्य भारतवर्षस्य । अतः सर्वस्मिन् भारते अस्यायुर्वेदप्रचारचिकीर्षया अत्यावश्यकमिदं यत् महामण्डलविद्यापीठयोः कार्यालयः यथाक्रमं प्रान्तान्तरे परिवर्तनीयः । कस्मिन्नपि प्रान्ते वर्षपंचकादधिकं न कार्यालयः स्थापनीयः ।

(ख) निखिलभारतवर्षीयवैद्यसंमेलनस्य स्थायिसमितेः आयुर्वेदमहामण्डलस्य वा तथैव तदन्तर्भूतसंस्थानां च प्रधानकार्यालयस्थानस्य निर्णयः पूर्वसंमेलनमेव करिष्यति ।

(ग) स्थायिसमितेः प्रधानकार्यालस्य स्थानपरिवर्तनप्रस्तावोऽपि मताधिक्येन निर्णीतो भविष्यति। परमत्र न तन्नगरस्थाः प्रतिनिधयः सम्मतिदानाधिकारिणो यत्र साम्प्रतं कार्यालयस्तिष्ठति यत्र च नेतुमभिलष्यते।

१६. सम्मेलनसम्पत्।

सम्मेलनस्य सर्वाः सम्पदः स्थायिसमित्यायत्ता भविष्यन्ति, या सम्पद्येनोद्देश्येन सङ्गृहीता भविष्यति तस्या व्ययोऽपि तदुद्देश्यसाधन एव कर्तुं स्थायिसमितिस्तदन्तर्भूताः संस्थाश्च पारयिष्यन्ति। अन्यदुद्देश्यसाधनाय व्यय आवश्यके सभ्यानां मताधिक्यतो व्यवस्था भविष्यति।

१७. नियमेषु परिवर्तनम्।

(क) नियमेष्वेषु परिवर्तनं कर्तुं सर्वथा प्रभवति निखिलभारतवर्षीय मायुर्वेदमहा-मण्डलमेव। केष्वपि नियमेषु परिवर्तनमभीप्सितं चेत् स्थायिसमितिः निखिलभारत-वर्षीयायुर्वेदमहामण्डलाधिवेशने विलिख्य समुपस्थापयितुं शक्नोति।

(ख) उपरिनिर्दिष्टाः सभाः संस्थास्तत्सभासदाश्च नियमपरिवर्तनप्रस्तावाधिकारिणो भविष्यन्ति, एवंविधाः प्रस्तावाः सम्मेलनाधिवेशनत एकमासात् प्राक् सभामन्त्रिद्वारेण स्वागतसभामन्त्रिणः सन्निधौ प्रेषणीयाः, येन स स्वागतसमितेः सभ्यान् सूचयितुं शक्नुयात्।

(ग) उपक्षेपान्तरवन्नियमपरिवर्तनोपक्षेपा अपि विषयनिर्वाचनसमितिद्वारेण सम्मेलन उपस्थापिता भविष्यन्ति, मताधिक्येन च ते स्वीकृता भविष्यन्ति।

१८. कार्यनिर्वहणम्।

स्थायिसमित्यनुमत्या सम्मेलनकार्यालयस्य तदन्तर्भूतसंस्थानाञ्च कार्याणि प्रधान-मन्त्री निर्वाहयिष्यति। तेषामुत्तरदाता च स्थायिसमित्या सह स एव भविष्यति।

वैद्यपञ्चानन कृष्णशास्त्री कवडे,
प्रधानमन्त्री.



॥ श्रीः ॥

निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठम् ।

१. नाम—अस्याः संस्थाया नाम "निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठम् ।"

२. संघटनम्—इयं संस्था निखिलभारतायुर्वेदमहामण्डलस्य चतुर्थनियमस्य (ख) शाखानुसारेण तदधीनत्वेन स्थापिता ।

३. उद्देशाः—आयुर्वेद—परीक्षाग्रहणम्, आयुर्वेदविदुषां ग्रन्थकर्तॄणामाविष्कर्तॄणां सहायकानां समुन्नायकानां समुत्साहवतां च संमानम्; आयुर्वेदपाठशालाविद्यालयानां पाठ्यप्रणालीविनिश्चयः, तेषां चैकसूत्रीकरणम्, आयुर्वेदोपादेयग्रन्थानां प्रकाशनम, आयुर्वेदविद्यार्थिभ्यश्छात्रवृत्तिप्रदानदापनव्यवस्था, आयुर्वेदविद्याविज्ञानादिकार्याणां प्रबन्धश्च ।

४. कार्यकर्तारः—कार्यनिर्वहणं च—(क) निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठकार्यव्यवस्थायै निखिलभारतवर्षीयवैद्यसम्मेलनेन तदाज्ञानुरोधेन स्थायिसमित्या वा काचन कार्यकारिणी समितिः स्थापिता भवति । अत्र चैते भवन्ति कार्यकर्तारः—एकोऽध्यक्षः, द्वावुपाध्यक्षौ, एको मन्त्री, त्रय उपमन्त्रिणः, पञ्चाशत् सदस्याश्च । एते च भारतस्य तत्तत्प्रान्तेभ्यो गृहीता भवन्ति । एषां निर्वाचनं निखिलभारतायुर्वेदवैद्यसम्मेलनाधिवेशनेन स्थायिसमित्या वा भवति । येषु विद्यालयेषु विद्यापीठानुसारिणी पाठ्यप्रणाली प्रचरति, ये च प्रतिवर्षं पञ्चरूप्यकप्रदानेन विद्यापीठेन सह सम्बद्धा भवन्ति तेषामप्येकैकः प्रतिनिधिरत्र गृह्यते । एते सदस्याः निखिलभारतवर्षीयवैद्यसम्मेलनस्य दत्तशुल्कनिर्वाचितसभासदानां स्थायिसमितेः प्रसिद्धविदुषां च मध्यतो निर्वाचिता स्युः, सति कारणविशेषे निखिलभारतवर्षीयवैद्यसम्मेलनस्य स्थायिसमितेश्चानुमत्या अपरेऽपि सभासदाः संयोक्तुमर्हाः । विद्यापीठस्य शीघ्रकरणीयानि आवश्यकानि कार्याणि निर्वोढुं कश्चन स्थानिकसंघोऽपि स्यात् । तत्र मंत्र्यादयो विद्यापीठकार्यकर्तारः, अन्ये पञ्च स्थानिकसभासदाश्च । एते च आयुर्वेदमहामण्डलेन निर्वाचिता भवेयुः । एष स्थानिकसंघोऽपि शीघ्रकरणीये विषये कार्यकारिणीविधेयं कार्यं विधातुं शक्नोति ।

(ख) सत्यावश्यके विचारणीयविषयाः सूचनीयाः सदस्येभ्यः । इयं सूचना दशदिनतः पूर्वमेव प्रदेया । ततश्च मन्त्री निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठाधिवेशनं कर्तुं पारयेत् । सति प्रयोजने अध्यक्षस्योपाध्यक्षस्य वाऽनुज्ञया स्थानिकसंघाय संसूच्य अधिवेशनं कर्तुं मन्त्री प्रभवति ।

(ग) यदि कदाचित् द्वावपि विद्यापीठसदस्यावधिवेशनावश्यकतां प्रतिपादयेताम्, स्वीकरोति चामुमर्थं मन्त्री सभापतिर्वा तदैतदप्यधिवेशनं मन्त्री कर्तुं पारयति तदर्थं सूचनामपि प्रकाशयेत् ।

(घ) सदस्यत्रयोपस्थितौ समितेरस्या अधिवेशनमारभेत। विद्यापीठ-कार्यकर्तारोऽपि सदस्येष्वेवान्तर्भवन्ति, तेऽपि उपक्षेपानुपस्थापयितुं, आशयांश्च प्रकाशयितुं प्रभवन्ति।

(ङ) यदि कश्चन सदस्यः समितेरधिवेशनसमये स्वयमुपस्थातुं न शक्नोति स आत्मनोऽभिप्रायं विलिख्यापि प्रेषयितुमधिकृतः। लेखमुखमागताः अभिप्राया अपि विचारपथमारोहन्ति। परं कस्यचन विषयस्य निर्णयस्तु संनिहितानां सभासदानामभिप्रायानुसारेणैव भवितुमर्हति।

(च) निखिलभारतवर्षीय-वैद्यसम्मेलनस्य स्थायिसमितेर्वा यदि कश्चन सदस्यस्तत्राधिवेशने समुपस्थितो भवेत्, सोऽपि सदस्यत्वेन परिगणितो भवेत्।

(छ) यदि कस्यापि सभासदस्य स्थानं रिक्तं भवेत् केनापि कारणेन, तदा आयुर्वेदमहामण्डलानुमत्या तत्रापरः कोऽपि सदस्यः नियोक्तुं शक्यते।

५. साधारण्येन वैद्यकज्ञानप्रचारः।

आयुर्वेदविद्यापीठस्यानुमत्या तत्तन्नगरेषु सर्वाभीष्टवैद्यकवर्गनाम्ना कापि संस्था प्रतिष्ठाप्येत। या हि नाम सर्वेषां बालकवृद्धस्त्रीपुरुषाणां देशकालानुसारं शरीररक्षोपयोगिकं ज्ञानं प्रचारयेत्। वर्षसमाप्यं ज्ञानमिदं प्रकल्प्येत। अत्र किमपि पाठ्यं पुस्तकं निर्दिष्टं स्यात्। अत्र प्रतिसप्ताहं होरैकं होराद्वयं वा व्याख्यामुखेन निबन्धपाठेन च शिक्षा प्रदीयेत। पाठशालासु विद्यालयेषु च निखिलभारतवर्षीय-वैद्यसम्मेलनसभासदाश्च प्रतिसप्ताहं दिनैकक्रमेण सर्वाभीष्टवैद्यकव्याख्यानव्यवस्थां कर्तु मधिकृताः स्युः। परमत्र विद्यालयस्य पाठशालाया वा अधिकारिणामानुकूल्यमपेक्षितं स्यात्।

६. आयुर्वेदविद्यापीठपरीक्षाः।

(क) आयुर्वेदविद्यापीठानुमतासु पाठशालासु शिक्षाक्रमो द्विधा व्यवस्थापितो भवति। सामान्यक्रमो विशिष्टक्रमश्च। सामान्यपरीक्षोत्तीर्णेभ्यः "आयुर्वेद-विशारदः" इति, विशिष्टपरीक्षोत्तीर्णेभ्यश्च "आयुर्वेदाचार्यः" इति प्रमाणपत्रेण सह पदवी प्रदीयते।

(ख) स्वल्पसंस्कृतज्ञानां कृतेऽपरापि काचन परीक्षास्ति नियोजिता; यत्रोत्तीर्णेभ्यो "भिषक्" इति पदवी (योग्यतासूचकं नाम) प्रमाणपत्रं च विनियोज्यते। अस्याः प्रश्नपत्राणि संस्कृते प्रान्तीयभाषायां अपि वा भविष्यन्ति। एतत्परीक्ष्याश्छात्राः प्रश्नोत्तराणि आंग्लयावनभाषे विरहय्य भारतीयस्वस्वप्रान्तभाषया प्रदातुमर्हन्ति।

७. परीक्षाप्रबन्धः

(क) आयुर्वेदविशारदपरीक्षाया आयुर्वेदाचार्यपरीक्षायाश्च सर्वप्रबन्धो विद्या-

पीठस्याधीनः, किन्तु भिषक्परीक्षायै विद्यापीठकार्यकारिणी समितिः प्रान्तीयसदस्यानामनुमत्या तेषु तेषु प्रान्तेष्वेकां समितिं स्थापयेत्, या विद्यापीठेन निर्मितानि भिषक्परीक्षायाः प्रश्नपत्राणि स्वप्रान्तीयभाषायामनूद्य विद्यापीठस्य निश्चितकेन्द्रेषु परीक्षां गृहीत्वा उत्तर-पुस्तकानि निरीक्ष्य, तानि च गुणाङ्कसूचनं च विद्यापीठाय प्रेषयेत्।

(ख) परीक्षाणां स्थानकालपाठ्यग्रन्थनिर्धारणम्, परीक्षाणां योजनम्, परीक्षापरिणामविवरणम्, परीक्षोपयोगिनां विषयान्तराणां प्रबन्धश्च निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठेन विधीयते।

(ग) आयुर्वेदविशारदपरीक्षां आयुर्वेदाचार्यपरीक्षां वा दातुमिच्छद्भिश्छात्रैः प्रश्नानामुत्तराणि संस्कृतेनैव लेख्यानि।

(घ) निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठस्य परीक्षां दित्सुभिः परीक्षार्थिभिः निजयोग्यताविषयसूचनपूर्वक मावेदनपत्रं विद्यापीठकार्यालयाय लेखनीयम्। आवेदनपत्रं कथं लेखनीयमिति प्रथमपरिशिष्टे द्रष्टव्यम्।

(ङ) उपनियमानुसारेण भिषगायुर्वेदविशारदपरीक्षार्थिभिर्न्यूनतोऽपि न्यूनमेकवर्षपर्यन्तम्, तथा आयुर्वेदाचार्यपरीक्षार्थिभिर्हायनद्वयपर्यन्तं कर्माणि अवश्यं चाभ्यस्तव्यानि।

(च) आयुर्वेदाचार्योपाधिपरीक्षायै त एव परीक्षार्थिनः समागन्तुमर्हाः, ये नि० भा० आयुर्वेदविद्यापीठस्यायुर्वेदविशारदपरीक्षायां वर्षद्वयात् पूर्वं समुत्तीर्णाः, ये वा विद्यापीठसम्मानितानां संस्थानां विशारदसदृशत्वेन मान्यायां परीक्षायामुत्तीर्णा इति प्रमाणपत्रं प्रकटीकुर्युः, ये च विंशतिवर्षवयसः स्युः।

(छ) परीक्षासूत्तीर्णेभ्यश्छात्रेभ्यः प्रदेयेषु प्रमाणपत्रेषु निखिलभारतीयवैद्यसम्मेलनस्य सभापतिः, प्रधानमन्त्री, निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठाध्यक्षः, मन्त्री च हस्ताक्षराणि न्यस्युः।

(ज) परीक्षाणां समयस्य स्थानस्य च निर्देशः यथाशक्यं परीक्षाकालतो मासत्रयात् पूर्वं वैद्यकसम्बन्धिनीषु अन्यासु सामान्यासु वार्तापत्रिकासु च क्रियते।

(झ) प्रतिवर्षं आंग्लमार्चमास (प्रायसः चैत्रमासः) एव परीक्षासमयः, तस्य च मासस्य अन्त्यो गुरुवासर एव परीक्षाप्रारंभदिवसः। अन्यथा अनुद्घोषिते एष एव संकेतः सर्वदा परिपालनीयः। परीक्षाफलं च परीक्षानन्तरं मासद्वयाभ्यन्तरे वैद्यसंमेलनपत्रिकायां वैद्यकसंबन्धिनीषु सामान्यासु च वार्तापत्रिकासु प्रकटीकर्तुमुद्युञ्जेत। परन्तु सोपाधिकं प्रमाणपत्रं दीयते निखिलभारतवर्षीयवैद्यसम्मेलनस्य वार्षिकाधिवेशनसमय एव।

(ञ) कस्मिंश्चिदपि विषये विषयेष्वनेकेषु वाऽनुत्तीर्णानां छात्राणां आनन्तरिकेषु वत्सरेषु तेषु अनुत्तीर्णेष्वेव विषयेषु परीक्षां दातुं सौकर्यमास्ते प्रकल्पितम्।

(ट) भिषक्परीक्षादातृभिः रूप्यकत्रयम्, आयुर्वेदविशारदोपाधिपरीक्षादातृभिः

रूप्यकपञ्चकम्, आयुर्वेदाचार्योपाधिपरीक्षार्थिभिः रूप्यकसप्तकं च परीक्षाशुल्कत्वेन निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठकार्यालयाय प्रेषणीयम् ।

८. आवेदनपत्रम् ।

निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठपरीक्षाः दातुमभिलषद्भिश्छात्रैः मंत्रिणः परीक्षादानस्यावेदनपत्रमासाद्य, तच्च विधिवद्विलिख्य परीक्षातीथेर्यावच्छक्यम्मासैकात् प्राक् विद्यापीठस्य मन्त्रिणे परीक्षाशुल्केन सह प्रेषणीयम् । नियमितकाल एव यैः किल परीक्षार्थिभिः आवेदनपत्रं न ग्रहीयते, न ते परीक्षायां प्रवेष्टुं प्रभवन्ति । परीक्षार्थिभिः स्वकीयं नाम, तथा गुरोर्नाम, गुरोरेव च पत्रव्यवहारस्थलं स्पष्टतया लेख्यम् । अन्यथा उत्तरप्राप्ति—परीक्षाफलसूचनाप्राप्तिविप्लवे च नैवास्ति दोषो विद्यापीटस्य ।

९. परीक्षाणां केन्द्रस्थानानि ।

निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीटस्य परीक्षाकेन्द्राणि भारतवर्षीयेषु परीक्षाव्यवस्थाप्रबन्धोपयुक्तेषु एकत्रिंशत् स्थानेषु नियोज्यन्ते; किन्तु स्थानेषु एषु परीक्षार्थिभिरधमपक्षे दशभिर्भाव्यम् । स्थानविशेषादिकमालोच्य स्थानं विकल्पेनापि प्रयोक्तुं विद्यापीटस्य विद्यतेऽधिकारः । अद्यतनीया केन्द्रनामावलिः—१ अजमेर. २ अमरावती. ३ अहमदाबाद. ४ इन्दोर. ५ कराची. ६ कलकत्ता. ७ कानपूर. ८ कोलंबो. ९ ग्वालियर. १० जवलपूर. ११ देहली. १२ नागपुर. १३ नासिक. १४ पूना. १५ प्रयाग. १६ बम्बई. १७ बंगलोर. १८ वनारस १९ बांकीपूर. २० बीकानेर. २१ बेझवाडा. २२ मथुरा. २३ मद्रास. २४ राजमहेन्द्री. २५ रावलपिण्डी. २६ लखनऊ. २७ लाहोर. २८ शिमोगा. २९ हृषीकेश. उपकेन्द्रे—१ नेल्लोर २ नंद्याल.

१०. प्रश्नपत्राणि गुणाङ्कप्राप्तिश्च ।

(क) मौखिकीं परीक्षां त्यक्त्वा आचार्यपरीक्षाया विषया एकादश, विशारदपरीक्षायाः विषयाः दश, भिषक्परीक्षायाश्च विषया अष्टौ भवन्ति ।

(ख) प्रत्येकस्य प्रश्नपत्रस्य शतं परमावधिगुणाः, प्रतिप्रश्नपत्रस्य गुणशतके प्रश्नपत्रे लब्धचत्वारिंशद्गुणः परीक्षार्थी तत्पत्रे समुत्तीर्णो भवति । उत्तीर्णत्वेन भवितुमधमपक्षे चत्वारिंशत् गुणाः गृहीतव्याः ।

(ग) सर्वेषां पत्राणां लब्धगुणाङ्कानां साकल्येन प्रतिशतं चत्वारिंशत्पञ्चाशन्मध्याङ्कोपलब्धौ तृतीयश्रेण्याम्, एकपञ्चाशदुत्तरषष्ट्यन्तर्गतं द्वितीयश्रेण्यामेवं तदधिके प्रथमश्रेण्यामुत्तीर्णः परीक्षार्थीति निश्चीयते । भागशः समुत्तीर्णेभ्य प्रथमद्वितीयश्रेण्यौ नैव दीयेते ।

(घ) निखिलभारतायुर्वेद—विद्यापीटसमितिः प्रश्नपत्राणि सरलानि कठिनानि वा कर्तुमधिकृता । एवमितरेषु सर्वेषु विषयेषु उत्तीर्णेभ्य एकस्मिन्विषये पञ्चगुणानां

तन्न्यूनानां वालाभाद्गुत्तीर्णेभ्यः परीक्षार्थिभ्यः यावत्कृपागुणदशकं दत्त्वोत्तीर्णत्वेन कर्तुं विद्यापीठसमित्या अस्त्यधिकारः। परं च शारीरशास्त्रं द्रव्यगुणशास्त्रं रोगविज्ञानं कायचिकित्सा इत्येतान् विषयान् विहाय अन्येष्वेव विषयेषु सत्यावश्यके एकस्मिन्नेव कृपागुणा देयाः। एतेषां विषयाणां नितरां महत्त्वपूर्णत्वाद् एषु कृपागुणा न देयाः। पश्चाधिककृपागुणदानप्रसंगे तु सर्वविषयाणां गुणयोगः सम्यग् विचारणीयः।

(ङ) परीक्षाप्रश्नपत्राणां मुद्रणस्य प्रबन्धः स्वयमेव मन्त्रिणा कार्यः। अथवा विद्यापीठतः प्राप्ताधिकारेण केनापि सदस्येन सम्यग् गूढतया करणीयः। यतः न केनचिदपरेण प्रश्नपत्राणि अवलोकनीयानि।

११. मन्त्रिणः कार्याणि

(क) निखिलभारतवैद्यसम्मेलनस्य विद्यापीठसम्बन्धिनां कार्याणामखिलानां निर्वहणे मन्त्री प्रभवति। तेषां यथावत् सम्पादनं तेन विधेयम्।

(ख) भारतवर्षे आयुर्वेदपाठशालाः कुत्र कुत्र काश्च वर्तन्ते, कीदृशस्तत्पाठ्यक्रमः; कीदृशी तासां स्थितिः, तासां च के के विशेषप्रबन्धा इत्यादयो विषया नियतमवधेया मन्त्रिणा।

(ग) आयुर्वेदसम्बन्धिनामावश्यकीयग्रन्थानां निर्माणे संकलनेऽनुसंधाने प्रकाशने च निखिलभारतवैद्यसम्मेलनस्य स्थायिसमित्या सर्वदोद्युक्तया तथा प्रयत्नान्तरेण तादृशकार्यसाधिन्या च भाव्यम्।

(घ) आयुर्वेद-सम्बधिकार्येषु समुत्साहवतां वैद्यसम्मेलनोद्देशनिर्वहणनिरतानां स्वोद्योगयोग्यताभिरायुर्वेद-गौरवाभ्युदयचिकीर्षूणां क्रियाकुशलानां पुंसां काले काले सम्यक् परिचयमुपलभ्य यथोचितप्रश्रय लैस्तान् विद्यापीठ-सम्मानितान् कुर्यात्। तत्प्रान्तीयमन्त्रिमण्डलसाहाय्येन तत्सूचिकां च संचित्य कार्यकारिण्याः समित्याः सम्मत्या निखिलभारतवैद्यसम्मेलनतः कमपि समुचितं उपाधिम्, पदकम्, प्रशंसापत्रं वा वैद्यसम्मेलनद्वारा विद्यापीठमुपहरेत्।

(ङ) उचितसमये निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठस्य सम्मत्या परीक्षाभ्यो हायनादेकस्मात् प्राक् विषयस्य पाठ्यग्रन्थानां वा विनिश्चयः, एवं परीक्षातो मासत्रयात् प्राक् परीक्षादिवसानां तत्स्थानादीनां च प्रकाशनम्; सति पाठ्यक्रम-परिवर्तने कर्तव्ये वर्षादेकस्मात् प्राक् तत्सूचनायाश्च प्रकाशनं मन्त्रिणा कर्तव्यम्।

(च) मन्त्री परीक्षायाः यथाशक्यं मासचतुष्टयात् प्राक् परीक्षकान् गणकान् प्रत्येकस्थानव्यवस्थापकांश्च नियोजयेत्।

(छ) परीक्षातो मासद्वयात् प्राक् कार्यकारिण्या समित्या परीक्षाप्रश्नपत्राणि संपादनीयानि। तन्मुद्रणस्योचितं प्रबन्धं च विधाय पंचदशदिवसेभ्यः प्राक् तानि मुद्रापयेत्।

(प्रश्नपत्रेषु अन्तर्गता विषया यथा न स्युः परैः ज्ञाताः तथा गोपनीया इति सदस्येभ्यो निवेदनीयम्) ।

(ज) व्यवस्थापकेभ्यः आवश्यकानि विज्ञापनपत्राणि, उपस्थितिपत्रकाणि, मौखिकपरीक्षाफलपत्रकाणि, प्रवेशानुमतिपत्राणि, निरीक्षकनिमंत्रणपत्राणि, परीक्षार्थिनामावल्यः, कार्यक्रमपत्रिकाः, कार्यालयमुखविलासपत्राणि, दैनिकवृत्तान्तपत्राणि, केन्द्रव्ययपत्राणि, उत्तरपुस्तकानि मषीशोषकपत्राणि च परीक्षातः सप्ताहादेकस्मात् प्राक् यथा केन्द्राध्यक्षसविधे प्राप्येरन् तथा, प्रश्नपत्राणि तु दिनचतुष्टयात् प्राक् सावहिति सुरक्षितानि कृत्वा (Through Registered Packet) प्रेषयेत् । विद्यापीठाय उत्तरपुस्तकानि अन्यानि च पत्राणि सुसंरक्षितानि प्रेषणीयानीति व्यवस्थापकः ज्ञापनीयः ।

(झ) उत्तीर्णपरीक्षार्थिनां प्रमाणपत्रेषु स्वयं हस्ताक्षराणि कृत्वा निखिलभारतायुर्वेद-विद्यापीठाध्यक्षस्य निखिलभारतवैद्यसम्मेलनस्य सभापतेः प्रधानमन्त्रिणश्च हस्ताक्षराणि कारयित्वा निखिलभारत-वैद्यसम्मेलनसभापतिद्वारा प्रमाणपत्राणि विनियोजयेत् उत्तीर्णेभ्यः ।

(ञ) निखिलभारतायुर्वेद—विद्यापीठस्याधिवेशनकार्यक्रमान् विवृत्य प्रकाशयेत् । तथा निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठस्य सर्वाण्येतराणि कार्याणि सम्पादयेत् । निखिल-भारत—वैद्यसम्मेलनस्य समक्षं निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठस्य वार्षिककार्यविवरणं श्रावयेत् ।

१२. उपमन्त्रिणां कर्तव्यानि ।

विद्यापीठमन्त्रिणः सर्वेषु कार्येषु साहाय्यदानं तदनुपस्थितौ तत्कार्यसंपादनं च ।

१३. परीक्षकाणां कर्तव्यानि ।

विद्यापीठपरीक्षाणां प्रश्नपत्राणि निर्मातुम्, तानि निरीक्ष्य गुणान् प्रदातुं च भिन्नभिन्नस्थानीयाः स्वदेशीयाः योग्या विद्वांसो निमन्त्रयेरन्, तेषामिमानि कर्तव्यानि—

(क) परीक्षकत्वमङ्गीकृत्य ततः सप्ताहाभ्यन्तर एव प्रश्नपत्राणि निर्माय प्रत्येकं प्रश्नानां गुणांकांश्च विलिख्य मन्त्रिणे प्रेषयेत् परीक्षकः ।

(ख) उत्तरपुस्तकानि परीक्ष्य तानि तत्फलं च मासाभ्यन्तरे मन्त्रिणे प्रेषणीयम् ।

(ग) परीक्षाफलेन साकमुत्तरपुस्तकानां विषये स्वकीयमाशयमपि विलिख्य मन्त्रिणे परीक्षकः प्रहेतुमधिकृतः ।

१४. केन्द्रव्यवस्थापकानां कर्तव्यानि ।

येषु स्थानेषु आयुर्वेदविद्यापीठस्य परीक्षाकेन्द्राणि स्थाप्यन्ते तेषु परीक्षाणां समुचितो व्यवस्थापक एको नियुज्यते तस्य च कर्तव्यानि—

(क) स्वकीयस्थाने परीक्षाणां निर्वाहणाय पूर्णः प्रबन्धः कार्यः। यत्र स्थाने परीक्षाः निर्वर्त्यन्ते तस्य स्थानस्य सर्वामपि व्यवस्थां विधाय परिक्षायै नियमितकालस्य मासादेकस्मात् प्राक् मन्त्रिणे सर्वान् विषयान् सूचयेत्। यतो मन्त्री समुचितकाले परीक्षार्थिनो ज्ञापयितुं प्रभवति।

(ख) मन्त्रिसविधादागतानि प्रवेशानुमतिपत्रादिपत्राणि परीक्षार्थिभ्यो यथायोग्यं दत्वा तेषां पृष्ठभागेषु स्वकीयहस्ताक्षरं कारयित्वा प्रत्येकशः स एवायं परीक्षार्थीति प्रत्ययादनन्तरमेव तानि तेभ्यो वितरणीयानि। परीक्षास्थाने च प्रत्यहं परीक्षार्थिनां प्रत्येकशः प्रवेशानुमतिपत्राणि निरीक्ष्यैव तेभ्यः प्रवेशनं देयम्।

(ग) प्रत्यहं परीक्षासमयसमाप्तौ सर्वेभ्योऽपि परीक्षार्थिभ्य उत्तरपुस्तकानि संगृह्य प्रतिपरीक्षं यथाक्रमं च संकलय्य, तस्य तस्योत्तरपुस्तकमुखपृष्ठे स्वकीयमभिप्रायं च विलिख्य केन्द्रव्यवस्थापकेन स्वयमेव सुरक्षितकवचयुक्तानि च तानि कृत्वा तद्दिन एव विद्यापीठकार्यालयाय प्रेषणीयानि।

(घ) परीक्षासप्ताहे प्रत्यहं दैनिकवृत्तान्तं स्वयमेव यथावत् विलिख्य स च विद्यापीठकार्यालयाय प्रेष्यः। अन्त्यदिने तु सर्वाण्यपीतराणि अवशिष्टपत्राणि यथावद्विलिख्य विद्यापीठकार्यालये प्रेषणीयानि।

(ङ) अनुचितं साहाय्यं न यथा परीक्षार्थी अपरेभ्योऽधिगच्छेत्तथा व्यवस्थापकेन यतितव्यम्।

(च) परीक्षाकाले निरीक्षणाय प्रत्यहं समुचितसंख्याकाः निरक्षका नियोक्तव्याः; मन्त्रिणे तन्नामसूचनाऽपि दातव्या व्यवस्थापकैः।

(छ) मन्त्रिणोऽन्तिकादागतप्रत्येकविषयाणां प्रश्नपत्राणामावरणं परीक्षामन्दिरे उपस्थितानां सज्जनानां सम्मुखे सपदि समुद्घाटनीयं परीक्षाकाले।

(झ) परीक्षाविषये इतराण्यपि आवश्यकानि कर्तव्यानि मन्त्रिविज्ञापनानुसारेण करणीयानि व्यस्थापकैः।

(ञ) परीक्षानन्तरमवशिष्टान्युत्तरपुस्तकानि तथाऽन्यवस्तूनि चान्तिके मंत्रिणः प्रेषणीयानि।

१५. निरीक्षककार्याणि

येषु येषु स्थानेषु भवन्ति निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठस्य परीक्षास्तत्र तत्र व्यवस्थापकाधीनस्थैः निखिलभारतविद्यापीठनियुक्तैः निरीक्षकैस्तदा उत्तरलेखनोद्यताः परीक्षार्थिनो निरीक्ष्यन्ते। तेषां कर्तव्यानि—

(क) व्यवस्थापकत्यादेशानुसारेण परीक्षार्थिनां निरीक्षणं कार्यम्। यतः प्रश्नोत्तरलेखनकाले परीक्षार्थिनः साहाय्यमनुचितं न प्राप्नुयुः।

(ख) परीक्षार्थिनामावश्यकतां विचारयद्भिस्तेभ्य उत्तरपुस्तकं, मषीकां, तृषितेभ्यश्च सलिलमित्यादि ददद्भिर्निरीक्षकैरुचितं साहाय्यं प्रदातव्यम्।

(ग) परीक्षास्थाने नियतकाले उपस्थितिः, व्यवस्थापकनिश्चितसमयपर्यन्तं तत्र स्थितिः कर्तव्या निरीक्षकैः।

(घ) परीक्षाकाले नैतादृशानि कार्याणि कुर्यात् यैः परीक्षायां निरीक्षणे वा आपत् संभवेत्।

(ङ) अनुचितं साहाय्यं प्राप्तुं प्रयतमानस्य परीक्षार्थिन उत्तरपुस्तके कश्चन संकेतविशेषो विधेयः, अपधाधिक्ये व्यवस्थापकाय विज्ञाप्य तद्बहिष्कारो वा विधेयः।

१६. गणकस्य कर्तव्यानि।

परीक्षकसन्निधेरागतपरीक्षाफलपत्रकाणां गुणांकानेकीकृत्य नियमेन परीक्षार्थिनां परीक्षाफलानि तेषामुत्तीर्णत्वश्रेणीश्च निश्चेतुं निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठं कांश्चिदपि विदुषः नियोजयति, तेषामिमानि कर्तव्यानि।

(क) परीक्षकेभ्यः प्राप्तान् गुणांकान् कोष्ठेषु पृथक् पृथक् वितीर्य परीक्षार्थिना-मुत्तीर्णानुत्तीर्णत्वयोः सम्यक् निरीक्षणं कार्यम्; उत्तीर्णतालिका सुनिर्मिता आयुर्वेद-विद्यापीठस्याधिवेशने प्रेषणीया गणकैः।

(ख) सत्यावश्यके कस्मैचित्परीक्षार्थिने कृपागुणान् दत्वा तदुत्तीर्णताविषयेऽधि-वेशने प्रस्तावोपस्थितिः कार्या।

(ग) उत्तीर्णानां सूचिका पृथक् कृत्वा भूयो निरीक्ष्य मन्त्रिणोऽन्तिके प्रेष्या।

(घ) आवश्यकतया गुणांकप्रेषणविषये परीक्षकाः प्रार्थनीयाः।

(ङ) गुणांकानां पुस्तकाकारं रूपादीनि वा सम्यक् विधाय कार्यकारिण्या समित्या तदङ्गीकरणोपाया विचिन्तनीयाः।

१७. परीक्षार्थिनां विज्ञप्तिः।

निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठस्य परीक्षादातृभिः अधोलिखिता विषयाः स्मरणीयाः।

(क) परीक्षास्थाने नियतसमय एव परीक्षार्थिभिरूपस्थातव्यम्।

(ख) परीक्षार्थिभ्यः परीक्षास्थान एव प्रश्नोत्तराणि लिखितुमेकमलिखितपुस्तकम् समपीकमेकमपीपात्रश्चापि दीयेत। परन्तु लेखन्यः स्वकीया एवानेतव्याः।

(ग) पुस्तकानां दक्षिणपृष्ठेष्वेवोत्तराणि लेख्यानि। वामभागे पृष्ठोत्तरीयो भागः त्यक्तव्यश्च। वामपृष्ठे लिखितस्य परीक्षणं न भवेत्। प्रत्येकस्य प्रश्नस्य उत्तरं नूतने पृष्ठे लेख्यम्।

(घ) प्रवेशानुमतिपत्रप्रश्नपत्रोत्तरलेखनपुस्तकमपीशोषणपत्राणि लेखनीं च विहाय इतराणि वस्तूनि, पुस्तकादीनि वा परीक्षार्थिभिर्बहिष्कर्तव्यानि, उत्तरपुस्तकानां पृष्ठ-खण्डनमपि न कार्यम्। परीक्षकैरदर्शनीयस्य कस्यचिल्लेखनखण्डस्य पृष्ठस्य वा चतुर्दिक्षो रेखाः कर्तव्याः। समाप्तैकोत्तरपुस्तकाः द्वितीयपुस्तकाय प्रार्थितनिरीक्षकाः परीक्षार्थिनः द्वितीयपुस्तकाधिकारिणो भवन्ति। लेखनसमाप्तौ पुस्तकद्वयस्यैकता कर्तव्या।

(ङ) काले मिथः संभाषिणः प्रश्नोत्तरलेखनेऽनुचितसाहाय्यचिकीर्षवः परीक्षार्थिनः परीक्षास्थानतो बहिष्करिष्यन्ते । तथा ते तद्वर्षभाविनीमवशिष्टां च परीक्षां दातुमपि नानुमतिं प्राप्स्येरन् ।

(च) परीक्षाफलं प्रकटीक्रियते आगामिवैद्यसम्मेलनतः पूर्वम् सम्मेलनस्य वैद्यसम्मेलनपत्रिकाख्ये मुखपत्रे, वैद्यकपत्रेष्वितरेषु सार्वजनिकपत्रेषु वा । उत्तीर्ण-परीक्षार्थिनां प्रमाणपत्राणि वैद्यसम्मेलने एव वितीर्यन्ते । परीक्षोदर्कपुस्तकं नियतमूल्येन ग्राह्यं सर्वैः ।

(छ) केषु विषयेष्वनुत्तीर्णोऽस्मि इति कश्चन परीक्षार्थी समितिं गुरुद्वारा पृच्छेदिति तदधिकारः । कस्यचिद्विषयस्य गुणाङ्केषु जातभ्रमः परीक्षाफलप्रकाशनतो मासद्वयान्तरे कार्यकारिण्यां समित्यां प्रतिप्रश्नपत्रं रूप्यकद्वयं संप्रेष्योत्तरपुस्तकानि पुनः शोधयितु-मधिकृतोऽभवेत् , स्वान् गुणांकान् पृच्छता च परीक्षार्थिनाष्टावाणकाः प्रेषणीयाः । किंतु एतत्पुनःसंशोधनं गुणांकानां हस्तदोषविषयकमेव स्यात् न तु उत्तरपुस्तकानां पुनः-परीक्षणं न वा कृपागुणदानमित्यवश्यं मनसि करणीयम् ।

(ज) केनापि हेतुना तद्वर्षस्य परीक्षायामनुपस्थितस्य परीक्षार्थिनः शुल्करूपेण प्रेषितद्रव्यं न प्रत्यर्प्यते समित्या ।

१८. उत्तरपुस्तकानि ।

(क) येषु पुस्तकेषु परीक्षार्थिन उत्तराणि लिखेयुः तानि पुस्तकानि विद्यापीठं ददाति । तेषामावरणपृष्ठानि मुद्रितानि स्युः । तेषु परीक्षार्थिना यल्लेखनीयं तच्च स लेखनारंभे सम्यक् लिखेत् ।

(ख) उत्तराणि स्वच्छानि, निश्चितकाले समाप्यानि लेख्यानि । कालान्ते एव उत्तरपुस्तकानि निरीक्षको गृह्णाति ।

१९. शुल्कप्राप्तिसूचनम् ।

(क) साकमावेदनपत्रैः परीक्षार्थिभिः प्रेषितानां शुल्करूप्यकाणां प्राप्तिस्वीकार-लिखितपत्रं कार्यालयेन दीयते ।

(ख) साकमेवावेदनपत्रैः परीक्षार्थिनां कृते आवश्यकं सूचनापत्रमपि मुद्रितं भवेत् यस्मिन् परीक्षादानविषये परीक्षार्थिनां सर्वाण्यपि कार्याणि स्पष्टीकृतानि भवेयुः ।

२०. निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदविद्यापीठस्य

पाठ्यक्रमविवरणम् ।

१. आयुर्वेदविद्यापीठस्य परीक्षासु ज्ञेयविषयाणामेव प्राधान्यं स्यात् न ग्रन्थानाम् , अन्यत्र चरकसुश्रुतवाग्भटेभ्यः । त्रयाणां पुनरेषां निर्दिष्टविषयज्ञानाय यथाप्रयोजन-मवश्यपठनीयता स्यात् आयुर्वेदविशारदाचार्यपरीक्षार्थिभिः ।

२. निर्दिष्टविषयांशज्ञानार्थं यस्य यावन्तोंऽशा अवश्यपठनीयास्तेषां दिक् अत्रैवाग्रे सविस्तरं द्रष्टव्या। तत्र तत्र निर्दिष्टा ग्रन्थांशास्तु विशारदपरीक्षार्थिभिर्न सर्वत्र सर्वे किन्तु यथाप्रयोजनं विषयज्ञानाय पठनीयाः। आचार्यपरीक्षार्थिभिस्तु सर्वेऽपि। अथ कोऽपि विषयांशो निर्दिष्टग्रन्थांशेषु न चेत् लभ्यते स ग्रन्थान्तराद्वा गुरूपदेशाद्वा ज्ञातव्यः।

३. संस्कृतज्ञानां द्विविधा परीक्षा विद्यते। सामान्यपरीक्षा, विशिष्टपरीक्षा च। तत्र सामान्यपरीक्षा—"आयुर्वेदविशारद" इति। गुरुसकाशे वर्षचतुष्टयं यथानियम-मध्ययने समापिते तत्र प्रवेशाधिकारः। विशिष्टपरीक्षा—"आयुर्वेदाचार्य" इति। यत्र विशारदपरीक्षोत्तीर्णानाम् अन्यत्र तत्सदृशपरीक्षोत्तीर्णानां वा वत्सरद्वयानन्तरमेव प्रवेशाधिकारः।*

४. अल्पसंस्कृतज्ञानाचामर्थे "भिषक्" इत्येका परीक्षा विद्यते नाम, प्रश्नाश्चात्र लघुतराः स्युः, उत्तराणि च परीक्षार्थिभिः स्वस्वप्रान्तीयभाषया लेख्यानि।

'भिषक्–' परीक्षाविषयाः।

१. स्वस्थवृत्तम्—भावप्रकाशस्य पूर्वखण्डः—बालप्रकरणम्, चर्य्याविधिः।

२. रोगविज्ञानम्—भावप्रकाशस्य पूर्वखण्डः—षष्ठप्रकरणम्।

मध्यमखण्डः—ज्वराधिकारात् बालरोगाधिकारं यावत्। माधवनिदानं संपूर्णम्, शार्ङ्गधरसंहितायाः पूर्वखंडे सप्तमोध्यायः।

३. शारीरशास्त्रम्—भावप्रकाशस्य पूर्वखण्डः सृष्टिप्रकरणात् गर्भप्रकरणं यावत् प्रसूतिप्रकरणं च, शार्ङ्गधरसंहितापूर्वखण्डः—पंचमषष्ठाध्यायौ।

४. द्रव्यगुणशास्त्रम्—भावप्रकाशस्य पूर्वखण्डः पंचमं प्रकरणम् मिश्रवर्गात् मान–परिभाषां यावत्। शार्ङ्गधरसंहिता—पूर्वखण्डः प्रथमतश्चतुर्थाध्यायपर्यन्तः।

५. कायचिकित्सा—भावप्रकाशस्य पूर्वखण्डः—स्नेहविधेः स्वेदविधिं यावत्। मध्यमखण्डस्य समस्तचिकित्साभागः, उत्तरखण्डस्य रसायनवाजीकरणाधिकारौ। शार्ङ्गधरसंहितायाः—समग्रो मध्यमखण्डस्य। उत्तरखण्डस्य—१—११ अध्यायाः। १३ अध्यायश्च।

६. रसशास्त्रम्—भावप्रकाशस्य पूर्वखण्डः—पंचमप्रकरणम् (धातुमारणविशोधनं यावत्) शार्ङ्गधरसंहिताया मध्यमखण्डः—एकादशद्वादशाध्यायौ।

---

* जयपुरीयशास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णाः, इंद्रप्रस्थीयवनवारीलालायुर्वेदविद्यालयतो विशारदपरीक्षोत्तीर्णाः, विहारोत्कलराजकीयायुर्वेदमध्यमोत्तीर्णाः, डी० ए० व्ही० कॉलेज लाहौरतः कविराज-परीक्षोत्तीर्णाः।

७. शल्यतन्त्रम्—भावप्रकाशस्य पूर्वखण्डः—शोणितस्राव—लेपविधिः, मध्यमखण्डः—विद्रधिः, व्रणः, भग्नम्, नाडीव्रणः, भगन्दरः। शार्ङ्गधरसंहितायाः—उत्तरखण्डस्य १२ अध्यायः।

८. अगदतन्त्रम्—भावप्रकाशस्य मध्यमे खण्डे विषाधिकारः विषचिकित्सा।

आयुर्वेदविशारदपरीक्षानिर्दिष्टविषयाणां विवरणविस्तरः।

१. विषयः—स्वस्थवृत्तम्।

ज्ञेयांशाः—

दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, आहारविधिः, वेगविधारणम्, सद्वृत्तम्। शिशुपालनविधिः।

पानीयजलविचारः, जलदूषणहेतवस्तत्प्रतिषेधश्च। जलशोधनम्, वासस्थानविचारः, वायुसञ्चारप्रयोजनादिविचारः, मलमूत्रसङ्करादीनां दूरीकरणविधयः, जनपदोद्ध्वंसकारणानि। संक्रामकरोगाः, संक्रमणप्रकारः, संक्रमणप्रतिषेधोपायाश्च।

ग्रंथांशाः—

चरक० सूत्र०–५।६।७।८।९ अध्यायाः
सुश्रुत० सूत्र०–६।२०।४६ अध्यायाः
सुश्रुत० उत्तर०–६४ अध्यायाः
सुश्रुत० चिकि०–२४ अध्यायाः
वाग्भट० सूत्र०–२।३।४।६।८ अध्यायाः
मन्वादिधर्मशास्त्रोक्तं स्वस्थवृत्तञ्च।
अधोलिखितग्रन्थानामन्यमञ्च—

१ "दीर्घायुसूत्रम्" (कृष्णाचार्यकृतम्) २ "स्वास्थ्यतत्त्वम्" (डॉ० हरिनाथघोषकृतम्-वंगभाषायाम्) ३ Notter and Firth's HYGIENE.

२. विषयः—रोगविज्ञानम्।

ज्ञेयांशाः—

(क) प्रकृतविकृतवातादीनां स्वरूप-स्थान-लक्षणादीनि। दूष्यविज्ञानम्। व्याधिविज्ञानम्। निदानपञ्चकम्। रोगपरीक्षा। परीक्षोपायाः। मलमूत्रनाडीजिह्वानेत्रहृदयफुफ्फुसोदरादीनां स्थूलतः परीक्षाविधयः।

वडोदाराज्यस्य मध्यमायुर्वेददक्षिणापरीक्षोत्तीर्णाः, पीलीभीतस्य वैद्यभूषणपरीक्षोत्तीर्णाः, ग्वालियरराजकीयमध्यमायुर्वेदपरीक्षोत्तीर्णाः, आचार्यपरीक्षां दातुमर्हाः।

(ख) सामान्यरोगेषु सामान्यज्वरभेदाः, विषमज्वरभेदः ; सान्निपातिकज्वरविशेषाः, (प्लेगादिपरिचयसहिताः) अतिसारः, प्रवाहिकाः, ग्रहणी, अग्निमांद्यम्, अजीर्णम्, अम्लपित्तम्, विषूचिका, क्रिमिरोगाः, शूलम्, उदावर्त्तः, यकृद्रोगः, हिक्का, राजयक्ष्मा, रक्तपित्तं, छर्दिदाहतृष्णारोचकाः, मूर्च्छा, अपस्मारः, संन्यासः, वातव्याधयः, वातरक्तं, कुष्ठानि, उन्मादः, पानात्ययः, उरुस्तम्भः हृद्यन्त्ररोगाः। वृक्करोगाः, शोथः, मूत्रकृच्छ्म्, मूत्राघातः, पूयमेहः श्लीपदगलगण्डगण्डमालादयः, मेदोरोगः, मसूरिकाविस्फोटकशीतपित्तादयः, उपदंशः, फिरङ्गरोगः, (Syphilis) क्षुद्ररोगाः, ।

(ग) अरिष्टविज्ञानम् ।

(स्त्रीरोगेषु रजोदोषः, प्रदर—योनिव्यापदः गर्भस्रावादयश्च ।

ग्रंथांशाः—

चरक० सू०—११।१२।१७।१८।१९।२०।२४।२८ अध्यायाः

चरक० निदान०—(समग्रम्) चरक० इन्द्रिय०—समग्रम्)

चरक० चिकित्सा० १—२० यावत् २२।२४।२७।२८।२९ अध्यायाः

सुश्रुत० सूत्र०—६।१४।१५।२१।२४।२९।३०।३१।३२।३३।३५ अध्यायाः सुश्रुत० निदान० (समग्रम्)

सुश्रुत० उत्तर०—३५।३९।४०।४१।४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१ ५२।५३।५४।५५।५६।५७।५८।५९।६६। अध्यायाः

वाग्भट० (अष्टाङ्गहृदयम्) सूत्र० ११।१२।१३।१४ अध्यायाः—

वाग्भट० शरीर०—५।६ अ०

वाग्भट० निदान०—(समग्रम्)

वाग्भट० उत्तर०—३१।३३ अ० गुरूपदेशाश्च ।

३.—विषयः—शारीरशास्त्रम् ।

(शवच्छेदादिलब्धप्रत्यक्षज्ञानमूलम्)

ज्ञेयांशाः—

(क) शरीरोत्पत्तिः, शुद्धाशुद्धशुक्रार्तवलक्षणम्, शरीरज्ञानस्य प्रयोजनं शारीरपरिभाषा च ।

(ख) अस्थिविवरणे-अस्थ्नां प्रयोजनम्, उपादानं, भेदाः । अस्थिसंख्यानम् । नव्यप्राचीनमतसमन्वयः, अस्थ्नां स्थूलपरिचयः ।

(ग) संधिविवरणे सन्धिपदार्थः, सन्धिभेदः सन्धिकार्याणि । श्लेष्मधरा कला । सन्धिबन्धिन्यः, स्नायवः, सन्धीनां स्थूलपरिचयः ।

(घ) पेशीविवरणे पेशीनां स्वरूपं, भेदाः कार्याणि च कण्डराणां स्वरूपं, पेशीनां प्रभवनिवेशकार्यादिषु स्थूलपरिचयः ।

(ङ) रक्तसंवहनविवरणे-हृद्यन्त्रस्य स्थानं, स्वरूपं, क्रियाः । तत्सम्बन्धिन्यः सिरा धमन्यश्च । सिरा–धमनी–रसायनीनां सामान्यं विवरणम् । रक्तसंवहना क्रिया । शोणितलसीकयोः स्वरूपम्, लसीकाग्रन्थयः ।

(च) श्वासयन्त्रविवरणे स्वरयन्त्रतालुगलक्लोमफुफ्फुसानां विवरणम् । फुफ्फुसच्छदा कला, उरोगुहान्तस्था अन्ये विशेषाः, श्वासक्रियायाः प्रयोजनं, तत्सम्पादनप्रकारश्च ।

(छ) अन्नविपाकक्रियाविवरणे—मुखविवरं, जिह्वा, लालाग्रन्थयः, दन्तवेष्टौ, अधिजिह्वोपजिह्वके, काकलकम् । अन्नमार्गः आमाशयः, क्षुद्रान्त्राणि–("ग्रहणी"–पदार्थः) बृहदन्त्रम् ("उण्डुक"—पदार्थः) अन्त्रधरा महाकला (वपा) अन्नमलस्था ग्रन्थय, यकृत्, पित्ताशयः अग्न्याशयः, प्लीहा च इत्येतेषां स्थान-संस्थानकार्यादिविवरणम् । अन्नविपाकक्रियाविज्ञानम् ।

[ज] मूत्रयन्त्रादिविवरणे-वृक्कौ, मूत्रस्रोतसी, [गवीन्यौ] मूत्राशयः मूत्रप्रसेकः शिश्नं, पौरुषग्रन्थिः; शुक्रस्रोतसी, शुक्राधारौ, फलकोषौ, बीजकोषौ बीजस्रोतसी, गर्भाशयः, अपत्यपथश्चेत्येतेषां स्थानसंस्थानादिविज्ञानम् ।

[झ] समस्तिष्कनाडीविज्ञाने-मस्तिष्कं, तदावरणयः कलाः, अनुमस्तिष्कं, (पृष्ठवंश) सुषुम्नाकाण्डश्चेत्येषामाभ्यन्तरविशेषाः, नाडीनां स्वरूपभेदाः, क्रियावैशेष्यश्च । इडा-पिङ्गलयोः स्थानम्, नाडीग्रन्थयः, नाडीचक्राणि च ।

[ञ] इन्द्रियविभागे—नेत्रगुहा, नेत्रगोलके, दृष्टिनाडीनेत्रपेश्यः, अश्रुग्रन्थिः, अश्रुमार्गः, घ्राणेन्द्रियं, घ्राणमार्गः, श्रोत्रेन्द्रियं, श्रुतिमार्गः, श्रुतिपटहः, श्रुतिशम्बूकं, श्रुतिनाडी चेत्येषां स्थानसंस्थानकार्यविवरणम् । निखिलसंज्ञाचेष्टाविवेकश्च ।

[ट] वैद्यकोक्तं मर्मस्थानविज्ञानम् ।

ग्रन्थांशाः—

चरकसुश्रुतवाग्भटशारीराणामुपयोगिनोंऽशाः ।
प्रत्यक्षशारीरञ्च (कविराजगणनाथसेनकृतम्) ।

४. विषयः—द्रव्यगुणशास्त्रम् ।

(परिभाषाभेषजपरिचयादिसहितम्)

ज्ञेयांशाः—

(क) द्रव्य–गुण–रस–वीर्य–विपाक–प्रभावपदानामर्थः गुणवाचकानां मृदुतीक्ष्णा-दिपदानामर्थाः, रसवीर्यविपाकानां प्रकारा गुणाश्च ।

(ख) जलवर्गः, दुग्धवर्गः, घृतवर्गः, तैलवर्गः, मधुवर्गः, इक्षुवर्गः, मद्यवर्गः, शूकधान्यवर्गः, शमीधान्यवर्गः, मांसवर्गः; शाकवर्गः, पुष्पवर्गः, फलवर्गः, कन्दवर्गः, लवणवर्गः, कृतान्नवर्गः, आहारोपयोगिवर्गः ।

ग्रन्थांशाः—

चरकसंहिता (सूत्रस्थानम्) ४।२५।२६।२७ अध्यायाः सुश्रुतसंहितां (सूत्रस्थानम्)—३७।३८।४०।४१।४२।४५।४६ अध्यायाः ।

सुश्रुतसंहिता (चिकित्सास्थानम्)—३० अध्यायः ।

अष्टाङ्गहृदयसंहिता (सूत्रस्थानम्) ५।६।१०।१५ अध्यायः ।

(ग) अधोलिखितानां प्रसिद्धभेषजानां यथासम्भवं स्वरूपज्ञानं, गुणाः, प्रसिद्धपर्य्यायाश्च—

ज्ञेयांशाः —

औद्भिदेषु त्रिफला, त्रिमदः, चातुर्जातं, पञ्चपर्णं, दशमूलं, तृणपञ्चमूलं, अम्लवर्गः, अष्टवर्गः, पटोलं, पर्प्पटकं, तुलसीभेदाः, निर्गुण्डी, केतकी, ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी, इक्षुः, हपुषा, गोरक्षमुण्डी, इंद्रवारुणी, मदनफलं, कोपातकी, पंचवल्कलं, क्षाराष्टकं, वासा, भार्गी, लवङ्गं, यावनी, शतपुष्पाद्वयं, कुष्ठं, शृङ्गी, ताम्बूलं, कुस्तुंबुरु, शठी, तालीसपत्रं, जीरकद्वयं, देवदारु, दुरालभा, पुनर्नवा, बलाचतुष्टयं, अश्वगंधा, विदारी, वृद्धदारुकं, भल्लातकं, त्रिवृत्, एरण्डः, दन्ती, आरग्वधः, जयपालं, दारुहरिद्रा, [दार्वीरसाञ्जनं] निम्बः, गुडूची, अगुरु, कुंकुमं, चन्दनद्वयं, जटामांसी, पलाण्डुः, रसोनं, कट्फलं, कर्पूरं, उशीरं, हिंगु, अशोकं, सारिवा, सप्तपर्णं, अहिफेनं, गुञ्जा, भङ्गा, वत्सनाभादिशृङ्गिकविषजातयः, विषमुष्टिः 'धत्तूरं, गुञ्जाफलानि, अपराणि च गुरूपदिष्टानि भेषजानि ।

जान्तवेषु—कस्तूरी, गोरोचना, पूतिखटाशी, पित्तपञ्चकं, मृगशृङ्गम्, अम्बरं, मुक्ता-प्रवालशंख-शुक्त्यादीनि च ।

ग्रन्थांशाः—

भावप्रकाशान्तर्गतो निघण्टुभागः, अथवा निघण्टुशिरोमणिः, अथवा अपरः कोऽपि निघण्टुग्रन्थः ।

पार्थिवेषु—रस-महारस-साधारणरस-लोहोपलोह-रत्नोपरत्नादीनि फेनाश्म (संखिया), अभ्रकं, शिलाजतु, मृद्दारशृङ्गकं सौवीराद्यञ्जनानि च ।

ग्रथांशाः—

रसरत्नसमुच्चयस्य पूर्वार्द्धम् आयुर्वेदप्रकाशो वा ।

(घ) परिभाषायाम्—

मागधमानं, कालिङ्गमानं परीक्षार्थिनां स्वस्वदेशप्रचलितमानं शुष्कार्द्रभेदेन द्रव्यमानं, पञ्चविधकषायकल्पना, द्रव्याणां ग्रहणीयाङ्गानि, ग्रहणक्रमः, विषोपविषशोधनं, द्रव्यसंरक्षणविधिः, क्षीरपाकविधिः, यवाग्वादिसाधनं, घृततैलासवारिष्टलेहमोदकादीनां निर्माणविधयश्च ।

ग्रंथांशाः—

भावप्रकाशीया शार्ङ्गधरीया वा परिभाषा, परि-भाषाप्रदीपः, गङ्गाधरी परिभाषा, भेषजकल्पः—इत्येषामेकतमो ग्रन्थः।

ज्ञेयांशाः—

(ङ) पदार्थविद्यादिपाश्चात्यशास्त्रे स्थूलपरिचयः।✽
(Elementary knowledge in Physics and Chemistry.)

ग्रंथांशाः—

स्वगुरूपदिष्टो ग्रन्थः।

५. विषयः—कायचिकित्सा।

ज्ञेयांशाः

स्नेह-स्वेद-वमन-विरेचन-रूनिहानुवासनोत्तरवस्ति-लंधनवृंहणादिविधयः (यथा-सम्भवमभ्याससहिताः) रोगविज्ञानोक्तानां सर्वेषां रोगाणां चिकित्साविधयः। रसायन-वर्जीकरणप्रयोगाश्च। स्त्रीबालरोगचिकित्सा च।

ग्रंथांसाः—

चरक० सू०—१।२।३।९।१०।१३।१४।१५।१६।२२।२३।२९।३०। अ०।
चरक० चिकि०—१—२० यावत् ।२२।२४।२७।२८।२९। अ०
चरक० कल्पस्थानम्—(समग्रम्)
चरक० सिद्धिस्थानम्—(समग्रम्)
सुश्रुत० सूत्र०—४३।४४ अ०
सुश्रुत० चिकित्सा०—४।५।७।९।१०।११।१२।१३।१४।१९।२०।२१।२६ अध्यायमारभ्य ४० अध्यायं यावत्।
सुश्रुत० उत्तर०—२६।२९।४० अध्यायतः ५९ अ० यावत्।
वाग्भट० सूत्र०—१६ अ० तो २४ अ० यावत्।
वाग्भट० चिकित्सा०—१ अध्यायतो १२ अध्यायं यावत्।
१४ अध्यायतो २२ अध्यायं यावत्।
वाग्भट० कल्पस्थानम्—(समग्रम्)
वाग्भट० उत्तर-स्थानम्—३२।३५।४० अ०

६ विषयः—रसशास्त्रम्।

ज्ञेयांशाः—

(क) रसशोधनप्रकाराः हिंगुलाद् रसाकृष्टिः। गन्धकशोधनम्। कृष्णभस्म वा कज्जली। रसपर्प्पटी, रससिन्दूरम्, मकरध्वजः। रसे षड्गुणगन्धकजारणम्,

✽ एष विषय ऐच्छिकः (Optional.)

रसकर्पूरम् । लोह–ताम्र–नाग–वङ्ग-सुवर्ण-रजतयशदानां शोधनमारणे । अभ्रकभेदाः, अभ्रकस्य शोधनम्, निश्चन्द्रभस्मीकरणञ्च । हरितालमनःशिलाशोधनम् । रसमाणिक्यम् । मण्डूरमाक्षिकखर्पराणां परिचयः शोधनमारणे च । अञ्जन-तुत्थ-कासीसादीनां शोधनम् । साधारणपुटपाकार्थं त्रिफलादिगणः । विशिष्टपुटपाकार्थमेरण्डादिगणः किरातादिगणश्च । सर्वलोहानां निरुत्थीकरणार्थं मित्रपञ्चकादि । मुक्ता–प्रवाल–शंख–शुक्त्यादीनां शोधनमारणे । विविधप्रकारपुटानां डमरु-दोला-वालुका-पातालादीनां प्रसिद्धयन्त्राणां च परिज्ञानम् ।

ग्रंथांशाः—

रसरत्नसमुच्चयः, रसेन्द्रचिन्तामणिः, रसेन्द्रसारसंग्रहः, वैद्यचिन्तामणिः, वसवराजीयम्–*–इत्येषामन्यतमो ग्रंथः ।

(ख) सिद्धौषधकल्पनाधिकारोक्तानां प्रसिद्धौषधानां निर्माणविधय, उपयोगाश्च ।

७. विषयः—शल्यतन्त्रम् ।

ज्ञेयांशाः—

सामान्यव्रणादिज्ञानम्, सद्योव्रणानां भग्नादिसहितानां विज्ञानं चिकित्सा च । व्रणालेपनबन्धनादिविधयः । यन्त्रशस्त्रविज्ञानम् । यन्त्रशस्त्रपिचुप्लोतादीनां वह्निवाष्पादिसंयोगेन शोधनविधयः (Sterilisation Asepsis & Antisepsis) अग्रोपहरणम् । व्रणितोपासनम् । अष्टविधशस्त्रकर्मणां स्थूलतः परिज्ञानम् । शल्योद्धरणम् । जलौकावचारणम् । अग्निकर्म क्षारकर्म्म । शोणितमोक्षणम् । क्षतजवीसर्पः (Erysephelas) तदुपक्रमश्च ।

ग्रंथांशाः—

चरक० शारीर०—६।७ अ०

चरक० चिकित्सा० २२।२५।२६ अ०

सुश्रुत० सूत्र०–१ अध्यायतो–१९।२२।२३।२५।२६।२७।२८।३४।३६।३९ अ०

सुश्रुत० शारीर०—५।६।७ अ०

सुश्रुत० चिकित्सा०—१।२।३।६।८।१६।१७।१८।२२।३५ अ०

वाग्भट० सूत्र०—२५ अध्यायतो ३० अध्यायं यावत् ।

वाग्भट० शारीर०—३।४ अ०

वाग्भट० चिकित्सा० १३।१८ अ०

वाग्भट० उत्तर०—८ अध्यायतो ३० अध्यायं यावत्, गुरूपदेशाश्च

* सिद्धसांप्रदायिकोऽयं ग्रन्थ आन्ध्रभाषातात्पर्यसमेतो नागपुरवास्तव्यैः वैद्यभूषण पण्डित गोवर्धनशर्म छांगाणी महाशयैः देवनागराक्षरैर्महता प्रयत्नेन प्रकाशितः । मूल्यं पञ्चरूप्यकम् ।

८. विषयः—अगदतन्त्रम् ।

ज्ञेयांशाः—

त्रिविधविषविज्ञानम् । सविज्ञाना सर्पदष्टचिकित्सा अलर्कविषचिकित्सा च । वृश्चिकादिदष्टचिकित्सा । अहिफेनभङ्गा—गञ्जाधुस्तूर वत्सनाभ-विषनाभ-विषमुष्टि-फेनाश्म (संखिया) तालमनःशिलादिप्रसिद्धविषजुष्टानां सविज्ञानचिकित्सा । अन्नपानरक्षा ।

ग्रंथांशाः—

चरक० चिकित्सा०—२३ अ०
सुश्रुत० कल्प०—(समग्रम्)
वाग्भट० उत्तर०—३५।३६।३७।३८ अध्याया गुरूपदेशाश्च ।

९. विषयः—प्रसूतितन्त्रम् धात्रीविद्यासहितम् ।

ज्ञेयांशाः—

गर्भिणीचर्या, पुंसवनविधिः, गर्भलक्षणानि, गर्भस्य मृतामृतपरीक्षा, मूढगर्भपरिज्ञानं तच्चिकित्सा च, गर्भस्रावपातयोः चिकित्सा, सूतिकासन्निपातः, अपराऽपतने दोषाः, प्रसूतायाः प्रायोभाविनो रोगाः तच्चिकित्सा च, योनिव्यापदस्तच्चिकित्सा च ।

ग्रंथांशाः—

चरकसंहितायाः शारीरे २–३–४–५–६–७–८ अध्यायाः ।
चरकसंहितायाः चिकित्सिस्थाने ३० अध्यायः ।

सुश्रुतसंहिताया निदानस्थाने अष्टमोऽध्यायः, शारीरे २–३–४–१० अध्यायाः, चिकित्सास्थाने १५।१६ अध्यायौ, उत्तरतन्त्रे ३८ अध्यायः ।

अष्टांगहृदयस्य शारीरे १–२ अध्यायौ, उत्तरतन्त्रे ३३–३४ अध्यायौ । डॉ० म्हसकरमहाशयैः संकलितं आयुर्वेदीयं प्रसूतितंत्रम् (आयुर्वेदमहामण्डलकार्यालयतः प्रकाशितम्) (विशेषज्ञानोपपत्तये) कविराजयामिनीभूषण-संगृहीतं प्रसूतितन्त्रम् (संस्कृते) डॉ० गोखलेलिखितं सूतिकाशास्त्रांचीं मूलतत्वें इति (मराठी भाषायाम्) यद्वा० डॉ० प्रसादीलाल झा० महोदयलिखितं प्रसूतिशास्त्रम् (हिन्दीभाषायां) यद्वा डॉ० गोखलेलिखितमनूदितं च (हिन्दीभाषायां) प्रसूतितन्त्रम् ।

१० विषयः—तर्कसांख्य०—

संस्कृतभाषाज्ञानम्, न्यायसांख्यशास्त्रप्रवेशः—

ज्ञेयांशाः—

संस्कृतभाषया निबन्धलेखः । सांख्यकारिका, तर्कसंग्रहश्च ।

आयुर्वेदाचार्यपरीक्षाविषयाः ।

१. विषयः—व्यवहारायुर्वेदः ।

(Medical Jurisprudence)

ज्ञेयांशाः—

व्यवहाराधिकरणोपयोगिनां विषयाणां स्थूलपरिचयः, आशुमृतकपरीक्षाविषयकं स्थूलं ज्ञानञ्च । यथा-शवस्यास्त्रछिन्नव्रणानां मरणप्राक्परयोर्निर्णयः, शवस्य कोथक्रिया, समयनिर्णयः, कोथक्रिया कैः कारणैः त्वरैव भवति । वयोनिर्णयः कथं कार्यः । गलपाशस्य स्वकृतपरकृतनिर्णयः । दग्धस्य साध्यासाध्यत्वम् । तृतीयादिमासेषु गर्भस्य यथावद् रूपम् कीदृग् भवति । बलात्कारस्य विनिर्णयः ।

ग्रंथांशाः—

विशेषज्ञगुरूपदेशाः, डॉक्टर देवेन्द्रनाथरायकृतः आयुर्वेदव्यवहारः (वंगभाषामयो ग्रंथः) तद्विषयज्ञानाय आरोग्यसिन्धुकार्यालय (नानकवाडा कराची) द्वारा प्रकाशितं "न्यायवैद्यक और विषतन्त्र" इति हिन्दीपुस्तकं, चिकित्सकन्कानपुरतः प्रकाशितं व्यवहारायुर्वेद-पुस्तकं, वंगभाषायां प्रकाशितं महाराष्ट्रभाषायां च प्रकाशितं यत् समुपलभ्यते ।

२. विषयः—रोगविज्ञानम् ।

ज्ञेयांशाः—

वातादितत्त्वानां शरीरसमन्वयेन सूक्ष्मविवेकः । दोषादिगतिविज्ञानम् । हेतुसूत्राणि । लिङ्गसूत्राणि । अभ्यन्तरशारीरविकृतिविज्ञानसहितं वैद्यकप्रसिद्धाप्रसिद्धानां दृश्यमान-रोगाणां विज्ञानम् । अरिष्टविज्ञानम् । जीवाणुतत्त्वविज्ञाने स्थूलपरिचयः ।

ग्रन्थांशाः—

चरकसुश्रुतवाग्भटानां पूर्वोक्ता एतत्प्रकरणोक्ता अध्यायाः, गुरूपदेशाश्च ।

३. विषयः—कौमारभृत्यम् ।

ज्ञेयांशाः—

प्रसवादारभ्य शिशोः पालनविधिः, स्तन्यपरीक्षा, स्तन्यशोधनवर्धनोपायः स्तन्याभावे शिशोः पथ्यविधिः, शिशूनां रोगास्तत् प्रतीकारश्च ।

ग्रन्थांशाः—

प्रागुपदिष्टाश्चरकसुश्रुतवाग्भटाध्यायाः । विशेषज्ञानाय संस्कृते कुमारतन्त्रं हिंदी-भाषायां कौमारभृत्यं बालचिकित्सा वा द्रष्टव्या ।

४. विषयः—प्रसूतितंत्रम् ।

ज्ञेयांशाः—

गर्भिणीचर्या, पुंसवनविधिः, गर्भलक्षणानि, गर्भस्य मृतामृतपरीक्षा, मूढगर्भ-परिज्ञानम्—तच्चिकित्सा च, गर्भस्रावपातयोः चिकित्सा, सूतिकासन्निपातः, Septicaeima अपराऽपतने दोषाः, प्रसूतायाः प्रायोभाविनो रोगास्तच्चिकित्सा च, योनिव्यापदस्तच्चिकित्सा च ।

ग्रंथांशाः—

विशारदपरीक्षार्थं निर्दिष्टाश्चरकसुश्रुतवाग्भटानामध्यायाः प्रसूतितन्त्रादयो गुरूप-देशाश्च (कर्मदर्शनसहिताः) ।

५. विषयः—कायचिकित्सा ।

ज्ञेयांशाः—

रोगपरीक्षाविधिविषयकं सम्यग्ज्ञानं हृदयफुफ्फुसादिपरीक्षासहितम्, रोगविज्ञानो-क्तानां सर्वेषां रोगाणां चिकित्सासूत्राणि, प्रयोगाश्च । रसायनवाजीकरणप्रयोगेषु विशिष्टज्ञानम् ।

ग्रंथांशाः—

चरकसुश्रुतवाग्भटानामेतत्प्रकरणोक्ताः विशारद-परीक्षा-निर्दिष्टाः अध्यायाः, रसतन्त्रोक्ताः स्वदेशप्रसिद्धसंग्रहोक्ताः प्रसिद्धयोगाः, गुरूपदेशाश्च ।

६. विषयः—रसशास्त्रम् ।

ज्ञेयांशाः—

रसस्य अष्टादशसंस्काराः, गन्धकजारणप्रकारः, धातूनां नानाविधजारणमारणवि-धयस्तदुत्कर्षापकर्षविचारश्च । रसशास्त्रोक्तयन्त्रमूषादिकृत्स्नपरिभाषाज्ञानम्, अभ्रकमाक्षि-करसकहरितालानां सत्वपातनविधयः । नागार्जुनोक्तत्रिविधलौहपाकविज्ञानम् । ज्वरादि-रोगेषु सिद्धिप्रदानां प्रसिद्धरसानां प्रयोगाः ।

ग्रंथांशाः—

रसरत्नसमुच्चयः, रसेन्द्रचिन्तामणिः, आयुर्वेदप्रकाश इत्येषामन्यतमो ग्रन्थः रसहृदयतन्त्रञ्च ।

७. विषयः—शल्यतंत्रम्–शालाक्यसहितम्, नवशल्यतन्त्रज्ञानोपबृंहितम् ।

ज्ञेयांशाः—

विशारदपरीक्षानिर्दिष्टेषु विषयेषु यथाशक्यमभ्याससहितं सम्यग्ज्ञानम् । अर्बुद-विद्रधिवृद्ध्यादीनां शस्त्रचिकित्साविधयः । चेतनाहरणोपायाः [नव्यतंत्रोक्ताः] ।

ग्रन्थाशाः—

चरकसुश्रुतवाग्भटानामुपयोगिनोंऽशाः विशेषज्ञगुरूपदेशाश्च (कर्मदर्शनसहिताः)।

८. विषयः—मानसरोगाधिकारः।

ज्ञेयांशाः—

मानसरोगाणां सत्त्वपरिज्ञानम्, आयुर्वेदोक्तानि दार्शनिकतत्त्वानि, संयमादिप्रयोजनम्, मानसरोगाणां चिकित्साविधयश्च।

ग्रन्थांशाः—

चरक० सूत्र०—८।११ अ०
चरक० विमान०—८ अ०
चरक० शारीर०—१।२।३।४।५ अ०
सुश्रुत० शारीर०—१ अ०

९. विषयः—चरकसंहिता।

ज्ञेयांशाः—

सम्पूर्णा संहिता।

१०. विषयः—सुश्रुतसंहिता।

ज्ञेयांशाः—

सम्पूर्णा संहिता।

११. विषयः—अष्टांगसंग्रहः।

ज्ञेयांशाः—

सम्पूर्णा संहिता।

इति आयुर्वेदाचार्यपरीक्षाविषयाः।

२३. सम्मानोपाधिवितरणम्।

आयुर्वेदिकानां नवनवाविष्काराणां विधातारो वैद्यसमाजोपकारिणां ग्रन्थानां रचयितारो महोदयाश्च निखिलभारतवर्षीयायुर्वेदविद्यापीठेन प्रशंसापत्रैः पदकैश्चोपाधिभिर्विभूषिताः सम्मानिताः करिष्यन्ते। न तु तत्संबद्धाभिः संस्थाभिः।

२४. स्थानम्।

निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठस्य प्रधानकार्यलयः प्रायस्तत्रैव स्थास्यति यत्र स्थायिसमितेः कार्यालयो भविष्यति अथवा वैद्यसम्मेलनेन विनिश्चिते स्थाने।

२५. नियमेषु परिवर्तनम्—

(क) निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठस्य कार्यकारिण्या समित्या नियमपरिवृत्तिः

कर्तुं शक्यते । सत्यवसरे आवश्यकनियमोपनियमविज्ञप्तिश्च निर्माय प्रकाश्यते । किंतु तैर्नियमादिभिः सर्वेषामेतेषां नियमानामनुकूलैर्भाव्यम् ।

(ख) निखिलभारतवैद्यसम्मेलनस्य स्थायिसमित्या—आयुर्वेदमहामण्डलेन—उपर्युक्तनियमेषु परिवर्तयितुं प्रभूयते । सम्भावस्तदा स्वीकरिष्यते यदा परिवर्तनपक्षे न्यूनतोऽपि न्यूनमर्द्धसदस्यानां सम्मतयो भवेयुः । पत्रद्वारेणापि सम्मतयो ग्रहीष्यन्ते ।

(ग) नियमानामेषां परिवर्तनप्रस्तावाः निखिलभारतवैद्यसम्मेलनेऽप्युपस्थाप्यन्ते । किन्तूपस्थितप्रतिनिधीनां तुरीयांशहस्ताक्षरैरन्वितास्तेऽवश्यं स्वीकृता भवेयुः ।

२६. कार्यसञ्चालनम्—

(क) निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठस्य कार्य–निर्वाहपत्रव्यवहारादिषु साधारणतः संस्कृतं हिंदी भाषा वा व्यवहरिष्यते ।

(ख) निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठं स्वकीयप्रबन्धादिषु कार्येषु स्वतन्त्रमेव । केवलं विशेषावश्यकीयकार्येषु निखिलभारत–वैद्यसम्मेलनस्य स्थायिसमित्याः परामर्शाभिलाषि स्वावश्यककार्याणि वैद्यसम्मेलनकार्यालये विज्ञापयिष्यति ।

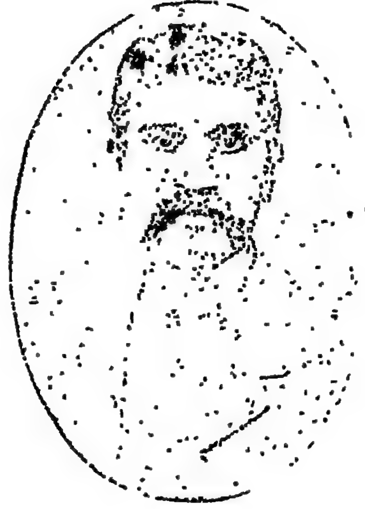
त्र्यम्बकशास्त्री आपटे,
भिषगाचार्यः ।
विद्यापीठमन्त्री

वैद्यपञ्चानन कृष्णशास्त्री कवडे,
प्रधानमन्त्री.
कार्यालयः पुण्यपत्तनम् २.

वैद्यसम्मेलन के सभापतियों की सूची

संख्या	नाम	सम्मेलन-स्थान	सन्
(१)	श्री कुँवर सरयूप्रसाद सिंह बहादुर बहराँव इस्टेट (इलाहाबाद)	नासिक	१९०७
(२)	आयुर्वेदनिधि श्री पण्डित गङ्गाधर भट्ट राजवैद्य जयपुर	पनवेल	१९०८
(३)	महामहोपाध्याय कविराज श्रीगणनाथ सेन सरस्वती विद्यासागर एम. ए. एल्. एम. एस्. कलकत्ता	इलाहाबाद	१९११
(४)	वैद्यरत्न कविराज योगेन्द्रनाथ सेन एम. ए. विद्याभूषण, कलकत्ता	कानपुर	१९१२
(५)	लेफ्टिनेंट कर्नल के. आर. कीर्तिकर आई. एम. एस्. बंबई	मथुरा	१९१३
(६)	आयुर्वेद मार्तण्ड श्री पं० लक्ष्मीराम स्वामी आयुर्वेदाचार्य जयपुर,	कलकत्ता	१९१४
(७)	कविराज श्रीयामिनीभूषण राय एम. ए. एम. बी. कलकत्ता	मद्रास	१९१५
(८)	हिज हाइनेस महाराज श्रीराम वर्मा कोचीन	पूना	१९१६
(९)	वैद्यरत्न श्री पण्डित डी. गोपालाचार्लु मद्रास	लाहौर	१९१८
(१०)	कविराज श्रीउमाचरण भट्टाचार्य बनारस	देहली	१९१९
(११)	महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेन सरस्वती विद्यासागर एम. ए. एल्. एम. एस्. कलकत्ता	इन्दौर	१९२०
(१२)	कविराज हाराणचन्द्र चक्रवर्ति राजवैद्य राजशाही (बंगाल)	बंबई	१९२१
(१३)	श्री पण्डित कृष्णशास्त्री कवडे बी. ए. पूना	राजमहेन्द्री	१९२२

संख्या	नाम	सम्मेलन–स्थान	सन्
(१४)	वैद्यरत्न कविराज योगेन्द्रनाथसेन एम. ए. विद्याभूषण कलकत्ता	कोलम्बो (सिलोन)	१९२३
(१५)	आयुर्वेदमार्तण्ड वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य बंबई	हरद्वार	१९२५
(१६)	महामना श्री पण्डित मदनमोहन मालवीय, वाइस चांसलर बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी	जयपुर	१९२६
(१७)	आयुर्वेद पञ्चानन श्री पं० जगन्नाथ-प्रसादजी शुक्ल प्रयाग	पटना	१९२७
(१८)	श्री पण्डित कृष्णशास्त्री देवधर नासिक	फतेहपुर (शेखावाटी)	१९२८
(१९)	केप्टन जी. श्रीनिवास मूर्ति बी. ए. बी. एल्. एम. बी. एण्ड. सी. एम. वैद्यरत्न मद्रास	नासिक	१९२९
(२०)	वैद्यरत्न श्री पण्डित रामप्रसाद शर्मा राजवैद्य, पटियाला	करांची	१९३०
(२१)	महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन सरस्वती एम. ए. एल्. एम्. एस्. विद्यासागर, कलकत्ता	मैसोर	१९३१
(२२)	आयुर्वेदमार्तण्ड वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य. बंबई	ग्वालियर	१९३२
(२३)	डाक्टर लक्ष्मीपति बी. ए. एम. बी, एण्ड. सी. एम. मद्रास	बीकानेर	१९३३
(२४)	भिषङ्मणि कविराज प्रतापसिंह रसायनाचार्य, सुपरिंटेंडेंट आयुर्वेदिक फार्मेसी हिंदू युनिवर्सिटी, बनारस	शिकारपुर (सिंध)	१९३:



श्रीमान् कुंवर सरजूप्रसाद नारायणसिंहजी बहादुर बरांव स्टेट इलाहाबाद ।
अध्यक्ष-नि. भा. व. १ वैद्यसंमेलन नासिक (सन १९०७)।

१

श्री कुँवर सरयूप्रसाद सिंह बहादुर

बहराँव इस्टेट (इलाहाबाद)

सभापति निखिल भारतवर्षीय

प्रथम वैद्य सम्मेलन

नासिक

सन् १६०७ ई०

खेद है कि आपका चित्र, चरित्र और भाषण अप्राप्य है।



श्रीमान् स्व. वा. राजवैद्य पं. गङ्गाधर भट्ट जयपुर।
अध्यक्ष, नि. भा. व. २ वैद्यसंमेलन पनवेल (सन १९०८)।
अध्यापक, आयुर्वेदविभाग महाराजा संस्कृत कालेज जयपुर।



❀ श्रीहरिः ❀

आयुर्वेदनिधीनां निखिलभारतीय द्वितीय वैद्यसंमेलनाधिवेशनाध्यक्षाणां
स्वर्गीय-राजवैद्य-कविवर श्रीगङ्गाधरभट्ट शास्त्रिणां
संक्षिप्तमेवोपलब्धं जीवन-चरित्रम् ।



आयुर्वेदमार्तण्ड श्रीलक्ष्मीरामस्वामिमहाभागानां जयपुरवास्तव्यानां प्रधानविद्यागुरोः श्रीश्रीकृष्णरामभट्टमहाभागस्यैककः पुत्रः पवित्रचरित्रचणः प्रशंसनीयसद्गुणगणः समधिगतसर्वजनानुरागः श्रीगङ्गाधरभट्टमहाभागः समभूत् । सोऽयं महाभागः १९०८ तमे ईसवीयवत्सरे पनवेलनगरे निखिलभारतीय वैद्यसंमेलनस्य सभापति पदमलमकरोत् ।

महाभागोऽयं द्वात्रिंशदुत्तरैकोनविंशतिशततमे विक्रमवत्सरे माघकृष्णाष्टम्यां निज-जननीजनकसुखखनिं जनिं लेभे । शैशव एवाऽयमध्ययने प्रवृत्तः स्वपितृचरणेभ्य आयुर्वेदं तेभ्यस्तेभ्यो विद्वत्तल्लजेभ्यश्च न्यायसाहित्यव्याकृत्यादिकमधिजगे, लेभे च निखिलेष्वप्येषु विषयेषु विपश्चिदपश्चिमचमत्कारिणीमभिस्पृहणीयपाण्डित्यसंपत्तिं व्युत्पत्तिम् । कवित्वशक्तिरस्य सहृदयहृदयहारिण्यासीत् । चिकित्सायामयमतिनिपुणोऽपि समये-समये भयङ्करव्याधिविनिवर्त्तने प्रत्यक्षीकृतप्रभावोऽपि निरपेक्षतया निश्चिन्ततया च नासिद्धशतत्परः । स्वभावेनायं सर्वसुहृत् स्पष्टवक्ता शुद्धहृदयश्चासीत् शिवभक्त-शिरोमणिरयं भङ्गाभक्तो बभूवाभियोगप्रियश्च । शास्त्रार्थेष्वस्य दुर्धर्षता जयपुरीय-पण्डितसमाजेन बहुशो न न साक्षात्कृता । रामानुजसंप्रदायपरमाचार्यैः प्रतिवादि-भयङ्करमठाधीश्वरैः श्रीमदनन्ताचार्यस्वामिभिः सहास्य जयपुरे शास्त्रार्थसंरम्भारम्भो बभूव विदुषामपि विस्मयोत्पादने हेतुः । अखिलभारतवर्षीयायुर्वेदसंमेलनेनास्य वैदुष्येण संतुष्यास्मै 'आयुर्वेदविद्यानिधि' रित्युपाधिरर्पितः । स्वपितृचरणप्रारब्धस्य कच्छवंश-महाकाव्यस्य शेषोंशः समपूर्यतैनेन । एतद्विरचितेषु परश्शतेषु मुक्तकपद्येषु कानिचन संप्रत्यपि सन्ति सुधीजनकण्ठभूषणायमानानि । तेषु द्वित्राणि पद्यानीहोद्दिधीर्षामो येनैतदीयं काव्यकौशलं सहृदयैः प्रत्यक्षीक्रियेत ।

तत्र प्रथमतो यमकचमत्कृतिदर्शनाय जयपुरराजगुरोर्गालवाश्रमाचार्यस्य बहुविद्या-निधेर्मल्लविद्यायामप्यप्रतिमल्लस्य श्रीहरिवल्लभमहाभागस्य वर्णनमाकर्ण्यताम्—

मल्लविद्याविदा येन दायेन कृतकीर्तिना ।
पात्यन्ते बद्धकौपिनाः कौ पीना मल्लतल्लजाः ॥

अथार्थत्रयनिदर्शनपरः श्लेषोऽप्यवलोक्यताम्—

जनताभविकैकभाजनं कृतिनं चन्द्रमसं तथाऽऽगमम् ।
स्वपदस्य रसेन निर्भरं सकलङ्कोऽपि जनो न पश्यति ॥

भूतपूर्वजयपुरपुरन्दरस्य तदानीं वर्त्तमानस्य श्रीमाधवसिंहमहाराजस्य प्रत्यन्तदेशे परोत्तं धर्मरक्षणमुपवर्णयत् प्रसादगुणपूर्णमप्येकं पद्यं निशम्यताम्—

दुष्काले क्षुभितां प्रजामवितवान्, प्रत्यन्तदेशं व्रजन्
धर्मं यश्च ररक्ष, यस्य यशसां पूरेण पूर्णं जगत् ।
श्रीमान् धर्मधुरन्धरः स च धराधीशाग्रणीर्माधवः
कल्पान्तं (?) कुलदेवतावदुदयाद्रेः शृङ्गमारोहतु ॥

सोऽयं कविकुलरत्नं विद्वदग्रणीर्वैद्यविद्याविशारदश्चाल्पल्प एव वयसि चतुःसप्तत्युत्तरैकोनविंशे विक्रमवत्सरे कैलासवाससुखमनुभवितुं त्वरितो बभूवेति निवेदयतां नः शतधा विदीर्यते हृदयम् ।

संप्रत्यस्य तनुजन्मा श्रीनरहरिशास्त्री जयपुरराजकीयसंस्कृतपाठशालायामायुर्वेदमध्यापयति संततिसुखं चानुभवतीति किमतिविस्तरेण । ❀



❀ अस्य महानुभावस्य भाषणमप्राप्यमस्ति ।



श्रीमान् महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन शर्मा,
प्राणाचार्य, विद्यासागर, सरस्वती, वैद्यावतंस एम्. ए. एल्. एम्. एस् कलकत्ता।
अध्यक्ष, नि. भा. व १ वैद्य संमेलन प्रयाग, ११ इन्दौर
(१९२१) और २१ मायसोर (१९३०)।
प्रिन्सिपल, श्रीविश्वनाथआयुर्वेदमहाविद्यालय, कलकत्ता।



श्रीधन्वन्तरये नमः।

निखिलभारतीय वैद्य-सम्मेलनके तृतीय अधिवेशन प्रयागके सभापति,
कलकत्तेके स्वनाम धन्य चिकित्सक

कविराज

श्रीयुत गणनाथ सेन एम्० ए० एल्० एम्० एस्०
विद्यानिधि, कविभूषण महाशयकी

वक्तृता।

पूर्वाभास।

हमारे परम माननीय स्ववैद्य सुरगुरु-समान सभ्य महोदय गण,

इस प्रयागकी पुण्य भूमिमें भारतवर्षके नाना स्थानोंसे आये हुए आयुर्वेदोत्साही-चिकित्सक और पण्डित माहाशयोंके इस महासम्मेलनमें मेरे समान साधारण मनुष्य-का सभापतिके आसनपर बैठना बहुत ही धृष्टता का कार्य है; क्योंकि मुझसे अधिक विद्वान्, अधिक बुद्धिमान् एवं वयोवृद्ध अनेक महोदय यहाँ उपस्थित हैं। उनके सामने यथार्थ ही मैं अतितुच्छ हूँ। तथापि स्वागत कारिणी समितिके अनुरोध तथा आप महानुभावोंकी कृपादृष्टिका अवलम्बन कर अतिविनीत भावसे मैं इस पदको ग्रहण करता हूँ; और आशा करता हूँ कि, मेरे इस अपराधको आप लोग क्षमा करेंगे। मेरे विचारमें सभापति होना और सभाका दास होना दोनों एक ही बात है। सुतरां इसी विचारको हृदय में रखकर आप लोगोंकी सेवा करनेका मैं साहस करता हूँ।

आज बड़े ही आनन्दका दिन है कि समग्र भारतकी प्राचीन विद्याओंके उद्धारक महामान्य भारत सम्राटके अभिषेकोत्सवके समीप समयमें लुप्तप्राय आयुर्वेदके गौरव-की रक्षा करनेके लिये आप लोग यहाँ सम्मिलित हुए हैं।

कहनेसे हृदय विदीर्ण होता है कि, आज इस आनन्द सम्मिलन-दिनमें आयुर्वेदके गौरवरवि समग्र भारत प्रिय और श्रद्धेय चिकित्सक चूड़ामणि हमारे जेष्ठ भ्रातृ-सदृश महामहोपाध्याय कविराज विजयरत्न सेन महाशय हम लोगोंके मध्यमें नही हैं। कविराजजी अपने पुण्य कार्य्योंसे अवश्यही दिव्यलोकको प्राप्त हुए हैं। किन्तु उनके

देहान्तसे आयुर्वेदको जो हानि पहुँची है सो असीम और अकथनीय है। जो कुछ हो, स्वर्गस्थ कविराज जीके हृदयमें शेष मुहूर्त तक कलकत्तेकी नवीन स्थापित आयुर्वेद सभाकी उन्नतिके लिये जैसा उत्साह जाग रहा था उससे हमें आशा है कि, हमारे इस महासम्मिलनके ऊपर उनका शुभाशीर्वाद निरन्तरही वर्षित होता रहेगा।

आयुर्वेदसे पृथ्वीका उपकार।

अति प्राचीन कालसे आयुर्वेदके गौरव और प्रभावके द्वाराही साक्षात् या परोक्ष भावसे समग्र पृथ्वीकी रक्षा होती आरही है। चाहे बहुत हों अथवा अल्पज्ञ हों पर आयुर्वेद चिकित्सक ही इस विद्याके प्रभावसे आजभी भारतवर्षके प्रतिनगर, प्रतिग्राम, प्रतिमहल्लोंमें प्राचीन महर्षियोंके कणामात्र ज्ञानका आश्रय लेकर असंख्य प्राणियोंको प्राणदान करते हैं। यद्यपि ज्ञानकणा गर्वित केवल पाश्चात्य विद्यामात्रसे अन्धीभूत कोई कोई मनुष्य वैद्योंका उपहास करके उन्हें "सूंठ मिरचैया वैद्य" (Quacks) कहते हैं। किन्तु उनके कहनेसे क्या आयुर्वेदका महत्त्व कम हो सकता है? कभी नहीं। यद्यपि आयुर्वेद कलामात्र अभी नहीं है, तथापि साक्षात् प्राणदान करके दृढ़ प्रमाणोंसे आयुर्वेदकी प्रामाणिकता दिन पर दिन बुद्धिमानोंके चित्तपर अधिकतर प्रतिभासित होती जा रही है। आयुर्वेद प्रत्यक्ष शास्त्र है; इसका फल प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे प्रमाणित होता है। कविने यथार्थ ही कहा है—"अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रं, न तेषु किञ्चिद् भुवि दृष्टमस्ति। चिकित्सित ज्योतिष तन्त्रवादाः पदे पदे प्रत्यय मावहन्ति॥" बात भी ऐसी ही है। काव्यके मधुर रससे प्यास नहीं जाती, व्याकरणकी धातु शुद्धिसे शरीरकी धातु शुद्धि नहीं होती, उसी भाँति आतुरके सामने सूखे ब्रह्मवादसे उसका दुःख दूर नहीं होता, आधिव्याधियोंके दूर करनेमें यदि कोई शास्त्र समर्थ है तो केवल चिकित्सा शास्त्र ही है। और चिकित्सा शास्त्रोंके बीचमें आयुर्वेद ही मणिके सदृश चमकता हुआ अब भी सबसे अधिक संख्यक रोगियोंकी आधिव्याधिको दूर करता है।

आयुर्वेदसे भारतकी रक्षा।

समस्त भारतकी जन संख्याके हिसाबसे आज भी भिन्न मतावलम्बी चिकित्सकोंकी संख्या बहुत अल्प है। यदि समग्र भारतवर्षसे आयुर्वेदीय चिकित्सा विलुप्त हो जाय तो यह कभी सम्भव नहीं है कि इन थोड़ेसे भिन्न मतावलम्बी चिकित्सकोंसे भारतकी प्रजाओंकी प्राणरक्षा हो सके। अतएव यह तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि अभी तक भारतकी अधिकांश प्रजा महर्षियोंके ज्ञान और तपके अमृतमय फलस्वरूप इस आयुर्वेदकी कृपासे रक्षित हो रही है। परन्तु हम लोगोंको सोचना चाहिये कि, आयुर्वेदकी यथार्थ महिमा और उसके गौरवकी रक्षा करनेको हम लोग समर्थ हैं वा

नहीं ? यह विचारणीय बात है कि, आयुर्वेदकी कणामात्र महिमासे हम लोग भारतकी अधिकांश प्रजाको प्राणदान करनेमें समर्थ तो हैं ही और अब यदि उसकी पूर्व महिमाकी प्रतिष्ठा फिर हो जाय तो हम न केवल भारतका ही उपकार करेंगे अपि च समस्त पृथ्वी मण्डलका उपकार करनेमें समर्थ हो सकेंगे।

आयुर्वेदकी प्राचीन महिमा।

वर्तमान समयमें आयुर्वेदकी प्राचीन महिमाका स्मरण करनेसे भी हम लोगोंका बहुत कुछ उपकार है, परन्तु दुःख और लज्जाका विषय यह है कि हम लोग हाथ पर हाथ धरे एक दूसरेका मुँह देखते हुए उन प्राचीन महर्षियोंकी अयोग्य सन्तान बन रहे हैं। सामान्य रीतिसे वनमें वास करके स्वच्छन्दजात तृणगुल्मादिसे हमारे पूर्व पुरुष जिन जिन असाध्य वस्तुओंका साधन करके तालपत्रों एवं भूर्जपत्रों पर लिखित पोथियोंसे जितना लाभ संसारको पहुँचाते थे और दुर्ज्ञेय तत्त्वोंकी मीमांसा बातकी बातमें कर लेते थे, उतना सुन्दर सुसज्जित आलमारियोंमें भरी हुई शीशियोंकी बहुमूल्य औषधियोंसे और स्टेथसकोप (Stethescope) माइक्रसकोप (Microscope) आदि असंख्य वैज्ञानिक यन्त्रोंसे भी संसारका वह उपकार और तत्त्वोंकी वैसी मीमांसा करनेमें हम समर्थ नहीं होते। यह हमारी अत्युक्ति नहीं है, क्योंकि अरिष्ट लक्षणादिके जो कुछ अद्भुत ज्ञान और विधि अब तक भी आयुर्वेदमें पाये जाते हैं, उनके फलको देखकर समग्र जगत् विस्मित होता है।

पाश्चात्य विद्वानोंकी सम्मति।

आयुर्वेदकी उज्ज्वल प्रभाकी कणामात्रको देखकर जगत्के लोगोंके चित्तमें कैसा विस्मय उत्पन्न होता है, उसका थोड़ा परिचय अपने वक्तव्यकी अवतरणिकामें देता हूँ। भागलपुर डिविजनके भूतपूर्व कमिश्नर (प्रसिद्ध राजपुरुष) श्रीयुत स्काइन साहबने लिखा है कि, "It is wonderful to note the comparatively advanced views held by the Sages of your country and how completely they had anticipated discoveries which we mondours flatter ourselves are due to the enlightenment of this age." अर्थात् "यह बहुत ही आश्चर्यका विषय है कि भारतके महर्षि लोग अनेक शताब्दियोंके पूर्व ही जिन विषयोंका पूर्णज्ञान प्राप्त कर चुके थे, वर्त्तमान समयमें पाश्चात्य देशवासी पण्डित लोग उन्हीं विषयोंमें उतना ही ज्ञान प्राप्त करके अपनेको नवीन ज्ञानके आविष्कर्त्ता समझ कर घमण्ड करते हैं।"

डाक्टरीमें आयुर्वेदीय औषधियोंका बहुल-प्रचार।

फिलाडेलफिया—अमेरिकाके सुप्रसिद्ध बहुदर्शी डाक्टर जार्ज क्लर्क एम. ए. एम. डी. महाशय ने लिखा है।

"As I go over each fasciculus I arrive at one conclusion and that is this :—if the Physicians of ths present day would drop from the Pharmacopia all the Modern Drugs and Chemicals, and treat their petients according to the method of Charaka, there would be less work for the undertakers, and fewer chronic invalids in the world." अर्थात् "मैं चरकके प्रत्येक अध्यायको पढ़ता हुआ एक ही सिद्धान्तमें उपनीत होता हूँ। वह सिद्धान्त यह है कि यदि वर्त्तमान समयके चिकित्सकगण समग्र फर्माकोपिया तथा नवाविष्कृत औषधियोंका परित्याग कर केवल चरकोक्त चिकित्सा प्रणालीका ही अवलम्बन करें तो अकाल-मृत्युकी संख्या बहुत घट जायगी और अनेक प्रकारके रोगोंसे पीडित जीर्ण रोगी बहुत कम देखनेमें आवेंगे।" इसी प्रकार आयुर्वेदके विषयमें डाक्टर हर्नलि, डाक्टर वाइज् आदि गुणग्राही पाश्चात्य महानुभावोंके मत बहुत मिलते हैं, नमूनेके तौर पर केवल दो ही मत मैंने उद्धृत किये हैं। फिर यह भी देखिये कि वृटिश-फर्म्माकोपियाके परिशिष्टमें वर्त्तमान समय हमारे आयुर्वेद हीसे यवतिक्ताक (कालमेघ वंग०) सप्तपर्ण, अर्कमूल, वासा (अरूसा) विडङ्ग, विल्व, दारुहरिद्रा, धत्तूर, हरीतकी, गन्धतृण कुटकी, गुडूची (गिलोय) त्रिवृत (निशोत), अनन्तमूल आदि कितनी ही औषधी गृहीत हुई हैं। मकरध्वजकी महिमा भी ऐसी है कि, इस समय कलकत्ता मेडिकल कालेजके भूतपूर्व प्रिन्सिपल और डाइरेक्टर जनरल (अब मेडिकल सर्विस) डॉक्टरोंके सम्राट स्वरूप स्वयं डाक्टर ल्युकिस साहब मकरध्वज प्रयोग करते हैं। मैं इस बातका साक्षी हूँ। क्योंकि श्रद्धास्पद डाक्टर ल्युकिस डाक्टरीमें मेरे अध्यापक थे। इसी तरह मधुमेहमें शिलाजतुका प्रयोग करनेका उपदेश भी डाक्टर ल्युकिस साहबने मेडिकल कालिजके "लेक्चर रूम" में दिया था। इस प्रकार आयुर्वेदकी महिमा केवल अपने प्रभावसे दिनोंदिन समुद्र पार तक उद्भासित होरही है, और हमलोग जैसे तैसे पेट पोषनेके अतिरिक्त आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये कुछ भी प्रयत्न नहीं करते। इसी लिये हमने यह बात कही है कि, यथार्थही आयुर्वेदाचार्य्य महर्षियोंके हमलोग सर्वथा अयोग्य उत्तराधिकारी हैं। परन्तु बहुतही हर्षकी बात है कि इस समय आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये भारतके सब प्रान्तोंमें अपूर्व जागृति दिखाई देरही है और आयुर्वेदीय चिकित्सकोंकी अपने शास्त्र पर श्रद्धा एक नयी रीतिसे बढ़ती जारही है। विदेशीय विद्वानोंकी आयुर्वेद पर श्रद्धा देख कर आयुर्वेदीय चिकित्सा पर भारतवासी अब स्वयं विशेष प्रेम करने लगे हैं। हमारी समझमें ईश्वरका यह विशेष अनुग्रह और प्रणोदना है, इसीसे देश देश और प्रान्त प्रान्तमें आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये सभा समितियों द्वारा प्रयत्न हो रहा है। आजका यह "वैद्य-सम्मेलन" भी इसी जागृतिका—इसी प्रयत्नका—फल है।

भारतवर्षीय ज्ञानका प्रधानत्व और सब विज्ञानोंका पितृ स्वरूपत्व।

हम भारतवासी हैं, हमारे लिये "प्राचीन भारत" इन शब्दोंमें क्याही अपूर्व आह्लादिनी शक्ति भरी हुई है कि, इनके उच्चारण मात्रसे ही हमारे चित्तमें प्राचीन कालकी कितनीही अपूर्व स्मृतियाँ उद्भासितहो आती हैं। इतिहासकी सृष्टिके भी घोर अन्धकारमें हमारी दृष्टि जहाँ तक पहुँचती है, वहाँ भारतके छिन्न भिन्न विध्वस्त पूर्व गौरवके साची स्वरूप कितने ही मणि माणिक्य अवभी प्रकाशमान होरहे हैं। केवल हमारीही नहीं प्रत्युत पृथ्वीके सर्व देशवासियोंकी दृष्टिमें दिनपर दिन भारतका गौरव प्रतिभात होता जारहा है। कोई दिन ऐसा था कि, ग्रीकके अधिवासियोंको पाश्चात्य पण्डितोंने जगद्गुरु और आदि सभ्य होनेका गौरव दिया था; क्याही आनन्दका विषय है कि आज उन मिसर और ग्रीक देशवासियोके भी यथार्थ गुरु ये वृद्ध भारतवासी ही थे, इस वातको पाश्चात्य पण्डितगण भी भलीभाँति मानने लगें हैं। वड़े वड़े भाषातत्त्व विद् स्वीकार कर रहे हैं कि प्राचीन और अर्वाचीन समस्त भाषाओंकी मूल भाषा देववाणी (संस्कृत) ही है—इस देववाणीके सदृश और सुव्यवस्थित तथा विज्ञानसम्मत भाषा दूसरी नहीं है। दर्शन शास्त्रोंमें हमारे भारतवासियोंके चरम दर्शन उत्तर मीमांसाकी मीमांसाको आज समस्त पृथ्वी मण्डल श्रेष्ठ ज्ञान कह कर मुक्त कण्ठसे स्वीकार करता है। चिकित्साशास्त्रमें भारतीय चिकित्साविज्ञान सम्पूर्ण चिकित्सा विज्ञानोंका आदि मूल वा पितृ स्वरूप है, यह भी अव ऐतिहासिक लोग स्वीकार कर रहे हैं। परन्तु भारतीय चिकित्सा-विद्या (आयुर्वेद) के मूल सूत्रोंसे किस प्रकार अन्य चिकित्सा विज्ञानोंकी सृष्टि हुई है, और अब तक आयुर्वेदके कितने ही मूल सूत्रोंके न जाननेसे दूसरे चिकित्सा विज्ञानोंमें जो कितनी ही त्रुटियाँ हैं, इन वातों की गम्भीर गवेषणा ऐतिहासिक लोगोंको नहीं प्रत्युत वैद्य लोगोंको ही करनी परमावश्यक है।

आयुर्वेद शब्दका अर्थ और भेदक लक्षण।

आयुर्वेद शब्दका अर्थ चिकित्सा शास्त्र है, इसे केवल भारतका ही चिकित्सा शास्त्र नहीं अपिच सम्पूर्ण पृथ्वीका चिकित्सा शास्त्र कहना चाहिये; क्योंकि इस शास्त्र के अनुसार चिकित्सा करनेसे मनुष्य केवल भारतवासियोंको ही नहीं वरञ्च समग्र जगत्को भी वहुत ही लाभ पहुँचा सकता है। संक्षेपतः आयुर्वेदका लक्षण इस प्रकार है—

"आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा।
विद्यते यत्र विद्वद्भिरायुर्वेदः स उच्यते॥"

अर्थात् आयुका हित और अहित रोगोंके कारण और चिकित्सा, यह सब विषय जिस शास्त्रमें निर्णीत हैं उसी शास्त्रका नाम आयुर्वेद है। इतना ही पर्य्याप्त नहीं क्योंकि ये

विषय तो पृथ्वीके सभी चिकित्सा शास्त्रोंमें वर्णित हैं। इसलिये आयुर्वेदका भेदक लक्षण (समानासमान जातीय व्यावर्तक लक्षण) यह भी और कहा गया है:—

"अनेन पुरुषो यस्मात् आयुर्विन्दति वेत्ति च।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेदः प्रकीर्तितः॥"

अर्थात् इस शास्त्रसे मनुष्यदीर्घ आयु लाभ करता है, और आयुको जानता है, इसीलिये इसका नाम आयुर्वेद है। इसका अभिप्राय यह है कि, पृथ्वीमें आयुर्वेदके अतिरिक्त जितने चिकित्सा शास्त्र हैं, उनमें दीर्घजीवन लाभके अपूर्व उपाय रसायनादि और आयु जाननेके उपाय अरिष्ट लक्षणादि कहीं भी उपदिष्ट नहीं हैं, इससे सूक्ष्मदर्शियोंके चित्तमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि आयुर्वेदका प्रतिपाद्य विषय सब चिकित्सा शास्त्रोंसे अधिक और गौरवान्वित है। आयुर्वेदीय चिकित्साका प्रयोजन केवल रोगविनाश ही नहीं है, प्रत्युत निरोग शरीरमें दीर्घजीवन लाभ करना आयुर्वेद-कल्पतरुका अमृतमय फल है। देखिये, अब भी ऋतुहरीतकी, च्यवनप्राश, अमृत भल्लातक, मकरध्वज, वसन्त कुसुमाकर आदि महौषधियोंके प्रभावसे वृद्धावस्थामें यौवन धारण करके कितने ही मनुष्य आयुर्वेदके इस गौरवके साक्षी हो गये हैं, और अरिष्ट लक्षण देखकर अब भी कितने ही वैद्य रोगीकी अवश्य मृत्यु बतलाकर भिन्नमतावलम्बी चिकित्सकोंको विस्मित करते हैं।

आयुर्वेदकी विशालता।

आयुर्वेद शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ और भी विशाल है। आयुर्वेद केवल मनुष्योंका ही चिकित्सा शास्त्र है ऐसा नहीं—तरुलता, पशु-पक्षी प्रभृतिकी चिकित्सा भी आयुर्वेदकी अङ्गीभूत है। इसलिये वृक्षायुर्वेद, गजायुर्वेद, अश्वायुर्वेद आदि आयुर्वेदके नाना अङ्ग कहे गये हैं। यद्यपि हमारे भारतवासियोंकी अधन्यता और दुर्भाग्यसे उन अङ्गोंके बड़े बड़े ग्रन्थ विलुप्त होगये तथापि अग्निपुराण, शालिहोत्र आदि ग्रन्थोंमें उन अङ्गोंका अच्छा परिचय मिलता है। आयुर्वेदके आचार्य्य लोग तरुलतादिको स्थावर प्राणी कहते हैं, कैसी आनन्दकी बात है कि, आज हमारे भारतवासी प्रसिद्धनामा वैज्ञानिक डाक्टर श्रीजगदीशचन्द्र वसु महाशयने अपनी वैज्ञानिक परीक्षाओंके द्वारा तरुलतादिको स्थावर प्राणी सर्वथा सिद्ध करके महर्षियोंके विज्ञानकी महिमा दिखलायी है। परन्तु वर्तमान समयमें आयुर्वेद केवल मनुष्योंका ही चिकित्सा शास्त्र इस संकीर्ण अर्थमें प्रसिद्ध है, और इसी अर्थको आज मैं अपने वक्तव्यमें कह रहा हूँ।

आयुर्वेदकी उत्पत्ति कब हुई थी इस प्रश्नका उत्तर सुश्रुतमें इस प्रकार मिलता है:—

आयुर्वेदका अनादित्व।

"इहखल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रञ्च कृतवान् स्वयम्भूः" इत्यादि। अर्थात् "आयुर्वेद नामक अथर्ववेदके

इस लक्षश्लोकमय उपाङ्गको स्वयम्भू ब्रह्माने प्रजा सृष्टिके प्रथमही बनाया था।" वस्तुतः वेदको यदि अनादि और नित्य स्वीकार किया जाय तो आयुर्वेदको भी नित्य और अनादि अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। महर्षि चरक भी कहते हैं कि—"भिषजा-पृष्टेनैव चतुर्णां वेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या।" (च. चि. ३० अ.) भगवान् वेदव्यास अपने "चरण व्यूह" नामक ग्रन्थमें कहते हैं—

"सर्व्वेषामेव वेदानामुपवेदा भवन्ति ऋग्वेदस्य आयुर्व्वेद उपवेदः, यजुर्वेदस्य धनुर्वेदः, सामवेदस्य गान्धर्ववेदः, अथर्ववेदस्य शस्त्रशास्त्राणि।" इन बातोंमें यद्यपि जरा कुछ विरोध है तथापिसिद्धान्त यह है कि, चारों वेदोंमें ही आयुर्वेदके विषय सूक्ष्मरूपसे पाये जाते हैं। अतएव ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें स्पष्ट लिखा है—" ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वावेदान्प्रजापतिः। विचिन्त्य तेषामर्थं वै आयुर्व्वेदं चकार सः।" सभ्य महाशयोंकी धैर्य्य च्युतिके भयसे वेदके अधिक मन्त्र यहाँ नहीं कहेंगे तथापि दिग्दर्शन मात्रके लिये कई एक मन्त्र सुनाना उचित जान पड़ता है।

वेदोंमें आयुर्वेद।

"यद यातं दिवोदासाय वर्त्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता।
रेव दुवाह सचनो रथोवांवृपभश्च शिंशुमारश्च युक्ता॥" (ऋ.मं.१सू.१६)

इस मन्त्रमें आयुर्वेदके आचार्य्य दिवोदास और भरद्वाजके नाम अश्विनी कुमारोंके साथ निर्दिष्ट हैं और इसी मन्त्रसे यह भी प्रतिपन्न होता है कि ऋग्वेदके इस मन्त्रके प्रादुर्भावके समय दिवोदास और भरद्वाज सुपरिचित थे। (यद्यपि इससे यह शङ्का हो सकती है कि, तब ऋग्वेद अनादि कैसे? इस प्रश्नकी मीमांसा करनेका यह स्थल नहीं है, क्योंकि वेदमें वशिष्ठ और विश्वामित्रादिके भी नाम मिलते हैं तथापि यहाँ हमें आयुर्वेदकी प्राचीनता प्रतिपन्न करना ही प्रयोजन है) और देखिये

"युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं।" (ऋ. मं. ७ सू. ७७)

अश्विनी कुमारोंने जराजीर्ण च्यवन ऋषिको पुनर्यौवन प्रदान किया था। यह कथा वर्त्तमान आयुर्वेदमें भी प्रसिद्ध है।

"सद्योजङ्घा मायसीं विश्पलायै
धने हितं सर्त्त वै प्रत्य धत्ताम्।"

अर्थात् खेल नामक राजाके संग्राममें विश्पला नाम्नी एक स्त्रीका पैर कट कर गिर गया था और अश्विनीकुमारोंने उसको कृत्रिम (बनावटी) पैर चढ़ाकर ज्योंका त्यों कर दिया था। "यस्यौषधिः प्रसरताङ्गमङ्ग परुस्परु" (शु. य. १२ अ.) इस मंत्रमें शरीरके एक अंगमें औषध प्रयोगसे और और अङ्गोंका रोग कैसे आरोग्य होता था' इसका वृत्तान्त बीजरूपसे वर्णित है। "दधि मधु घृतं सनीय प्राशयति जातरूपम्" दध्नः सौम्य मथ्यमानस्ययोऽणिमा स ऊर्द्ध्वं समुदीषति तत्सर्पि र्भवति, एवमेव खलु

सौम्य अन्नस्यास्यमानस्य यो ऽणिमा सऊर्द्धं समुदीषति"। ऐसा ही यजुरारण्यक षष्ठ अध्यायमें, और छान्दोग-निरुक्तादिमें अन्न विपाक क्रिया सुन्दर प्रकारसे वर्णित है। बाहुल्य भयसे इस प्रसंगका विस्तार यहाँ और नहीं करूँगा। इन मंत्रोंसे आयुर्वेदका अति प्राचीनत्व अवश्य सिद्ध होता है।

वेदादिका समय निरूपण करनेके लिये प्राच्य और पाश्चात्य बड़े बड़े पण्डितोंने नाना प्रकार चेष्टा कर नाना प्रकारके सिद्धान्त किये हैं। अंग्रेज ऐतिहासिकोंका मत है कि, ऋग्वेद ही पृथ्वीका आदि साहित्य है और यह कुल चार हजार वर्ष पूर्व्व बना था। इस मतकी निर्मूलता अभी दिखलायी जायगी, किन्तु इस मतसे भी वेदका अति प्राचीनत्व और साथ ही आयुर्वेदका अति प्राचीनत्व सिद्ध होता है।

आयुर्वेदके समय निरूपणका प्रयत्न।

वेदके समान पुराणोंमें भी आयुर्वेदका प्रसङ्ग जहाँ तहाँ बहुत पाया जाता है। महाभारत में उदाहरण मिलनेकी कमी नहीं है—

"कच्चिद् कुशला वैद्याः अष्टाङ्गे च चिकित्सिते।" (महा. सभा. ३५ अ.)

"आयुर्वेद विदस्तस्मात् त्रिधातुं मां प्रचक्षते।" (महा. शान्ति. १३७ अ.)

दर्शन शास्त्रोंमें भी आयुर्वेदका प्रसङ्ग मिलता है—

'मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यात् तत् प्रामाण्यम्" (गौतम सूत्र)

इत्यादि। इस गौतमसूत्रसे भी आयुर्वेदका अति प्राचीनत्व प्रतिपन्न होता है। स्मृति ग्रंथोंमें "याज्ञवल्क्य स्मृति अति प्राचीन ग्रन्थ है—इस याज्ञवल्क्य स्मृतिमें भी अन्न विपाक क्रिया और अस्थि गणनादि आयुर्वेदके विषय स्पष्ट मिलते हैं।

वेदका समय निर्णय असम्भव होने परभी महाभारतके समय निर्णयका एक अपूर्व द्वार "बृहत्संहिता" में देखा जाता है। वह यह है कि—

"आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विक पञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञस्तु॥"

अर्थात् जिस समय युधिष्ठिर राज्य शासन करते थे, सप्तर्षि मण्डल मघा नक्षत्रमें रहा। सप्तर्षि मण्डलका यह नियम है कि, "एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम्"। आचार्य्य वाराहमिहिरने जो गणना कर सिद्धान्त किया है, उसके अनुसार युधिष्ठिरका राज्यकाल इस समय ४३५९ वर्ष पहिले ठहरता है। काश्मीरके प्रसिद्ध इतिहास राजतरङ्गिणीमें निर्णीत महाभारतकी समय गणना इस गणनासे प्रायः ठीक ठीक मिलती है। अतः महाभारत रचनाके लिये ३६० वर्ष यदि छोड़ भी दिये जायँ तोभी महाभारत अन्ततः ४००० वर्षका प्राचीन है; इसमें कुछभी सन्देह नहीं करना चाहिये। (इससे ऋग्वेदको केवल ४००० वर्ष मात्रका पुराना मानने वालोंके मतका खण्डन होता है) जो हो, जब इस महाभारतके "देवर्षिचरितं गार्ग्यः कृष्णात्रेय-

श्चिकित्सितम्." तथा "श्यामायनोथ गार्ग्यश्च जावालिः सुश्रुतस्तथा। विश्वामित्रात्मजाः सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥" इन दो प्रसङ्गोंमें आत्रेय और सुश्रुतके नाम मिलते हैं। तब चरक और सुश्रुत—संहिताके मूल ग्रन्थ आत्रेयसंहिता, अग्निवेशसंहिता, वृद्ध-सुश्रुत प्रभृति महाग्रन्थोंकी विद्यमानता महाभारतके पूर्वकालमें अथवा सम समयमें अवश्य प्रतीत होती है। "कठ चरकाल्लुक्" इस पाणिनि सूत्रसे भी चरक संहिताकी अति प्राचीनता सिद्ध होती है। क्योंकि पाणिनिका समय अन्ततः दो हजार वर्षके पूर्व निर्विवाद सर्वादिसम्मतिसे सुनिर्णीत हो चुका है। अतएव प्राचीन मूल संहिताओंका अन्ततः चार हजार वर्ष पूर्व और वर्तमान चरक संहिताका समय अन्ततः दो हजार वर्ष पूर्वका होना सिद्ध हुआ, इस विषय पर और सन्देह होना नहीं चाहिये।

योरोपिय ऐतिहासिक लोगों में सुप्रसिद्ध डाक्टर रायल अपने "Essay on the Antiquity of Hindu Medicine" नामक ग्रन्थमें लिखते हैं "The hoary works of the Hindus,—Sharaka and Sasrad as the Arabs called them (evidently corruptions of the names Charaka and Susruta), were translated into Persian by Persian scholars and then into Greek by the physicians of Greece attending the courts of Alamanazer and Harun ul-rasid of Baghdad, each of whom severally heldan—international congress of medical men in central India."

अर्थात् "अरबियन—इतिहासमें स्पष्ट लेख है कि, वे लोग "शरक" और "ससरद" नामक दो चिकित्सा ग्रन्थ हिन्दुस्थानसे साथ लेगये, और पारस्य देशके पण्डितोंसे उनका उल्था कराया। प्राचीन मिसर (इजिप्ट) देशवासियोंने अरब देशियोंसे इन महा ग्रन्थोंके उपदेश लिये और मिसर देशियोंसे ग्रीस वालोंने आयुर्वेदके "तत्त्वोंको सीखा। डाक्टर रायल और भी कहते हैं कि रूमके सुलतान "अलमंजरने" सम्पूर्ण पृथ्वीके वैद्योंको बुलाकर एक विशाल वैद्य सम्मेलन किया एवं ये "शरक" और "ससरद" (अर्थात् अपने चरक और सुश्रुत) वैद्यकके श्रेष्ठ ग्रन्थ माने गये। और पृथ्वी मण्डलके समस्त चिकित्सकोंमें समादरणीय हुए। डाक्टर रायलके निर्द्धारणसे यह बात अष्टम शताब्दीकी है और इसीसे उनका अनुमान यह है कि आयुर्वेद अन्ततः दो हजार वर्षके पूर्व्व बहुतही उन्नतावस्थाको प्राप्त हुआ था।

डाक्टर वाइजने (जो कि आयुर्वेदको बहुत सराहने वाले प्रसिद्ध यूरोपीय चिकित्सक हैं) अपने "Commentries on Hindu Medicine" नामक ग्रन्थमें कहा है कि, "It was most probably at this early period (*i, e,* about three centuries before Christ) that they studied the healing art with such success as to enable them to produce systematic works on Medicine &c. &c.

अर्थात् ख्रीष्ट जन्मके तीन सौ वर्ष पूर्व हिन्दुओंका चिकित्साशास्त्र इतनी उन्नतावस्था पर था कि, उस समय चिकित्सा विषय पर अति मनोरम प्रणालीके अनेक अपूर्व ग्रन्थोंकी रचना हुई थी।

आयुर्वेदकी प्राचीनता और प्राचीन कालका उत्कर्ष दिखानेके लिये विदेशियोंकी सम्मति इतनी ही पर्य्याप्त है। आयुर्वेदके आचार्य्य और ग्रन्थोंका समय निरूपण हमारा आजका कार्य्य नहीं है। इसलिये इस विषय पर और अधिक कहना निष्प्रयोजनीय समझता हूँ। परन्तु यह भी कहना आवश्यक है कि, प्राचीन आयुर्वेदके मूल ग्रन्थ इस समय प्रायः नहीं मिलते, और वर्त्तमान चरक, सुश्रुत प्राचीन ग्रन्थोंके जीर्ण शीर्ण भग्नावशेष मात्र हैं। इस बातके प्रमाण वर्त्तमान ग्रन्थोंमें ही बहुत मिलते हैं, प्रति संस्कर्त्ताओंके सूखे लेख भी अनेक हैं।

आयुर्वेदीय ग्रन्थोंमें आयुर्वेदका इतिहास।

अब आयुर्वेदका इतिहास आयुर्वेदीय ग्रन्थोंमें जैसा लिखित है, उसका निष्कर्ष आप लोगोंके सामने उपस्थित करता हूँ। यह सुप्रसिद्ध है कि, आदि पुरुष स्वयं ब्रह्माजी आयुर्वेदके प्रथम प्रणेता और प्रवर्त्तक हुए। उन्होंने प्रथम आयुर्वेदीय लक्ष श्लोकमयी एक विशाल संहिताकी रचना की। अनन्तर ब्रह्मा जीसे दक्ष प्रजापति, दक्ष प्रजापतिसे दोनों अश्विनीकुमार, और अश्विनीकुमारोंसे देवराज इन्द्रने आयुर्वेदका अध्ययन किया। यहाँ तक आयुर्वेद स्वर्ग लोकमें ही आबद्ध था, मर्त्य लोकमें इसका प्रवेश नहीं हुआ था। चरक संहितामें लिखा है कि, एक समय मर्त्यलोक में लोगोंको रोगोंसे पीड़ित देखकर दयार्द्र हृदय भरद्वाज, अङ्गिरा, जमदग्नि वसिष्ट, विश्वामित्र प्रभृति अनेक महर्षियोंने हिमालयके सानुप्रदेशमें महासभा की थी, उस सभाके निर्णयके अनुसार भरद्वाज मुनि देवलोकमें जाकर इन्द्रसे आयुर्वेदका अध्ययन करके आये। उन भरद्वाजसे आत्रेय ऋषिने आयुर्वेदकी शिक्षा पायी। कोई कहते हैं कि भरद्वाज और आत्रेय एक ही व्यक्ति हैं। पीछे आत्रेयके ६ शिष्य हुए। उन ६ शिष्योंने अपने अपने नामोंसे एक एक संहिताकी रचना कर मर्त्यलोकमें आयुर्वेदका प्रचार किया। उन ६ शिष्योंके नाम अग्निवेश, भेल, जतुकरण, पराशर, हारीत, और क्षारपाणी थे। इनके मध्यमें महर्षि अग्निवेशही सबकी अपेक्षा तीक्ष्ण धी शक्तिसम्पन्न थे। यही वर्त्तमान चरक संहिताके पितृ स्वरूप हैं। इनकी प्रणीत अग्निवेश संहिता ही वर्त्तमान चरक संहिताका मूल ग्रन्थ है। क्योंकि वर्त्तमान चरक संहिता इस मूल ग्रन्थका प्रतिसंस्कृत और दृढबल नामक आचार्य्यसे सम्पूर्ण किया हुआ भग्नावशेष है।

आत्रेय सम्प्रदाय वा चरक सम्प्रदाय।

महर्षि आत्रेयका शिष्य सम्प्रदाय शारीरिक और मानसिक रोग समूहोंकी औषधादि द्वारा चिकित्सा करते थे। ये शस्त्रचिकित्सक नहीं थे, इसीलिये "काय

चिकित्सक" (Physicians) नामसे प्रसिद्ध थे। उनका साधारण नाम आत्रेय सम्प्रदाय (School of physicians) था। ये जातिके ब्राह्मण थे; इसलिये शस्त्रचिकित्साके प्रति इनका विशेष अनुराग न होना ही स्वाभाविक था।

सुश्रुत संहितामें आयुर्वेदागम कुछ दूसरे प्रकारसे ही लिखा है। ब्रह्माजीसे लगाकर इन्द्र तक गुरुपरम्परा तो पूर्वोक्त प्रकार ही है; परन्तु इसके सिवाय लिखा है कि धनवन्तरिजीने इन्द्रसे आयुर्वेदके उपदेश पाये और मर्त्यलोक वासियोंको नाना प्रकारकी पीड़ाओंसे पीड़ित अथच रोगोंसे आर्त्त देखकर काशीधाममें काशीराज दिवोदास रूपसे अवतीर्ण हुए! उनके निकट विश्वामित्र पुत्र सुश्रुत औपधेनव, औरभ्र, पौष्कलावत और गोपुर रक्षित प्रभृति शिष्यगणने आयुर्वेदका अध्ययन किया। धनवन्तरिजीके प्रधान शिष्य विश्वामित्र पुत्र सुश्रुत जातिके क्षत्रिय थे और काशिराज दिवोदास भी स्वयं क्षत्रिय थे, सुतरां शल्यतन्त्र वा शस्त्रचिकित्साको ही प्रधान समझकर उन्होंने आयुर्वेदकी चर्चा की। सुश्रुतादि महर्षियोंने भी अपने अपने नामोंसे एक एक संहिता ग्रन्थ रचकर आयुर्वेदका प्रचार किया। इन संहिताओंमें सुश्रुत संहिता ही प्रधान गिनी जाती थी। परन्तु दुःखकी बात है कि अब यथार्थ सुश्रुत संहिता उपलब्ध नहीं होती। वर्त्तमान सुश्रुत संहिता भी मूल वृद्ध सुश्रुत ग्रन्थका नागार्जुनकृत प्रति संस्कृत और लेखक प्रमाद एवं प्रक्षेपोंसे दूषित भग्नावशेष मात्र है।

धनवन्तरि सम्प्रदाय वा सुश्रुत सम्प्रदाय।

इन शस्त्रचिकित्सा प्रिय सुश्रुतादि महर्षिगणका साधारण नाम धनवन्तरि-सम्प्रदाय वा सुश्रुत सम्प्रदाय (School of Surgeons) कहकर विख्यात था। वह प्रधानतः शस्त्रचिकित्सक थे। प्रथम ही कहा गया है कि इनके आदि गुरु क्षत्रिय थे और इनके शिष्य भी प्रायः क्षत्रिय ही थे; इसलिये शस्त्रचिकित्साके प्रति इनका भी विशेष अनुराग होना स्वाभाविक था।

पूर्वोक्त आत्रेय सम्प्रदाय और धन्वन्तरि सम्प्रदायके चिकित्सक गण सम्पूर्ण पृथक् भावसे चिकित्सा विद्याके प्रधान दो अङ्गोंका अनुशीलन करते थे। स्वर्ण, लौहादि धातु घटित औषधोंसे चिकित्सा करनी उनके समयमें विशेष प्रचलित नहीं थी। चरक और सुश्रुतमें धातुओंका सामान्य प्रयोग विरलेही स्थानोंमें दृष्टिगोचर होता है। (जैसे चरक चिकित्सा स्थान रसायन पादमें लौह सुवर्णादिका प्रयोग) अतएव धातु घटित औषधोंके प्रयोग उनके समयमें बहुत प्रकारसे नहीं होते थे; यह निःशङ्क चित्तसे कहा जा सकता है। धातु घटित औषधोंके अधिक प्रयोग चरक सुश्रुतादिके पीछे (सम्भवतः बौद्धोंके समयमें अर्थात् प्रायः डेढ़ हजार वर्ष पूर्व) प्रचलित हुए हैं। परन्तु कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि चरक सुश्रुतादिके सम समय ही योगि चिकित्सक लोग—रस चिकित्साका उत्कर्ष बढ़ा रहे थे। अस्तु,

रस वैद्य सम्प्रदाय.

धातु घटित औषधोंके प्रधान प्रवर्त्तक रसवैद्य सम्प्रदाय वा रस चिकित्सक गण हैं। जनरव है कि महायोगी देवादि देव महादेवने इस चिकित्सा प्रणालीकी सृष्टिकी, और आदिनाथ, नित्यनाथ, चन्द्रसेन, गोरत्तनाथ, (गोरखनाथ ?) कपाली प्रभृति योगिगण इस विद्याके प्रवर्तक हुए। रस शब्दका अर्थ पारद है। इन रसादि धातु-समूहोंका जारण मारणादि करके प्रयोग करनेसे शरीरके रोगोंकी तो बात ही क्या जरा मरणका भी विनाश हो सकता है; रसवैद्य लोगोंने इसको प्रमाणित करके दिखलाया है। वस्तुतः उस समय रसवैद्योंका प्रभाव समग्र भारतमें इतना विस्तृत होगया था कि, वेदके प्रसिद्ध भाष्यकार सायणाचार्य्यको अपने प्रसिद्ध सर्व दर्शन संग्रह नामक ग्रन्थमें "रसेश्वर दर्शन" नामक दर्शनके मतको ग्रहण करना पड़ा। इस दर्शनका प्रधान मत यह है कि "श्रेयः परं किमन्यत् शरीरमजरामरंविहायैकम्"। प्रसिद्धि है कि यह योगी चिकित्सक गण एक रस (पारद) प्रयोगसे ही चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष), का फल साधन करते और इसीलिये इसकी चिकित्सा शास्त्रोंमें विशेष प्रतिष्ठा और प्रधानता हुई थी। पारद, गन्धक, लौह, अभ्र, स्वर्ण, रौप्य प्रभृति पार्थिव पदार्थ (mineral) समूहका जारण मारण इस चिकित्सा प्रणालीका प्रधान अङ्ग है, इसलिये रसविद्या ही वर्त्तमान "कमेस्ट्री वा धातु विद्या" की प्राचीन मूल भित्ति कही जा सकती है।

वर्त्तमान समयकी आयुर्वेदीय चिकित्सामें जारित धातुओंका विशेष व्यवहार देखा जाता है, इसका भी मूल कारण केवल रसवैद्य सम्प्रदाय और उनके ग्रन्थ समूह हैं। तन्त्रग्रन्थोंमें रसचिकित्सा विषय अनेक स्थानोंमें लिखा हुआ मिलता है; इसलिये इस चिकित्साको कोई कोई "तान्त्रिक चिकित्सा" भी कहते हैं। आज इस रसविद्याके कणमात्रको कितने ही फकीरोंने अपनी आजीविका कर रखी है।

इस प्रकार चरक सम्प्रदाय, सुश्रुत सम्प्रदाय, और रसवैद्य सम्प्रदाय—इन तीनों सम्प्रदायोंकी चिकित्साने ही एक समय भारतवर्षमें प्रतिष्ठा लाभ की थी। इनमें दो सम्प्रदायोंका चिकित्साशास्त्र प्राधानतः ऋषि प्रणीत है; इसलिये इन उभय प्रकारकी चिकित्साओंको आर्ष चिकित्सा भी कहते थे। शेषकी चिकित्सा वा रसचिकित्सा तन्त्र मूलक है। इस वास्ते इसका द्वितीय नाम तान्त्रिक चिकित्सा है। वस्तुतः नागार्जुनादि मुनीन्द्र इस चिकित्साके प्रवर्त्तक हैं, इससे यह भी एक प्रकारकी आर्ष चिकित्सा ही है।

आयुर्वेदकी प्राचीन ऊर्जित अवस्था।

आप लोग भली भाँति जानते हैं कि प्राचीन कालमें आयुर्वेद अष्टांग सम्पूर्ण शास्त्र था और उस समय इसके पूर्व्वाङ्ग शरीर विद्या (Anatomy of physio

logy) भेषज परिचय और द्रव्य गुण (materia medica of Sherapenties). भेषज कल्पना (Phermacy) और धातु विद्या (chemistry) आदि भी बहुत उन्नत अवस्थाको पहुँची हुई थी। आयुर्वेदकी प्राचीन उन्नतिके विवरणमें प्रथम वक्तव्य इन पूर्वाङ्गोंका है ।

आयुर्वेदके पूर्वाङ्ग ।

आयुर्वेदका पूर्वाङ्ग शारीर विद्या (Anotomy of physiology) है । कोई कोई कहते हैं कि, केवल आज ही नहीं किन्तु प्राचीन कालसे वैद्य लोग शारीर विषयमें अनभिज्ञ थे । यह कहना उन महाशयोंका सर्वथा असत्य है । क्योंकि आयुर्वेदाचार्य्य लोग पहलेसे ही कह रहे हैं, "शरीरं सर्वथा सर्वं सर्वदा वेद यो भिषक् । आयुर्वेदं स कार्त्स्न्येन वेद लोकसुखप्रदम् ॥" अर्थात् शरीरके सूक्ष्माणु सूक्ष्म तत्त्वोंको जो (च. शा. ६. अ.) मनुष्य सीखता है और हरवक्त स्मरण रखता है, उसी मनुष्यको समग्र आयुर्वेद सीखनेका फल मिलता है ।

शारीर विद्या ।

शवच्छेद करके सब अङ्ग प्रत्यङ्गादिको पूरी रीतिसे सीखना चाहिये इस विषयमें सुश्रुत कहते हैं—

"तस्मात्समस्तगात्रमविषोपहतमदीर्घव्याधिपीड़ितमवर्षशतकं निःसृष्टान्त्रपुरीषं पुरुषमवहन्त्यामापगायां निबद्धं पञ्जरस्थं मुञ्जवल्कल-कुश-शणादीनामन्यतमेनावेष्टिताङ्ग मप्रकाशे देशे कोथयेत्, सम्यक् प्रकुथितञ्चोद्धृत्य ततो देहं सप्तरात्राद्उशीरबालवेणु-वल्कलकूर्चानामन्यतमेन शनैः शनैरवघर्षयंस्त्वगादीन् सर्वानेव बाह्याभ्यन्तराङ्गप्रत्यङ्ग-विशेषान् यथोक्तान् लक्षयेच्चक्षुषा ।" (सु. शा. ५)

"तस्मान्निःसंशयं ज्ञानं हर्त्रा शल्यस्य वाञ्छता ।
शोधयित्वा मृतं सम्यग् द्रष्टव्योऽङ्गविनिश्चयः ॥"
"शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थः स्याद्विशारदः ।
दृष्ट श्रुताभ्यां सन्देहमवापोह्याचरेत् क्रियाः ॥
प्रत्यक्षतो हि यद् दृष्टं शास्त्रदृष्टञ्च यद् भवेत् ।
समासतस्तदुभयं भूयोज्ञानविवर्द्धनम् ॥" (सु. शा. अ. ५)

जो आयुर्वेदाचार्य्य शारीर तत्त्वोंके सीखनेके लिये इतने उपदेश दे गये हैं; वे शारीरतत्त्वोंमें स्वयं अनभिज्ञ थे, यह बिलकुल असम्भव है । हाँ, यह अपराध तो हमारा ही है कि, इस समय शारीरकी पूरी पूरी चर्चा करनी हम लोगोंने छोड़ दी, उसीका फल है कि, प्रति संस्कार, विलोप, प्रमाद और प्रक्षेपोंसे युक्त होकर वर्तमान समयके सुश्रुतादि ग्रन्थोंकी शारीरवर्णना विकृत हो गयी है । तथापि अभी तक वर्तमान भग्नावशेषमें भी कई एक शारीर तत्त्वोंका वर्णन ऐसा मनोहर है कि, उसे देख कर गुणग्राही शारीरज्ञोंका चित्त आनन्द से प्रफुल्लित हो उठता है ।

अस्थियोंकी संख्या सुश्रुतमें तीन सौ, चरकमें तीन सौ साठ (३६०); और अंग्रेजी मतमें दो सौ (२००) मात्र है। अस्थियोंकी गणना भी इन मतोंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे है। इस पर सन्देह हो सकता है कि अस्थि तो अति स्थूल और स्पष्ट देखने योग्य वस्तु हैं इसमें इतना मत भेद कैसे हुआ ? थोड़े ही दिनकी बात है कि विलायत-की अक्सफोर्डयुनिवर्सिटीके प्रसिद्ध पण्डित हार्नलि साहबने इस सन्देहकी सुन्दर मीमांसा करके एक ग्रन्थ लिखा है जिसका नाम "Ostiology of the ancient Hindus" है। आपने इस अपूर्व ग्रन्थमें बड़ी ही विद्वत्ता और निपुणताके साथ दिखा दिया है कि पूर्वोक्त संख्याओंमें विरोध (मतभेद) बिलकुल नहीं है। और प्राचीन लोग अस्थितत्त्वको भली भाँति जानते थे। प्रति संस्कारक और प्रक्षेपकोंकी भूलसे ही जो ग्रन्थोंकी दुर्दशा हुई है आपने अखण्डनीय प्रमाणोंसे इस बातको भी सिद्ध किया है। यद्यपि वर्त्तमान सुश्रुत और चरकके शारीर स्थानोंमें वृक्क, फुस्फुस, उण्डुक, हृदय, यकृत और प्लीहा आदि कई शरीर यन्त्रोंके नाम मात्र मिलते हैं तथापि यह बड़े ही दुःखकी बात है कि इन सबोंका पूर्ण विवरण सर्वथा दुर्लभ हो रहा है।

प्राचीन आयुर्वेदमें शारीरज्ञान कैसी पूर्णताको प्राप्त हुआ था, उसका और उज्ज्वलन्त दृष्टान्त यह देखिये कि त्वचाकी वर्णनामें सुश्रुत सात प्रकार और चरक छ प्रकारकी त्वचाका विवरण लिखते हैं। उसी प्रकार वर्त्तमान समयके सूक्ष्मदर्शनके अपूर्व यन्त्र "माइक्रोसकोप" (Microscope) द्वारा देखनेसे भी त्वचाका विभाग दृष्टिगत होता है। यह क्या कम हर्षका विषय है ? सुश्रुताचार्य त्वचाके प्रथम स्तर (परदे) को अवभासिनी कहते हैं। अंग्रेजी सूक्ष्म परीक्षासे भी यही प्रतिपन्न होता है कि प्रथम स्तर (Epidermis) ही कृष्ण और गौरादि वर्णोंका आधार है।

इसी प्रकार कलाओंका वर्णन भी अति मनोहर है। कला शब्दका अर्थ रेशमी वस्त्रके सदृश सूक्ष्म झिल्ली (Membrane) है। शवच्छेद कर प्रत्यक्ष देखने और शास्त्रको विचारनेसे स्पष्ट प्रतिपन्न होता है कि यह झिल्ली ही धातु और आशयके मध्यमें मर्यादा या व्यवधान है। यथा—"कला नाम धात्वाशयान्तर मर्य्यादा" अर्थात्—

अस्थि, मांस, मेद, मज्जा आदि जहाँ ही देखे जाते हैं वहाँ ही उनके धारण करनेकी कला है। कलाओंका सम्यक् विवरण हमारे 'प्रत्यक्ष शारीर' नामक ग्रन्थमें दिखाया गया है। ऐसा ही स्नायुओंका विवरण भी आयुर्वेदमें सुन्दर रीतिसे है। हमारे ग्रन्थमें सम्यक् प्रतिपन्न किया गया है कि स्नायु शब्दका अर्थ (Fibrous Tissue or Ligaments) अर्थात् सनके सूत्रके समान दृढ़ शुभ्र सूत्र या तन्मय बन्धनी है। प्रसङ्गागत कहना चाहिये कि (Nerve system) के अर्थमें स्नायु-मण्डल शब्दका और 'Nerve Debility' के अर्थमें स्नायवीय दौर्बल्य शब्दका प्रयोग करना नितान्त भूल है, किन्तु बड़े दुःखकी बात है कि आजकल बङ्ग और हिन्दी भाषामें इन्हीं शब्दोंका बहुत प्रचलन हो रहा है।

रक्त संवहन क्रियाका ज्ञान ।

अब शारीर क्रिया विज्ञान (Physiology) के विषय पर कुछ कहना है । देखिये कुल २०० वर्ष पूर्व्व जिस रक्त संवहन क्रियाका आविष्कार करनेसे सर विलियम हार्वि योरप खण्डके परम पूजनीय हुए थे; उसी रक्त संवहन क्रिया (Circulation of Blood) का मनोहर वर्णन आयुर्वेदमें अभी तक मिलता है । चरक हृद् यन्त्रके विषयमें स्पष्ट ही लिखते हैं:—

तेनमूलेन महता महामूला मतादश ।
ओजोवहाः शरीरेऽस्मिन् विधम्यन्ते समन्ततः ॥
येनौजसा वर्त्तयन्ति प्रीणिताः सर्वजन्तवः ।
यदते सर्व्वभूतानां जीवितं नावतिष्ठते ॥
यत् सारमादौ गर्भस्य यत्तद्गर्भरसाद्रसः ।
सम्वर्त्तमानं हृदयं समाविशति यत् पुनः ॥ (च. सू. ३० अ.)

फिर और देखिये गर्भके विषयमें चरक कहते हैं:—

नाभ्यां ह्यस्य नाडी प्रसक्ता, साचामरा, अमराचास्य मातुः प्रसक्ता हृदये ।
मातृ हृदयं ह्यस्य साममरामभि संप्लवते सिरभिः स्पन्दमानाभिः ॥"
(च. शा. ६ अ.)

वाग्भटाचार्य्य भी स्पष्ट कहते हैं:—

"दश मूलसिरा हृत्स्थास्ताः सर्व्वं सर्व्वतो वपुः । रसात्मकं वहन्त्योजस्तन्निबद्धं हि चेष्टितम् ।"
(वा. शा. ६ अ.)

पूर्व्वोक्त सन्दर्भोंको देखकर आयुर्वेदके परम शत्रुको भी स्वीकार करना पड़ेगा कि, महर्षि लोग रक्तसंवहन क्रियाको अच्छी प्रकार समझते थे । देखिये हृदयसे निकलकर रक्त सर्व्व शरीरमें कैसे प्रवाहित होता है और शरीरमें घूम फिरकर हृदयमें लौट आता है, इस विषय पर कैसा स्पष्ट कहा गया है कि, "सम्वर्त्तमानं हृदयं समाविशति यत् पुनः" ।

वायु पित्त कफ तत्त्व ।

शारीर क्रिया विज्ञानमें वायुपित्तकफ—तत्त्व आयुर्वेदका एक अमूल्य रत्न है । शारीरिक क्रिया विज्ञानके लिये वायु, पित्त, कफ ये त्रिधातु हैं, मानसिक क्रिया विज्ञानके लिये वैसे ही सत्त्व, रज, तम ये त्रिगुण हैं । इस विषयके तत्त्वोंको न समझ कर नासमझ लोग आयुर्व्वेद पर वृथा अधिक्षेप करते हैं । परन्तु हमें आशा है कि कभी वह दिन आवेगा जब कि आयुर्व्वेदके इन तत्त्वोंके विषयमें सूक्ष्मदृष्टि जगत्के सभी विद्वानोंके चित्तमें सत्य कल्पना प्रस्फुरित होगी । इस समय वायुका अर्थ wind अर्थात हवा, पित्तका अर्थ Bild अर्थात् पीले रङ्गका तरल पदार्थ विशेष, और कफका

अर्थ Phlegm अर्थात् बलगम इतना ही समझकर लोग आयुर्वेदकी अपव्याख्या करते हैं। वस्तुतः वायु, पित्त, कफ इन तत्त्वोंसे शरीरकी स्वाभाविक क्रियाओंको तथा शरीरकी विकृत अवस्थाकी क्रियाओंको एवं चिकित्सामें भेषज प्रयोगके जो अपूर्व नियम बाँधे गये हैं उन नियमोंको एक बार समझनेसे महर्षियोंका दिव्यज्ञान देखकर सभीको विस्मित एवं मुग्ध होना पड़ता है।

प्रथमतः स्मरण रखना चाहिये कि वायु, पित्त, कफ ये शरीरमें दो रूपसे अवस्थित हैं—धातु रूप और मल रूप। धातु रूप वायु, पित्त, कफ, सूक्ष्म और इन्द्रियोंके अगोचर वस्तु हैं। केवल क्रियाओंको देखकर इनका अनुमान हो सकता है। इन स्वाभाविक और विकृत क्रियाओंका लक्षण ऐसा स्पष्ट है कि उन्हें देखकर सूक्ष्मदर्शी मनुष्यको धातु रूप वायु पित्त कफकी सत्ता अवश्य माननी पड़ेगी, और मलरूप वायु पित्त कफ स्थूल एवं इन्द्रियगोचर वस्तु हैं, जिनकी सत्ता सभीको (स्थूल दर्शियोंको भी) स्पष्ट प्रतीत होती है।

संक्षेपसे कहा जा सकता है कि "वा" गतिगन्धनयोः इस धातुसे "वायु" पद बना है। गति रूपी जितनी क्रिया हैं, वह वायुकी ही हैं। गतिरूपी क्रिया शरीरमें क्या है? प्रधानतः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इनको मनके पास पहुँचाना और पेशियोंमें वेग उत्पन्न करके चेष्टाओंका करना ही गतिरूप क्रिया हैं जो कि पाश्चात्यमतमें "सेन्सेशन" और "मस्क्युलर एकशन" (Sensation and muscular action) कहे जाते हैं। चित्तमें जो कुछ सङ्कल्प विकल्पादि वृत्तियाँ होती हैं, वे भी मनकी गतिरूप क्रिया हैं। अतः वे भी "वायु"के कार्य्य हैं। पाश्चात्य मतमें इसको (Intellection) कहा गया है। महर्षि चरक स्पष्ट ही कहते हैं कि:—

वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः प्राणोदानसमानव्यानापानात्मा, प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानां, नियन्ता प्रणेताच मनसः, सर्वेन्द्रियाणामुद्योतकः, सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढ़ा। (च. सू. १२ अ.)

अर्थात् वायु शरीरके सब आशय और यन्त्रोंको धारण करता है; इनकी क्रियाओंको चलाता है और इसके प्राण, उदान, समान, व्यान, अपान ये पाँच स्वरूप हैं (हृदय, कंठ, उदर, त्वक्, और गुह्य आदि स्थानोंमें इसके पृथक् पृथक् कार्य्य स्पष्ट भावसे देखे जाते हैं)। वायु ही बड़ी और छोटी सब क्रियाओंका प्रवर्त्तक है, एवं मनकी वृत्तियोंका निर्माणकर्त्ता तथा चालक है। वायु ही सब इन्द्रियोंमें चैतन्य देने वाला है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन इन्द्रियार्थोंका वहनकर्ता है इत्यादि। चरकके इस वचनको देखकर किसको न प्रतीत होगा कि पाश्चात्य पण्डित लोग जिसको नर्वफोर्स (Nervo force) कहते हैं हमारे आचार्य लोग इसी दुर्ज्ञेय वस्तुको "वायु" कहते थे और षट्चक्र और नाड़ी मण्डल—अंग्रेजी शास्त्रका प्रसिद्ध नार्वस् सिष्टम (Nervous System) ही हैं। बिजलीका पङ्खा और बिजली-गाड़ी आदि जब तक लोगोंने नहीं देखी थी तबतक कहनेसे विश्वास नहीं हो सकता

था कि बिजलीके द्वारा ऐसे ऐसे अपूर्व कार्य हो सकते हैं। अब प्रत्यक्ष प्रमाणको देख-कर मुटिया मजूर लोग भी बिजलीकी अपूर्व शक्तिको मान रहे हैं। ऐसे ही आचार्योंका कहा हुआ वायुका प्रमाण भी अब प्रत्यक्ष है। शवच्छेद करके मस्तिष्क सुषुम्नादिको देखनेसे और जीवित प्राणी पर नाना विध परीक्षा करनेसे प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि बिजलीके समान कोई एक अपूर्व सर्वव्यापिनी शक्ति शरीरमें है जिसके प्रभावसे शरीरके कलकाँटे चल रहे हैं। परन्तु अंग्रेजी मतसे महर्षियोंके मतका प्रभेद इतनाही है कि अंग्रेजी मत वालोंने (Nerve force) को स्वीकार करके उसको अज्ञेय कह कर छोड़ दिया है और हमारे महर्षि लोगोंने अतीन्द्रिय ज्ञानसे इसका स्वरूप वर्णन किया है।

"रूक्षः शीतोलघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदः खरः।
विपरीतगुणै र्द्रव्यैर्मारुतः सम्प्रशाम्यति॥"

अर्थात् "वायु रुक्ष, शीत स्वभाव, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद और खर स्वभाव है। इनके विपरीत गुण सम्पन्न द्रव्योंसे वायुकी शान्ति होती है। मूर्ख लोग समझते हैं कि वायुके गुण वर्णन ऋषि लोगोंकी स्वकपोलकल्पना है, किन्तु वे लोग तनिक विचार कर नहीं देखते हैं कि विपरीत गुण द्रव्योंसे वायुकी जो शान्ति होती है, केवल इस बातसे ही महर्षियोंके दिव्य ज्ञानकी सत्यता प्रमाणित हो रही है।

प्रकृतिस्थ वायुके विषय पर स्पष्ट कहके विकृत वायुके विषयमें चरक पुनः लिखते हैं:—

"कुपितस्तु खलु शरीरे शरीरं नानाविधैर्विकारैरुपतपति, बलवर्णसुखायुषामुपघाताय भवति, मनो व्यावर्तयति, सर्वेन्द्रियाण्युपहन्ति" इत्यादि। (च. सू. १२ अ.)

अर्थात् कुपित वायु शरीरमें "आध्मान-स्तम्भ-रौक्ष्य आदि नाना विध विकारोंको उत्पन्न करता है, मनुष्यका बल वर्ण सुख और आयुको नष्ट करता है, मनकी विकृति उपजाता है, इन्द्रियोंकी शक्तिको नष्ट करता है—इत्यादि।

इसी कारण अङ्गरेजीमें जिन रोगोंको (Nervous, Debility Neurasthenia) आदि नामसे निर्देश करते हैं, वैद्य लोग उन सब रोगोंको वायु रोग ही समझते हैं। और अङ्गरेजीमें जिस मनुष्यको Nervous वा Hysterical कहते हैं, हम लोग उसको वात प्रकृति समझते हैं। जिस वात प्रकृतिका स्वरूप आचार्य्य लोग स्पष्ट लिख गये हैं कि—

"अधृतिरदृढसौहृदः कृतघ्नः कृशपुरुषो धमनीततः प्रलापी द्रुतगतिरटनोऽनवस्थितात्मा—इत्यादि"। (सु. शा. ४ अ.)

इन सब बातोंको देखकर कौन नहीं स्वीकार करेगा कि ऋषि लोग समग्र नाड़ी मण्डल (Nervous system) की क्रियाओंको करामलकके समान समझते थे। और "वायु"—इन दो अक्षरोंमें सब अर्थका अवरोध कर चुके थे। अतएव सुश्रुत स्पष्ट कहते हैं—

"प्रस्पन्दनोद्वहन पूरण विवेक धारण लक्षणो वायुः पञ्चधा प्रविभक्तः शरीरं धारयति"।
(सु. सू. १५ अ.)

अब स्पष्ट प्रतीत होता है कि वायुका अर्थ हवा नहीं है। शरीरमें उद्गार अधोवायु आदि धातुभूत वायु नहीं हैं, यह मलभूत वायुका रूप है। इनके विषयमें वायुका प्रसङ्ग नहीं चला है।

अब पित्तके विषय पर कहूँगा। "तप सन्तापे" इस धातुसे पित्त शब्द बना है। शरीरमें सन्तापका मूलभूत जो कुछ सूक्ष्म अतीन्द्रिय वस्तु है,—"पित्त" उसीका नाम है। शरीरमें जो कुछ तेजोगुणके कार्य्य होते हैं, पित्त ही उनका परिचालक है। तेजोगुणके कार्य्य शरीरमें कौन हैं? शरीरके स्वाभाविक सन्ताप रक्षा (जिससे शरीरका सन्ताप ९८ से ९८॥ डिगरी पर बना रहता है) और त्वक्की शोषण शक्ति, अन्नका विपाक, मनकी तेजस्विता, दृष्टिकी उज्ज्वलता, और रक्तका उज्ज्वल लाल वर्ण,—ये ही तेजोगुणके प्रधान कार्य्य शरीरमें हैं। इन कार्य्योंके विभागसे पित्तका भी भ्राजक, पाचक, साधक, आलोचक और रञ्जक संज्ञा हुई है। इन कार्यों-के मूलभूत तत्वोंको आचार्य्य लोगोंने अतीन्द्रिय ज्ञानसे प्रत्यक्ष कर लिया था,—अब अङ्गरेज लोग इसको कोई एक अज्ञेय "Heat Producing mechanism" (सन्ताप देनेवाला अतीन्द्रिय वस्तु) metabelic function इत्यादि नाना नामसे मानते हैं। पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं कि निरन्तर शरीरमें जो धातुक्षय हो रहा है, इसी धातुक्षय वा "धातु दाह" (Combustion) से अग्निगुण उत्पन्न होकर शरीरका सन्ताप रक्षित होता है। आचार्य्य लोग कहते हैं कि "प्रतिक्षणं शीर्य्यते–इति शरीरम्"। चरक भी कहते हैं—"अग्निरेवहि पित्तान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति। स यदा नेन्धनं युक्तं लभते तदा देहजं रसं हिनस्ति"। इन वचनोंका अभिप्राय यह है कि अग्निके प्रभावसे शरीरके सब धातुओंका निरन्तर क्षय होता जाता है। उस क्षयकी पूर्तिके लिये आहार रूप इन्धन पहुँचाना चाहिये। अङ्गरेजी मतके साथ ऋषियोंके मतका इतना सादृश्य रहने पर भी स्मरण रखना चाहिये कि अग्नि केवल आहार रूप इन्धनसे ही उपजता है, महर्षियोंका यह मत नहीं है। सृष्टिकी आदिसे शरीरसे अग्निगुण सम्पन्न सर्व व्यापी पित्तकी सत्ताको सूक्ष्मदर्शी महर्षि लोग स्वीकार करते हैं, और कहते हैं—"वातपित्तश्लेष्माणएव देह सम्भवहेतवः" परन्तु अङ्गरेजी मत वाले अभी तक उतनी सूक्ष्मताको नहीं पहुँचे हैं। इस धातुभूत पित्तका गुण क्या है? जिस बात पर आचार्य्य अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष करके कहते हैं—

सस्नेहमुष्णं तीक्ष्णञ्चद्रवमम्लं सरं कटु।
विपरीतगुणैः पित्तं द्रव्यैराशु प्रशाम्यति॥

अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष कहनेका अभिप्राय यह है कि यकृत्से निःसृत पीतवर्ण तरल-पदार्थ पित्तके विषयमें यह लेख नहीं है क्योंकि उसमें यह सब गुण वर्तमान नहीं दीख

पड़ते। ऋषियोंके अतीन्द्रिय ज्ञानकी सत्यताका अनुमान अब भी इन प्रमाणसे हो सकता है। उपरि लिखित गुणोंके विपरीत गुणसम्पन्न द्रव्योंके उपयोगसे निपात ही पित्तकी शान्ति है। कुपित पित्तके लक्षण आयुर्वेदमें जिस प्रकार कहे गये हैं (यथा विस्फोटक, अम्लोद्गार, ऊष्मा आदि) वे अब भी पित्तकी शान्तिसे शान्त होते हैं। अंग्रेजीमें जिसको Bile कहते हैं, वह मल रूप वा किट्टरूप पित्त है। धातुमल पित्तके साथ इसका अर्थ मिलाना बहुत ही भूल है। इस मल भूत पित्तका लक्षण आयुर्वेदमें इस प्रकार है—

पित्तं तीक्ष्णंद्रवं पूति नीलपीतं तथैवच।
उष्णंकटुरसञ्चैव विदग्धं चाम्लमेवच॥ (सु. सू. २१ अ.)

अब श्लेष्माके विषय पर कहना है। "श्लिष आलिङ्गने" इस धातुसे श्लेष्मा पद बना है। श्लेष्मा सोमगुणात्मक वस्तु है। पित्तके सदृश धातुभूत श्लेष्मा भी अतीन्द्रिय पदार्थ है। शरीरमें तर्पण (तरावट रखना) श्लेषण (संयोजित रखना) पोषण आदि सोम धातुके सब कार्य श्लेष्माका ही है। पित्त आदि अग्नि रूप है तो श्लेष्मा जल रूप है। केवल अग्निसे दाह मात्र होता है, जलसे उस अग्निकी तीक्ष्णता दूर होती है सब स्थान पर तरावट पहुँचती है अतएव सुश्रुताचार्य कहते हैं:—

सन्धिसंश्लेषण स्नेहन रोपण पूरण बृंहण तर्पण बलस्थैर्य्यकृत्
श्लेष्मा पञ्चधाप्रविभक्त उदककर्मणानुग्रहंकरोति॥
(सु. सू. १५ अ.)

अर्थात् सन्धियोंका संश्लेषण (तेलके सदृश पदार्थसे चिकना रखना) स्नेहन (कण्ठ-जिह्वादि स्थानोंको तर रखना), अन्नका क्लेदन धातुओंका पूरण और पोषणादि जलके कार्यसे कफ शरीरको तर रखता है। यदि शरीरमें इस श्लेष्माकी तरावट न रहे तो शरीर थोड़े ही दिनमें दग्ध हो जाय। अतीन्द्रिय श्लेष्मा यद्यपि एक ही है तथापि कार्यके अनुसार पित्तके सदृश इसके भी पाँच विभिन्न रूप हैं। जिनके नाम श्लेषक (Synovia.) क्लेदक (Soliva) आदि रखे गये हैं। धातु रूप श्लेष्माके अतीन्द्रिय रूपका प्रत्यक्ष करके आचार्य कहते हैं।

गुरुशीत मृदु स्निग्ध मधुर स्थिर पिच्छिलाः।
श्लेष्मणः प्रशमं यान्ति विपरीतगुणैर्गुणाः॥

महर्षियोंके इस उपदेशकी सत्यता चिकित्सा करनेके समय सभीको प्रत्यक्ष प्रतीत होती है; परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि नाक और मुखसे जो श्लेष्मा गिरती है, वह श्लेष्मा किट्ट वा मलरूप है, और उसके विषयमें श्लेष्माका शरीरधारकत्व नहीं कहा गया है। सुतरां धातुभूत कफ पित्त वायुके विषयमें ही कहा गया है—

"विसर्गादान विक्षेपैः सोमसूर्य्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा॥" (सु सू. २१ अ.)

अर्थात् विसर्ग आदान और विक्षेपसे (तर्पण शोषण और सन्धारण) चन्द्र सूर्य और वायु जिस प्रकारसे जगत्को धारण करते हैं, उसी प्रकारसे कफ पित्त वायु भी शरीरको धारण करते हैं।

मलभूत वायु, पित्त और कफके विषयमें स्पष्ट ही निर्देश है—

"पक्काशयन्तु प्राप्तस्य शोष्यमानस्य वह्निना ।
परिपिण्डितपक्वस्य वायुस्स्यात् कटुभावतः ॥" (चरक)
"किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं रसस्यच कफोऽसृजः ।
पित्तं मांसस्य खमलाः मलःस्वेदस्तु मेदसः ॥" (चरक)

वायु, पित्त, कफके विषयमें शेषका वक्तव्य यह है। वायु, पित्त, कफ केवल शरीरके ही तीन स्तम्भरूप हैं। यही नहीं परन्तु समग्र आयुर्वेदके हेतु, लक्षण, औषधस्कन्धके तीन प्रधान स्कन्ध स्वरूप हैं। मनुष्यका वयःक्रम, अहोरात्र, षड्ऋतु, अन्नविपाक आदि सभीमें वायुपित्तका प्रभाव महर्षियोंने स्पष्ट प्रतिपन्न किया है जिससे चिकित्सा कार्यमें पूरी पूरी सहायता मिलती है। इस विषयपर विवेक करनेसे एक पूरा ग्रन्थ तैयार हो सकता है; परन्तु आज दिग्दर्शन मात्र यहाँ कहा गया है। अलमिति विस्तरेण।

द्रव्यगुण वा परिभाषा।

शरीर तत्त्वके बाद आयुर्वेदका द्वितीय पूर्वाङ्ग द्रव्यगुण और परिभाषा (materia medica and pharmacy) है। द्रव्यगुणके साथ और एक अङ्ग सीखा जाता है—इसका नाम उद्भिज्ज विद्या वा बोटानी (Botany) है। कई समझते हैं कि आयुर्वेदमें यह विद्या नहीं थी। उनका भ्रम दूर करनेके लिये राघवभट्ट कृत "वृक्षायुर्वेद" और शार्ङ्गधर कृत "उपवन विनोद" (जिसको हम बङ्गानुवादके साथ बाल्यमें ही प्रकाशित कर चुके हैं) नामक ग्रन्थको देखनेके लिये अनुरोध करते हैं। आयुर्वेदके द्रव्यगुण विषयमें राजनिघण्टु, मदनपाल निघण्टु, चक्रपाणि कृत द्रव्यगुण आदि असंख्य ग्रन्थ वर्त्तमान हैं। आयुर्वेदोक्त द्रव्यगुणकी विशेषता यह है कि महर्षि लोग पहिले मनुष्य शरीर पर भेषजोंकी क्रियाओंको देखकर सूक्ष्म विचार और अतीन्द्रिय ज्ञानसे भेषज गुणोंको लिखते थे, इसलिये उनके कथित द्रव्योंके गुण, रस, वीर्य्य, विपाक और प्रभाव अपूर्व हैं। डाक्टर लोग कुत्ता, बिल्ली या मेंढक पर द्रव्योंका गुण निरूपण किया करते हैं इसलिये कई समय भ्रान्त सिद्धान्तको ग्रहण करना पड़ता है। हमारे महर्षि लोग मनुष्य शरीर पर ही भेषज परीक्षा किया करते थे, इसी कारण आयुर्वेदोक्त द्रव्योंका प्रभाव यथार्थ ही रोग रोग पर अपूर्व और अचिन्त्य है; अतएव इसी प्रभावके बलसे प्रायः रोग निवारण होता है। ऐसे स्थानोंमें युक्ति तर्क काम नहीं आते, वैज्ञानिकताका आडम्बर चाहे जितना किया जाय, पर सुश्रुतोक्त उपदेश त्रिकालमें असत्य नहीं होगा। "सहस्रेणापि हेतूनां नाम्बष्टादि विरेचयेत। तस्माचिष्ठेत्तु

मतिमानागमे न तु हेतुषु।" अर्थात् अम्बष्ठादि औषधोंसे हजार कारण रहने पर भी विरेचन नहीं होता; यह स्वभावसे ही संग्राही हैं। इस दृष्टान्तको एवं आगमको देखकर काम करना चाहिये केवल युक्तिसे काम नहीं चल सकता। मेडिकल कालेजसे नये निकले हुए डाक्टरोंको वैज्ञानिक चिकित्साका प्रथम बहुत गर्व रहता है, परन्तु धीरे धीरे रोगियोंकी चिकित्सा करनेसे उनको प्रतीत हो जाता है कि रोगीको आराम करनेमें औषधका प्रभाव ही परम वस्तु है। साथ ही यह भी स्मरण रखना परमावश्यक है कि भेषजोंके गुण अनन्त हैं और कई गुण ग्रन्थोंमें न रहने पर भी विशेष करके जानने योग्य हैं।

केमिष्ट्री और फार्मेसी विषयका अति सूक्ष्म ज्ञान।

भेषज विद्या या द्रव्यगुणके साथ ही आयुर्वेदके दो पूर्वाङ्ग और हैं। जिनके नाम रसविद्या (chemistry) और औषधिनिर्म्माण विद्या (pharmacy) हैं। रसविद्याकी प्राचीन कालमें कितनी उन्नति हुई थी इस बातका वर्णन हम पहले कर चुके हैं तथापि प्रसङ्गवश कुछ यहाँ भी कहेंगे। रस और पारदकी योगवाहिता—अर्थात् जिन धातुओंके साथ बनाया जाय उनके गुणोंके ग्रहण करनेकी शक्ति वैद्यकका ही आविष्कार है। इसीलिसे सुवर्ण घटित मकरध्वजमें सुवर्णके न बढ़ने पर भी सुवर्णके अपूर्व गुण होते हैं; और केवल यही नहीं; भिन्न भिन्न अनुपानसे मकरध्वजके गुण भिन्न रूपसे प्रकाशित होते। ऐसे ही रौप्य घटित मकरध्वजमें रौप्यके गुण, ताम्र घटित मकरध्वजमें ताम्रके गुण, वैद्योंके अनुभव सिद्ध हैं। सुतरां इसी लिये प्रायः प्रत्येक रसौषधिमें रस-गन्धक अथवा हिंगुलका व्यवहार वैद्यकमें उपदिष्ट है। पर्पटी, महागन्धक योगादि औषधोंके अपूर्व गुण भी ऐसे ही उत्पन्न होते हैं।

रस विद्या केमिष्ट्रीका पराभव।

इन सूक्ष्म बातोंके विचारने से ज्ञात होता है कि रसविद्याके उत्कर्षको अंग्रेजी केमिष्ट्री अभी तक नहीं पा सकती। जो लोग केवल केमिष्ट्रीकी परीक्षासे मकरध्वजमें स्वर्णका भाग नहीं मिलता देखकर मकरध्वजमें स्वर्ण देना वृथा समझते हैं। उनकी आँखें खोलनेके लिये हम यहाँ एक दृष्टान्त दर्शाते हैं कि छुरी तलवार आदिमें तीक्ष्ण और स्थिर धार करनेके लिये जल, तेल आदिका पान (Temper) दिया जाता है इस पानसे लोहेमें जो परिवर्तन होता है सो केमिष्ट्रीकी परीक्षासे किसी प्रकार भी निर्णीत नहीं हो सकता। किसी तीक्ष्णाग्र लोहशलाकामें बालूका पान देनेसे काँचके काटने और तेलका पान देनेसे लोह काटनेकी शक्ति उपजती है, क्या केमिष्ट्री इस शक्तिको अस्वीकार कर सकती है? यदि ऐसी स्थूल बातोंमें ही केमिष्ट्रोको मुँह मोड़ना पड़ता है, तो सुवर्णके साथ चौबीस पहर तक अग्निके पाक होनेसे मकरध्वजमें गुणाधान

होता है, केमिष्ट्री वाले उसको कैसे समझ सकते हैं ? स्वर्ण, लौह आदि धातुओंकी निरुत्थ भस्म करना और उनकी सूक्ष्म मात्रासे—प्रयोग करके—अपूर्व फल लेना—यह भी रस विद्याके अद्भुत उत्कर्षको प्रकाश कर रहा है। निरुत्थ भस्म होने पर उस भस्मसे उसी धातुको फिर खड़ा करना असम्भव है। भस्मकी परीक्षा ऐसे करके केमिष्ट्री उसके गुणोंका कोई प्रमाण नहीं पा सकती क्योंकि, डाक्टरीमें यकृतका दोष रहने पर लौह प्रयोग निषिद्ध है और हमलोग इसी यकृत रोगमें नवायसादि लौहसे बहुत ही अपूर्व फल पाते हैं। कारण वैद्यकके मतानुसार यकृत रोगीके लिये नवायस लौह अमृतवत् है।

टिञ्चर और क्वाथ उत्कर्षापकर्षविचार।

इस विद्याके अतिरिक्त साधारण औषध बनानेमें घृत तैलादिके साथ औषधोंका पाक करके अपूर्व्व गुणाधान करना यह भी आयुर्वेदीय औषध बनानेका अपूर्व्व नैपुण्य प्रकाश कर रहा है। औषधोंसे प्रस्तुत घृत तैलादिके अपूर्व्व फल हम नित्य ही प्रत्यक्ष देख रहे हैं और आसव, अरिष्ट आदिकी भी आयुर्वेदोक्त औषधोंमें कमी नहीं हैं। किन्तु आयुर्वेदमें विशेषता यह है कि हमारे महर्षि लोगोंने प्रत्येक औषधके साथ उग्र सुरा देकर टिंचर बनानेका उपदेश नहीं दिया, क्योंकि सुरा हमारे सात्म्य नहीं है—इस लिये बारंबार सुरा घटित औषध सेवनसे औषधोंकी तीव्रक्रियाके साथ सुराकी उग्र क्रिया भी होती है; इसी कारण सुरासे औषध वीर्य्य आकर्षण करना महर्षि लोगोंका अनुमत नहीं था। विचार कर देखिये एक डाक्टरी प्रेस्क्रिप्सनमें यदि ५।६ तरहकी टिञ्चर या स्पिरिटका १५ से ३० विन्दु तकका संयोग रहे—(साधारणतः ऐसा ही होता है) तो प्रत्येक मात्रा औषधके साथ तीन चार ड्राम (एक ड्राम पाँच आना भरका) तीव्र सुरा रोगीके पेटमें पहुँचती है, तब अवश्य ही इस ३।४ ड्राम तीव्र सुराकी क्रिया होगी। जिससे आशा जनक फल नहीं होता। डाक्टर लोग इस बातका प्रायः विचार नहीं करते कि, इस देशके रोगियोंको सुरा कभी सात्म्य नहीं है और वृथा ही उन विचारोंको बार बार तीव्र सुरा पिलाकर उनका शरीर एवं धर्म दोनों नाश करते हैं और स्वयं वैद्योंको Quacks नीम हकीम कहकर सूक्ष्मदर्शी भी बनते हैं। हमारा अभिप्राय किसीके ऊपर कटाक्ष करनेका नहीं, किन्तु महर्षि लोग प्रायः औषधोंका केवल जलके साथ क्वाथ बनाकर प्रयोग करनेका उपदेश दे गये हैं। अतः इस प्रणालीके साथ "टिञ्चरी" प्रणालीकी परस्पर तुलना करना हमारा उद्देश्य है। परन्तु इन दोनों प्रणालीकी परस्पर तुलना विचारवानही करें।

द्रव्यगुणके विषयमें और भी एक बात कहनी है। प्राचीनकालमें महर्षियोंका मत था कि—

"तदेवौषधमुद्दिष्टं यदारोग्याय कल्पते।"

अर्थात् वही औषध है जिससे मनुष्य आरोग्य लाभ करें। हमारे महर्षिगणोंका हृदय संकुचित नहीं था। उनकी उदार सम्मतिसे आयुर्वेदमें अफीम, रेवचीनी, चोवचीनी औषधोंका ग्रहण हुआ है। भैषज्यरत्नावलीमें उद्धृत मुफर नामक एक औषधके विषयमें लिखा है—

म्लेच्छेनोक्तः सुलेहो मुफर इतिमतः सेव्यतां सर्व्वकालम्।

देखिये, अंग्रेज लोग इस समय मानों आयुर्वेदके पूर्व्वोक्त उपदेशके अनुसार ही हमारी सब अच्छी अच्छी औषधियोंको वृटिश फार्म्माकोपियामें ले रहे हैं और हम लोग निर्बुद्धि बन कर घरके रत्नोंका विसर्जन कर रहे हैं।

त्रिसूत्र वा त्रिस्कन्ध आयुर्वेद।

आयुर्वेदके पूर्व्वाङ्गके विषय पर इतना ही कहकर आगे आयुर्वेदोक्त प्रधान चिकित्साङ्ग पर थोड़ा कुछ कहेंगे। आप लोगोंको विदित है कि आयुर्वेद अष्टाङ्ग-शास्त्र है। अर्थात् आयुर्वेदोक्त चिकित्सा आठ अङ्गोंमें विभक्त है परन्तु अष्टाङ्गोंका विवरण करनेके पहले यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आयुर्वेदमें प्रधान विषय तीन ही हैं। इसलिये आयुर्वेद त्रिस्कन्ध अथवा त्रिसूत्र कहलाता है। इन तीन स्कन्धोंके नाम हेतुस्कन्ध, लिङ्गस्कन्ध, और औषध स्कन्ध हैं और प्रत्येक स्कन्धोंमें असंख्य संक्षिप्त सूत्र भरे हुए हैं। रोग किस किस हेतुसे उत्पन्न होते हैं इस विषयके सूक्ष्मतत्त्व जिन सूत्रोंमे ग्रन्थित हैं उन सूत्रोंका नाम हेतुसूत्र और रोगोंके लक्षण जिस क्रम और नियमसे प्रकाशित होते हैं उन तत्त्वोंके प्रकाशक सूत्रोंके नाम लिङ्गसूत्र, एवं जिस क्रम तथा नियमसे रोगोंका प्रतीकार हो सकता है इस तत्त्वके निर्द्धारक सूत्रोंके नाम औषध सूत्र हैं। इन सूत्रोंसे ही रोग निर्णय तथा चिकित्सा कार्य सुश्रृङ्खलतासे चलता है। इन सूत्रोंकी रचनामें महर्षियोंका जो अपूर्व दिव्यज्ञान और सूक्ष्मदर्शिता देखी जाती है उसे देखकर अभीतक सम्पूर्ण जगत् आश्चर्यान्वित होता है। इन सूत्रोंके कई एक दृष्टान्त दिखाता हूँ।

हेतु।

प्रथम दृष्टान्त हेतु सूत्रका देखिये—वायुपित्तकफ इन तीनोंकी विकृत अवस्थासे सब रोग अर्थात् आगन्तुक रोगोंको छोड़कर बाकी सभी रोग उत्पन्न होते हैं, और इन वायुपित्तकफहीके कारण जो आहारविहार हैं उनका विवरण इस प्रकार लिखा है—

कटुतिक्तकषायपयो दहति, श्रमरूक्षहिमाशभयाऽनशनैः।
स्मरजागरशुक्रक्षरणस्तगमैरपिकुप्यति वेगवधैरनिलः॥१॥
तिलमुक्तसुरादधिमीनशरत्कटुतीक्ष्णपटूष्णरुडम्लतपैः।
रतिघस्रनिशार्धविदाहकरैरपिकुप्यति पित्तमुपोषणतः॥२॥

दधिदुग्धनवीनजलाम्बुहिमाध्यशनाम्ल पटूपशमाज्यतिलैः।
गुरुमत्स्यवसन्तदिवाशयनैर्मधुरैरपि रोषमुपैति कफः ॥३॥
(अञ्जननिदानम्)

वायु, पित्त, कफका स्वरूप पहले ही कहा जा चुका है। इन व्यायामादि कारणोंसे प्रथम वातादिका सञ्चय होकर जो लक्षण उत्पन्न होते हैं उन्हींको देखकर प्रथम चिकित्सा हो सकती है, इसको प्रथम क्रियाकाल कहते हैं। वातादिके सञ्चयके पश्चात् जब प्रकोप होता है तब औरही कुछ लक्षण उत्पन्न होते हैं। उसको द्वितीय क्रियाकाल कहा जाता है। इसी प्रकार जब प्रकुपित वातादि शरीरमें प्रवृत हो जाते हैं, उनके लक्षणोंको देखकर रोगकी निवृत्ति उसी समय की जा सकती है, वह तृतीय क्रियाकाल है। फिर यही वातादि जब शरीरके किसी स्थानको आश्रय करके उसी स्थान विशेषमें अधिक पीड़ादि करते हैं, तब रोग उत्पन्न होनेमें अधिक विलम्ब नहीं होता—वह चतुर्थ क्रियाकाल है। स्थान संश्रयके बाद जब वातादि सम्पूर्ण व्यक्त लक्षण होकर रोगको उत्पन्न कर उसके पूर्ण रूपोंको स्पष्टतः दिखा देते हैं; वह पञ्चम क्रियाकाल है। शेषमें रूपकी जब पूर्ण प्रकट अवस्था होने पर रोग कौन जाति और कौन दोष सम्भव एवं किस प्रकारका है, जब यह स्पष्ट प्रतीत होता है; वह षष्ठ क्रियाकाल है। इसीलिये कहा गया है कि—

"सञ्चयञ्च प्रकोपञ्च प्रसरं स्थानसंश्रयम्।
व्यक्तिं भेदञ्च यो वेत्ति विज्ञेयः स भिषक्तमः ॥"

इस प्रकारसे रोग उत्पन्न होनेके पूर्व अथवा अति पूर्वही भविष्यत् रोगोंका चिन्ह जानकर उसका प्रतिकार कर देना, यह एक आयुर्वेदीय चिकित्साका ही अपूर्व सिद्धान्त है। और एक दृष्टान्त देखिये:—

जिस जीवाणुकारण वाद (Miecrobic Theory of Diseases) के विषयमें इस समय डाक्टरोंने बहुत कुछ उन्नति कर दिखाई है और जिस उन्नतिके ऊपर वे लोग गर्वित हो रहे हैं उस जीवाणुकारणवादके विषयमें आयुर्वेदके असंख्य स्थानोंमें ऐसे सुन्दर हेतुसूत्र और लिङ्गसूत्र मिलते हैं कि उन्हें देखकर कोई भी सूक्ष्मदर्शी मनुष्य ऐसा नहीं कह सकता, कि आयुर्वेदके आचार्य्य लोग इन बातोंसे अनभिज्ञ थे। देखिये कुष्ठके विषयमें आचार्य्य सुश्रुत कहते हैं—

"सर्व्वाणि कुष्ठानि सवातानि सपित्तानि सश्लेष्माणि सक्रिमीणि चोपदिश्यन्ते ॥"
(सु. नि. ५ अ.)

जीवाणुकारणवाद वाद सूक्ष्मकृमि और वैष्णवी शक्ति

अर्थात् सभी कुष्ट वायु, पित्त, कफ और कृमिके सहित उत्पन्न होते हैं। ये कृमि कैसे हैं? इस विषयमें सुश्रुतके उत्तरतन्त्रमें स्पष्ट कहा गया है कि—

"केशरोमनखादाश्च दन्तादाः किक्किशास्तथा।
कुष्ठजाश्च परीसर्पा ज्ञेयाः शोणितसम्भवाः॥
ते सरक्ताश्च कृष्णाश्च स्निग्धाश्च पृथवस्तथा।
रक्ताधिष्ठानजाःप्रायो विकारान् जनयन्ति ते॥
दृश्यास्त्रयोदशाद्यास्तु क्रमीणां परिकीर्तिताः।
केशादाद्यास्त्वदृश्यास्ते द्वावाद्यौ परिवर्जयेत्॥"

अर्थात् जितने प्रकारके क्रमि हैं उनमें केशाद रोमाद नामके क्रमि अदृश्य हैं (साधारण चक्षुसे नहीं दीख पड़ते) इन्हीं क्रमियोंसे रक्ताधिष्ठानजात कुष्ठादिरोग उत्पन्न होते हैं। रक्ताधिष्ठानजात रोगोंकी सूची सुश्रुतके व्याधि समुद्देशीय अध्यायमें ऐसी लिखी मिलती है।

"कुष्ठ विसर्प पिडका, मशक, नीलिका, तिलकालकन्यच्छ, व्यङ्गेन्द्रलुप्त प्लीहविद्रधि गुल्मवात शोणितार्शोऽर्बुदाङ्गमर्दासृग्दर रक्त पित्त प्रभृतयो रक्त दोषजाः॥"
वाग्भटाचार्यने भी ऐसे ही कहा है—

"रक्तवाहि शिरास्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः।
अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः॥
केशादा रोमविध्वंसा रोम द्वीपा उदुम्बराः।
पट्ते कुष्ठैक कर्म्माणः सहसौर समातरः॥"

देखिये इन सिद्धान्तोंमें दृश्य और अदृश्य सूक्ष्म क्रमियोंका रोगोत्पादकत्व कैसा पुंखानुपुंखभावसे* वर्णित है। जरा यह भी विचार कर देखना चाहिये कि जो क्रमि लोगोंके लिये अदृश्य हैं (सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः) वही महर्षियोंको कैसे दृश्य थे। केवल दृश्य ही नहीं; महर्षिलोग यह भी जानते थे कि विषमज्वर, प्लीहा, विसर्प, कुष्ठ आदि रोग क्रमि जन्य हैं। वाग्भटाचार्यने महर्षियोंके अभिप्रायको संक्षिप्त करके कहा है—

"कुष्ठो ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एवच।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥"

यथार्थही राजयक्ष्मा, कुष्ठ, नानाप्रकार ज्वर (प्लेग, निउमोनिया, म्यालेरिया प्रभृति) नेत्राभिष्यन्द और शीतला आदि रोगोंके अतिरिक्त और संक्रामक रोग नहीं दीख पड़ते। एवं इनकी संक्रामकता इसी कारणसे हैं कि ये रोग क्रिमिजन्य हैं। बीजाणुकारणवाद तत्त्व यही है और महर्षि लोग स्पष्टही इस तत्वको भली भाँति जानते थे। जीवाणुकारणवाद पहले युरोपमें आविष्कृत नहीं हुआ—यह भी इसी भारतीय ज्ञानका कणमात्र है।

कोई पूछ सकता है कि यदि तुम्हारे महर्षिलोग जीवाणुतत्व (Bacteriology) को जानते ही थे तो वर्त्तमान समय डाक्टरीमें इस विद्याकी जितनी उन्नति हुई उन

---

* क्रमानुसार।

लोगोंने भी क्यों नहीं इतनी उन्नति की। इसके उत्तरमें सूक्ष्मदर्शियोंके लिये थोड़ाही कहना है।

जीवाणुतत्व विद्याका मुख्य प्रयोजन तो यही है कि जीवाणु अर्थात् सूक्ष्म क्रिमियोंसे मनुष्यकी प्राण रक्षा करना। जीवाणु तो जगत्में अनन्त कोटि वर्त्तमान हैं। जीवाणु स्पर्श मात्रसे ही रोग उत्पन्न नहीं होते। रोग तबही उत्पन्न होते हैं जब कि शरीरमें स्वाभाविकी—प्रतिषेध शक्ति कम हो जाती है। इस स्वाभाविकी प्रतिषेध शक्ति वा रक्षाशक्तिका नाम तन्त्रोंमें "वैष्णवी शक्ति" (डाक्टरीमें Immunity) कहा गया है इस वैष्णवी शक्तिका ह्रास होनेसे ही जीवाणुका प्रभाव शरीर पर फ़ैल सकता और नानाप्रकारके रोग उत्पन्न हो सकते हैं। वर्त्तमान डाक्टरी चिकित्साका सर्वोच्च सिद्धान्त यह है कि जीवाणुजन्य रोगोंके विषादिकी सूक्ष्म मात्राका प्रयोग करके शरीरमें वैष्णवी शक्तिकी वृद्धि करनी उचित है। (इसका दृष्टान्त जैसे शीतला या प्लेगका टीका देना) डाक्टरीकी सर्वोत्कृष्ट-चिकित्सा "वैक्सिन् (Vaccine Theropy) का भी यही मुख्य उद्देश्य है। परन्तु विचारकर देखिये—महर्षिलोग पहलेही कह गये हैं—"त्रय उपस्तम्भाः शरीरस्याहारोनिद्रा ब्रह्मचर्यश्च"। अर्थात् शरीर रक्षाके प्रधान स्तम्भ तीन ही हैं—आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य्य। वर्त्तमान समयमें अच्छा पुष्टिकारक आहार थोड़ेही मनुष्योंको मिलता है। जो धनवान हैं उनको भी विशुद्ध खाद्य द्रव्य मिलना दुर्लभ है। (कलकत्ते जैसे शहरोंमें विशुद्ध खाद्यद्रव्य मिलता ही नहीं) क्योंकि सभी चीजोंमें मेल रहता है। थियेटर आदिका देखना और व्यापार आदिमें अतिकाल करके सोना भी एक प्रकारका "फैशन" हो चुका है। ब्रह्मचर्यका तो पूछना ही क्या है ? चतुर्दश वर्षसे ही बालक शुक्रक्षय करना आरम्भ करता है और उमर बढ़ते बढ़ते प्रायः मनुष्य कुसङ्गसे शरीरको जर्जर कर डालते हैं। इससे शरीरकी स्वाभाविक रक्षा-शक्ति वैष्णवी शक्तिका दिन पर दिन ह्रास होता जाता है। अब इन मुख्य बातों पर पूरा ध्यान न देकर पाश्चात्य विद्वान् "वैक्सिन्" चिकित्साकी धूम मचा रहे हैं। किन्तु हमारे महर्षिगण इन प्रधान बातों पर ही विशेष ध्यान देते थे। हिन्दुओंका सद्वृत्त, शौच, यथाकाल भोजन, तथा निद्रा, उषाकालमें जागरण, ईश्वरोपासना और दीर्घकाल ब्रह्मचर्य आदिके नियम शरीर रक्षाके लिये किये गये हैं। वैष्णवी शक्ति (Immunity) इन नियमोंके पालनसे जैसी बढ़ सकती है और किसी उपायसे वैसी नहीं। महर्षियोंके समय लोग ऐसे उच्छृङ्खल नहीं थे इसीलिये संक्रामक रोग भी इतने घोर रूपसे नहीं होते थे। अतः वे लोग समझते थे कि—

"प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्"

हेतुसूत्रका और एक दृष्टान्त यह है—

"कालबुद्धीन्द्रियार्थानां योगोमिथ्या नचाति च।
द्वयाश्रयाणां व्याधीनां त्रिविधो हेतु संग्रहः॥"

रोगोंका यथार्थ कारण तत्त्व

इसका संक्षिप्त अर्थ यह है कि शरीर अथवा मनके सम्बन्धी जितने रोग जगत्में उत्पन्न होते हैं उनके कारण तीन प्रकारके हैं। काल (शीत उष्ण वर्षादि ऋतुओंका) बुद्धि* (मनकी वृत्तियोंका) और इन्द्रियार्थ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धका) मिथ्यायोग (विपरीत होना) अतियोग (विशेष होना) अयोग (बिलकुल न होना) से मनुष्यको नाना तरहके रोग होते हैं। बुद्धिको वृथा व्याकुल करना (जैसे शतावधानादि) बुद्धिकी अत्यन्त चालना (जैसे आजकलके कालेजके लड़के और वकीलादि प्रायः करते हैं) और बुद्धिका अयोग (जैसे मूर्खका) यह भी प्रायः मानस रोगका कारण है। ऐसेही उत्कट शब्दोंको सुनना, अत्युच्च शब्दोंका सुनना और बिलकुल शब्दोंको न सुनना ये श्रवण सम्बन्धी रोगोंके कारण हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धके विषयमें भी ऐसेही कारणोंके होनेसे त्वक्, चक्षुः, रसना और नासा सम्बन्धी नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। अब गौर करके विचारिये कि इस छोटेसे श्लोकमें क्या क्या विशाल अर्थ, कैसा अपूर्व दिव्यज्ञान झलक रहा है।

लिङ्ग सूत्र

हेतुसूत्रके विषयमें इतनेही दृष्टान्त बहुत हैं। अब आगे लिङ्गसूत्रका दृष्टान्त देखिये। रोगोंके लक्षण असंख्य और अनन्त हो सकते हैं अथवा यों कहिये कि पृथक् पृथक् लक्षणोंकी समष्टिही पृथक् पृथक् नामके रोग कहे जाते हैं। रोग जगत्में असंख्य हैं और होते रहेंगे, इसलिये इनके लक्षणोंको समझनेके लिये आयुर्वेदके आचार्य्य नियम बांध गये हैं। उन्हीं नियमोंके बलसे ही आयुर्वेदीय चिकित्सक कह सकते हैं।

"अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत्"

अर्थात् आयुर्वेदमें जिन रोगोंके नाम नहीं मिलते, उनके लक्षणोंको देखकर एवं वायु-पित्त कफका विचार ठीक करके चिकित्सा की जायगी"। यद्यपि ऐसा कहनेसे यह नहीं समझना चाहिये कि नवीन रोगोंके लक्षणोंको सीखना अनावश्यक है तथापि आचार्य्योंका उपदेश यह है कि, बिना गुरूपदेश भी इन लक्षणोंसे चिकित्सा अवश्य भली भाँति चल सकती है। लक्षणोंको समझनेके लिये आयुर्वेदोक्त लिङ्ग सूत्र यह है—

"आध्मानस्तम्भरौक्ष्यस्फुटनविमथनक्षोभकम्पप्रतोदाः
कण्ठध्वंसावसादौ श्रमकविलपनंस्रंसशूलप्रभेदाः॥
पारुष्यं कर्णनादो विषयपरिणतिभ्रंशदृष्टिप्रमोहा
विस्पन्दोद्वेष्टनानि ग्लपनमशयनं ताडनं पीडनञ्च॥

---

* चरक तिस्रेषणीय अध्यायमें बुद्धिके स्थानमें शरीर वाङ्मनःप्रवृत्ति—ऐसा पद रखा है। उपलक्षण से यहाँ ऐसा अर्थ भी हो सकता है। संक्षेपार्थ विस्तार नहीं दिखाया गया।

नामोन्नामौ विषादो भ्रमपरिपतनं जृम्भणं रोमहर्षो
विक्षेपाक्षेपशोषग्रहणशुषिरताश्छेदनं वेष्टनञ्च ॥
वर्णःश्यावोऽरुणो वा तृड्पिचमहती स्वापविश्लेषसङ्गा
विद्यात्कर्माण्यमूनि प्रकुपितमरुतःस्यात्कषायोरसश्च ॥
विस्फोटाम्लकधूमकाःप्रलपनं स्वेदस्रुतिमूर्च्छनम् ।
दौर्गन्ध्यंदरणंमदोविसरणंपाकोऽरतिस्तृड्भ्रमौ ॥
ऊष्मातृप्तिवमःप्रवेशदहनंकट्वम्लतिक्ता रसाः ।
वर्णः पाण्डुविवर्जितः कथितता कर्म्माणि पित्तस्य वै ॥
तृप्तिस्तन्द्रा गुरुता स्तैमित्यं कठिनता मलाधिक्यम् ।
स्नेहापक्त्युपलेपाःशैत्यंकण्डूःप्रसेकश्च ॥
चिरकर्तृत्वंशोथोनिद्राधिक्यं रसौ पटुस्वादू ।
वर्णःश्वेतोऽलसता कर्म्माणि कफस्य जानीयात् ॥"

इन लिङ्ग सूत्रोंका स्मरण रखनेसे मनुष्य झट कह सकता है कि अध्मान स्तम्भ आदि लक्षण वायुके हैं, विस्फोट, अम्ल आदि लक्षण पित्तके हैं और तृप्तितन्द्रादि लक्षण कफके हैं। वायुपित्त कफके लक्षण अच्छी प्रकारसे निश्चित हो जाने पर चिकित्सा भी सुगम हो जाती है। इसका अनुभव प्रायः सभी वैद्योंको है।

लिङ्ग सूत्रके अनन्तर औषध सूत्रके एक दृष्टान्तकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करता हूँ। देखिये ज्वर चिकित्साके विषयमें कहा गया है—

लङ्घनं स्वेदनं कालो यवाग्वस्तिक्तकोरसः ।
पाचानान्यविपक्वाणां दोषाणां तरुणे ज्वरे ॥

औषध सूत्र ।

अर्थात् लङ्घन, स्वेदन, निर्दिष्टकाल, औषध सिद्ध नाना प्रकार यवागू और तिक्त-रस तरुण ज्वरमें अपक्व दोषोंको पाक करनेके लिये प्रधान उपाय हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सक ज्वरकी सामता और निरामताके भेदको अच्छी रीतिसे समझते हैं और सामज्वरमात्रमें प्रथम अवश्य ही लङ्घनादि उपायोंसे निरामता करनेका प्रयत्न करते हैं। शरीरमें अपक्व रसके सञ्चरणसे जो जो लक्षण दृष्टिगत होते हैं सो वैद्य भली-भाँति जानते हैं। डाक्टरीमें सामता और निरामताका तत्त्व अब समझा जाने लगा है। सामताको डाक्टर लोग आटो-इण्टोक्सिकेशन Auto Intoxication अर्थात् "अपक्व अन्नरसानशा" कहकर मानने लगे हैं ज्वर कालमें पसीना आनेकी जो दवा दी जाती है, और ज्वरमें मोचनके लिये २१ से २८ दिन आदि कालकी जो प्रतीक्षा की जाती है, एवं अन्न मण्ड तथा साबूदाना जो तरल पथ्य ज्वरमें दिया जाता है तथा कुटकी चिरायतेसे लगाकर सिनकोना तक जितने तिक्त रसके द्रव्य ज्वरमें प्रयुक्त होते हैं, उन सबके मूल भूत यही श्लोक हैं। ऐसे औषध सूत्र आयुर्वेदमें प्रत्येक रोगके लिये

असंख्य मिलते हैं और आयुर्वेदीय चिकित्सा इन सूत्रोंके अनुसार ही होती है। वैद्यक "सूँठ मिरचैइया" (Quackery) नहीं है!

रोग चिकित्साके पूर्व रोगका तत्त्व निरूपण करना प्रधान कार्य है; इसलिये अष्टाङ्ग आयुर्वेदके प्रसङ्गमें इसका भी कुछ तत्त्व सुनाना आवश्यक जान पड़ता है। रोगतत्त्व निरूपणके लिये वर्तमान डाक्टरी चिकित्सामें बहुत कुछ आडम्बर देखा जाता है। साधारण मनुष्य समझते हैं कि आयुर्वेदमें इतनी सूक्ष्मता नहीं है; परन्तु देखना चाहिये कि, इसीके सम्बन्धमें सुश्रुताचार्य क्या कहते हैं?

रोग विज्ञानके षड्विध उपाय

"त्रिभिरेतैर्विज्ञानोपायै (दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः) रोगाःप्रायशो वेदितव्या इत्येके। तत्तुन सम्यक्। षड्विधोहि रोगाणां विज्ञानोपायः। तद्यथा पञ्चभिः श्रोत्रादिभिः प्रश्नेन चेति।" अर्थात् "कोई कहते हैं दर्शन, स्पर्शन और प्रश्न इन तीन ही उपायसे प्रायः रोगोंको समझ लेना चाहिये, परन्तु यह मत ठीक नहीं। क्योंकि रोगोंको तो पाँचों इन्द्रियोंसे तथा प्रश्नसे जान लेना आवश्यक है" आचार्य सुश्रुतका अभिप्राय यह है कि रोगोंको भली भाँति समझनेके लिये कानसे वक्षस्थलादिकी परीक्षा करना (छातीपर कान लगाकर अथवा नलोंके द्वारा जैसे स्टेथसकोपसे डाक्टर लोग करते हैं) हाथसे यकृत् प्लीहादिका स्पर्श करके देखना, आँखसे जिह्वादि एवं विकृत लक्षणोंको देखना जिह्वासे रसादिकी परीक्षा करना, नाकसे, विकृतावस्थाकी गन्ध लेना, और रोगीसे पूछ पूछकर और और बातोंको जानना; प्रयोजनानुसार वैद्य इन सभी उपायोंको काममें लावे। चरकमें भी इसी प्रकारका उपदेश है; किन्तु लिखा है कि—"अन्यत्र रसज्ञानम्" जोही कुछ हो इन बातोंसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि रोग निर्णयके लिये साधारण मनुष्यके लिये जो कुछ उपाय हो सकते हैं वे सब उपाय आयुर्वेदमें उपदिष्ट हैं। अतः यह भी निःशंक कहा जा सकता है कि वर्तमान समयमें माइक्रोसकोप (microscope) स्टेथस्कोप (stethoscope) थर्मामिटर (thermometer) आदि जितने कुछ यन्त्र आविष्कृत हुए हैं आयुर्वेदके सामने कोई नवीन या अपूर्व वस्तु नहीं हैं। और यह भी विचारना चाहिये कि यदि ये अथवा इनके अनुरूप यन्त्र वैद्योंके पास नहीं थे तो श्रवणेन्द्रियसे रोगीकी परीक्षा एवं अदृश्य सूक्ष्म कृमियोंकी परीक्षा (जो कि आयुर्वेदमें उपदिष्ट है) किस प्रकार होनी सम्भव थी?

आयुर्वेदके अष्टाङ्ग।

हम पहलेही कह चुके हैं कि, आयुर्वेद अष्टाङ्ग शास्त्र है। इन आठ अङ्गोंके नाम शल्यतन्त्र, शालाक्यतन्त्र, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायन

और वाजीकरण हैं। इन चिकित्साङ्गोंमें रसायन और वाजीकरण स्वस्थकी स्वास्थ्य रक्षा तथा जीर्ण शीर्ण, निस्तेज रोगीको वल वर्ण यौवनादि देनेके लिये हैं; और वाकी ६ चिकित्साङ्गोंका उद्देश्य रोगीका रोग निवारण है।

१—शल्यतन्त्र—(Surgery)—सुश्रुतके मतानुसार यही चिकित्साका प्रथमाङ्ग है। शस्त्रसाध्य रोगोंका निवारण तथा शल्योंको निकालनेके लिये, इस चिकित्साङ्गकी आवश्यकता है। वर्त्तमान समय पश्चिमी चिकित्सामें जितनी कुछ काटना चीरना आदि चिकित्सा प्रचलित है और उसका जो कुछ गौरव है सभीका मूल यह शल्यतन्त्रही है, इसमें सन्देह नहीं। प्राचीन कालमें शल्यतन्त्रविद् सुश्रुत-सम्प्रदायके वैद्य वातकी वातमें रोगीकी प्राणरक्षाके लिये हस्तपादादिका छेदन निरापद रूपसे कर सकते थे। सुश्रुत मर्माध्यायमें कह गये हैं—

"तस्मात्तयोरभिहतस्य तु पाणिपादं छेत्तव्यमाशु मणिबन्धनगुल्फदेशे" (सु. शा. ६ अ.)

जलोदर रोगमें भी सुश्रुतके चिकित्सा स्थानके १४वें अध्यायमें कथित "व्रीहिमुख-शस्त्र" और "द्विद्वारानाडी" (Frocarand canula) से चार पाँच वारमें समग्रजल निकालनेकी विधि डाक्टरी जलसेन (Paracentesis) से सर्वथा उत्कृष्ट है, यह तो वार वार हम स्वयं चिकित्सा कर देख चुके हैं। अश्मरी रोगमें सुश्रुतके चिकित्सा स्थानके ७वें अध्यायमें कथित वस्तिको चीरकर पथरी (gravel) निकालनेकी विधि सुन्दर रूपसे वर्णित है।

सुश्रुतके शारीरिक आठवें अध्यायमें वर्णित यकृत् और प्लीहादि रोगमें हाथ पैरके शिरादाह और शिरावेधसे जो अद्भुत फल मिला करता है, उसको डाक्टर अभी तक नहीं जान सके। इसी तरह पेट चीरकर यन्त्रोंपर शस्त्रकर्म्म करना (Laparotomy) और करोच्छेद (Trephining) अर्थात् खोपड़ीको चीरकर मस्तिष्कके ऊपर शस्त्र कर्म्म करना, सुश्रुत चिकित्साके द्वितीय अध्याय और वाग्भट उत्तर स्थानके २६ वें अध्यायमें अच्छी तरह वर्णित है। अधिक कहाँतक कहें प्राचीन कालमें जो जो अद्भुत शस्त्र कर्म्म किये जाते थे आयुर्वेदमें उनका वर्णन देखकर, हमें कहना होता है कि, उनसे अधिक विस्मयकर शस्त्र कर्म्म अभी तक विशेष कुछ नहीं किये गये हैं। शस्त्र कर्म्म की चर्चा इस देशसे उठ गयी, अतः प्रतिपक्षी इस समय चाहे जो कुछ कहा करें।

शल्यतन्त्रका इतना ही स्वल्प विवरण जो कि, सुश्रुत-संहिता और उसके उप-जीवी ग्रन्थोंमें मिलता है, देखकर ही हम लोग विस्मित होते हैं यदि—

"औपधेनव मौरभ्रं सौश्रुतं पौष्कलावतम्।
शेषाणां शल्यतन्त्राणां मूलान्येतानि निर्दिशेत् ॥"

इस श्लोकमें निर्दिष्ट—आयुर्वेदके शल्यतन्त्रके प्रधान ग्रन्थ इस समय मिल जाते तो न मालूम कितने अपूर्व तत्त्व सुनकर जगत्को विस्मित होना पड़ता।

२—शालाक्यतन्त्र—Diseases of the eye, ear, nose and throat चक्षु, कर्ण, मुख नासिका, कण्ठादि-गत रोगोंकी चिकित्साके लिये यह दूसरा चिकित्साङ्ग प्रसिद्ध था। इस अङ्गके प्रधान आचार्य विदेहराज जनक, निमि, काङ्कायन,, कृष्णात्रेय आदि थे। इनके एक भी ग्रन्थ वर्तमान समयमें नहीं मिलते, अथवा यों कहिये कि भारतवर्षके भाण्डारमें अमुद्रित अवस्थामें कहीं पड़े हुए हैं उनकी खबर हम लोग नहीं जानते। इन आचार्योंके नाम और इनके ग्रन्थोंके प्रमाण सुश्रुतके उत्तरतन्त्रके प्रथम अध्याय और वाग्भट्टके उत्तर स्थान में तथा श्रीकण्ठदत्त, शिवदास, अरुणदत्त आदि की टीकाओंमें मिलते हैं।

शालाक्यतन्त्रोक्त ग्रन्थोंके विलुप्त होनेके साथ ही इस देशके शालाकी वैद्योंका भी बहुत कुछ विलोप होगया है। इस समय कहीं कहीं नेत्र चिकित्सा करने वाले देशीय वैद्य मिलते हैं जो लोग प्राचीन रीतिसे नेत्र पर शस्त्रकर्म करके और अञ्जन-आश्च्योतन आदिसे नेत्रके कठिनसे कठिन रोग आराम करते हैं—इन्हें देखकर प्राचीन वैद्योंकी स्मृति जागरित हो आती है। अर्मरोगमें (Ptery geum) छेदनका सुश्रुतोक्त उपदेश बहुत ही मनोरम है! सुश्रुत कहते हैं

अपाङ्गं प्रेक्षमाणस्य बडिशेन समाहितः।
मुचुण्ठ्याऽऽदाय मेधावी सूचीसूत्रेण वा पुनः॥
नचोत्थापयता क्षिप्रं कार्य्यमभ्युन्नतं तु तत्।
शस्त्रपातभयाच्चास्य वर्त्मनी ग्राहयेद् दृढम्॥
ततः प्रशिथिलीभूतं त्रिभिरेव विलम्बितम्।
उल्लिखन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन परिशोधयेत्॥
विमुक्तं सर्वतश्चापि कृष्णाच्छुक्लाच्चमण्डलात्।
नीत्वा कनीनकोपान्तं छिन्द्यान्नातिकनीनकम्॥
चतुर्भागस्थिते मांसे नाक्षिव्यापत्तिमर्हति।
कनीनक बधादस्र नाड़ी चाप्युपजायते॥

इस प्रकरणका वर्णित शस्त्रकर्म्म, डाक्टरी शस्त्रकर्म्मके साथ ठीक एकही प्रकारका है। अभीतक ऐसे दृष्टान्त विरल नहीं हैं। जहाँ आयुर्वेदीय अञ्जन आदि औषधोंसे औरोंके असाध्य नेत्र रोगोंकी शान्ति होती है। हमने स्वयं देखा है कि पुराने नेत्राभिष्यन्द आदि कितनेही नेत्र रोगोंमें "कोकेन" "एट्रोपीन" (Cocoine, Atropine) आदि डाक्टरी औषधोंसे जहाँ कुछ भी फल न हुआ, वहाँ पठानी लोध या त्रिफलाके जलसे नेत्र बिल्कुल नीरोग होगये। शिरोविरेचन अर्थात् कायफल, चिरमी आदि औषधोंसे जुखाम जारी करके पुराने शिरो रोगोंको दूर करना यह आयुर्वेदीय चिकित्साकी ही प्रणाली है, जिसको आजतक डाक्टर लोग भली भाँति काममें लाना नहीं जानते। दृष्टान्त कहाँ तक कहा जाय वाग्भट्टके उत्तर स्थान और सुश्रुतके उत्तरतन्त्रमें

शालाक्य तन्त्रोक्त कितनीही क्रियाएँ अभीतक पायी जाती हैं, जिनके अनुसार चिकित्सा करनेसे अपूर्व फल मिलता है।

काय चिकित्सा—(Practice of Medicine) कायचिकित्साका अक्षरार्थ शारीरचिकित्सा है। यों तो सभी चिकित्साशास्त्र इस चिकित्साङ्गके अन्तर्भूत हैं ही तथापि इसमें विशेषता यह है कि, काटना फाड़ना आदि शल्यतन्त्र तथा शालाक्य-तन्त्रके कामोंको न कर केवल औषधोंसे रोगोंका प्रतिकार करना कायचिकित्साका प्रधान कार्य है। इस समय आयुर्वेदोक्त अन्यान्य अङ्गोंकाविलोप होने पर भी काय-चिकित्सा वर्तमान रहनेसे आयुर्वेदका गौरव रक्षित हो रहा है।

आयुर्वेदोक्त काय चिकित्साके महत्त्वको न समझ कर अन्य मतावलम्बी चिकित्सक लोग कह देते हैं कि आयुर्वेदीय औषध सूक्ष्म विचारके विना ही केवल बँधी रीतिसे प्रयुक्त होती है। अर्थात् आयुर्वेदोक्त चिकित्सा युक्ति वर्जित Irrational है। ऐसा कहनेवालोंको बुलाकर आयुर्वेदोक्त दश बीस औषध सूत्र दिखा देने चाहिये। यद्यपि औषध सूत्रका दृष्टान्त हम पहले कह चुके हैं तथापि आगत प्रसङ्गानुसार और उदाहरण स्वरूप कुछ दृष्टान्त दर्शित कराना हम उचित समझते हैं। ज्वरातिसार चिकित्सामें लिखा है—

ज्वरातिसारयोरुक्तं भेषजं यत् पृथक् पृथक्।
न तन्मिलितयोः कार्य्यमन्योन्यं वर्धयेद् यतः॥

अर्थात् ज्वर और अतिसारमें जो पृथक् पृथक् औषध कहे गये हैं ज्वरातिसारमें उन औषधोंको मिलाकर प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि ज्वरहर औषधि प्रायः भेदन (दस्तावर) होती हैं और अतिसार हर औषध प्रायः धारक है। इसलिये इनको मिलाकर प्रयोग करनेसे परस्पर विरुद्ध कार्य्य होता है। इसका कारण यह है कि ज्वरहर औषधसे अतिसारकी वृद्धि और अतिसारहर औषधसे ज्वरकी वृद्धि होती है। देखिये इस श्लोकमें कितना प्रयोजनीय अर्थ भरा हुआ है। जिसको न समझ कर चिकित्सा करनेसे कितना अनर्थ हो सकता है। इस प्रसङ्गसे यह भी कहना चाहिये कि ज्वर, अतिसार और ज्वरातिसारकी चिकित्सामें जो सामता और निरामताका विचार वैद्य लोग किया करते हैं वह चिकित्साका अति सूक्ष्म विवेक है।

प्रायः देखनेमें आता हैं, बड़े बड़े डाक्टर लोग इन सब सामावस्थामें दुग्ध, मांस, यूस, मदिरा आदि प्रयोग करके रोगीके बलको बढ़ानेके नामसे रोगका बल बढ़ाया करते हैं। क्या यही चिकित्सा युक्तिपूर्ण (Rational) कही जाती हैं। डाक्टरीमें सामता-का अर्थप्रकाशक पद (Auto-intoxication) थोड़ेही दिनसे प्रचलित हुआ है, परन्तु हमारे वृद्ध महर्षिगण तो कई शताब्दियोंके पूर्व ऐसी ऐसी बातें कह गये हैं। थोड़ेही दिनसे जर्मनीके अस्पतालोंमें डी. ए. (Diet Absolutum) अर्थात ज्वरमें प्रथम ६ दिन तक लङ्घनकी व्यवस्था चलायी गयी है, जिसके फलको देखकर

जर्म्मन डाक्टर विस्मित होते हैं। आयुर्वेदमें तो ज्वरमें ६ दिनके उपवास करनेकी विधि पहलेसे ही लिखी हुई है। और भी शोथ चिकित्साका दृष्टान्त आप लोगोंके नयन पथमें लाया जाता है कि, शोथकी चिकित्सामें लवण एवं प्रायः जल भी बन्द करके दुग्धमात्रका पथ्य देना आयुर्वेदका साधारण उपदेश है, इससे जो कुछ आश्चर्यजनक उपकार होता है वह आप लोग भली भाँति जानते हैं। किन्तु डाक्टरीमें अब इस बातका आविष्कार हुआ है कि शोथ रोगोंके रक्तमें लवणका भाग अधिक हो जाता है और खाद्यमें लवण न देनेसे रक्तमें लवणका भाग दिन पर दिन कम होकर साथ साथ शोथ भी घट जाता है। कैसा आश्चर्यका विषय है कि जिन बातोंको ऋषि लोग सहस्र सहस्र वर्ष पहले संसारके उपकारार्थ प्रकट कर गये थे उन्हीं बातोंका तथाकथित आविष्कार कर डाक्टर लोग अब वाह वाही लूट रहे हैं!

हमारे आबालवृद्धपर्यन्त सब पर यह बात विदित है कि "दही" बहुतही उत्तम पुष्टिका पदार्थ है। किन्तु जब तक जर्मनीके डाक्टर मेचनीकफ़ने नहीं कहा था कि "दही" आयुर्वर्द्धक और पाचक वस्तु है तब तक डाक्टर लोग दहीको बहुत खराब समझते थे। मेचनीकफ़के उक्त कथनके बाद वे लोग दहीके ऐसे भक्त हो गये हैं कि शीतज्वर, कास, शोथ आदि सभी रोगोंमें दहीका प्रयोग करने लगे हैं। अब फिर भी यदि मेचनीकफ़के सदृश कोई विलायती डाक्टर जन्मेंगे और कहेंगे कि इन सब रोगोंमें दहीका प्रयोग करना ठीक नहीं तब कहीं मेचनीकफ़के भक्त लोगोंकी आँखें खुलेंगी।

हमारे शास्त्रमें पुराने और कठिन रोगोंकी चिकित्सा करनेके लिये जो "पञ्चकर्म" की विधि लिखी है उसके अनुसार चिकित्सा करनेसे जो जो अपूर्व फल होते हैं उसको देखकर डाक्टरोंको विस्मयसे अभिभूत होना पड़ता है। डाक्टर वमन, विरेचन और वस्तिकर्मको भलीभाँति समझते और करते हैं किंतु वे केवल तात्कालिक फलके सिवाय अधिक कुछ लाभ नहीं उठा सकते। वे जानते हैं कि वमन करानेसे अन्नादिक और विरेचन वस्तिकर्मादिसे मलादिका निकालदेना होता है परन्तु वे यह नहीं जानते कि स्नेह स्वेदादिके साथ वमन विरेचन और वस्तिकर्मादिके प्रयोग करनेसे पुराना श्वासरोग, ज्वर, वातव्याधि आदि भी निर्मूल हो सकते हैं, निरूह और अनुवासन वस्तिकर्मके गुण कैसे हैं और कहाँ कौन वस्तिका प्रयोग होना चाहिये इस बातकी सूक्ष्मताको आज बीसवीं सदीमें भी वे लोग नहीं जानते हैं। एवं शिरोविरेचन औषधोंसे रोगीको जुखाम जारी करके पुराने शिरोरोग, नेत्र रोगकी चिकित्सा अभी तक उनको अज्ञातही है। इसके सिवाय हम यह कह सकते हैं कि, मानसिक रोगोंकी चिकित्साएँ यदि कहीं वर्णित हैं तो केवल आयुर्वेद ही में हैं। शोक, दुःख, अजीर्ण आदि नाना कारणोंसे शरीरमें वायु विकृत होने पर कितनेही (शारीर और मानस) वायुरोग उत्पन्न होते हैं जिन रोगोंके नाम वर्तमान

समय अङ्गरेजीनें Hypochondriasis, Hysteria आदि वड़े शानदार हैं—इसको बुद्धिमान वैद्य भलीभाँति जानते हैं। इस गये बीते समयमें भी वैद्य लोग जो डाक्टरों की वरावरी कर रहे हैं इसका कारण इसी चिकित्साका कौशल है। इसको दिखाने के लिये ही आचार्य लोग आयुर्वेदके औषध सूत्ररूप विषयको प्रचलित कर गये हैं।

४ भूतविद्या—(Treatment of mental Diseases) पश्चिमी हवाके कारण आजकल भूत प्रेतोंको नहीं मानते, वैसेही भूत प्रेत भी मानों रेलतार बिजली की रोशनीसे डरकर दिनपर दिन भगे जाते हैं। अस्तु भूतविद्याका अर्थ भूतग्रस्त सदृश मानस रोगोंकी चिकित्साका है। सुश्रुतमें इसका प्रमाण इस प्रकार मिलता है—

"न ते मनुष्यैः सहसंविशन्ति न वा मनुष्यान् क्वचिदा विशन्ति।
येत्वाविशन्तीति वदन्ति मोहात्तेभूतविद्याविषयादपोह्याः॥ (सु. उ. ६ अ.)

इसका अभिप्राय यह है कि "भूतप्रेतादि मनुष्यके शरीरमें कभी प्रविष्ट नहीं होते (उनके सदृश लक्षणोंको देखकर वर्णना-सौकर्य्यार्थ देवग्रहजुष्ट आदि नाम रखे गये हैं) जो लोग समझते हैं कि यथार्थ ही भूतप्रेतोंका आवेश होता है वे लोग भूतविद्याके विषयसे बिलकुल अनभिज्ञ हैं।" यह बात सत्य है कि सुश्रुतके परवर्ती प्रतिसंस्कर्त्ता और संग्रहकार लोग सुश्रुताचार्यके इस अभिप्रायको न समझकर बहुधा इसके विरुद्ध वचन लिख चुके हैं। परन्तु ऐसी स्पष्टोक्तिके पीछे सन्देह नहीं करना चाहिये। जप, होम, मन्त्र आदि अथर्व्ववेदोक्त विधि वस्तुतः मानस रोगोंकी मानसिक चिकित्सा ही हैं। वर्त्तमान युगमें यूरप और अमेरिकाके स्थानोंमें इसी भूतविद्या "हिप्नोटिजम्" (Hypnotism) स्पिरिच्युलसायन्स (Spiritual Science) आदि नामोंसे हो रही है। अंग्रेजीमें इस विषय पर बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं। योगशास्त्रमें आविष्कृत चाक्षुषीविद्या, त्राटकयोग आदि उपाय अब नये अंग्रेजी ढंगसे डाक्टर टकी, मिल्नी, किंग्सबेरी प्रभृति नामोंसे प्रसिद्ध हो रहे हैं। हम लोग जिन मानस रोगोंको अधिक होनेसे भूतोन्माद और स्वल्प होनेसे वातव्याधि मात्र कहते हैं, अब उन्हींका नये फैशनका नाम हिस्टीरिया (Hysteria) हुआ है। भूतविद्या कोई समय इस देशमें बहुत ही उन्नतिको प्राप्त हुई थी। किन्तु हमारी दुर्भाग्यतासे झाड़ा फूकी मात्रमें अवशिष्ट रह गयी और भूतविद्याके ग्रन्थ भी बिलकुल विलुप्त हो गये। संग्रह ग्रन्थोंमें भूतविद्याका जो कुछ विषय मिलता है उसको देखकर सन्देह घटनेकी जगह बढ़ता ही है, किन्तु अपस्मार, उन्माद और भूतोन्माद इन रोगोंके लिये "यथोक्तमिह-तत्सर्व्वं प्रयुञ्जीत परस्परम्" (वा. उ. ५ अ.) इस उपदेशसे और भूतोन्मादमें औषध, अञ्जन, तैल, घृत, स्नान आदिकी व्यवस्थाको देखकर अवश्य ही प्रतीति होती है कि भूतोन्माद कई प्रकारके मानस रोग और उनकी चिकित्सा मात्र है, अब भी कोई चाहे तो, आयुर्वेद और योगशास्त्रकी सहायतासे विलुप्त प्राय इस विद्याका पुनरुद्धार हो सकता है।

५—कौमार भृत्य (Midwifery and Diseases of Children) कुमार शब्दका अर्थ बालक है। गर्भाधानसे लगाकर बालक जब तक ४।५ वर्षका न हो तब तक बालक और उसकी माताका स्वस्थवृत्त, तथा रोगोंकी चिकित्सा जिस शास्त्रमें वर्णित है उसका नाम कौमारभृत्य है। और और चिकित्साङ्गके सदृश इस चिकित्साङ्ग-की भी उन्नति हुई थी। गर्भाधान किस किस विधिसे होना चाहिये, गर्भाधान कालमें माता पिताका स्वास्थ्य कैसा रहना चाहिये और शास्त्रोक्त विधियोंको न माननेसे कैसा बालक उत्पन्न होता है, इस विषय पर कौमार भृत्यका उपदेश यथार्थ ही अमूल्य और अद्वितीय है। पुत्र कन्याका जन्म यदृच्छासे (पुत्रकी इच्छा हो पुत्र उत्पन्न करे, कन्याकी इच्छा हो कन्या पैदा कर सके) होता है यह भ्रान्त विश्वास अभी तक इस चढ़े बढ़े विज्ञानके युगमें भी अंग्रेजोंके मनसे दूर नहीं हुआ। परन्तु हमारे आचार्य लोग "पुंसवन" विधिका उपदेश कर गये हैं; उनका पालन करनेसे फल अवश्य मिलता है। पश्चिमीय विद्वानोंमें लोग पुंसवन अर्थात् गर्भस्थ बालकको पुत्र कर देना बिलकुल असम्भव कहते हैं, और इस मतको (Exploded theory) मानते हैं, उनसे हमारी यही प्रार्थना है कि पहिले महर्षियोंके कहे हुए नियमोंका यथा रीति पालन करके और इसके फलाफलको देखकर सत्यझूठका विचार करना चाहिये। आनन्दकी बात है कि अब नयी रोसनी वालोंको प्राचीन बातोंकी खबर कुछ कुछ मिल रही है, और अब इनके Dowson's consation of Sex (1908) आदि ग्रन्थ निकल रहे हैं।

गर्भाधानके अनन्तर गर्भिणीको अवश्य पालनीय नियम, दौर्हृद (गर्भावस्थाकी उत्कट अभिलाषा) देनेका प्रयोजन और दौर्हृद न देनेसे हानियां तथा बालककी विकृताङ्गता आदिके विषयमें आयुर्वेदमें जिस प्रकारके लेख मिलते हैं, उनको देखकर तीक्ष्ण बुद्धियोंको अवश्य स्वीकार करना पड़ता है कि, ये बातें यदि सत्य हैं तो बड़ी ही अद्भुत हैं। हम तो समझते हैं कि ये तत्त्व सर्वथा सत्य हैं क्योंकि आजतक किसीने असत्यका प्रमाण भी नहीं दिखाया और सत्यताके प्रमाण बहुत मिलते हैं।

ज्वर, रक्तस्राव आदिसे गर्भस्राव और गर्भपातकी सम्भावना होने पर आयुर्वेदोक्त मासानुमासिक क्याथोंसे क्या अपूर्व फल मिलता है, सो आप लोग भलीभाँति जानते हैं। इन क्याथोंके उपदेशक महर्षियोंने क्याही अद्भुत द्रव्य प्रभावकी अभिज्ञता प्राप्त की थी, यदि विदेशी चिकित्सक लोग इन क्याथोंका प्रयोग करें तो आश्चर्यजनक फलको देखकर अवश्य ही विस्मित होंगे। (सु. शा. १० अ. देखिये) और मूढ़गर्भकी चिकित्सा तो इस अवनतिके समयमें भी आयुर्वेदमें जिस प्रकारसे वर्णित है उसको देखकर मानना पड़ता है कि वर्तमान समयकी प्रणालियाँ—यथा बालक जनाना, प्रयोजनानुसार माता और बालक पर शस्त्रकर्म करना—सभी सुश्रुतोक्त—

"उत्कर्षणापकर्षण-स्थानापवर्तनोत्कर्तन-भेदनच्छेदन-पीडनर्जुकरण दारणानि"

(सु. चि. १५ अ.) इन कर्मोंके अन्तर्भूत हैं। सुश्रुतोक्त मूढ़गर्भोंकी गतियाँ और उनकी चिकित्सा विषयक उपदेशोंको पढ़कर कौन नहीं स्वीकार करेगा कि केवल "अपवर्त्तन" (Turning) ही नहीं किन्तु "उदर विदारण" (Caeserion Section) "गर्भधारण" (Embryotony) आदि शस्त्रकर्मभी किसी समय कौमारभृत्यक वैद्योंके हस्तामलक थे।

बौद्ध इतिहासोंमें स्पष्ट लेख है कि राजगृह निवासी जीवकाचार्य कौमारभृत्यके बड़े आचार्य थे। इसीसे पाली भाषामें उनका नाम "जीवक कौमार भच्च" लिखा मिलता है। जीवक राजा बिम्बीसारके चिकित्सक थे और उनका नाम समग्र भारतमें प्रसिद्ध था। बुद्धदेवके समयमें गान्धारकी राजधानी तक्षशिला (Taxilla near modern Kandhar) में आप कौमारभृत्यके अध्यापक और इस तन्त्रके कई ग्रन्थोंके प्रणेता थे परन्तु क्या ही शोककी बात है कि आज जीवकाचार्यके एक भी ग्रन्थ नहीं मिलते।

६ अगदतन्त्र (Toxicology) स्थावर और जङ्गल सभी प्रकारके विषोंकी चिकित्सा जिसमें वर्णित है उस शाखाङ्गका नाम "अगदतन्त्र" है। उद्भिज्ज अर्थात् तरु लतादिसे उत्पन्न नानाप्रकारके फल मूलादि विष और पार्थिव अर्थात् पृथ्वीसे उत्पन्न, संखिया, हरिताल आदि विषोंको स्थावर विष कहते हैं और सर्प, वृश्चिक नाना प्रकारके कीटक आदि विषोंकी जङ्गम विष संज्ञा है। इन सब विषोंकी पहिचान और इनसे प्राणियोंकी रक्षा यही अगदतन्त्रका प्रधान विषय है। इस अगदतन्त्रको पृथक् चिकित्साङ्ग समझकर प्राचीनोंने इसकी इतनी उन्नति की थी कि, राजाओंकी रसोईसे लगाकर युद्धक्षेत्र तक अगदतन्त्रविद् वैद्योंकी बड़ी भारी आवश्यकता समझी जाती थी। इसी कारण सुश्रुतमें उपदेश है—

"महानसे प्रयुञ्जीत वैद्यं तद्विद्यपूजितम्"
"तस्माद्वैद्येन सततं विषाद्रक्ष्यो नराधिपः।" इत्यादि

इसके सिवाय सुश्रुतके कल्प स्थानमें अगदतन्त्रके बहुत कुछ विषयोंकी चर्चा है उसको देखकर बुद्धिमानोंके चित्तमें प्राचीन कालिक उन्नतिकी छाया प्रतिफलित होती है। एक वह समय था कि राजाओंकी दिग्विजयिनी सेनाके साथ अगदतान्त्रिक वैद्य चलते थे। जिनके लिये जल वायुकी परीक्षा आदि करनेके कितने ही उपदेश हैं।

जल वायु आदिके दोषोंको देखकर प्रतिकार करनेवाले वे वैद्य लोग—भारतके दुर्भाग्यसे कहाँ गये ? महाभारतमें कथा है कि, जब राजा परीक्षितको तक्षकने डसा उस समय अगदतान्त्रिक मन्त्र औषधोपचारसे अवश्य प्राणदायक धन्वन्तरि नामक एक वैद्य उनको संजीवित करनेके लिये आरहे थे किन्तु तक्षकने बड़ी चतुराईसे उनको लौटा दिया। जोहो आजकल हम लोगोंको यह भी ज्ञान नहीं कि, यदि किसीने अफीम या वच्छनाग खा लिया तो क्या उपाय करना चाहिये।

जङ्गम विषोंकी चिकित्सा अब भी कहीं कुछ है तो आयुर्वेदमें ही है। यदि किसीको बिच्छूने काट लिया तो डाक्टर साहब एमोनिया (Ammonia) खोजते फिरेंगे, परन्तु हमारे अगदतान्त्रिक वैद्य तुरन्त घास फूससे इलाज कर देते हैं। साँपके डसे हुएका इलाज डाक्टर साहब "परमाङ्गनेट आफ पोटाश" (Permanganate of Potash) से करते हैं किन्तु यदि देरी होजाय या उक्त औषध न मिले तो दाँतसे अङ्गुली काटनेके सिवाय और क्या कर सकते हैं। अब भी सुशिक्षित मालवैद्य अद्भुत लटका दिखाते हैं। वङ्ग तथा पश्चिममें मालवैद्योंकी चिकित्सा सर्पदंशनके विषयमें अद्भुत फल देनेवाली है—यद्यपि सर्पदंशनकी चिकित्सा करनेवालोंकी संख्या प्रतिदिन कम होती जाती है एवं यह विद्या अपात्रों के हाथ चली जानेसे बहुत कमजोर और अविश्वसनीय हो गयी है। अगदतन्त्रमें सर्पदंशन होनेसे जो "अरिष्टबन्धन" (Ligatures, सर्पदष्ट स्थानको उपर्युपरि तीन जगह बाँधना) आचूषण (suction) छेदन वा विस्रावण (Incisions and Evacuating pus etc) सिराव्यध (Venesection) और दाह (Cautery) प्रभृति करनेकी विधि है। इस छिन्न-भिन्न विध्वस्त समयमें शास्त्रको जानकर केवल कुल परम्पराके उपदेशसे इन्हीं विधियोंके अनुसार अपढ़ कितने मालवैद्य सर्पदंशनकी चिकित्सा और असंख्य प्राणियोंकी प्राण रक्षा करते हैं। अमृतबाजार पत्रिकाके भूतपूर्व सम्पादक स्वर्गीय बाबू शिशिर कुमार घोषने इन मालवैद्योंकी सेवा करके सर्पदंशन चिकित्सा विषयमें जो ज्ञान प्राप्त किया था उसका सारांश उनके (Snake bite & its Treatment) नामक अङ्गरेजी ग्रन्थमें भली प्रकार दिखाया गया है। उनकी लिखित चिकित्सा-विधि देखनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि मालवैद्योंकी चिकित्सा और सुश्रुतोक्त चिकित्सा एकही है। यथार्थ ही शिशिरबाबूका ग्रन्थ सुश्रुतकल्पस्थान पञ्चम अध्यायकी व्याख्या समझी जा सकती है।

इसी प्रसङ्गसे और एक नवाविष्कृतग्रन्थका विवरण उपस्थित करता हूँ—इस ग्रन्थका नाम "कौटिल्य अर्थ शास्त्र" है। यह ग्रन्थ प्रसिद्ध राजनीतिविद् चाणक्यका बनाया हुआ है। इसमें सर्पदष्ट, फाँसी, विषप्रयोग आदिसे मरे हुए मनुष्यका शवच्छेद (Post morten) करनेसे भीतर बाहर जो जो लक्षण दीख पड़ते हैं उनका लक्षण प्रसङ्गागत स्पष्ट रूपसे लिखा हुआ है। यद्यपि आजकलके आयुर्वेदीय ग्रन्थोंमें इस विषयका विशेष कुछ नहीं मिलता तथापि चाणक्यके ग्रन्थ देखनेसे अवश्य मानना पड़ेगा कि इस अङ्गका—जिसका नाम अङ्गरेजीमें (Medical Jurisprudencee) है, किसी समय विस्तृत विवरण समेत अगदतन्त्रके अन्तर्भूत था।

७८ रसायनतन्त्र और वाजीकरणतन्त्र।

"यज्जरा-व्याधि-विध्वंसि तद् रसायनमुच्यते"। वार्द्धक्य और रोगोंको दूर

करनेके लिये जो कुछ औषध हैं उनका नाम रसायन है। इस विषय पर प्रचलित तन्त्रका नाम रसायनतन्त्र है। वाजि शब्दका अर्थ अश्व (किसीके मतमें शुक्र) "येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लभते नरः। तद्वाजीकरणम्" शुक्र वर्द्धन और ओजोवर्द्धन औषधोंको नित्य अथवा प्रयोजनानुसार सेवन करना—वाजीकरण तन्त्रकी—व्यवस्था है। चरक कहते हैं "नाभुक्तभेषजः स्त्रियमुपेयात्" अर्थात् वाजीकरण औषध सेवन न करके स्त्रीका सहवास नहीं करना। शुक्रको शरीरका सार वस्तु समझकर आचार्यगण वीर्य्य रक्षाके लिये मनुष्यको यहाँ तक सतर्क कर गये हैं।

अंग्रेजीमें इन दोनों तन्त्रोंके अनुरूप कोई विशेष चिकित्साङ्ग नहीं हैं। अतः इन तन्त्रोंके अंग्रेजी नामही नहीं मिलते। कोई कोई अल्पबुद्धि मनुष्य समझते हैं कि रसायन औषध है ही नहीं, किन्तु चरकोक्त अभयामलकीय रसायनसे लगाकर रसशास्त्रोक्त मकरध्वजादि महौषधोंके प्रयोगसे क्या अद्भुत फल मिलता है सो दृष्टकर्मा वैद्य अवश्य ही जानते हैं। गतानुगतिकसे डाक्टर लोगोंने अब मकरध्वजका व्यवहार करना सीखा है किन्तु अनेक दिन तक मकरध्वज सेवन करनेसे जो रसायन फल होता है उसकी खबर वे नहीं रखते। विलायती डाक्टर मेचनीकफने देखा कि दहीके निरन्तर सेवनसे अस्ट्रियाके अधिवासी वृद्ध अवस्था तक निरोग रहते हैं और उनके शरीर पर बुढ़ापेके चिह्न तक नहीं दीख पड़ते—अतः सभीको दहीका सेवन कराना डाक्टरीका नया ढंग चला है, किन्तु दहीके विधि पूर्वक सेवनसे जो रासायनिक फल मिलता है उसका यथार्थ तत्त्व अभी तक उनकी समझमें नहीं आया, हमारे यहाँ दही नित्य सेव्य है, उसके दोष गुण देखकर आचार्य कह गये हैं—

"न नक्तं दधि भुञ्जीत न चाप्यघृतशर्करम्"। परन्तु इस उपदेशकी सुनाई तभी होगी जब कि कोई विलायती आचार्य इसे ठीक बता देगा।

ऋतु हरीतकी, अमृत भल्लातक आदि कितने ही सुलभ रसायन हैं। इन साधारण औषधोंसे भी अपूर्व फल मिलता है विदेशी वैद्य लोग—द्रव्य प्रभावको अचिन्त्य समझ कर इनका विधि पूर्वक प्रयोग तो कर देखें।

वाजीकरण औषधोंमें अश्वगन्धा, तालमूली आदि कितनी ही औषधियाँ विदेशी-लोग अब प्रयोगमें लाने लगे हैं। एवं छागाण्डके सेवन करनेसे शुक्रवृद्धि होती है, इस विषयका उपदेश डाक्टर ब्राउन सेकार्डके सहस्राधिक वर्ष पहले हमारे महर्षि लोग कर गये हैं। इस प्रसङ्गमें यह भी कहना अत्यावश्यक प्रतीत होता है कि, ध्वजभङ्ग (नामर्दी) शुक्रसम्बन्धी रोगोंकी चिकित्सामें यूनानी हकीमोंकी जो कुछ बहादुरी है, सो भी आयुर्वेदके वाजीकरणतन्त्रकी कणामात्रको लेकर ही है। इसका प्रमाण स्वरूप उदाहरण यह है कि, हकीम लोग असगन्ध, सफेद मूसली, सालम मिश्री आदि जितनी दवाइयोंको इस काममें वरतते हैं वे सब अश्वगन्धा, मूसली, सिधामूली आदि नामोंसे आयुर्वेदमें प्रसिद्ध हैं। और खस्सी (बकरे) की चरबी आदिको दवाइयोंसे पाक करके

प्रयोग करना भी आयुर्वेदोक्त छागलाद्यघृत, बृहत् अश्वगन्धा आदिका अनुकरण मात्र है। संखिया, हरिताल, पारद आदिके प्रयोग रसशास्त्रोक्त विधियोंके ही विपर्य्यय हैं। देखिये वाजीकरणतन्त्रकी कणामात्रको लेकर या कहिये कि अष्टाङ्ग आयुर्वेदके एक अङ्गके कणामात्रसे यदि तिब्बीकी यह उन्नति हुई है तो इस हिसाबसे समुद्र स्वरूप अष्टाङ्ग आयुर्वेदके महत्त्वकी गम्भीरता कितनी है ?

आयुर्वेदकी अवनतिका इतिहास।

आयुर्वेदकी प्राचीन ऊर्जित अवस्थाका इतिहास यहाँ तक संक्षेपसे कहकर अब इसकी अवनतिका किञ्चित् विवरण करना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। जिस समय भारतवर्षमें हिन्दू राजाओंका आधिपत्य विनष्ट होने लगा एवं बौद्धोंका और बौद्ध राजाओंका प्रभाव समग्र भारतमें व्याप्त हो गया, उसी समयके संघर्षसे आयुर्वेदका कुछ कुछ विलोप होनेका सूत्रपात होने लग गया था सही, किन्तु धर्म पर आक्रमण होने पर भी कई बौद्ध ग्रन्थकारोंकी कृपासे आयुर्वेदका लोप सम्यक् प्रकारसे नहीं होने पाया, प्रत्युत आयुर्वेदके कितनेही विषयोंका पुनरुद्धारही हुआ। वाग्भटाचार्यके अष्टाङ्गसंग्रह तथा अष्टाङ्गहृदय और रसरत्नसमुच्चय आदि ग्रन्थोंके मङ्गलाचरणोंको देखनेसे साफ प्रकट होता है कि आप बौद्ध ही थे। आप सब लोग भलीभाँति जानते हैं कि वाग्भटका संग्रह ग्रन्थ इस समयमें संहितावत् माना जाता है। वह संग्रह ग्रन्थ वाग्भटके समय तक प्रसिद्ध आयुर्वेदीय ग्रन्थोंका सारभूत है। बौद्धयुगका और एक ग्रन्थ अभी Bower's Manuscripts में आविष्कृत हुआ हैं। उसका नाम—"नावनीतक" है। इस ग्रन्थके आरम्भमें "नमस्तथागतेभ्यः"—इत्यादि रूपके मङ्गलाचरणसे ग्रन्थकर्ताका बौद्धत्व सिद्ध होता है। कौमारभृत्यके प्रसिद्ध आचार्य जीवकका नाम हम पहलेही कह चुके हैं। बौद्ध इतिहासमें प्रमाण है कि महाराजा अशोकके समय यद्यपि बहुतसे हिन्दूधर्मके ग्रन्थ जला दिये गये थे तथापि आयुर्वेदीय चिकित्सा ग्रन्थ नष्ट नहीं हुए। महाराज अशोकने केवल भारतमें ही नहीं किन्तु लङ्काद्वीपतक बौद्ध सन्यासी और वैद्योंको भेजकर आयुर्वेदका प्रचार किया। यह भी प्रसिद्ध है कि धर्मार्थ चिकित्साके लिये बौद्ध युगमें आतुराश्रम और धर्मार्थ औषधालय खोले गये थे। कोई कहते हैं कि सुश्रुतके प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन भी बौद्ध ही थे। नागार्जुन नामके कई आचार्य पुराकालमें हो गये हैं किन्तु सुश्रुतके प्रति संस्कर्ता बौद्ध ही थे यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती। किन्तु यह तो अवश्यही मानना पड़ेगा कि बौद्ध युगके आरम्भमें यदि आयुर्वेदका कुछ अधःपतन हुआ हो तो बौद्ध युगके मध्यान्हमें आयुर्वेदके पुनरुद्धारका बहुत कुछ यत्न भी हुआ था।

वास्तवमें आयुर्वेदका यथार्थ अधःपतन महमूद गोरी, चङ्गेजखाँ और तैमूरलङ्ग आदिके भारताक्रमणके समयसे होने लगा। मुसल्मान राजाओंके समयमें आयुर्वेदकी

अपभ्रंश स्वरूपा तिब्बी चिकित्साका ही चलन हुआ। राज समादर पानेसे मुसल्मानोंके राज्यमें तिब्बी चिकित्साका प्रभाव बढ़ता गया और गतानुगतिसे लोग भी उसको मानने लगे। आयुर्वेदीय चिकित्सकोंका अनादर होनेसे कितने ही हिन्दू भी क्रमशः भारतीय वेष विन्यास और भारत गौरव आयुर्वेदको छोड़कर मुसल्मानी चोगोंके साथ यूनानी सीखने लगे। यह उसीका फल है कि अब भी कितने ही हमारे हिन्दू भाई हकीम देखे जाते हैं। प्रबल यवनोंके घोरतर अत्याचारोंसे यहाँ तक दुर्दशा हो चली थी कि आयुर्वेद हीके लिये कौन कहें, उस प्रान्तके ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्वको छिपानेके लिये दर्पणमें मुँह देखकर पूछा करते थे कि अम्माजान मैं विरहमन जैसा तो नहीं लगता हूँ ? अस्तु इसी तरह होते होते आयुर्वेदका पूर्ण अधःपतन हिन्दुओंके चिर-विद्वेषी औरङ्गजेब (आलमगीर) के समयमें हुआ। इसने हिन्दुओंके देवमन्दिर और धर्म परही आक्रमण किया ऐसा नहीं, किन्तु हिन्दू धर्म और विज्ञानके बड़े बड़े ग्रन्थोंका सर्व प्रकारसे ध्वंस कर दिया। प्रसिद्ध ऐतिहासिक अङ्गरेज अलफिनस्टन (Elphinstone) साहब कहते हैं कि औरङ्गजेब बादशाहका यह मत था कि कुरानमें जो बात नहीं वह सब मिथ्या है और जगत्में जो सत्य जहाँ कहीं हो, वह अवश्यही कुरानमें है। इसी विचारसे उसने हिन्दुओंके ग्रन्थोंको जलाकर हम्मामों (स्नानागार) में पानी गरम कराया।

परन्तु अस्तोन्मुख सूर्यकी प्रभासे भी पश्चिम जगत् एकबार झलक उठता है, एवं नाना वर्णोंसे रञ्जित हो जाता है। अतः यह आश्चर्यकी बात नहीं है कि इस ध्वंसकालमें भी समग्र भारतके धर्मोद्धारार्थ वङ्ग देशमें श्रीकृष्ण चैतन्य और दक्षिणमें रामानुज, वल्लभाचार्य आदि, बीजापुरमें वेदोंके भाष्यप्रणेता आचार्य सायण, माधव; न्यायशास्त्रके उद्धारार्थ मिथिला तथा वङ्गदेशमें पक्षधर मिश्र, वासुदेव सार्वभौम; आयुर्वेदके उद्धारार्थ कान्यकुब्जोंमें भाव मिश्र, मथुरामें डल्लनाचार्य तथा वङ्गदेशमें निदानप्रणेता माधवकर, चक्रपाणिदत्त और शिवदास आदि पंडितोंका प्रादुर्भाव हुआ। इन महानुभावोंके प्रभावसे ध्वंसोन्मुख धर्म तथा आयुर्वेदकी क्षीणज्योतिः पुनः विकसित हुए और भारतवर्ष एकबार फिर अपना सिर ऊँचा करता हुआ उद्भासित होने लगा।

इसके अनन्तर राज्य विप्लवका घोर समय आया। तब भारतवर्षको सहस्रधा विभक्त होकर परस्पर विद्वेषी हिन्दू और मुसल्मान राजा तथा नव्वाबोंके हाथमें जाना पड़ा। इस राज्य विप्लवके समयमें विद्याओंकी उन्नति तो क्या हो, मनुष्यका एक गाँवसे दूसरे गाँव तक जाना भी कठिन हो गया था। इसी भयङ्कर समयमें आयुर्वेदका अधःपतन शेष कोटिपर पहुँच गया। फिर ईस्वी सन्‌की १८ वीं शताब्दीमें भारतवर्ष धीरे धीरे अंग्रेजोंके अधिकारमें आने लगा। इस समय तक या यों कहिये कि, १८वीं शताब्दीके प्रथमार्ध तक डाक्टरी चिकित्साका विस्तार होनेसे दुर्दशाग्रस्त आयुर्वेद पर लोगोंकी अश्रद्धा बढ़ने लगी। इन्हीं दुर्दिनोंमें हमारे परमसौभाग्यसे

भारतके शासनकी बागडोर स्वर्गीया पुण्यमूर्ति महारानी विक्टोरियाने संभाली; एवं भारत साम्राज्यमें सुशासन प्रतिष्ठित हुआ। कहना न होगा कि अब तक भारतका शासन पार्लियामेण्टके आदेशानुसार ईस्ट इण्डिया कम्पनी करती थी। सज्जनो! इसी शुभ समयसे लोगोंको अपनी अपनी उन्नति करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ और न्याय-शील राजपुरुषोंकी कृपासे पश्चिमी विद्याओंके साथ भारतवर्षकी विद्याओंका भी गौरव दिनपर दिन बढ़ने लगा। अंग्रेजी साम्राज्यका ही यह प्रताप और महानु-भावता है कि, हमारी प्राचीन विद्याओंका पुनरुद्धार हो रहा है और आशा है कि अधिकसे अधिकतर हो जायगा।

आयुर्वेदकी वर्तमान अवस्था।

परन्तु आयुर्वेदका पूर्वगौरव (जिसका थोड़ा कुछ आभास मैं अपनी क्षीण शक्तिके अनुसार दे चुका हूँ) यदि फिर भी प्रतिष्ठित करना हो तो वर्तमान समयमें आयुर्वेद-की क्या अवस्था है? इसको विचार कर देखना चाहिये। इस समय पश्चिमीप्रदेशोंमें "वैद्य" और वङ्गदेशमें "कविराज" इन दो नामोंसे कितनेही मनुष्य प्रसिद्ध हो रहे हैं, जिनसे आयुर्वेदका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। आयुर्वेदीय वनौषधियोंका परिचय अब प्रायशः वनियों तथा पंसारी लोगोंके हाथमें चला गया है। जो लोग यथार्थ आयुर्वेदमें कृतश्रम हैं उनको भी अब शारीर विषयका ज्ञान देनेवाला कोई विश्वास योग्य ग्रन्थ नहीं मिलता। कोई समय ऐसा था कि वृद्ध सुश्रुतके सर्वाङ्गसुन्दर शारीर-स्थानको देखकर लोग कहते थे कि—

"शारीरे सुश्रुतः श्रेष्ठः" किन्तु अब नागार्जुनके प्रतिसंस्कृत वर्तमान सुश्रुत-संहिताके शारीर स्थानमें कितनी ही प्रत्यक्ष विरुद्ध बातें प्रक्षिप्त होगयी हैं। जिन्हें देखकर कोई प्रत्यक्ष दर्शी कह सकता है कि "शारीरे सुश्रुतो नष्टः"। प्राचीन संहिताओं-में कितनेही ग्रन्थ लुप्त होगये इस विषयका परिचय पहले दिया जा चुका है। जो हो अब समय ऐसा आ गया है कि चरक, सुश्रुतके भग्नावशेषसे तथा संग्रहग्रन्थोंसे काम चलाना पड़ता है; क्योंकि नवीन ग्रन्थ कोई बनते नहीं और कोई किसीने बनाया भी तो प्रायः चर्वित चर्वण या पिष्टपेषण ही होता है। महर्षियोंके लिखित सूत्रोंकी प्रणालीको लेकर गुरुपरम्परा चली आती है उन आर्ष सूत्रों पर प्रायः किसीका भी ध्यान नहीं जाता। आयुर्वेदोक्त भेषजोंका और भेषजकल्पनाका प्रभाव एवं गम्भीरता अपूर्वही है, कि इस प्रकारसे चिकित्सा करने पर भी—शारीरादि अवश्य ज्ञातव्य विषयोंका ज्ञान लाभ न करके भी—आयुर्वेदीय चिकित्सक लोग असंख्य स्थानोंमें अभिज्ञ डाक्टरोंकी बराबरी कर रहे हैं। किन्तु फिर भी हमारी दुर्बल दशा ही है, इसमें सन्देह नहीं। हम यदि कुनैनके साथ—मकरध्वज बरतें तो हमारी बड़ी निन्दा होती है, परन्तु हमारे पड़ोसी डाक्टर उसी मकरध्वजके साथ दो तीन प्रकारके एक्सट्रेक्ट

और विलायती पेटेण्ट मिलाकर खुल्लम खुल्ला व्यवहार करते हैं उनका कुछ भी दोष नहीं ! सच पूछिये तो दोष हमारी संकीर्णताका ही है कि परस्पर प्रेम नहीं रखते। चिकित्सा क्षेत्रमें जो उदारता और महत्त्व रखना चाहिये वैद्य लोग इस बात को भूल रहे हैं। इसीसे समग्र भारतमें आयुर्वेदीय ग्रन्थोंके संग्रहका एक भी स्थान नहीं, एक भी भेषज-परीक्षा-गृह (Laboratory) नहीं, एक भी हसपताल नहीं। अधिक क्या कहें, एक भी यथार्थ उच्च कोटिका विद्यालय व परीक्षागार नहीं।

उपसंहार।

आज आयुर्वेदका ही नहीं हमारे भी परम सौभाग्यका दिन है कि आप लोगोंमें यह अपूर्व जागृति दिखाई दे रही है जिसका कि फल स्वरूप यह वैद्यसम्मेलन है, परन्तु वर्षमें एक बार मात्र इस प्रकार मिलनेसे और केवल प्रस्तावोंके पास करनेसे विशेष कुछ फल नहीं होगा। आप लोग इस सम्मेलनसे लौटकर जब अपने अपने स्थान पर जायँगे और परस्परके ईर्षा द्वेषको छोड़कर हार्दिक प्रेम और ऐक्यसे प्रतिदिन जहाँ तहाँ एक आयुर्वेदोन्नतिको ही मुख्योद्देश्य रखकर मिलित होते रहेंगे, तभी उन्नतिकी भित्ति स्थापित होगी। भारतकी आवश्यकता इस समय ऐसी है कि नगर-नगरमें आयुर्वेदके ग्रन्थागार, भेषजशाला, विद्यालय, आतुरालय और स्थायी भावसे सभाएँ स्थापित होनी चाहियें। आप स्मरण रखें कि यद्यपि एककी शक्तिसे विशेष कुछ नहीं होता तथापि संघशक्तिका प्रभाव अपूर्व और दुर्द्धर्ष है। आपका प्रस्तावित "आयुर्वेद महामण्डल" यदि आप लोगोंकी सम्मिलित चेष्टासे सफलता लाभ करेगा; यदि स्वीकृत किये हुए प्रस्तावोंको कार्यमें परिणत करनेके लिये आप लोग तन मनसे निरन्तर चेष्टा करते रहेंगे तो यह असम्भव नहीं है कि, आयुर्वेदका यह उदीयमान गौरव-सूर्य किसी दिन फिर अपने प्रखर तेजसे और सभी ग्रह नक्षत्रोंको अभिभूत कर देगा, एवं हम फिर भी समस्त जगत्की दृष्टिमें उज्ज्वल मूर्तिसे प्रकाशित हो सकेंगे। परन्तु हमारा मूल मन्त्र यही रहे कि—

"संगच्छध्वं संवदध्वं संवोमनांसि जानताम्।"



श्रीमान् स्वर्गीय वैद्यरत्न कविराज योगीन्द्रनाथ सेन एम्. ए. विद्याभूषण, कलकत्ता।
अध्यक्ष नि. भा. व. ४ वैद्यसंमेलन कानपुर (१९१२) एवं १४ कोलम्बो, सिलोन (१९२३)।

४

वैद्यरत्न कविराज योगेन्द्रनाथ सेन,

एम. ए. विद्याभूषण (कलकत्ता)

सभापति निखिल भारतवर्षीय

चतुर्थ वैद्य सम्मेलन

कानपुर

सन् १६१२ ई०

खेद है कि आपका चित्र, चरित्र और भाषण प्राप्त न हो सका ।



श्रीमान् लेफ्टनेन्ट कर्नल स्व. वा. डॉ. कान्होबा रणछोडदास कीर्तिकर
I. M. S. बम्बई।
अध्यक्ष, नि. भा. अ. ५ वैद्य संमेलन मथुरा (स. १९१३)।



श्रीधन्वन्तरये नमः।

अखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलनके पञ्चम अधिवेशन, मथुराके सभापति,

लेफ्टिनेण्ट कर्नल रणछोड़दास कीर्त्तिकरका भाषण

२० दिसम्बर १६१३

महाशयो,

आपने मुझे अपनी इस सभाका सभापति चुन कर जो असीम सम्मान दिया है, उसके लिये मैं आपको हृदयसे धन्यवाद देता हूँ। आपके चुनावने मुझे आश्चर्यमें डाल दिया है। मुझे मालूम पड़ता है कि आपमेंसे कुछ लोगोंको यह विदित है कि मैं वनस्पतिशास्त्र और निघण्टुका जो—आयुर्वेदके आवश्यक अंग है—कितना प्रेमी हूँ। आर्य सन्तान होने तथा भारतवर्षमें जन्म लेने और पलनेके कारण, मेरी उस विद्याकी शाखासे पूरी सहानुभूति है, जो मनुष्यको दुष्ट रोगोंके आक्रमणसे बचाती है। भरत-खण्ड आयुर्वेदविद्याकी जन्मभूमि है। गणनातीत शताब्दियोंसे वह आयुर्वैदिक साहित्यकी धात्रिभूमि होती आयी है। वर्तमान बचे खुचे साहित्यको देखनेसे विदित होता है कि यह साहित्य कभी गौरवके शिखर पर रहा होगा। अब हम उन्नतिके युगमें है और इस कारण हमारा यह कर्तव्य है कि हम समयके साथ अपनी चाल जारी रखें और वर्तमान समयकी बढ़ती हुई विद्याओं और कलाओंसे लाभ उठावें। अब हम न तो हाथ पर हाथ रख कर, और आँखें बन्द करके चुप ही बैठ सकते हैं और न अब कान मूँद कर यह कह सकते हैं कि जो कुछ हमारे पुराने पवित्र आयु-र्वेदमें लिखा है वही सुवर्ण है। सोना भी यदि उचित रीतिसे न रखा जाय तो समय पाकर प्रभाहीन हो जाता है। हमारे मन्दिरोंमें भक्तिभावसे पूजित सोने, चाँदी, पीतल ताँबेकी जो श्रद्धेय देवी, देवताओंकी प्रतिमाएँ हैं, यदि उन्हें बराबर स्वच्छ न किया जाय तो वे भी प्रभाहीन हो जायँगी और उनमें जङ्ग लग जायगी, यही नियम हमारे पूज्य और प्राचीन आयुर्वेद विद्याके विषयमें भी कहा जा सकता है।

हमको सहयोगी विद्याओं, जैसे रसायन शास्त्र (Chemistry) विद्युत् शास्त्र (Eloctricity) सूक्ष्मकीटाणुशास्त्र (Bactriology) वनस्पतिशास्त्र (Botany) का भी अनुसन्धान करना पड़ेगा, जिनपर अर्वाचीन डाक्टरीकी भित्ति स्थापित है।

वैद्यविद्याकी चिकित्सामें बिजलीका आश्चर्यकारक प्रयोग।

जिन्हें राण्टजन रेज (Rondtgen Rays) कहते हैं उनका आविष्कार सन् १८९५ ई० में विल्हेम कॉनरेडराण्टजनने किया था। उनको एक्सरेज (X-Rays) कहते थे। अब उनका उपयोग टूटी हड्डी, घावमें प्रविष्ट गोली, गलेमें धोखेसे गयी हुई मछलीकी हड्डी आदि ढूँढनेमें बहुत होता है। इन किरणोंको चमड़े सम्बन्धी रोगोंकी चिकित्सा करनेके लिये भी काममें लाते हैं और खास कर ऐसी दशामें जब कि रोग बहुकालीन हो गया हो। ऐसा कहा जाता है, और इसे माननेका कारण भी है कि इन किरणोंसे कई प्रकारके दुष्ट रोगोंका दोष शमन हो चुका है। उदाहरणके लिये रस-वाहिनी नाड़ियोंकी गिल्टी, प्लीहा, थाइराइड नामकी गिल्टी बढ़ जाने पर इन किरणोंसे लाभ हुआ है। भगन्दरके विशेष स्वरूपों पर भी इनके उपयोगसे रोगका दोष शमन हो जाना देखा गया है। उस रोगमें जिसे रोडेण्ट केन्सर (Rodent Cancer एक विशेष प्रकारका भगन्दर) कहते हैं, और जो एक प्रकारका प्राणनाशक नासूर है, इन किरणोंकी उपयोगितामें कुछ भी सन्देह नहीं है। अधिकांश प्रयोगोंमें इनसे रोग पूरी तरहसे आराम हो गया है। यदि यह रोग शरीरके भीतर न बैठ गया हो तो इन किरणोंके उपयोगमें कुछ भी सन्देह नहीं। इन किरणोंके उपयोग-में बिजली भी कुछ बुरा असर दिखलाती है। (H. L. J in En. Br. Volume 28th, Page 38, 11th Edition). जब इन किरणोंके बहुकालीन उपयोगसे रोगकी पहिचान करते समय उनका प्रभाव रोग पर खराब होने लगा, तब यह विचारा गया कि इनके उपयोगसे बाज बाज रोगोंको लाभ भी पहुँच सकता होगा। जब यह देख लिया गया कि शरीरकी त्वचा पर इन किरणोंका प्रभाव एक खास तौर का पड़ता है, तब अपने आप ही इनका उपयोग त्वचा सम्बन्धी रोगों पर होने लगा। अभी हाल हीमें इन किरणोंका उपयोग यूटरस (uterus) के फोथरीले फोड़ों पर भी किया गया है। ये आविष्कार अवश्य ही हमारे मनन करनेके योग्य हैं।

सूक्ष्म कीटाणुशास्त्र और रोग।

सूक्ष्म कीटाणु शास्त्रने अपनी कल्पनातीत उन्नतिके कारण, रोगोंके कारण बतलानेमें जो हमारी ज्ञानवृद्धि की है, उससे यह आवश्यक मालूम पड़ता है कि उनका संकेत कर दिया जाय। यदि मेरे आजके इस कथनसे कीटाणुओंसे उत्पन्न रोगोंसे पीड़ित व्यक्तियोंकी चिकित्सा करनेकी इच्छा किसीकी हुई तो मेरा यह कर्तव्य है कि मैं उसके निदानका वर्णन संक्षेपमें कर दूँ। अब यह बात सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा सिद्ध कर दी गयी है कि कुछ कीटाणुओंके कारण बहुतसे रोग पैदा हो जाते हैं। ये कीटाणु खाली आँखोंसे, बिना सूक्ष्मदर्शकयंत्रके नहीं देखे जा सकते। यह सूक्ष्मदर्शकयंत्र

अन्तिम शताब्दीकी बुद्धिका कैसा विलक्षण नमूना है। यह यंत्र उस अणु समान वस्तुको, जो केवल आँख द्वारा कभी नहीं देखी जा सकती, अपनी अनुपम शक्तिसे २००० गुना बड़ा करके दिखा देता है! यदि आपको हम इस यंत्रका इतिहास सुनाने लग जाँय, तो आप लोग हमारे युगके वैज्ञानिक विकासकी कथा सुनते सुनते थक जाँयगे। इतना कहना यथेष्ट है कि यद्यपि चरकमें यह लिखा था कि 'सूक्ष्मत्वाच्चैके-भवन्त्यदृश्या:' (च० सं० वि० स्थान), तथापि यह सौभाग्य उन्नीसवीं शताब्दी ही के भाग्यमें था कि वह उस वस्तुको भी दिखला दे जिसे शताब्दियोंसे लोग अदृश्य समझते आते थे। आयुर्वेदकी भविष्य उन्नतिके लिये यह आवश्यक है कि आप लोग निदानके कार्योंके लिये इसका उपयोग करें।

हालही में वम्बईसे एक रोचक पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसके लेखक वम्बई आयुर्वेद विद्यालयके ख्यातनामा श्रीयुत् गणपतराव पाण्डुरंग कालोखे महाशय हैं। इसका नाम "रोग जंतु" है। इसमें मराठी भाषामें, पृष्ट ५१ में वे यों लिखते हैं:—

"जन्तु सम्बन्धी वर्णन आर्यवैद्यकमें एकही स्थानमें नहीं वल्कि स्थान स्थान पर (उदाहरणार्थ व्रण, कुष्ठ, कृमि आदि रोगोंके प्रकरणमें) दिया हुआ देखा जाता है। इसके सिवाय वहुतसी जानने योग्य वातें आर्य संहितामें लिखी गयी हैं।

(द्वितीय काण्ड, पञ्चम अनुवाक, पञ्चम सूक्त, और पञ्चम काण्ड, पञ्चम अनुवाक, द्वितीय सूक्त)।

जिस दिनसे सूक्ष्मदर्शकयंत्रका आविष्कार हुआ उसी दिनसे वनस्पति और जानवरोंके सूक्ष्म शारीर (Histology) की उन्नतिका युग आरम्भ हुआ। जो टिशू (tissue) दिखलाई नहीं पड़ते थे वे अब दिखलाई पड़ने लगे और उनकी वनावट आदि समझमें आने लगी। कीटाणुशास्त्रमें हमें जो सफलता हुई है, उसका कारण यही सूक्ष्मदर्शकयंत्र है। कीटाणुओंका जो सम्बन्ध निदानसे है, उसके समझलेने पर, कीटाणुओंके रहन सहन तथा उनके स्वभाव सम्बन्धी वातोंका ज्ञान लेना कठिन नहीं है। यही नहीं, किन्तु कीटाणुशास्त्रसे यह भी मालूम होता है कि सभी कीटाणु मनुष्यके शत्रु नहीं हैं। वनस्पतिशास्त्र और रोग—लक्षणशास्त्र (Pathology) में उनकी उपयोगी आदतें भली भाँति मालूम पड़ती हैं। कीटाणु अभी पूरी तौरसे श्रेणीवद्ध नहीं हैं। जो कीटाणु लाभ पहुँचाने वाले हैं—उनका उदाहरण देनेके लिये उन कीटाणुओं [वेक्टीरिया] का नाम लिया जा सकता है, जो वृक्षोंके भोजनके लिये पृथ्वीमें आमोनियासे नाइट्राइट और नाइट्रेट वनाकर, नाइट्रोजन देते हैं। दूसरी वेक्टीरिया भी हैं जो वायुसे नाइट्रोजन लेकर दूसरे मिश्र पदार्थ वनाती हैं। इस जातिकी वेक्टीरिया ट्यवरकलसमें पायी जाती हैं जो लेग्यूमिनस जातिके पेड़ोंकी छोटी छोटी जड़ों पर वढ़ती हैं।

(Muir and Ritchie, P. 24.)

सर ऐडविन रे लैङ्कस्टरने रायल माइक्रोस्कोपिकल सोसाइटीके वार्षिक उत्सवके समय, जो वक्तृता, १९ जनवरी सन् १९१० में सभापति की हैसियतसे दी थी, उसमें उन्होंने कहा था कि—"अब हमें बेक्टीरिया (कीटाणु) से सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे पुश्त पर विचार करना चाहिये। इस विषय पर हम तत्त्ववेत्ता और शारीर-शास्त्रज्ञ होनेके कारण, वैद्योंके अनुसार विचार नहीं करेंगे।

"बेक्टीरियाका जो असर मनुष्यके पेट और उससे सम्बन्ध रखनेवाली नली पर होता है—उसका अनुसन्धान एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न हो गया है। अब इस बातका प्रयत्न किया जा रहा है कि उन सड़नेवाली (Putrefactive) बेक्टीरियाको रोका जाय जिनके बढ़नेके लिये क्षारकी जातिकी (Alkalive) वस्तुकी आवश्यकता हो। मेकूनिकाफका यह विचार है कि इनकी बाढ़ एसिड पैदा करनेवाली बेक्टीरियाको वहाँ पहुँचा देनेसे रोकी जा सकती है और खासकर उन (बेक्टीरिया) से, जो पाचकरस लेक्टिक (Lactic) एसिड उत्पन्न करती हैं। इस जातिकी बेक्टीरिया खट्टे दूधसे ली जाती हैं और यह बात अनुभव द्वारा सिद्ध कर दी गयी है कि ये बड़ी अँतड़ियोंमें एक प्रकारका एसिड पैदा करती हैं। जिससे कई प्रकारके हानिकारक कीटाणु बढ़ने नहीं पाते। मनुष्यकी पाकस्थली पर कीटाणुओंके प्रभावका विषय अभी अन्वेषण चाहता है और उसके लिये बड़े अनुभवकी आवश्यकता है। इस विषयमें यह कहा जा सकता है कि और जीवोंकी पाकस्थली पर इन कीटाणुओंके प्रभावका विषय बड़ा रोचक है। कुछ वैज्ञानिकोंका कथन है कि भोजनके पाकके लिये कीटाणुओंका होना आवश्यक है। पर मेकूनिकाफने यह दिखला दिया है कि भारतके चमगीदड़की अँतड़ियोंमें भोजनके पाकके लिये कीटाणुओंकी कुछ आवश्यकता नहीं पड़ती। (रायल माइक्रोस्कोपिक सोसाइटी, लन्दनके अप्रैल १९१० की कार्यवाहीमें से पृष्ट १४०)।

अन्तिम शताब्दिके तीसरे कालमें माइक्रोस्कोपको जो विजय मिली है उसमें 'क्रिप्टोगेम' (Cryptogamie) जातिके 'लिचेन' नामक पेड़की दोहरी आदतका पता लगाना है। श्वीएडनरने 'लिचेन' के स्वभावके सम्बन्धमें आविष्कार किया था। बीस वर्षके गहरे वादविवाद और तर्कके बाद अब सिद्धान्त मान लिया गया है। इस सिद्धान्तने वनस्पतिशास्त्रमें युगान्तर उपस्थित कर दिया है। यह 'लिचेन' छोटे किन्तु सुन्दर पौधे होते हैं। ये अपने रहनेकी जगहों और अपने स्वरूपके कारण चट पहिचान लिये जाते हैं। साधारण रीतिसे ये पौधे पार्थिव नहीं होते; किन्तु एपिफाइट (Epiphyte) की तरह वायुमण्डलमें रहनेवाले (aerial) होते हैं, और अमरबेल (Misletoe) की तरह पेड़ों और चट्टानों पर फैले रहते हैं जिस तरह कि अङ्गरेजी रीनडियर लिचन पहाड़की घाटी, पथरीली जमीन (Moorland) को सफेद कर देते हैं। वे प्रकाशमें रहना पसन्द करते हैं। वे बहुत कम अन्धेरी या

एकान्त जगहमें पैदा होते हैं। वे नगर या गाँव, सड़क या मनुष्यके निवासस्थानमें नहीं मिलते। उनमेंसे कुछ तो बिल्कुल खुले मैदानमें और कुछ दुर्गम स्थानमें जैसे पहाड़ोंमें, समुद्रके पथरीले टीलों पर रहना पसन्द करते हैं। मैं आपको बम्बईकी तरफ के पार्मीलिया जातिके कुछ लिचनके पौधे दिखलाता हूँ, जिन्हें दुग्धफूल कहते हैं। इस जातिके लिचन पौधे पुराने मकानों और पेड़ोंपर रहते हैं। बम्बईके 'थाने' जिलेमें अन्धेरीके पास बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवेकी लाइनसे लगे बहुतसे ताड़के पेड़ हैं, जिनकी छाल सफेद पार्मीलियासे ढकी है। यह एक ध्यान देने योग्य दृश्य है। 'लिचन' का आन्तरिक जीवन कैसा है ? इनकी मितव्ययिता कैसी है ? जरा-सी चपटी चीजमें जड़, पेड और पत्ती सब मिली हुई हैं, प्रत्येक भाग इस सूखी-सी चपटी वस्तुमें अलग अलग बँटा रहता है। एक ऋतुमें तो ऊपरी सतह पर 'प्याले' या 'ढाल' के समान दिखलाई पड़ेंगे। सबसे छोटी जातिकी लिचनको छोड़कर और सब लिचनमें एक विशेष प्रकारका अवयव रहता है, जो बड़ा आवश्यक है और जिसे 'गोनिडिया' कहते हैं, ये 'गोनिडिया' या तो गोल 'सेल' (Cell) होते हैं जो इकेले होते हैं, जिनमें हरियालीका आदि पदार्थ (Chlorophy) होता हैं, या छोटे छोटे कई एक 'सेल' के बने झोथरे (Filaments) होते हैं। यहाँसे लिचनके दुहरे स्वभाव अर्थात् पौधोंकी दो भिन्न जातियोंका मिलान एकमें होनेका हाल मालूम होना आरम्भ होता है। जिन्हें 'गोनिडिया' कहते हैं वे यथार्थमें 'एलजी' हैं, जो पत्ते-की तरह सतहमें बन्द हैं जिन पर कि 'फङ्गाई' पैदा हो गये हैं और 'एलजी' के ऊपर अपना भरण पोषण कर रहे हैं, यहाँ दो बिल्कुल भिन्न जातिके पौधे इस तरह रहते हैं कि वे एक ही मालूम होते हैं। 'हर्मिट क्रैब' और 'सी एनिमोनिसका' प्रसिद्ध मिलाप है वह इस रीतिसे बिल्कुल बढ़ जाता है; और प्रकृतिमें लिचनका यह दृष्टान्त 'सिम्बियोसिस' के लिहाजसे तो सर्वोत्तम और सर्वोच्च है। इस कहानीको आगे जाननेके लिये मैं आपको बतलाना चाहता हूँ कि 'श्वीएडनर' ने इस अद्भुत दृश्यका क्या वर्णन किया है। वे यों कहते हैं कि ' लिचन साधारण पौधे नहीं हैं ' और न प्रत्येक लिचन एक अलग पेड़ है ? वे प्रायः उपनिवेशकी तरह रहते हैं, प्रत्येकमें सहस्रों लिचन होते हैं; किन्तु उनमें एक मुख्य रहता है, शेष अपने लिये और अपने स्वामीके लिये, कैदीकी तरह, भोजन इकट्ठा करते या बनाते हैं। यह स्वामी 'फङ्गस' होता है जो दूसरेके ऊपर अपना निर्वाह करनेका आदी होता है, इसके सेवक हरे 'एलजी' होते हैं, जिन्हें वह ढूँढ़ खोजकर अपने मतलबका बना लेता है। यह उन्हें इस तरह घेरे रहता है जिस तरह मकड़ी अपने शिकारको महीन तारोंसे घेरे रहती है, जो समय पाकर मकड़ी ढकनेसी हो जाती है, लेकिन मकड़ी अपने शिकारको चूस लेती है और उसका मुर्दा शरीर छोड़ देती है; किन्तु इसके विरुद्ध 'फङ्गस' अपने 'एलजी' को मारता नहीं किन्तु उससे और अधिक लाभ लेता है। यह सब

ज्ञान सूक्ष्म दर्शक यंत्रकी कृपाका फल है। इस यन्त्रका आयुर्वेदमें प्रत्येक रीतिसे उपयोग कीजिये।

आयुर्वेदके लिये आवश्यक है कि आयुर्वैदिक शास्त्रसे सम्बन्ध रखनेवाली वनस्पति शालाएँ बनायी जायँ। बहुतसे योरोपियन वनस्पतिशास्त्रज्ञोंने हमारे देशमें हिमालयसे लङ्का तक, अफगानिस्थानसे ब्रह्मदेश तक, लकद्वीपसे, फिलपाइन, जावा, मलाया, सिंगापुर तक तथा और द्वीपोंमें परिश्रम करके हमारे इस विषयमें बहुत ज्ञानवृद्धि की है। इस विषयमें राक्सबर्ग, ग्रिफिथ, रायल, वालेस, वालिक, वाइट, ब्राउन, थ्वेट्स, ट्रिमेन, टाम्सन, कुर्ज इत्यादिका नाम लिया जा सकता है। इन सबमें मुख्य सर जोजफ हूकर हैं, जो हिमालय, तिब्बत, शिकम आदिमें भ्रमण करते रहे और सहस्रों कष्ट, भयका सामना करते हुए हिमालयकी सबसे ऊँची चोटी तक पहुँचे।

आप मेज पर एक गुजराती पुस्तक पाइयेगा जिसका नाम 'वनस्पति शास्त्र' है। इसके लेखक मेरे आदरणीय सुयोग्य मित्र श्रीयुत जयकृष्ण इन्द्रजी ठाकुर हैं। ये पहिले पोरबन्दर राज्यके फारेष्ट आफिसर अर्थात् जङ्गलविभागके अफसर थे, अब ये पेंशन ले चुके हैं और पोरबन्दर राज्यके बागके इञ्चार्ज हैं। इनमें हिन्दुस्तानी वृक्ष पहिचाननेकी अद्भुत शक्ति है। यह पुस्तक, जो आपके सम्मुख है विलक्षण ज्ञान और वृद्धावस्थाके उत्साहका नमूना है। भारतमें ऐसे बहुत कम मूल लेखक हैं।*

वनस्पति शास्त्र केवल ज्ञानवृद्धिहीका सम्पादन नहीं करता किन्तु रोग नष्ट करनेका भी यह सरल उपाय है। इसने उन मनुष्योंमें खोज और मननका उत्साह उपस्थित कर दिया है, जो जीवन भर मनुष्यके रोगोंको दूर करनेका उपाय सोच रहे थे और जो मनुष्यकी ज्ञानवृद्धिके इच्छुक हैं।

यह इसी विज्ञानकी महिमा है कि हम्बोल्टने 'कास्मस और 'एस्पेक्टस आव वेजेटेशन' हूकरने 'हिमालयन जर्नल' (११वीं नवम्बर १८४७ से २४ जनवरी १८५१ तक) डार्विनने 'इन्सेक्टिओरस प्लेन्ट्स एण्ड मूवमेण्ट आव क्लाइम्बिङ्गप्लैंएटस, कर्नरने 'फ्लावर्स एण्ड देयर अनबिडन गेस्टस' और बेट्स, वालेस, और स्पैन्सकी अमेजनकी यात्रा सदृश पुस्तकें लिखीं। जिस विज्ञानकी प्रेरणासे अमेजन और 'बेल्टस नैचुरलिस्ट इन निकारागुआ', डाक्टर जार्ज बैन्थम और बैरन वॉन मूलरकी वांडरिंड इन आस्ट्रेलेशिया, तथा जान लबक (लार्ड एवबरी) का 'ब्रिटिश वाइल्ड फ्लावर्स इन रिलेशन टू इन्सेक्टस' किङ्सलीकी 'डाइङ वायोज टू दी वेस्ट इण्डीज'

---

* यह प्रकाशित करते बड़ी प्रसन्नता होती है कि, जब यह व्याख्यान पढ़ा जा रहा था, इस बातकी घोषणा की गयी कि विराट आयुर्वेदिक प्रदर्शिनी मथुरा (१९१३) ने श्रीयुत जयकृष्णजीको दो रौप्य पदक, एक इस पुस्तकके लिये और एक वरडा पर्वतके पौधोंकी प्रदर्शिनीके लिये प्रदान किये हैं।

फिट्ज़ मूलरके वनस्पति शास्त्र सम्बन्धी अन्वेषण आदि तथा 'ट्रैवलर और नैचुरलिस्ट' के समान और पुस्तकें लिखी गयी हैं, वह महान् विज्ञान आयुर्वेदके भावी वैद्यों और कविराजोंको कदापि कम रोचक न रहेगा।

जब हम पाश्चात्य वनस्पति शास्त्र सम्बन्धी उद्योगोंको देखते हैं तब आशा करते हैं कि यह विज्ञान भारतके भावी वैद्यों और श्रीमन्तोंको अवश्य रोचक होगा। इसका मनन भारतही नहीं किन्तु और भी देशोंके रोग दूर करनेका कारण होगा। सभ्य संसारमें यह भली भाँति विख्यात है कि जावा द्वीपके न्यूरिनजार्ग नगरमें एक ऐसा वनस्पति उद्यान है जो संसारके प्रसिद्ध उद्यानोंमें है। यह उद्यान सन् १८१७ में स्थापित हुआ था और समुद्र तलसे ३०० गज़ ऊपर, बुलाक पर्वतकी उत्तरी ढाल पर बना है। वनस्पति उद्यानके सिवाय साथही उसमें कृषि और वन सम्बन्धी उद्यान भी हैं। अन्तिम उद्यान एक नये जंगलमें है। उस द्वीपकी तरगर्म आबहवा पेड़ोंके लिये इतनी लाभदायक है कि कहा जाता है कि ताड़के पेड़ ५ वर्षमें ३० फीट लम्बे होगये और आलबिजिआ मलुक्कानाका पेड़ उसी समयमें ६० फीट लम्बा होगया। इस बागमें विशेषतः ताड़, पातालनीम और बेल तथा लतर अधिक हैं। विद्यार्थी, चाहे वे डच हों या विदेशी, वहाँ पढ़ने पाते हैं और उन्हें पुस्तकालय तथा फोटोग्राफीके भवनका उपयोग करने दिया जाता है। रूसी, अङ्गरेज, जर्मन, स्वीडिश तथा दूसरी जातियोंके विज्ञान विशारद वहाँ कृषि और वनोद्यानोंसे लाभ उठाते हैं।

लज्जाके साथ कहना पड़ता है कि भारतमें कोई ऐसा उद्यान नहीं है। जब छोटेसे जावाने १०० वर्षोंमें ऐसी उन्नति करली तो हमने भारतवर्षके लिये क्या किया? क्या इसकी अत्यन्त आवश्यकता नहीं है? क्या यह निखिल भारतवर्षीय आयुर्वैदिक-सम्मेलन इस विषयपर गम्भीरतासे विचार करेगा? यदि आज मैं इस पदसे आपके हृदयोंमें वनस्पतिशास्त्रके लिये कुछ भी प्रेम या सहानुभूति पैदा कर सकूँ तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा और मैं यह समझूँगा कि मैंने जो आपकी सेवा की है वह आपकी तथा देशकी भविष्य भलाईकी सूचक है। भारतमें ऐसे बहुतसे हृदयग्राही स्थान हैं जहाँ कि यह उद्योग किया जा सकता है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी जगह ऐसे स्थान हैं, पहाड़ोंमें या तराइयोंमें, चपटे मैदानोंमें, बहु संख्यक, विस्तृत नदियोंके उपजाऊ किनारों पर, और पृथ्वीके इस सर्वोत्तमप्राय द्वीपके समुद्र किनारे पर, ऐसे बहुतसे स्थान मिल सकते हैं। समुद्र किनारेके इतने नगरोंमेंसे हम क्या किसी नगरका उपयोग 'मैरीन बायोलोजी' Marine Biology के लिये नहीं कर सकते? आयुर्वेदिक सम्मेलन इस प्रश्न पर विचार करे कि समुद्रकी जो बहुतसी वनस्पति या जीव सम्बन्धी पैदावार हमारे पास हैं और जो व्यर्थ पड़ी हुई हैं, क्या उसका उपयोग नहीं हो सकता, ? जिसके होनेसे देशको बड़ा लाभ होगा। शोक! शोक! ईश्वरकी दी हुई वस्तुको हम किस तरह व्यर्थ फेंक रहे हैं, मैं 'प्रधान अजायबघर' के लिये

इतना कहना अलम् समझता हूँ कि वह जीवशास्त्र या वनस्पतिशास्त्रसम्बन्धी किसी भी और किसी भी वस्तुका संग्रह हो, जो मनुष्यके दुख दर्दके समय काम आसके। वैद्यका केवल यह कर्तव्यही नहीं है कि वह अपने रोगीकी परीक्षा या निदान भरही करे, किन्तु उसका यह कर्तव्य भी है कि वह उसकी चिकित्सा उन वनौषधियों और अन्य औषधियोंसे करे जो उसके आसपास देशमें हों। काष्टौषधियोंके उपयोगमें उसे इस वात पर ध्यान रखना चाहिये कि उसे मनोनीत पत्ती, लकड़ी, जड़ या छाल मिल रही है, इन औषधियोंके रखने और नियमवद्ध रखनेके लिये हमें जावा की भाँति एक 'म्यूजियम' की आवश्यकता है। आजकल हमारी दशा यह है कि जव हमें ऐसी औषधियोंकी जरूरत पड़ती है तव हमें, पसारी या मालीकी शरण लेनी पड़ती है। वम्बई प्रान्तमें ऐसे गान्धी (पसारी) साधारणतः घूमा करते हैं, उन्हें 'नाकाडोल्याचा वैद्य' कहते हैं और वे 'वइद' कहते पुकारते फिरा करते हैं, ये पसारी स्वयं वे पढ़े होनेके कारण जङ्गलसे औषधिलानेवालोंसे धोखा खाजाते हैं अर्थात् वे माँगते कुछ औषधि हैं और उन्हें मिलती कुछ दूसरी औषधि है, इस प्रकार इन लोगोंसे गरजमें पड़कर वेचारे ग्राहक ठग जाया करते हैं।

जो कह रहा हूँ वह अनुभव सिद्ध है, मैं अपने कथनकी पुष्टि उदाहरण द्वारा करूँगा। (१) एक वार मुझे (Caesal pinia dygina) 'वाकेरींचें भातें' के 'ट्यूवर' की आवश्यकता पड़ी; किन्तु वनौषधिवालेने मुझे केवल उसकी जड़ही मात्र दी। 'ट्यूवर' जड़ पर जमता है और धरतीके भीतर कई फीट नीचा रहता है। इसका वजन कभी कभी आधसेर तक होता है, जो जड़ मुझे मिली वह प्रायः एक इञ्च मोटी और छै इञ्च लम्बी थी। मैंने 'ट्यूवर' को राजापूर तालुकामें फटी हुई चट्टानी जमीनमें देखा था। यह मुझे रत्नागिरि जिलेमें हलवाकके पास घाट माठा सड़क पर भी दृष्टिगोचर हुई थी। (२) एक वार मुझे औषधिके लिये 'कवाथी' के तेलकी आवश्यकता पड़ी किन्तु मुझे कुसुम्वाका तैल दिया गया (३) एक वेर ही नहीं किन्तु कई वार गुर्चका सत्त्व माँगने पर मुझे विलायती वना हमारी साधारण मकईका आटा मिला, कई वार तो लोगोंने मुझे उसके वदले यानी गेहूँका पिसान तक दे दिया है! गुर्चका सत्त्व गुर्चकी कांडसे (Tinospora Cordifolia) निकाला जाता है। इसे हिन्दू लोग अगणित वर्षोंसे वलवर्द्धनके लिये काम में लाते रहे हैं। (४) मैं केवल एक उदाहरण और दूँगा और वह 'अगर' के पेड़का है, यह लकड़ी वड़ी कीमती होती है। कमसे कम २४ रुपयेसे ३० रुपये सेर तक विकती है, यह वड़ी भारी होती है और नाकके वहने तथा Rheumatic enlargement of joints पर काममें लायी जाती है, पुरानी लकड़ीमें जो एक प्रकारका लिवलिवा पदार्थ होता है उससे वड़ा सुगन्धित द्रव निकाला जाता है, यह सुगन्धित द्रव वहुधा शीशम आदि भारी लकड़ीमें लगाया जाता है और वह लकड़ी अगरके नामसे वेंची

जाती है, 'अगर' की चिप्पियोंमें चन्दनकी और खासकर लाल चन्दनकी, चिप्पियाँ मिली रहती हैं जो अगरकी सुगन्धिसे सुगन्धित रहती हैं। इसी प्रकार 'तगर' की लकड़ीका भी दुरुपयोग किया जाता है। ऐसा डाक्टर डाइमाक कहते हैं।

कुछ सम्मतियाँ।

अब मैं आयुर्वेदकी भावी सफलताके बारेमें कुछ कहना चाहता हूँ। सारे भारत भरमें ऐसे बहुतसे वैद्य हैं जो सचमुच आयुर्वेदके पण्डित हैं और चिकित्सा करनेमें बड़े निपुण हैं; किन्तु अभाग्यवश वे न तो एक दूसरेकी सम्मतिसे सहमत होते हैं और न हो सकते हैं। उसका कारण यह है कि वे अपनी इच्छाके अनुसार समय समय पर आयुर्वेदकी भिन्न भिन्न, मुद्रित या अमुद्रित, पुस्तकें पढ़ते हैं। समय समय पर वे न तो गुरूकी कुछ सहायता ही लेते हैं और न उन्हें कुछ ऐसा अभ्यास करनेका सौभाग्य ही मिलता है, जिसे हम रोगीकी शय्याके पासकी शिक्षा कहते हैं। परिणाम यह हो गया है कि कहीं भी आयुर्वेदकी पाठ्यप्रणालीकी कोई नियमित सीमा निर्धारित नहीं रह गयी। इस प्रकार बड़े बड़े विद्वान् वैद्य भी कभी कभी बड़े महत्त्वके प्रश्नों पर, बहुत भिन्न भिन्न सम्मतियाँ दे देते हैं। इस कारण उनकी वृत्ति सम्बन्धी सम्मति और उनकी चिकित्सा प्रणालीमें बड़ा फर्क पड़ जाता है। यह दशा बिल्कुल सन्तोषजनक नहीं है। इससे आयुर्वेदके प्रचार और उन्नतिमें बाधा पड़ती है। आपका कर्तव्य है कि आप इस महत्त्वपूर्ण विषय पर ध्यान दें। आपको इस विषयका विचार बड़े गम्भीर रूपसे करना चाहिये; क्योंकि इसी झगड़ेके कारण भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तोंके वैद्योंमें एक मत नहीं है। सबसे अधिक अभाग्यकी बात तो यह है कि वे अभी तक इस घरेलू झगड़ेको तय करनेके लिये उद्यत नहीं हुए। बड़े हर्षकी बात है कि आप लोगोंने पिछले चार वर्षोंसे आपसमें ऐक्य बढ़ानेके निमित्त इस आयुर्वेद सम्मेलनको जन्म दिया है, जहाँ पढ़े लिखे और सभ्य वैद्य सालमें एक बार इकट्ठे होकर आयुर्वेदके भिन्न भिन्न विषयों तथा चिकित्सा प्रणाली पर विचार करते हैं। केवल यही बात यदि देखी जाय तो आपके आयुर्वेदको बहुत उचित सफलता प्राप्त करा सकती है। यह आपका कर्तव्य है कि आप अपनी स्थितिकी गम्भीरताको यदि चाहें तो समझें। और मेरा विश्वास है कि यह आपकी इच्छा है कि आप अपने आयुर्वेदके पुराने अधिकारोंको, यूरोप और अमेरिकाके विज्ञानवेत्ताओंके विचार-प्रकाशमें फिर स्थापित करें। यह सच है कि आयुर्वेदका जन्म भारतमें तीन हजार वर्ष पहिले, नहीं नहीं इससे भी पहिले हुआ था; किन्तु अब हमें पश्चिमके प्रकाशका सामना करना और उससे लाभ उठाना है।

मैं यह साहसके साथ कहता हूँ कि आयुर्वेदविद्याकी चाल बिल्कुल ही धीमी रही है; और मैं यह बड़े शोकके साथ कहता हूँ कि उसकी इस दशाका कारण वैद्योंका

वैद्यक विषयक वातोंका छिपाना ही है। मैं आपसे इस वातको याद रखनेकी प्रार्थना करता हूँ कि वैद्योंमें अपनी विद्याको छिपाने, उसे अपने शिष्य तकको न बतलानेकी आकांक्षा आयुर्वेदके लिये विष हो गयी है। इस प्रकार कितने ही ऐसे भेद, भेद जाननेवालेकी अपमानकारक मृत्युके साथ सदाके लिये संसारसे विदा हो चुके हैं, जिससे कितने ही रोगियोंको लाभ या हानि पहुँची है। मैं निम्नलिखित वातोंको आपके शीघ्र और उचित ध्यान देनेके लिये कहता हूँ—(१) आयुर्वेदविद्याकी एक (Standard) निर्धारित सीमा रखिये, जिससे उसके सीखने और प्रचार करनेमें सरलता हो। (२) आयुर्वेदका उद्देश्य, उसका क्षेत्र, धीरे धीरे पश्चिमके आविष्कारोंको उपयोगमें लाकर वढ़ा दीजिये। (३) अब यह वात निर्विवाद सिद्ध हो गयी है कि चरक, सुश्रुत, वाग्भट, वृद्ध वाग्भट, राजनिघण्टु, वृहन्निघण्टु, माधवनिदान और अन्य अगणित संस्कृत ग्रन्थोंमें जो तत्त्व वैद्यविद्याके लिखे हैं वे सत्य हैं और उस समयमें भी जब यूरोपका नाम भी भारतमें नहीं सुना गया था, उनके द्वारा अगणित पीड़ित मनुष्योंको लाभ पहुँचा था। अधिकांश वैद्योंकी सम्मतिके अनुसार वैद्यककी पुस्तकोंके विषयमें यह प्रख्यात है कि—

निदाने माधवः प्रोक्तः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः।
शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तश्चरकस्तु चिकित्सिते॥

(खेमराजजीके हिन्दी टीका समेत माधवनिदानकी भूमिका, १९०७)

मेरे आदरणीय मित्र मेजर वी० डी० वसुने अपने 'हिन्दू चिकित्सा प्रणाली' के लेखमें (कलकत्ता जून १८९४) में कहा है कि सैकड़ों शताब्दियाँ बीत गयीं जब हिन्दू वैद्य वगदादके राजाके दर्वारमें सुशोभित होते थे। एक समय था जब हिन्दू वैद्योंकी चिकित्सा प्रणालीकी तारीफ मकदूनियाके विश्वविजेता और उसके साथियोंने मुक्तकण्ठसे की थी। यह विश्वविजेता वह सुप्रसिद्ध सिकन्दर है जो ईसाके जन्मसे ३५६ वर्ष पहिले हुआ। यह इतिहासका अङ्ग है कि उसने सिन्धु नदी पर कितनी लड़ाइयाँ लड़ीं, उसने कितने नगर बसाये, उसने भारतका धन और रत्न कैसे लूटा, उसने हिन्दू मन्दिरोंको कैसे ढहाया और उसने कैसे हिन्दू-विद्वानोंसे आयुर्वेदका अनुवाद संस्कृतसे ग्रीक भाषामें करवाया। इसी प्रकार यूनानीचिकित्सा प्रणालीकी वाल्यावस्थामें अरववालोंको हमारे आयुर्वेदसे कुछ कम सहायता नहीं मिली।

न तो यह मेरी इच्छा है और न मेरे पास इतनी योग्यता या समय ही है कि मैं आयुर्वेदके रोग लक्षणशास्त्रके अनुसार माने गये 'कफ, वात, पित्त" के सिद्धान्तकी विवेचना करूँ। यह मेरे लिये ठीक वैसा ही असमंजस पूर्ण होगा जैसे वर्तमान विज्ञानकालमें केवल माने हुए, पश्चिमीय टेम्परामेण्ट्स (Tempraments) के विषयमें विवेचना करना कठिन है। मेरे सुयोग्य गुरु डाक्टर फ्रेडरिक टी० रावर्ट्सने जो कि युनिवर्सिटी कालेज लण्डनमें थे, अपनी 'थिअरी एण्ड प्रेक्टिस आव मेडिसिन'

(Theory and practice of medicine Edition 1894 London) नामकी पुस्तकमें इन 'टेम्परामेण्ट्स' के बारे में लिखा है—चार मुख्य टेम्परामेण्ट्स कहे गये हैं। यथा—सेनज्यूनिअस (Sanguineous) लिम्फैटिक (Lymbatic) विलिअस (Bilious) और नर्वस (Nervous) । यह केवल मान लिया गया है (इस पर ध्यान दीजिये) कि इनमेंसे प्रत्येक किसी विशेष रोगका होना या उसका प्रारम्भिक स्वरूप बतलाता है ।" फिर स्वयं डाक्टर साहब कहते हैं कि 'बहुधा इनके द्वारा बतलाये स्पष्टीकरण यथार्थ अवस्था या तत्त्वसे बिलकुल भिन्न होते हैं ।' डाक्टर साहबका कथन है कि लोगोंका यह विश्वास है कि सेनज्यूनियस टेम्परामेण्ट Asthenie जातिके ज्वर, Haemorrhage, और acute inflammations का होना बतलाता है। लिम्फैटिक टेम्परामेण्ट Passive congestion, dropsy, low inflammation आदि करता है । नर्वस टेम्परामेण्ट Digestive और Heptic गड़बड़ी बतलाता है । महाशयो ! मैंने इन तत्त्वोंका ४० वर्ष हुए गोवर-स्ट्रीट लन्दनके युनिवर्सिटी कालेज हास्पिटलमें डाक्टर राबर्ट्सके चरणोंमें बैठ कर मनन किया था ।

आपके छपे हुए व्यवस्थापत्रको देखनेसे मालूम पड़ता है कि आपने आयुर्वेदके व्यवस्थित पाठ्यक्रमको आरम्भ करनेके लिये हालही में विद्यालय खोले हैं । वास्तवमें ऐसाही होना चाहिये । बम्बईमें एक सभा है जिसका नाम भारतीय वैद्य सभा है; और एक संस्था भी है जिसका नाम आयुर्वेद विद्यालय है । इस संस्थाको १६वीं जून १८९६ में मेरे आदरणीय मित्र स्वर्गीय वैद्यराज प्रभुराम जीवनरामजीने अपने दो पुत्रों, श्रीयुत विश्वनाथ बी० ए० बैरिस्टर बम्बई हाईकोर्ट और डाक्टर पोपटराम एल० एम० एण्ड एस०, जे० पी० (मेरे प्राचीन शिष्य और वर्तमान मित्र) की सहायतासे स्थापित किया था * इस संस्थाकी सन् १९०५–०६ की रिपोर्ट सन् १९०७ ई० में प्रकाशित हुई थी, उसमें इस संस्थाकी सची सफलताकी सादी और स्पष्ट कहानी कही गयी है। १९०७ तक इसने १७ भिषग्वर, १० मिडवाईव्स (डाक्टरिन) ६ परिचारक और १५ परिचारिकाएँ तैयार कीं । सन् १९०६ में इस संस्थामें ३० पुरुष और १७ स्त्री विद्यार्थी शिक्षा पाते थे । इस संस्थाके सहायक और इससे सहानुभूति रखनेवाले यूरोप और भारतमें शिक्षा पाये हुए बड़े बड़े डाक्टर भी हैं । इस संस्थामें हड्डी और बड़े अवयवादि (शरीर) कारीगरोंके बनाये उत्तम और ठीक माडेल (आदर्श) द्वारा सिखलाये जाते हैं। मेरी सम्मति तो यह है कि शारीरशास्त्र व्यवच्छेद करके सिखलाया जाय; किन्तु जहाँ यह सम्भव नहीं है वहाँ माडेल आदिसे भी काम निकल सकता है। पाश्चात्य रीतिसे शिक्षा प्राप्त डाक्टर

* इसके स्थापनमें स्वर्गवासी शङ्करदाजी शास्त्रीपदे महोदयका भी एक प्रधान हाथ था ।
मन्त्री ।

घृणाके साथ कहा करते हैं कि वैद्य लोगोंको शारीरशास्त्र नहीं सिखलाया जाता, और न तो आयुर्वेदमें कभी यह शास्त्र था और न अब है। इस सम्बन्धमें मुझे मेजर वसुके निबन्धसे यह भाग यहाँ उतारना उचित है—हिन्दुओंकी इस बातके लिये प्रशंसा करनी चाहिये कि उन्होंने जीवित मनुष्योंकी जगह मुर्दोंका उपयोग शारीर-शास्त्रके अभ्यासके लिये सिखलानेमें किया। इस विषयमें प्राचीन हिन्दू ऋषियोंकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है कि उन्होंने जिन्दोंके स्थानमें मुर्दोंका उपयोग किया और यह बात तो माननीही पड़ेगी कि आयुर्वेदविद्याके सबसे अधिक महत्त्वके विषय-में सबसे पहिले वे ही सफल हुए। क्योंकि जब आर्यवैद्य शारीरशास्त्रकी खोजमें इस प्रकार तन मनसे लगे थे उस समय दूसरी जातियोंकी दशा क्या थी? यहूदियोंमें लाशको केवल छू लेना ही बड़ा भारी पाप समझा जाता था, और मिश्र देशवालोंका शारीर सम्बन्धी ज्ञान केवल उन अछूत और निकाली हुई नीच जातियों तक परिमित था जिनका काम लाशमें सुगन्ध लगाना था। वास्तवमें वे इतने नीच माने जाते थे कि उनको राजा और सुन्दर स्त्रियोंके शव तबतक नहीं दिये जाते थे जबतक कि वे बिल्कुल सड़ न जाते थे। प्राचीन ग्रीसमें भी इस विद्याका प्रादुर्भाव न था; क्योंकि ग्रीक लोग शवको मृत्युके बाद ही गाड़ देना परम आवश्यक और पवित्र समझते थे; और जो कोई इसमें ढीलढाल करता था वह कड़ा दण्ड पाता था। प्रसिद्ध इतिहास लेखक जिनोफनने लिखा है कि ग्रीसवालोंने अपने छ उच्च श्रेणीके सेनापतियोंको जो एक सामुद्रिक लड़ाई जीतकर आये थे, मृत्यु दण्ड दिया था; इस दण्डके देनेका कारण यह था कि उन्होंने कुछ मुर्दोंको जो समुद्रमें गिर पड़े थे नहीं उठा पाया था।" फिर मेजर वसु प्राचीन हिन्दुओंके शारीरशास्त्रके बारेमें कहते हैं कि—'यहाँ यह कह देना उचित है कि उनका शारीरशास्त्रका ज्ञान इतना उत्तम नहीं था कि जितना आयुर्वेदके लिये होना चाहिये। यद्यपि आरम्भके कुछ वैद्योंने चीरफाड़ कर इस शास्त्रका अध्ययन किया था; किन्तु पिछले वैद्योंने यह आवश्यक अभ्यास छोड़ दिया था। भगवान् बुद्धके द्वारा भारतमें जो धार्मिक आन्दोलन हुआ था उसने विद्या सीखनेके लिये शरीरकी चीरफाड़को एकदम रोक दिया होगा। भगवान् बुद्धका आदेश केवल यह था कि 'किसी भी जीवको न मारो' किन्तु उनके शिष्योंने इसे एक सीमासे आगे बढ़ा दिया, यहाँ तक कि वे शवको छूना अपवित्र समझने लगे। इस प्रकार बौद्धधर्मके प्रकाशने शारीरशास्त्रका चीरफाड़ द्वारा अध्ययन बहुत करके रोक दिया। अब हम सुशिक्षित बृटिशराज्यमें कितने सुखी हैं।

वैद्यराज प्रभुरामजीके आयुर्वेदिक विद्यालयके सिवाय बम्बईमें एक और भी वैद्योंकी सभा है जिसके सभापति डाक्टर गोपालराव देशमुख एम० डी०, बी० एस० सी०, जे० पी० हैं। इस सभामें एक आयुर्वेदिक पुस्तकालय है जिसमें अधिकांश पुस्तकें श्रीवेंकटेश्वर प्रेसके अध्यक्ष सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी जे० पी० ने प्रदानकी

हैं। इसके संरक्षक श्रीमान् महाराजा दरभंगा हैं। इसके उपसभापति श्रीमान् वैद्य त्र्यम्बकलाल त्रिभुवनदासजी मुनि और मंत्री श्रीयुत अमृतलाल जटाशङ्कर चाँदलिया हैं। ये दोनों महानुभाव इस सभाकी शोभा बढ़ा रहे हैं।

अभी हालमें ही यूरोपमें जो विशुद्ध औषधियोंको गोली, गोलियाँ आदि बनानेकी वैज्ञानिक रीति चली है—वह भी आपके मनन करने योग्य है। आपके आयुर्वैदिक चूर्ण, वटक और गोली प्राचीन कष्ट, समय और धन साध्य रीतिसे पुराने बेढङ्गे वर्तनोंमें बनायी जाती हैं। यदि आप उस रीतिसे इन्हें बनावें जिस रीतिसे यूरोपके औषधि—विक्रेता बनाते हैं तो क्या उससे आपके समय, धन और मेहनतकी बचत न होगी? मैं आपकी प्राचीन रीतियोंकी बुराई नहीं करता। मेरी सम्मतिको आप केवल आयुर्वेदकी भावी उन्नतिका रूप समझकर ग्रहण कीजिये।

अब मैं केवल कुछ शब्द उन लापरवाह लोगोंके लिये और कहना चाहता हूँ जो अपनेको वैद्य कहते हैं और मनुष्यके प्राणोंके साथ खेल खेला करते हैं और जो विश्वासी मनुष्योंको बड़े सङ्कटके समय निराश कर देते हैं। मेरी तुच्छ समझमें किसी भी व्यक्तिको तबतक वैद्यक न करनी चाहिये जबतक वह अवस्थामें परिपक्व न हो जाय और तबतक कि वह कमसे कम ३ वर्ष तक आयुर्वेदका अध्ययन न कर ले और जबतक कि उसे योग्य परीक्षक उत्तीर्ण न कर दें। इस बातको हृदयमें अच्छी तरह बैठा लेना चाहिये कि चाहे वह वैद्य विज्ञानकी किसी भी शाखामें चिकित्सा क्यों न करता हो; किन्तु जबतक कि उसे योग्य और उचित परीक्षक योग्य न बतलावें और जबतक कि वह इस विद्याको अपना मननका विषय न बना ले और जबतक उसने इस शास्त्रको योग्य वैद्यसे न पढ़ा हो, तबतक उसे राज्य और समाजकी तरफ़से कभी वैद्यक करनेकी आज्ञा न मिलनी चाहिये। सिंसिनेटीके अध्यापक कार्नीलियस जी० कामेगीजका कथन है कि 'यह रीति बिल्कुल सरल और न्यायानुमोदित है।' उन्होंने यह १ नवम्बर १८९५ में कहा था। यही महाशय फिर कहते हैं कि समाजका यह कर्तव्य केवल अपने बचावके लिये ही न होना चाहिये किन्तु उसका यह कर्तव्य वैद्यकशास्त्रका उचित आदर करनेके लिये भी होना चाहिये' वैद्यक कर्तव्यकी गम्भीरताको एक भक्त हिन्दू और आयुर्वैदिक वैद्यके सिवाय और कौन जान सकता है? डाक्टर कामेगीज पूछते हैं कि "जब घरका कोई आदमी बीमार होजाता है तब जो अवस्था परिवारवालोंकी होती है उसका आधा भी अनुभव किसे हो सकता है? राजासे लेकर रङ्क तकका, गृहविहीन, बन्धुविहीन, स्थानविहीन और मित्रविहीन सहस्रों अनाथोंका बीमारीके समय कौन साथी है? कौन है जो रोगोंको नाशकर रोते हुए रोगीको हँसाते हँसाते घर भेजता है? कौन है जो युद्धके मैदानमें गोलियोंकी अग्निवर्षाके समय आगे बढ़ता चला जाता है, इसलिये नहीं कि वह युद्धकी भीषण देवीका साथ देकर संहारका कार्य बढ़ावे; किन्तु इसलिये कि वह संहारके कार्य

अर्थात् घावोंको ठीक करे ? इस व्यक्ति अर्थात् वैद्यसे अधिक पवित्र वह मनुष्य भी नहीं है जो धार्मिक पवित्रताके कारण पवित्र हुआ है।" धार्मिक व्यक्ति और आचार्य आत्माको बचानेका वचन भर देते हैं किन्तु वैद्य शरीरके दुखोंको दूर करनेका उद्योग करता है। वैद्यको अपनी जवाबदेही याद रखनेके लिये इस बातको कदापि न भूल जाना चाहिये कि वह ऐसा तभी कर सकता है जबकि वह शरीरके नियमोंको जानता हो,—"उन नियमोंको जिनके द्वारा हम चलते फिरते और जीते हैं।"





श्रीमान् आयुर्वेदमार्तण्ड पं. लक्ष्मीराम स्वामी
आयुर्वेदाचार्य, जयपुर।
अध्यक्ष, नि. भा. व. ६ वैद्यसंमेलन कलकत्ता।
प्रधानाध्यापक, आयुर्वेदविभाग महाराजासंस्कृतकालेज जयपुर।

॥ श्रीः ॥

अखिल भारतीय षष्ठ वैद्यसंमेलन कलकत्ताके सभापति, राजवैद्य आयुर्वेद मार्त्तण्ड

श्री लक्ष्मीराम स्वामी, जयपुरका

जीवन चरित।



जगत्में आज तक जितने महापुरुषोंने जन्म लिया है—उनके जीवनमें प्रायः अलौकिकताका ही परिचय मिलता है। एक अंश में ऐसे असाधारण प्रभावशाली पुरुषोंको समय निर्माणका प्रधान कारण भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। हमारे श्रद्धेय चरित नायक पूज्यपाद स्वामीजी महाराजका जीवन भी कई अद्भुत घटनाओंसे संघटित हुआ है।

राजपूतानेको ही नहीं किन्तु भारतवर्षको आयुर्वेदके सच्चे कर्णधार पर वास्तविक गर्व हो सकता है। घटनाओंके विवरणसे यह बात आगे चलकर स्वयं स्पष्ट हो जायगी।

स्वामीजीका जयपुर राज्यान्तर्गत सांगानेर कस्बेके पास एक छोटेसे ग्राममें एक कुलीन गौड़ ब्राह्मणके घरमें वि. सं. १९३० श्रावण कृष्ण ६ को हुआ था। आपके पिता साधारण परिस्थितिके पुरुष थे। आप छ वर्षकी अवस्थामें ही जयपुरके यशस्वी वैद्य स्वामी श्री चन्दनदासजी दादू पन्थी (जो कि पूज्य महाराज (आप) के पितृव्य ही थे) के शिष्य अपने पिताकी अनुमतिसे बना दिये गये। उसी दिनसे आपका जीवन एक प्रकासे गृहस्थ मार्गसे भिन्न ही हो गया। छोटी अवस्थामें ही अपने दीक्षा गुरु श्री चन्दनदास जीके देहावसानके अनन्तर अपने साधु अभिभावकों द्वारा आपकी प्रारम्भिक शिक्षा—आरम्भ हुई। बाल्यकालमें ही आपकी अलौकिक बुद्धि का परिचय पाकर अध्यापक अत्यन्त संतुष्ट रहते थे। जयपुर राजकीय संस्कृत विद्यालयमें ही स्वामीजीने 'प्रवेशिका' 'उपाध्याय'-शास्त्री तथा आचार्य परीक्षाओंको सम्मान पूर्वक नियत समयमें ही पास कर लिया था।

वि० १९५२ में आप आचार्य परीक्षामें २२ वर्षकी अवस्थामें ही उत्तीर्ण हो गये थे। आयुर्वेद विभागमें उन दिनों जयपुरके सुप्रसिद्ध विद्वान् वैद्य कवि-शिरोमणि भट्ट श्री कृष्णारामजी पढ़ाते थे, कहते हैं कि उनको स्वामीजीके बुद्धिवैभव पर इतना विश्वास था कि जिस ग्रन्थको टीका टिप्पणी सहित भली प्रकार पढ़ा दिया फिर यदि उसी ग्रन्थका पारायण दूसरे शिष्योंके लिये आवश्यक समझा तो स्वामीजीको ही पढ़ानेकी आज्ञा प्रेम पूर्वक दे दी। एक प्रकारसे अध्ययनके साथ ही अध्यापन कलाका प्रावीण्य भी स्वामीजी भट्टजीके चरणाश्रयमें प्राप्त कर रहे थे। स्वामी जीके परीक्षा समयमें तत्कालीन कलकत्तेके सुप्रसिद्ध कविराज महामहोपाध्याय श्री विजयरत्न सेनजी परीक्षक हुए थे। उन्होंने परीक्षककी हैसियतसे सन्तोष प्रकाशनार्थ स्वयं कुछ आयुर्वेदके ग्रन्थ पारितोषिक रूपमें भेजे थे।

समयकी गति बड़ी विचित्र है, वैद्यवर्य भट्ट श्री कृष्णाराम जीके देहावसान पर स्वामीजी महाराजकी नियुक्ति यद्यपि जयपुर राजकीय संस्कृत विद्यालयमें अपने यशस्वी आचार्यके स्थान पर प्रधानाध्यापकके रूपमें हो चुकी थी, फिर भी अपनी ज्ञान गरिमाको विशाल बनानेकी

कामनासे आयुर्वेद सिद्धान्तके अनुकूल प्रायोगिक प्रक्रियाको सीखनेके उद्देश्यको ध्यानमें रखते हुये तत्कालीन शिक्षा विभागाध्यक्ष श्री कालीपद बनर्जीकी अनुमतिसे कलकत्तेके सुप्रसिद्ध कविराज महामहोपाध्याय श्रीद्वारकानाथ सेन जीके पास स्वामीजी महाराज गये। यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि कविराजजी आपके वैदुष्यसे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने हृदय खोलकर चिकित्सा मर्म अति शीघ्र ही अवगत करा दिया और आशीर्वाद दिया कि तुम वैद्य जगत्में प्रशंसाके पात्र और आयुर्वेदोद्धारक बनोगे। उनका लिखा हुआ एक पद्य भी दृष्टिगोचर हुआ है वह यह है—

"सम्भरौषधसम्भारान् चिकित्सावहितो जनान्।
चकाशयतु ते सौम्य यशो दश दिगन्तरम् ॥"

स्वामी जीने चिकित्सा शास्त्राध्ययनके साथ ही जयपुरके सुप्रसिद्ध विद्वानोंसे साहित्य-धर्मशास्त्र-सांख्य-वेदान्त आदिकी सच्ची शिक्षा भी प्राप्त की थी। कलकत्तेसे लौटते समय बनारसमें जब स्वामीजी स्वर्गीय कविराज श्री परेशनाथ रायजीसे मिले, तब उन्होंने स्वामीजीके वैदुष्यको पहिचान कर भूरि २ प्रशंसा की थी और एक प्रशंसापत्र भी दिया था। कविराज श्री परेशनाथ रायजी आयुर्वेदके प्रकाण्ड विद्वान् समझे जाते थे और वह चरक संहिताके जल्प कल्पतरु-भाष्यके निर्माता लोक प्रसिद्ध स्वर्गीय कविराज श्रीगङ्गाधर जीके प्रधान शिष्य थे।

कहना नहीं होगा कि स्वमी जीकी अलौकिक चिकित्सा बुद्धिका परिचय प्राप्त कर आयुर्वेदके सभी प्रसिद्ध विद्वान् एकमतसे आप पर कृपालु हो गये।

आपके आयुर्वेदके प्रधान आचार्य भट्ट श्री कृष्णारामजीका बनाया हुआ 'सिद्ध भेषज मणि-माला' नामक ग्रन्थ वैद्य जगत्में प्रायः प्रसिद्ध है। भट्ट जीने इस ग्रन्थकी टिप्पणी लिखनेकी आपको आज्ञा दी थी। भट्ट जी उन दिनों बहुत अस्वस्थ रहते थे इसलिए स्वामी जी महाराजने विस्तृत टीका न लिखकर टिप्पणी ही लिखी, भट्टजीने जब अपने हार्द भावोंको टिप्पणीमें यथावत् पाया तब एक आशीर्वाद पद्य स्वयं बनाकर अपने अनुग्रहका परिचय दिया। यह पद्य मणि-मालाके प्रत्येक गुच्छकी टिप्पणीके अन्तमें मुद्रित है। वह यह है कि—

यः प्राचां भिषजां विवेद महितास्तिस्रोऽपि ताः संहिताः
साहित्यं च सधर्मशास्त्रमभितः स्वच्छन्दवाक्छन्दसि।
लक्ष्मीरामसुधीः स एष भिषगाचार्यप्रशस्तिं वहन्
व्याचष्ट प्रथमं गुलुच्छममलं भैषज्यरत्नस्रजः ॥

स्वामीजी अपनी छात्रावस्थामें कविताके बहुत अभ्यासी थे, प्रायः आपके तत्कालीन पद्य भी बड़े ही मधुर और कवित्व चमत्कार पूर्ण होते थे।

अध्ययन कालमें ही आपकी परम मितभाषिता गाम्भीर्य और मनस्विताको देखकर आपके अध्यापक आपको होनहार कहा करते थे।

स्वामीजीने ३६ वर्ष तक जयपुर राजकीय संस्कृतविद्यालयमें आयुर्वेदाध्यापन कार्य करते हुए जो आयुर्वेदकी ठोस सेवाकी है वह भूली नहीं जा सकती। यह तो सत्यही है कि आयुर्वेद-की उन्नति इस समयमें भारतमें जिस प्रकार दृष्टिगोचर हो रही है उसका यदि प्रान्तीय विभागके द्वारा श्रेयोविभाजन किया जाय तो राजपूतानेमें स्वामीजीने ही आयुर्वेदकी अपूर्व जागृति पैदा करनेमें असाधारण प्रयत्न किया है। आपकी अध्यापनकलाके प्रावीण्यसे अनेक देशोंके छात्र

आयुर्वेद पढ़नेके लिए जयपुर आते रहे हैं, जनताके हृदयमें जयपुर संस्कृत कालेजसे उत्तीर्ण छात्रोंका समुचित समादर होना एकमात्र स्वामीजीके अध्यापनका प्रभाव ही समझा जा सकता है। ग्रन्थ को आमूलचूड़ सपरिष्कार प्रायोगिक शिक्षा सहित पढ़ाना एकमात्र आपका उद्देश्य रहा है। अध्ययन प्रक्रिया आपकी इतनी परिमार्जित थी कि थोड़े अंश पढ़ने पर भी छात्रको ग्रन्थके पौर्वापर्यका ज्ञान भलीप्रकार हो जाया करता था। आपका छात्रोंके प्रति प्रेमवात्सल्य अपूर्व रहा है। जिसके सैकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं। आपके पढ़ाये हुए छात्र विद्यालयोंमें अध्यापनका कार्य व अनेक स्थानोंमें चिकित्साका कार्य सफलतापूर्वक कर रहे हैं। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि अध्यापनके साथ प्राचीन पद्धतिके रक्षणार्थ स्वामीजीके श्रद्धापूर्ण उपदेशोंका जिन लोगोंने श्रवण किया है उनके विशुद्ध आयुर्वेदीय चिकित्साप्रणालीका प्रचार करते रहनेका श्रेय सब कुछ स्वामीजी महाराजको ही है। स्वामीजी के विविध प्रान्तवासी शिष्योंकी नामावली तैयार की जाय तो बहुत बड़ी बन सकती है। किन्तु कुछ असाधारण शिष्योंका नाम परिचय करा देना असंगत न होगा। लाहौरमें चिकित्साके परम मर्मज्ञ वैद्यवर्य श्री ठाकुरदत्तजी मुलतानी और स्वर्गीय पं० श्री नारायणदत्तजी आयुर्वेदाचार्य खुर्जा, पं० श्री मणिरामजी आयुर्वेदाचार्य रामगढ़, पं० श्री श्यामलालजी भिवानी, वैद्यवर्य श्री नारायणजी शास्त्री बीकानेर आदि अपने २ कार्योंकी सफलताके कारण विशेष प्रसिद्धि तथा प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं।

स्वामीजीके स्वभावमें एक बात बहुतही आश्चर्यजनक मालूम होती है कि इन्होंने आधुनिक-कलाकी एक प्रकारसे इस सम्बन्धमें उपेक्षाही की है। आजकल प्रायः छोटे बड़े वैद्य तथा व्यवसायी व्यक्ति विज्ञाप्न साइनबोर्ड आदिसे ख्याति प्राप्त करनेमें प्रयत्नशील रहते हैं। किन्तु पूज्य स्वामीजी महाराज इस बातका सदासे घोर विरोध करते आ रहे हैं। इस प्रकारके प्रचार व्यवसायके अभावमें यहाँ तक कि मुद्रित व्यवस्थापत्र आदिको भी न रखते हुए भारतके उच्च चिकित्सकोंमें गणनीय रहे हैं। मेरा तो विश्वास है कि यह केवल निराडम्बर निःस्वार्थ आयुर्वेद सेवाकाही पुण्य प्रभाव है। आपकी गणना आयुर्वेदीय चिकित्सापद्धतिसे चिकित्सा करनेवाले उच्च चिकित्सकोंमें की जाती है। दूर दूरसे यू०पी०, पंजाब, बरार, राजपूताना प्रान्तके प्रायः सभी स्थानोंसे अपरिमित दुःसाध्य रोगी जयपुरमें आपकी चिकित्सा करानेके उद्देश्यसे आते हैं, और यथोचित लाभ प्राप्तकर आयुर्वेदकी गुणगरिमासे प्रभावित होते हुए प्राचीन चिकित्साशास्त्रके भक्त बन जाते हैं। आपकी विशुद्ध आयुर्वेदीय चिकित्साप्रणालीके चमत्कारको देखकर कई बार विदेशी चिकित्साके मर्मज्ञ विद्वानोंने भी मुक्तकण्ठसे प्रशंसाकी है। आपका राजा, महाराजा, सेठ, साहूकार, देशके नेता अथवा शिक्षित समुदाय आदिमें समानरूपसे समुचित समादर पाना चिकित्सा सफलताका ही पूर्ण प्रभाव है। यह कहा जा सकता है कि बूंदी-जयपुर-बीकानेर-ग्वालियर-किशनगढ़-भरतपुर-सिरोही आदि नरेशोंकी चिकित्साके लिए समय समय पर आपका अनेक बार आह्वान हुआ है। इनमें कई नरेशोंने आपकी चिकित्सामें पूर्ण विश्वासकर अपने स्वास्थ्यमें अपूर्व परिवर्तन होनेसे परम श्रद्धा अक्षुण्ण बना रखी है। आयुर्वेदकी दृष्टिसे आपके चिकित्साका गौरव बहुतही संमानास्पद है। कारण यह है कि आप प्रायः अनुभूत तथा मुष्टि योगोंका प्रयोग बहुतही कम करते हैं। आपकी चिकित्साप्रक्रिया विशुद्ध शास्त्रीय कही जा सकती है। यदि कभी किसी अनुभूतयोगका प्रयोगभी किया तो उसके गुण, धर्म आदि

शास्त्रीय सिद्धान्तोंसे पूर्ण विवेचनाकी कसौटी पर कस लिए जाते हैं। फिर भी अनुपान आदि सब कुछ शास्त्रीय ही बने रहेंगे। सारांश यह है कि किसी भी प्रकारकी विदेशी दवाओंका प्रयोग प्रायः स्वामीजी अपनी चिकित्सामें नहीं आने देते हैं। यही कारण है कि यह चिकित्साशास्त्रके अपने समयके युगप्रवर्त्तक कहे जाँय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। मेरा यहाँ यह कहना असंगत नहीं होगा कि कठिन से कठिन रोगकी व्यवस्थामें स्वामीजी अपने शास्त्रीय परिमार्जित ज्ञान पर धैर्यपूर्वक विश्वास रखते हुए एक एक पद बड़ी दूरदर्शितासे उठाते हैं। चिकित्सा-व्यवसायमें इनकी अलौकिक बुद्धिका परिचय साथ रहनेसे ही हो सकता है। इन संयमी सुचरित्रपूर्ण दयालु महानुभावके आदर्श गुणोंसे वैद्यसंसार कदाचित् पूर्ण परिचित नहीं भी हो, किन्तु जिन्हें रोगीके रूपमें अपनी चिकित्सा करानेका अवसर मिला है, वे जानते हैं कि चिकित्सकके सब गुण किस प्रकार इस जगह सुसंघटित हुए हैं।

स्वामीजी महाराज भारतके प्रसिद्ध आयुर्वेद विद्यालयोंके प्रायः परीक्षक रहा करते हैं। परीक्षा समयमें भी ग्रन्थके मर्मान्वेषणमें आपका खयाल रहता है। छात्रने ग्रन्थको किस प्रकार और कहाँ तक पढ़ा है इस बातकी छानबीन आपके प्रश्नोंमें रहा करती है। प्रसङ्गवश कुछ संस्थाओंके नाम निम्नलिखित हैं। (१) हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस (२) निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ (३) पटना गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कालेज (४) ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज (५) डी. ए. वी. कालेज लाहौर (६) वैद्यशास्त्र पीठ कलकत्ता (७) वैद्यक एण्ड यूनानी कालेज देहली। (८) बनवारीलाल विद्यालय देहली। (९) जयपुर राजकीय संस्कृत विद्यालयान्तर्गत आयुर्वेद विभाग इत्यादि।

स्वामीजीकी विद्वत्ताका प्रचार प्रायः देशमें सर्वत्र ही समान रूपसे व्याप्त है। इस कारण जब मद्रास, बंगाल और यू० पी० गवर्नमेण्टोंने आयुर्वेद सम्बन्धी अन्वेषण कार्य आरम्भ किया था, तब इस कार्यमें सहयोगार्थ स्वामीजीका सम्मानपूर्वक आह्वान किया गया था। मद्रास-गवर्नमेण्टने तो आयुर्वेदकी वैज्ञानिकता सिद्ध करनेके लिये देशके विभिन्न प्रान्तोंके विद्वान् वैद्योंकी गवाहियाँ लेनेके लिये जो कमीशन नियत किया था वह स्वामीजीकी गवाही लेनेके लिए स्वयं जयपुर आया था। उस समय स्वामीजीने आयुर्वेदके सम्बन्धमें विस्तृत-विवेचन पूर्वक जो सम्मति प्रकाश की थी वह आदरपूर्वक स्वीकृत हुई थी। कमीशनने अपनी रिपोर्टमें भी इस सम्मतिका सम्मानपूर्वक समुचित आदर माननीय शब्दोंमें प्रकाशित किया था। इस सम्मतिको 'आयुर्वेदे विज्ञानम्' नामक संस्कृत निबन्धमें प्रकाशित किया गया था। यू० पी० में भी हिन्दू यूनिवर्सिटीमें सम्मति ग्रहणार्थ जिन प्रसिद्ध वैद्योंका आह्वान किया गया था उनमें स्वामीजी महाराज की दी हुई सम्मतिका अधिकारियोंने समुचित स्वागत किया था। इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि स्वामीजी महाराजका वैदुष्यके साथ साथ आयुर्वेद सम्बन्धी समुन्नतिके उपायोंमें भी तथा सामयिक कार्यप्रणालीको कार्य रूपमें परिणत करनेका अनुभव भी कितना प्रबल है।

यहाँ यह प्रकाशित कर देना भी अनुचित नहीं होगा कि स्वामी जी महाराजको जिन संस्थाओं और विद्वानोंने जिस प्रकार सम्मानित किया है वह निम्नलिखित हैं।

(१) निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलनकी ओरसे 'आयुर्वेद मार्त्तण्ड' उपाधिसे विभूषित किया गया था।

(२) बंबई प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज की ओरसे "प्राणाचार्य"—

(३) जयपुर राजकीय संस्कृत विद्यालयसे सर्वप्रथम परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होनेके कारण "भिषगाचार्य"—

(४) कविराज श्री द्वारकानाथ सेनजी महामहोपाध्यायने "वैद्यरत्न" और जयपुरके सुप्रसिद्ध विद्वान् कविवर्य भट्ट श्री कृष्णरामजी महाराजने "वैद्यवर्य" उपाधिसे अनुगृहीत किया था।

स्वामीजी नि० भा० विद्यापीठके सभापति पद पर अनेक बार कई वर्षों तक काम करते रहे हैं। मेरे विचारसे वैद्य-संसारमें यह पद अधिकाधिक सम्माननीयको दिया जाता है। प्रति वर्ष सैंकड़ोंकी संख्यामें उत्तीर्ण होनेवाले छात्र विद्यापीठके सभापति रूपसे स्वामीजीके हस्ताक्षर सहित प्रमाणपत्र पाकर अपनेको गौरवान्वित मानते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि स्वामीजी जैसे विद्वान् वैद्यके हस्ताक्षर उनको वास्तविक वैद्य प्रमाणित करनेमें अत्यन्त सहायक होंगे।

भारतवर्षमें वङ्गप्रान्त बहुत समयसे आयुर्वेदिक चिकित्साके लिये प्रसिद्ध तथा मान्य स्थान समझा जाता है। यह निःसन्देह है कि आधुनिक चिकित्साप्रणालीको परिमार्जित करनेमें तथा पाश्चात्य चिकित्सकोंके समान प्रतिष्ठा प्राप्त करनेमें वङ्गालका स्थान सर्व प्रथम है। यदि यह कहा जाय कि आयुर्वेदीय चिकित्साके सम्बन्धमें वङ्गाल प्रान्त गर्व रखता है और वहाँ उत्पन्न होनेवाले विद्वान् वैद्योंसे देशका गौरव बढ़ रहा है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। वहाँकी राजधानी कलकत्तामें जब षष्ठ-आयुर्वेद सम्मेलनका समारोह होने लगा तब एकमतसे देशने स्वामीजी महाराजको प्रेसीडेन्ट चुननेके लिये आग्रहपूर्ण समर्थन किया था। उस समय सभापति पदसे आपका दिया हुआ भाषण कितना पाण्डित्यपूर्ण और आयुर्वेदकी वैज्ञानिक गवेषणाओं से भरा हुआ था, इस बातका परिचय तत्कालीन समाचार पत्रोंके दिये गये विवरणोंसे स्पष्ट हो जाता है। इस भाषणके अनन्तर स्वामीजीजीके आयुर्वेद विषयक अगाध वैदुष्यका प्रभाव सर्वत्र व्याप्त हो गया था।

"सार्वजनिक कार्य"

जयपुरमें राजकीय पाश्चात्य चिकित्सालयमें राज्यकी ओरसे प्रति वर्ष लक्षाधिक रुपया व्यय किया जाता है। यहाँ सिर्फ कुछ एक राजवंशसे अनुगृहीत परम्पराप्राप्त वैद्योंको जागीरके सिवा एवं राज्यके बड़े २ कस्बोंमें कुछ वैद्योंको साधारण वेतन रूपमें सहायता मिलनेके अतिरिक्त देशीय चिकित्सा पद्धतिके अर्थ उचित धनका व्यय नहीं किया जाता था। राज्यकी ओरसे सार्वजनिक रूपसे देशी औषधियोंके वितरणका कोई प्रबन्ध नहीं था। राजकीय संस्कृत विद्यालयके आयुर्वेद विभागमें एक वैद्य केवल ग्रन्थोंका अध्यापन करते थे। आयुर्वेदकी प्रायोगिक शिक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं था। स्वामीजीके हृदयमें यह बात बहुत दिनसे खटकती थी। आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणालीका सिक्का किस प्रकार जमाया जाय। ईश्वरकी कृपा और समयकी अनुकूलतासे स्वामीजीका नागरिकों और राज्याधिकारियोंमें सहानुभूतिपूर्ण एवं संकटापन्न अवस्थाओंमें चिकित्सक रूपमें सहायक होनेके कारण उत्तरोत्तर अतुल प्रभाव बढ़ रहा था। फलस्वरूप जयपुरमें सार्वजनिक औषधालयके रूपमें "श्री धन्वन्तरी औषधालय" की स्थापना स्वामीजीके द्वारा हुई और इस विभागमें धन्वन्तरि आतुरालय, ध० भेषज निर्माणशाला,

ध० प्रदर्शिनी, ध० प्रयोगशाला (laboratory), ध० पुस्तकालय आदि अनेक विभाग हैं। इस समय राज्यकी ओरसे भी इन विभिन्न विभागोंमें सहायता प्राप्त हो रही है। इसी प्रकार राजकीय संस्कृत विद्यालयके आयुर्वेद विभागमें भी आज ४ वैद्य और शारीर शास्त्र (anotomy) शारीरिक क्रिया-विज्ञान (Physiology) आदिके शिक्षणके लिये एक डाक्टरकी नियुक्ति हो गई है। साथही प्रायोगिक शिक्षाके उद्देश्यसे रसायनशाला, प्रदर्शिनी, लेबोरेटरी आदिका भी सुप्रबन्ध कर दिया गया है। यह सब स्वामीजी की आयुर्वेद सेवा की सची लगनके फल हैं।

स्वभाव

स्वामीजीकी शिक्षा जिस प्राचीन पद्धतिके अनुसार हुई है उस प्राचीन प्रणालीका संरक्षण उनकी चिकित्सामें, व्यवहारमें, भाषामें और स्वभावमें भी मिलता है। वे सच्चे आस्तिक, धार्मिक, और दयालु स्वभावके पुरुष हैं। कई बार कण्ठरवसे आधुनिक अपहरण पद्धतिका सर्वथा विरोध करते रहते हैं। मैं पहले भी कह चुका हूं विज्ञापन-शून्य, आडम्बर शून्य सादी चिकित्सापद्धतिसे भी जिस अच्छी संपत्तिका स्वामीजीने उपार्जन किया है वह उनका निस्सन्देह इस आदर्शमें सफल होनेका पूर्ण परिचायक है। इस समय प्रायः वार्धक्यके कारण और कुछ सुकुमार स्वभावके हेतुसे स्वामीजी महाराज बाहर जाना बहुत कम पसन्द करते हैं। उनका बहुत समय ईश्वराराधनमें व्यतीत होता है। ५००) रु० नित्य फीसकी आयको भी छोड़ कर स्वतन्त्रतावश ही बाहर जाना उनको पसन्द है। उनके स्वभावमें लोभशून्यताके सैकड़ों उदाहरण हैं।

स्वामीजीके रहन सहनसे साधारण पुरुषको मितव्ययिताका खयाल होता है, किन्तु उनका आवश्यक कार्योंमें रुपयेका उदारतापूर्वक त्याग इस बात का परिचायक है कि वे किस प्रकारके वीतराग-स्वभाव साधु पुरुष हैं। अभी थोड़े दिन पहले ही उन्होंने अपनी सम्पत्तिका एक ट्रस्ट नियुक्त कर दिया है, जिसमें एक लाख रुपया नकद और करीब १॥ लाख रुपये लागतकी स्थावर सम्पत्ति शामिल है। इसके विभाजनमें आयुर्वेदका प्रधान भाग रखा गया है। ट्रस्टके नियम उदारतापूर्वक बनाये गये हैं। इस ट्रस्टनामेके पढ़नेसे स्वामीजीकी मननशीलता और दूरदर्शिताका पूर्ण परिचय मिलता है। कोई भी व्यक्ति स्वोपार्जित सम्पत्तिका ऐसा समुचित विनियोग ईश्वरके अनुग्रहके विना कैसे कर सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि यह कार्य राजपूतानेमें विशेषकर जयपुरमें बिलकुल नवीन है। अपनी ६० वर्षकी अवस्थामें भी साधारण शारीरिक स्वास्थ्यके रहते यह कार्य करना स्वभावतः भविष्यमें कुछ अन्य देशसेवाओंका कदाचित् प्रथमाभास हो। बहुधा देखा गया है कि उनकी गाम्भीर्यपूर्ण मितभाषितायुक्त नीतिसे अधिक काल तक पास रह कर भी सहसा परिचय प्राप्त करना सामान्य मनुष्यका कार्य नहीं है। जटिल राजनैतिक और सामाजिक प्रश्नोंका धार्मिक विचारपूर्ण उत्तर यदाकदा उनके मुखसे सुनकर लोग चकित हो उठते हैं। उनका आध्यात्मिक बल और मनोबल इतना प्रभावोत्पादक है कि मनुष्य अपना हृदय खोलकर सारी बात विश्वस्तरूपसे उनके सामने प्रगट कर देता है। वे रोगियोंके प्रति दयालु स्वभाव, जगत्के कार्योंमें विरक्तचित्त, आयुर्वेद सेवामें सतत जागरूक, अनवहित पुरुषोंपर थोड़ेसे उग्र स्वभाव भी जान पड़ते हैं।

देशी राज्योंमें आयुर्वेदके पतनकालमें यह प्रवाद प्रायः बद्धमूल हो गया था कि चिकित्सा

करनेवाले वैद्य प्रायः विना पढ़े होते हैं। शास्त्रश्रमी चिकित्सामें अनुभवशून्य समझे जाते थे। इस निर्मूल प्रवादका समूलोच्छेद करनेके लिये स्वामीजी आदर्श कहे जा सकते हैं। उनके अनेक चिकित्सा कुशल विद्वान् शिष्य प्रशिष्य देशमें इस प्रवादके अपवाद हैं। अब जनता पर विश्वास हो चला है कि शास्त्रीय ज्ञानगरिमा जितनी प्रबल होगी वह उतना ही यशस्वी चिकित्सक होगा। स्वामीजी इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। कहना नहीं होगा कि इसमें समयने भी सहायता की है।

जयपुरमें वैद्य सम्मेलन।

स्वामीजीकी प्रगाढ़ इच्छा थी कि एक बार जयपुरमें भी वैद्यसम्मेलन किया जाय। आमन्त्रण देनेके अनन्तर ही इस कार्यमें स्वामीजीने एक परिष्कृत कार्यप्रणाली बनाई। तत्कालीन राज्याधिकारियों विदेशी-शासकों तथा सम्पूर्ण प्रजावर्गके गण्यमान्य नागरिक तथा अन्य मित्रोंके द्वारा इस कार्यमें जो अद्भुत सहयोग प्राप्त हुआ इसका सम्पूर्ण श्रेय स्वामीजी महाराजको ही है। यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि श्री दरबारके माइनारिटीके जमानेमें जो अंग्रेज प्रेसिडेन्ट पद पर काम करते थे उन्होंने आदरपूर्वक स्वयं सहयोग दिया था। देशके माननीय नेता महामना मालवीयजीने इस अवसर पर सभापति पद ग्रहण किया था। राजपूताना प्रान्तमें इस विचित्र ठाटबाटसे सम्पन्न होनेवाले वैद्य सम्मेलनमें कई अपूर्वताएँ दृष्टिगोचर हुई थीं। स्वागतकारिणी समितिने प्रत्येक कार्यके लिये कई उपसमितियाँ बना रखी थीं। प्रत्येक कार्यमें साधुसेवकोंके रहते हुए भी सारा नियन्त्रण स्वामीजी महाराजके हाथमें था। कहते हैं कि जयपुरमें सार्वजनिक समारोह इससे पूर्व दृष्टिगोचर नहीं हुआ था। प्रदर्शिनी-विभागका सुचारु प्रबन्ध और आगन्तुक सज्जनोंके सैर करानेके साधन इतने उत्तम थे कि प्रत्येक व्यक्ति इस बातको बार बार प्रशंसाके शब्दोंमें कह कर अपने हृदयका सन्तोष प्रकाशित करता था। सम्मेलनके अवसर पर स्वामीजीकी कार्यपरिचालन शक्तिका विशाल स्वरूप दिखाई देता था। आज तक प्रायः २४ वैद्य सम्मेलन हो चुके हैं। इनमें करीब १५ सम्मेलनोंमें स्वामीजी सम्मिलित हुए हैं। इनमें स्मरणानुसार निम्नलिखित नाम प्रकाशित किये जाते हैं—

कानपुर, मथुरा, कलकत्ता, पूना, लाहौर, इन्दौर, बम्बई, कोलम्बो, हरिद्वार, जयपुर, फतहपुर (शेखावाटी), नासिक, करांची, ग्वालियर, बीकानेर, आदि। कोलम्बो जैसे सुदूर स्थानोंमें भी परिश्रम और व्यय आदिका भार उठाकर भी सम्मेलनमें शामिल होना आयुर्वेदके प्रगाढ प्रेमका परिचायक है। प्रायः स्वामीजीका यह मत रहा है कि सम्मेलनकी स्वागतकारिणी समितिको किसी प्रकारका कष्ट न दिया जाय। इसी उद्देश्यसे अपने निवास भोजनादिका सब प्रबन्ध प्रायः पृथक् ही रखते हैं। अपनी ओरसे तथा सुविधानुसार-स्थानीय उच्च नागरिकोंके द्वारा भी यह प्रबन्ध सम्पन्न किया जाता रहा है।

राज्य सम्मान

यह तो मैं पूर्व ही स्पष्ट कर चुका हूँ कि स्वामीजीमें महत्त्वाकांक्षा अथवा लोभ-प्रवृत्ति देखनेमें नहीं आती है। जब बूँदीके महाराजाधिराज श्री रघुवीरसिंहजीने स्वामीजीको पैरमें सोनेका कड़ा बखशीस किया था। तबसे शायद एक बार दरबारमें पहननेके सिवा आजतक

स्वर्णकटकका स्पर्शमात्र पैरमें नहीं किया है। साधारणजनोंकी प्रवृत्तिमें छोटेसे सम्मानको भी विशाल रूपमें दिखानेकी लालसा रहती है, किन्तु, आश्चर्य है कि स्वामीजीको इन सब बातोंसे प्रायः वैराग्यसा ही रहता है।

जयपुरके वर्तमान महाराजाधिराज श्री सवाई मानसिंहजी बहादुरने भी आपको अपने दरबारमें कुर्सीका सम्मान प्रदान किया है। वर्तमान महाराज अपने स्वर्गीय पूज्य पिताकी तरह ही आपका समुचित आदर करते हैं।

उपसंहार

आयुर्वेदके इतिहास पर दृष्टि डालनेसे पता चलता है कि संहिताकारोंका समय और उससे आगेका सम्बन्धित समय सबही प्रायः आयुर्वेदका स्वर्ण समय अथवा दूसरे शब्दोंमें आयुर्वेदका मध्यान्ह सूर्य कहा जा सकता है। इसके अनन्तर मध्य कालमें आयुर्वेदकी जो स्थिति थी वह प्रायः बहुत ही विकट पाई जाती है। मुगलोंके समयमें तो आयुर्वेदको राज्याश्रयहीन ही कहा जा सकता है। आयुर्वेदके मार्मिक सिद्धान्तोंके विशद विवेचन यद्यपि आंशिक रूपसे अथवा मौलिक रूपसे ही सही यूनानी चिकित्सामें हो चुके थे। सौदा-सफरा-बलगमके साथही खूनको भी दोष गणनामें सामिल करनेका श्रेय यूनानी चिकित्साको नहीं दिया जा सकता। स्वयं 'सुश्रुत' ने शोणितको चतुर्थ दोष स्वीकृत किया है। निस्सन्देह यूनानी चिकित्सामें निघण्टु आदिके सम्बन्धमें कुछ बारीकियाँ मिलती हैं पर वह भी मेरे विचारसे अनुच्छिष्ट नहीं हैं। यह बात अत्यन्त दुखास्पद है कि भारतीय ज्ञानगरिमाको नष्ट करनेके विविध उपाय इस समयमें प्रायः हुए हैं। साथही देशमें रात दिन अशान्ति, युद्ध और आक्रमण कार्योंकी वीभत्सताके कारण सुख साम्राज्यकी इतिश्री होनेसे भी अवश्यही आयुर्वेदको हानि पहुँची थी, फिर भी कुल-परम्परागत वैद्योंके वंशोंमें अध्ययन क्रमके अविरत चलते रहनेसे शास्त्रकी केवल शास्त्रीय परिभाषा रूपमें रक्षा हुई थी। प्रायोगिक शिक्षासे प्रायः छात्रशून्य ही रहते थे। पढ़े लिखने पर भी शास्त्रीय योगोंको चिकित्सा मार्गमें बरतने का अभ्यास वैद्योंका प्रायः शिथिल ही था। भेषज निर्माणकी भी यही दुर्दशा थी, एक व्यक्ति एक बातको जानकर ही अपने को सर्वज्ञ मानता था, यह समय प्रायः आयुर्वेदका ह्रासका कारण ही हुआ है। इसका परिणाम यह हुआ है कि ज्ञानके विशेष आलोकके शुभ अवसर पर भी, सम्प्रदायके सिलसिलेके भंग होनेके कारण, आज भी रसग्रन्थोंके रहस्य प्रयोग बनानेमें वैद्य असमर्थ हैं। यदि यह भी कहा जाय कि समय इन बातोंको भी ठीक कर लेगा तो यह तो अवश्यही है कि आयुर्वेदकी इस क्षतिको सहसा पूर्ण करनेमें असाधारण परिश्रम और ज्ञान की आवश्यकता है।

संसारका नियम है कि जो पूर्ण पददलित हो जाता है कभी तो उसका भाग्य उन्नतिकी ओर अग्रसर होता ही है। यह आयुर्वेदका पुनरुद्धार समय कहा जा सकता है। जब देशमें एक प्रकारसे प्रशान्त वातावरण उत्पन्न हो रहा था, युद्ध और अशान्ति प्रायःसमाप्त हो चुकी थी, उस समय आयुर्वेदकी भी दशा परिवर्तित रूपमें देख पड़ती थी। सामूहिक रूपसे कार्य करनेकी प्रथा इस युगमें विशेष महत्त्व रखती है। सबसे पहले बङ्गालमें उपयुक्त वातावरण होनेके कारण आयुर्वेदका यशः सौरभ शीघ्र ही फैल गया, एक प्रकारसे अन्य चिकित्सा पद्धतियोंका प्रभाव इस प्रान्त पर बहुत कम पड़ा था। बङ्गालियोंकी अभिरुचि अध्ययनशील होनेके कारण पश्चिमसे

आनेवाली ज्ञान राशि भी उनके मस्तिष्कोंमें स्थान कर रही थी। फलतः आयुर्वेदकी चिकित्सा-पद्धतिको परिष्कृत करनेमें समयानुकूल परिबृंहण करनेमें वङ्गीय विद्वानोंका विशेष हाथ कहा जा सकता है। चिकित्साके कई एक संग्रह ग्रन्थ इसके प्रमाण भी हैं, एक वार यह भी स्वीकृत कर लिया जाय कि आयुर्वेदकी ज्ञानगरिमाको प्रकाशित करनेमें इन लोगोंका श्रम विशेष स्तुत्य है तो कोई अत्युक्ति न होगी। भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें यह जागृति प्रशान्त वातावरणमें अवश्य ही होनहार थी। राजपूतानेमें भी इस अमन चैनके कारण कुछ दूरदर्शी महाराजाओंके समयज्ञ होनेमें कोई सन्देह नहीं है। जयपुर इस प्रगतिमें सर्व प्रथम गणनीय है। ईस्ट इन्डिया कम्पनीसे प्रथम सन्धि करनेवाले महाराजाधिराज सवाई प्रतापसिंहजीके समयमें यहाँ एक वैद्यमण्डल था, जिसके अधीन आयुर्वेदके अनुपम ग्रन्थोंसे उज्ज्वल योगरत्न संग्रह करनेका महाराजाधिराजने कार्य सुपुर्द कर रखा था। इन्हींके समयमें अमृतसागर नामक (हिन्दी) आयुर्वेद ग्रन्थ सम्पन्न हुआ था। आयुर्वेदकी क्रमिक उन्नति राजपूतानेमें दृष्टिगोचर होती है। यहाँके महाराजाओंके वैद्योंको दिये हुए सम्मान जागीरें इस बातकी परिचायक हैं।

स्वर्गीय श्री महाराजाधिराज रामसिंहजीने संस्कृत विद्यालयकी स्थापना करते समय आयुर्वेदाध्यापक पद पर गुजरात प्रान्तके विशिष्ट विद्वान् वैद्यवर्य श्री कुन्दनरामजीको प्रतिष्ठित किया था। मणिमालाकार कविवर श्रीकृष्णरामजी इन्हींके पुत्र थे। यह बात स्पष्टरूपसे उद्घोषित होती है कि जयपुर राज्यमें वैद्योंका इतना सम्मान रहते हुये भी अवश्य कहा जा सकता है कि चिकित्साप्रणालीमें परिष्कार बहुत अपेक्षित था। वैद्योंके घरों पर जो रोगी आते थे उन्हें प्रायः नुसखेही मिला करते थे, सिद्धौषधियोंके देनेका प्रचार बहुत कम था। यद्यपि शीतकालमें धातुओंके भस्म, चन्द्रोदय आदि वैद्य लोग पौष्टिक पाकोंमें अपने पाससे ही डाला करते थे। ख्याति प्राप्त और प्रतिष्ठित वैद्योंके घरानेमें ही चन्द्रोदय आदि रसायन मिला करते थे। साधारण जनता इन प्रयोगोंसे प्राय लाभ नहीं उठाया करती थी।

यह कहना स्वतन्त्र सत्य है कि स्वामीजी महाराजने इस सम्बन्धमें सर्व प्रथम राजपूतानेको जागृत किया है, यह निःसन्देह है कि यह भी प्रसाद बहुत अंशोंमें वङ्गालका कहा जा सकता है, किन्तु मौलिकता देशकालोपयोगिता और कुछ ऐसे ही आवश्यक चिकित्साविषयक सिद्धान्त इनके मस्तिष्ककी स्वतन्त्र उपज कहे जा सकते हैं। मैं इस समयको आयुर्वेदका पुनरुद्धार स्वीकृत कर चुका हूँ, अतः स्वामी जीको उद्धारक श्रेणीमें कहनेका सौभाग्य भी प्राप्त करना उचित है। ऐसे स्वामीजीके गुणोंका प्रकाश करना नितान्त दुर्लभ है किन्तु आचार्य 'वाग्भट' के शब्दोंमें निम्न पद्यको कह कर विरमित होता हूँ।

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम्।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम्॥

ता० २७-१२-३४

भिषगाचार्य—
नन्दकिशोरशर्मा राजवैद्य
आयुर्वेद प्रधानाध्यापक
राजकीय संस्कृतविद्यालय, जयपुर



श्रीधन्वन्तरिर्विजयते ।

निखिल भारतीय-वैद्यसम्मेलनस्य षष्ठाधिवेशन-सभापतेः,

आयुर्वेद मार्तण्ड-राजवैद्य-जयपुर वास्तव्य—

पण्डित लक्ष्मीराम स्वामि-भिषगाचार्य महोदस्य भाषणम् ।



बलेः सर्वस्वहरणं प्रवणं भवतारणे ।
साधूनामेकशरणं श्रीकृष्णचरणं नुमः ॥१॥
यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥२॥

विद्यावैभवभासुरा गुणगणैरापूरिताशान्तरा
मातुर्नः खलु भारतीयधरणेः सेवासु हेवाकिनः ।
ये ये संप्रति सोत्सवाः सुमनसः संभूय वैद्यागमो-
न्नत्यै संदधते कृतिं सविनयं संमानये तानहम् ॥३॥

राज्ये यस्य वयं निरस्तविपदः प्रारब्धभद्रोद्यमा
एवं संप्रभवाम उन्नमयितुं भैषज्यशास्त्रं परम् ।
वीराग्र्योपि च पञ्चमो विजयतां श्रीजार्जराजेश्वरः
कुर्वन् दुर्मदजर्मनारिनिकरे शार्दूलविक्रीडितम् ॥४॥

सद्वैद्यागमनित्यखेलनकलारङ्गानुपागामिमान्
बद्धान् भेषजसंप्रयोगपटुताकामः कदाचित् पुरा ।
एतेष्वेव च सत्क्रिये यदधुना मन्दोऽप्यहं द्वारका-
नाथस्याखिलवैद्यभूषणमणेः सोऽयं प्रसादोदयः ॥५॥

अथवा—

पूर्वैः साधुगुणोज्ज्वलैरुपचिताभिख्ये सभानायक-
स्थाने दोषमलीमसस्य मम यन्निर्वाचनं साधु तत् ।
षड्वर्षीयशिशोरसौ समभवत् संमेलनस्यालिके
कृष्णा कज्जलरेखिकेव जनतादृग्दोषनिर्मूलनी ॥६॥

अयि श्रीमन्तो महाशयाः ! प्राच्यभैषज्यविज्ञानानुशीलनोपकृताशेषजनताः पीयूष-पाणयो जगदगदङ्कारवर्य्याः सभास्तारा भिषग्भैषज्योपकारकृतमतयः पुरुषार्थबहुलाः

सज्जनधुर्य्याश्च, दिष्ट्या जन्ममरणमहारोगजीवातोर्निखिलब्रह्माण्डसूत्रधारस्य भगवतः कृपया समवेतमेतत् षष्ठं निखिलभारतीयवैद्यसम्मेलनम्। समुचितमेवास्य तेषु तेषु भारतजनपदेषु भ्राम्यतो लब्धप्रतिष्ठस्य नवोत्साहसंपदे कलिकातायां भारतस्य राजप्रतिनिधिना नातिचिराद्धुत्सृष्टायामपि वाणिज्यविद्यासंपदा यथापुरा समेधमानायां प्रधाननगर्य्यामधिवेशनम्। यावत्पाश्चात्यचिकित्सावात्ययोत्सारिते लोकोपेक्षातपेन क्लान्तचिकित्सकपाशोपेक्षया क्षीणे यथायुर्वेदो भूमिमिमामाजगाम वाङ्गी निवाताय शान्त्यै पुष्ट्यै च, तथैव वयमपि सोत्साहकृतीनां स्वनिर्भराणां विघ्नैरदूयमानानां वर्त्तमाने ऽपिप्रवर्त्तितायुर्वेदप्रचारे कनिष्ठिकागणनीयानां वाङ्गविदुषां करावलम्बं लब्धुमायाताः स्मः। अन्यत्र पुस्तकेषु वृद्धेषु कथासु वा स्मृतिशेषतां गतश्चिकित्सकाम्नायोऽत्र गुणबहुलां वैद्यजातिमाश्रित्य न केवलं जीवति, परमपसारयति स्वचमत्कारैः प्रतिद्वन्द्विविहितापलापान्। अत्र हि सुगृहीतनामधेया महामहोपाध्यायपदालङ्कारा मद्गुरुचरणाः श्रीद्वारकानाथसेनमहानुभावाः, श्रीविजयरत्नसेनमहाशयाश्च नानादेशागतेषु छात्रेषु तद्विद्याबीजमवपन्, यत् पुष्पितं फलितं काण्डप्ररोहवदायूंषि पुष्णाति बहूनां चिकित्सान्तरविप्रलब्धानाम्। अत्र हि युवापि विद्यया वृद्धो गणनाथसेनमहोदयः पाश्चात्यव्यावहारिकविज्ञानात् प्रयोगसापेक्षां सूक्ष्मगवेषणां भाषान्तरजह्नौ लीनामुद्धृत्य भगीरथ इवायुर्वेदमहोदधौ समयोजयत्। अत्र हि यूरोपाख्यातयशा लब्धवर्णः प्रफुल्लचन्द्ररायः प्राचीनार्य्यरसायनशास्त्रस्येतिहासं गुम्फन् रसार्णवं विलुप्तं पुनः समस्करोत्। अत्र हि वैद्या न यथेतरत्र वैयाकरणकिरातापसारितापशब्दमृगसुखविहाराय कन्दरीकृताननाः, किन्तु शब्दार्थोभयविदो नामानुसारं कविराजा एव। न ते शुष्काः स्तब्धाः स्थाणवः परं रसाढ्याः। नियतमेतेषां कृपया पुरीमेनां समागतैरस्माभिः कापि नवीना संजीवनी शक्तिरुपलभ्येत, यथा वङ्गेष्विवान्यत्रापि भूयादग्निवेश-सनत्कुमार-चरकादीनामाचार्यवर्य्याणां तपसो ज्योतिषः प्रकाशः।

परं स्थानमेतत्। इयं चाभियुक्तभूयिष्ठा परिषत्। एते च दोषज्ञाः परीक्षकाः। कार्य्यं चैतेषां नायकत्वमिति सत्यं वेपते मे हृदयम्। श्लथीभवति चोत्साहो मम पीठमेतदधिकर्तुं, यत्र भवद्भिर्गुणलेशगवेषिभिरामन्त्रितोऽस्मि। वरतरमभविष्यद् यदि कश्चित् प्रवया लोकशास्त्रविचक्षणो माननीयेषूपस्थितेष्वन्यतमः सर्वेषामस्माकं धुर्यतायां क्षमो वृतोऽभविष्यत्। अहं व्यवहारानभिज्ञः श्रीगुरुचरणप्रसादावाप्तकतिपयज्ञानकणः कोणस्थ इव कांश्चिच्छात्रान् यथामत्यध्यापयामि, कांश्चिदपरिचितभिषगन्तरान् रोगिण उल्लाघीकर्तुं महतः शास्त्रसंभारस्य पृष्ठभेकमाश्रित्य यते। न मया गणनाथेनेव गणिताः शिराः, न योगीन्द्रनाथेनेव योजितं ग्रन्थजातम्, न च कीर्त्तिकरेणेव संचिता वनस्पतिचयपरिचयकीर्त्तिः। विशेषतश्च जिहेमि प्रातःस्मरणीयानां गुरुचरणानां लीलाभूमावत्र प्रधानतां धार्ष्ट्येन नाटयितुम्। परं तत्रभवतां भवतां निदेशैकपरवशः स्वस्खलनसहस्रशङ्कान्दोलितमानसोऽपि स्वीकारोम्यनर्होऽपि यद्भवद्भिरुचितमिति यथारुचि विहितम्। आशासे च दोषमर्षणं मुहुर्मुहुर्दयालुभ्यः।

केनापि देशकालचर्चामन्तरा न कापि सभा प्रारब्धुं शक्या। आपामरं चैतत् कर्णपथमायातं सर्वेषामस्माकं भारतीयानां यदस्मद्राजराजेश्वरेण प्रबलप्रतापप्रचय-प्रभविष्णुना जिष्णुना पञ्चमजार्जेन स्वीयाभिः सेनाभिराक्रान्तो वेलजियमस्वाधीनताभङ्गा निजयशोपहन्ता सन्धिभेत्ता जगतां शान्तिहर्त्ता जर्मनभूदारः। धर्मपथाध्वनीनस्य दुर्बलोदासीनराज्यसत्तायै युध्यमानस्य सम्राजोऽस्मदीयस्य भारतादिनानादेशायातसेना-समूहैरुपचीयमानबलस्य बलानां पुरतो नश्यतु जर्मनमयं जगन्कर्तुं दुरुत्साहो, यथारुचि मृदितपत्रखण्डमिव राजप्रतिज्ञां दलयितुं दुरभिनिवेशो, जगदुन्नायकविज्ञानानां जनपद-विध्वंसने दुरुपयोगाय गर्हणीया प्रवृत्तिः, विद्यालयौषधालयमन्दिरादिभङ्गे शूरायितं च जर्मनराजस्याचिरादेवेति राजभक्तानां शान्तिप्रियाणामस्माकं सर्वेषां हार्दी प्रार्थना। तत्र रणक्षेत्रेषु ये भारतीयाः शूराः सूर्यमण्डलभेदिनो वीरगतिं यान्ति, ये च शत्रोरेव पृष्ठं द्रष्टुमिच्छवो वीरायन्ते, ये चायुर्वेदस्य पाश्चात्यसंस्करणे शल्यकर्मप्रधाने दक्षा दक्षतरा (Doctors) मृत्योर्दंष्ट्रातः पान्ति निःसपत्नमित्रभेदं शस्त्राहतान् व्रणांश्च सान्त्वयन्ति, तेषां सर्वेषां महता गौरवेण यश उद्घोषयामः। परमेश्वरानुग्रहेणास्माकं वाहिनीनां तथा निरुद्धङ्गो जयोऽस्तु यथा न कोऽपि परो बलदृप्तः शस्यश्यामलां जननीमिव सर्वसुख-दात्रीं भारतभुवं बृटिशैः सौराज्यरञ्जितां समुद्रपरिखां शान्तिमधु समास्वादयन्तीं धर्षितुमुत्सहेत। येन वयं निजनिजविद्यानां विकाशने जागरूकाः सार्वदैशिक-मुत्कर्षं बृटिशच्छत्रच्छायायां प्राप्नुयामः। इतः परं वयमस्मत्प्रभोर्भारताधीश्वरस्य प्रतिनिधेर्धैर्यगाम्भीर्याद्यनेकगुणगणपारावारस्य श्रीलार्डहार्डिञ्जमहोदयस्य पत्नीपुत्रयोरसा-मयिकवियोगरूपां विपदमनुशोचन्तो हार्दिकीं समवेदनां सखेदं प्रकाशयामः।

सर्वेषामप्यायुर्वेदप्रणयिनां - परमाभिप्रशस्तिस्थानं सुगृहीतनामधेया ये खलु महाभागा मन्दायमानां दशामुपगतस्यायुर्वेदस्य तदुदितानां च चिकित्सादिविधीनां पुनरुन्नतये यावद्बुद्धिबलोदयं प्रयतमाना गतेस्मिन् वत्सरे त्रिदशालयमध्यारुहंस्तेषां महानुभावानां मनःपावनानि नामधेयानि परिचयं च पूर्ववतः प्रकाशयन् हार्दमुच्छ्वा-समभिव्यञ्जयामि।

(१) एतेष्वायुर्वेदसमुन्नतौ परमोत्साही पूनानगरनिवासी रसायनाचार्य्यः पण्डित-गुरुनाथकालेमहोदयो 'भारतीयं रसायनशास्त्रम्,' इत्यादीनानमुपयोगिनां महाराष्ट्र-भाषामयानां पुस्तकानांमुपनिबन्धा, 'समालोचका' ख्यमासिकपत्रस्य प्रचारकः, पञ्चत्रिंशद्वर्षवयस्क एव परलोकपथिकोऽभूदिति परं नो विषादः। विषमाया-मप्यार्थिकदशायामेष महाभागो रसायनग्रन्थानामन्वेषणे, तेषामालोचनायां च मन्दीकृतान्यव्यापारो व्याप्तृत आसीत्। श्रीमतोऽस्य रसायनशास्त्रे परमाध्यवसायमा-लोक्यास्मिन्नेव संवत्सरे अनेनाखिलभारतवर्षीयवैद्यसंमेलनेन कालेमहोदयाय वितीर्णासीत् रसायनाचार्येति पदवी।

(२) रावलपिण्डी नगरवास्तव्यो वैद्यवरः पण्डितगणपतिशास्त्री आयुर्वेदविषयाणां

परमाभिज्ञो विद्वानासीत् । वैद्यसंमेलनस्योत्साहिषु गणनीयोऽयं महाभागः शारीर-विषयकमेकं ग्रन्थमपि रचितवान्, यस्य हि चतुर्दशसहस्रैः श्लोकैः पादमात्रोनो भागः संपूरितोऽभवत् । अनेन महाभागेन साकमासीन्मम परिचयः । आसीदस्मिन् महाभागे भूयसी खल्वायुर्वेदपुरुषस्य प्रत्याशा ।

(३) प्राणाचार्यो गोपालरामचन्द्रविवलकरमहोदयो नासिकनगरमध्यवात्सीत् । अयं महोदयः सद्वैद्येषु गणनीयः सरलचेताश्चासीत्, एतस्य वंशः शताब्द्याः पूर्वत एव महाराष्ट्रेषु वैद्यकव्यवसाये प्रसिद्धोऽभूत्, श्रूयते अनेन महाशयेन सुश्रुतानुसारमस्त्राण्यपि चिकित्सार्थं निर्मापितान्यासन् । एष हि प्रथमवैद्यसंमेलनस्य स्वागतकारिण्याः सभापतिरपि नियमितोऽभूत् ।

(४) पनवेलनगराभिजनः पण्डितविष्णुकृष्णपुराणिक महाशयः कार्यकुशलो वैद्य आसीत् । एतेन महाभागेन श्रीधूतपापेश्वर आर्यौषधशाला नाम्न्येका वैद्यौषधशाला स्थापितासीत् । एतस्यां शालायां यन्त्राणां साहाय्येनायुर्वेदीयानि भेषजानि निरमायन्त । महाभागस्यास्यैवोद्योगेन द्वितीयं वैद्यसंमेलनं पनवेलस्थानेऽधिष्ठितमभूत् ।

(५) अजमेरनगरनिलयो वैद्य मनीषिसमर्थदानोऽपि वैद्यकशास्त्राभिनिविष्ट आसीत् । पूर्वमेष मनीषी राजस्थानसमाचारनामकं हिन्दीभाषामयं पत्रं साप्ताहिक दैनिकरूपेण प्रकाशयामास । वयसोऽन्तिमे समये वैद्यकव्यवसाये व्याप्रियते स्म मनीषिमहोदयः ।

(६) प्रयागनिवासी पण्डितवैद्यनाथशर्मा राजवैद्यः प्रयागीयवैद्येषु प्रसिद्ध आसीत् । एष हि सुप्रसिद्धस्य राजवैद्यपण्डितजगन्नाथशर्मणो लघुभ्रातासीत् । एतेन महोदयेन वैद्यकसंबन्धिमासिकपत्रमप्येकं प्रकाशयितुं प्रक्रान्तमासीत । परं चतुरङ्कप्रकाशनानन्तर-मेव तद् व्यरमत ।

(७) काशीपुरव्रराई निकेतनः पण्डितमुकुन्दरामजोशी महाभागोप्यायुर्वेदविषयेष्व-भिनिविष्ट आसीत् ।

एतेषां सर्वेषामेव महाभागानां परलोकयात्रया नितरां खिद्यतेऽस्मद्दृशां चेतः । एतस्मिन् वत्सरे प्रजारञ्जनकारिणा राज्यतन्त्रेण निम्नप्रकाशिताभ्यां महाभागाभ्यां 'वैद्यरत्न' पदवी वितीर्णा ।

(१) चिदानन्द मुसद अनर्गलगोद दामोदरम् (मलाबार)

(२) टी० के० परकेश्वरशर्मा मुसद त्रिपुरा गोदा कडकल (मलाबार) । एतेन खलु वैद्यविद्याप्रोत्साहनेन निकामं प्रीयते वैद्यसंमेलनम् । श्रीमतां राजतन्त्राधि-कारिणामनुग्रहं संमानयामो सर्वे वयमान्तरेण ।

अथ खलु सर्व एव भवन्तो विद्वांसो मननशीलाः कर्मदक्षाः सतताभ्यस्तचिकित्सा-कर्माणः सिद्धिमन्तः सद्गुर्वाद्याश्रयवन्तश्च, अत एव सद्भूतं वैद्यशब्दमर्हन्तः पुनश्चापि प्रकृतिज्ञाः प्रतिप्रतिज्ञा देशकालमात्राविभागविदश्च सन्ति भूयांसश्च महापुरुषाः प्राचीनायुर्वेदविशारदा नवनवाविष्कृतकलाकलापकोविदा वैदेशिकस्वतन्त्रलेखकोद्धावि-

ततत्त्वपर्यालोचनासमुल्लसितान्तःकरणाः स्वयमपि स्वतन्त्रलेखनकलाप्रवीणाः प्रतिभाशालिनः समुदिताः, तदत्राल्पज्ञेन परिचितकतिपयसंग्रहग्रन्थेन संग्रहमन्तरा किमुच्यतामिति वलावरुद्धवागपि भवन्नियोगपरवशः किञ्चिदभिधातुं प्रसरामि।

सर्वथा विजयते खलु समग्रसर्गरचनाप्रकटितनैपुणस्य भगवतः स्वयम्भुवो मानसजन्मा प्रजापति-दस्र-सुरपति-धन्वन्तरिप्रभृतिभिरादिवैद्यैराविष्कृतस्त्रैकालावबोधविदितवेदितव्यैस्तपःसमाधिनिर्जितरजस्तमःप्रसरणातिशयै रुग्णजनताविलोकनसंजातकरुणाद्रुतहृदयैरखिलजगदातङ्कोद्धरणकृतप्रतिज्ञैः महर्षिभिश्चिरमुपासित उद्भासितः प्रतिसंस्कृतः पुनश्चालौकिकप्रभावैः सिद्धैः प्रभावितः संसाधितश्चायुर्वेदो नाम।

स चायमायुःप्रदत्वेनायुर्बोधकत्वेन वा आयुष्यानायुष्यद्रव्यगुणकर्मनिर्देशकत्वेन वा आयुःपरिपन्थिव्याधिसमूहस्य हेतुलक्षणौषधसंवेदनकारित्वेन वा यथार्थयति निजाभिख्याम्। दिनचर्य्यर्तुचर्य्यासद्वृत्ताद्युपदेशद्वारा अनागताबाधप्रशमनोपदेशं रसायनवाजीकरणद्वारा च ऊर्जस्करद्रव्यगुणकर्मोपदेशं विदधदुपकरोति स्वस्थान्। तथैव च सर्वेषां व्याधीनां निदानपूर्वरूपरूपोपशयसम्प्राप्तिमुपदिशन्नुपकरोति व्याधितान्। उभयथा च वैद्यानिति।

न च प्रतिकुर्वन्नुत्तिष्ठति म्रियते च, अप्रतिकुर्वन्नुत्तिष्ठति म्रियते चेत्युभयदर्शनाद्धिताहितोपदेशोऽकिञ्चित्कर इति मन्तव्यम्। यथा चाष्टाङ्गसंग्रहे—सकलोऽपि चायं रोगसमूहः प्रतिकारवानायुर्वेदविहितमुपदेशमपेक्षते, यस्मान्नियतहेतुकोऽप्यामयः सम्यगभिपन्नादेशानुष्ठानादुपात्तायुःसंस्कारापरिक्षये जातोऽपि वा सद्यवेदनतां प्रतिपद्यते, अनुपक्रम्यमाणस्तु सर्व एव प्रायशो भिनत्त्यकाण्डे। स्वयमपि च दैवान्निदानाल्पतया वा निवर्त्तमानः षोडशगुणसमुदितक्रियोपलम्भादाशुतरमपरिक्लिष्टस्य चापगच्छति। अनियतफलदायिनि तु दैवे हिताभ्यासरतस्यावकाशमेव न लभते व्याधिः। तस्मान्न कस्यांचिदवस्थायामात्मवान् हिताहितयोस्तुल्यदर्शी स्यात्, इति।

एवं चास्य गौरवमहिमानमौदार्य्यगाम्भीर्य्ये चोपदर्शयितुं कथं पारयति मादृशः। पूर्वैः सभापतिभिश्चात्र निर्णीयते स्म सुनिपुणतरम्। केवलं केषांचिदायुर्वेदविषयाणामवतारयामि सहृदयहृदयाह्लादनाय प्रतिकृतिम्।

आयुर्वेदो हि व्याधिप्रतीकारव्याख्यानम्। व्याधयश्च सहगर्भजातपीड़ाकालप्रभावस्वभावजा इति सप्तविधाः। ते पुनः पृथग् द्विविधाः। तत्र शुक्रार्त्तवदोषान्वयाः कुष्ठार्शोमेहादयः सहजाः पितृजा मातृजाश्च। जनन्यपचारात् कौष्ठयपैङ्गल्यकिलासादयो गर्भजा अन्नरसजा दौर्हृदविमानजाश्च। स्वापचारान्मिथ्याहारविहारादितो जातजाः सन्तर्पणजा अपतर्पणजाश्च। क्षतभङ्गप्रहारादयः क्रोधशोकभयादयश्च पीड़ाकृताः शारीरा मानसाश्च। शीतादिकालत्रयहेतुका ज्वरादयः कालजा व्यापन्नर्तुजा असंरक्षणजाश्च। देवगुरूल्लङ्घनशापाथर्वणादिकृताः प्रभावजा ज्वरादयः पिशाचादयश्च। क्षुत्पिपासाज्वरादयः स्वभावजाः कालजा अकालजाश्च। तत्र कालजा रक्षणकृता अरक्षणजा अकालजाः, एतेष्वेव सर्वे

उक्ता अनुक्ता वा नानाविधा व्याधयोऽन्तर्भवन्ति। ते पुना रुक्सामान्यादेकाकाराः प्रत्येकं समुत्थानस्थानवर्णनामवेदनाप्रभावोपक्रमविशेषादसंख्यभेदा वा भवन्ति।

वस्तुतस्तु शारीराणां द्रव्याणां रसरक्तमांसादिधातूनां मूत्रस्वेदादिमलानां धमनीसिरारसायनीप्रभृतिनानाविधस्रोतसां हृदयफुप्फुसयकृदादियन्त्राणामन्येषां च शरीरोपकरणानां सूक्ष्माङ्गोपाङ्गानां तथा तत्तद्द्रव्यवर्त्तिनां नानाविधानां गौरवलाघवशैत्यौष्ण्यश्लक्ष्णकार्कश्यवैशद्यपैच्छिल्यसान्द्रद्रवसुगन्धदुर्गन्धरूपरसस्पर्शादीनां गुणानां तथा तत्तदवयवद्रव्यक्रियमाणानामुत्क्षेपणाक्षेपणसङ्कोचविकाशप्रसारणाकुञ्चननिमेषोन्मेषादीनां नानाविधानां कर्मणां च विपत्, वृद्धिः, क्षयो, विकृतिर्वा रोगः। संपच्च साम्यमारोग्यम्। तदुक्तम्—

येषामेव हि भावानां संपत् संजनयेन्नरम्।
तेषामेव विपद् व्याधीन् विविधान् समुदीरयेत्॥ इति

तेषां सर्वेषामपि व्याधिनामारोग्यस्य च वातपित्तकफाएव भवन्ति मूलं कुपिताकुपिताः। यतस्तत्साम्यवैषम्यद्वारैव सर्वेषां शारीरभावानां विकृताविकृतकार्य्यकर्तृत्वम्। धातुसाम्यकारणैराहारविहारादिभिरासेवितैः समयोपयुक्तैः कालार्थकर्मरूपैर्वातादिसाम्यरक्षणद्वारैव विधीयतेऽनवरतमान्तरं बाह्यं च कृत्स्नं कार्य्यजातम्। एवं धातुवैषम्यकारणैरसात्म्येन्द्रियार्थसंयोगप्रज्ञापराधपरिणामाख्यैरपि वातपित्तकफानां सञ्चयप्रकोपप्रसारणस्थानसंश्रयादीन् विधायैव विधीयते नानाविधव्याधिजातम्। तथा च कार्य्यनियतपूर्ववृत्तितया धातुवैषम्यस्यव्याधेर्धातुसाम्यस्य चारोग्यस्य वातादिकोपाकोपावेव कारणमिति सिद्धम्।

अथवा वातादिसाम्यमेवारोग्यम्, वातादिवैषम्यमेव च व्याधिः। ज्वरादीनां च व्याधित्वं दोषवैषम्यरूपव्याधिजत्वादेव। यथा—मनुष्यो मनुष्यप्रभव इत्यादि। तथा च चरकः—

रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता इति।

तथा तत्कोपाकोपौ च वस्तुस्तेषां वैकृती प्राकृती गतिरेव। तदुक्तं चरके—

गतिश्च द्विविधा दृष्टा प्राकृती वैकृती च या।
पित्तादेवोष्मणः पक्तिर्नराणामुपजायते॥
तच्च पित्तं प्रकुपितं विकारान् कुरुते बहून्।
प्राकृतस्तु बलं श्लेष्मा विकृतो मल उच्यते॥
स चैवौजः स्मृतः काये स च पाप्मोपदिश्यते।
सर्वा हि चेष्टा वातेन स प्राणः प्राणिनां स्मृतः॥
तेनैव रोगा जायन्ते तेन चैवोपरुध्यते। इति

त्रिशोर्षीयेऽपि—

नित्याः प्राणभृतां देहे वातपित्तकफास्त्रयः।
विकृता प्रकृतिस्था वा तान् बुभुत्सेत पण्डितः॥

उत्साहोच्छ्वासनिश्वासचेष्टा धातुगतिः समा ।
समो मोक्षो गतिमतां वायोः कर्माविकारजम् ॥
दर्शनं पक्तिरूष्मा च क्षुत्तृष्णा देहमार्दवम् ।
प्रभा प्रसादो मेधा च पित्तकर्माविकारजम् ॥
स्नेहो बन्धः स्थिरत्वं च गौरवं वृषता बलम् ।
क्षमा धृतिरलोभश्च कफकर्माविकारजम् ॥ इति

एषां वातपित्तकफानां कुपिताकुपितानां लिङ्गानि वातकलाकलीये द्रष्टव्यानि ।

कुपितानां च तेषां सामान्यज नानात्मजभेदाद्विविधविकारकरणं कर्म । तत्र नानात्मजा नखभेदादयोऽशीतिर्वातजाः । तेष्वन्येषु च तद्धुद्भवेषु वायोरात्मरूपं रौक्ष्यादि शरीरावयवप्रवेशनिमित्तं स्रंसभ्रंशादिकर्म च नियतं भवति । ओषादयश्च चत्वारिंशत् पित्तजाः । तेष्वन्येषु च तद्धुद्भवेषु पित्तस्यात्मरूपमौष्ण्यतैक्ष्ण्यादि तत्तच्छरीरावयवावेश-निमित्तं च दाहौष्ण्यादिकर्म नियतं भवति । तृप्त्यादयश्च विंशतिः श्लेष्मजाः । तेष्वन्येषु च तद्धुद्भवेषु श्लेष्मण आत्मरूपं स्नेहशैत्यादि शरीरावयवावेशनिमित्तं च श्वैत्यशैत्यकण्ड्वादि कर्म नियतं भवति । तदिदं महारोगाध्याये विस्तरतः प्रोक्तं भगवता तत्रैव द्रष्टव्यम् ।

अत्रेत्थमपरे प्रत्यवतिष्ठन्ते—यत् हृदययकृत्प्लीहान्त्ररक्तादिषु शारीरभावेषु यद् वैकृत्यमुपजायते तद् बाह्यान्निदानादेव । एतेष्वेव च भावेषु संचलनादिक्रिया पृथक् पृथक् विभज्यमाना प्रत्यक्षतो वानुमेया वा दृश्यते, न हि या हृदयस्य क्रिया सैव यकृतः, अन्त्रस्य वा; तयोर्वा तस्य । सिराधमनीनां या रक्तसञ्चरणादिक्रिया न सामाशयस्येति सर्वेषामेव पृथक् पृथक् सिद्धौ व्याधीनां च तथैव पृथक् पृथग्व्यवस्थितौ वास्तवीं शारीर-स्थितिमपरिच्छिद्यैवासत्कल्पनामूलकोऽयं वातपित्तकफप्रपञ्चः, कृतमन्तर्गडुनामुना ।

तत्रेदं प्रतिविधानम्—रक्तार्शःप्रदररक्तपित्तसिराव्यधव्रणादिषु रक्ते कासश्वासक्षय-यक्ष्मादिषु च कफे, स्तन्यरोगेषु स्तन्ये, मेहादिषु मूत्रे, ज्वरातीसारपाण्डूदरादिविविध-रोगपरिगृहीतेषु नानारोगिषु विण्मूत्रत्वङ्नखनेत्रादिषु वैवर्ण्यरौक्ष्यकार्कश्यविविधवर्णत्व-पाककोथक्लेदोपलेपादयो नानाविधा विकृतयो दृश्यन्ते । तत्त्वतो विविच्यमानास्तास्त्रि-विधा एव सम्पद्यन्ते—आग्नेय्यः सौम्या वायवीयाश्च । तत्र निखिलेष्वपि शारीरभावेषु रौक्ष्यलाघवशैत्यखरत्वसौक्ष्म्यसञ्चलनादयः स्रंसव्यासादयो या विकृतयस्ता वायवीयाः । यास्तु औष्ण्यतैक्ष्ण्यविस्रतासरत्वशुक्लारुणवर्ज्यवर्णता कट्वम्लरसतादयो दाहकोथादय-स्ता आग्नेय्यः । याश्च स्निग्धत्वगौरवमाधुर्य्यमात्स्न्यादयः श्वैत्यशैत्यकण्डूस्थैर्य्यगौरवस्त-म्भसुप्तिक्लेदोपदेहचिरकारित्वादयस्ताः सौम्याः । एवं ताः सर्वा विविधा विकृतयोऽन्या-श्चानुक्ताः स्वयमूह्यमाना अपि एतास्वेवान्तर्भवन्ति त्रिविधासु । यतश्च लोके रौक्ष्यादयो गुणा स्रंसव्यासादयश्च क्रिया वायौ औष्ण्यादो दाहादयश्च वह्नौ, स्निग्धत्वादयश्च जलेऽनुभूयन्ते । अतः शरीरेऽपि रौक्ष्यादयो वातस्य, औष्ण्यादयः पित्तस्य, स्निग्धत्वा-दयश्च श्लेष्मण एव निर्धार्य्यन्ते । तत्रापि शरीरे पृथिवीजलपरिणामः श्लेष्मा, आकाश-

वाय्वोर्वातः, तेजसः पित्तम् । तथा च तत्समानगुणबहुलैर्द्रव्यगुणकर्मभिरेता उत्पद्यन्ते विवर्द्धन्ते च; तद्विपरीतगुणैश्च शाम्यन्ति । अर्थात् वातपित्तकफप्रत्यनीकैरेव औषधान्नविहारैः सर्वा अपि विकृतयः प्रायो निवर्त्तन्ते । अतोऽप्यनुमीयते सर्वासामासां विकृतीनां कारणं वातपित्तकफा एव, आप्तोपदेशाच्च निश्चिनुमः—यद्वातपित्तकफानामेवैताः क्रियाः । तथा च चरके—नास्ति रोगो विना दोषैः, इति ।

वृद्धवाग्भटेऽपि—सर्व एव विकारा नान्यत्र वातपित्तकफेभ्यो निवर्त्तन्ते—इति, दोषा एव हि सर्वरोगैककारणम् इति । यथा च विद्युद्वर्षादयो नभसि भवन्ति, न त्ववश्यम्, निमित्ततस्त्ववश्यं भवन्ति, तरङ्गबुद्बुदादयश्चाम्भसस्तथा दोषेषु रोगाः । इति च ।

न च केवलं निजेष्वेव दोषसम्बन्धः, आगन्तुष्वपि दोषसम्बन्धेनैव रुगनुबन्धदर्शनात् । तथा च वृद्धवाग्भटः—

निजेषु पूर्वं वातादयो वैषम्यमापद्यन्ते ततो व्यथाभिवर्त्तते, बाह्यहेतुजाश्चागन्तवस्तेषु व्यथापूर्वमुपजायते ततो दोषवैषम्यम्, दोषवैषम्येणैव च बहुरूपा रुगनुबध्यते प्रवर्द्धते च; एवं च कृत्वा न च दोषव्यतिरेकेण रोगानुबन्धः केवलं पौर्वापर्ये विशेषः, इति ।

तथा च सर्वासां विकृतीनां प्रत्यक्षानुमानाप्तागमैर्वातपित्तकफा एव मूलं सिद्ध्यन्ति, अमुमेवार्थमुररीकृत्य भगवानुपदिशति धन्वन्तरिः—

सर्वेषां च व्याधीनां वातपित्तश्लेष्माण एव मूलं तल्लिङ्गत्वाद् दृष्टफलत्वादागमाच्चेति । सु० सू० २४ अ० ।

यच्चोक्तं प्रत्यक्षेण (यन्त्रसाहाय्येन) अनुमानतो वा हृदादिष्वेव वैकृत्यं सञ्चलनादिक्रिया च पृथक् पृथग्विभज्यमाना दृश्यते, तेष्वेव च चिकित्सयाऽन्यथापादनेन स्वास्थ्यमुपलभ्यते, नातो वाताद्यपेक्षा लेशतोऽपीति । तत्रोच्यते—हृदादियन्त्रेषु यत्किमपि संस्फुरणादि दृश्यते, नैतत्तेषाम । तानि हि स्थानानि, न हि स्थाने जायमाना क्रिया स्थानस्य किन्तु तदधिष्ठातुः । तथा हि—या कस्मिन्नपि शरीरयन्त्रे क्रिया जायते सा तद्यन्त्रस्य वा तत्स्रोतःपरिवाहिनो रसरक्तादिधात्वन्तरस्य वा तदधिष्ठातुर्वातपित्तकफान्यतमस्य वेति मीमांसायाम्—न तावत्तद्यन्त्रस्य, प्रायस्तत्क्रियाया अन्यत्रापि दर्शनात् । न वा धात्वन्यतमस्य तत्क्रियाणां प्रीणनं वर्जनमित्यादिना परिगणितत्वात् । तथा च पारिशेष्यात्तदधिष्ठातुर्वातपित्तकफान्यतमस्यैव । न हि वाष्पयन्त्रपरिचालितयन्त्रक्रिया तस्य, प्रत्युत तत्परिस्पन्दनाधायकवाष्पस्यैवेति को नाम न स्वीकर्तुमुत्सहते । क्वचिच्च तद्यन्त्रस्य तद्वर्त्तिधातोर्वा क्रियापि गुणान्तरद्योतनाय वातादीनामेव निर्दिष्टा, शीतत्वपावनत्वद्योतनाय गङ्गायां घोष इत्यत्र तटेऽपि गङ्गाप्रयोगवत् । अत एव शरीरे हृदादियन्त्राणां क्रिया पृथङ् न निर्दिष्टा, प्राणादिवायु-साधकादिपित्तावलम्बकादिश्लेष्मक्रियाकथनेनैव गतार्थत्वात् । तेषामपि यन्त्रविशेषेषु क्रियावैशिष्ट्यं तु जिज्ञासुभिर्विवेचीयनम् । अत एव स्वोपार्जितकर्मफलातङ्कानलदह्यमानमानसान् मानुषान् उद्दिधीर्षवः

समाधिमात्रसहायाः कारुण्यरसपरिप्लुतमानसाः तपःप्रभावाधिगतदिव्यचक्षुरवधारिताशेषजगत्सारासारविशेषाः प्रत्यक्षमिव परोक्षमप्यधिमन्तुमीशास्तत्रभवन्तो महर्षयः— 'आतुराणामवस्थान्तरेषु स्थानविशेषेषु च बहुविधा भवन्ति विकृतयो न ता विशेषेण परिच्छेत्तुं शक्यन्ते, तासामेकैकस्या अपि वयोबलदेशकालादिविशेषै रूपान्तरत्वेनासंख्येयत्वात्' इति सम्यगालोच्य सर्वेऽपि रुग्विशेषा एष्ववान्तर्भवन्ति इति च सम्यगनुभूय वातपित्तकफत्रैविध्येन सञ्चिक्षिपुः, तत्तद्विशेषान् परिज्ञातुं च मार्गं दर्शयामासुः।

यद्यपि शब्दस्पर्शरूपरसगन्धादिविशेषैरेव सिद्धो व्यवहारो लोकस्य, न हि तावचन्त्रीस्वनरूपशब्दविशेषाकाङ्क्षायां शब्दत्वसामान्यात् भेरीशब्दो मानसमभिहन्तुमीष्टे, प्रत्युत ग्लानिं जनयति। न वा कृष्णमृद्रूपपृथिवीविशेषापेक्षायां पृथिवीत्वसामान्येन शिकतालोष्टादि प्रयुज्यमानं कार्यं साधयति। न वा मधुरात्मकरसविशेषापेक्षायां रसत्वसामान्यादम्लं प्रयुज्यमानं प्रीतिमुत्पादयति। न वा व्यायामरूपक्रियास्थाने क्रियात्वसामान्यादासना वा सुखमुत्पादयति। इति सामान्योपदेशमपहाय विशेषोपदेश एव कर्तुं न्याय्यः। तथा तत्तद्विशेषाणामानन्त्येन एकस्यापि द्रव्यविशेषस्य वक्तुमशक्यतया आचार्याणां सामान्योपदेशेऽभिरुचिः। यथैकैव पृथिवी—कृष्णपीतश्वेतादिवर्णभेदेन, शर्करावालुकाश्मलोष्टकाष्ठ घटपटकटादि स्वरूप भेदेन, तत्रापि देशकालादिभेदेन, अचिरचिरजन्मादिभेदेन, पुनर्जलविशेषसेचनासेचनभेदेन, सूर्यतापप्राप्त्यप्राप्तिभेदेन, पुनश्च वातविशेषाघाताना‍घादिभेदेन तत्तद्विशेषगुणवत्त्वाद् वक्तुमशक्या किं पुनरितरे। यथाह चक्रपाणिः—

न तावद्भेजादीनामशेषविशेषः प्रत्यक्षज्ञेयः सर्वपदार्थानां प्रत्यक्षाविषयत्वात्। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां तु सर्वपदार्थावधारणं दुष्करमेव, यत एकमेव मधु स्वरूपेण जीवयति मारयति चोष्णम्, समघृतञ्च कफप्रकृतेर्हितमहितं वातप्रकृतेः, आनूपे सात्म्यमसात्म्यं मरौ शीते सेव्यमसेव्यं ग्रीष्मे, हितमवृद्धे वृद्धे चाहितम्, अल्पं गुणकरम् आबाधकरमत्युपयुक्तम्, आमताङ्गतमुदरे उपक्रमविरोधित्वादतिविभ्रमकरं काकमाचीयुक्तं च, माषकं पक्कं निकुचेन सहोपयुक्तं मरणाय तथा बलवीर्य्यवर्णतेजउपघाताय भवतीत्येवमादि, इति।

एवमेव दोषा अपि यथा—वायू रौक्ष्येण कुपितो हृदि यं व्याधिमुपजनयति, आमाशये ततोऽन्यम्, यकृति इतरम्, प्लीहि परम्, अन्त्रेऽन्यम्। एवं पक्वाशये वस्तौ नेत्रवर्त्मनि दृष्टौ पक्ष्मसु कर्णादिषु चान्यान्यमेव व्याधिं जनयति। तथैव लाघवेन शैत्येन खरत्वेन सौक्ष्म्येण चलत्वेन सौषिर्य्यादिना, पुना रौक्ष्यलाघवाभ्याम्, द्वित्रिचतुरादिसंमिलितगुणैर्वा तत्तत्स्थानेषु तत्तद्विशिष्टमेव व्याधिं जनयति। एवं पित्तकफेऽप्यूह्यम्। तथा च

स एव कुपितो दोषः समुत्थान विशेषतः।
स्थानान्तराणि च प्राप्य विकारान् कुरुते बहून्॥ इत्युक्तम्।

अतस्त्रिविधशिष्यबुद्धिहितकरः सामान्योपदेशस्तत्तद्विशेषविज्ञानाय दिग्दर्शनोपदेशश्च न्याय्य एव। तथा च भगवान् पुनर्वसुस्त्रिशोथीये—

साध्याश्चैवाप्यसाध्याश्च व्याधयो द्विविधाः स्मृताः ।
मृदुदारुणभेदेन ते भवन्ति चतुर्विधाः ॥
त एवापरिसंख्येया भिद्यमाना भवन्ति हि ।
रुजावर्णसमुत्थानस्थानसंस्थाननामभिः ॥
व्यवस्था करणं तेषां यथा स्थूलेषु संग्रहः ।
तथा प्रकृतिसामान्यं विकारेषूपदिश्यते ॥ इति ।

तदेवं दोषाणां हेतुलिङ्गौषधैर्व्याख्यातैः सर्वव्याधीनामपि हेतुलिङ्गौषधानि प्रायो व्याख्यातानि भवन्ति सामान्यतः, अन्यत्र विकृतिविषमसमवायात् । तत्र दोषाणां वातादीनामुक्तद्रव्यगुणकर्मणां समानगुणैः समानगुणभूयिष्ठैर्वा कालार्थकर्मभिरविधिसेवितैः सञ्चयप्रकोपादिलक्षणा वृद्धिर्भवति रोगहेतुः । ततः प्रकुपिता दोषाः प्रकोपणानुरूपं स्थानसंश्रयादिकं लब्ध्वा यथाबलं स्वानि लिङ्गानि वितन्वते । यदुक्तम्—

यथाबलं यथास्वं च दोषा वृद्धा वितन्वते ।
रूपाणि जहति क्षीणाः समाः स्वं कर्म कुर्वते ॥ इति ।

तेषामेव च विपरीतैर्विपरीतगुणभूयिष्ठैर्वा औषधान्नविहारदेशकालादिभिर्यथाविधिसेवितैरुपशाम्यति तत्प्रकोपस्तत्प्रकोपजो व्याधिश्च । यदुक्तम्—

विपरीतगुणैर्देशमात्राकालोपपादितैः ।
भेषजैर्विनिवर्तन्ते विकाराः साध्यसंमताः ॥ इति

तत्र सामान्यतो वातादिप्रकोपणप्रशमनानि—

उष्णेन युक्ता रूक्षाद्या वायोः कुर्वन्ति सञ्चयम् ।
शीतेनकोपमुष्णेन शमं स्निग्धादयो गुणाः ॥
शीतेन युक्तास्तीक्ष्णाद्याश्चयं पित्तस्य कुर्वते ।
उष्णेन कोपं मन्दाद्याः शमं शीतोपसंहिताः ॥
शीतेन युक्ताः स्नेहाद्याः कुर्वते श्लेष्मणश्चयम् ।
उष्णेन कोपमुष्णेन शमं रूक्षादयो गुणाः ॥

इति वाग्भटोक्तदिशा ज्ञेयानि । तथा सर्वरोगनिदाने—'अथ तिक्तकटुकषाये' त्याद्यारभ्य 'आहारपरिणामान्तेषु च वायुः प्रकोपमापद्यते' इत्यनेन वातस्य, 'कट्वम्लुलवणे' त्यादिना 'विदाहकालेषु च पित्त' मित्यन्तेन पित्तस्य, 'मधुराम्लुलवणे' त्यादिना 'भुक्तमात्रेषु च श्लेष्मा' इत्यन्तेन श्लेष्मणश्च विशेषतः प्रकोपणानि प्रोक्तानि । तथा 'सर्वेषां तु मिश्रीभावात् तथानशनात्यशनादिना प्रसूतानां च मिथ्योपचारात् सन्निपात' इत्यन्तेन सन्निपातस्य प्रकोपणान्यपि पृथगुक्तानि ।

एवं दोषाणां प्रकोपणानि प्रदर्शयता सर्वरोगाणामेव प्रकोपणान्यभिहितानि । तथा च श्लोकः—

प्रतिरोगमिति क्रुद्धा रोगाधिष्ठानगामिनीः ।
रसायनीः प्रपद्याशु दोषा देहे विकुर्वते ॥ इति

लिङ्गानि च वातादीनां प्रदर्शितान्येव । औषधानि च—दोषोपक्रमणीये संग्रहस्यैकविंशतितमेऽध्याये—'वातस्योपक्रमः स्नेहः स्वेद' इत्यारभ्य 'स्त्रीसम्पर्कवर्ज्यश्च हैमन्तो विधि' रिति पर्यन्तं वातोपक्रमविशेषः, तथा 'पित्तस्य सर्पिष्पान' मित्यादिना दिवास्वप्नवर्ज्यश्च ग्रैष्मो विधि' रित्यन्तेन पित्तस्य विशेषोपक्रमः, तथा 'श्लेष्मणः पुनर्विधिविहितानि' इत्यादिना 'सुखार्थमेव वासन्तिको विधि' रित्यन्तेन श्लेष्मण उपक्रमविशेषः प्रदर्शितः । तथा तत्रैव—

उपक्रमः पृथग्दोषान् योऽयमुद्दिश्य कीर्त्तितः ।
संसर्गसन्निपातेषु तं यथास्वं विकल्पयेत् ॥
ग्रैष्मः प्रायो मरुत्पित्ते वासन्तः कफमारुते ।
मरुतो योगवाहित्वात् कफपित्ते तु शारदः ॥
योज्याः षट्वम्लमधुरा वायौ क्रुद्धे रसाः क्रमात् ।
पित्ते तिक्तस्ततः स्वादुः कषायश्च रसो हितः ॥
कटुकः प्राक् ततस्तिक्तः कषायोन्तः कफामये । इति

यथा चासंख्येयानामपि व्याधीनां संख्येयवातादिमयत्वेऽपि तत्संसर्गविकल्पविस्तरस्य तथा तदंशांशविकल्पविस्तरस्य चानन्त्यात् पुनरेकस्याप्यानन्त्यं सम्भवति, तथैव प्रकोपणप्रशमनद्रव्याणां स्वरूपतोऽप्यसंख्येयानां संख्येयरसादिमयत्वेऽपि तद्भेदानां रसानुरसादिकल्पनया तारतम्यादिकल्पनया च पुनरप्यानन्त्यं भवतीति दिक् ।

वातादिभेदाश्च द्विषष्टिराकरेषु प्रदर्शिता एव । तेषामपि रसादिदूष्यसंसर्गात् कोष्ठशिरास्नाय्वादिविविधमार्गाश्रयणात् तारतम्याच्च पुनरप्यानन्त्यं सम्भवति । तथा चोक्तम्—

संसर्गाद्रसरुधिरादिभिस्तथैषां दोषांस्तु क्षयसमताविवृद्धिभेदैः ।
आनन्त्यं तरतमयोगतश्च यातान् जानीयादवहितमानसो यथास्वम् ॥ इति

तत्र रसादि सप्तधातूनामेव द्वित्र्यादिसंसर्गादष्टाविंशत्यधिकशतभेदा भवन्ति, तेषां पुनः परस्परसंसर्गादानन्त्यमेव । तथा च सिद्धभेषजमणिमालायाम् ।

वसुद्वयक्षमाभिदा रसादिसप्तधातुजाः ।
विदूषयन्त्यहो मला द्विषष्टिधा द्विषष्टिधा ॥ इति

एवं दोषभेदानामानन्त्यप्रकारदिक् प्रदर्शिता भवति । एवमेव त्रिषष्टी रसभेदाः चरके आत्रेयभद्रकाप्यीये सुश्रुते चोत्तरतन्त्रीयरसभेदे विकल्पाध्याये वर्णितास्तथा सिद्धभेषजमणिमालायां विस्तरतः सोदाहरणा उदाहृताः श्रीगुरुचरणैस्तेऽपि पुनरनन्ता भवन्ति । यथोक्तं वाग्भटे—

ते रसानुरसतो रसभेदास्तारतम्यपरिकल्पनया च ।
सम्भवन्ति गणनां समतीता दोषभेषजवशादुपयोज्याः ॥ इति

एवं यः प्रतिरोगं व्याधिनिश्चये दोषविकल्पान् भेषजनिश्चये च रसविकल्पान् यथार्थं व्यवहरति, स दारुणानपि विकारान् गन्धर्वपुरवदाशु नाशं नयति, जीविताभिसरश्चोच्यते । तथा चरकेऽपि ।

यः स्याद्रसविकल्पज्ञः स्याच्च दोषविकल्पवित्।
न स मुह्येद्विकाराणां हेतुलिङ्गोपशान्तिषु ॥ इति

यद्यपि यावन्ति द्रव्याणि तावन्त एव तेषां स्वादविशेषा गुणविशेषाश्च, नह्येकमपि द्रव्यं स्वादेन गुणेन वा द्रव्यान्तरे सर्वाकारं समानम्, तथा हि—मधुराणि खलु गुडाक्षोटद्राक्षापरूषमोचचोचादीनि, अम्लानि दाड़िमामलकतिन्तिड़िकादीनि, न परस्परं समस्वादगुणानि, किन्तु विलक्षणस्वादान्युपलभ्यन्तेऽनुभवकुशलैः। तथापि भूतोत्कर्षापकर्षकृतोऽयमणीयान् भेदो न विवक्ष्यते, कार्यकाले प्रायः समानफलदर्शनात्। तथा वाग्भटेनाप्येवमेव समाहितम्।

मधुरस्कन्धनिर्दिष्टघृततैलगुणादिषु ।
गुणस्वादादिभेदेन रसषट्कं न युज्यते ॥
अस्तु भेदादसंख्यत्वमैक्यं वा स्वादलक्षणात्।
भूतोत्कर्षापकर्षेण भेदो योऽल्पेन कल्प्यते ॥
सङ्कीर्णत्वात् फले चासौ तुल्यत्वान्न विवक्ष्यते।
गुर्वादीनां विशेषेऽपि स्वजातेरनतिक्रमात् ॥
संख्याभेदो यथा नास्ति रसानामपि स क्रमः।
दृष्टं मुखप्रलेपादि यत्सर्वेषु घृतादिषु ॥
न च तद्दाड़िमाद्येषु षड्वातो रसाः स्मृताः।
आनन्त्यैकत्वयोश्च स्यान्न विचित्रार्थतन्त्रणम् ॥ इति

अधुना द्रव्याणां रसगुणवीर्यविपाकादिविषये किञ्चिदभिधीयते। त्रिविधं खलु द्रव्यम्—जाङ्गमम्, औद्भिदं, पार्थिवं चेति। तत्र घृतदुग्धदधिमूत्रशकृद्रसरोचनाविषाणशङ्खशुक्तिमधुवसामज्जपित्तास्थिस्नायुनखखुरप्रभृतीनि जाङ्गमद्रव्याणि। वनस्पतिवानस्पत्यौषधिवीरुद्भेदेन चतुर्विधं विविधमप्यौद्भिदमेवोच्यते। धातव उपधातवो रसा उपरसा लवणानि मणयः सिकतासुधा स्फटीगैरिकाञ्जनप्रभृतयः पार्थिवानि। त्रिविधमप्येतन्निखिलं द्रव्यजातमाहृतं रसगुणवीर्यविपाकप्रभावद्वारैव सर्वं गुणं दोषं वा जनयति। अतो रसादय एव विवेचनीयाः।

रसाः षट्—मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायाः। तत्र भूजलयोर्बाहुल्यान्मधुरो रसः, भूतेजसोरम्लः, जलतेजसोर्लवणः, वाय्वाकाशयोस्तिक्तः, वायुतेजसोः कटुकः, वायूर्व्योः कषायः। तेषां स्वादुरास्वाद्यमानो मुखमुपलिम्पति, इन्द्रियाणि प्रसादयति, देहं प्रह्लादयति, षट्पदपिपीलिकादीनामपीष्टतमः। अम्लस्तु जिह्वामुद्वेजयति, उरःकण्ठं विदहति, मुखं स्रावयति, अक्षिभ्रुवं सङ्कोचयति, दशनान् हर्षयति, रोमाणि च। लवणो मुखं विष्यन्दयति, कण्ठकपोलं विदहति, अन्नं प्ररोचयति। तिक्तो विशदयति वदनं, विशोधयति कण्ठं, प्रतिहन्ति रसनाम्। कटुको भृशमुद्वेजयति जिह्वाग्रं, चिमचिमायते कण्ठकपोलं, स्रावयति मुखाक्षिनासिकं, विदहति देहम्। कषायस्तु जड़यति जिह्वां, बध्नाति कण्ठं, पीड़यति हृदयम्। देशो ह्यानूपो मधुररसयोनिः। जाङ्गलश्च कटुकरसयोनिः।

आनूपसाधारणश्च लवणाम्लयोर्योनिः। कालश्च शिशिरस्तिक्तं प्रबलयति, वसन्तः कषायं, ग्रीष्मः कटुकम्। वर्षा अम्लं प्रबलयति, शरल्लवणं, हेमन्तो मधुरमिति। तथा मधुरतिक्तकषायाः शीताः। कट्वम्ललवणा उष्णाः। मधुराम्ललवणाः स्निग्धा गुरवश्च। कटुतिक्तकषाया रूक्षा लघवश्च। लवणाम्लमधुरा वातहराः। कषायतिक्तकटुकाश्च वातकराः। तिक्तस्वादुकषायाः पित्तहराः। कट्वम्ललवणाश्च पित्तकराः। कटुतिक्तकषायाः श्लेष्महराः। मधुराम्ललवणाश्च श्लेष्मकराः। मधुरलवणौ मधुरविपाकौ। अम्लोऽम्लविपाकः। कटुतिक्तकषायाश्च कटुविपाका इति रसद्वारैव द्रव्याणां वीर्यविपाकादिविज्ञानमपि प्रायो भवति।

यद्यपि रसेषु गुणरूपेषु गुर्वादिगुणयोगो न सङ्गच्छते, 'निर्गुणास्तु गुणाः स्मृता' इति नियमात्, तथापि तत्साहचर्याद्वुपदेशसौकर्यार्थं च रसेषूपचर्यते। तदुक्तं चरके—

गुणा गुणाश्रया नोक्तास्तस्माद्रसगुणान् भिषक्।
विद्याद् द्रव्यगुणान् कर्तुरभिप्रायाः पृथग्विधाः॥ इति

किञ्च कुत्रचिद्रसद्वारा द्रव्यगुणज्ञानं भवति, कुत्रचिच्च न भवति, तत्साहचर्यापवाद-दर्शनात्। तथा च—

ये रसा वातशमना भवन्ति यदि तेषु वै।
रौक्ष्यलाघवशैत्यानि न ते हन्युः समीरणम्॥
ये रसाः पित्तशमना भवन्ति यदि तेषु वै।
तैक्ष्ण्यौष्ण्यलघुताश्चैव न ते तत्कर्मकारिणः॥
ये रसाः श्लेष्मशमना भवन्ति यदि तेषु वै।
स्नेहगौरवशैत्यानि बलासं वर्द्धयन्ति ते॥ इति सुश्रुतः।

तथा चरकेऽपि—

शीतं वीर्येण यद्द्रव्यं मधुरं रसपाकयोः।
तयोरम्लं यदुष्णं च यच्चोष्णं कटुकं तयोः॥
तेषां रसोपदेशेन निर्देश्यो गुणसंग्रहः।
वीर्यतो विपरीतानां पाकतश्चोपदेक्ष्यते॥ इति

यथा क्षीरमदिरामरिचादीनाम्। तथा च क्षीरे मधुररसविपाके शीतवीर्ये च मधुर-रसवत् श्लेष्मकोपनत्वं वातपित्तशमनत्वं च, एवं मदिरामरिचयोरपि वाच्यम्। तादृश-साहचर्यविरहस्थले च क्वचिद्रसाधिक्येन कार्यकारित्वं, क्वचिद्वीर्याधिक्येन, क्वचिच्च विपाकाधिक्येन। यथा—मधु मधुरं श्लेष्माणं शमयति कटुविपाकितया सकषायत्वा-द्रौक्ष्याच्च वातं जनयति शीतवीर्यत्वाच्च। तथा यवोऽपि—इत्यादीनि बहून्युदाहृतानि, अष्टाङ्गसंग्रहे १७ अ०।

गुर्वादयो गुणाश्च विंशतिः। यथोक्तं वाग्भटेन—

गुरुमन्दहिमस्निग्धश्लक्ष्णसान्द्रमृदुस्थिराः।
गुणाः ससूक्ष्मविशदा विंशतिः सविपर्ययाः॥ इति

तत्र द्रव्यस्य बृंहणे कर्मणि शक्तिर्गुरुः, लङ्घने लघुः, शमने मन्दः, शोधने तीक्ष्णः, स्तम्भने हिमः, स्वेदने उष्णः, क्लेदने स्निग्धः, शोषणे रूक्षः, रोपणे श्लक्ष्णः, लेखने खरः, प्रसादने सान्द्रः, विलोड़ने द्रवः, श्लथने मृदुः, दृढ़ने कठिनः, धारणे स्थिरः, प्रेरणे चलः, विवरणे सूक्ष्मः, संवरणे स्थूलः, क्षालने विशदः, लेपने पिच्छिलः, इति। व्यवायी द्रवेऽन्तर्भूतः, विकाशी खरे, आशुकारी चले, प्रसन्नः स्थूले। सुगन्धदुर्गन्धौ तु मन्दतीक्ष्णविशेषौ, इन्द्रियोद्वेजनप्रसादनद्वारा शोधनशमत्वादिति हेमाद्रिः।

तत्र शीतोष्णस्निग्धरूक्षगुरुलघुमृदुतीक्ष्णा इत्यष्टौ गुणा वीर्य्यसंज्ञा भवन्ति शक्त्युत्कर्षविवर्त्तनादिहेतुभ्यः। तथा चाष्टाङ्गहृदये—

गुर्वाद्या वीर्य्यमुच्यन्ते शक्तिमन्तोऽन्यथा गुणाः।
परसामर्थ्यहीनत्वाद् गुणा एवेतरे गुणाः॥ इति

पूर्वोक्ता गुर्वाद्या अष्टौ गुणा यदोत्कृष्टशक्तयः सन्तो द्रव्यं समधिशेरते तदा वीर्य्यशब्दवाच्याः। यदा तूत्कृष्टशक्तियुक्ता न भवन्ति तदा सामान्यगुणा एव। ये च गुर्वादिविशिष्टा द्वादशगुणास्ते स्वभावेनैव परसामर्थ्यहीना उत्कृष्टशक्तिरहितास्तेऽपि सामान्यगुणशब्दवाच्याः। ते न कचिदपि वीर्य्याख्यां लभन्त इतीन्दुः। तेषु वीर्य्येषु तीक्ष्णोष्णावाग्नेयौ। गुरुशीतौ पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठौ। अम्बुगुणभूयिष्ठः स्नेहः। तोयाकाशगुणभूयिष्ठं मृदुत्वम्। वायुगुणभूयिष्ठं रौक्ष्यम्। अग्न्याकाशसमीरणगुणभूयिष्ठं लघुत्वम्। तत्र गुरूष्णस्निग्धा वातघ्नाः। मृदुशीतौ पित्तघ्नौ। लघुतीक्ष्णरूक्षाः श्लेष्मघ्नाः। एषां गुणवीर्य्याणां कर्माणि सुश्रुतसूत्रस्थाने ४६ तमेऽध्याये द्रष्टव्यानि।

अथ विपाकः। विपाको नाम—

जाठरेणाग्निना योगाद् यदुदेति रसान्तरम्।
रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः॥ इत्युक्तलक्षणः।

स च त्रिधा मधुराम्लकटुकभेदात्। तत्र मधुराम्लयोर्द्रव्ययोर्मधुरो विपाकः। अम्लोऽम्लस्य। कटुतिक्तकषायाणां च कटुकः। कर्म चैषां रसानुरूपमेव। यदुक्तं—'रसैरसौ तुल्यफल' इति।

विशेषश्चात्र—

शुक्रहा बद्धविण्मूत्रो विपाको वातलः कटुः।
मधुरः सृष्टविण्मूत्रो विपाकः कफशुक्रलः॥
पित्तकृत्सृष्टविण्मूत्रः पाकोऽम्लः शुक्रनाशनः॥

इति चरकप्रदर्शितो द्रष्टव्यः। सुश्रुते च द्विविध एव विपाको निर्दिष्टो मधुरः। कटुकश्च। तत्र मधुराख्यो गुरुः, कटुकाख्यो लघुरिति। एवं च गौरवलाघवभेदेन द्विविधः। चरकेऽपि—

तेषां गुरुः स्यान्मधुरः कटुकाम्लावतोऽन्यथा। इति

तत्र मधुरो विपाकः पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठो वातपित्तघ्नश्च श्लेष्मकरश्च। कटुको

विपाकश्च तेजोऽनिलाकाशगुणभूयिष्ठः श्लेष्मघ्नश्च वातपित्तकरश्च। गुरुपाकः सृष्टविण्मूत्रतया कफोत्क्लेशेन चानुमेयः। लघुर्बद्धविण्मूत्रतया मारुतकोपेन चानुमेय इति। द्रव्यगुणविशेषेण चास्याल्पमध्ययभूयस्त्वमुपलक्षयेदित्यष्टाङ्गसंग्रहोक्तसूत्रदिशा ऽत्र विशेषोऽपि द्रष्टव्यः।

तथाहि—

यत्र रसेन सदृशो विपाको मधुराम्लकटुकानां द्रव्याणां प्रधानरससमानगुणाना-मुत्कृष्टत्वाद्विपाकस्योत्कृष्टत्वं कल्पनीयम्। एवं मध्यत्वान्मध्यत्वम्। स्वल्पत्वाच्च स्वल्पत्वम्। यत्र तु रसाद्विपरीतो विपाको लवणतिक्तकषायाणां तत्र रसविपरीतानां गुणानामुत्कृष्टत्वा-दुत्कृष्टत्वं कल्पयेद्विपाकसदृशानाम्। एवं मध्यत्वमल्पत्वं च। चक्रपाणिश्च—द्रव्याणां मधुरत्वमधुरतरत्वमधुरतमत्वादिगुणवैशेष्याद्धेतोर्विपाकस्याल्पमध्यभूयिष्ठतामुपलक्षयेदित्याह।

विपाकविषये पाराशरमतमन्यादृगेव, तथा च तद्वचनम्—

पाकास्त्रयो रसानामम्लोऽम्लं पच्यते कटुः कटुकम्।
चत्वारोऽन्ये मधुरं सङ्कीर्णरसास्तु सङ्कीर्णम्॥

अनेन च पराशरः—तिक्तकषाययो र्मधुरपाकित्वमिच्छति। अन्ये पुनराचार्यास्तावेव कटुकविपाकाविच्छन्ति। तन्मतं दूषयितुकामः पराशरः पुनरिदमाह—

कटुतिक्तकषायाणां कटुको येषां विपाक इति पक्षः।
तेषां पित्तविघाते तिक्तकषायौ कथं भवतः॥ इति

ये चाचार्य्याः कटुतिक्तकषायाणां कटुविपाकित्वमिच्छन्ति, तेषां तिक्तकषाययोः पित्तहरत्वं न सम्भवति। तन्मते तु तयोर्मधुरविपाकित्वात् पित्तहरत्वं सम्भवतीति तदभिप्रायः। तच्च न चतुरस्रमिति मन्यामहे, यतः पित्तहरत्वं रसस्यैव स्वरूपम्। कटुस्तु विपाको यत्र स्वल्पो भवति न तत्र कटुः स्वकार्यं करोति, यद्यद्द्रव्ये रसादीना-मिति न्यायात्। तथा च तिक्तरसस्य कटुविपाकस्यापि निम्बस्य पित्तहरत्वमेव। यत्र विपाकस्य कटोराधिक्यं तत्र तस्य पित्तकरत्वमेव। यथा—तिक्तरसेऽपि द्रव्ये कटोर्विपाकस्याधिक्यात् बृहतीद्वयस्य पित्तकरत्वमेवं कषायेऽपि कल्पनीयम्। एवं रसस्यैव स्वभावः पित्तहरत्वम्। यतश्च तिक्तरसे कषायरसे च द्रव्ये नैसर्गिकेण बलेन रसवीर्याभ्यां विपाकः प्रायेणाभिभूयते। अत उच्यते तिक्तकषायौ पित्तहरावित्यस्माभिः। अतः पराशरमतं त्वचतुरस्रमिवेति इन्दुः।

अथ प्रभावः। प्रभावो नाम द्रव्यस्यात्मा—

रसवीर्य्यविपाकानां सामान्यं यत्र लक्ष्यते।
विशेषः कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य च स्मृतः॥

इति चरकोक्तस्वरूपः। तथाऽष्टाङ्गसंग्रहे सू० १७ अध्याये—

मिथोविरुद्धात् वातादीन् लोहिताद्या जयन्ति यत्।
कुर्वन्ति यवकाद्याश्च तत्प्रभावविजृम्भितम्॥

शिरीषादि विषं हन्ति स्वभावं तद्विवृद्धये ।
मणिमन्त्रौषधीनां च यत्कर्म विविधात्मकम् ॥
शल्याहरणपुंजन्मरक्षायुर्धीवशादिकम् ।
दर्शनाद्यैरपि विषं यन्नियच्छति चागदः ॥
विरेचयति यद् वृष्यमाशु शुक्रं करोति वा ।
ऊर्ध्वाधोभागिकं यच्च द्रव्यं यच्छमनादिकम् ॥
मात्रादि प्राप्य तत्तच्च यःप्रपञ्चेन वर्णितम् ।
तच्च प्रभावजं सर्व्वमतोऽचिन्त्यः स उच्यते ॥

इति वचनकदम्बकेन । तथा

रसेन वीर्य्येण गुणैश्च कर्म द्रव्यं विपाकेन च यद् विदध्यात् ।
सद्योऽन्यथा तत् कुरुते प्रभावाद्धेतोरतस्तत्र न गोचरोऽस्ति ॥

इति वचनेनापि । रसादिभिः पूर्वोक्तप्रकारेण ज्ञातद्रव्यगुणकर्मभिर्विधातुमशक्यस्य शमनकोपनस्वस्थहितत्वाद्युक्तानुक्तस्वरूपस्य विविधस्य कर्मणो हेतुः स्वयमज्ञेयहेतुर्नानाविधो द्रव्यधर्मो भावस्वभावात्माऽचिन्त्यत्वेनामीमांस्यत्वेन च वर्ण्यते समर्थ्यते च प्रभावो नाम । केवलमाप्तोपदेशेनैव ज्ञातुं शक्यते सर्वैः । आप्तैश्च द्रव्यप्रयोगेणामितज्ञानविज्ञानसमाधिभिः सहकृतेनेति । सोऽयं प्रभावो वस्तुतो द्रव्यनिष्ठधर्मोऽपि द्रव्यस्वरूपत्वेनैवोच्यते तन्त्रकृद्भिः—

शमनं कोपनं स्वस्थहितं द्रव्यमिति त्रिधा । इति

अमुं हेमाद्रिरेवं व्याख्याति—यद् द्रव्यं समैः समविपरीतैर्वा रसादिभिर्युक्तमपि वातादीन् शमयत्येव तच्छमनं, तद्यथा मधुरशीतापि जीवन्ती कफं शमयति, कटुपाकरसो गुरुः स्निग्धोऽपि रसोनः कफवातौ । यद् द्रव्यं विपरीतैः समविपरीतैर्वा रसादिभिर्युक्तमपि वातादीन् कोपयत्येव तत्कोपनं, यथा—गुरूष्णस्निग्धमधुरमपि फाणितं वातं कोपयति, तैरेव गुणैर्माषः पित्तकफौ । यद् द्रव्यं वातादीनां चयवृद्ध्योर्हेतुरपि स्वस्थस्य न तथा तत्स्वस्थहितं, यथा—गुरुमधुररूक्षशीतोऽपि यवः स्वस्थस्य पित्तं न चपयति, गुरुमधुरस्निग्धशीतमपि क्षीरं स्वस्थस्य कफं न कोपयति । एवं सर्व्वत्रापि प्रभाव उदाहरणीयः ।

अन्ये तु शमनादीन् द्रव्यभेदानाहुः । तत्तु न सम्यक् । द्रव्यभेदत्वे यदेव शमनं तदेव कोपनं तदेव स्वस्थहितमिति सङ्करो न युक्तः । धर्मभेदत्वे तु रसादिसङ्करवद् युक्त इति । तदेतत् त्रिविधमपि वातादिशमनत्वादिभेदैर्भिद्यमानं समासतः सप्तपञ्चाशद्विधं भवति । तद्यथा—वातघ्नम् १ वातघ्नपित्तलम् २ वातघ्नश्लेष्मलम् ३ वातघ्नपित्तश्लेष्मलम् ४ वातघ्नपित्तोदासीनम् ५ वातघ्नश्लेष्मोदासीनम् ६ वातघ्नपित्तश्लेष्मोदासीनम् ७ वातघ्नपित्तलश्लेष्मोदासीनम् ८ वातघ्नश्लेष्मलपित्तोदासीनम् ९ । एवं वातघ्नस्यैव नव भेदा इत्यादि । एषां सर्व्वेषां लक्षणोदाहरणे सिद्धमन्त्रप्रकाशे सिद्धभेषजमणिमालायां च द्रष्टव्ये । सिद्धमन्त्रकारो हि निबन्धान्ते स्वयं ब्रूते—

न सिद्धः सिद्धमन्त्रेण यस्य द्रव्यस्य निर्णयः ।
तस्य नान्यत्र कुत्रापीत्यत्र चित्रमधीयताम् ॥ इति

तथा वातघ्नत्वादिनिर्णये नागेशानुजनारायणनिर्मितेऽन्येषामपि तद्भेदानामानन्त्याय दिक् प्रदर्शिता । तथा च तद्ग्रन्थान्ते श्लोकः—

एषामेव विशेषास्तु तारतम्ये च. या भिदः ।
नाम्नैव सुग्रहा एता अनन्ताश्चेति नोदिताः ॥ इति

अन्यान्यप्यौषधकर्माणि ऊर्ध्वाधोभागोभयभागसंशोधनसंशमन संग्राहकाग्निदीपन-पीड़नलेखनबृंहणरसायनवाजीकरणश्वयथुकरविलयनदहनदारणमादनप्राणघ्नविषप्रशम-नानि तथा तत्तद्रोगहरत्वादीनि च प्रभावोपबृंहितवीर्य्यप्राधान्यादेव भवन्तीति सुधी-भिर्भावनीयम् ।

तदेवं रोगाणां हेतूनामौषधानां च सर्वेषामुक्तप्रकारेण वातादिसम्बद्धत्वाद्वातादीनां च भूतेभ्योऽनतिरिक्तत्वात् तत्त्वतो विवेके स्थूलस्यास्य प्रपञ्चस्य भौतिकत्वमेव । यदुक्तं सुश्रुते—

भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सिते । इति

तत्र शरीरं रोगाधिष्ठानं पञ्चभूतमयं तत्रस्थं वातादिधातुत्रयं तत्तन्त्रकं साम्य-भावेन वर्तमानं वैषम्यभावेन च वर्तमानं तद्दूषकं वातादिदोषत्रयं सर्व्वरोगोद्भववीज-भूतं पाञ्चभौतिकमेव । तदुद्भवत्वात्तन्मयत्वाच्च सर्व्वे रोगा अपि भूतमयाः । तेषां निदानानि कोपनानि औषधानि शमनानि च भूतमयान्येव । यदुक्तं सुश्रुते द्रव्य-विशेषविज्ञानीये—

गुणा य उक्ता द्रव्येषु शरीरेष्वपि ते तथा ।
स्थानवृद्धिक्षयास्तस्माद्देहिनां द्रव्यहेतुकाः ॥ इति

एतेनैतदुक्तं भवति—यावद्भिस्तत्त्वैः शरीरमुत्पद्यते, वर्द्धते, वर्त्तते च, तावन्त्येव तत्त्वानि तदुत्पादकवर्द्धकेषु बाह्येष्वपि द्रव्येषु सन्त्येव, अन्यथोत्पत्तिवृद्ध्यसम्भवात् । तस्मात्—सर्वाणि द्रव्याणि पञ्चविधानि भवन्ति । पञ्चभूतात्मकत्वेऽपि सर्वेषां तत्तद्भूतगुणाधिक्येन तद्व्यपदेशात् । तथा च द्रव्यविशेषविज्ञानीये सुश्रुते—तत्र स्थूलसारसान्द्रेत्यारभ्याधोगतिस्वभावमित्यन्तेन पार्थिवमित्येवं पञ्चविधमपि प्रदर्श्यान्ते प्रोक्तम्—अनेन निदर्शनेन नानौषधीभूतं जगति किञ्चिद् द्रव्यमस्तीति कृत्वा तं तं युक्तिविशेषमर्थं चाभिसमीक्ष्य स्ववीर्यगुणयुक्तानि द्रव्याणि कर्मकराणि भवन्ति ।

युक्तिसमीचैव च द्रव्याणां कार्यकर्तृत्वावधारणे प्रधानं कारणम् । युक्तिश्च संयोज्य-मानानां बहूनां कारणानां संयोगविशेषादुत्पद्यमानकार्यविशेषज्ञानम् । यथा बहुविधेषु पार्थिवद्रव्येषु एकस्मिन् यन्मानेनोत्कर्षापकर्षभावतो वर्त्तमानानां यादृग्वर्णरसस्पर्श-गन्धादीनां पञ्चानामपि कारणभूतानां यादृशेन प्रकृतसमसमवायेन विकृतिविषमसमवायेन वा मिश्रणेन लोलनेन पाकेन परिणामेन वा यादृग्गन्धवर्णरसस्पर्शादयो जायन्ते कार्य-

द्रव्ये तत्सर्वं ज्ञानं युक्तिशब्दवाच्यम् (साइन्स)। युक्तिश्चायुर्वेदे प्रत्यक्षानुमानवत्प्रमाणम्। तथा च तिस्रैषणीये भगवान् पुनर्वसुः—

बुद्धिः पश्यति या भावान् बहुकारणयोगजान्।
युक्तिस्त्रिकाला सा ज्ञेया त्रिवर्गः साध्यते यया ॥ इति

तथाविधया युक्त्या क्रियमाणे परीक्षणे यादृशो निश्चयो भवति तत्राप्येवंविधो विवेक आवश्यकः—तानि यदा कुर्वन्ति स कालः, यत् कुर्वन्ति तत् कर्म, येन कुर्वन्ति तद्वीर्यम्, यत्र कुर्वन्ति तदधिकरणम्, यथा कुर्वन्ति स उपायः, यन्निष्पादयन्ति तत्फलमिति। युक्तिज्ञानं विना हि द्रव्याणां तत्त्वज्ञो न भवति। तथा च मुनिः—

मात्राकालाश्रया युक्तिः सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठिता।
तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्यज्ञानवतां सदा॥
योगमासां तु यो विद्याद्देशकालोपपादितम्।
पुरुषं पुरुषं वीक्ष्य स विज्ञेयो भिषक्तमः॥ इति

तथा अयुक्तिज्ञवैद्यदत्तमौषधग्रहणं निषेधति—

तस्माच्च भिषजा युक्तं युक्तिबाह्येन भेषजम्।
धीमता किञ्चिदादेयं जीवितारोग्यकांक्षिणा॥ इति

तस्माद् युक्त्या युक्तिज्ञाने समादरो विधेयः सप्रयत्नातिशयम्। प्रकृतमनुसरामः—द्रव्याणां पार्थिवत्वादिज्ञानेनापि शमनकोपनज्ञानं संजायते। यथा सुश्रुते—

भूतेजो वारिजैर्द्रव्यैः शममेति समीरणः।
भूम्यम्बुवायुजैः पित्तं क्षिप्रमाप्नोति निर्वृतिम्॥
खतेजोऽनिलजैः श्लेष्मा शममेति शरीरिणाम्।
वियत्पवनजाताभ्यां वृद्धिमाप्नोति मारुतः॥
आग्नेयमेव यद्द्रव्यं तेन पित्तमुदीर्यते।
वसुधाजलजाताभ्यां बलासः परिवर्द्धते॥
एवमेतद्गुणाधिक्यं द्रव्ये द्रव्ये विनिश्चितम्।
द्विशो वा बहुशो वापि ज्ञात्वा दोषेऽवचारयेत्॥ इत्युक्तम्।

प्रकरणेनामुना दोषाणां सर्वतोभावेन स्वरूपस्थानप्रदर्शनपुरःसरं कुपिताकुपितानां लिङ्गानि प्रदर्शयता उक्तानुक्तज्ञाताज्ञातसर्वव्याधीनामारोग्यस्य च सर्वाणि लिङ्गानि भवन्त्युक्तानि। तथा सर्वेषां हेतूनामौषधानां च रसगुणवीर्यविपाकप्रभावेषु तत्सम्बन्धं समर्पयता सर्वेषां व्याधीनां निदानान्यौषधानि च प्रदर्शितानि भवन्ति। एवं च सर्वेषु व्याधिषु तल्लिङ्गदर्शनं तदौषधप्रशमनं च साधयता आप्तोपदेशश्च सूचयता तदाक्षेपनिरसनपुरःसरं सर्वव्याधीनां ज्ञानसौकर्याय चिकित्सासौकर्याय च तत्कल्पनाया आवश्यकता निरूपिता। एवं त्रिष्वपि हेतुलक्षणौषधेषु आयुर्वेदस्कन्धेषु वातादिसम्बन्धः सर्वथा सूचितः। तथा सर्वेषां हेत्वौषधद्रव्याणामानन्त्याद् वक्तुमशक्यत्वात्तत्सामान्यं रसगुणवीर्यविपाकप्रभावेषु संस्तार्य तत्कर्माणि च सर्वतोभावेन निरूपयता उक्तानुक्त-

ज्ञाताज्ञातसर्वद्रव्याणां रसादिद्वारैव गुणागुणनिश्चयः समर्थितः। पुनश्च विशेषज्ञानाय रसादीनां प्रत्येकं भेदानन्त्यं प्रदर्शयता बुद्धिमतामनन्तकल्पनादिक् प्रदर्शिता। तत्त्वज्ञानार्थं युक्तिज्ञाने 'सायन्स' पदवाच्ये प्रयत्नातिशयः प्रार्थितः॥

पुराकाले भेषजतन्त्रविदां समवाये जाङ्गमौद्भिदपार्थिवान्येव तत्तेषां व्याधीनामुपशमाय प्रायशः परिगृहीतान्यासन्। आसीत्तस्मिन् समयेऽस्माकं जन्मदात्र्या एतस्या रत्नगर्भायाः सृष्टिनियमेन तादृशी दशा यदेतस्यामुत्पन्नाः काष्ठौषधयो महाशक्तिसम्पन्ना आसन्। ततश्च बहुतराणां व्याधीनां प्रतीकारः पूर्वमुक्तैस्त्रिविधैरौषधैरेव संसिद्धोऽभूत्। परं विकासवादस्य सिद्धान्तानुसारं पृथिव्याः शक्तिः सर्वदा एकाकारैव तिष्ठति। शान्ताया इव सुस्थिराया इव क्रियाशून्याया इव जनैः प्रतीयमानाया एतस्याः पृथिव्याः स्तरेषु अहर्निशं जायन्ते महान्ति महान्ति परिवर्त्तनानि। एतस्य परिवर्त्तनस्य प्रभावः पृथिव्याः शक्तेरुपरि भूयसांशेन परिपतति नाम। मन्ये सोऽयं विषयो नाधिकं विस्तरमपेक्षते। विदितमेतत्सर्वं पार्थिविज्ञानविदां सर्वेषामपि सभ्यमहोदयानाम्। अस्तु—परिणामनियमो भूमिशक्तेरुपरि प्रभुर्बभूव। पूर्वं सर्वतः प्रसरणशीलः पार्थिवो रसः समाकुञ्चननियमानुसारं क्वचित् क्वचिद्भूमिगर्भे संघातरूपमभजन्। एवञ्च भूमेरुपरितनानां स्तराणां शक्तिर्न तथापूर्वमभवत्। अतएव भूमिपृष्ठे (न भूमिगर्भे) प्ररोहणशीलानां काष्ठौषधीनां तत्समशीलानामन्यासां चौषधीनां शक्ति न्यूनतामभजत्। सैषा न्यूनता बौद्धसभ्यतायाः समये तत्सामयिकानां सिद्धभिषजां परं विचारस्थानमासीत्। अत एव बौद्धानां मान्यतमः श्रीनागार्जुनो यशोधनव्याडिप्रभृतयश्चान्ये बहवः सिद्धाचार्या रसशास्त्रप्रचारं चक्रुः। यथा च तत्कालीनैर्विवेकिभिर्नियम्यान्तरात्मानमध्यात्मप्रवणैश्चेतोवृत्तिभिः साक्षात्कृत्य नवनवानि दार्शनिकतत्त्वान्याविश्चक्रिरे। सर्वोपनिषत् प्रतिपादितान् लोकमान्यानलौकिकान् वेदान्तसिद्धान्तान् पुन राविष्कुर्वता भगवता श्रीशङ्कराचार्येणाध्यात्मतन्त्रसारे नवीन इव युगः समारेभे च। तथैव च तत्कालीनैस्तन्त्रसिद्धान्तानुयायिभिः सिद्धैरपि भूमौ निगूढानि नवनवानि तत्त्वानि रसोपरसात्मकानि आविष्कुर्वद्भिर्वैद्यकसंसारेऽपि नवीन एव युगः प्रादुर्भावयामासे। तत्प्रभावादायुर्वेदीयानां सिद्धान्तानां परिवृत्तिसहानां चिकित्साप्रक्रियायाश्च भेषजसाधनविधानयोरपि परिवृत्तिः संजातैव कालानुसारं न मूलसिद्धान्तानाम्। एवमेवाद्यापि नवयुगारम्भे मूलसिद्धान्तविरोधमनुरुध्य नवीनान्याविष्कृततत्त्वानि आत्मीयरूपे विपरिणमय्य स्वीक्रियन्तां वैद्यैः।

अथ तपति महीमण्डलं बौद्धभूभुजां प्रतापमार्त्तण्डे नागार्जुनयशोधनव्याडिप्रभृतयः सिद्धाः काष्ठौषधीनां क्रमेण हीनगुणवत्त्वात् ऋषभकादीनां दुर्लभप्रायत्वात् मिलितानामपि कटुतिक्तबहुलतया अधिकमात्रतया च सुखसङ्गिनामरुचिकरत्वात् 'कालविलम्बेन वर्षादिक्लेदादिना गतरसतया कार्यासाधकत्वात् असामञ्जस्यमवालोच्य, सूक्ष्मविवेचनया निखिलातङ्कनिर्हर्णीं सकलपुरुषार्थप्रदायिनीं बाल्यतारुण्यवार्द्धक्यानुकूलां नैकवर्षातिक्रमेऽपि अपरिणामिनीं सर्वयोगवाहिनीमल्पमात्रतया क्षीरपायिनामपि सुखप्रयोगामेकत्र

वस्तुनि शक्तिं चिरमन्वेषयन्तो निखिलदुःखार्णवपारदे पारदे तां निरधारयन्। एवं हि ते पारदं स्तुवन्ति—

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः॥
मूर्च्छितो जयति व्याधीन् मृतो जीवयति स्वयम्।
बद्धः खेचरतां धत्ते कोऽन्यः सूतात् कृपाकरः॥
सुरगुरुगोद्विजहिंसापापकलापोद्भवं किलासाध्यम्।
तदपि च शमयति यस्मात् कोऽन्यस्तस्मात् पवित्रकरः॥
रसबन्धश्च स धन्यः प्रारम्भे यस्य सततमिव करुणा।
सिद्धे रसे करिष्ये महीमहं निर्जरामरणाम्॥ इति

एतद्बलेनैव प्राच्याचार्य्यव्यवस्थापितं व्याधीनामसाध्यत्वमपि नाङ्गीकुर्वन्ति। तथा च तेषां वचनम्—

साध्येषु भेषजं सर्वमीरितं तत्त्ववेदिभिः।
असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽतः श्रेष्ठ उच्यते॥ इति

किम्बहुना पारदोपसेवनयैव ते मुक्तिमपि कुटीरपरिसरचारिणीं मन्यन्ते। यथा-हुर्जगद्गुरुश्रीशङ्कराचार्य्याणां गुरवः श्रीगोविन्दाचार्य्यपादाः—

तस्माज्जीवन्मुक्तिं समीहमानेन योगिना प्रथमम्।
दिव्या तनुर्विधेया हरगौरीसृष्टिसंयोगात्॥

एवं पारदमेव सकलरोगहरत्वेन पुरुषार्थप्रदातृत्वेन च मुख्यं निर्दिश्य अपराणि रसोपरसधातूपधातुरत्नोपरत्नविषोपविषाणि इतराणि च काष्ठौषधानि प्राण्यङ्गौषधानि च तत्सहकारित्वेन निरदिक्षन्। तत्र रस्यते—सर्वमहारसोपरसधातुभिर्गम्यत इति रसः पारदः। स एक एव। सर्वाण्यपि सत्त्वानि धातूपधातवश्च पारदे लयमुपयान्ति। तथा च श्रीगोविन्दाचार्य्याः—

परमात्मनीव सततं भवति लयो यत्र सर्वसत्त्वानाम्।
एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते॥
अमृतत्वं हि भजन्ते हरमूर्त्तौ योगिनो यथा लीनाः।
तद्वत् कवलितगगने रसराजे हेमलोहाद्याः॥ इति

महारसा अष्टाविति रसप्रकाशसुधाकरः—गगनम्, माक्षिकम्, वैक्रान्तम्, विमलम्, सस्यकम्, तुत्थम्, शिलाजतु, राजावर्त्तकमिति।

उपरसा अष्टौ—तालकम्, तुवरी (स्फटी), गन्धकम् कङ्कुष्ठम्, मनःशिला, सौवीरम्, गैरिकम्, खेचरम् (कासीसम्) इति।

साधारणरसाः सप्त—नवसारम्, विड़म्, वराटिका, अग्निजारः, गिरिसिन्दूरम्, दरदम्, वोदारश्टङ्गम (मुर्दासिङ्ग) इति।

आयुर्वेदप्रकाशस्तु महारसशब्देन पारदमेव निर्दिशति। उपरससंज्ञया चेमान् व्यव-

हरति। गन्धम्, हिङ्गुलम्, अभ्रम्, तालम्, शिला, स्रोतोऽञ्जनम्, टङ्कणम्, राजवर्त्तम्, चुम्बकम्, स्फटिकम्, शङ्खम्, खटी, गैरिकम्, कासीसम्, रसकम्, कपर्दम्, सिकता, बोलम्, कंकुष्ठम्, सौराष्ट्रीति। तथा समुद्रफेनम्, क्षुद्रशङ्खः, शुक्तिः, कृष्णमृत्पङ्कः, कम्पिल्लः, गौरीपाषाणः (संखिया) नवसागरः, अग्निजारः, गिरिसिन्दूरम्, बोदारश्रृङ्गम्—इत्यादीन्यपि उपरससंज्ञयैव व्याहरति।

धातवश्चायुर्वेदप्रकाशे—

सुवर्णं रूप्यकं ताम्रं वङ्गं यसदसीसकम्।
लोहं चैते मताः सप्त धातवो गिरिसम्भवाः॥ इति

ये च पूर्वमुक्ता उपरसाः प्रायस्त एवोपधातव इति। रत्नानि नव, तद्यथा—वज्रम्, विद्रुमम्, मौक्तिकम्, मारकतम्, गारुत्मतम्, वैदूर्यम्, गोमेदः, माणिक्यम्, इन्द्रनीलः पुष्पराग इति। उपरत्नानि तु वैक्रान्तसूर्यकान्तचन्द्रकान्तराजवर्त्तादीनि। विषाणि चाष्टादशप्रकाराणि। तत्र सक्तुको मुस्तकः कौर्मो दार्वीकः सार्षपः सैकतो वत्सनाभः श्वेतश्रृङ्गीत्यष्टौ भैषज्यविधावुपयुक्तानि। कालकूटः मेषश्रृङ्गी, दर्दुरकः, हालाहलः, कर्कोटः, ग्रन्थिः, हारिद्रकः, रक्तश्रृङ्गी, केशरः, यमदंष्ट्रेति दश तु त्याज्यानि। उपविषाणि—अर्कः, सेहुण्डः, धुस्तूरः, लाङ्गली, करवीरकः, गुञ्जा, अहिफेनम्, इति।

तत्र रसस्य चतस्रोऽवस्थाः—शुद्धो मूर्च्छितो बद्धो मृतश्च। तत्साधकाश्चाष्टादश संस्कारास्तत्र स्वेदनमर्दनमूर्च्छनोत्थापनपातनबोधननियमनदीपनानुवासनानि शोधनोपयोगीनि। शुद्धश्च रसो मूर्च्छयितव्यो भवति। तत्प्रकाराश्च बहवो वर्णिता रसशास्त्रे। तेषु सगन्धनिर्गन्धभेदेन रससिन्दूररसकर्पूररूपो द्विविध एव प्रयुज्यते प्रायश्चिकित्साकर्मसु। गन्धकजारणञ्च तदुपयोगि बहिर्धूमान्तर्धूमभेदेन द्विविधम्। तत्र वालुकायन्त्रकच्छपयन्त्रभूधरयन्त्रगर्भयन्त्रादिभिरन्तर्धूमजारणं विधीयते। वालुकायन्त्रेण तु बहिर्धूमजारणम्। अन्तर्धूमजारणप्रभावश्च—

अन्तर्धूमविपाचितशतगुणगन्धेन रञ्जितः सूतः।
स भवेत् सहस्रवेधी तारे ताम्रे भुजङ्गे च॥ इत्थं वर्णितः।

तथा—

षड्गुणे गन्धके जीर्णे रसो भवति रोगहा। इत्यादि।

ततश्च गन्धके जारणेन प्रकारान्तरेण वा बुभुक्षितः पारदो बन्धनार्थमुपयुज्यते। तदर्थञ्च हेमाभ्रसत्त्वादिजारणं विधीयते। तत्र च गगनादिग्रासप्रमाणचारणगर्भद्रुतिबाह्यद्रुतियोगजारणाख्यानि कर्माण्युपयुज्यन्ते। जारणञ्च पातनगालनव्यतिरेकेण घनहेमादिग्रासपूर्वकपूर्वावस्थाप्रतिपन्नत्वमित्युक्तलक्षणम्। अभ्रजीर्णस्य लक्षणं च रसार्णवे एकादशपटले—

कपिलोऽथ निरुद्गारी विप्लुषश्चैव मुञ्चति।
अग्नौ तिष्ठति निष्कम्पो व्योमजीर्णस्य लक्षणम्॥ इति

तत ऊर्ध्वं च रञ्जनसारणक्रामणाख्याः संस्कारास्तदुत्कर्षाधायकाः । ततश्च वेधः शरीरलौहयोरिति ।

अधुना च गन्धकजारणान्तम् कर्म प्रायो विधीयते वैद्यैः । तदुत्तराणि च हेमाभ्रसत्त्वजारणादीनि विधातुं तज्ज्ञान्वेषणपुरःसरं महान्तमपि परिश्रममवलम्ब्य रसशास्त्रोक्तसाधकलक्षणमनुसृत्य च प्रयत्नपरैरस्मभिर्भाव्यमिति । साधकलक्षणं च रसार्णवद्वितीयपटले—

जितेन्द्रियाः क्लेशसहा नित्योद्यमसमन्विताः ।
शूराश्च कृतविद्याश्च प्रशस्ताः साधकाः प्रिये ॥ इति

सैषा रसचिकित्सा दुर्द्धर्षानपि व्याधिविशेषान् नर्महसितकेन प्रसह्य समुन्मूलयन्ती विपक्षानपि डाक्तरहकीमादीन् स्वगुणैरावर्जयन्ती भारतीयसकलौषधालयभित्तिमञ्जूषा (अलमारी) मलंकुर्वाणा सांप्रतमपि विजयते । सर्वथाऽयं रसचिकित्साया एव महिमा स्तुत्यः—यद्विविधशास्त्रकर्मनिपुणमतिभिर्नैकयन्त्रसाहाय्यप्रत्यक्षीकृतशारीरसूक्ष्मावयवप्रदेशैरपि डाक्तरहकीमैः प्रत्याख्यातान् रोगिणः सुखं नयन्त्यरोगतां वैद्या इति ।

अपि च यावन्तः प्रख्यातकीर्तयो यावनवैद्याः मृगाङ्कानन्दभैरवादीन्येव रोगिणो विषमदशायामाश्रयन्ति, दक्षतराश्च मकरध्वजादीनीति दृष्टचरमेवेति ।

एतस्याः पुराकालिकीं समुन्नतिं वर्तमानकालिकीमवनतिञ्च विचारयन् को नाम प्रेक्षावान् शोकानुतप्तहृदयो नोष्णं निःश्वसिति ।

अल्पावशिष्टेष्वपि काष्ठौषधिप्रधानेषु संहिताग्रन्थेषु तेषां सिद्धान्ताः प्रायो हृदयङ्गमा दृश्यन्ते भिषजाम् । रसतन्त्रेषु तु बहूपलभ्यमानेष्वपि न तथा, कुत एतदिति मीमांसाया एवं नोनिर्धारणा संहिताकर्त्तारो हि बभूवुः ऋषयस्ते च त्रिविधशिष्यबुद्धिगम्याभिर्वाग्भिरुपदिदिशुः । रसकर्माविष्कर्त्तारश्च प्रायस्तान्त्रिकाः सिद्धाः, एते हि निजाविष्कारं स्वावबोधार्थं साङ्केतिकशब्दैरुल्लिख्य गोपनीयं प्रयत्नत इति दृढ़प्रत्यया विश्वासभूमिषु निजदीक्षादीक्षितेषु स्वशिष्येष्वेव कथञ्चित् प्रचारयामासुः । इत्येवं क्रमेण कालवैषम्येण वा अधिकारिविरहेण वा रोगिलोकस्यापुण्यपरिणामेन वा अस्माकमधन्यतया वायं नागार्जुनादिसिद्धविचारार्णवगृहीतजन्मा रसकर्मकलानिधिरिदानीं कलामात्र एवावशिष्ट इति । अस्य च पुनरुदयाय विधेयः समुद्यम इति ।

एवं सामान्यतः सर्वाणि हेतुलिङ्गौषधानि व्याख्यातानि । भेषजं द्विविधम्—ऊर्जस्करं, रोगघ्नं च । तत्रोर्जस्करं द्विविधं रसायनं वाजीकरणञ्च । रोगघ्नमपि द्विविधम्—रोगस्य प्रशमनमपुनर्भवकरं च । पुनश्च द्विविधम्—द्रव्यमद्रव्यं च । तत्र द्रव्यं त्रिविधमुक्तं प्राक् । अद्रव्यं पुनरुपवासानिलातपच्छायामन्त्रसान्त्वदानभयोत्त्राससंक्षोभणहर्षणभर्त्सनहसनस्वप्नजागरणसंवाहनादीनि । पुनरपि त्रिविधम्—दैवव्यपाश्रयं युक्तिव्यपाश्रयं सत्त्वावजयश्चेति । पुनरपि त्रिविधम्—अपकर्षणं प्रकृतिविघातो निदानत्यागश्चेति । पुनरपि त्रिविधम्—हेतुविपरीतं, व्याधिविपरीतमुभयकारि च । अनौषधमपि द्विविधम्—

बाधनमनुबाधनं च । एवं भेषजं सम्यक् परीक्ष्य पुनश्चिकित्सां कर्तुमारभेत । यदुक्तम्—

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ।
ततः कर्म भिषक् पाश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ इति

अथ च रोगभेषजपरीक्षानन्तरं यान्यवश्यं ज्ञातव्यानि, यदधीनं च चिकित्साफलं तान्यपि संक्षेपतो दर्शयितुं प्रकरणान्तरमारभ्यते—

अथ चैवं हेतुलक्षणौषधानामानन्त्यं प्रसमीक्ष्य विवेकपूर्वकं तत्सामान्यमाकलय्य चाभ्यासवशेनावयवप्रभावेण वा रोगप्रभावमौषधप्रभावमुपकल्प्य चिकित्साकर्मारभमाणो भिषक् पूर्वमेव तावत्तत्द्रोगविशेषनिर्द्धारणे तदनुसारमौषधविशेषनिर्द्धारणे च प्रयतेत । तन्निर्द्धारणे यतमानेनानल्पधीधृतिस्मृतिना प्रत्युत्पन्नमतिना वैद्यराजेन दूष्यदेशबलकालानलप्रकृतिसात्म्यसत्त्ववयआहारास्तथा नानाविधाः सूक्ष्मसूक्ष्मास्तत्तदवस्थाश्च सूक्ष्मेक्षिकया समीक्षितव्याः । समीक्ष्यकारिणो हि कुशला भवन्ति आशु च साध्यं साधयन्ति । सुखानुबन्धं व्यापद्रहितमाशुसाध्यसाधनं हि वैद्यस्य स्पृहणीयं कर्म सिद्धिश्च । दूष्यादीनि च रोगनिर्द्धारणे भेषजनिर्द्धारणे च कथमुपयोगं गच्छन्तीत्यनुयोगप्रकारस्तु ज्ञातायुर्वेदरहस्यानामनुभवशीलानामग्रे नात्युपयोक्तोऽपि प्रसङ्गवाशादुदाहृतो न केवलं कौतुकायेति पृथग्दर्शयामस्तदुपयोगम् । तथा हि दूष्यमेव तावद्विवेचयेन्निर्द्धारणाय, दूष्यं नाम रोगारम्भकार्ये प्रधानकारणस्य दोषस्य स्ववृद्धिक्षयविकृतिद्वारा सहकारिकारणम्; यथा प्रमेहे मेदोमांसशरीरक्लेदादि, कुष्ठे त्वग्रक्तमांसलसीकादि, अर्शःसु गुदवलीस्थितत्वङ्मांसमेदांसि, अपस्मारसंन्यासादौ मनोमस्तिष्कादि, इत्येवमादि; तद्वशेन रोगनिर्द्धारणार्थं चरके श्लोकस्थानीयकियन्तःशिरसीये—

घट्टते सहते शब्दं नोच्चैर्द्रवति शूल्यते ।
हृदयं ताम्यति स्वल्पचेष्टस्यापि रसक्षये ॥ इत्यारभ्य—
बिभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं ध्यायति व्यथितेन्द्रियः ।
दुश्छायो दुर्मना रूक्षः क्षामश्चैवौजसः क्षये ॥

इत्यन्तेन ग्रन्थेन धातुमलौजसां क्षयेण दोषसहकारिणा ये रोगा जायन्ते ते प्रदर्शिताः । विधिशोणितीये—'ततः शोणितजा रोगाः प्रजायन्ते पृथग्विधाः' इत्यारभ्य "विकाराः सर्व एवैते विज्ञेयाः शोणिताश्रयाः" इत्यन्तेन स्वहेतुविकृतरक्तप्रभवा विकाराः प्रदर्शिताः । तथा विविधाशितपीतीये—

अश्रद्धा चारुचिश्चास्यवैरस्यमरसज्ञता । इत्यारभ्य—
स्नायौशिराकण्डराभ्यो दुष्टाः क्लिश्नन्ति मानवम् ।
स्तम्भसंकोचखल्लीभिर्ग्रन्थिस्फुरणसुप्तिभिः ॥
मलानाश्रित्य कुपिता भेदशोष प्रदूषणम् ।
दोषा मलानां कुर्वन्ति सङ्गोत्सर्गावतीव च ॥

इत्यन्तेन ग्रन्थेन धातुमलादि वृद्धिविकृतिभवाः सामान्यजा रोगाः प्रदर्शिताः । वातनानात्मजाश्च वातव्याधिचिकित्सिते—

तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः। इत्यारभ्य
इत्युक्तं स्थानभेदेन वायोर्लक्षणमेव च॥ इत्यन्तेन ग्रन्थेन,

तथा तत्रैव—

रक्तावृते सदाहार्त्तिस्त्वङ्मांसान्तरयोर्भृशम्। इत्यारभ्य
अस्वस्थं हृदयं चैव वर्चसा त्वावृतेऽनिले॥

इत्यन्तेन, आवरकत्वेन च दूष्यप्रभवाः रोगाः प्रदर्शिताः। अष्टाङ्गसंग्रहे दोषादिविज्ञानीये—

पित्तं त्वचि स्थितं कुर्याद्विस्फोटकमसूरिकाः।

इत्यादिना—

"कोष्ठगं मदतृड्दाहान् व्यापिनोऽन्यांश्च यक्ष्मणः"

इत्यन्ते न पित्तस्य दूष्यविशेषसम्बन्धजा रोगाः प्रदर्शिताः। तथा तत्रैव "श्लेष्मा त्वचि स्थितः कुर्यात्" इत्यादिना "तांस्तांश्च कफसम्भवान्" इत्यन्तेन कफस्य तत्तत्सम्बन्धप्रभवा रोगा वर्णिताः। तथा सर्पादिविषस्य रसादिधातुसम्बन्धेन सप्तवेगा भवन्ति, ते ते च वेगोद्भवा रोगाः सर्वत्र चरकसुश्रुतादिषु विषकल्पे स्पष्टं प्रोक्ताः। तथा दूष्यसम्बन्धज्ञानात् साध्यासाध्यज्ञानमपि जायते, दूष्येषु कानिचिद्वातसमानगुणभूयिष्ठानि, कानिचिच्च पित्तसमानगुणभूयिष्ठानि, कानिचिच्च श्लेष्मसमानगुणभूयिष्ठानि, तत्र समानगुणदूष्यसम्बन्धेनोपबृंहकबललाभालब्धबलो दोषोऽसाध्यं व्याधिं जनयति। अत एवोक्तं साध्यप्रकरणे "नच तुल्यगुणो दूष्यः" इति, परन्त्वेतत्प्रमेहं विना ज्ञातव्यम्। तत्र हि तुल्यदूष्यत्वेनैव समक्रियत्वं, ततश्च साध्यतेति, अलं विस्तरेण।

एवं हि द्रव्यप्रभावज्ञानं रोगनिर्द्धारणेऽतीवोपयोगि भवति। तथैव भेषजनिर्द्धारणेऽपि दूष्यविशेषकृतिज्ञानं कर्मविशेषप्रतिपत्तिद्वाराप्रयोजकं भवति॥ तथा च वातादिधातुवैषम्यरूपे विकारे तदारब्धे ज्वरादिविकारे च हेतुविपरीतानि व्याधिविपरीतानि उभयविपरीतानि वा तदर्थकारीणि वा द्रव्यगुणकर्माणि [औषधान्नविहाराः] देशकालमात्राभिः सम्यगुपपादितानि उपयोगीनि भवन्ति, तत्रैव च यदा दूष्यादिसहकारिकारणज्ञानमपि यथावद्भवेत्तदा तत्प्रतिपन्नभेषजविशेषोपबृंहितबलानि तान्येवाशुकार्यकराणि सम्पद्यन्ते। यथा अष्टाङ्गसंग्रहस्य दोषोपक्रमणीये—"वातस्योपक्रमः स्नेहः स्वेदो मृदूनि" इत्यादिना वातस्य कुपितस्योपक्रमः प्रदर्शितः। तथा—"पित्तस्य सर्पिष्पानं सर्पिषा स्नेहनम्" इत्यादिना पित्तस्य, तथा श्लेष्मणः, पुनर्विधिविहितानि तीक्ष्णानि संशोधनानि' इत्यादिना श्लेष्मण उपक्रमो वर्णितः। ततश्च—

उपक्रमः पृथग्दोषान् योऽयमुद्दिश्य कीर्त्तितः।

इत्यादिना ग्रन्थेन द्विषष्टिदोषभेदानां सामान्येनोपक्रमोवर्णितः, तथा चरकीयविविधाशितपीतीये "रसजानां विकाराणां सर्वं लङ्घनमौषधम्" इत्यादिना "मलजानां विकाराणां सिद्धिश्चोक्ता क्वचित् क्वचित्" इत्यन्तेन ग्रन्थेन, तथाऽष्टाङ्गसंग्रहे दोषादि-

विज्ञानीये "धातवः खलु शारीराः समानैः" इत्यादिना स्वेदक्षयजानभ्यङ्गव्यायाममद्य-स्वप्ननिवातशरणस्वेदैः' इत्यन्तेन् ग्रन्तेन सामान्यतो दूष्योपक्रमः प्रदर्शितः ।

स चायमुपक्रमस्तत्तद्व्याधिप्रतिषेधोक्तचिकित्साक्रमयोजितैस्तत्तद्व्याधिहरभेष-जैर्योजितः सम्यगाशु व्याधिनिर्हरणे समर्थो भवति । पुनश्चापि तेषां तेषां व्याधीनां दूष्यसम्बन्धज्ञाने भवत्येव तत्तत्कर्मप्रतिपत्तिरलं सिद्धये वैद्यस्य । दूष्यसम्बन्धेन तत्तत्कर्मणाञ्च प्रतिपादनं चरके ज्वरचिकित्सिते—

ज्वरे रसस्थे वमनमुपवासञ्च कारयेत् ।
सेकप्रदेहौ रक्तस्थे तथा संशमनानि च ॥
विरेचनं सोपवासं मांसमेदःस्थिते हितम् ।
अस्थिमज्जगते देया निरूहाः सानुवासनाः ॥

इत्यादिना प्रसिद्धमेव । तथा वातव्याधिचिकित्सिते—

शोणितेनावृते कुर्याद्वातशोणितिकीं क्रियाम् ।
प्रमेहवातमेदोघ्नीमामवाते प्रयोजयेत् ॥
स्वेदाभ्यङ्गरसक्षीरस्नेहा मांसावृते मताः ।
महास्नेहोऽस्थिमज्जस्थे पूर्ववद्रेतसाऽऽवृते ॥
अन्नावृते तु वमनं पाचनं दीपनं लघु ।
मूत्रलानि तु मूत्रस्थे स्वेदाः सोत्तरवस्तयः ॥
एरण्डतैलं वर्चस्थे वस्तिः स्नेहाश्च भेदिनः ।

इत्यादि च । तथा तत्रैव—

विशेषतस्तु कोष्ठस्थे वाते क्षारं पिबेन्नरः । इत्यादिना—
प्रत्येकं स्थानदूष्यादिक्रियावैशेष्यमाचरेत् ।

इत्यन्तेन वातव्याधौ तत्तद्दूष्यसम्बन्धेन तत्तद्भेषजविशेषप्रतिपादनमित्यलमुदा-हरणान्तरान्वेषणप्रयासेन । एवं स्पष्टमेव रोगभेषजनिर्द्धारणार्थमावश्यकं दूष्यपरीक्षणमिति ।

देशो द्विविधो ह्यायुर्वेदे वर्णितः । भूमिरातुरश्च, तत्र भूमिदेशावेक्षणं रोगनिर्द्धार-णार्थमेवमुपयुज्यते—'कस्मिन्नयं भूमिदेशे जातः समृद्धो व्याधितो वेति, तस्मिंश्च भूमिदेशे मनुष्याणामिदमाहारजातमिदं विहारजातमिदमाचारजातमेतद्बलमेवंविधं सत्त्वमेवंविधं सात्म्यमेवंविधो दोषः (मलेरिया-प्लेगकौलेराप्रभृतिरोगाणामुत्पादको यः कश्चित्कारणविशेषः) भक्तिरियमिमे व्याधयो (पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्त्तुषु च शी-तलाः । ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः) इत्यादयः । 'हितमिदमहितमिद-मिति' इति चरकप्रतिपादितोक्तदिशा देशसमीक्षया रोगविशेषस्य तत्तद्रोगदोषादिवला-वलस्य च निर्द्धारणं भवति, भेषजनिर्द्धारणार्थञ्च भूमिदेशपरीक्षणं तु प्रकरणान्तरे प्रोक्तम् ।

अथातुरस्तु चिकित्साकर्माधिष्ठानमत एव चिकित्साचित्रणाधारपरतया देशत्वेन कल्पितः । समीक्षितश्चायं कार्यदेश आयुःप्रमाणज्ञानद्वारा दोषप्रमाणज्ञानद्वारा च रोग-

निर्द्धारणे बलप्रमाणज्ञानद्वारा च भेषजनिर्द्धारणे उपयुक्तो भवति । बलदोषप्रमाणज्ञान-मायुःप्रमाणज्ञानं चातुरस्य प्रकृतितो विकृतितः, सारतः, संहननतः, प्रमाणतः, सात्म्यतः, सत्त्वतः, आहारशक्तितो, व्यायामशक्तितो, वयस्तश्च परीक्षणाद्भवति । स च परीक्षा-प्रकारश्चरकविमानीयरोगभिषग्जितीये द्रष्टव्यः । भेषजकल्पनाविकल्पो मात्राविकल्पश्च व्याधिव्याधितयोर्बलमपेक्षते, व्याधिबलञ्च 'हेत्वादिकार्त्स्न्यावयवैर्बलाबलविशेषणमि'त्युक्त-दिशा ज्ञेयम् । रोगशरीरजाठराग्निबलानुरूपं हि भेषजं दीयमानमाश्वभिनिर्वर्त्तयति धातुसाम्यम् ।

एतद्धि बलं स्वयमपि रोगभेषजनिर्द्धारणे प्रयोजकं भवति । तथा हि—बलं ताव-दत्र परपरिभवनिमित्तं शरीरमनःसामर्थ्यम्, स्वोचिते कार्ये श्रमाभावप्रयोजकं दाक्ष्यम् । स्वधर्मानुष्ठानाय देहेन्द्रियादिधारणसामर्थ्यम्, कर्मेन्द्रियपाटवम्, रसादिशुक्रपर्यन्त-पुष्टधातुनिमित्तकम्, 'चेष्टासु पाटवं यत्तु बलं तदभिधीयते' इत्युक्तलक्षणम् । सर्व-मप्येतद्बलं विभज्यमानं त्रिविधं भवति । सहजं, कालजं, युक्तिकृतञ्च । सहजं—यच्छरीरसत्वयोः प्राकृतम् । प्राकृतमिति जन्मादिप्रवृत्तं प्राकृतधातुवृद्ध्या हेत्वन्तर-निरपेक्षं वृद्धम्, तद्वृद्धिकरा भावास्त्विमे बलवत्पुरुषे देशे जन्म, बलवत्पुरुषे काले च सुखश्च कालयोगो बीजक्षेत्रगुणसम्पच्च, शरीरसम्पच्च, सत्त्वसम्पच्च, स्वभावसंसिद्धिश्च । अत्र बीजक्षेत्रगुणसम्पत् बीजस्य शुक्रस्य तथा क्षेत्रस्यार्त्तवगर्भाशयरूपस्य गुणानां प्रशस्तधर्माणां सम्पत् । तथा सत्त्वसम्पत्—

अनुत्सेकमदैन्यञ्च सुखं दुःखञ्च सेवते ।
राजसस्तभ्यमानोऽन्यैः सहते नैव तामसः ॥ इति वाग्भटोक्तेः ।

बलभेदेन त्रिविधे सत्त्वे प्रवरसत्त्वेन सह संयोगः । स्वभावसंसिद्धिर्बलजनककर्म-संसिद्धिः । दुर्बलाल्पबलमनुष्यबहुलेऽस्मिन् काले सहजबलस्य क्षयः संजातः, प्रति-दिनं जायते जनिष्यते च, बलवर्द्धयावदुक्तकारणानां पुनः संस्कारे न यतिष्यते देशसमाज नेतृभिर्वैद्यप्रवरैश्च । कालजं कालकृतम् तु विभागजं वयःकृतञ्च, तत्र ऋतुविभागजम्—

आदावन्ते च दौर्बल्यं विसर्गादानयोर्नृणाम् ।
मध्ये मध्यबलं त्वन्ते श्रेष्ठमग्रे विनिर्दिशेत् ॥ इत्युक्तरूपम् ।

वय कृतं यौवनादिप्रभावोद्भवम् । युक्तिकृतं पुनस्तद्यदाहारचेष्टायोगजम् । आहारा-न्मांससर्पिरादेश्चेष्टाया उचितविश्रामव्यायामादेर्योगाद्रसायनवाजीकरणप्रयोगाज्जातम् । तद्वृद्धिकरास्त्विमे भावाः । आहारसम्पच्च, सात्म्यसम्पच्च, कर्म, हर्षश्चेति । तत्र "आहारसम्पत्, बलकराहारलाभस्तदभ्यवहरणशक्तिर्जरणशक्तिश्चेति ।" सात्म्यसम्पत्, तत्र ये घृतक्षीरतैलमांसरससात्म्याः सर्वरससात्म्याश्च ते बलवन्तः क्लेशसहाश्चिरजीविनश्च भवन्ति" इत्युक्तप्रभावा । कर्म व्यायामादि, तदभ्यासान्निजं बलं भवति, व्यायामप्रभावश्च—

"व्यायामदृढगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्त्तितस्य च ।
व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगाः ॥" इति भावमिश्रेण ।

"व्यायामस्निग्धदीप्ताग्निवयस्थबलशालिनम् ।
विरोध्यपि न पीडायै सात्म्यमल्पञ्च भोजनम् ॥"

इति वाग्भटेनापि दर्शितः । तदेतद्वलं "गुर्वल्पव्याधिसंस्थानं सत्त्वदेहबलाबलात् । दृश्यतेऽप्यन्यथाकारं तस्मिन्नवहितो भवेत् ॥" इत्यादि वाग्भटोक्तदिशा रोगनिर्द्धारणे, तथा सहसा ह्यतिबलमौषधमपरीक्षकप्रयुक्तमल्पबलमातुरमभिपातयेत्, न ह्यतिबलान्याग्नेय-सौम्यावायवीयान्यौषधान्यग्निक्षारशस्त्रकर्माणि वा शक्यन्तेऽल्पबलैः सोढुम्, अविषह्या-तितीक्ष्णवेगत्वाद्धि सद्यःप्राणहराणि स्युः । एतच्चैव कारणमपेक्षमाणा हीनबलमातुरम-विपादकरैर्मृदुसुकुमारप्रायैरुत्तरोत्तरगुरुभिरविभ्रमैरनात्ययिकैश्चोपचरन्त्यौषधैर्विशेषतश्च-नारीः । तथा बलवति बलवद्व्याधिपरिगते स्वल्पमौषधमपरीक्षकप्रयुक्तमसाधकं भवति, इत्यादि रोगभिषग्जितीयोक्तैश्चरकवचनैस्तथा "संशमनानि तु व्याधिबलादधि-कानि तमुपशमय्य व्याधिं व्याधिक्षपितदेहे शीघ्रमन्यमावहन्ति । शरीरबलाधिकानि ग्लानिमूर्च्छामदमोहबलक्षयान् । अग्निबलादधिकानि ग्लानिमग्निसादञ्च ॥". इत्यादि-भिर्भेषजावचारणीयोक्तैरष्टाङ्गसंग्रहवाक्यैश्च स्फुटमेव भेषजनिर्द्धारणेऽप्युपयोगमर्हतीति ।

कालः पुनः संवत्सरश्चातुरावस्था चेति द्विविधो वर्णितो भिषग्विद्यायाम् । द्विवि-धोऽप्ययं रोगभेषजनिर्द्धारणे सहायो भवति । तद्यथा—तत्र संवत्सरो द्विधा त्रिधा षोढा द्वादशधा भूयश्चाप्यतः प्रविभज्यते तत्तत्कार्यमभिसमीक्ष्य, इति । क्षणादिः संवत्स-रान्तः कालो व्याधिनिर्द्धारणे सुतरामुपयुज्यते । त्रिविधेषु रोगकारणेषु कालार्थकर्मरूपेषु काल एव मुख्यः, यत इन्द्रियार्थसंयोगप्रज्ञापराधयोरयोगमिथ्यायोगेभ्य एव रोगा जायन्ते, समयोगाच्चारोग्यम् । शीतोष्णवर्षलक्षणस्य संवत्सरात्मकस्य कालस्य पुनरयोगाति-योगमिथ्यायोगेभ्यो व्यापन्नर्तुकृतेभ्यो जाता रोगा बलवन्तो भवन्ति, कालस्य सर्वतो बलवत्त्वादपरिहार्य्यत्वाच्च । यथा जनपदोद्ध्वंसनीये—

वाताज्जलं जलाद्देशं देशात्कालं स्वभावतः ।
विद्याद्दुष्परिहार्य्यत्वाद्गरीयस्तरमर्थवित् ॥ इति

न केवलं कालस्यायोगादिभ्य एव रोगा जायन्ते, किन्तु कालस्य समयोगेऽपि अपः-रिरक्षणाद्यथर्तुचर्योपेक्षणाच्च जायन्ते । अतएव कालजा रोगा द्विविधा वर्णिता धन्वन्त-रिणा—व्यापन्नर्तुकृता अव्यापन्नर्तुकृताश्च इति । तत्राव्यापन्नर्तुकृता असंरक्षणजाः शीतवातातपादिभिर्जाताः—

चण्डांशोरंशुना शीर्णि तप्ते चण्डेन जायते ।
अंशुघाताभिधो व्याधिः प्राणिनां प्राणपीडनः ॥

इत्यादयो व्याधयः । तथा कालस्वभावजाः—

"चय प्रकोपोपशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु त्रिषु ।
वर्षादिषु च पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु ॥"

इति वातादीनां चयादयः कालसमयोगेऽपि भवन्त्येव, परमृतुचर्यया यथाविध्य-

नुष्ठानेन चयकोपौ न स्वकार्यकरणसमर्थौ भवतस्ततो न हिताहितसेवनं समानमिति। अतएवानागतव्याधिचिकित्साप्रकरणे उपदिष्टमाचार्येण—

ऐमन्तिकं दोषचयं वसन्ते विशोधयन् ग्रीष्मजमभ्रकाले।
घनात्यये वार्षिकमाशु सम्यक् प्राप्नोति रोगान् ऋतुजान्न जातु ॥ इति।

अत एतत् सिद्ध्यति, शीतादिसमयोगेऽपि परिरक्षणादारोग्यमपरिरक्षणाद्व्याधयः सम्भवन्ति। एतदेव कालस्य वैशिष्ट्यम्। तथा तथाविधकालेन दोषप्रकोपज्ञानं तथा तदुत्पन्नव्याधिविशेषज्ञानमपि यथायथं सम्भवति तज्ज्ञानाम्। "वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेऽन्तमध्यादिगाः क्रमात्। तथा—'नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम्, इति दिक्।

स एवायं कालो भेषजनिर्द्धारणेऽपि "तत्र साधारणलक्षणेष्वृतुषु वमनादीनां प्रवृत्तिर्विधीयते निरतिरितरेषु" इत्याद्युक्तदिशा उपयुज्यते। आतुरावस्थारूपश्च काल आयुर्वेदे बहुप्रकारो बहुरूपो बहूपयोगो बह्भ्यासबोध्यश्च वर्णितः। तथा चिकित्सा-कर्मणि साधनमसाधनञ्च। व्याधितव्याध्यवस्थाविशेषज्ञानमेव शास्त्रतो गुरूपासनतः कर्मदर्शनतोऽभ्यासतो मननतो लभ्यमाशुसिद्ध्यावहममोघं साधनं वैद्यस्य, सिद्ध्यैव चैतद्ज्ञानमनुमीयते सर्वैः। यदुक्तम्—

सम्यक् प्रयोगं सर्वेषां सिद्धिराख्याति कर्मणाम्।
सिद्धिराख्याति सर्वैश्च गुणैर्युक्तं भिषक्तमम् ॥—

दीर्घञ्जीवितीये। तथा चरकचिकित्सास्थानान्ते—

मुहुर्मुहुश्च रोगाणामवस्थामातुरस्य च।
अवेक्षमाणस्तु भिषक् चिकित्सायां न मुह्यति ॥ इत्यनेन, तथा
दर्शनाद्यैरवहितस्तत्सम्यगुपलक्षयेत्।
व्याध्यवस्थाविभागज्ञः पश्यन्नार्त्तान् प्रतिक्षणम् ॥
अभ्यासात्प्राप्यते दृष्टिः कर्मसिद्धिप्रकाशिनी।
रत्नादिसदसज्ज्ञानं न शास्त्रादेव जायते ॥ इति

दोषभेदीयोक्तेन वाग्भटवचनेन च प्रतिपाद्यते यत्तादृशज्ञानलाभे शास्त्रादितोऽपि गुरूपदिष्टमार्गानुसारेण मुहुर्मुहुरातुरावेक्षणमेव मुख्यं साधनमिति। आतुरावस्थया च रोगावस्थानुमीयते इति स्फुटमेवोपयोगित्वं रोगविशेषनिर्द्धारणे आतुरावस्थारूपकालस्येति। तथा चरकविमाने रोगभिषग्जितीये "आतुरावस्थास्वपि तु कार्याकार्यं प्रति कालाकाल-संज्ञा। तद्यथा—अस्यामवस्थायामस्य भेषजस्याकालः कालः पुनरस्येति, एतदपि हि भवत्यवस्थाविशेषेण, तस्मादातुरावस्थास्वपि कालाकालसंज्ञा। तस्य परीक्षा मुहुर्मुहुरा-तुरस्य सर्वावस्थाविशेषावेक्षणं यथावद्भेषजप्रयोगार्थम्, न ह्यतिपतितकालमप्राप्तकालं वा भेषजमुपयुज्यमानं यौगिकं भवति। कालो हि भैषज्यप्रयोगप्राप्तिमभिनिर्वर्त्तयति इति,—" आतुरावस्थारूपः कालः प्रदर्शितः। भेषजनिर्द्धारणेऽस्य कालस्योपयोगः प्रतिपदमुप-लभ्यते चिकित्साकर्मपथिकस्य। कानिचिदुदाहरणानि प्रदर्श्यन्ते। तत्र तावज्ज्वरे—

"ज्वरे लङ्घनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरा" दित्यारभ्य "इति क्रियाक्रमः सिद्धो ज्वरघ्नः सम्प्रदर्शितः" इत्यन्तं केवलमावस्थिक एव क्रियाकलापः प्रदर्शितः। पुनस्तत्रैव

ज्वरे मारुतजे त्वादावनपेक्ष्यापि हिं क्रमम्।
कुर्यान्निरनुबन्धानामभ्यङ्गादीनुपक्रमान्　　॥ इति
तथा—शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्ज्वरो यस्य न शाम्यति।
शाखानुसारी तस्याशु मुञ्चेद्बाह्वोः क्रमात् सिराम्॥
वीसर्पेणाभिघातेन यश्च विस्फोटकैर्ज्वरः।
तत्रादौ सर्पिषः पानं कफपित्तोत्तरो न चेत्॥

इत्यादि, तदपवादोऽप्यवस्थावशेनैव प्रदर्शितः। तथा रक्तपित्ते 'वक्ष्यते बहुदोषाणामि'त्यादिना संशोधनभेषजार्हामवस्थां प्रदर्श्य पुन'र्वलमांसपरिक्षीण'मित्यादिना संशमनभेषजार्हावस्था दर्शिता। तथा गुल्मेऽपि अवस्थावशेन 'क्रियाक्रममतः सिद्धं गुल्मिनां गुल्मनाशन'मित्यारभ्य 'व्यामिश्रदोषे व्यामिश्र एष एव क्रियाक्रमः' इत्यन्तं श्लोकैर्द्वात्रिंशता क्रियाक्रमः प्रदर्शितः। तथा सर्वदैव शमनभेषजसाध्येऽपि राजयक्ष्मणि।

शोषी मुञ्चति गात्राणि पुरीषस्रंसनादपि।
अबलापेक्षिणीं मात्रां किं पुनर्यो विरिच्यते॥

इत्युक्त्वापि अवस्थानुरोधात्, "दोषाधिकानां वमनं शस्यते सविरेचनम्। स्नेहस्वेदोपपन्नानां सस्नेहं यन्न कर्षणम्॥" इति शोधनभेषजस्यापि कालः प्रदर्शितः। इत्येवं प्रतिरोगमातुरावस्थारूपः कालः सम्यगवेक्षितस्तदनुसारमारभ्यमाणे कर्मणि भेषजस्य पर्य्याप्तिमभिनिर्वर्त्तयन् शीघ्रमेव साधयति साध्यम्। तथा च सुश्रुते ३५ अध्याये—

अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न कृता क्रिया।
क्रिया हीनातिरिक्ता वा साध्येष्वपि न सिध्यति॥ इत्युक्तम्

संयोगिनां निदानदोषदूष्यदेशकालप्रकृतिसात्म्यकोष्ठाग्निबलादीनां प्रत्येकमानन्त्यात् संयोगोऽप्यनन्तविध एव सम्भवति, संयोगविशेष एव चावस्था, इत्यत एकस्यापि रोगस्यानन्ता अवस्थाः सम्भवन्ति। आविष्कृततमाश्च प्रदर्शितास्तत्तदधिकरणेषु। इत्यतः सर्वत्रोपदिष्ट उत्सर्गापवादभावो न्याय्य एव। उक्तमप्यभियुक्तैः—

उत्पद्यते हि सावस्था दोषकालबलं प्रति।
यस्यां कार्यमकार्यं स्यात् कर्म कार्यं विवर्जितम्॥

इत्यादि—इत्यलं बहुना कालविकल्पनेन।

अथानलः—स च त्रिधा भौमदिव्यौदर्य्यभेदात्। तत्राद्यः—काष्ठेन्धनप्रभवं ऊर्ध्वज्वलनस्वभावः पचनस्वेदादिसमर्थश्च। द्वितीयः—उदकेन्धनः पर्य्यग्ज्वलनशीलो वाड़वः विद्युदादिश्च। तृतीयः—उभयेन्धनः पर्य्यग्ज्वलनशीलः भुक्तस्याहारस्य रसादिपरिणामनिमित्तश्च इति। तेष्वत्र "अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तःपुरुषे येनेदमन्नं पच्यते यदिदमद्यते" इति बृहदारण्यकश्रुत्या तथा 'जाठरो भगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्य पाचकः। सौक्ष्म्याद्रसानाददानो विवेक्तुं नैव शक्यते' इति धन्वन्तरिवचनेन च प्रतिपादितश्च-

तुर्विधान्नपरिणामहेतुर्जाठरोऽग्निरभिप्रेतः। यद्यप्याहारपरिणामकरा अपि बहवः सन्ति, यदुक्तं चरके शरीरविचयशारीरे—"आहारपरिणामकरास्त्विमे भावा भवन्ति, तद्यथा—ऊष्मा वायुः क्लेदः स्नेहः कालः समयोगश्चेति। तत्र तु खल्वेषामूष्मादीनामाहारपरिणामकराणां भावानामिमे कर्मविशेषा भवन्ति, तद्यथा—ऊष्मा पचति, वायुरपकर्षति, क्लेदः शैथिल्यमापादयति, स्नेहो मार्दवं जनयति, कालः पर्य्याप्तिमभिनिर्वर्त्तयति, समयोगस्त्वेषां परिणामधातुसाम्यकरः सम्पद्यते इति।" तथापि पचनहेतुरेवोष्मा मुख्यतमः परिणामे। स्वस्थानेषु विजातीयद्रव्यप्रवेशनशक्तिः, प्रविष्टस्य निःसारणशक्तिः, स्वोपादानेषु प्रतिकूलभागपृथक्करणपूर्वकस्वानुकूलभागस्य स्वरूपेण परिणमनशक्तिः, सर्वमेतत्तत्तदग्निशब्दवाच्यम्। तमेवाभिप्रेत्य भगवान् पुनर्वसुरेवमभिष्टौति ग्रहणीचिकित्सिते—

आयुर्वर्णो बलंस्वास्थ्यमुत्साहोपचयौ प्रभा।
ओजस्तेजोऽग्नयः प्राणाश्चोक्ता देहाग्निहेतुकाः॥
शान्तेऽग्नौ म्रियते युक्ते चिरं जीवत्यनामयः।
रोगी स्याद्विकृते मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते॥ इति

स च शारीरोग्निर्दलभेदेन चतुर्विधो भवति तीक्ष्णो, मन्दः, समो, विषम, इति। तत्र तीक्ष्णोऽग्निः सर्वापचारसहः। यश्च स्वल्पमप्यपचारं न सहते स मन्दः। समश्च खल्वपचारतो विकृतिमापद्यते, अनपचारतस्तु प्रकृताववतिष्ठते। कदाचिदपचारादपि न विक्रियते, कदाचिद्विक्रियते स विषम इति। समाग्निलक्षणे च सम्यग्विपाकरूपं लक्षणं विहाय यदन्यत् क्रियते, तेनैवं विज्ञायते यत्समेनापि नैकाकारः पाक इति। बाह्येनापि च ज्वालाङ्गारात्मकेनाग्निना नैकाकारः सर्वदा पाको भवति। किमुतान्तराश्रयेणोष्मात्मना समेनापि तस्मात्तं प्रयत्नतो रक्षेत्, इति शिराविभागशरीरे वाग्भटः।

तेषु चतुर्षु प्रतीकारसौष्ठवे इदं सुश्रुतवाक्यमनुस्मरणीयम् "तत्र समे परिरक्षणं कुर्वीत, विषमे स्निग्धाम्ललवणैःक्रियाविशेषैः प्रतिकुर्व्वीत, तीक्ष्णे मधुरस्निग्धशीतैर्विरेचनैश्च, एवमेवात्यग्नौ विशेषेण माहिषैश्च क्षीरदधिसर्पिर्भिः, मन्दे कटुतिक्तकषायैर्वमनैश्च इति। विविधैर्व्यायामयोगैश्च"त्यष्टाङ्गसंग्रहः। तथा सर्वेषां भौतिकाग्नीनां धात्वग्नीनां चायमेव योगक्षेमहेतुर्भवति। तथा च सर्वशरीरपोषणशोषणेऽप्येक एवाधिकृतः। सचायं विशेषतोऽनुपालनीयो हितोपचारेणेति सर्वतन्त्रसिद्धान्तः। तथा च चरके ग्रहणीचिकित्सिते।

अन्नस्य पक्ता सर्वेषां पक्तृणामधिपो मतः।
तन्मूलास्ते हि तद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मकाः॥
तस्मात्तं विधिवद्युक्तैरन्नपानेन्धनैर्हितैः।
पालयेत्प्रयतस्तस्य स्थितौ ह्यायुर्बलस्थितिः॥ इति।

सचायमग्निर्व्याधिभेषजयोर्निर्धारणेऽप्युपयुज्यते। यथा राजयक्ष्मणि धातूनां क्षयो धात्वग्नीनां मान्द्यात्तथा बहुमूत्ररोगे भस्मके च धातूनां क्षयोऽग्नेस्तैक्ष्ण्यादिति स्पष्टमेवाग्निनिघ्नोऽयं विशेषस्तत्समीक्षयैव ज्ञातव्य इति। तथा च राजयक्ष्मणि चरकः—

स्रोतसां सन्निरोधाच्च रक्तादीनां च संक्षयात् ।
धातूष्मणां चापचयाद्राजयक्ष्मा प्रवर्तते ॥ इति ।

तथा भेषजमात्राया निर्धारणे चायमेव मुख्यस्तदधीनत्वाद्भेषजपाकस्य । तथा च वाक्यम्—

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः ।
व्याधिं द्रव्यं च कोष्ठं च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥

तथान्यदपि भेषजनिर्धारणोदाहरणम्—

रूक्षवह्ननिलक्रूरकोष्ठव्यायामशीलिनाम् ।
दीप्ताग्नीनां च भैषज्यमविरेच्यैव जीर्यति ॥
तेभ्यो बस्तिं पुरा दत्त्वा पश्चाद्द्याद्विरेचनम् ।
रूक्षाशनाः कर्मनित्या ये नरा दीप्तपावकाः ॥
तेषां दोषाः क्षयं यान्ति कर्मवातातपाग्निभिः ।
विरुद्धाध्यशनाजीर्णाद् दोषानपि हरन्ति ते ॥
स्नेह्यास्ते मारुताद्रक्ष्या नाव्याधौ तान् विरेचयेत् । इत्यादि ।

अथ प्रकृतिः । सा द्विविधा दोषमयी गुणमयी च । तत्र दोषमयी सप्तधा, गुणमयी च त्रिविधा सती पञ्चदशविधा । सा तु मानसी सत्त्वभेदरूपा सुश्रुतशारीरे लक्षितलक्षणा । या च दोषमयी शारीरप्रकरणे चिकित्साकर्मसु च सैवोपयुक्ता । सा च

'शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टागर्भाशयर्तुषु ।
यः स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सप्तधोदिता ॥

इत्युक्तरूपा । सा च रोगभेषजनिर्द्धारणे उपयुज्यते, "तद्दोषः प्रकृतिर्भवेत्" इत्यनेन साध्यत्वं रोगस्य । तथा—

कालदूष्यप्रकृतिभिर्दोषस्तुल्यो हि सन्ततम् ।
निष्प्रत्यनीकं कुरुते तस्माज्ज्ञेयः सुदुःसहः ॥

इत्यनेन च सन्ततज्वरस्य स्वरूपविशेषो निर्धार्यते । एवमन्यदप्यूह्यम् । तथा दुश्छर्दनस्य संवृतकोष्ठस्य च प्रयुक्ते वमने अतिमात्रप्रवाहनाद्दोषाः समुत्क्लिष्टा ह्यन्तःकोष्ठे विसर्पन्तो जनयन्ति स्तम्भं जाड्यं मरणं वा, इत्यादि व्यापद्दर्शनादन्यदेव भेषजं तयोर्निर्धार्यते । एवमेव वयःसत्त्वसात्म्याहाराणामपि रोगभेषजनिर्द्धारणद्वारा चिकित्साया-मुपयोगित्वं विदितमेव विदितचिकित्सारहस्यानां सदस्यानामिति न कालमधिकं क्षपयामि दुःश्रवालपार्थानलपजल्पनश्रवणसमुद्विग्नमानसानां भवताम् । केवलं महामतिना संग्रह-चतुरेण श्रीवाग्भटाचार्येण निबद्धं पद्यद्वयं चिकित्साकाले समालोचनीयमित्यनुरुणध्मि महाभागान् । तच्च ।

दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः ।
सत्त्वं सात्म्यं तथाहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः ॥ १ ॥

सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषधनिरूपणे ।
यो वर्त्तते चिकित्सायां न स स्खलति जातुचित् ॥ २ ॥ इति ।

सोऽयमेतादृशीमुन्नतेः परां काष्ठामारूढो, दिव्यदर्शनैरमितज्ञानविज्ञानैरानृशंस्यपरैः पूर्वैः पूर्वतरैर्महर्षिभिर्लोकानुजिघृक्षुभिः स्वीकृत्य महान्तमायासं यतमानैरुल्लासितः, अस्माकं दुर्दैवदोषात् प्रज्ञापराधाद्वा कालवशाद्वा राजानुग्रहाश्रयसापत्नभावाद्वा क्रमेण क्षीयमाणनवनवाविष्कारधातुर्विकलाङ्गः प्रायः सर्वाङ्गबाधाबहुलो जराजीर्ण इव निष्प्रभः केवलं स्वीयेन स्वाभाविकबलेनावष्टभ्यमानः कालजयुक्तिकृतबलोपबृंहणप्रत्याशः रक्षाभारनियुक्तानामलसवराणां शारीरज्ञानविरहादचक्षुषामिव चिकित्सापथे भ्राम्यतां पदे पदे स्खलतां चास्माकं सिद्धभेषजकरावलम्बं दयावशोऽधुनापि दददुपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यराववदिति सदाचारं स्मारयन् विपदि प्रत्युपकाराशया कृतज्ञतायै आश्रयमददतामस्माकमुद्योगं प्रतीक्षमाणः क्षणं क्षणं गणयति क्षमाक्षेमाभिलाषी आयुर्वेदपुरुषो नाम।

अष्टाङ्गस्याप्यस्यैकमप्यङ्गमनालोचयद्भिः स्वीयं नियोगभारमगणयद्भिरस्माभिरज्ञानदुरन्धकारेऽमुं प्रक्षिपद्भिर्निष्कलङ्केऽस्मिन् पूर्णज्ञानराशौ अपूर्णोऽयमकिञ्चित्करोऽयमित्यादिकलङ्कराशेरारोपकारणतामाश्रयद्भिः किं न बहु प्रत्युपकृतम् ।

सप्तभिरस्याङ्गैरज्ञानान्धकारेऽधुना विलीनम्, केवलमेकमेव कायचिकित्साख्यमङ्गं बहुषु तदुपाङ्गेष्वपि स्वकर्मायोगजातजाड्येषु अनन्यसाधारणं कर्मातिशयं प्रदर्शयन् स्वस्य सर्वाङ्गोपाङ्गपूर्णस्यानुमापयति प्रभावातिशयम् ।

एवं चास्याङ्गप्रत्यङ्गानां तिरोभावरूपो महता कालेन परिवर्धमानोऽयमज्ञानान्धकारमलीमसं वैद्यानां मानसमाश्रयं कुर्वन् कर्त्तव्यज्ञानविज्ञानं प्रणाशयन् शारीरज्ञानमपि मुष्णन् मोहमयस्तामसो व्याधिराक्रामति स्म भारतीयवैद्यान् स्वव्याधिनिग्रहे क्षीणविक्रमान् क्रमेण ।

सोऽयं व्याधिः सप्तविधेषु व्याधिषु कालजो नाम यो हि कालव्यापादतो जायतेऽपरिरक्षणतश्च । तत्र कालव्यापादो भारतेतिहासविज्ञतमैः सर्वैरेव नापरिचितः पूर्वैस्सभापतिभिः स्पष्टमुपपादितश्च । अपरिरक्षणं चास्माभिरनुष्ठितमनुभूयत एव प्रतिपदम् । न प्राचीनानां कुत्रापि संहितानां दर्शनम्, न च शस्त्रयन्त्राणां प्रतिकृतयो लभ्यन्ते, न च भेषजानां नामरूपगुणानां युक्तेश्च परिचयो वैद्यानां कांश्चिन् महापुरुषान् विहाय । कुत्रान्तर्भूतः स विस्मयावहो धातुवादो रसायनशास्त्रे डिण्डिमघोषं घोष्यमाणः । क्व तिरोभूता रसशास्त्रेषु निपुणं वर्णिताश्चारणजारणसारणक्रामणप्रभृतिसंस्कारप्रक्रियाः । क्व सा मूर्च्छना या 'अव्यभिचरितव्याधिघातकत्वं मूर्च्छना' इति लक्षणेन लक्षिता । क्व तन्मूर्तिबद्धत्वं पारदस्य यद्धि 'बद्धः साक्षात्सदाशिव' इति स्तूयते स्वाभाविकद्रवत्वे सति वह्निना अनुच्छिद्यमानत्वमिति लक्षणेन च लक्ष्यते । क्वासा खेचरीगुटिका । क्व तदरिष्टविज्ञानं यत्प्रभावात्पूर्वतनै र्वैद्यैः संवत्सरान्मासषट्कात्पूर्वमेवायुःक्षयपरिमाणं विज्ञायते स्म, एवमादीनि बहूनि कर्माणि पूर्वेषां यानि रक्षणार्थमस्मासु न्यासीकृतानि, लेखशेषतां

नीतानि, तानि चान्यैरयतमानैस्तादृशीमुन्नतिमनारूढैर्विज्ञानिभिरसत्यान्येतानीत्युपहस्यन्ते। एतेषां नामशेषतानयने वैदेशिककृतास्मत्पूर्वपुरुषोपहासे च वयमेव कारणमेतद्रक्षायां प्रमादवन्तः, न त्वन्यत्। किञ्चिद्दैवादिकम्। तथा च मुनिः—

प्रज्ञापराधात्सम्भूते व्याधौ कर्मज आत्मनः।
नाभिशंसेद् बुधो देवान्न पितॄन्नापि राक्षसान्॥ इति

एतद्व्याधिपराभूताश्च वयं राजभी राजमात्रैश्चान्यैश्च तथाविधै र्वैदेशिकभावाक्रान्तमानसै राजसभासु धिक्क्रियामहे गोष्ठीषूपहस्यामहे चिकित्साकर्मसु च संत्यज्यामहे। अद्यत्वेऽपि च यद्बहुभिराद्रियामहे चिकित्साकर्मसु च संगृह्यामहे तत्र परम्परागतास्मत्पूर्वपुरुषकृतानेकोपकारकृतज्ञतापारवश्यमेव कारणं नास्मत्कृतिरिति। अस्मत्पूर्वपुरुषाणां चामलं चरमसीमानमधिरूढं विज्ञानमित्यद्यत्वेऽपि निष्पक्षपातैरधिगततदेकदेशज्ञानलेशैर्विद्वत्प्रकाण्डै र्वैदेशिकैः सुस्पष्टमनुमन्यते इति कृतमात्मधिक्कृतिवचनेन। कालक्रमेण सौभाग्यवशाद् बृटिशराज्यायत्ते भारते विद्यैव प्रशस्यं धनं विद्यैवामोघमस्त्रं विद्यैव सकलार्थसाधनमिति मनोनिविष्टाकूतैराङ्गलमहापुरुषैः पुनरप्यत्र समारभ्यमाणे विद्याप्रचारे ग्रन्थमुद्रणप्रकारे तदुदितभावप्रसारे च समुदितो यूरोपीयविज्ञानभास्करः। प्रसरति चैतद् भास्करप्रकाशे वयमपि सत्त्वोद्रेकादपकृष्टतमोभागाः कालप्रभावादपनीतमोहाशाः किञ्चिदुन्मिषितप्रज्ञालोचना अपश्याम विचित्राणि विविधाकृतीनि समुज्ज्वलक्षुराणि शस्त्राणि, यन्त्राणि, शारीराकृतिप्रतिरूपकाणि, काचकूपीसमुद्दीपितानि भेषजानि, चाकचक्यसमुल्लसितानि तत्तदुपकरणानि विदेशीयविचित्राडम्बरपूर्णानि चानलसैर्लघुहस्तैर्मूर्तिमद्भिरिव पाटवैर्डाक्तरै र्द्रागेव विधीयमानानि दुष्कराणि कर्माणि। तच्चाकचक्यपराभूतैरदृष्टपूर्वविशिष्टकर्मदर्शनविस्मितैरस्मन्मनोभिरप्यायुर्वेदनामस्मरणमकारि। तत्प्रभावादस्मासु कैश्चिन्महापुरुषैरायुर्वेदसमुन्मेषितमतिभिः प्रत्यभिज्ञायन्ते स्म तानि तानि सर्वाणि विदेशीयाडम्बरवेषभावभाषाभिराच्छादितानि अन्यानीव भासमानानि वस्तुतस्त्वात्मीयान्येवास्मत्कृतोपेक्षया रुष्टानीव।

अथ प्राप्ते चानुरूपे समुपचितविविधोपकरणे प्रकाशितजातसौलभ्यानेकपुराणग्रन्थे प्रतिष्ठाप्यमाणसंस्कृतविद्यालये काले लोकानुग्रहप्रवृत्तस्य सकलपुरुषार्थसाधकस्य निखिलबाधाबाधकस्य देशसमुन्नतिकारणस्य स्वास्थ्यविघातकवारणस्य पराभूतनिखिलखेदस्य भगवत आयुर्वेदस्य सकलान्यप्यङ्गोपाङ्गानि पुनराविष्कर्तुमुद्धर्तुं संस्कर्तुं प्रकाशयितुं प्रचारयितुं लेभे जन्म वैद्यसम्मेलनं नाम।

मान्याः! सभ्यमहाभागाः! आयुर्वेदप्रचारार्थमवतीर्णः सोऽयं संमेलनब्रह्मचारी आत्मन उद्देश्यानां परिपूर्तये नानादिग्देशान् पर्यन्विष्यन्, नासिकप्रयागमथुरादितीर्थप्रायाणि पर्यटन् स्थानानि, परिपूतमतिरिदानीमायुर्वेदमहापीठं कलिकातामहानगरीं प्राप्तवानस्ति। एतावत्कालं नानाप्रदेशेष्वधितिष्ठतः परिभ्रमणपरिपुष्टसर्वावयवस्यास्य यद्यपि संजाता साधीयसी स्थितिस्तथापि नाद्यावधि यथाभिलषितमुद्देश्यानामापूरणसौ-

फर्यमुपलब्धमनेन। नाविदितमिदं सर्वेषामपि संमान्यानां वैद्यबन्धूनां यदारभ्यमाणं किञ्चिदपि कार्यमनुकूलं कालमनुरूपं च देशमासाद्य फलाभिमुखीमधिगच्छति दशामिति। एतदनुसारमेव वृटिशसाम्राज्यसुभगे विद्याप्रद्योतभासुरे नानाविज्ञानरसमये समये लब्धजन्मा सोऽयमस्माकं संमेलनसमारम्भः सम्प्रति भागधेयवैभवादनुकूलतमं देशमप्यधिगतवानस्ति तथा चास्य फलाभिमुखी स्थितिरप्यवश्यंभाविनीति कस्य वा सचेतसश्चेतसि नोदेति।

आयुर्वेदोद्देश्यानां सफलतायाः पक्षे कथमेतस्य देशस्यानुकूलतेत्ययं विषयो मन्ये नाधिकेन विस्तरेण सभासदमहाभागानामग्रे वर्णनीयो भवेत्। निखिलेऽपि भारतवर्षे आयुर्वेदप्रचारस्यानुकूलं सर्वोत्कृष्टं क्षेत्रं यदि किञ्चिदस्ति तर्हि तद्वङ्गदेशमौलिमुकुटायमानां कालिकातानगरीं विहाय नान्यत् किञ्चित्। वर्तमानेऽस्मिन् समये भारतवर्षस्यास्य सर्वेष्वेव प्रान्तेषु श्रीमदायुर्वेदस्योन्नतेर्गीतानि श्रूयन्ते नाम। परं यस्मिन् समयेऽस्मासु न्यासीभूतस्यास्यायुर्वेदमहानिधेः संरक्षणे प्रचारणे च समग्रमपि भारतवर्षं गहननिद्राभिभूतमिव पश्चात्पदमिव कातरमिवासीत्तस्मिन्नपि दुर्वाञ्छनीये समये महोन्नतमिदं कालिकातानगरमायुर्वेदोद्देश्यप्रचारे जागरूकमासीत्। आर्षानाकरग्रन्थान् विहाय यावन्ति खलु वैद्यविद्यायाः पुस्तकानि गीर्वाणभाषायामुपलभ्यन्ते तेषु प्रायशो बहुतराण्येव वङ्गदेशवास्तव्यानां विदुषां प्रतिभाविजृम्भितम्। यस्मिन् खलु प्रान्ते स्वल्पोऽप्याङ्गलचिकित्सायाः प्रचारोऽवलोक्यते तत्रत्या जनाः प्रायो वैदेशिकचिकित्साप्रणाल्या एव प्रशंसागीतिं गायन्तो दृश्यन्ते। परं ये खलु वङ्गा आङ्गलविद्यानां निरन्तरलास्यभूमयः, नवीनवस्तुविज्ञानस्य (साइन्स) साक्षात् केन्द्रस्थलम्, वैदेशिचिकित्सासरणेः पथप्रदर्शकाः, तेष्वेव वङ्गेषु भारतवर्षजीवितस्थानीयस्यायुर्वेदस्य प्रचारणसदृशं कठिनकार्यं यदि केनापि कृतं तर्हि कालिकातानगरेणैव। वैदेशिकचिकित्सापथे महारथानां डाक्तराणां किमु कलिकातानगरे नास्ति सर्वतोमुखं प्राधान्यम्? सत्यप्येवं तदेवायुर्वेदीयचिकित्साया विजयडिण्डिमं घोषयत् भारतवर्षमौलिमाणिक्यं श्रीमत्कलिकातानगरं किमु प्राचीनविद्याप्रणयिनामार्याणां नानेकानेकधन्यवादभाजनम्? कालिकातानगरभूषणभूता अनेके कविराजा नानाविधैर्नूतनसाधनैरुन्नतेः परां काष्ठामधिरूढाया वैदेशिकचिकित्सायाः प्रतिस्पर्धिनीं सनातनायुर्वेदावलम्बिनीं चिकित्सां प्रचारयन्ति नाम। किमधिकं बहुतरेषु रोगेषु वैदेशिकचिकित्सातोपि विशिष्टप्रभावशालिनी सैषामीषां चिकित्सा प्रमाणिता भवति। यद्दुर्लभा ओषधीरित एव स्थानादुपलभ्यन्ते भारतस्यान्यप्रान्तवासिनो वैद्याः। अत्रत्यैरेव निर्मितानि बहुतराणि सिद्धभेषजान्यादाय भूयांसः खलु वैद्यमहाभागाः कृतिनो भवन्ति। प्राचीनसरणिमनुसृत्य सुश्रुतसंहिताया भाष्यं कर्तुं शक्नुवानाः श्रीहाराणचन्द्रमहानुभावाः, परमविद्वांसः श्रीश्यामादासकविराजमहाभागाश्चेदमेव कलिकातानगरंसंलङ्कुर्वन्त्यात्मनिवासेन। प्रत्यक्षशारीरं नाम शारीरविषयसर्वकषं महापुस्तक-

मस्मादेव नगराज्जन्म लेभे, यस्य खलु कविराजश्रीगणनाथसेन एम० ए० महाभागा रचयितारः । अवश्यमिदं पुस्तकमायुर्वेदीयशारीरज्ञानसंदर्भे नवीनां घटनामुपस्थापयति । अस्माकं चरकसुश्रुतयोः सूत्ररूपेण प्रदर्शितानां, वैदेशिकैर्नवीनसाधनैर्बहुतरं विस्तारितानां, अनुवीक्षणादियन्त्रैः प्रत्यक्षीकृतानां, प्रयोगसहस्रैरसन्दिग्धीकृतानां शारीरविषयाणां संस्कृतभाषासाहित्ये सांप्रतमेकमात्रमिदं प्रकाशकमिति निर्विचिकित्सं ब्रवीमि । न खल्वग्रेऽपि तदिदमेकमात्रव्यपदेशार्हं भविष्यति । अन्येऽपि महाभागा एतेनादर्शेन वैदेशिकैरुपबृंहितान् विषयान् गीर्वाणभाषायामवतारयेयुरिति बलवद्विश्वसिमि । अवश्यमेतन्निर्माता सर्वेषामप्यायुर्वेदप्रणयिनां धन्यवादभाजनम् । अस्तु आयुर्वेदीयचिकित्सायां सिद्धहस्तानां स्वनामधन्यकविराजश्रीयोगीन्द्रनाथसेन विद्याभूषण एम० ए० महाभागानामियमेव जन्मदात्री भूमिः, सर्वतः प्रथमं राजसंमानसूचकं वैद्यरत्नविरुदं समलङ्कृतवद्भिर्यैः साम्प्रतं सुमहताध्यवसायेन वैद्यागममहानिघेश्वरकस्य प्रकृतविषयसर्वकषा प्रस्तूयते व्याख्या, येषां खलु स्वागतकारिण्याः समितेः सभापतिरूपेण सभासदमहाभागैः साम्प्रतमेव परिचयः समभूत् । किं बहुना, अत्रत्या एव मान्याः कविराजमहाभागा भारतवर्षशासनाधिकृतेभ्यः परमप्रतिष्ठाभाजनं महामहोपाध्यायविरुदमुपलभ्य भारतवासिनामखिलानामपि वैद्यानां मुखमुज्ज्वलमकार्षुः, येन सर्वेऽप्यायुर्वेदप्रणयिनोऽद्य नितरामुन्नतं शिरो दधते । केवलमेकयैवानया वार्तया सर्वस्यास्य सारं वर्णयामो यदायुर्वेदोद्देश्यानां सफलतोपलम्भाय यानि यानि साधनान्यत्र सन्ति तानि तानि नान्यत्र भारतप्रान्ते विलोक्येरन्, यानि न सन्त्यत्र तान्यन्यत्रापि कठिनमेवोपलभ्येरन्निति । अस्तु, एवंविधैर्बहुभिः कारणैरुपश्लोक्यं तदेवेदं कलिकातानगरमस्माकमिदं संमेलनमधिवसति । अस्मिन् कर्मक्षेत्रे सम्मिलितैरस्माभिः संमेलनस्योद्देश्यानां परिपूर्तये निकामं प्रयतनीयम् । संस्कृतषड्दर्शन्याः पक्षे यथा वाराणसी विद्यामहापीठः परिगण्यते तथायुर्वेदस्य कृते नगरमिदम् । अस्मिन् स्थाने समागतस्य संमेलनस्य सफलतायाः कृते भूयसी तावत् प्रत्याशा । एतावत्कालं नानाप्रदेशेष्ववधारितान्युद्देश्यान्यत्र भूयस्त्वंशेषु सफलानि भवेयुरिति सुदृढमिदं हृदये विश्वसिमि । प्रियतमाः सभ्यमहोदयाः भूयानस्माकं कालो विचारयतामेव व्यतीतः । नाधुना विचारैरेव केवलं समयक्षेपस्यावसरः । आयुर्वेदविद्यायाः स्वाध्यायस्य संभ्रातो वहोः कालात्पूर्वमेवारम्भ अधुना अनुष्ठानयज्ञः सुदृढं प्रारभ्यताम् । अनुष्ठानमन्तरा कश्चिदपि समारंभो न फलेग्रहिर्भवति । कर्ममयेऽस्मिन् जीवनसंग्रामे सर्वा अपि जातयः स्वस्वानुरूपमुपकरणमादाय पश्यतः सन्त्यग्रेसराः । सावधाना भवत, न वयं वारं वारं सर्वासां पृष्ठदर्शिनो भूत्वा आत्मबलस्यावमाननां कुर्यामः । सभाजनीयाः समासदमहाभागाः ! अवहितं शृणुत, अस्माकं विजययात्रायाः श्रूयते गंभीरघोषवर्षरानुनादी भेरीध्वनिः । साम्प्रतं वीरोचितेन विक्रमेणास्माभिः कार्यक्षेत्रेऽवतरणीयम् । विचारयत, कैः कैर्वा कार्यैरारभ्यमाणैः संमेलनस्यास्माकं सफलता संभवेत्, आत्ममते विक्रमस्य सोऽयमेव सौवर्णः समयः ।

अहमात्मनः स्वल्पया बुद्ध्या निम्ननिर्दिश्यमानानि कार्याणि अनुष्ठानायोपस्थापयामि।

अस्माकं प्रयत्नातिशयमपेक्षमाणस्य श्रीमतः संमेलनस्य प्रधानमिदमेव प्रयोजनं यदायुर्वेदः पुनरुन्नतेः सिंहासनमधिकुर्यात्। पर्यन्ततो विचारे आयुर्वेदस्य प्रधानं प्रयोजनं शारीराणां धातूनां साम्यसंपादनमेव, तदनुकूला क्रियैव च चिकित्साशब्देन व्यवह्रियते। चिकित्साकर्मणश्च—वैद्यः, औषधम्, परिचारकः, रोगी चेति चत्वारः पादाः। एषु वैद्यश्च भेषजञ्चेति प्रधानतया परिगणनीयं नाम। परं कालमाहात्म्याद्वर्त्तमाने समये प्रधानयोरनयोरेव महती दुरवस्थाऽवलोक्यते। अद्यत्वे स्वतन्त्रं व्यापारमन्विष्यन्त इव धनसंग्रहस्य सुलभोऽयं मार्ग इति बहवोऽपि भारतीयाः केवलमर्थाधिगम एव साभिलाषदृशो वैद्यकं कर्तुमग्रेसरा भवन्ति। अस्मिन् कर्मणि कियतो वैद्यकशास्त्रज्ञानस्यावश्यकता, कियतो वा भेषजप्रयोगपाटवस्यापेक्षा, कियतश्चाध्यवसायस्याकाङ्क्षेति सर्वमेतदविविच्यैव यत्किञ्चिच्छ्रुतं परिज्ञातं चौषधं प्रयुञ्जानाः धनागमस्य घटिकां गणयन्त इव तिष्ठन्त्येते। भाग्यवशाद्यदि रोगी व्याधिसरितमुत्तरति तदान्येषां लोकानां कृतेऽधःपातस्य मार्गः पुनः परिष्कृतो भवति, एवमेतादृशा महात्मानो महादायित्वपूर्णस्य वैद्यपदस्यावहेलनां कुर्वन्तो देशीयचिकित्साभिरुचेः पन्थानमवरुन्धन्तीव। अतः सर्वतः प्रथमं प्रधानभूतस्य वैद्याख्यपादस्यैव संस्कारस्यावश्यकता। आवश्यकमेतद्, यद् वैद्यः सम्यगायुर्वेदज्ञानसंपन्नः कर्मदर्शनसंप्राप्तपाटवः पुनः पुनरेतदभ्यासशाली प्रायशश्च व्याधीनां प्रशमको भवेदिति। एतदतिरिक्त-वैद्यकशास्त्रमूलक ऊहापोहः (वितर्कः), वैद्यकेतरशास्त्रज्ञानम्, मेधा, व्याधिचिकित्सायां तत्परत्वं चेत्यादयोऽपि वैद्ये आवश्यका गुणाः। यस्य खलु हस्ते प्राणिनां जीवनमरणयोः सूत्रं सुदृढं संलग्नमस्ति तस्मिन्नेतेषां गुणानां सद्भावो न विशेषप्रमाणसापेक्षः। अतः खलु योग्यानां वैद्यानां निष्पादनाय आयुर्वेदीयविद्यालयानां स्थापनं परमावश्यकम्। ते च भारतस्य सर्वेषु प्रान्तेषु सर्वेषु च नगरेषु आयुर्वेदीयशिक्षागौरवमुद्घोषयन्तो भवेयुः। एषु शास्त्रानुकूललक्षणलक्षिताः सद्वैद्याः कर्तव्यज्ञानं स्मरन्तः शिक्षयेयुरायुर्वेदीयविषयान्, एतेषां च सर्वेषामपि विद्यालयानां पाठ्यप्रणाली एकरूपैव भवेदिति महदुचितम्। दृश्यते संप्रति भारतस्य येषु येषु नगरेषु वैद्यकविद्यालयाः सन्ति तेषां पाठ्यप्रणाली बहुष्वंशेषु परस्परं भिन्ना। एतत्प्रतिबन्धकमुन्नतेर्वैद्यकविद्यायाः। अतः संम्मेलनेऽस्मिन् समवेताः सर्वेऽपि विचक्षणा विद्वांसः पाठ्यप्रणाल्याः प्रश्नं मीमांसेरन्। अस्तु, प्रान्तीयानामेतेषां विद्यालयानां च सूत्रमेकस्मिन् प्रधाने विश्वविद्यालये संम्बद्धं भवेत्, विश्वविद्यालयश्चायं भारतस्य सर्वेष्वपि प्रान्तीयविद्यालयेषु प्रदत्तपरीक्षाणां छात्राणां योग्यतानुसारमेकाकारामेव च पदवीं प्रदद्यात्। वैद्यकशास्त्रं हि शास्त्रान्तराणीव न केवलं मौखिकमेव विज्ञानं प्रयोजयति। अस्मिन् हि शास्त्रे भूयसः खलु सम्प्रयोगस्यावश्यकता। अत एतेषु विद्यालयेषु प्रयोगशालाऽपि स्थापनीयाः। एताभिः सहकृतो वनौषधिभौमौषधिसंग्रहालयोऽपि परमपेक्ष्यते। दृश्यते संप्रति वैद्यके विद्वांसोऽपि बहवो बह्वीर्वनौषधीर्न यथावत् परिचेतुं पारयन्तीति।

अत एवंविधेषु विद्यालयेषु वनौषधीनां परिचयं प्राप्नुवन्तः शिक्षार्थिनस्तत्संप्रयोगरीतौ शिक्षेरन्निति नियम्येत। एतत्कार्यसंपादनाय भारतीया नरपतयोऽपि साहाय्यार्थमर्थनीयाः। एतेषु विद्यालयेषु प्राप्तपर्याप्तविद्या वैद्याः प्राणिनां प्राणाभिसरपदं स्पृशेयुरिति सर्वेऽपि सभ्या मन्ये संमन्येरन्।

एतदनन्तरं द्वितीयस्य भेषजपादस्यावस्थाविचारणीया भवति। वर्तमाने समये भेषजस्यापि महती दुर्दशा। आयुर्वेदप्रोक्ता बह्व्यः खलु वनौषधयो नोपलभ्यन्ते। उपलभ्यमाना अप्येता न वयं यथावत्परिचेतुं शक्नुमः। पण्यसारको (पनसारी) यादृशीः शुद्धा मिश्रा वा नवाः पुरातनीर्वा वास्तविक्यः कल्पिता वा वातातपवर्षपरिक्लिष्टाः प्रददाति गत्यन्तराभावाद्वयं ता एव गृह्णीमः। अतः खल्वेतदवश्यं कर्त्तव्यमापतितं यद् येषु येषु देशेषु या या ओषधय उपलभ्यन्ते तत्र तत्रैवंविधानि प्रमाणिकस्थानानि परिकल्पनीयानि, येभ्यो देशान्तरीयवैद्या आवश्यकतानुसारमोषधीरुपलभेरन्। भेषजवाटिकानां च निर्माणं तेषु तेषु देशेषु परमावश्यकं येषु येषु तानि बहुलमुपलभ्यन्ते।

एवं सिद्धौषधानामपि कृते प्रसिद्धनगरेषु प्राप्तिस्थानानि स्थापनीयानि, येषु सर्वाण्यायुर्वेदप्रसिद्धानि सिद्धौषधान्युपलभ्येरन् सर्वसमये। एतेषां च निर्माणरीतिरप्येकरूपैव संभवेदत्रापि प्रयतनीयं तावत् संप्रति देशे देशे प्रायः समुपलभ्यते निर्माणरीतौ भेदः, तेन च भवत्यसौकर्यं शिक्षमाणानां वैषम्यं च फलस्येति निर्माणरीतिरपि नियन्तव्याऽस्माभिः। सिद्धौषधानां सर्वत्र प्राप्तिसौकर्यस्य सांप्रतं संजातावश्यकता। न हि वर्तमाने समये यः खलु चिकित्सते स एव सौकर्य्येण तदैव सर्वाणि सिद्धौषधान्यपि निर्मातुं प्रभवति। भिषजामसौकर्यं विभाव्य प्राचीनैर्महर्षिभिश्चिकित्साकर्मणोऽष्टौ विभागाः परिकल्पिता आसन्। सांप्रतमियमप्यावश्यकता संजाता यत् चिकित्सायाश्च भैषज्यनिर्माणस्य चापि विभागो भवेदिति।

परिशुष्यतो वैद्यकतरोः पुनरभ्युदयाय प्ररोहाय च बहव उपायाः कर्त्तव्या निश्चेतव्याश्च, तेषु सर्वेषु प्रथमोपि गणनाक्रमेण तृतीयो राज्ञः प्रजानां चोभयोः सौमनस्यं सहकारिता च। न हि केवलं राजसाहाय्येन प्रजाभिस्तिरस्कृताः सिद्ध्यन्त्यर्थाः। नापि राजविरोधे सति प्रजानां प्रतीपयत्नैः किमपि संपाद्यते। भवत्वेवं यद्राजप्रसादेनाश्वास्यमानं विधिं प्रजाः सानुरागमुत्तेजयन्ति। प्रजाभिश्च सबहुमानं पोष्यमाणां कृतिं राजानोऽनुगृह्णन्ति। उचितमेवोक्तं श्रीमता भगवता व्यासेन—

राजा प्रजानां प्रथमं शरीरं प्रजाश्च राज्ञोऽप्रतिमं शरीरम्।
राज्ञा विहीना न भवन्ति देशा देशैर्विहीना न नृपा भवन्ति॥

उदारनीतिपटीयसां घोषितस्नेहानुभूतिपटहानां वर्तमानभारतराजानामायुर्वेदोदये कर्तव्यस्य न केवलं वैद्यरत्नोपाधिना प्रसिद्धभिषजां स्थापने पर्यवसानं भवितुमर्हति। वयं बह्वधिकमाशास्महे—वारं वारं प्रार्थनया स्वीयनिवेदनौचित्यविश्वासनेन स्वीयाभिश्च कृतिभिरनुमोदनसाहाय्याकर्षणक्षमाभिः कालेन राज्ञो बहुमूल्यां महाफलां च

सहयोगितां प्राप्नुयाम। वयमाशास्महे—यत्पाश्चात्यारोग्यदर्शनस्येव प्राच्यायुर्वेदस्य शिक्षार्थे पाठशालाः परीक्षा उपाधयश्च निर्द्धार्येरन्। वयमाशास्महे य केवलसंस्कृतदेशभाषाभिज्ञेभ्यो वैद्येभ्यो वनस्पतिशारीररसायनादिविज्ञानलाभाय विद्यालयेषु आङ्गलभाषाज्ञाननिगडनमन्तरा प्रवेशः सुलभः संभवेत्। वयमाशास्महे मुद्रणावशिष्टानां संहितादिनिबन्धानां संपादने व्याख्याने प्रचारणे च साहाय्यमुत्तेजनाय लभेमहि। वयमाशास्महे—निर्दिष्टयोग्यताकत्तां प्राप्ता भिषजो दक्षतरा इव प्रामाणिकत्वेन संभाव्येरन् तेषां लेखश्च प्राड्विवाकैरन्यैं राजाधिकरणैश्च विश्वस्तः संमान्येत, न प्रमत्तगीत इवोपेक्ष्येत। वयमाशास्महे—केन्द्रेभ्यो दूरस्थेषु ग्रामेषु यत्र दक्षतरचिकित्साया महार्घ्यायाः प्रवेशो न संभवति तत्र लघुव्यया तुल्यफला सुप्रसारा देशकालानुसारिणी विज्ञानसंस्कृता प्राच्यचिकित्सा प्रचार्येत। एवमादि बहुविधं वयमाशास्महे, परन्तु सत्यागस्माकमेव मन्दादरतायां राज्ञ उपेक्षाया भङ्गो न स्वप्नेऽपि संभाव्यते। न केवलं कर्तृपक्षो "यातयामं विज्ञानविदूरं भ्रमभूयिष्ठमनुवाकहतं भूतप्रेतादिमन्त्रयन्त्रप्रधानं दुष्प्रतिभसेवितं विशाणचर्वणमिव केवलं प्राचीनत्वमात्रादृतमायुर्वेदचिकित्सित" मिति यथाश्रुतज्ञानजन्योपेक्षया पराङ्मुखः, किन्तु समानव्यवसायत्वात् सापत्नभावजातासूयैः पदे पदे प्रत्यक्षमुकुरकरैर्विज्ञानपुष्पितवाग्भिर्दक्षतरैः पूरितकर्णः। यावतीं योग्यतां प्राप्य प्रतिद्वन्द्विनो न मूकीकुर्मो वयं तावदस्माभिः कर्तृपक्षस्य बुद्धिभेदःकर्तुं न सुशकः। अल्पीयानेवकाशो गतोऽस्ति यदा समस्तं वैद्यककर्म दाम्भिकभण्डानां विधिकल्पिता जीविकेत्युपहस्यते स्म, परमद्य डाक्टर हार्नल, डाक्टर राय सिद्धमोहन मित्र प्रमुखानां विदुषां निबन्धैरस्माकमाम्नायस्य प्राचीनत्वं बहुसुफलत्वं विज्ञानमूलकत्वं च निर्विवादं स्वीकुर्वन्ति परगुणेषु न सहसा श्रद्दधाना अपि पाश्चात्यविद्वांसः। भारतचिकित्साजातस्य केवलं ग्रीकोपजीव्यत्वं तु विस्मृतमेव प्राचीनैः सोत्कण्ठमुद्घोषितमपि नवीनैर्गवेषकैः। एवं सत्यपि रूढिमार्गानतिक्रमणं न शोभते राजवर्गीयाणामुदारनीतिपथिकानाम् अद्यापि दुर्निवारोऽयमायुर्वेदस्यानतिफलत्वदुराग्रहः। कथमन्यथा हि भारतवर्षीयोऽपि संस्कृतज्ञोऽपि प्रजापक्षनायकवरोऽपि राजपरिवेषविष्टमात्रः पी. एस. शिवस्वामि ऐयरमहाशयः दुर्विदग्धेषूपेक्षणमपि तादृशो विदुषि असंभाव्यं दृढवाक्यमुदीरयेत्। स हि मद्रासशासकराजप्रतिनिधेः कार्यकर्तृसभामण्डनं केनापि प्रजाप्रतिनिधिना प्रस्तुते वैद्यशालाया अर्थसाहाय्यदाने प्रत्युवाच—यदफलाय विज्ञानाभासायापूर्णाय च शास्त्राय न वयं साहाय्यं दातुं प्रस्तुताः। नेदमपरखण्डितं यातु लोकेष्विति बहुमानपुरःसरं वक्तुरस्य कथनं विचारयामः। यदि तुष्यतु न्यायेन क्षणमात्रं स्वीक्रियतेदं निर्हेतुकं बाधितमुपन्यसनममुष्य तथापि विलक्षणेयं वाचोयुक्तिर्माननीयस्य। न हि नाम दुर्बलौ गृहकार्याक्षमाविति मातापितरावुपवास्येते समर्था भ्रातर एव तर्प्यन्ते। न हि नाम सभ्यतायां पश्चात्पदा इति वनगिरिजातयो दस्युभूयिष्ठाः कालेन मरणायोपसृज्यन्ते, प्रत्युत तेषां कृष्यादिशान्तिमयव्यवहारेष्वनुरागसंपादनाय महान् यत्नः

समारभ्यते वर्तमान भारतराजैः । यद्यायुर्वेद विज्ञानमपूर्णं को नाम राजानमन्तरा तस्य पूर्त्यै यतितुमर्हः । यदि तद् विज्ञानं विज्ञानवद्भाति कस्तत्र राजानं विहाय विज्ञानस्योत्कर्षं कर्तुं समर्थतरः । परन्तु यत्पाश्चात्यविज्ञानं शिवस्वामिमहोदयनयनासेचनकं दृक्तरगीतं राजाश्रयदत्तं दलयति न आयुर्वेदं किं तदपि सौरः कर्ण इव सकवचकुण्डलमुदितं जन्मत एव ? शतत्रयाद् वर्षाणां प्राक् का तस्य दशासीत्, पश्चाशतो वर्षाणां प्राग्वा किं तदपूर्णं नासीत् ?

किञ्च तदर्थे राजपक्षेण न साहाय्यमदीयत ? तत्त्वतस्तु सर्वाण्येव विज्ञानान्यपूर्णानि, यद् यच्च पूर्णतायाः समीपतरमायाति, तत्तद्राजाश्रयेण प्रजावलम्बेन च । अपूर्णमपि देशाननुकूलमपि यत्पाश्चात्यचिकित्सितमद्य स्वप्रकाशेन भारतायुर्वेदमतिशेते तिरयति च तस्य कारणं राजाश्रयो राजपक्षाभिनिवेश एव । परं नात्र किमपि नैराश्याय । सत्यस्माकं बद्धपरिकरत्वे राजोपेक्षां दूरीकर्तुं शक्यमेव । कस्मिन्नप्यर्थे कृतनिश्चयाः प्रजा राजानं रश्मिष्विवादायाकर्षन्ति । राज्ञां कृतकौदासीन्यं च प्रजानां हार्दपरीक्षार्थं भवति । यतो वर्तमानाः सम्राजो नीत्या प्रजानुवर्तिनः । केवलं राजपक्षे स्वौदासीन्यमारोप्य न कुसीदिभिर्भाव्यमस्माभिः । किं राजसाहाय्यमुपेक्ष्यापि नास्माकं वहु करणीयमस्ति ? अप्यस्माभिः स्थापिता अध्यापनशालाः प्रयोगशालाः ? अप्यस्माभिः स्थापितानि वनस्पतिरोहवनानि ? येन वयं कुक्षिम्भरिभिः पण्यसारिभिर्नीयमाना अन्धा इव न मज्जेम । अप्यस्माभिः सम्मेलनेनानेन समारब्धं परस्परमेलनजं सौमनस्यं चरमोन्नतिं नीतम् ? अप्यस्माभिः परस्परानुभवसाहाय्येन साधितश्चिकित्साविधावुत्कर्षः ? अप्यस्माभिर्दक्षतरैराकृष्यमाणा जनता स्वमार्दवेन सौम्यव्यवहारेण निर्लोभतया अनति व्ययत्वेन विद्यातिशयेन चिकित्साचमत्कारेण वशीकृत्य तेभ्यो रक्षिता ? अपि वयमनुकरणपिशाचेनोपदिश्यमानं वहुव्ययत्वं रूक्षत्वमसमवेदित्वमाश्रयन्त आयुर्वेदसिद्धान्तानुयायिनां मूलस्तम्भं सुलभत्वं सौम्यत्वं च नोत्खनामः ? अप्यस्माभिः शारीरविज्ञानमनुशील्य प्रस्तुतेषु तेषु तेषु जटिलविषयेषु स्वीयं स्वसूचित्वं प्रतिहतम् ? एवमादि वहुधा कर्त्तव्येऽस्मिन्संहनने सम्पादिते कर्मणां फलमिव राजप्रसादः कालपक्को नियतमस्मदीयो भविता ।

विज्ञापनशेषश्चायम् । मदीयश्चतुर्थ उपायो नवीनपाश्चात्यविज्ञानाविष्कारसारस्य स्वीकरणं, स्वविज्ञानोन्नत्यै ज्ञानपूर्वकमुपयोगश्च । सर्वाणि प्राचीनार्य्यविज्ञानानि व्यपेतरसानीव स्तब्धानि । यत्र महर्षिभिस्त्यक्तानि तत्रैव पीठे वा गर्त्ते वा सीदन्ति न कालेन पुरः प्रचलन्ति । देशकालप्राणा न तेषु प्रविश्य तान्यनुप्राणयन्ति । केवलमायुर्वेदोऽस्मदीयो जीवति वर्धते च प्रभविष्णुर्वर्द्धिष्णुश्च । नात्र कापि विधिलेखा स्थापयतीयत्तामस्य वृद्धौ । भारते समायातानां विदेशीयानां विज्ञाने यत् सारभूतं तदस्माभिरात्मसात्कारि, काले काले ग्रीकानामायातानां विज्ञानतरोस्माभिर्मन्ये ज्योतिर्षिकैरिव सुविज्ञातः स्वभ्यस्तः स्वस्वशास्त्रकुक्षौ प्रवेशित आत्मीयतां नीतः । आर्वाणां हिकमत् सविवेक-

मस्माभिश्च लुकिता संस्कृता च मूलसिद्धान्तेष्वप्रतिविम्बितापि चिकित्सा प्रयोगे सूपयुक्ता च । अद्यापि बहवः सुगृहीतनामधेया वैद्यास्तां चिकित्सारीतिं स्वीकृतां पालयन्ति । भारते फिरङ्गप्लेगादयो नव नवा बहवो रोगाः कालक्रमेण प्रविष्टास्तथास्मदीयकित्सायां नवोपायसृष्टिः स्वाभाविकी, तथैव च देशान्तरागतक्रमाणां स्वीकरणं जीवितविज्ञानलक्षणम् । जीवन्नेव जन्तुराहारादिविभिन्नं पदार्थजातं पाचनक्रियया रसनिर्म्माणेन वृद्ध्यैश्चात्मसात्करोति । एवं पाश्चात्यचिकित्सायां यो योंऽशः सर्वोपकारी विज्ञानानुमोदितः स स बलादस्माभिरात्मीयतामुपनेयः, परं केवलं परकीयप्रवाहे नासमर्थैरिवोह्यमानैः स्वपदं त्याजम् । प्रत्यक्षशारीरं, शल्यकर्म्म, नवयन्त्रयोजनं, रसायनविधया नवरससारादिनिर्म्माणमिति यद् यन्नवं गुणाय तत्तत्सर्वं निजीकर्त्तव्यम् । अन्यत्र स्थितस्य गुणावहस्य ज्ञातव्यस्य हस्तगतीकरणं बुद्धिलक्षणं, सत्तमावशेषार्थं जायमाने जीवनसंग्रामे विजयार्हताचिन्हं च । तद्विरोधश्च यत्रास्मस्ततो न पदमग्रे चलिष्याम इति संक्षयलक्षणम् । तातस्य क्षारादेव कूपान्न पितरस्तर्पणीयाः । नवीनकृतीः परीक्ष्य बहूनां प्राचीनक्रियाणामसामयिकत्वमुद्वीक्ष्य ताः संस्करणीयाः । यो ह्य भूतमिति सोरस्ताडं व्याक्रन्दन्नेव तिष्ठति न तस्य कोऽऽप्यभ्युदयः सम्भवति । यश्च भूताद् वर्तमानं वर्त्तमानाद्भविष्यं स्वयं जनयति वितन्द्रश्च क्रामन्तं कालमनुयाति स जीवति जीवयति च ।

यद्यत् सम्मेलनेनानेनारब्धम्, यद् यच्च भवद्भिस्तत्रभवद्भिरुत्थापितम्, तत्र विघ्नेषु सत्स्वपि नास्ति नैराश्यस्यौदासीन्यस्य चावकाशः । गहनान्येव कर्माणि, श्रमकर्षिता एव च कर्मणां परिणामं मधुमयं पश्यन्ति । मा त्यजतारब्धम्—

न तत् तरेद्यस्य न पारमुत्तरेत्तद् हरेद् यत्पुनराहरेत् परः ।
न तत् खनेद्यस्य न मूलमुत्खनेन्न तं हन्याद् यस्य शिरो न पातयेत् ॥

इति भगवतो वेदव्यासस्य वचनं भवतामुत्साहमन्त्रमिव निवेद्य पुनरपि मयि कृतानामनुग्रहाणां स्वीकृतिं धन्यवादशतैः कुर्वन् स्वापराधक्षमापनं भिक्षमाणो निरन्तरं शास्त्रस्य शास्त्रानुयायिनां चाभ्युदयं नाथमानो विरमामि सदसोऽस्य कार्य्यान्तरविचारावसरदानाय—

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम् ।
अभ्यस्तकर्म्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम् ॥

सद्विद्यालिलितकला'प्रहर्षिणी' सा यद्राज्ये जयपुरभूरभूत्रितान्तम् ।
श्रीश्रीमानखिलनरेन्द्रनन्दितश्रीः सानन्दं जयतुतमां स माधवेशः ॥



श्रीमान् स्व. बा. कविराज यामिनीभूषणराय कविरत्न एम् ए एम् बी.
प्रिन्सिपल अष्टांग आयुर्वेदविद्यालय कलकत्ता।
अध्यक्ष नि. भा. व. वैद्यसंमेलन मद्रास (सन १९१५)।

A Short life-sketch of the late Kaviraj Jaminibhushan Ray, Kaviratna, M. A., M. B., M. R. A. S, Fellow of the Calcutta University.

The Patron-Saint and founder of Jaminibhushan Ashtanga Ayurveda College and Hospital an epoch-making contribution to the holy cause of Ayurveda-will ever remain enshrined in the hearts of his grateful countrymen. His pioneer work is a distinct landmark in the history of Ayurveda. He founded this institution to revive the eight branches of Ayurveda by modern methods of research and experiments and that the foundation was well and truly laid is amply borne out by the rapid strides and phenomenal expansion of the institution.

Kaviraj Jaminibhushan Ray was born in 1879 at Payogram in the district of Khulna. His revered father, the late Kaviraj Panchanan Ray Kavichintamani, was an erudite Sanskrit scholar and an able and leading Ayurvedic Physician of Bhawanipur, Calcutta. He trained nearly 500 pupils in Ayurveda, most of whom have been the torch-bearers of Ayurveda in various parts of India. His charity and saintly character were almost proverbial. Jamini Bhushan imbibed the noble qualities of his father right from his boyhood and was destined for a monumental self-sacrifice' His father passed away in 1904 at the age of 61.

Jamini Bhushan has his early education in the village school of Payogram and later continued his studies in the South Suburban School at Bhawanipur. His father did not fail to teach him Sanskrit along with his Western education. After passing the Entrance Examination he joined the Government Sanskrit College and studied upto M. A. In 1900 he joined the Calcutta Medical College and while being a student there passed the M. A. examination in Sanskrit. He completed his M. B. Course in 1905. He was the recipient of a gold medal and a first.class certificate of honour for his high proficiency in Midwifery and diseases of women. He studied Ayurvedic medicine under his father side by side with the study of Western medical science. After the demise of his dear father he completed the study of Ayurveda under the kind tutorage of Mahamahopadhyaya Kaviraj Bejoy Ratan Sen, the then leading Ayurvedic Physician.

In 1906 he began to practise the Ayurvedic system of medicine in Calcutta and founded the Vaidvaraj Pharmacy, in which he,

perhaps for the first time, tried to systematize and standardize Ayurvedic medicines with scientific methods and precision. The Vaidyaraj Pharmacy stands today as a monument to his scientific out-look and tireless energy in the domain of Ayurveda. His success was immediate and phenomenal. Perhaps no other physician earned so much within such a short period of time as Jamini Bhushan did. His name and fame were not confined to different parts of India but they rapidly spread over seas. His services were often requisitioned by the Darbars and Indian Chiefs e. g. Gwalior, Indore, Balarampur etc, and his remarkably successful treatment was gratefully acknowledged by thousands of his Indian and European patients.

But Jamini Bhushan's Dream—the Vision of tomorrow—the Ideal of revivified Ayurveda to its pristing glory—was yet to be realised. Nothing daunted Jamini Bhushan organised and founded in 1916 the Ashtanga Ayurveda College and Hospital in a rented house in Calcutta. He was the life and soul of the institution and was appointed its first Principal. He opened his purse-strings to make it worthy of his ideal. His energy and perseverance worked wonders. The dream of Jamini Bhushan was partly realised when the foundation stone of the College and Hospital was laid by Mahatma Gandhi on the 5th May, 1925. A Commodious four-storeyed building was constructed on a large plot of land of which I Bigha 21 Cottahs was kindly given by the Corporation of Calcutta on 99 years lease at a nominal rent and the rest purchased by the institution. The cost of construction amounted to about Rs 1,25000/- of which Rs 70000/- was paid by Jamini Bhushan during his life time. The Hospital has accommodation for 125 beds of which 106 are in use at present and in full working order. The College has on its rolls more than 300 students who hail from every part of India and Cylon. The College is equipped with a Library, an Anatomical Museum, a Drugs Museum, a Surgical Museum, a Pathological Museum, a Pathological and Research Laboratory, an up-to-date Dissection Hall with accommodation for 200 students, a Post-mortem Room, an Out-Door Dispensary with an average daily attendance of more than 300 patients; and last but not the least the unique Tuberculosis Hospital in the garden-house at Patipukur, which was one of the many bequests to the Hospital by its founder. The place is 4 acres in area and is open on all sides for miles. Jamini Bhushan lived and died for the Institution. May the Institution keep up the noble ideal and tradition of its founder!

He was an elected Fellow of the Calcutta University, member of Royal Asiatic Society, member of the Calcutta Medical Club and various other institutions. He was an erudite Sanskrit scholar. He

was the author of "Salakya Tantra" the treatise on ear and throat diseases "Prasuti Tantra" the diseases of woman, "Bisha Tantra", toxicology and some others. The books were highly spoken of by the profession and the public. He was Fellow and Examiner of Benares Hindu University and of various other Boards and Universities.

He was elected President of the All India Ayurvedic Conference held at Madras in 1915. This is the highest honour that can be conferred upon a devotee of Ayurveda. His was a triumphant march from Calcutta to Madras. Thousands gathered at way-side stations to have 'darshan' of Jaminibhushan. His Presidential address was masterly from every point of view and was highly appreciated.

But Jamini Bhushan was not destined to live long. His professional work and particularly his tireless labour in connection with Ashtanga Ayurveda College and Hospital told upon his health. He passed away peacefully on the 11th August, 1925 at the age of 47. On the preceding evening of his death he made his last Will, in which he bequeathed almost all his assets to Ashtanga Ayurveda College and Hospital. His monumental sacrifice sent a wave of thrill throughout the length and breadth of the conuntry. After his death his name was gratefully associated with the Ashtanga Ayurveda College and Hospital.

He left behind him his mother, the widow, a brother, 2 daughters and 4 sons, the eldest of whom Kaviraj Bejoy Bhushan Ray Kaviranjan, B. Sc., has been practising as an Ayurvedic Physician and following the foot-steps of his illustrious father.

The sacred name of Jamni Bhushan will go down in the history of Ayurveda as the pioneer in its development, a faithful servant of Ayurveda and as a lover of humanity. Jamini Bhushn is dead, long live Jamini Bhushan. Requiescat in Paco.





The Seventh All-India Ayurvedic Conference & Exhibition Madras.

(1915)

THE PRESIDENT'S ADDRESS.

I bow to the feet of the Protector of the Universe the Lord Almighty, who disports Himself by manifesting Himself in the shape of the Universe and then distroying it; who is the creator and the creation; who is alike the fire that burns and the offering that is burnt, the-eye that sees and the object that is seen, the ear that hears and the sound that is heard, the being that eats and the food that is eaten, the leg that walks and the path that is trodden, the hand that receives, and the thing that is received, who creates by displaying the *Satva guna*, preserves by displaying the *Rajas guna* and destroys by displaying the *Tamas guna*; and who is eternal and unwasting.

I bow to the feet of my father in Heaven to whose grace I owe this human existence, the best in creation; who is my *Svarga*, my *Dharma* and my supreme *Tapas*; and whom I look upon as God incarnate in this world of mortals.

I bow to the feet of my revered preceptors to whom I owe what little knowledge I possess, and by whose grace I have obtained admission into the high and holy shrine of *Saraswati*.

I bow to the sages of holy memory who created Ayurveda, and to their successors, both in the ancient and modern times, who have done so much to preach the great science and to further its cause.

And lastly, I offer my respectful greetings to the learned gentlemen who at enormous sacrifice have come from all parts of India to attend this Conference.

Gentlemen, I thank you heartily for the honour you have conferred on me by granting me the proud priviledge of presiding over this great function. I wish, however that your choice had fallen upon a worthier person. I feel extremely diffident as to my capacity to successfully perform the task you have been pleased to place in my

hands. What with the nature of my occupation and you all know, gentlemen, how imperative are the demands which a physician's work makes upon his time and energies—and what with the fact that your gracious command reached me only a short time ago, I have not been able to equip myself sufficiently to discharge the duties of this great office to your satisfaction. And I earnestly pray that you will forgive me my short-comings.

Before we proceed to discuss the noble object of this the great assembly there is another subject to which we cannot help making a reference—the great war in Europe, the war declared against our gracious and beloved sovereign, Emperor George V. by a powerful, unscrupulous and relentless enemy, the present trouble with which the British Empire is faced there is not a single heart in the whole of India from which is not daily going forth a prayer to the Lord on high for the success of the British Flag which stands for righteousness and the utter destruction of German militarism which is now devastating Europe. We also heartily pray for His Majesty's speedy recovery from the effects of his recent unfortunate accident.

The present joyous occasion calls up to my mind, gentlemen, the sweet and serene faces of those great and good men, especially the late Kaviraj Taraprasanna Sen, who have given to the cause of Ayurveda of their best and who have never spared time or money or labour to make the Ayurvedic Conference a success. They lived and worked amongst us only upto yesterday, as it were, but where, Oh! where are they today? What would we not give "for a touch of the vanished hand and the sound of the voice that is still!" Their life's work has been well done, their battle has been well won, their race has been well run, and now they are at rest in Abode of Eternal Bliss. But parted though they have been from us, yet they are to memory dear, and the spirit which they have infused into us will guide us along the path trodden by them and will help and encourage us, and those who are to come after us, in our efforts to complete the work so well begun by them. May their souls rest in peace!

And, lastly, this meeting conjures up before my mind a picture of the assemblage held in remote ancient times at the foot of the Lord of Mountains, the Himalaya, Atreya, Kasyapa, Bhrigu. Agastya, Gautama, Bhardwaja, Maitreya and others, in comparison with whom we are mere pigmies though we feel it to be a privilege to have been able to make an effort, in our own humble way, to follow in their illustrious footsteps. Theirs is the voice which from afar has summoned us to this great undertaking; they are the Pole Star which will guide the course of our ship; their noble example of self-sacrifice will be

our ideal. We have met here today not for self-aggrandisement but for self-sacrifice in the service of our fellow beings. The task we have undertaken is one that is to be accomplished not by a display of oratory but by deeds. We all know how the Lord Almighty assumed the form of a fish for rescuing the Vedas from the cataclysmic floods. We call upon every one of our countrymen in whom there is still alive even the tiniest spark of pride in the glorious tradititons of this blessed land which was the first to be illumined by the light of knowledge, to be prepared, like the Rishis of holy memory, to sacrifice his own self for the sake of suffering humanity.

Looking back through the vista ages into the remote days of hoary antiquity we find our saintly Rishis performing the severest austerities and preaching the Vedas, the Vedanta, the Upanishads, Astronomy, etc. Then for ages after the peoples of other countries were naked savages leading the life of wild beasts. It is not known whether the civilising of those barbarous peoples was due to any influence from India; but it is certain; and in fact, it is frankly admitted by every savant in the world, that the rudimentary principles of almost every science had their origin in this country. There is ample evidence to prove that the root principles of the science of medicine were first preached in Arabia by Indian physicians and professors, and that the *Charaka* and the *Susruta* were translated into the Arabic language. From Arabia, Ayurveda travelled through Egypt to Greece, thence to Rome, & from there, again, spread all over Europe, and gradually throughout the world. Of course, the principles of Ayurveda do not any longer retain their original shape, but transformed and developed and named afresh by different peoples in different countries they have given birth to various systems of medicine. Many Western savants have expressed their opinions in this connection and I may cite a few of them here.

Dr. A. F. R. Hoernle, M.A., Ph. D., C.I.E., says in his *Studies in the medicine of ancient India* :—

"Probably it will come as a surprise to many, as it did to myself, to discover the amount of anatomical knowledge which is disclosed in the works of the earliest medical writers of India. Its extent and accuracy are surprising when we allow for their early age, probably the 6th century before Christ, and their peculiar methods of definition. In these circumstances, the interesting question of the relation of the medicine of the Indians to that of the Greeks naturally suggests itself. The possibility, at least of a dependence of either on the other cannot well be defined when we know as an historical fact that two Greek physicians, Ktesias about 400 B. C., and Megasthenes about 300 B. C.

visited and resided in Northern India." Next, in his *History of Medicine* Dr. Max Neuburgher writes:—"That Greeks Medicine adopted Indian medicaments and methods is evident from the literature. The contact between the two civilisations first became intimate through the march of Alexander, and continued unbroken throughout the reign of Diadu-chi and the Roman Byzantine eras. Alexandria, Syria and Persia were the principal centres of intercourse. Indian physicians' means and methods of healing are frequently mentioned by Greeks. Roman and Byzantine authors as well as many d i s e a s e s, endemic in India, but previously unknown. During the rule of the Abbasides, the Indian physicians attained still greater repute in Persia whereby Indian medicines became enrgrafted upon the Arabic, an effect which was hardly increased by the Arabic dominion over India. Indian influence, in the guise of Arabic medicine, was felt anew in the West. The apparently spontaneous appearance in Sicily, in the 15th century, of Rhino-plastic surgery bespeaks a long period of previous Indo-Arabian influence. The plastic surgery of the 19th century was stimulated by the example of Indian methods the first occassion being the news, derived from India, that a man of the brick-maker caste had by means of flap from the skin of the forehead fashioned a substitute for the nose of a native."

It is here that we find unmistakable evidence of the pre-eminence of Ayurveda over other systems of medicine which all owe their origin to it, though, unfortunately, many Western physicians, and even Indians practising the Western system of medicine, look down upon Ayurveda with contempt. Even the science of Surgery had its birth in India.

Ignorance of Ayurveda has on more than one occasion led Western physicians and medical writers to draw erroneous conclusions. For instance, Dr. Willian T. Councilman, M. D., says in *A System of Medicine*, a work edited by Doctor Osler and Macrae, that "the first description of the disease, small-pox, which leaves no doubt as to its nature, is given in the wellknown treatise by Rhazes in the 10th century." But the fact is, that long before this time the symptoms and treatments of *Masurika* (small-pox) were discussed in the *Charaka* and the *Susruta*. And it is due to his ignorance of this fact that is responsible for the erroneous and misleading conclusion which Dr. Councilman has arrived at. It should, therefore be the duty of this Conference to point out all such errors and omissions with the help of evidence and thus uphold the glory of Ayurveda. I am sure that the writers who have been led into such mistakes will rectify them as soon as they can be convinced of the real truth.

It is a matter for congratulation that many Western medical men have been able to realise the greatness of Ayurveda. The illustrious surgeon, Sir Havelock Charles, when Professor of the Calcutta Medical College, often used to say to his pupils, "I am only repeating to you what the Aryan medical science preached two thousand years ago and am reproducing to you only a small fragment of the lesson taught by Charaka", And the great regard Sir Havelock has for the Vedic system of medicine is shown by the extract from *Charaka* which is on the marble tablet placed by him on the wall inscribed opposite the staircase in the Calcutta Medical College. Dr. Clarke of Philadelphia observed after a perusal of the English translation of *Charaka* :—"If the physicians of the present day would drop from the Pharmacopœa all the modern drugs and chemicals and treat their patients according to the methods of *Charaka*, there will be less work for the undertakers and fewer chronic invalids in the world". Speaking of the same work Dr. Paul Bartholomew says:—"I have been exceedingly struck with the profound meaning of many passages which indeed go beyond anything that I met before in medical literature."

The above extracts, scanty though they may be in comparison with the greatness of Ayurveda, conclusively prove that many Western medical men have realised in part at least, the glorious position which that system of medicine occupies in the world.

Let us now, gentlemen, try to appraise the gems that are to be found in the vast ocean of Ayurveda.

First, the Ayurvedic system of medicine is divided into 8 parts, namely, *Salya*, (Surgery and Midwifery), *Salakya* (treatment of the diseases of the eyes, the ears, the throat and the nose), *Kayachikitsa* (Treatment of the diseases of the body), *Bhutabidya* (exorcision), *Kaumarâbhritya* (Pædiatrics, *i e*, treatment of the diseases of children as well as their nursing), *Agadatantra* (Toxicology), *Rasayana* (medicines for the prolongation of life) and *Vajikarana* (aphrodisiacs). Is there any other medical science in the world which has or can ever have excellent divisions ?

Secondly, the Ayurvedic theory of the three humours of the human body, *Vayu*, *Pitta* and *Kafa*, on the conditions and proportions of which, as we all know, the physical and mental health depends. I need not dwell on this subject at length for it has been very elaborately dealt with by my predeceesssors in the Ayurvedic Confernce; but I may mention here that Western medical science also admits, though indirecty, the correctness of the theory. *Vayu*, *Pitta* and *Kafa* are the three forces on which the health, disease and decay of the human frame depends. The internal and external functions of the body

are ruled by *Vayu*. According to Western physiologists, the functional activity of the body is carried on and controlled by the nervous system whose energy, or nerve-force, as it is called, and this is spoken of as *Vayu* in Ayurveda, Western medical science has not been fully satisfied with the definition of *nerve* and we find Mr. M. Kendrick writing in his article on physiology in the *Encyclopaedia Britanica* that "the nerve may be regarded as the conductor of a mode of energy, which for want of a better term is termed nerve-force." Western science has not, however, succeeded in coming to such a definite conclusion about the other two humours, *Pitta* & *Kafa* though they have got a faint idea of their existence. Dr. Foster says in his work on physiology:—

"The animal body dies daily, in the sense that at every moment some part of its substance is suffering decay, is undergoing destruction. Combustible in the ordinary sense of the world an animal body is not, by reason of the large excess of water which enters into its composition, but an animal body thoroughly dried will, in the presence of Oxygen, burn like fuel and give out energy and heat."

And this is but a repetition of what Ayurvedas said ages ago. The world *Sarira* literally means a thing that is undergoing decay at every moment.

The function of *Pitta* is to consume the body like fire; while that of *Kafa* is to preserve it from this combustion, Indeed, Ayurveda very aptly compares *Pitta* and *Kafa* to the Sun and the Moon. Thus it would not be wrong to say that Western medical science admits in a way the existence of the three humours *Vayu*, *Pitta* and *Kafa*.

Another fact which lifts Ayurveda high above all other systems of medicine and places it on a level of its own, is the most wonderful knowledge of pulse which it imparts. Diseases, whose diagnosis baffles the attempt of Western medical men with all their numerous and delicate instruments, are in most cases ascertained by Ayurvedists simply by examination of the pulse. It is a fashion with many persons. who take pride in parading their knowledge, to ridicule the theory of modification of pulse-beats by food. The ignorance of such persons need not be explained to the members of the medical profession, but to those among the audience who are not medical men, I may say that the truth of the theory may be easily proved by making a man who ordinarily lives on a vegetable diet, eat animal food and then feeling his pulse, which will show a marked difference from its usual nature. The physician who is skilled in the examination of the pulse can easily make out thereby the kind of food a man has taken.

But this wonderful knowledge is not to be acquired so easily.

The great Rishi *Kanada* says in the concluding chapter of his treastise on pulse:—

"There is no royal road to the acquisition of the knowledge of pulse-beats, and intelligent persons will see that my attempt to explain the different characters of the pulse by comparing them to the various styles of locomotion of different animals is but impertinence. This is a knowledge not to be acquired by reading or teaching but only by actual continual practice, by Yoga, and ouly the man gifted by God is capable of attaining it."

I shall now briefly discuss different departments into which Ayurveda is divided, and try to explain their excellence.

The first subject dealt with by *Susrutta* is Surgery and Midwiferv. It has been said:—

"The extraction of various kinds of grass, wood, stone, dust-particles. fragments of iron, bits of concrete, bone, hair, nails, foetus pus, and other discharges from the body the application of blunt and sharp instruments, alkalis and actual cautery, and also the diagnosis of different kinds of wounds, are dealt with in *Salyatantra*."

It is a common idea that Ayurveda has got no system of Surgery and Midwifery, or at the best has got it in great imperfection. But Ayurveda itself gives this system preference to the other departments because of the quick results obtainable from it, because it teaches the use of instruments, alkalis and actual cautery, and because it also contains accounts of other branches of the medical science. The *Susruta-samhita* mentions eight kinds of surgical operations, viz., 1. 'Chhedana'. i.e., complete removal of a part of the body by operation as for example, removal of piles, excision of bone. etc. The instruments used are *Bridhipatra* (a knife like a razor) *Nakhasastra*, (nail trimmer) *Karapatra*, (saw) *Mudrika* (finger-shaped knife) *Utpalapatra* (a knife shaped like a lotus-petal) and *Ardhadhara* (a single edged knife); 2. Bhedana i.e. incision as for example, of an abscess. The intruments required are the same as above; 3. Lekhana i.e., sacrification, or dissection of a skin flap, or, scraping, This is used in cases of *Rohini* (a kind of inflamatory disease of the throat), *piles* enlarged tonsils, fleshy tumours, sinus, etc, The instruments required are *Mandalagra*, (a round edged knife) and *Karpatra*. 4 *Bhedana*, i.e; puncturing by sharp and pointed instruments, viz., *Vrihimukha*(a trocar), *Kutharika* (a small axe-shaped instrument) and *Suchi* (a needle-shaped instrument) *Arc.*(an awl), *Velasapatraa* (a lance-shaped instrument). This is used in venisection and tapping in cases of Ascitis and Hydrocele. 5. *Eshana* (i.e , probing) with an instrument called *Eshani*(probe). This is used in cases of sinus and fistula, and also for searching foreign bodies in a wound. 6. *Aharana*

(i.e., extraction as of a stone by spoon or hook). The instruments used are *Barisa* (an instrument shaped like a fish-hook) and *Dantasanku* (an instrument like a tooth-pick). Tnis is used for removal of stone, extraction of dead foetus, etc. 7. *Sravana* (i.e; letting out pus, as for example, from a deep-seated abscess. The instrument used are *Suchi*, *Kusapatra* (a long, thin knife shaped like the blade of Kusa grass), *Atimukha* (a kind of long pointed knife), *Sararimukha* (scissors), *Antarmukha* (a kind of scissor) *Trikurchaka* (an instrument consisting of three needles), used in cases of deep-seated abscess, localised collection of fluid, Erysipelas, etc, 8. *Sivana* (sewing or suturing). The instrument used is *Suchi* (needle both straight and curved). Used in Abdominal section and stitching up wounds. The following are the stitching materials which were used, viz; fine thread, made of the bark of the Aswantaka plant, thread made of *on* fibre, silk thread, *Snayu* (a thing like catgut), horse-hair, thread made of Murva grass, threads of Gulancha and Bellitaka. Three kinds of suturing are described but the surgeon is allowed the full use of his own discretion according to the parts to be sutured. The needles used should be five and such as to allow a firm grip, and the surgeon is advised to place his stitches neither too far nor too near the cut ends. Next, as regards the qualities of Surgical Instruments Susruta says:—The good points in an instrument are the following. It should have well made handle allowing a firm grip; it should be made of good iron; it should have a fine edge, a nice shape and a well finished point; and, except in the case of the saw, it should not be dented."

Some of the *Sastras* used were so fine as to divide even a hair. As to the defects of sharp surgical instruments, of which eight are mentioned by Susruta as well as Vagbhata, they must not be bent, blunt. broken, jagged, too thick, too thin, too long, or too short. The only exception is made in the case of *Karapatra*, an instrument used for sawing bones.

Susruta enumerates twelve defects of blunt instruments viz:—the instrument may be shaped too thick, or be made of impure metal, or be too long or too short, or may not afford a firm and even grasp, or may be bent, or may be made of too soft material, or may have turned up or weak ends or thin sides, or may have loose, elevated and weak points. These defects refer principally to the *Svastika Yantras* (cruciform instruments.)

"Instruments," Says Susruta, "should be tempered in three ways. They should be heated and then immersed in an alkaline solution or water or oil." Those tempered in an alkaline solution are used in dividing bones and in extracting arrows and other foreign bodies.

Those tempered in water are used in incising, dividing or cutting muscles, and those tempered in oil are used in puncturing veins and dividing nerves and tendons." The whetstone in use was a stone, slab of the colour of Masha (Phaseorlus Roxburghii) and the instruments were kept in cases made of *Salmali* wood (Bombax Malabaricum.) wrapped in silk or wool.

One hundred and-one varieties of blunt instruments are mentioned; but the surgeon's hand is considered, and very properly so, as the principal instrument. The blunt instruments were used for the extraction of foreign bodies and were subdivided, according to *Susruta,* into six classes, viz., twentyfour kinds of *Svastika* (cruciform instruments) two kinds of *Sandamsa* (a kind of forceps), two of *Tala* (instruments shaped like a picklock), twenty of *Nadi* (tubular of hollow instruments), 28 of Salaka (rods or prickers); and 25 of *Upayantra* or accessories.

The material recommended for such instruments is iron or any other suitable substitute where iron is not available. Their ends often resemble the faces of lions, tigers or other beasts of prey, or those of deers or birds, or are to be fashioned after the directions of scientific treaties, or of teachers, or in imitation of other instruments, or according to exigencies. They should be of reasonable size and have rough or smooth ends as may be neccessary. And lastly, they should be strongly made, well-shaped and allow a firm grip.

(1) The *Svastika Yantras,* or cruciform instruments should be eighteen *Angulis* in length and their ends should be shaped like the faces of beasts of prey or deer or birds, and are to be named after them. These instruments are to be made of two pieces of iron joined together at the middle by a pin of the size of the *Masura* and their handles are to be shaped like an elephant.—driver's goad. They are used for the extraction of foreign bodies impacted in the bones.

(2) *Sandamsa Yantras* or forceps, comprise two instruments—the forceps with and without handles—and are 16 "Angulis" in length, and are used for extracting foreign bodies impacted in the skin, the flesh, the veins, or muscles.

(3) *Tala Yantras* or picklock. like instruments, are 12 "Angulis" in length and shaped like the scales of a fish, and have a single or double blades. They are used for extracting foreign matter from the ear, nose and other canals of the bodies.

(4) The *Nadi,* or tubular instruments are meant to serve many purposes and are of various kinds. They are open either at one or both ends and are used for extraction of foreign substances from the natural outlets of the body and also as diagnostic apparatuses for

inspection of diseases in the canals. They are the means of sucking out fluid-discharges, such as pus, etc, from cavities and they facilitate the performance of other operations. They vary in length and diameter in proportion to the different sizes of the outer canals of the body, or according to the variety of the purposes to be served by them. The tubular instruments, of which twenty kinds are mentioned, are to be used for fistula-in-ano, haemorrhoids, tumours, abscesses, injections into the rectum, vagina and urethra, hydrocele, ascites, inhalations, stricture of urethra and rectum and cupping.

(5) The *Salaka Yantras* or rods or probes are described to be of various kinds and are recommended to be used for various purposes, and so their length and circumference would vary according to the special uses required of them. Two kinds of *Salaka* have ends shaped like the head of the earthworm, two have their ends shaped like the hood of the snake and two have their ends like a fish-hook, but are blunt. The first kind is used for probing abscesses and sinuses; the second for raising any part for the purpose. after incision, of extracting any foreign body from it; the kind for transferring any material from one part to another; and the last for extracting any extraneous material from the muscles or bones. Susruta mentions two other kinds of *Salaka* which have their ends shaped like a 'Masura' pulse and slightly curved. These are used for the purpose of extracting foreign bodies from the external outlet of the body such as mouth, nose, etc. There are six kinds of *Salâkas* which are used as Swab. Probes for cleaning the ex-cretary canals of the body, viz; rectum, nose, ears. Some commentators are of opinion that the *Salakas* are meant for clearing abscesses.

Mention is also made of probes shaped like a *Khala* (mortar with a conical cavity), which are used for applying caustic solutions, etc; nail-shaped probes; probes shaped like the fruit of the Jambul tree (Eugenia jambolanum), and probes with ends shaped like an elephant; driver's goad, which are meant for applying caustic and actual cautery; one variety, which is used for the purpose of removing a tumour from the interior of the nasal cavity, has its end shaped like a *Khala* or mortar, with sharp edges and of the size of half the stone of the fruit of the Jujub tree. Another kind of probe of the thickness of *Masha* (Phaseolus Roxburghii) and with its ends shaped like buds, is used for applying collyria to the eyes. A variety of *Salakha*, described by Susruta as having its end rounded like the stalk of a Malati flower (Echites caryophyllata, Box), is to be used for cleaning the urethral canal.

(6) 'Upayantras' or accessory instruments are *Rajju* (thread),

Vanika (twine), *Patta* (bandages), *Charma* (leather), *Antarvalkala* (the inner barks of trees), *Lata* (creepers), *Vastra* (cloth), *Asthilasa* (stone or marble), *Mudgara* (hammer) *Panipadatala* (the palms of the hands and the soles of the feet), *Anguli* (fingers), *Jihva* (the tongue), *danta* (the teeth), *Nakha* (nails), *Mukha* (the mouth), *Bala* (hair), *Asvakataka* (the ring of a horse's bridle), *Sakha* (branches of trees), *Sthivana* (spittle), *Phavahana* (massaging), 'Harsha' (objects exciting happineess), *Ayashhkanta* (load stone), *Kshara* (potential cautery), *Agni* (actual cautery), and *Bheshaja* (medicines).

Twenty four different kinds of operations are said to be performed with blunt instruments. Foreign bodies may remain impacted in the body in numerous ways, and the intelligent surgeon should in every case carefully devise the means af extracting them.

The word *Salya* is derived from root *Sal* which means to move with rapidity. *Salyas* are of two kinds, physical and mental. Ayurvedic 'Salya Sastra' deals with all *Salyas* which appear as obstructive ailments in various parts of the body. physical *Salyas* are those which are caused by the excrements, the tumours, and the corruption of the constituents of the body, such as blood and so forth. All other things besides physical *Salyas* which cause pain are called foreign *Salyas*. Foreign *Salyas* are generally bits of iron, wood, horn or bone.

Of these, iron *Salyas* are most important for they are used in warfare When the wound is bluish, painful, flabby, constantly bleeding, protruding and soft, it should be understood that there is a *Salya* within. If the *Salya* is only skin-deep, the wound becomes discoloured, flabby, extensive, and hard; and if it has penetrated into the flesh, the wound becomes so much flabby as to have its mouth closed, becomes extremely sensitive, smarts with pain, and suppurates. If the *Salya* is imbedded between two muscular cords various other symptoms arise. And so on.

If a *Salya* enters in a direct posture into the body of a healthy man and specially his throat, skin, muscle or bone, the wound is rapidly healed up. But the *Salya* thus imbedded is moved from its place by exercise and the like and causes pain.

The Ayurveda next discusses in detail how to diagnose the presence of Salyas in different parts of the body. Professor Sauirders used to tell his students that to diagnose the presence of stone in the kindly, the patient might be given a drive in a hackney carriage. If the jolting of the carriage causes pain in the kidney, the presence of stone in it will be diagnosed, The Ayurveda also prescribes the same practical mode of diagnosis.

The Ayurveda thus deals with all the branches of modern

Surgery. It also deals with the medical treatment of various Surgical diseases such as disease of the eye which are of 76 kind. There are in the Ayurveda elaborate instruction as to how Cataracts should be removed by operation, intestinal-obstructions should be cured by the knife, the abdomen should be tapped for letting out the dropsical fluid, and so forth.

Gentlemen, what I have said so long has reference to the Ayurveda of the past. Now let us turn to the condition of our system at the present day. We must not shrink from the task even if we are constrained to refer to unpleasant things. If we neglect to expose our defects, they will never have a chance of being rectified. The responsible position to which you have elected me today makes it incumbent on me to refer to the defect and shortcomings of our system, however distasteful it may be.

I have said already that the Ayurveda is the parent of all systems of medicine in the world, and that the fundamental principles of the Ayurveda have found expression in different forms in the different medical sciences. But the feelings of joy very soon yield to those of sadness when we contemplate the centuries of backwordness and stagnation through which the Ayurvedic system has passed. Circumstanced as we are, we lack the opportunities of development and advancement which belong to scientific studies in the West. Not to speak of Government patronage, individual exertions or combined efforts of association of scholars to which progress of science in the West during recent times has been mainly due, are wanting in our country. No wonder that the study and practice of the Ayurvedic system have been where they are many centuries ago. Though the Rishis of old developed this system almost to perfection, a circumstance which accounts for the fact that in spite of many backword forces, it has stood the test of time, yet want of proper culture according to right methods of investigation is mainly responsible for the neglect to which many parts of the Ayurvedic science have been consigned. As a matter of fact, we find that many essential parts of this system such as Surgery, midwifery, have fallen into disuse for want of practice. It has been already admitted in *Susruta* that Anatomy and Dissection are the foundations of all medical sciences. But at the present moment the anatomical portion of the Ayurveda which has come down to us is very brief and incomplete. Dissection having gone out of use, the student of the Ayurveda does not get any opportunity of learning practical. Anatomy and consequently suffers a great disadvantage in diognosing diseases. There is now practically no practice of Surgery and midwifery in the Ayurvedic system, which

fact not only hampers pursuit of the medical profession but also lowers in the estimation of the public and particulary of the voteries of Western science.

Knowledge of pulse which was a pride of the Ayurveda in the diagnosis of disease is no longer pursued as in the days of old. We have not the same amount of patience and perseverance, and the old ideal of an ascetic has also disappeared from our midst. And this is the reason why we have lost such an uncommon and precious possession, namely, the art of diagnosis of disease by feeling the pulse. The Ayurvedic system was never an advocate of the treatment of symptoms merely but rested solely on the proper diagnosis ol diseases.

Enamata and catheterisation has been mentioned in our Sastras as half the treatment, and some say, nay the whole. But where is that art now ? "Panchakarma" or the five methods of medication also has disappeared. Purgatives are used no doubt, but in a defective and unsatisfactory way. Six hundred Purgatives in Charaka are confined to the worm-eaten pages of our ancient lore. Of the six hundred purgatives it is doubtful if even six are now used.

Application of poison which formed an important feature of the treatment delineated in "Kaya-Tantra" is unknown to most of us now-a-days. I am firmly convinced, if this branch of our studies is again pursued in proper way many a life may be saved in the collapsed state, especially by the use of snake poison. That snake venom, which, if swallowed, kills life immediately, has been included in our Pharmacopoea as a last resource for saving life when all other medicines fail, is a sufficient proof of the industry and diligence with which scientific researches were carried on in the past system. No other system of medicine has yet been able to test the efficacy of snake poison as a means of saving life

System of diatery had attained high perfection in those days, so much so that it was held that a patient can do without medicines by simply depending on Nature and proper diet.

But for want of proper pursuit, knowledge dietary suitable to our climate and mode of life is possessed by few of us. The present mode of dieting is a curious thoughtless combination of Western and Oriental articles of food and is mainly governed by commercial interests.

"Salakyatantra" dealing with the treatment of the eyes, ear, nose and throat is very seldom studied now. The consequence is that the very important subject of Ophthalmology has passed out of the hands of the Ayurvedic physicians like Surgery and midwifery.

Another very important defect is the want of c orrect editions of Ayurvedic text. Beside there being different readings apparently

without any attempt to systematise or harmonise, these inaccuracies and incorrect renderings have crept thus in making the meaning utterly unintelligible. The attention of the learned members of the profession is invited to this point.

Along with this must be mentioned our ignorance of the identity of Medical Plants. Here also there is much room for systematic study and investigation. The value of scientific researches should always be recognised. It would be a retrograde policy if our reverence for the past blind us to the manifold scientific improvements of modern times. It cannot be denied that modern Western Medical Science has immensely profitted by the scientific discoveries of recent times. Among the many fruits of scientific study I may only mention:—

1. X'Ray apparatus—highly useful in the diagnosis of fracture, dislocation, lodgement of foreign bodies, e.g., bullets, etc.

2. Oxygen Inhalation—very much effective in relieving dyspœa in case of Pneumonia, excessive haemorrhage and Anæmia.

3. Saline injection (both intra. venous and subcutaneous), highly successful in Cholera, sudden loss of blood in operation, etc.

4. Injection of Emictine—highly successful in amæbic dysentry. It has been found useless in bacillary dysentry and the diagnosis depends on microscopic examination.

5. Microscope itself is very useful in detecting bacilli of many diseases which are otherwise difficult to diagnose.

6. Diphtheria Antitoxin—the most highly successful remedy introduced by modern scientific researchers. In Diphtheria, if it is injected early, the mortality has been reduced to 5 per cent.

Colli Vaccine—the most successful remedy as an outcome of Bacteriological research applicable in cases of Puerperal fever and Scepticæmia where there is no local mischief. We should also bring into use some of the best instruments and appliances for diagnosis such as, Stethoscope, instrument for ascertaining blood-pressure etc. Though I am suggesting this thing, with much diffidence as those who are more conservative amongst us may raise objections against it.

If I have taken your time, gentlemen, by dilating upon the defects in the practice of the Ayurvedic system, my excuse is that I consider many of these defects capable of being removed, and signs of better time are by no means wanting. We already perceive that a reaction has already set in and the efficacy of indigenous drugs and indigenous method of treatment is gradually being recognised. Even this All-India Ayurvedic Conference is a sign of re-awakening. Let us hope that greater facilities would be given to the systematic and

scientific study of Ayurveda by the establishment of Colleges and hospitals, gardens for medical plants, well stocked libraries, and also by the collection of rare manuscripts and publication of authentic treaties. All this will come in time and Providence, in whose hands the success of every good, and noble cause ultimately rests will crown our efforts with succes. There is room both for combined and individual efforts and I think the time has come it should be the duty of every one of us to advance the cause of our science in a truly scientific spirit. Let not this occasion end in words, but let something really useful and noble come out of it. My imperfect speech to which you have kindly listened with patience so long, conveys still more imperfectly the ardent yearning which I feel for the improvement of the Ayurvedic method of which I am an humble follower.

I cannot conclude this address without uttering a word of protest the unjust and unjustifiable treatment which Dr. Krishnaswamy Iyer has received at the hand of the Madras Medical Council. Dr. Iyer has been one of the Governors of a charitable Ayurvedic Dispensary established by a kind-hearted and generous gentlemau of this Presidency, We have a similar institution in Calcutta. Rai Bhagavan Das Bagla Bahadur's Marwari Hindu Hospitrl, working in two departments, Allopathic and Ayurvedic. On the Bord of Governors of this institution have been men like the late Dr. Saunders who was also the Surgeon Superintendent of the institution in both the Ayurvedic and Allopateic departments and whose present successor in this position is Dr. Caddy, No rational being can complain against the conduct of Dr. Caddy who only controls and supervises the Ayurvedic department.

The progressive Western art of healing can by no means be againer by the ostracism of the Eastern Ayurveda. The true man of science always keeps a liberal and capacious mind, ever ready to be enlightened with fresh rays of knowledge, Can Western physicians sav that they have already ransacked the whole animal and vegetable kingdom and thereby brought their Pharmacopoea to the highestt efficiency and perfection ? The answer is bound to be. no, It is a daily experience with every Allopathic physician that he cannot cure every disease, especially if it is a tropical disease. On the contrary, the Western system of medicine is a failure in chronic ailments, such as, diseases of the nervous system, paralysis, insanity, skindiseases, chronic fevers, diarrhoea, bacillery dysentry, leprosy, urinary complaints, etc, though we must givo every credit to the wonderful skill of Western surgeons. If the Western system can heal these diseases and

mitigate human suffering no one ought to grudge it, far less a member of the noble profession of medicine. In Calcntta, I am glad to say, I have seen many eminent Allopathic physicians, among whom may be mentioned the uame of my revered preceptor, the Hon'ble Surgeon-General Sir Pardey Lukis, Pardey Lukis, who was formerly the Principal of the Calcutta Medical College and commnndee the most extencive practice in the city, using Ayurvedic drugs, such as Makaradhwaja, the best preparation of mercury and, extracts of Gulancha, Kalmegh, Kurchi, Aswagandha, etc. The enormous quantity of these extract manufactured by the Bengal Chemical and Pharmaceutical works proves the extent to which these indigenous drugs are used by Western Physicians.

I may be premitted to quote here the remaks made by Sir. Pardey Lukis in the course of his recent speech on the occasion of the opening of the Hukumchand Laboratories and Reading room attached to the King Edward Medical School at Indore. "I wish so impress upon you most strongly", said he, "that you should run away with the idea that every thing that is good in the way of medicine is contained within the ring-fence of Allopathy or Western medicine. The longer I remain in India and the more I see of the country and the people, the more convinced I am that many of empirical methods of treatment adopted by the Vaids and Hakims are of the greatest value; and there is no doubt whatever that their ancestors knew, ages ago, many things now-a-days being brought forward as new discoveries. For instence, during the last few years, there has been a considerable amount of talk about what is known as "dechlorination", that is to say, the depriving of the system of salt. This arose from certain experiments carried out by Widal and javal, as a result of which it is recognised that in all cases of dropsy, the greatest benefit can be obtained by restricting your patients to an entirely salt-free diatery. Gentlemen, there is nothing new in this. This was known thousands of years ago in the East, and any Vaid or Hakim could have told you, long before Widal and Javal made their experiments, that salt is contraindicated in all dropsical affections."

By removing Dr. Krishnaswamy's name from its register, the Medical Council of Madras has condemned the entire Ayurvedic system. This condemnation may prove the ignorance, begotry, and sordidness of the Medical Council, but will never detract to the glory of the great Ayurvedic system which has lived, and lived in vigour, throngh ages of hostile and powerful competition.

The final decision of Dr. Krishnaswamy Iyer's case lies with His Excellency the Governor in Council. I am fully confident that our

benign Government will not endorse the view of the Medical Council, and that Dr. Iyer who has the courage of his conviction and whose straightforward, firm and resolute attitude towards the cause of Ayurveda we cannot too highly admire, will recieve justice in his Excellency's hand and that Dr. Krishnaswamy Iyer will win a glorious victory. With all the emphasis that I can command I would again say, the view taken by the Madras Medicsl Council is erroneous and detrimental to the cause of medical science. And in the same voice I protest also against the attitude taken by the Bombay Medical Council against Dr. Prabhu Ram Vaidya with regard to his holding the office of the Principal of the Ayurvedic College founded in memory of his late revered father.

This protest from an humble person like myself will receive enormous strength if we add to it the noble words of our august Sovereign, His Imperial Majesty the King Emperor, who in the course of his reply to the address presented by the Calcutta University on the occason of his gracious visit to India in 1912, said that he looked to them "them to assist in the gradual union and fusion of the culture and aspiration of Europeans and Indians on which the future wellbeing of India so greatly depends". His Majesty further observed, "You are to conserve the ancient learning and simultaneously to push forward Western science". What a sad commentary on the words of His Majesty will be fornished by the disqualification of Dr. Krishnaswami Iyer and Dr. Prabhu Ram Vaidya by the votaries of Western science! His Majesty really struck the key-note of the successful administration of India by laying strees on the necessity of co-peration and union. In fact, in these days of scientific rivalry the usefulness of united effort cannot be too much insisted on. Let us not stand aloof, let us co-operate and make for a higher goal, let us look upon our neighbours with sympathy and good will, let the Ayurvedic, the Unani and the Allopathic systems all strive for the common end, to relieve the sufferings of mankind. There is no higher or nobler object than this, and sympathy is the only means of approach to that goal. His Majesty the King-Emperor has sounded the note of sympathy and we have a sympathetic Viceroy in the person of Lord Hardinge. Let us make a united representation to our Viceroy against the mean and selfish attempts at separating what may be regarded as two branches of the same nobble profession.

Lastly, we offer our grateful thanks to the Government of Bombay for the catholicity they have recently shown by enabling persons practising indigenous systems of medicine to hold, with the sanction of

Gouernment, appointments as Medical Officers in Municipal dispensaries or other public institutions supported by local funds and conducted according to the Indian system of medicine.

Before I resume my seat I again thank you, gentlemen, for the indulgence you have shown to me by lending me a patient hearing. Let us all pray to God Almighty for the success of the noble cause which we are all striving for.





श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

निखिल भारतीयवैद्यसम्मेलनस्य अष्टमाधिवेशन-सभापतेः,

कोचीनाधिपस्य श्रीरामवर्मणो भाषणम् ।

रागादिरोगान्सततानुषक्तान् अशेषकायप्रसृतानशेषान् ।
औत्सुक्यमोहारतिदान् जघान योऽपूर्ववैद्याय नमोऽस्तु तस्मै ॥
योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।
योऽपाकरोत्तं वरदं मुनीनां, पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

अयि भोः सदस्याः !

एतस्याः परिषदो महनीयमिदं स्थानमलंकर्तुं मत्तोऽप्यर्हत्तरा बहवः प्रादुःषन्तीति स्थिते वस्तुतत्त्वे, भवतामस्मिन्स्थाने मन्नियोजनं मामतिमात्रमिव मानयति । कालकौटिल्यान्नष्टप्रायजीवितस्यायुर्वेदमहाशास्त्रस्य पुनरुज्जीवने सर्वथा बद्धपरिकरांस्तत्र बहुशः कृतोद्यमांश्च भवतो दृष्ट्वाऽऽत्मानं कृतार्थयितुमत्युत्कटेनाभिलाषेण परमेतत्स्थानधुरामङ्गीकृत्य क्लेशानपरिगणय्यात्र समागमम् । अत्रागमनेन श्रीमतां दर्शनलाभादद्य महतीं प्रीतिमवाप्तोऽस्मीति महदुपकृतं मे मामत्र नियुञ्जानैर्भवद्भिः । पुनरपि यन्नियुज्यते श्रीमद्भिस्तत्सर्वं यथाशक्ति विधातुमेष संनद्धोऽस्मीति चावेदये । यद्यपि ममैतत्कार्यनिर्वहणविषये शक्तिरतिपरिमिता तथापि भवदाज्ञया प्रवृत्तस्य सर्वात्मना समुद्यमं कर्तुं कृतनिश्चयस्य मे महदनुग्रहान्न किमपि परिहीयेतेति सुदृढं प्रत्येमि ।

अस्याः परिषदो विविधान्विषयानधिकृत्य न मे बहुवक्तव्यमवशिष्यते । यतो निर्वृत्तचरेषु सम्मेलनेषु धुर्यपदवीमारूढैर्मनीषिभिः सर्वेऽपि विषयाः कूलंकषमालोच्य सप्रपञ्चं निरूपिता वर्तन्ते । तदपि कौतूहलेन किंचिदिह प्रस्तोतुमभिलषामि ।

विदितपूर्वं खल्विदं विश्वेषां सभासदां यत्स्वागतसभापतयः श्रीमदण्णासाहेब पटवर्धनमहाशयास्तदुपपतयः प्राणाचार्य बालशास्त्रिलागवणकरमहाशयाश्चापरिसमाप्यैव कृपया स्वीकृतां स्वस्वकार्यधुरां मज्जयित्वा च निखिलभारतीयायुर्वेदमहामंडलमपारे दुःखसागरेऽकाल एव कालवशं गता इति । यदीयं सभा यथापूर्वाभिलषितन्धनुर्मासएवामिलिष्यत्तदातेऽपीमालमकरिष्यन् । अहो हतविधेः परिपाकः । परन्त्वायुर्वेदोद्धरण-



महाराज सर राम वर्म्मा
जी. सी. एस. आई; जी. सी. आई. एफ. एम. यू.
महाराज-कोचीन।
सभापति, अष्टम वैद्यसंमेलन, पुना (सन १९१५)।

यद्धदीक्षाणां भवादृशामनवरतमुष्मिन्नुद्यमः श्रेयसे भूयसे कल्पयिष्यतीति दृढप्रत्ययः किंचिदस्मान्समाश्वासयति ।

समरोऽस्वास्थ्यहेतुः ।

अयं पुनः कालो दैवदुर्विपाकेन दारुणं समरमुद्भावयन् न केवलं भारतीयानामेव किन्तु सर्वेषामांग्लसार्वभौमश्वेतच्छत्रच्छायाश्रितानां दिवानिशं मानसानि कलुषीकरोतीति यत्सत्यं भारतीयानामस्वास्थ्यहेतुरयमंशः । कृत्स्नस्य भूमण्डलस्य स्थितिमधरोत्तरयन्नेष घोरसमरो नातिचिरेण निष्ठुरहृदयानां भारतसार्वभौमपरिपन्थिनां मूलनाशे परिणस्यतीति विश्वसन्तस्तत्कृते जगन्नियन्तारं प्रार्थयन्ते भारतीयाः । अनयापि परिषदा सैषा प्रार्थनैवाम्रेडयितव्येति संसूचयामः ।

आयुर्वेदप्रभवः, केरलीया अष्टवैद्यकाश्च ।

अथायुर्वेदमधिकृत्य यत्किञ्चित्प्रस्तूयते । नृणां निखिलश्रेयोनिदानं शरीरमित्येतत्सर्वसंप्रतिपन्नम् । तस्य च श्रेयःसाधनता दृढतामरोगतां चापेक्षत इत्यप्यविवादम् । रागादिभिर्मानसैर्ज्वरादिभिश्च भौतिके रोगकदम्बकैरनवरतमिव पीड्यमानां जनतामनुजिघृक्षुः परमकारुणिको भगवान् ब्रह्मा सर्गादौ प्रजापतय आयुर्वेदमुपदिश्य पुनरत्रिपुत्रादिद्वारा तं सर्वत्र प्रवर्तयामास । साम्प्रतमानुपूर्व्येणानुपलभ्यमानतयाऽस्मिन्नस्तंगतेऽपि तत्प्रतिपादिता विषया बहुभिराचार्यैर्विरचितेषूज्ज्वावचेषु निबन्धनेषु संगृहीता अधुनापि समुल्लसन्ति । तदनुसारिण्या च चिकित्सया बहून्याश्चर्यहेतूनि फलजातानि प्रादुरभूवन्निति वयमितिहासेभ्योऽवगच्छामः । राज्यविप्लवादिभिर्ज्ञातैरज्ञातैश्चानेकैरन्यैर्हेतुभिः प्रथमं प्रतिबद्धोर्ध्वगतिः क्रमेण विरलप्रचारा चायुर्वेदचिकित्सारीतिः प्रायेण मुमूर्षाकल्पां दशामवाप ह । केरलेषु त्वियं चिकित्साऽष्टांगहृदयपठनपाठनसंप्रदायश्चाविच्छिन्नावेव प्रचरत इति साभिमानं सप्रमोदं च प्रस्तुवीमः । आयुर्वेदपालनार्थमतिचिरन्तन एव काले स्थापितान्यष्टौ वैद्यककुलानि इदानीमप्यायुर्वेदशास्त्ररक्षां कुर्वाणान्येव जाग्रति । तत्कुलजाता'अष्टवैद्यका' इति नाम्ना प्रथन्ते । आयुर्वेदशास्त्रमेव तेषां कुलक्रमागता विद्या। केरलीया आयुर्वेदवैद्यकाः प्रायेण साक्षात्परम्परया वा तच्छिष्यकोटिं प्रविष्टा एव वर्तन्ते। एतत्कुलेषु लब्धजन्मानो वैद्या राजवंशेषु प्रभूणां च गृहेषु कुलपारम्पर्यसिद्धां वैद्यधुरां वहन्तो बहुविधा बहुमतीर्वृत्तीश्च चिरकालादारभ्यानुभवन्त एवावतिष्ठन्ते । एतेषां प्राचीनसांप्रदायानुसारी मुख्यो वैद्यशास्त्राध्ययनस्य कालः षट्त्रिंशत्संवत्सरपरिमित आसीत् । षट्त्रिंशति संवत्सरेषु द्वादश वत्सरा ग्रन्थाऽर्थावबोधाय विन्ययुज्यन्त । परस्तात्तावन्तो वृद्धवैद्यानुगत्या शास्त्रार्थप्रयोगपरिचयलाभेन दृष्टकर्मतासम्पादने समयाप्यन्त । पुनश्च तावन्त एव वत्सरा अरण्यादिसञ्चारेणौषधिवनस्पतिप्रभृतीनां साक्षादवलोकनेन दृढतरज्ञानाधिगमे चात्यवाह्यन्त । सोऽयं मुख्यः कल्पो नेदानीन्तनैरनुष्ठातुं शक्यत इत्यनुक्तिसिद्धमेतत् । तदपि बहवोऽधुनापि मार्गेष्वेतेषु महीयांसमनेहसमुद्यमभृतो भवन्त्येव ।

केरलीयवैद्यानां चिकित्साविशेषाः ।

केरलीयानामायुर्वेदवैद्यकानां चिकित्सासरणौ देशान्तरसरण्यपेक्षया बहवो व्यतिरेका दरीदृश्यन्त इतीदमत्र विशिष्य विज्ञापनीयं मन्यामहे। तक्रधारापिष्टिकस्वेदादयो बहुफलाश्चिकित्साभेदाः केरलीयोपज्ञं प्रवृत्ता एव। बालचिकित्सा नेत्रचिकित्सा विषचिकित्सा इत्येतासु चिकित्साशाखासु केरलीयानामसाधारणाः सम्प्रदायभेदाः तेषां स्वरूपप्रतिपादनाय केरलीयैरेव विरचिताः कैरलीमया गैर्वाणीमयाश्च बहवो ग्रन्था अपि वर्तन्ते। अत आयुर्वेदस्य संस्कारमाधित्सूनां केरलेभ्यः सुबहु ग्रहीतव्यं स्यादिति नः प्रतिभाति। अत्रोदाहरणाय किंचिदिदमुच्यते। केरलीयैर्विषचिकित्सकैः प्रमाणतयाऽवलम्ब्यमानेषु ग्रन्थेष्वन्यतमे हरमेखलानाम्नि ग्रन्थे आखुविषप्रतिषेधप्रस्ताव इदमुपलभ्यते।

कोथशुक्रशकृन्मूत्रलालादंष्ट्रनखार्तवैः।
व्याप्नोत्याखुविषं तत्र कोथजं त्वतिदारुणम् ॥ १ ॥
कोथजे तु भवेद्ग्लानिरालस्यं गात्रगौरवम्।
आस्यतिक्तत्वमरुचिर्जृम्भा शिरसि गौरवम् ॥ २ ॥
दृशोऽरुणत्वमास्यस्य शोषो विश्लेष ओष्ठयोः।
निश्वासोच्छ्वासवृद्धिश्च सन्ध्याकुञ्चनकम्पनम् ॥ ३ ॥
ग्रन्थयः श्वयथुः सादः कक्षवंक्षणयोर्भृशम्।
शीतज्वरोऽतिरुङ् मूर्च्छा रोमहर्षो भ्रमो मदः ॥ ४ ॥
सद्योपक्रमशीलस्य साध्यमेतदुपेक्षया।
त्रिरात्रात्सप्तरात्राद्वा पक्षान्मरणमादिशेत् ॥ ५ ॥

इदानीं प्लेगाख्यया व्यवह्रियमाणे व्याधावपि प्रायेणेमानि लक्षणानि सम्भवन्तीति तन्निरूपणपरेषु पाश्चात्यनिर्मितेषु पुस्तकेषु प्रतिपादितं दृश्यते। अतो हरमेखलोक्ताया विषचिकित्साया अस्मिन्नपि महागदे फलेग्रहिता सम्भावितैवेति तद्विषये परीक्षाकरणं, मन्ये, नास्थाने सर्वथा परिणस्यतीति। एतादृशानां विषयाणामन्वेषणाय परिषदाऽनया विशेषतः श्रद्धातव्यमेव। यतोऽस्यामायुर्वेदशास्त्र इव पाश्चात्यचिकित्साशास्त्रेऽपि निष्णाता बहवोऽङ्गभावं भजन्ते। उभयोः सम्प्रदाययोस्तारतम्यविवेचनं तयोः सम्यक् स्वरूपज्ञानमन्तरा दुःशकमिति द्वयोरपि विशारदा एव साम्प्रतमायुर्वेदस्योज्जीवनाय सुतरामपेक्ष्यन्ते। प्रकृतमनुसरामः। केरलीयविनिर्मिता वैद्यकग्रन्थाश्च बहवो नष्टशिष्टास्तत्र तत्र ग्रन्थागारेषु निलीना वर्तन्ते। अष्टाङ्गहृदयस्य पाठ्याभिधाना कापि हृदयङ्गमा व्याख्या केरलेषु प्रचरति। चिकित्साक्रमप्रभृतयः शास्त्रार्थसंग्राहकाः संक्षिप्ताः प्रबन्धाः पूर्वोक्तैरष्टकुलजातैर्भिषग्वरैरनुभवं प्रमाणीकृत्य स्वस्वबुद्ध्या कल्पितानामुपदेशपरम्पराप्राप्तानाञ्च प्रत्यक्षदृष्टफलानामौषधयोगानां स्वरूपपाकक्रमादिनिरूपकास्तदा तदा तत्तद्रोगिभ्यो विधीयमानानामौषधनिर्देशानामेकीकरणेन लब्धजन्मानः प्रबन्धाश्चाद्यापि केरलीयवैद्यकानां कुलधनान्येव। तेष्वमीपूच्चावचा लघीयां-

सश्चिकित्साक्रमा निगूढा वर्तन्ते । अतस्तेषां भाषान्तरीकरणं मुद्रणं च सुबहूपकुर्यादिति सम्भाव्यते ।

आयुर्वेदोत्कर्षः

पाश्चात्यचिकित्सकैरसाध्यतयोपेक्षिता अनेके रोगा अष्टाङ्गहृदयकुशलैरुन्मूलिता ममानुभवगोचराः । कायचिकित्साविषये पाश्चात्यमार्गापेक्षयाऽऽयुर्वेदमार्गस्योत्कर्षमनेकेऽधुनापि सम्मन्यन्ते, केषुचिद्विषयेषु प्रत्यक्षानुभवं प्रमाणयद्भिः सोऽयमकामैरप्यभ्युपगन्तव्यो भवत्यायुर्वेदोत्कर्षः । कालपरिवर्तनेन गरीयस्यामप्युपेक्षायां जातायां शिथिलमूलेनापि ज्ञानेन रोगाननुपक्रममाणानामायुर्वेदचिकित्सकानामेतावानस्ति फलोदय इत्यहो आयुर्वेदागमस्य महिमातिरेकः । तत्तादृशमुत्कर्षमधिष्ठितस्य सेयं शोचनीया दशा कथंकारमुपानमत् को मार्गः पुनरपि तस्योन्नमनायाश्रयणीय इत्यनयोरप्यंशयोः किंचिदभिधित्सामहे ।

आयुर्वेदः शोचनीयावस्थां कथं गतः ?

देशान्तरागतशत्रुपीडाद्युपद्रुता भारतीयजनता प्रायेण शास्त्राभ्यासविमुखा बभूव । ततश्च क्रमेण सर्वाण्यपि शास्त्राणि संकुचितप्रचाराण्यभवन् । आयुर्वेदविद्या तु विशेषतोऽपि तां दुर्दशामवाप्ता बहुषु देशेष्वस्तंगतप्राया समभवन्, सत्येवं 'यत्र न भिषजस्तत्र सर्वेऽपि भिषजः" इति न्यायेन चिकित्सापि प्रावर्तत । रोगनिवृत्तिर्न चिकित्सामुपाजीवत् किन्तु भाग्यमेकमेव । एवं कियत्यपि काले गतेऽशास्त्रमूलकाः केवलानुभवमात्रमूलकाः केचन सम्प्रदायाः प्रादुरभूवन् । पश्चाच्च पाश्चात्यैः सहेमं देशं प्रविष्टस्तच्चिकित्सामार्गः प्रतिक्षणं नवतां भजन्सर्वत्र प्रचुरं प्रचारमवाप्य जनानामादरपात्रमजनिष्ट । आयुर्वेदागमस्तपस्वी क्वापि कोणे सनिकारमिव निरास्यत । एवं बहुविधैर्दुरदृष्टैर्बाध्यमाना क्वापि बहुमतिमभजन्ती स्वप्रणयिनां जीवनोपायमुपकल्पयितुमप्यपारयन्ती चायुर्वेदविद्याऽत्यन्तविलयमुपजगाम । का नामेतोपि गरीयसी नराणां विपदिति न ज्ञायते । एवमस्याः पुनरुज्जीवनाय चिराय न केनाप्युद्यमः कृतः । एवं गते गणरात्रे परमोपकारिण्यां चास्यां विद्यायां प्रायेण विलुप्तप्रायायां जनानां सुकृतपरिपाकमहिम्ना महतां केषामपि मनसि नष्टप्रायाया अस्या विद्याया उद्दिधीर्षा समजनि।

आयुर्वेदोद्धारार्थं वैद्यपरिषदः प्रयत्नाः

तेषामुद्यमा अतीतेषु वत्सरेषु तत्र तत्र मिलिताभिः परिषद्भिः सविस्तरं प्रकाशिताः क्रमेण फलोन्मुखतामाविष्कुर्वन्तः सुजनानामन्तरंगेषु परमां मुदमावहन्ति । इतोऽप्यस्माभिरयमुत्साहः फलसिद्धिपर्यन्तमविच्छिन्नं यद्युररीक्रियेत तदा जितं भागधेयेन भारतीयानामिति निस्सन्देहं प्रतिजानीमः । गुरुतराणि स्वस्वकार्याणि परित्यज्य बहुविधान्मार्गक्लेशानपरिगणय्यातिदूरदेशेभ्योऽप्यत्रागमनमेषां महतामस्मिन्महाफले व्यवसिते

गरीयांसमादरं विशदयतीति किमु वक्तव्यम् । श्रीमतामयमुद्यमो न चिरेण फलेग्रहि-र्भूयादिति क्रियासमभिहारेणाशास्महे ।

आयुर्वेदतन्त्रस्य व्यापिता, इतरवैद्यतन्त्राणामेतन्मूलकता, अस्य साम्प्रतिकशोच-नीयावस्थातः समुद्धरणार्हता तदुपायाश्च विविधा मिलितचरीषु परिपत्सु धुर्यतामारूढैः प्रतिपादिता एवेति न वयं पिष्टं पेष्टुमभिलषामः । आयुर्वेदोज्जीवनाय समनन्तरमेव करणीयानां प्रकारः परं यथामति मयेह निरूप्यते ।

आयुर्वेदोज्जीवनोपायाः ।

(१) तत्र प्रथममेव सर्वेषु देशेष्वन्विष्य देशभाषामयाः संस्कृतभाषामयाश्च सर्वेऽप्यायुर्वेदग्रन्था एकत्र संग्रहणीयाः । नहि समग्रं ग्रन्थजातमनुपलभ्यायुर्वेदस्य स्वरूपमेव साकल्येन ज्ञातुं शक्यम्। सति च स्वरूपज्ञाने न्यूनाधिक्यादिसमीक्षणं सुकरं सम्पत्स्यते। अतो ग्रन्थसम्पादनाय प्रथमतः प्रयतितव्यम् ।

(२) उपलब्धेषु ग्रन्थराशिष्वापाततः परस्परविरुद्धा इवावभासमानाः सिद्धान्तभेदा यथा वा समन्वयं प्रपद्येरंस्तथा तत्त्वनिर्णयाय यत्नो विधेयः । एवं प्रत्यक्षदृष्टेष्वप्यर्थेषु यत्रायुर्वेदस्य पाश्चात्यसरण्या सह विरोधो भासते तत्रैकवाक्यताघटनोपायाश्चिन्तनीयाः । शारीरनिरूपणादिषु प्रतीयमाना विरोधन्यूनताधिक्यादय. प्रमाणानुरोधेन च परिहरणीयाः ।

(३) पाश्चात्यसरणेरायुर्वेदसरणेश्च विषयव्याप्तिमाकलय्यायुर्वेदसरणौ यद्यस्ति न्यूनता वाधिक्यं वा विषयाणां तर्हि तन्निरूप्य ग्राह्यत्याज्यविभागकरणेन संस्कृतिराधातव्या । एवं क्रियमाणे सरण्योरनयोश्चिकित्सादिविषयकं गौरवलाघवमवश्यं परिगणनीयमेव । यथा नाम चिकित्सासंप्रदायोऽकिंचनानामपि सुसाधो भवेत्तथाविधा एव नव्यमार्गा अवलम्बनीयाः ।

(४) आयुर्वेदसंमतत्रिदोषविभागस्तदवलम्बी रोगविभागश्च पाश्चात्यसिद्धान्तेन सह कथं संवदतीति निरूप्यायुर्वेदसंमतानां संज्ञानां प्रतिरूपकाः पाश्चात्यसंकेता अपि ग्रहीतव्याः । औषधानां गुणदोषविचारे यथा स्यादायुर्वेदवैद्यकानां पाश्चात्यवैद्यकानां च परस्परमभिप्रायावगतिस्तथा विधानमप्यावश्यकम् ।

(५) तत्तद्ग्रन्थेषु प्रतिपादितानामौषधनाम्नां शक्तिग्रहणमन्तरे बहुशः क्लेशपरम्परा जायमाना दृश्यते । क्वचिच्च देशभेदेनौषधानान्नामवैय्यत्यासश्च सम्भवति तादृशविषये शक्तिनिर्णयाय कः प्रामाणिको मार्ग इति निर्धारणमप्यपेक्षते ।

(६) यत्र देशे ऋतुकार्यसमताद्या गुणाः सन्ति तत्रैका मातृका पाठशाला स्थापनीया । तदङ्गतया ग्रन्थशालाप्येका प्रतिष्ठापयितव्या । तस्यां च प्रकृतशास्त्र-विषयकाः सर्वेऽपि ग्रन्था यावच्छक्यं संग्राह्याः । पाठशालाङ्गतया काप्यौषधशालाऽपि कल्पनीया । यस्यां तत्तद्ग्रन्थप्रतिपादितानि सर्वाण्यसंस्कृतौषधानि संचेतव्यानि ।

औषधानामुपयोगयोग्या भागा इमे, संग्रहप्रकार एवम्, अस्मिन्देशे काले च सुलभमिदमित्यादिविवरणपराश्चिटिकास्तत्तदौषधनिकटे लम्बनीयाः। शास्त्राध्ययनेन सार्धं दृष्टकर्मतामपि सम्पादयितुं सौकर्याधानाय पाठशालासहोदरी काचिच्चिकित्साशाला च स्थापनीया। तस्यां च रोगाभिभूताः संवेश्य चिकित्सामर्हन्ति। घृततैलरसायनादीनामौषधानां संस्कारोऽपि तत्रैव विधातव्यः। ओषधीनां स्वरूपगुणादिविज्ञानाय नानादेशस्थानामेकत्र सौलभ्याय च पाठशालासंनिकृष्ट एव स्थले किमप्युद्यानं निर्मातव्यम्। तत्र च विद्यार्थिनस्तदा तदा प्रविश्य तेषां स्वरूपं जानीयुः। ग्रन्थाध्ययनस्य औषधपरिचयस्य चिकित्साकर्मपरिशीलनस्य च यथा न मिथो विरोधः संजायेत तथा कालं विभज्य पाठकर्म निर्णेतव्यः। एवंविधैरुपायैरायुर्वेदस्य साम्प्रतिकी न्यूनता समूलमुन्मूल्येतेति दिङ्मात्रमिदं प्रदर्शितम्।

आयुर्वेदीयशल्याद्यष्टमार्गेषु गतसंवत्सरे मत्पूर्वगामिना सप्रपञ्चं यन्निरूपितं ततोऽधिकं न किमपि वक्तव्यमस्तीति तानि सर्वाण्यनुवदाम्यभिनन्दामि च। नाडीविवेकविषयेऽस्मद्वैद्यकानामिदानीन्तनी दशा नितान्तं शोचनीयेति सर्वविदितमेतत्। तत्परिहारे च यावान् यत्नः शक्यते तावानविलम्बेन करणीय इत्यत्रापि कः सुधीः संदिहीत?

एवमन्येष्वपि शास्त्रांशेष्वनेकैर्हेतुभिरुपनतानां न्यूनतानां परिहाराय परिषद्धाऽनया सम्यगालोच्य शीघ्रतरमैकमत्येनाधीयतां समुद्यम इति पौनःपुन्येन प्रार्थयमानः सर्वलोकोपकारकस्यास्य समुद्यमस्य सर्वत्राप्रतिहतं भावुकमुदेतु भगवतो धन्वन्तरेः कृपाकटाक्षेणेति च मुहुराशासानः सम्प्रति विरमामीति सर्वमवदातम्।

ज्ञानामृतं सुमनसां ददतीमार्तिहारिणीम्।
सर्वकामदुघामेनां सभाधेनुमुपास्महे॥



॥ श्रीः ॥

वैद्यरत्नानां निखिल भारतीय नवम वैद्यसंमेलनाधिवेशनाध्यक्षाणां

स्वर्गीय पण्डित डी॰ गोपालाचार्लु महोदयानां

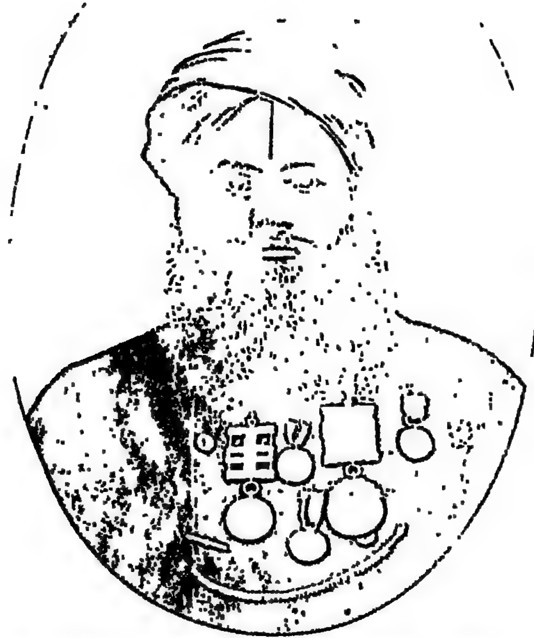
जीवन चरित्रम् ।



एते हि महोदया भारतेऽस्मिन्निदानीन्तनानामायुर्वेदविपश्चितामपश्चिमं खलु स्थानमलमकुर्वन्निति, तेषां पुण्यचरितानां चरित्रमत्र संक्षेपतो विलिख्यमानमनुचितं न स्यादिति विश्वसिमि, यत एतादृशानां सुचरितान्यनुस्मरन्तः खलु तादृशीमेव सरणिमनुसरेयुरन्येऽपि वैद्यसोदराः ।

श्रीगोपालाचार्लुमहोदया वैखानस-द्राविड-कुले श्रीयुतवैद्यपुङ्गवरामकृष्णमाचार्लुमहाशयानां तनूजाः श्रीमत्या राजलक्ष्म्यम्बाया गर्भशुक्तिमुक्ताफलभूता आंगिरससंवत्सरे आश्वियुजेमासे मद्रासप्रान्तीयमसिलिपट्टणे किलाजायन्त । अथ शैशवे साधारणप्राथमिकविद्याभ्यासात् परं पितुः सकाश एव कुलक्रमागतां वैद्यविद्यामेवाभ्यस्य तावता तृप्तिमलभमानास्ते यौवनारंभे वयसि मैसूरराज्यमधिगत्य तत्र राजकीयायुर्वेदकलाशालायां प्रविश्य तत्राध्यापकानां श्रीयुत पुट्टस्वामिशास्त्रिमहाशयानां समीपे संस्कृतसाहित्यमायुर्वेदशास्त्रं चाधीयन्ते स्म । अध्ययनकाले च स्वप्रतिभाप्रभावेनात्मनो भाविनीमन्यादर्शां वैद्यविद्यावैदुषीं प्रकाशयन्तस्ते अध्यापकानामसाधारणायाः प्रीतेः पात्रीबभूवुः । एवं तत्र कलाशालायामधीयाना अभ्यसन्तश्च कर्मपथे तत्रैव राजकीयायुर्वेदधर्मवैद्यशालायामुपार्जयामासुः शास्त्रे कर्मणि च वैद्यस्य नितान्तं निस्तुलं च पाण्डित्यम् । अथ तत्र सर्वोत्तमकक्षायामुत्तीर्णपरीक्षाणां गोपालाचार्याणामनन्यसदृशं प्रतिभाविशेषं वैद्यवैदुष्यं च दृष्ट्वा सन्तुष्टा मैसूरराजकीयायुर्वेदकलाशालाधिकारिणः श्रीगोपालाचार्यान् सपारितोषिकेण प्रमाणपत्रप्रदानेन सबहुमानं संभावयामासुः। अथ गृहीतप्रमाणपत्रास्ते पुनः कलिकात्ता, मुम्बई, जयपुर, नासिक, लाहोर, हरिद्वार, काशी, काश्मीरं इत्यादिषु सुप्रसिद्धेषु पत्तनेषु पर्यटन्तस्तत्र तत्र सुगृहीतनामधेयानां वैद्यविदुषां सहृदयानां च सौहार्दं च संपाद्य, तद्द्वारा स्वकीयमायुर्वेदवैदुष्यं मुहुर्मुहुरुत्तेजयन्तश्च कालान् कतिपयान् यापयामासुः ।

अथ प्रतिनिवृत्य बाङ्गलूरपत्तने आयुर्वेदवैद्यशालायाः प्रधानचिकित्सकपदमध्यतिष्ठन् । एवं स्थिते कदाचित्तत्र मिलितयोः श्रीयुत पी. वी. कृष्णस्वामिचेट्टि बी. ए., बी.एल., तथा यस. सुब्रह्मण्य अय्यर बी. ए. एल. एल. डी. इत्येतयोः प्रोत्साहनवशान्मद्रपत्तनमागत्य श्रीकन्यकापरमेश्वरीदेवस्थानाधिकारिभिः संस्थापितायां आयुर्वेदधर्मवैद्यशालायां प्रधानचिकित्सकपदमधिष्ठाय तत्र समागच्छतो रुग्णान् असाधारणेनात्मनश्चिकित्सापाटवेन नीरोगिणः कृत्वा स्वल्पकालेन मद्रासपत्तने पौरजनतायाः परमां प्रीतिमर्जयामासुः । एवमेषां पण्डितानामायुर्वेद असाधारणीं नैपुणीं विचार्य सन्तुष्टाः पूर्वोक्तवैद्यशालाधिकारिणः कामप्यायुर्वेदकलाशालामपि श्रीगोपालाचार्याणामाध्यक्ष्ये स्थापयामासुः, तत्र च भारतस्य नानाप्रान्तेभ्यः समागतान् विद्यार्थिनः श्रीमदाचार्या आयुर्वेदं कालोचितपरिष्कारेण सह लक्ष्यलक्षणपूर्वकमध्याप्य वैद्यशास्त्रस्य विविधानां निगूढतत्त्वानां प्रकाशनेन प्रसारयामासुर्वसुधातले निजं निर्मलं निस्तुलं यशः । अथ शास्त्रे कर्मपथे



श्रीमान् स्वर्गीय वैद्यरत्न पं. डी. गोपालाचार्लु, मद्रास।
प्रिन्सिपल, मद्रास आयुर्वेदिक कालेज।
अध्यक्ष, नि. भा. व. ९ वैद्यसंमेलन लाहोर (सन १९३५ ई.)।

च निरन्तरेणाश्रान्तपरिश्रमेणायुर्वेदमहोदधिं विमथ्य "हैमादिपानकं" नाम प्लेगनाशकं महौषधममोघं किमपि साक्षादमृतमिव मृत्युनाशकं समाविष्कृत्य लोकोपकाराय प्रचारयामासुश्च । अपि चान्यान्यपि बहून्यौषधरत्नानि जीवामृतप्रभृतीनि स्वबुद्धिप्रभावेण स्वयं निर्माय तादृशैरमूल्यैरौषधोत्तमैर्विराजमानमायुर्वेदाश्रमं च संस्थाप्य, तदार्जितं च धनं विद्यार्थिनां वेतनादिरूपेणायुर्वेदाभिवृद्धय एव विनियुज्य "नात्मार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति । यो वर्तते चिकित्सायां स सर्वमतिवर्तते" इति चरकस्य प्रमाणवाक्यानुसारेण समाचरन्तः श्रीपण्डितमहोदयाः सत्यमेवायुर्वेदलोके किमप्यादर्शरूपं महार्हमुत्कृष्टपदं प्रपेदिरे । एवं स्थिते आयुर्वेदमवैज्ञानिकं मन्यमानैः परोत्कर्षासहिष्णुभिश्च यैश्चनाङ्गलवैद्यैर्निपातितेषु विविधेष्वन्तरायेष्वपि सुधीरनिश्चलमनस्कानां श्रीमदाचार्याणां नैव संजातो भङ्गः क्वचिदपि । "नहि कस्तूरिकागन्धः शपथेन निवार्यते" खलु । व्यपगतेषु चैवं कतिपयेषु कालेषु पूर्वोक्तायुर्वेदकलाशालायास्तदानीन्तननिर्वहणमयथातथं मन्यमानाः श्रीगोपालाचार्याः श्री चेन्नपुर्यायुर्वेदप्रचारणीनाम्नीं कामपि सभां संघटय्य कलाशालां च तदनुबन्धिनीं विधाय, स्वयं तन्निर्वाहकत्वमध्यक्षत्वं च स्वीकृत्य तदभिवृद्धये सुतरां कृतपरिश्रमास्तदायत्तमनसा । स्वार्जितं सर्वमपि तदर्थमिति भावेन महता प्रयत्नेन च तां "मद्रास आयुर्वेदकलाशाले" ति नाम्ना सम्यगेव निर्वहन्ति स्म ।

श्रीयुत पं० डी० गोपालाचार्यमहोदयानामेवंविधायां विजयप्रदायां जीवितयात्रायां संपन्ना हि विशिष्टसंभवा बहवः । तेषां दिङ्मात्रमत्र पृथगुल्लिखामि । श्रीपण्डितमहोदयैर्बहूनि स्वर्णपदकानि, प्रथमश्रेणिकानि प्रमाणपत्राणि च प्राप्तानि । तत्रादिमं स्वर्णपदकं, १९०४ वर्षे मुम्बईवस्तुप्रदर्शने तेषां प्लेगमहौषधविषये प्राप्तम् । द्वितीयं स्वर्णपदकं तस्मिन्नेव वत्सरे गद्वालसंस्थानतः प्राप्तम् । तदनु १९०५ वत्सरे काश्यां संजाते औषधप्रदर्शने, १९०६ वत्सरे कलकत्तावस्तुप्रदर्शने चैकैकं स्वर्णपदकं प्रमाणपत्रं च प्रथमश्रेणीकं प्राप्तम् । १९०७ वत्सरे फिब्रवरिमासे कलिकातापत्तने "भिषड्मणि" इति, तथा तस्मिन्नेव वत्सरे मईमासे नासिकक्षेत्रे "आयुर्वेदमार्तण्ड" इति चोपाधिद्वयं प्राप्तम् । एवं क्रमेणोत्कर्षस्याधिकाधिकां कोटिमुपगच्छतां श्रीगोपालाचार्याणां योग्यतां विज्ञाय सर्वेषामप्युपाधिविरुदादीनामुपरि मणिमकुटायमानं "वैद्यरत्नम्" इत्युपाधिञ्च १९१३ संवत्सरे महामहिमश्रीभारतचक्रवर्तिनो जार्जमहाराजाधिराजा अपि प्रादुरस्मत्पण्डितवरेण्याय । एवं विविधैरुपाधिभिः स्वर्णपदकैश्च सम्मानितास्ते सत्यमेव वैद्यानां रत्नवदेव नियतमनाहत प्रभमुदभासन्त ।

किं च आयुर्वेदरङ्गे श्रीवैद्यरत्नमहोदया न केवलमेतावता प्रतिष्ठामुपजग्मुः । परंतु वैद्यानां बहुषु बहुविधेषु च समावेशेषु अग्रासनमङ्गीकृत्य विविधैः सारगर्भैरुपदेशैरभिभाषणैश्च वैद्यानां मार्गदर्शिपदं नेतृप्रमुखपदवीं च नूनमलंचक्रिरे । तत्र चादौ १९०९ संवत्सरे केरले आर्यवैद्यसमाजस्य सप्तमे वार्षिकाधिवेशने अग्रासनमध्यरुक्षन् । तदनु १९१३ ईसवीयस्य एप्रिल्मासे बम्बईपत्तने आ. वैद्यसम्मेलनस्य च, तथा १९१७ ईसवीयस्य मईमासे हरिद्वारे ऋषिकुलब्रह्मचर्याश्रमे प्रवृत्तस्य वैद्यसम्मेलनस्य, तस्मिन्नेव वत्सरे नवम्बरमासे बेजवाडानगरे प्रथमान्ध्रायुर्वेदवैद्यसम्मेलनस्य, तथा १९१८ फिब्रवरिमासे तेन्नालदेशे गुण्टूरमण्डल-आयुर्वेदयूनानि वैद्यसम्मेलनस्य, तस्मिन्नेव वर्षे एप्रिल्मासे लाहोरनगरे नि. भा. आ. वैद्यसम्मेलनस्य, १९१९ आगस्टमासे तिरुवहीन्द्रपुरे द्वितीयद्राविडवैद्यसम्मेलनस्य चाग्रासनं स्वीकृत्य अभिभाषणद्वारा विविधानायुर्वेदतत्त्वविशेषान् आयुर्वेदाभिवृद्धिमार्गांश्च प्रकाशयामासुः । तथैव बहुषु स्थलेषु श्री वैद्यरत्नमहोदया जनान् प्रोत्साह्य

वैद्यशालाः, आतुरालयान्, पाठशालाश्च प्रतिष्ठापयामासुश्च। तेषां प्रोत्साहनेन प्रतिष्ठापिताः पञ्चषाः वैद्यशाला अत्र मद्रपत्तन एव प्रचलन्तीदानीम्।

अपि चायुर्वेदस्याभिवृद्धिमार्गाणामन्यतमे ग्रन्थनिर्माणमार्गेऽपि ते न पदं न निदधिरे। ते हि परं स्वदेशवत्सलाः स्वभाष्या अन्ध्रभाषया किल ग्रन्थान् व्यरीरचन्। माधवनिदानादीन् उपविंशति ग्रन्थान् अन्ध्रव्याख्यया स्वकीयया समायोज्य मुद्रापयामासुः।

एवं विविधैः शुभचरितैरस्मदायुर्वेदस्य महदुपकृत्यान्ते हन्त! मधुमेहपिटकापीडिता १९२० सेप्टम्बर २८ दिवसे श्रीधन्वन्तरिपदं प्रपेदिरे। सन्तु नाम बहवो वैद्यप्रमुखाः पण्डिताग्रगण्याश्च, परमेवंविधस्वार्थत्यागपूर्वकं परार्थजीविनः पुरुषाः सुदुर्लभा दृश्यन्ते। अतः प्रार्थये तत्तादृशानां स्वर्गीय श्रीवैद्यरत्नगोपालाचार्यमहोदयानां ददातु शाश्वतं सुखं भगवान् धन्वन्तरिरिति॥





निखिल भारतीय वैद्यसम्मेलनस्य नवमाधिवेशन सभापतेः, स्वर्गीय वैद्यरत्न,

ए० बी० ए० एण्ड ए० एम० बी०

मद्रासवास्तव्य पण्डित डी० गोपालाचार्लु

आयुर्वेदमार्तण्ड, भिषङ्मणि महोदयस्य अभिभाषणम् ।

श्री श्री जगद्गुरुविरूपाक्षशङ्कराचार्यस्वामिनः ।

आर्याः ! प्रियसोदरवर्याः !

नारीमतल्लिकाः ! विद्वद्वैद्यप्रकाण्डाः !

पुण्यपत्तनेऽस्मिन् अधिनिवेक्ष्यमाणाखिलभारतवर्षीयनवमायुर्वेदवैद्यमहासम्मेलनानुबन्धभूतस्य आयुर्वेदवस्तुप्रदर्शनस्य उपक्रमणोत्सवमभिनिर्वर्तयितुं ममाकांक्षिषुः एतन्महाकार्यनिर्वहणाय ज्ञानेन वयसा च मत्तो ज्येष्ठेष्वनेकेषु महाशयेषु विद्यमानेष्वपि भवदनल्पव्याजकृपाविशेषप्रेरितोऽहमस्मिन् कार्ये प्रवर्तितुं साहसमकरवम् ।

भारते वर्षे कतिपयात्कालादारभ्य सर्वा जातयः सर्वे सङ्घाः सर्वाणि कुलानि च स्वजात्युन्नतिं स्ववृत्त्यौत्कृष्ट्यं स्ववाङ्मयोन्नतिं चाभिकांक्षन्तः तदभिवर्धकेषु कृत्येषु प्रयतन्ते ।

एते च प्रतिवत्सरमपि एकत्र समाविशन्तः तत्तदभिवृद्धिकारकान् विषयान् निश्चित्य श्लाघापात्रतामाप्नुवन्ति ।

"आचार्यस्सर्वचेष्टासु लोक एव हि धीमतः" इत्येनां वाग्भटोक्तिमनुसृत्य आयुर्वेदविदोऽपि उत्साहपूरिताः स्वविद्याभिवर्धकेषु कृत्येषु व्यवस्यन्ते ।

भारतभूभागे अनेकेषु प्रदेशेषु आयुर्वेदकलाशाला आयुर्वेदधर्मवैद्यशालाश्च प्रतिष्ठिताः केचिच्च प्राचीनायुर्वेदग्रन्थान् प्रकटीकुर्वन्ति । अपरे तादृशान् आयुर्वेदग्रन्थान् देशभाषासु परिवर्तयन्ति, अन्ये च पाश्चात्यवैद्यविद्यावैदुष्यं संयोज्य तद्विद्यावैदुष्यविमिश्रितान् प्रबन्धविशेषान् विरचयन्ति । केचिच्च सिद्धौषधत्वेन विख्यातान् आयुर्वेदीयानौषधजातान् सज्जीकृत्य प्रजोपयोगमातन्वते । अपरे च केचन आयुर्वेदवैद्यसम्मेलनैरस्या विद्यायाः निरतिशयामभिवृद्धिमापादयन्ति ।

एवमनेकेषु भागेषु अनेकविधैर्मार्गैरायुर्वेदविद्या अभिवृद्धिमानीयते । एवं कतिपयवत्सरकालमेतादृशायुर्वेदविद्याभिवर्धनविषयसंचालनाभिनिर्वर्तनान्तरमेव अस्यां एता-

दृशाः महिमानस्सन्तीति लोकैश्च विज्ञायेत। देशीयवैद्यनिपुणैरितोप्यधिकश्रद्धां वहद्भिः एकाग्रतया तदुचितेषु कृत्येषु यत्नः करणीयः।

विज्ञानं तद्भेदाश्च।

लोके विज्ञानं च विद्याकलाभेदेन द्वैविध्यमापद्यते। तयोः प्रथमा वाङ्मयाधीना। द्वितीया च वाङ्मयाभिवृद्धिं पारिश्रमिकाभिवृद्धिं वस्तुप्रदर्शनानि च आश्रिता। आयुर्वेदविज्ञानं तु द्वितीयान्तर्भूतम्। तत एतदभिवृद्धये रसशालाभिधानानि कर्मागाराणि वस्तुप्रदर्शनागाराणि च आवश्यकतामापद्येरन्।

आयुर्वेदस्य कलात्वप्रतिपादनम्।

सुप्रसिद्धनीतिशास्त्रकोविदः शुक्राचार्यः चतुष्षष्टिकलाः विभज्य प्रदर्शयन् तत्र आयुर्वेदविद्यासम्बन्धिनीः कलाः दशेति निरणैषीत्।

तत्रच "पाषाणधात्वादिद्रुतिः तद्भस्मीकरणं कला। धात्वौषधीनां संयोगक्रियाज्ञानं कला स्मृता। धातुसाङ्कर्यपार्थक्यकरणं तु कला स्मृता। संयोगपूर्वविज्ञानं धात्वादीनां कला स्मृता। क्षारनिष्कासनज्ञानं कलासंज्ञं तु तत्स्मृतम्" इति तद्भेदाः निरूपिताः।

एवमेव वात्स्यायनमहर्षिविरचितेषु कामसूत्रेष्वपि "सुवर्णरत्नपरीक्षा" "मणिरागकरज्ञानं" "धातुवादः" एवमादिकैः सूत्रैः वैद्यसम्बन्धिन्यः कलाः निरूपिताः, एवमादिभिरनेकैः प्रमाणैरायुर्वेदविज्ञानस्य कलान्तर्गतत्वं निश्चितं भवति। अत्र प्रतिपादितानां भेषजानां निर्माणं कलान्तर्भूतमिति सर्वविदितमेव।

कलान्तर्भूतमेतद्वैद्यविज्ञानं तर्कव्याकरणादिकमिव न केवलेन वाग्जालप्रसारणेन चरितार्थतामापद्यते। अपितु अत्र यदुक्तं तत्कर्मणा निर्वर्त्यैव निर्धारणीयम्। यत्कर्मणा निर्वर्तितं तत्प्रयोगेन फलयुतमभिज्ञेयम्।

लक्ष्यलक्षणविशिष्टोऽयमायुर्वेदः, एवं भूतैः परिशोधनैरेव वृद्धिमुपनीतः प्राचीनैरिति तत्तद्ग्रन्थपर्यालोचनेन विज्ञायते।

रसशालाः।

सर्वौषधसंपादनक्षमे रम्ये प्रदेशे रसशाला निर्मातव्या। सा च प्राचि उत्तरे ईशान्ये वा दिग्भागे सावरणा सुकृपा परस्पराबाधकतत्तद्विभागविशिष्टा च कार्या।

रसशालायां पदार्थस्थापननियमाः।

तत्र प्राच्यां दिशि रसकर्माणि आग्नेय्यां च पुटकर्माणि दक्षिणायां पाषाणकर्माणि नैऋत्यां च शस्त्रकर्माणि पश्चिमायां क्षालनकर्माणि वायुदिशि शोषणानि उत्तरस्यां च वेधनानि कर्तव्यत्वेन नियम्यानि।

ईशान्ये भागे सिद्धौषधानां प्रतिष्ठापनं कार्यम्। एतदौषधसिद्धिसाधनभूतानि—नालिकायन्त्रं, सोमनालयन्त्रं, वालुकायन्त्रं, विद्याधरयन्त्रं, गोस्तनमूषा, अन्धमूषा, भस्त्रिका,

कोष्ठी, सत्त्वपातनकोष्ठी, चालनी, खल्वादीन्युपकरणानि, कषायादीनि द्रव्याणि, तैलादि-द्रव्याणि चेत्येतादृशानि। खनिजप्राणिजोद्भिज्जरूपं पदार्थसामान्यं सज्जीकृत्य अत्र प्रतिष्ठापनीयम्।

एवमेतादृशौषधनिर्माणपरिशोधनविधानोपयोगिरसशालानिर्माणविधानानि रसरत्न-समुच्चयादिरसतन्त्रनिरूपकेषु ग्रन्थेषु प्रदर्शितानि।

परिशोधनानि।

एतत्कालिकाः पाश्चात्यपण्डिताः पदार्थतत्त्वं सुष्ठु परिशोध्य परिशोधितान् विषयान् सिद्धान्तीकृत्य प्रकटयन्तीति सर्वविदितमेव। एवमेव प्राचीनार्यविज्ञानधुरीणाश्च सुपरि-शोधितानेव विषयान् सिद्धान्तीकृत्य प्रकटयांचक्रुरिति अनेकानि निदर्शनानि अवबोध-यन्ति। तानि च—

"स्वहस्तेन कृतं सम्यक् जारणं न श्रुतं मया" "स्वहस्तभवयोगेन कृतं सम्यक् श्रुतेन हि" "धातुबन्धस्तृतीयोऽसौ स्वहस्तेन कृतो मया" "दृष्टप्रत्यययोगोऽयं कथितो नात्र संशयः" इति रसार्णवे, "यद्यद्गुरुमुखाज्ज्ञातं स्वानुभूतं च यन्मया। तत्तल्लोक-हितार्थाय प्रकटीक्रियतेऽधुना" इति रसरत्नाकरे च प्रतिपादितम्। एतद्ग्रन्थपर्यालोचनया अस्मत्प्राचीनवैद्या अपि यद्यत्स्वहस्तेन कृतं दृष्टं स्वानुभवेन प्रत्ययपात्रतामुपलब्धं च तमेव विषयं प्रकटीकुर्वन्त आसन्निति सुस्पष्टमेवावगम्यते।

सिद्धौषधपरीक्षा।

सिद्धानां भस्मसिन्दूरादीनामौषधानां परीक्षणविधानानि च अंगुलिवद्धे रेखापूर्णता जलप्लवनं पञ्चमित्रसंयोगेन अपुनर्भवः, इत्यादिभिर्विज्ञायमानानीन्त आसन्नित्यायुर्वेद-विदां सुविदितमेव।

खनिजादिसंयोगविशेषसिद्धानां लोहसिन्दूरवसन्तकुसुमाकरादीनां दिव्यौषधानां सुसिद्धत्वाद्यवबोधकाः परीक्षापद्धतयः अधः प्रदर्शितैः केलदिवसवराजविरचित शिवतत्त्वरत्नाकरस्थश्लोकैरेतैरवगम्यन्ते—"रसौषधानि सर्वाणि त्वग्निमध्ये विनिक्षिपेत्। किञ्चिद्गन्धं धूमयुक्तं रसयुक्तं सुपाचितम्। न ज्ञायते गन्धरसमतिपाकमनौषधम्। वल्मीकशिखराकारं भङ्गे नीलोत्पलद्युति। घर्षणे रक्तवर्णं स्यात् सिन्दूरं तत्प्रशस्यते। चाम्पेयकुसुमाभासं तद्गन्धेन च संयुतम्। लघुवारितरं श्लक्ष्णं वसन्तकुसुमाकरम्। बृहतीकुसुमाकारं लघु वारितरं गुरु। घर्षणे कृष्णवर्णं स्यात् तन्मृगाङ्कस्य लक्षणम्," एवमादिभिः पद्यैः सिद्धौषधान् अग्निनिक्षेपजनितधूमेन वर्णविशेषेण घर्षणेन तोलनेन च जानन्त आसन्निति विज्ञायते।

लोहद्रवशंखद्रवादिपरीक्षा।

द्रवरूपाणां शङ्खद्रवलोहद्रवादीनां शक्तिपरीक्षणविधानान्येवं प्रदर्शितानि—

"लोहसूचीं समादाय लोहद्रावे विनिक्षिपेत् । तत्क्षणान् द्रवतां याति सा सूची नात्र संशयः । ताम्रद्रावे तथा सूचीं सन्धिभेदां विनिक्षिपेत् । सूचीद्रावो याममात्रान् भवत्येव न संशयः । शङ्खद्रावे शङ्खसूची चतुर्यामेन संद्रवेत् । एवं परीक्षां कृत्वादौ प्रयोगानारभेद् ध्रुवम्" इति सुवर्णयन्त्रस्य द्वितीये कल्पे प्रत्यपादि ।

उपरिनिर्दिष्टेभ्यः परीक्षाविधानेभ्यो भिन्नास्तैललेह्यघृतादीनां सुपक्वापक्वादिपरिज्ञानोपायाः आत्रेयभेषजकल्पादिषु सुबोधिताः ।

विमर्शकसभाः ।

एतादृशानां विमर्शनानां विधानानि पूर्वोदितरसशालासु प्रयोगपूर्वकविज्ञानेन विद्वद्वैद्यपरिषत्सु चर्चापूर्वकविमर्शनेन कुर्वाणा आसन् । अत्र विषये चरकसूत्रस्थानान्तर्गते आत्रेयभद्रकाप्यीये अध्याये प्रोक्तरसविषयकप्रस्ताव एकं प्रमाणम् । तत्रहि—आत्रेय, पूर्णाक्ष, काङ्कायन, बाह्लीक निमि प्रभृतयः केचन महर्षय एकत्र संभूय द्रव्यसामान्यनिष्ठं रसमुपादाय तस्य तस्याभिप्रायं सूचयन्तः तत्तत्पश्चात् सयुक्तिकं परामृश्य रसस्य मधुरादिभेदेन षड्विधत्वं निरणैषुः, इति विज्ञायते ।

अन्यच्च चतुर्दशोत्तर अष्टशततमे (814) क्रैस्तवशकाब्दे राष्ट्रकूटवंशीय श्रीकुलोत्तुङ्गचोलेश्वरास्थानविद्वद्वैद्येन उग्रादित्याचार्येण कुम्भदन्तहस्तचारिप्रभृतिकैः चत्वारिंशत्संख्याकैः भिषग्भिरुपसाधिते महासदसि मांसाशनमनर्हमिति प्रतिपादयता उपनिबद्धं प्रसङ्गमुद्दिश्य एवं प्रपंचितमस्ति कल्याणकारके ग्रन्थे—"ख्यातश्श्रीनृपतुङ्गवल्लभमहाराजाधिराजास्थितः प्रोद्यद्भूरिसभान्तरे बहुविधप्रख्यातविद्वज्जने । मांसाशिप्रकरेन्द्रिताखिलभिषग्विद्याविदामग्रतः । मांसे निष्फलतां निरूप्य नितरां जैनेन्द्रवैद्यः स्थितः" इत्येवमादीनि बहूनि प्रमाणानि सन्ति ।

पदार्थपरिज्ञानम् ।

आयुर्वेदपदार्थतत्त्वविदः प्राञ्चः सर्वमपि सृष्टिस्थं पदार्थजातं खनिजप्राणिजोद्भिज्जिभेदात्त्रिधा व्यभजन् । एतत्त्रिविधसृष्ट्यन्तर्गतादपि पदार्थजातात् तत्तद्दोषप्रकोपजातानां रोगाणां शामकान् पदार्थविशेषान् स्वज्ञानगरिम्णा अबोधिषुः । त एव ओषधिविशेषाः भेषजानीति व्यवह्रियन्ते । तादृशौषधिपरिज्ञानविशेषबोधको वृक्षायुर्वेदाख्यश्च आयुर्वेदभागः आसीदिति विज्ञायते । सोऽद्य विरलप्रचारोऽभवत् । अग्निपुराणादिषु व्याख्यानविशेषेषु कार्मणादिषु ग्रन्थेषु च प्रतिपाद्यमानः अस्य विज्ञानस्य कश्चिद्भागः तत्रतत्र उपलभ्यते । किञ्च "गोपालास्तापसा व्याधाः ये चान्ये वनचारिणः । मूलाहाराश्च ये तेभ्यो भेषजव्यक्तिरिष्यते" इत्यादिभिस्सुश्रुतादिवाक्यैः प्राञ्चो गोपालादिसहायेन प्रमाणवर्णाकृतिनामभेदभिन्नमोषधिजातं संस्कृतप्राकृतादिनामभेदैः स्पर्शनेन दर्शनेन च सम्यक् ज्ञात्वा जातिलक्षणादिभिर्लक्षयित्वा अबोधिषुरिति; एवमुपलक्षिता ओषधीः प्राणिनां असकृदुपयुज्य तदनुभववशेन पदार्थगतान् रसगुणवीर्यविपाकप्रभावरूपान् दोषसाम्यापादनदोष-

जरोगनाशनरूपांश्च गुणविशेषान्, दीपनी, पाचनी, ग्राहिणी, स्रंसनी, अनुलोमनी, स्तम्भनी, प्रभृतिकान् शक्तिविशेषांश्च अबोधिषुरिति च विज्ञायते ।

अद्यतनैस्तु पाश्चात्यपदार्थशास्त्रविद्भिः आल्कलैन्, स्टार्चि, कार्बोनैट्, नैट्रिक्, ग्लोटेड्, प्रभृतिकैः विभागैः विभज्यते । एवं पदार्थविभाज्यविभेदविनिर्णये विषये प्रायशः पाश्चात्यपदार्थविज्ञानपण्डितानां प्रक्रियाभेदः पारिभाषिकशब्दविभेदश्च सन्दृश्यते, तथापि ज्वरनाशकत्वशोषनाशकत्वादिकं तु फलितं विषयमुभयत्र समानमेव ।

अस्मदीयाः प्राच्य आर्याः वस्तुतत्त्वं रसशालासु आरोग्यशालासु परिषत्सु च प्रयोगैः विमर्शनैश्च निश्चित्य सिद्धान्तयन्त आसन्निति प्राक् प्रतिपादितम् ।

एतादृशपरिशोधनविधानानि परिशोधनशालाश्च अद्य न कुत्रचिदुपलक्ष्यन्ते । सर्वा अपि पूर्वनिबद्धाः एतादृश्यः परिशोधनापद्धतयः अस्तं गताः ।

तदद्य पाश्चात्यविज्ञानधुरीणैरुपकल्पितान् मार्गाननुसृत्यैव आयुर्वेदीयपदार्थपरिशोधनकरणमुचितं भवेत् । पदार्थतत्त्वनिर्णेता कश्चन मार्गः अद्यास्माकमावश्यकः किल ? स च प्राच्यो वा भवतु प्रतीच्यो वा । नात्रास्माकमाग्रहः ।

एतन्मार्गावलम्बेन चरकाद्युक्तानां पदार्थानां गुणविशेषाल्लोके यथावा ज्ञातुमवकाशः सम्पद्यते तथा प्राचीनग्रन्थाप्रतिपादितानां केवलमुपदेशपरंपरया उपयुज्यमानानां तत्तत्प्रदेशभागमात्रप्रसिद्धानां "वालुड्, गोलिमिडि, नानुवाल, मुदर्खेड, वोफेन, समुद्रपाल" प्रभृतीनां आंध्रदेशप्रसिद्धानां, "कानांजिडि, नोणा, चिन्नियलै, शिवनारिवेंबु" प्रभृतीनां द्रविडदेशप्रसिद्धानामुत्तमवस्तूनांच ग्रन्थोपनद्धता च सम्भविष्यति । विज्ञानं च वर्धिष्यते ।

एतादृशान्यपि परिशोधनागाराणि एतावत्पर्यन्तं भारते न कुत्राप्युपनिबद्धानि दृश्यन्ते, लोपश्चायं सुप्रसिद्ध बोंबापुरगर्भमुक्ताफलैः ताताकंपनीकैः परिपूरितः । तस्मिन् परिशोधनालये देशीयौषधिविशेषानपि परिशोधितुं यत्नः क्रियत इति श्रूयते, यद्येवं तर्हि आशास्महे सोऽयं परिशोधनालयः एतस्मिन् परिशोधनकर्मणि सम्यगुपयुक्तः भारतस्य नितरामुपकुरुतादिति ।

पदार्थाः संदेहास्पदाः ।

आयुर्वेदतन्त्रेषु प्रतिपादितानां द्रव्याणां त्रिविधानामपि नामजात्यादिसन्दर्भे अज्ञत्वसन्दिग्धत्वादिकाः दोषाः बहुश उपलक्ष्यन्ते । एते च सुज्ञसत्परंपराविनाशसंलब्धाः, गतपञ्चदशोत्तरे एकोनविंशतिशततमे (1915) वत्सरे चेन्नपुर्यां मन्त्रिरीढाणप्रवृत्तस्य आयुर्वेद वस्तुप्रदर्शनस्य विमर्शनायां मया प्रदर्शितेषु केचिदिह प्रदर्शयिष्यन्ते ।

रसतन्त्रोदितेषु रससाधारणरसादिभेदभिन्नेषु खनिजेषु वैकान्तरसकौ सन्दिग्धदशामापन्नौ । अञ्जनविमलचपलकंकुष्ठाग्निजाराणां तु अदृश्यतैव ।

एवं धन्वन्तरिनिघण्टूदितेषु उद्भिज्जेषु पर्णीचतुष्टयं प्रसारिणी ब्राह्मी विदारीचेत्ये-

वमादिकानां देशभेदेन द्रव्यभेदमुपलक्ष्यते । काकोल्यादीनामदृश्यतैव । प्राणिजान्त-भूताः अग्निजारलावकादयः संदिग्धाः ।

एतादृशानामनर्थानां मुख्यं कारणं परम्परागतपदार्थतत्त्ववित्सम्प्रदायस्य विनाश एव ।

एतादृशानर्थनिवारणाय महामण्डल्या एक उपसंङ्घः कश्चिदुपनिबद्धः, अनेन सङ्घेन एतावन्न किञ्चिदाचरितमेतद्विषये ।

अत्र च शाश्वतवस्तुप्रदर्शनालयाभाव एव प्रधानकारणत्वमापद्यते ।

एतावतापि तादृशवस्तुप्रदर्शनालयो यदि निर्मीयेत तर्हि उपरिप्रदर्शितसंदेहाद्यनर्थ-परम्परा नष्टा भवेदिति मन्ये ।

रसशालायाः आवश्यकता ।

लक्ष्यलक्षणभूयिष्टस्य आयुर्वेदस्य संबन्धिकार्यनिर्वर्तनाय खनिजप्राणिजोद्भिज्जरूपं त्रिविधमपि वस्तुजातमावश्यकं भवति । तत्पदार्थविज्ञाने च वस्तुप्रदर्शनानि नितरामुप-युज्यन्ते । प्रदर्शनदृष्टानां निश्चितानां आयुर्वेदीयसंभाराणां सम्भरणं वैद्यस्य नितरां सौलभ्यमापादयति । संभृतेषु च संभारेषु भेषजनिर्वर्तनमतीव सुलभं भवेत् ।।

अतएव पूर्वाचार्याः श्रौतस्मार्तादिषु क्रियाकलापेषु प्रथमतः संभारासादनाख्यं क्रियाविशेषमाकल्पनीयमुपादिशन् । अनेन सम्भारासादनेन तत्तत्कर्मावश्यकानां पदार्थानां सन्नीकरणं निष्पद्येत ।

एवमेव यागशालायां यागोचितानां पदार्थानां निधानाय वेदिका काचिद्विहिता । तस्याश्च संभारवेदिकेति हविर्धानमिति च नाम निर्दिष्टम् ।

एवमेव रसशालासु च सिद्धौषधस्थापनाय पदार्थप्रणिधानाय च प्रत्येकश एव शालाभागाः निर्दिष्टाः ।

प्राग्भिश्च महर्षिपुङ्गवैः सर्वसंभारसज्जितैरेव तत्तत्क्रियाकलापेषु प्रावर्तीति एतादृशैः निदर्शनैः उपलभ्यते ।

कतिपयादेव कालादारभ्य राजावलम्बनाभावात् विनष्टेषु प्रदर्शनालयेषु क्रमा-त्कार्श्यमुपगतं आयुर्वेदवस्तुविज्ञानं सहैव आयुर्वेदविद्यया ।

आयुर्वेदमहामण्डली, तथा आवश्यकरणीयं कृत्यम् ।

एवमधिगतानर्थपरम्परायाः भगवत्याः आयुर्वेदविद्यायाः समुद्धरणे बद्धदीक्षैः माण्डलिकैः तदुद्धरणोचितानि कृत्यानि कर्तुमारब्धानि । अनया च महामण्डल्या सह सर्वैरायुर्वेदविद्याभिवर्धकैः क्रियाकलापैः आयुर्वेदवस्तुप्रदर्शनमेकं निर्वर्तनीयमुदकल्पि ।

एतावन्त्येव प्रदर्शनानि निर्वर्तितानि । तेन तत्तद्देशभेदभिन्नानां ओषध्यादि-पदार्थानां स्वरूपस्वभावादिकं यथावद्विज्ञातुमवकाशः तेनसन्देहनिवृत्तिश्च लब्धः, तथापि नैवैतैरतीव उपकारः सञ्जातः भारतीयवैद्यानामायुर्वेदवस्तुसम्बन्धिनि ज्ञाने इति विषीदामि । केवलं विंशतिः त्रिंशद्वा दिनानि स्थापितैः प्रदर्शनैः कियद्वा विज्ञानमुपार्जये-

द्वैद्यः, तदचिरस्थायिभिरेतैः न नितरामुपयोगः सम्भवेत्। एतत्सर्वमवेक्षमाणैरस्माभिः दृढ़तरमेकं स्थिरतरं आयुर्वेदवस्तुप्रदर्शनालयमुपकल्पयितुं यत्नः करणीयः। तदनुबन्धितया ओपधीप्रस्थं चैकमुपकल्पनीयम्। प्रदर्शनालये सकलविधमप्यायुर्वेदीयं वस्तुजातं संभृत्य प्रतिष्ठापनीयम्।

एतत्स्थापनाय च अधिकं द्रव्यमावश्यकं भवेदिति सुविदितमेव। अस्मिन् विपये भारतसंस्थानाधीशाः अभ्यर्थिताः, अत्र विपये अस्मत्पालकसाहाय्यं च अवश्यमपेक्षितम्। यद्विना नैतादृशानि कार्याणि स्थैर्यमुपगच्छेयुः।

अनेकेषु देशभागेपु अस्मदीयप्रियपालकैः प्रतिष्ठापिताः चित्रवस्तुप्रदर्शनशालास्सन्ति। पुरातनवस्तूनां शिल्पबोधकवस्तूनां च केवलं स्थानभूतानामप्यैतच्छालानां सन्दर्शनेन कियान् मोदस्संजायेत। एवं च पूर्वोदितसर्वसम्भारसम्भृतायुर्वेदवस्तुप्रदर्शनशालासमवेक्षणेन कियान्वा मोदस्संजायेतास्माकमिति न शक्यते वक्तुम्।

एतादृशैः प्रतिष्ठापनैः अस्मद्वैद्यवस्तुपरिशोधनापद्धतिः कियतीमभिवृद्धिमभिगमिष्यतीति भवन्त एव विदांकुर्वन्तु।

पाश्चात्यवैद्यपरिशोधकानां फलितम्।

एतादृशीभिरेव खलु प्रदर्शनशालाभिः रसशालाभिश्च अद्यतनपाश्चात्यवैद्यपुङ्गवाः अनेकान् नूतनविषयान्परिशोध्य वस्तुतत्त्वमधिगच्छन्ति, एताभिरेव खलु शालाभिरनेके नूतनविपयाः लोके व्याप्तिमुपगच्छन्ति। एताभिरेव खलु शालाभिः पाश्चात्यव्यापारपद्धतिः दैनंदिनाभिवृद्धिमभिगच्छति। तदनेन देशीयविज्ञानाभिवृद्धेः देशीयव्यापाराभिवृद्धेः देशीयार्थिकाभिवृद्धेः देशीयपरिश्रमाभिवृद्धेश्च देशीयपदार्थविज्ञानं मूलमिति अधिगतं भवन्ति।

प्रत्यब्दमप्यस्मद्देशात् देशान्तरमुपनीयमानानां (Export) ओपधीनां खनिजादीनां च मूल्यं एकोनषष्टिः लक्षाणां, सप्ततिः सहस्राणां, अष्टशतानां पञ्चाशीतिश्च (59,70,885) रूप्याणि भवन्ति।

एवं द्वीपान्तरङ्गतैः एतैरेव पदार्थैः निर्मितानां अस्मद्देशमलङ्कुरिष्यतां (Imports) सिद्धौषधानामस्माभिः प्रत्यब्दमपि दीयमानं मूल्यं एका कोटिः एकंलक्षं एकोनशतं सहस्रं पञ्चाशीतिश्च (1,01,99085) रूप्याणां भवति।

एवं च भारत भूभागस्य प्रत्यब्दमपि प्रायशः द्विचत्वारिंशल्लक्ष (4228200) परिमितं द्रव्यं नष्टं भवति, उपरिनिर्दिष्टो विपयः 1915 वत्सरे भारतसाम्राज्यपरिपालकैः प्रकटितादस्मान्निवेदना (ब्लूबुक्) देवं विज्ञायते।

1915 भारतसाम्राज्यनिवेदिका। नीयमानानि।

	(Exports)	वि.	इ.
केमिकल्स्		पौ. 28082।	19506

		वि.	इ.
स्फटिकः	पौ.	42	11
आर्सेनिक् (पाषाणः)	,,	283	...
पोटासियाकांपौंड्स्	,,	267248	18327
अन्ये	,,	872	...
सोडाकांपौंड्स्	,,	6049	142
अन्ये	,,	66	177
इतरकेमिकल्स	,,	6261	849
समुदितम्	,,	280821	19506

ओषधयः (ड्रग्स्) खनिजानि (मिनरल्स्) 73422 24310

		वि.	इ.
कुमारी	पौ.	352	10
हिंगु	,,	147	27
कर्पूरः	,,	14	...
सिंकोना	,,	9567	...
गलान्गाक्	,,	23	276
विषतिंदुक (नेक्स्वामिका)	,,	6173	8883
सेन्ना-सुनामखी	,,	10411	8154
(अदरस) अन्ये औषधानि ओषधयः		46835	7460
		73422	24310

समुदितम्... 354243 + 43816

सङ्कलनप्राप्तं... 398059 पौन्

तच्च... 59,70885 रूपिकाः

1915 सं॥ भारतसाम्राज्य निवेदिका। आनीयमानानि।

(Imports)

ड्रग्स्-मेडिसन्स्. (ओषधः औषधानि)		वि.	ईंजिप्ट्स्.
हिंगु	पौ.	100	19955
कर्पूरः	,,	10005	111821
काप्यानिम्न	,,	28007	27408
कोकेन्	,,	494	34

※पेटेंट मेडिसन्स्	,,	99626	26663
किनैन्	,,	65929	19249
सारिवा (सारसापरिल्ला)	,,	1386	...
पोराक्स्	,,	5	1572
अदर मेडिसन्स् (इतराण्यौपधानि)	,,	202781	64904
समुदितम्...		408333 +	271606
सङ्कलनप्राप्तम्...		679939 पौन्	

तच्च

आनीयमानेषु... 101,99085 रौप्येषु
नीयमानानां रूपिकाणां... 5970385 " संख्या-
याः हानेः अवशिष्टं... 4228200 परिमितं धनं
भरतखण्डस्य
नष्टं भवति ।

एवं प्रत्यब्दमप्यस्माभिस्संपाद्यमानं औषधद्रव्यसम्बन्धि नाशमन्वीक्षतः कस्य वा भारतपुत्रस्य न विषादमुद्भवेत् ।

अस्मद्देशीयानां यदि पदार्थविज्ञानमेव पर्याप्तमभविष्यत् अवश्यमेव नाभविष्य-देतादृशं नाशम् ।

अस्माभिः क्रियमाणानामौषधानां गवेषणाय न कुत्रचिद्देशान्तरे गन्तव्यता अस्ति । सर्वा अपि अस्मद्देशं एव लभ्यन्ते ।

कष्टसमयेषु सम्प्राप्तेष्वपि अस्मद्देशीयानां पदार्थानामलभ्यता न कदापि सम्भवेत् ।

सर्वथा अप्येतस्याः दुर्गतेः अस्मदज्ञता अस्मदौदासीन्यमस्मदीयविद्यानामौषधि-कराजावलम्बनाभावश्च केवलं कारणत्वमापद्यत इति पर्याकुलं मे मनः ।

इतश्चिरंतनैः ऋषिवरेण्यैः प्रापञ्चिकोपयोगाय ज्ञानगरिम्णा प्रकाशितं विषयविज्ञानं आर्यसन्ततौ लब्धजन्मभिरस्माभिः नैवावलोक्यते चक्षुषापि नाद्रियते च । तल्लब्ध-प्रबोधैः अस्माभिः बद्धदीक्षैः नियतमायुर्वेदाभिवर्धकेषु कृत्येषु यतनीयम् । श्रेष्ठ आयु-र्वेदवस्तुप्रदर्शनालयस्य तदनुबन्धिनः ओषधिप्रस्थस्य च स्थापने द्रुततरमेव यत्नः कर-णीयः । आयुर्वेदीयवस्तुविततिं विविच्य विभज्य तत्तत्पदार्थगतं गुणविशेषं सविमर्श-मधिगत्य प्रकटीकर्तव्यम् । चरकादिबोधितानोषधिविशेषान् सविशेषं निश्चित्य तत्तदङ्ग-प्रत्यङ्गादिबोधकानि चित्रप्रतिरूपाणि नाम रूपस्वभावभेदकथनपुरस्सरं मुद्राप्य प्रकटी-कर्तव्यानि । तत्र तत्तद्देशीयनामान्यपि सूचनीयानि ।

※ अत्र पेटेंट् संज्ञितान्यौषधानि अदूर 1894335 रूपिका परिमितानि भवन्तीति विज्ञायते । औषधोपयोग्यानि स्वर्णरजतादिलोहवस्तूनि पारदादीनिच अत्र पट्टिकायां नैव परिगणितानि ।

एतादृशानां ग्रन्थानां प्रकटने प्रवृत्ता एव केचन वैद्यपुङ्गवाः, अथापि ते ग्रन्थाः द्वित्राभिरेव सञ्चिकाभिः अस्तमुपयाताः ।

ज्ञानवयोवृद्धः प्राच्यपाश्चात्यवैद्यविद्वान् श्रीमान् कर्नल्कीर्तिकरमहाशयः "पायिजन् ड्रग्स् आफ् बोंबे" (मुंबाराष्ट्रेविषौषध्यः ।) इत्येतन्नामकमुत्तमग्रन्थरत्नं रचयित्वा मुद्रणमकरोत् ।

कर्नल् कीर्तिकर् , मेजर् बी० डी० बोस् महाशयाभ्यां भारतवृक्षसन्ततिप्रकाशकः सचित्रः ग्रन्थः विरचय्य मुद्राप्यत इति श्रूयते । एतन्महोपकाराय उपकल्पते इति सर्वैः आयुर्वेदवैद्यैः कृतज्ञैर्भवितव्यम् ।

प्रकृते अस्मिन् प्रदर्शने आसेतुशीताचलपर्यन्तेभ्यः भारतभूभागेभ्यः अनेकेभ्यः आनीतमायुर्वेदीयं वस्तुजातं निक्षिप्तमिति प्रदर्शनालयान्वीक्षकैः (सूप्रंटेंडु) आयुर्वेदपञ्चानन कृष्णशास्त्रिकवडे, बी. ए. महाशयैः पठितेन निवेदनेनावगम्यते ।

अस्मिन् विविधाः विभागाः तत्तत्परिस्थितयश्च प्रदर्शनोपसाधकैः अत्यासक्त्या अतिश्रद्धया अत्यभिमानेन च उपकल्पिता इति मन्ये ।

एतच्च प्रदर्शनं न केवलं वैद्यानां किंतु सर्वेषामपि जनानां नितरामुपकरोति । तदेतद्भवद्भिरवैव आस्वाद्यत इति । भारतवर्षीयायुर्वेदप्रचारप्रधानाधारभूतनिखिलभारतवर्षीयायुर्वेदनवमवैद्यमहासम्मेलनानुबन्धि एतत्प्रदर्शनं सकलजगदायुरारोग्यसुखसन्धायकं अनादिवैद्यं श्रियःपतिं धन्वन्तरिं नमस्कुर्वन् अपावृत्य प्रकटीक्रियते ।





[illegible] शास्त्री ।
[illegible] टिप्पणी (सन [illegible])

१०

कविराज श्री उमाचरण भट्टाचार्य, कविरत्न

(काशी)

सभापति निखिल भारतवर्षीय

दशम वैद्य सम्मेलन

देहली

सन् १९१९ ई०

खेद है कि आपका चरित्र और भाषण प्राप्त न हो सका ।

११

ओं नमो महाप्रजापत्यश्विवलभिद्धन्वन्तरिसुश्रुतप्रभृतिभ्यः ।

निखिलभारतवर्षीयायुर्वेद वैद्यसम्मेलनस्यैकादशाधिवेशनाधिपते-
महामहोपाध्याय कविराज

श्री गणनाथसेनसरस्वती महाशयस्य अभिभाषणम् ।

अनुत्पाद्य प्रजास्तासामायुरारोग्यकामिने ।
नमः श्रीब्रह्मणे कृत्स्नवैद्यविद्याविधायिने ॥

दयार्द्रहृदयैरहो जगति सर्वतो निस्पृहैर्महर्षिभिरकातरश्रमशताहृतं वासवात् ।
परोपकृतितत्परं निखिलभारतीयप्रजारुजाहरणकार्मणं जयति वैद्यविद्यामृतम् ॥

आर्य्यमिश्राः सभालङ्कारा वैद्यवर्य्या विद्वदग्रेसराश्च,

अद्य खलु भगवतः परमकारुणिकस्य परमेशितुः प्रासादात् पुनरपि समवेतस्यास्य निखिलभारतीयवैद्यसम्मेलनस्य शुभावसरे रोगार्तजन-परित्राण-पुण्यार्जित-कीर्ति-कौमुदी-समुज्ज्वलीकृतदिगन्तरालानां सुविमलविपुलधी वैभवायत्तीकृत-सर्वायुर्वेद-तन्त्राणां—किं बहुना—सर्वतन्त्रस्वतन्त्राणामत्रभवतां महासंसदि स्वल्पज्ञस्याल्पमते-र्मादृशजनस्य सभापतिपदग्रहणमसमञ्जसमित्याकलयन्नपि दिष्ट्या चिरानुभूतामेतन्म-हासभासदस्यानां करुणापरम्परां संस्मरन् कृतज्ञहृदयः पुनरपि भवदनुग्रहमेव शरणी-कृत्य समुपस्थितोऽस्मि भवदीयमलङ्घनीयं निदेशमनुपालयितुम् । समुपस्थितश्च ज्ञानवयोवृद्धान् गुरुकल्पाननल्पांश्च सुहृदो निर्मिपभक्तिप्रेमपुरःसरं प्रणामाभिनन्दनादि-भिरभिवादयन्नभ्यर्थये—सुचिरसंस्तुतसेवकजनपक्षपाताद् वा दोषोपेक्षणगुणग्रहणै-कतानसुधीजनमानसपारतन्त्र्याद् वा महाजनोचितनैसर्गिकक्षमाशीलत्वाद् वा सर्वथा क्षन्तव्यो मे मन्तुर्मन्तव्यश्च भवद्विधेय एवायं जन इति । न हि तावदायुर्वेद समुद्धारमहाव्रतपालनमन्तरेणाकलयामि किञ्चिदपि परं धर्मं वैद्यानां, प्रार्थये च भग-वन्तमन्तर्य्यामिनम्—एष नो धर्म्मः समेधतां गुरुजनाशिषां प्रभावेण—इति ।

विजयतां विजयताम् आसेतुशीताचलभारताचलाचक्रवर्त्ती ससागरभूमण्डलार्धै-काधिनाथः प्रबलप्रतापनिर्जितदुर्दान्तदारुणकर्मजर्मनायनेकराजन्यपराक्रमो जल-स्थल-नभ-स्तलाप्रतिहतविक्रमो मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षागुणाकृष्टानेकनरेन्द्रवन्दितः प्रजा-वत्सलो महोदारहृदयस्तत्रभवान् सम्राट् श्रीमान् पञ्चमजार्जाभिधो यस्य विजयेन विजयिनो गौरवेण गौरविणः शान्तिसुखेन शान्तिसुखिनः प्रमोदामहे सर्वेऽपि ।

प्रार्थयामहे च कृताञ्जलयो भगवन्तं त्रिलोकीनाथं यदस्य नैसर्गिकीं धर्मराज्यशासन-बुद्धिमधिकाधिकप्रोज्ज्वलां विधाय तदनुसारिसरण्यैव प्रवर्त्यन्तां भारतीयप्रजा-कल्याणाय सर्वेऽपि राजपुरुषा इति।

याचामहे च सतृष्णानन्दसन्दोहम् अचिरात् प्रवार्तव्यमान नवीनराज्यशासन-पद्धतिकर्णधारेभ्यो भाविराजपुरुषेभ्यः—मा तावदखिलभारतीय प्रजा रक्षणदक्षशक्तिमा-युर्वेदं भारतगौरवं विस्मृत्य वर्तन्तां भारतीया भवन्तोऽपीति।

अहो नूनमद्य निखिलभारतीयभिषग्जनप्राणसम्मेलनस्यास्य सम्मेलनस्य युगा-न्तरमिदं सम्प्राप्तं, यदस्यां समस्तभारतराजन्यभूषणायमानानाम् आर्यधर्मसंरक्षण-बद्धकङ्कणानां प्राचीनज्ञानविज्ञानसमुद्धरणैकतानप्रयत्नानां महनीयावदातमहाराष्ट्र राष्ट्रगौरवरवीणां श्री १०८ मन्महाराजाधिराज राजराजेश्वर श्रीतुकाजीराव—होलकर—प्रभूणां राजधान्यामिन्दोरनगर्यामामन्त्रितेयं महापरिषदभूतपूर्वां कामपि श्रियं पुष्णा-ति। एतावन्तं हि कालमस्माकं मन्दभाग्यतया वा भारतीयस्वाधीननरेन्द्राणां करुणा-कटाक्षविरहाद् वा नाभूद् वैद्यसम्मेलनं भारतीयनृपतीनां राज्येषु—इति शल्यमिव दुःखाकरोति स्म आयुर्वेदोपासकानां हृदयम्। तदेतत् शल्यं लीलया समुद्धरन् सन्त-र्पयंश्च करुणामृतेन वैद्यजनहृदयं भिषजामिव भिषक्तमो जयति पुण्यश्लोकोऽसौ नरेन्द्र-धन्वन्तरिः। अवश्यमेव हि सर्वथा शुभोदर्केणानेन कर्मणा चिरस्मरणीयतां यास्यति तन्नामधेयम्। पूर्वं हि तत्रभवता श्रीमता कोचीननराधीशेन सभाधिनाथपदमलङ्कुर्वता बहुसम्मानितमपि वैद्यसम्मेलनमद्य श्रीमता इन्दोरनराधिनाथेन उत्सङ्गे कृतं गास्यति चिराय तदीयां कीर्तिगाथाम्। आशास्महे—स्वराज्यस्य सुविशालभूभागेषु वैद्यक-चिकित्सां सम्यक् प्रचारयन् पत्तने पत्तने आयुर्वेदीया आरोग्यशालाश्च स्थापयन् नीरुजीकृतप्रजाशीर्भिरधिकतरमभिनन्द्यमानः शतायुरसौ भूयादिति। प्रतीमश्च—नूनमनेनैव प्रशस्यमार्गेण प्रवर्त्तमानाः सुविमलकीर्त्तिं पुण्यराशिञ्चार्जयिष्यन्ति सुगृहीत-नामानोऽन्येऽपि भारतीया नरपतय इति।

अथ सभाजयामः सभाजयार्जितप्रचुरयशसो धन्यान् परोपकारव्रतान् अत्युदारचरि-तान् भवतोऽपि ये महतीमपि स्वकार्यहानिमविगणय्य दुःसहमध्वप्रवासक्लेशशतमुरीकृत्य च केवलमायुर्वेदप्रेम्णा स्वव्ययेन नानादिग्देशेभ्यः समिलिताः समुद्दिधीर्षन्ति वैद्यका-मृतकुम्भम् अनभिज्ञविपक्षजनावज्ञाम्बुधिनिमग्नम्। न च निष्फलारम्भा वयमिति क्षणमपि शङ्कितव्यम्। इदानीं हि प्रत्यग्रोद्भिन्नमुकुलसौरभामोदितदिगन्तराला नो मनोरथद्रुमा नचिरेणैव कालेन फलवन्तो भविष्यन्तीति प्रियसन्देशं वः समाप्तौ श्रावयिष्यामि।

इदं पुनरतीव खेदस्थानं नः यत् समतीते संवत्सरे असमाप्तकर्म्माण एव वैद्यक-विद्याम्बुधिरत्नभूताः केचन महात्मानः पुण्यार्जितलोकं प्रतस्थिरे। तेषु च विशेषेण स्मरामः समग्रभारतप्रथितयशसं तत्रभवन्तं प्रतीच्यप्राच्यचिकित्सातत्त्वकोविदं "पुंस वन"—"त्रिदोषविचारा" द्यनेकग्रन्थकारं कविराज सुरेन्द्रनाथ गोस्वामिनं, सर्वायुर्वेद-

पाथोधिमन्थाचलं. "वनौपधिदर्पण"स्य प्रसिद्धग्रन्थकारं राजार्हभिषग्वरं कविराज विरजाचरण कविभूषणञ्च। उभावप्येतौ कलिकातामहानगरवास्तव्यौ अस्मत् प्रियसुहृदौ नवनवायुर्वेदीयतत्त्वोद्भावनकुशलौ अर्थोपार्जनपराङ्मुखचेतसा शास्त्रोपसानमेव जीवनस्य मुख्यं प्रयोजनं मन्वते स्म। पञ्चाशद्वर्षदेशीये वयसि च वर्तमानौ दिवं गतौ—इति तद्वियोगविधुरेण हृदयेनाधिक्षिपामो मन्दभागधेयमेव वैद्यानाम्।

आर्याः प्रेक्षावन्तः! अतीतेषु वर्षेषु वैद्यसम्मेलनसभापतिभिरत्युज्ज्वलज्ञानविज्ञानोपदेशिभिः सर्वथा मत्तोऽधिकतरप्रज्ञैरायुर्वेदाचार्यैः,—मया च यथामिति—प्रतिपादितेषु वैद्यकेतिहासत्रिदोषतत्त्वादिषु विषयेषु पुनः प्रवृत्तिरहीयमानानल्पमेधसां कुशाग्रधियामत्रभवतामुद्वेगकरी स्यादिति शङ्कया अद्यतनवक्तव्यविषयाणामतिप्रयोजनीयतया च पुराणीं पद्धतिमननुसृत्य कालोचितमेव यत् किञ्चिद् वक्ष्यामि। न चाहमल्पश्रुतः स्वल्पतरवाग्विभवः प्रभवामि सर्वं वक्तव्यं विशदं वर्णयितुं, न च पूर्वसभापतिभिरनुक्तचरं बहु वक्तुमस्ति मे शक्तिः, तथापि पूर्वैः सूत्ररूपेणोक्तं भाष्यरूपेण प्रपञ्चयतो मे वचनं सावधानं विमृश्य भवद्भिः कर्तव्यनिर्णयः करणीय इति—प्रत्याशैव तावन्मां मुखरयति।

तत्रादौ वैद्यकोद्धारप्रयोजनं तावद् विचार्यते। अत्र केचिद् विप्रतिपद्यन्ते। नहि सर्वथा अतलजलधिनिमग्नं वैद्यकं यदुद्धार्य्येत, सन्तिहि अद्यापि सहस्रशश्चिकित्स्यमाना आतुरा ये वैद्यकप्रभावेणैव समुत्तिष्ठन्ते। समुत्तिष्ठमानाश्च विस्मयमावहन्ति परेषाम् इति। तान् प्रतिब्रूमः। सत्यं समुत्तिष्ठन्ते सहस्रशः, परं समुत्तिष्ठेरन् लक्षशो यदि आर्षयुगीयं ज्ञानविज्ञानमिदानीं पूर्णाङ्गं लभ्येत। क नु खलु गताः साम्प्रतं जतूकर्ण-पराशर-क्षारपाणि-कपिल-गौतमादीनां कायचिकित्सासंहिताः, क तावदौपधेनवैरभ्रभोज-वैतरण-पुष्कलावत-गोपुररक्षितादीनां शल्यतन्त्राणि? कुत्र वा विदेहाधिप-निमि-काङ्कायन-गार्ग्य-गालव-सात्यकि-शौनकादिविरचिताः शालाक्यसंहिताः? क्काथर्वणानि भूतविद्यातन्त्राणि? क जीवक-पर्वतक-बन्धक-हिरण्याक्षादिकृतानि कौमारभृत्यतन्त्राणि? कुत्र वाऽसौ तक्षकदंशनप्रतीकारक्षमा अगदतन्त्रीया काश्यपसंहिता, अलम्बायनोशनः सनक-लाठ्यायनादिकृतानि विषतन्त्राणि वा? क निलीनानि वशिष्ठमाण्डव्यव्याडि-पतञ्जल्यादिकृतानि रसायनतन्त्राणि? क वा प्रनष्टानि कुचुमारबाभ्रव्यादिकृतानि वाजीकरणतन्त्राणि? न च नामशेषाणि केवलं तानि तानि तन्त्राणि, हन्त हतानि तत्तत्क्रियाकौशलान्यपि। क तावत् सुश्रुतभोजाद्युपदिष्टं शवच्छेदादिसहकृतप्रत्यक्षपरीक्षापरिशोधितं शरीरज्ञानं, यत् "प्रत्यक्षतश्च यद् दृष्टं शास्त्रदृष्टञ्च यद् भवेत्। समासतस्तदुभयं भूयोज्ञानविवर्द्धनम्"—इति स्तुवन्ति स्म प्राञ्चः? क यन्त्रशस्त्रबन्धानां प्राचीनानां परिचयः? क वा तत्प्रयोगपाटवं? क शास्त्रोपदिष्टं मूढगर्भविज्ञानं, तदाहरणकुशलता वा? क सोमलताश्रावणी-महाश्रावणी-ब्रह्मसुवर्चलादिरसायनभेषजानां विज्ञानं? क जरामरणहरणस्य रसेन्द्रस्य अष्टादश संस्काराः? क

पञ्चकर्मकार्मण्यं ? क्वथवा नाडीविज्ञाने अरिष्टविज्ञाने च सा विज्ञता—इति हन्त शतशो दृश्याः सर्वतो वैद्यकाङ्गानां विलोपाः । तत् कृताञ्जलि प्रार्थयामहे, मा कस्यापि व्यामोहकरी बुद्धिरुदियात्—नास्ति वैद्यकोद्धारस्य प्रयोजनमिति ।

अत्र च प्रसङ्गे पूर्वोक्तमेव पुनरपि स्मारयामि—

"तदेवमित्थंगते नानानार्षजनप्रतिसंस्कृतजीर्णावशेषे वर्षसहस्रयुगीयलिपिकर-प्रमादप्रक्षेपादिपरामृष्टे च प्रधानार्षसंहिताद्वितये—सत्सु च तदुपजीविषु केषुचिदष्टाङ्ग-हृदयभावप्रकाश-शार्ङ्गधर-चक्रदत्त-वङ्गसेनादिषु-संग्रहग्रन्थमात्रेषु—सन्तमसाच्छन्नेषु च शरीरवनौषधिविद्यादिष्वायुर्वेदपूर्वाङ्गेषुप्रलीनप्रायेषु च कायचिकित्सावर्जमपरेषु आयुर्वेदप्रधानाङ्गेषु सर्वथा प्रतिसंस्कारापूरणाभ्यां पुनः सञ्जीवनीयोऽयं निगूढशक्तिर्महाप्रभावः समग्रजगदेकाश्रयो वैद्यकवटतरुरिति कस्तावदत्र चक्षुष्मानुदासीत ? एष हि हन्तायुर्वेदो विपन्नदीधितिरप्येतर्हि कायचिकित्साङ्गमात्रेण कथं कथमपि ध्रियमाणः प्रयो निखिलभारतीयप्रजाप्राणत्राणाय प्रभविष्णुर्बहुधा परकीयचिकित्साशास्त्रचन्द्रमसमद्यापि निष्प्रभीकरोति रविरिव पश्चिमाचलस्थः । न विद्मो, नवेन तेजसा समुदितः किं किमेष न विदधीत दश दिशः समुज्ज्वलयन्"—इति (प्रत्यक्षशरीरस्य उपोद्घाते) ।

अथैवं कर्त्तव्येषु वैद्यकसमुद्धारप्रयत्नेषु का नाम सरणिरवलम्बनीयेति पुनरप्यत्र शतशो विप्रतिपत्तयः समुदीयन्ते । केचिदाहुः—विलुप्तग्रन्था अन्विष्यन्ताम् । अन्येतूपदिशन्ति—वर्तमानग्रन्था एव निभृतनिपुणं विचार्यन्ताम् । अपरेऽनुशिषन्ति हिमालय-सानुषु भ्रामं भ्रामं दिव्यौषधानि मृग्यन्तामिति । एषाञ्चोपदेशकानामयमभिसन्धिः—यदेतावदधिकं नास्ति करणीयमिति । तान् प्रतिब्रूमः । अवश्यमेव हि करणीयान्येतानि कार्याणि । परं नैतावता शक्यं साकल्येन विलुप्तज्ञानं समुद्धर्तुम् । आपृच्छामहे च तान् सविनयम्—ननु ग्रन्थाश्चेद् विलुप्ता न लभ्येरन्, किमु नवीनज्ञानार्जनपुरःसरं न विरचणीया ग्रन्थाः ? यदि निपुणार्थविभावनेनापि न लभ्येरन् लभ्यमानग्रन्थेषु अवश्य-ज्ञेयाः केचन विषयाः किमु निमील्य नेत्रे निश्चेष्टास्तिष्ठेम ? अथ हिमालयसानुषु विचरतां परिचायकोपदेशकविरहात् नाभिज्ञायन्ते दिव्यौषधानि, किमु प्रयोगादिपरीक्षादिभिर्न निरूप्यन्तां नवीनभेषजानां गुणाः ? तस्मादसति पुष्कले आप्तोपदेशे सति च—ज्ञाताज्ञात-विषयेषु स्वानुभवैः परीक्षणं, बहूनां परीक्षकाणां परीक्षया परीक्षाफलस्य परिशोधनञ्च सर्वथा श्रेयसे भिषजामित्यलं निश्चलतासिद्धान्तेन । न च शङ्क्यमेतावता भक्तिराप्तोपदेशेषु व्याहन्येत—इति । आहुर्हि प्राञ्चः—"आप्तागमस्तावद् वेदो यश्चान्योऽपि कश्चिद् वेदार्थादविपरीतः परीक्षकैः प्रणीतः शिष्टानुमतो लोकानुग्रहप्रवृत्तः शास्त्रवादः स चाप्तागमः"—इति (चरक. सूत्र. ११ अ.) । आह च भगवान् धन्वन्तरिः सुश्रुताय—"प्रत्यक्षानुमानोपमनागमैरविरुद्धमुच्यमानमुपधारयेति ।" (सुश्रुत. सूत्र. अ. १) । न च नवीनवस्तुग्रहणमात्रेण आयुर्वेदस्य न्यूनताऽपि स्वीक्रियेत, प्राचीनग्रन्थानां बहुधा-विलोपदर्शनात् ।

स्मरामि ह्यत्र प्रसङ्गे तत्रभवतः पूर्वसभापतेः कोचीननराधीशस्य सारगर्भं वचनम्, "नहि समग्रं ग्रन्थजातमनुपलभ्य आयुर्वेदस्य स्वरूपमेव साकल्येन ज्ञातुं शक्यम्। सति हि स्वरूपज्ञानं न्यूनाधिक्यसमीक्षणं सुकरं सम्पद्येत।"—इति। अथवा—अस्तु नाम न्यूनता, नहि पूर्णब्रह्म विहाय पूर्णमिह किञ्चिदपि जगति। उभयथापि आयुर्वेदस्य कालवशात् परिस्फुटा न्यूनता सर्वथा सम्पूरणीयेति अलमस्माकं प्रयत्नशैथिल्येन।

तस्मात् प्रकाममन्विष्यन्तां प्रकाशयन्ताञ्च विलुप्ता ग्रन्थाः, अभिज्ञायन्तां प्रयुज्यन्ताञ्च दुर्लभानि भेषजानि, आविष्क्रियन्तां च गूढार्थाः प्राचीनदुरूहग्रन्थानाम्। परं मा विस्मार्षीः—कालोऽयमाप्तागमविशोधितया प्रज्ञया नवं नवं ज्ञानमुपार्ज्जयितुं प्रतिष्ठापयितुंच स्वकीयप्रयत्नै वैद्यकोत्कर्षं लोके—इति।

न च प्राचीनवैद्यकोत्कर्षख्यापनमात्रेण इदानीन्तनवैद्यकोत्कर्षे सपदि श्रद्दधीत पाश्चात्यज्ञानविज्ञानलोकचमत्कृतचक्षुरद्यतनो लोकः। नहि महाराजराजाधिराजवंशधरोऽहमिति कीर्तनमात्रेण सम्मानयन्ति जीर्णचीरधरं रङ्कं श्रीमन्तः। नूनं स्वकीयपूर्वमर्यादास्मरणेन वर्द्धते अभिमानः, न तु सद्य एव गुणोत्कर्षः। तत् कृताञ्जलि प्रार्थये—प्राचीनगौरवं स्मरन्तोऽपि पुनः स्वगुणसम्पदि प्रयतध्वम्, येन शाल्यशालाक्यादिकर्मसु दक्षतरैः प्रतिद्वन्द्विभिर्नोपहस्येमहि—"तादृश पूर्वपुरुषाणामीदृशा एते वंश्या" इति।

अथ स्वगुणसम्पदाधानार्थमस्माभिरिदानीं बहु विद्यते करणीयम्। भेषजपरिचयार्थं निर्म्माणीया भेषजपरिचयागाराः (Drug Museums), भेषजोद्यानानि च। भेषजगुणपरिज्ञानाय संस्कारदार्ढ्यार्थञ्च स्थापनीया भेषजगुणपरीक्षालयाः (Pharmacological Laboratories)। रोगस्वरूपाणां सम्यग् विज्ञानाय चिकित्साकुशलतार्जनाय प्रतिरोगं भेषजप्रभावपरीक्षणाय आर्त्तत्राणाय शिष्यशिक्षार्थञ्च प्रतिष्ठाप्या आरोग्यशालाः औषधवितरणालयाश्च (Indoor Hospitals and Outdoor Dispensaries)। प्राकृतशारीरवस्तुपरिचयार्थमारचनीयाः शवच्छेदागाराः शारीरसम्भारागाराश्च (Dissection Rooms and Anatomical Museums); वैकृतशारीरविज्ञानार्थं वैकृतशारीरवस्तुगृहाश्च '(Pathological Museum)। संस्थाप्याश्च रसादिसंस्कारार्थं प्राचीनपद्धत्यनुसारिण्यो रसशालाः, तत्पार्श्वत एव वस्तुप्रकृतिविज्ञानाय नवीना रसशालाश्च (Chemical and Pharmaceutical Laboratories)। अपेक्षन्ते अन्याश्च विज्ञानालया यथाशक्यम्।

एतानि च तावदङ्गानि। अङ्गी तु तावद् आयुर्वेदमहाविद्यालयः सकलवैद्यकविद्यालयानामादर्शभूतः,—यस्मात् पुराणनवीनज्ञानलोकसमुज्ज्वलीकृतमतयः पर्य्यवदातश्रुताः परिदृष्टकर्म्माणः कृतयोग्या योग्यतराः प्रवर्त्तेरन् भिषजः। तथाविधाश्चैव प्रभवेयुः प्रतिद्वन्द्विनां पक्षच्छेदाय, परित्राणाय च नानारोगक्लिष्टानां भारतीयप्रजानाम्। नहि प्रजानां प्रतिपञ्चविंशतिसहस्रमेकेन पाश्चात्यशिक्षागर्वितेन धनलोलुपेन भिषजा शक्यं

त्रिंशत्कोटिसंख्यानां प्रजानां नियतरुजार्त्तानां दुःखमोचनम्। शक्यते हि तदसंख्य-प्रायै र्वैद्यैरेव विदितवेदितव्यैः।

तत् पूर्णाङ्गानामायुर्वेदमहाविद्यालयानामारोग्यशलानाञ्च प्रतिष्ठार्थमुत्तिष्ठन्तां भारतीय नृपतयो नृपतुल्याश्च, भिषजश्च सर्वेऽपि। नहि तेषां साहाय्यमन्तरेण सुसाध्यमिदं कार्यम्। न चाद्यापि समुन्मीलितं तेषां नयनैः, अन्यथा कथं न दृश्यन्ते प्रतिनगरं प्रतिग्रामञ्च आयुर्वेदीया आरोग्यशाला धर्मार्थौषधालयाश्च, न च क्वापि एकोऽपि महा-विद्यालयः। क्व नुहन्त साम्प्रतं तादृशा महापुरुषा ये पुरेव दयार्द्रहृदयाः विलपेयुः—"विविधवेदनोपघातोपद्रुतान् सनाथानप्यनाथवद् विचेष्टमानान् त्रिक्रोशतश्च मानवान-भिसमीक्ष्य मनसि नः पीडाभवति"—इति, अथवा आर्त्तत्राणमहाव्रतानामस्माकमेवेदं व्रतशैथिल्यं यन्नाद्यापि सर्वथा उन्मुखीकृता धनिका राजपुरुषाश्च वैद्यकमतानुसारिणी-नामसंख्यानामारोग्यशालानां महाविद्यालयस्य च संस्थापनाय।

इदं पुनरवश्यमुरीकार्यं यदस्य वैद्यसम्मेलनस्य प्रभावाद् वा कालोचितस्वाभाविक-जागरणाद् वा भारतीयप्रजापुण्यपरिपाकारम्भाद् वा साम्प्रतं विपरिवर्तत इव कालो येन क्वचित् क्वचिदेतर्हि भारतीयनगरेषु स्थापिताः स्थाप्यन्ते च आयुर्वेदीया आरोग्य-शाला विद्यालयाश्च। शोभते हि मद्रासनगरे प्राज्ञवरेण वैद्यरत्न श्रीमद् गोपालाचार्लुना स्थापितो बहुसम्भारसम्भृत आयुर्वेदविद्यालयः धर्मार्थौषधालयारोग्यशालाभ्यां समुज्ज्वलः। विलसन्ति च तत्रैव परोपकारव्रतैः स्थापिताः पञ्चषा धर्मार्थौषधालया अपि येभ्यः प्रतिदिनं साकल्येन द्विसहस्रकल्पा रोगिणो रोगप्रतीकारं लभन्ते। विभाति च तत्रैव विद्वन्मुकुटमणिश्रीमन्नटेशशास्त्रिभिरधिष्ठितो वैद्यकविद्यालयोऽपि वेङ्कटरमण-नामालङ्कृतो धर्म्मार्थौषधालयसहितः। जागर्ति च मुम्बय्यां तत्र भवतां प्राच्यपाश्चात्य-चिकित्सापटूनां डा. श्रीपोपटप्रभुराममहाशयानां वैद्यकविद्यालयो नानोपकरणोपस्कृत आरोग्यशालान्वितश्च, यः सर्वथा प्राचीनतया कार्यकुशलतया च प्रशंसार्हः सर्वेषाम्। अपरश्च तत्रैव चरकसुश्रुतादिग्रन्थसम्पादनपटीयसां रसहृदयादिनवीनायुर्वेदीयग्रन्थमाला-प्रकाशनलब्धकीर्तीनां वैद्याचार्य्य विद्वद्वर श्रीमद् यादवजी त्रिकमजी महाभागानाम् अक्लमपरिश्रमफलभूतो वैद्यकविद्यालयः—यो नवीनोऽपि शिष्यशिक्षानैपुण्येन सम्भारसम्पदा च सम्प्रति परां प्रतिष्ठां भजते। उद्भासते च कलिकातामहानगर्यामुभ-यविधचिकित्सानयकुशलेन मित्रवरेण कविराज श्रीमद् यामिनीभूषण कविरत्नेन साधु-समारब्धमस्माभिश्च प्रयत्नशतैः सम्वर्द्धयमानमष्टाङ्गायुर्वेदविद्यामन्दिरम् धर्मार्थौषधालय-प्रोज्ज्वलम्। यत्र न केवलं कायचिकित्साङ्गं किन्तु अन्यान्यपि वैद्यकाङ्गानि सप्रयोग-मुपदिश्यन्ते, सम्भृतानि च भेषजशारीरादिपरिचयार्थं प्राज्यानि उपकरणानि। सन्ति चान्येऽपि त्रिचतुरा धर्मार्थौषधालयास्तत्रैवान्यैर्महाभागैः स्थापिताः। एवं पुण्यपत्तने आयुर्वेदपञ्चानन श्रीमत् कृष्णशास्त्री कवडे महाभागैः स्थापितो वैद्यकविद्यालयो महदुपकरोति शिष्याणाम्। सन्ति च तत्र द्वित्रा धर्मार्थौषधालया अपि। विद्योतन्ते

च भारतराजधान्यां देहल्यामपि द्वित्रा वैद्यकविद्यालयाः—येष्वेकं साम्प्रतं सुविशालमायुर्वेदविद्यालयं यूनानीविद्यालयञ्च आरोग्यशालासहितं स्थापयितुं यतमानः प्रायो महासौधनिर्म्माणादिभिः सफलकाम एव सर्वथा प्रशस्यकर्मा हि महासमुद्यमः सुहृद्वरः सुगृहीतनामा हाजिक् उलमुल्कोपाधिकः श्रीमान् अजमलखान् महाभागो यस्य परिश्रमफलमिदं पाकोन्मुखं दृश्यते। एवं लाहोरनगर्य्यां दयानन्द वैद्यकविद्यालयः पिलिभीतनगर्य्यां ललितहरिवैद्यकविद्यालयश्च स्वरीत्या प्रशस्यकार्यावेव।

किञ्च भारतीयराजन्यराज्येष्वपि त्रावाङ्कोराधिपानां राज्ये सन्ति शताधिका आयुर्वेदीया धर्मार्थौषधालयाः, काश्चन आरोग्यशालाश्च। परं "त्रिवांद्रम्" नगर्य्यां तद्राजधान्यां बहुसम्भाररमणीयो वैद्यकविद्यालयः सर्वथा प्रशंसार्हः। सच दिष्ट्या दृष्टोऽस्माभिः। नवीनपुराणज्ञानविज्ञानादानबद्धपरिकराणां श्रीमन्महीशूराधिपानां राज्येष्वपि संस्कृतविद्यालये वैद्यकाध्यापनाय विहितः प्रबन्धः, सन्ति च तत्र केचन धर्मार्थौषधालया अपि, परं नानासम्भारालङ्कृतो वैद्यकविद्यालयोऽस्तीति न श्रुतमस्माभिः। अथ महाराष्ट्रपतीनामिन्दोर-गवालियर-बडोदा नरेन्द्राणां राज्येष्वपि शोभनाः सन्ति वैद्यकविद्यालया धर्मार्थौषधालयाश्च प्रशंसार्हाः। परं मन्ये नानोपकरणादिसम्भृतास्ते श्रियमधिकतरां पुष्णीयुः। ये च केचिदस्माभिरनभिज्ञाताः सन्ति वैद्यकविद्यालया नगरान्तरेषु तेऽपि महोद्देश्या इति प्रशंसार्हा एव। आशास्महे—सर्वेष्वेतेषु अधीयानाश्छात्राः कालान्तरेण सद्वैद्यपदवीं लभेरन्, इति।

इदं परं शल्यायते नश्चेतसि यत्—सत्यपि निखिलभारतीय वैद्यसम्मेलननियोजितानां भारतीयागदङ्कारवर्याणां धीरविचारसम्भूते सकलवैद्यकविषयावगाहिनि आयुर्वेदविद्यापीठपाठ्यक्रमे स्वयमुद्भावितान् स्वल्पतरविषयान् पाठ्यक्रमानेव अनुसरन्ति ग्रन्थाध्ययनमात्रेण तुष्यन्ति च केचन वैद्यकविद्यालयाध्यक्षाः। न हि ते प्रयतन्ते छात्राणां शारीरादिविज्ञानाय कर्माभ्यासाय चिकित्सानैपुण्याधानाय वा। एवञ्च सुलभोपाधिलाभाद् ज्ञानलवदुर्विदग्धाः स्वल्पज्ञाः कर्मानभिज्ञाश्च प्रादुर्भवन्ति केचन वैद्याः, ये द्विपवन्मदान्धा ज्ञेयान्तरमेव न पश्यन्ति। न हि वैद्यकं नाम—न्याय-सांख्य-वेदान्त-धर्म्मशास्त्रादिवद्ग्रन्थाध्ययनमात्राकलनीयं शास्त्रं यस्य वाग्विस्तराभ्यासेन अभिज्ञायेरन् रोगाः, उपक्रम्येरन् वा सम्यगातुराः। अत्र हि पदे पदे कर्मदर्शनं रोगपरीक्षणं वस्तुपरिचयो योग्याकरणञ्चापेक्ष्यन्ते, यैर्विना केवलशास्त्रज्ञः प्रमुह्यति आतुरानासाद्य—"प्राप्य भीरुरिवाहवम्"। ईदृशैश्च न सम्भाव्यते वैद्यकोन्नतिरनल्पेनापि कालेन। न च गुरुगृहेषु कथमपि पञ्चषान्मासान् वर्षं वा गमयित्वा करुणार्द्रहृदयस्य गुरोः प्रसादाल्लब्धप्रशंसापत्रै र्वैद्यैरादीप्यते वैद्यकज्योतिः।

अतः प्रार्थयामहे सर्वान् वैद्यकप्रेमिकान्—मा भूवन्नसंख्या वैद्यकपाठशालाः। भवन्तु पुनः स्वल्पसंख्या अपि संभृतसकलसम्भाराः कुशलाध्यापकाः आरोग्यशालाशालिनश्च वैद्यकविद्यालयाः—येषु वर्षचतुष्टयं वर्षपञ्चकं वा श्रामं यथाविधि शिक्षे-

रन् शास्त्राणि, समीक्षेरन्नातुरान्, प्रयुञ्जीरन् प्रयोगान् शिष्याः, लभेरंश्च निर्दिष्टकालानन्तरमेव परीक्षाफलोपार्जितानि प्रशंसापत्राणि। अध्यापनञ्च तेषु भारतीयप्रधानवैद्याचार्याणां वहुपरिश्रमफलम् आयुर्वेदविद्यापीठपाठ्यक्रममनुसृत्यैव प्रवर्तताम्। अन्यथा वहूनामवश्यज्ञातव्यविषयाणां ज्ञानाभावः स्यादेव, दुर्वाश्च अनतिप्रयोजनीयेषु वृथा श्रमः पौनःपुन्येन। साकल्येन पठनन्तु चरकसुश्रुतादिसंहिताग्रन्थानामेव भवितुमर्हति, तदपि न सर्वेषां किन्तु आयुर्वेदाचार्यपदलाभोत्सुकानामेव।

प्रधानलक्ष्यं हि शिक्षाया न ग्रन्थाध्ययनमात्रं किन्तु तत्तद् विषयाभिज्ञानं, कर्मनैपुण्यञ्च। तदर्थञ्च प्रवृत्तोऽयमायुर्वेदविद्यापीठपाठ्यक्रमः। स च कथमुपेक्ष्यः प्रेक्षावद्भिः ?

इदञ्चेदञ्च स्पष्टं प्रतिभासेत प्रतिभोज्ज्वलानां भवतां, यदीदृशलक्ष्यलाभार्थमपेक्षितमिदानीं पञ्चकर्मैव। तद्यथा—(१) नवीनपाठ्यग्रन्थानाम् आवश्यकसकलविषयावगाहिनां निर्माणम् (२) एकस्य (सति सम्भवे एकाधिकस्य वा) आयुर्वेद महाविद्यालयस्य स्थापनम् (३) स्थितानां वैद्यकपाठशालानामङ्गपोषणम् पाठ्यक्रमाणामैकमत्यविधानञ्च। (४) वैद्येषु अधिकतरगुणाधानार्थं विलुप्तायुर्वेदाङ्गसंयोजनार्थञ्च नवीनपाश्चात्यविज्ञानविषयाणां केषाञ्चन यथाप्रयोजनं ग्रहणम् (५) सद्वैद्यानां स्वगुणसम्पदि यतमानानां साहाय्याय विद्यालयपरिचालनसौकर्य्याय च वैद्योपदेशालयानां (Post graduate Training classes) स्थापनञ्चेति।

(१) तत्र दिष्ट्या नवीनपाठ्यग्रन्थानां निर्माणे दृश्यत एव केषाञ्चित् प्रयत्नः। विरचिता हि गीर्वाणवाणीमया हिन्दीभाषामयाश्च केचन ग्रन्थाः साम्प्रतम्। परं कर्तव्यसागरापेक्षया गोष्पान्येव ते। नूनं वहुतरमवशिष्यते कार्यम्। अपराद्धश्चात्र मयापि आरब्धग्रन्थमसमाप्य दुर्दैववशतहेतोः। परं भगवत्प्रसादात् सत्वरमेव कर्त्तव्यशेषं यथाशक्ति करिष्यामीति प्रतिजानन् क्षामयेऽपराधम्। याचे च समर्थान् ग्रन्थकारान्, उपक्रियेमहि वयं नवीन प्राचीनज्ञानोज्ज्वलग्रन्थनिर्माणेन इति। अस्ति हि आयुर्वेदविद्यापीठपाठ्यक्रमानुसारेण स्वस्थवृत्तव्यवहारायुर्वेदागदतन्त्राद्यनेकविषयेषु ग्रन्थनिर्माणस्यावश्यकता, तत्र श्राम्यन्तो मनस्विनः अक्षय्यं यशोऽर्जयितुमर्हन्ति।

इदञ्चैतत् प्रसङ्गे अवश्यवाच्यतया ब्रूमः—सर्वैरपि नवीन ग्रन्थकारैरपरेषां तादृशग्रन्थकृतां ग्रन्थेभ्यो ग्रहणीयाः नवीनाः संज्ञादयो ग्रहणयोग्याः, अन्यथा वृथा संज्ञाबाहुल्यमापद्येत। परं संज्ञाकृतां नामोल्लेखं विधाय आनृण्यमपि करणीयम्। तत्र कैश्चिदन्यथा कृतमिति सखेदमाकलय्य पुनः पुनः प्रार्थयामहे—मा तावदीदृशो दुर्नयः सुधियां वैमनस्यकरः प्रवर्ततां भूय इति।

(२) अथ वैद्यकमहाविद्यालयास्थापनमधिकृत्य विद्यते वहुवक्तव्यं नाम। तत्र विशाले भूभागे मध्यतो महाविद्यालयः षड्भिः सप्तभिर्वा सुविभक्तैः प्रशस्तपाठागारैरपरैश्च ग्रन्थागारभेषजपरिचयागारादिभिः समान्वितो यथा भवितुमर्हति, तथाऽस्माभिः

स्वयं चित्रयित्वा प्रदर्शितः। परितश्च महाविद्यालयम् आरोग्यशाला, औषधवितरणगृहम्, प्राकृतशारीरवस्तुप्रदर्शनागारः, वैकृतशारीरवस्तुगृहम्, छात्रावासः, कर्मकरावासो भेषजनिर्माणागारश्च भवेयुः, दूरे च शवव्यवच्छेदागारः। अभितश्च सर्वं नानायुर्वेदीय भेषजालङ्कृतमुपवनम्, यत्र अविकृतस्वरूपा वनौषधीः परिचिन्वीरन् शिष्याः। न च सद्वृत्तोपदेशार्थं भगवत्कृपालाभार्थञ्च विष्णुमन्दिरमपि धर्माचार्यालङ्कृतं तत्र विहास्यते।

ईदृशश्च महाविद्यालयः क्व स्थापनीय इत्यत्र दृश्यते बहुविधवैमत्यम् भिषजाम्। केचिदाहुः—एक एवास्तु महाविद्यालयो भगवतो भरद्वाजस्य लीलाभूमौ वैद्यसम्मेलनानुमतपूर्वं प्रयागक्षेत्रे। अन्ये, मन्यन्ते अस्तु सर्वौषधिप्रभवस्य हिमवतः पाददेशे त्रिलोकपावने हरिद्वारक्षेत्रे। अपरेऽभिदध्युः अस्तु वैद्यविद्यामहापीठभूतस्य वङ्गदेशस्य—अथवा भारतवर्षीय प्रधाननगर्यां कलिकातायाम्। अपरे हिन्दू विश्वविद्यालयाधिकारिणः समर्थयन्ते—अस्तु सर्वविद्याकरभूमौ वाराणस्यामेव। अथान्ये केचन—"गुरारेस्तृतीयः पन्था"—इति न्यायेन अर्धयावनमर्धवैद्यकमायुर्वेदमहाविद्यालयं देहल्यामेव स्थापयेरन्, न च मानयेरंस्ते निखिलभारतीयमायुर्वेदविद्यापीठं वैद्यसम्मेलनं वा। एवं स्थिते तपस्विनो बहुधाकृष्यमाणस्य का गतिर्गर्भस्थस्य आयुर्वेदमहाविद्यालयस्येति यत्सत्यमाकुलीभूतो वैद्यलोकः।

अत्र ब्रूमः। यदि शक्यते, स्थाप्यन्तामनेके वैद्यकमहाविद्यालयाः। परं पुराणनवीनोभयमतज्ञानां विदितवेदितव्यानां बहूनामध्यापकानामसौलभ्यात् न शक्यमेतत् सम्प्रत्येव। न खलं स्थापयितुं शास्त्रमात्रसाराणां विदुषामपि केषाञ्चन साहाय्यमात्रेण धनसंग्रहमात्रेण वा अन्वर्थनामा वैद्यकमहाविद्यालयः, अवश्यं हि ते परिचाययितव्या विद्वांसोऽपि शारीरादिनवीनविषयेषु (दुर्दैववशाद् विलुप्तप्रायेषु) शिक्षापद्धतिषु च कालोचितासु। अतोऽभ्यर्थये कर्मवीरान्—मा भून्महाविद्यालयस्य संख्याबहुत्वे स्थानविषये वा कस्यापि हठः। सर्वथा अध्यापकसौलभ्यं कार्यसौकर्य्यञ्च विचार्य स्थाप्यतां महाविद्यालयः, सफलीक्रियताञ्चास्माकं मनोरथ इति।

इदञ्चैतत् प्रसङ्गे महोदारचरितान् दानशौण्डान् परहितव्रतान् प्रार्थयामहे भारतीयनरेन्द्रान् भूस्वामिनश्च—मा तावत् स्वस्वपत्तनेषु शतशो वैद्यकविद्यालयस्थापनाय नियुज्यन्तां वो धनानि पृथग्भावेन, किन्तु एकस्यापि आदर्शभूतस्य महाविद्यालयस्य प्रतिष्ठार्थमापूर्यतां सर्वैरेकाग्रतया महाकोषः। किञ्च निजपत्तनेषु स्थाप्यन्तां भवद्भिः प्रकामं वैद्यकमतानुसारेण आरोग्यशाला औषधवितरणालयाश्च रोगशतक्लिश्यमानानां प्रजानामुपकाराय, परं न्यस्यतान्न्यस्यतामेष वैद्यकशिक्षणगुरुभारः समर्थानां सम्भूयप्रवृत्तानां भारतमान्यानां वैद्यकाचार्यधुर्याणामेव शिरसीति।

(३) अथ स्थिताभिश्च पाठशालाभिः निखिलभारतीयायुर्वेदविद्यापीठपाठ्यक्रममनुसृत्यैव स्वोत्कर्षलाभाय प्रयत्यताम्, न तु क्रियतां स्वतन्त्रवृत्त्या आरूढशाखोच्छेदाय प्रयत्नः।

ये च केचिदस्मद् दौर्भाग्यवशाद् विमनायमाना दूषयन्ति आयुर्वेदविद्यापीठं तानापृच्छामहे—स्वयमागत्य वैद्यसम्मेलने दोषान् प्रदर्श्य यथार्हं संशोधनं विधीयतामस्मत्कार्येषु, न हि न विधेया भवतामायुर्वेदविद्यापीठाधिकारिणः। अतीताश्च दोषाः क्षन्तव्या भवद्भिरिति।

किञ्च, क्षुद्राभिरपि भेषज़शारीरपरिचयागारादिभिरारोग्यशालाभिश्च उपबृंहणीयाः स्थिताः पाठशाला यथा केवलशास्त्राभ्यासनिरता दुर्विदग्धा न भवेयुश्छात्राः, यथा च आयुर्वेदाध्ययनानन्तरं आयुर्वेदविद्यापीठप्रवर्तितपरीक्षासु प्रविशेयुः। न च स्वकपोलकल्पितैः करुणापुरस्कारैरुपाधिभिः पुरस्क्रियेरन् शिष्याः। न हि सर्वैः स्वतन्त्रतया पृथक्प्रवृत्तेरायुर्वेदोन्नतिः सुकरा, सम्भूयसमुत्थितानान्तु करायत्ता फलसिद्धिः। अपराध्यन्ति चात्र वङ्गीया महाराष्ट्राश्च प्रायो येषु केश्चिदनृजुप्रकृतिभिरभिमानवशान्न तृणाय मन्यते निखिलभारतीयमायुर्वेदविद्यापीठम्।

(४) अथ चतुर्थकार्यं पाश्चात्यविज्ञानाविष्करणानां स्फुटप्रयोजनानामङ्गीकरणम्। तच्चाधिकृत्य निखिलभारतीयपष्ठवैद्यसम्मेलनसभाधिपतिना सर्वायुर्वेदबोधविशुद्धबुद्धिना अनधिगतपाश्चात्यविज्ञानेनापि अनन्धीभूतविज्ञानचक्षुषा तत्रभवता वैद्यरत्न पं० श्रीलक्ष्मीरामस्वामिना कलिकातामहानगरे यदभ्यधायि तदेव वः स्मारयामि संक्षेपेण—"मदीयश्चतुर्थ उपायो नवीनपाश्चात्यविज्ञानाविष्कारसारस्य स्वीकारणम्, स्वविज्ञानोन्नत्यै ज्ञानपूर्वकमुपयोगश्च। सर्वाणि प्राचीनार्यविज्ञानानि व्यपेतरसानीव स्तब्धानि यत्र महर्षिभिस्त्यक्तानि तत्रैव पीठे गर्तेवा सीदन्ति, न कालेन पुरःप्रचलन्ति। देशकालप्राणा न तेषु प्रविश्य तान्यनुप्राणयन्ति। ❀ ❀ ❀ भारते समायातानां विदेशीयानां विज्ञाने यत् सारभूतं तदस्माभिरात्मसादकारि काले काले। ग्रीकानामायातानां विज्ञान सारोऽस्माभिर्मन्ये ज्यौतिषिकैरिव सुविज्ञातः स्वभ्यस्तः स्वस्वशास्त्रकुक्षौ प्रवेशितश्च ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ भारते फिरङ्गप्लेगादयो नवा नवा बहवो रोगाः कालक्रमेण प्रविष्टास्तथा चास्मदीयचिकित्सायां नवोपायसृष्टिः स्वाभाविकी। तथैव च देशान्तरागतक्रमाणां स्वीकरणं जीवितविज्ञानलक्षणम्। जीवन्नेव हि जन्तुराहारादिविभिन्नं पदार्थजातं पाचनक्रियया रसनिर्माणेन चात्मसात्करोति, एवं पाश्चात्यचिकित्साया योंऽशः सर्वोपकारी विज्ञानानुमोदितः, स स बलादस्माभिरात्मीयतां नेयः।" इत्यादि (पष्ठवैद्यसम्मेलनसभापतेरभिभाषणम्—६७ पृ०)।

दृश्यताञ्चेदम् तदुदाहरणम्—शताधिकानि निम्ब-गुडूची-पुनर्नवा-ब्राह्मीप्रभृतीनि मकरध्वजादीनि च प्रकामं गृहीतानि बलादेव पाश्चात्यैः। न च तानि तानि प्रयुञ्जाना भक्तिन्ते ख्यापयन्ति वैद्यकशास्त्रं, तन् कथं पञ्जपाणि किनैन-कोकेनादि महाप्रभावौषधानि न गृह्णीमो वयं "तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते"—इति प्राचीनमहर्षिवचनमनुस्मरन्तः। न खलु इयत्तया सीमानिर्देशो व्यधायि पूर्वाचार्यैः, गृहीतानि च भावमिश्रादिभिराचार्यैः चोपचीनी प्रभृतीनि यावनौषधानि अनेकशः।

अत्र च प्रसङ्गे ग्रहणीयानां रोगविज्ञानोपायानामप्यालोचनं श्रेयसे नः । उक्तं हि सुश्रुते—"षड्विधो हि रोगाणां विज्ञानोपायः—पञ्चभिः श्रोत्रादिभिः प्रश्नेन च"—इति । तच्चाप्तोपदेशमनुस्मरन्तः "ष्टेथस्कोप" (Stethoscope) नाम्ना युग्मनाडी-यन्त्रेण उरोरोगेषु विभिन्नश्रुतीनां श्वासशब्दानां श्रवणं कथं न कुर्याम । ज्वरसन्तापादिनिश्चयाय" त्वाचपरीक्षानुकल्पं तापमानयन्त्रं "थर्मोमिटर" संज्ञं (Thermometor) कथं न प्रयुञ्जीम विशेष प्रतिपत्त्यर्थम् । चाक्षुषीं परीक्षामुपयुञ्जानाः सति प्रयोजने कथं वा सूक्ष्मदर्शनार्थम् "अणुवीक्षण" (Miscroscope) यन्त्रं भग्नादिविज्ञानार्थं X-Ray यन्त्रञ्च न व्यवहरेम । कथं वा नोपाददीमहि मूत्रपरीक्षणे तैलबिन्दुपरीक्षया सार्द्धं पाश्चात्यपरीक्षापद्धतिमपि पुष्कलफलाम् ।

किञ्च, शल्यचिकित्सायां साक्षाद् अग्नितापेन वा जलीयबाष्पतापादिभिर्वा यन्त्र-शस्त्र-पिचु-प्लोतादीनां संशोधनं (Asepsis and Antisepsis), सुरासारादिभिः (With Adsolute Alcohal &c) त्वचां निर्दोषीकरणञ्च साम्प्रतं सर्वथैव ग्रहणीयं वैद्यैः । "अग्नितप्तेन शस्त्रेण"—इति सत्यपि सुश्रुतीयशस्त्रशोधनोपदेशे तस्य नातिस्फुटविस्तरत्वात् तत्सहकृतशस्त्रकर्मणां निर्बाधारोग्यप्रदतादर्शनाच्च अविलम्बेनावलम्बनीयोऽयंविधिः । अमुं हि विधिं प्रवर्तयन् "लार्ड लिस्टन्" नामा पाश्चात्य-चिकित्सकप्रवरः पूयोद्भवशङ्कारहितानि शस्त्रकर्माणि सर्वायत्तानि निराबाधानि चाकल्पयदिति चिरस्मरणीयाऽस्य कीर्तिः, पाश्चात्यचिकित्सकेषु । एष च विधिः सर्वथा पूयादिप्रदजीवाणूनामभावाय भावतीत्येष हि तावदस्य विशेषः ।

अस्मिंश्च प्रसङ्गे जीवाणुकारणवादमपि संक्षेपेण वर्णयिष्यामि भिषजामुपकाराय । यद्धि भोज्यद्रव्यादीनां कालकृतं वैकृतं, दुग्धस्य दध्नि परिणमनं, शुक्तस्य सन्धानं, सुरासन्धानञ्च, तत्तदखिलं विभिन्नजातीयानां जीवाणूनां बीजतया तत्रस्थितानाम् आहितानां वा अभिवृध्यैव । आघातादिनिमित्तेषु अन्येषु च व्रणेषु पूयोत्पत्तिरपि जीवाणुकारणकैव । कुष्ठविषमज्वरफिरङ्गरोगादीनाञ्चोत्पादकाः सन्ति पृथग्विधा जीवाणवः । ते च ते च पृथग्विधा जीवाणवः उपायविशेषैः शक्याः पृथक्कर्तुं मांसयूपादिषु वर्द्धयितुञ्च । परिज्ञेयाश्च ते अभिवृद्धिप्रकारदर्शनात् सूक्ष्मस्वरूपदर्शनाच्च असहायेन "अणु-वीक्षण" यन्त्रसहायेन च नेत्रेण ।

पुष्कलञ्च पश्यामो मूलं जीवाणुकारणवादस्य वैद्यकेऽपि । तत्प्रदर्शनञ्चास्माभिः सिद्धान्तनिदाने निदानव्याख्यानप्रसङ्गे यथाऽकारि—तदेव तथा अद्यापि अप्रकाशितात् "सिद्धान्तनिदान" ग्रन्थादुद्धृत्य स्थापयामो भवतां पुरतः ।

"अथात्र केचिद्विप्रतिपद्येरन्—ननु कोऽयमश्रुतचरो जीवाणुकारणवादो नाम ? नहि जीवाणवो रोगकारणानीति क्वापि ऋषिभिरनुमतं पश्यामः, उपलभ्यमानाश्च जीवाणवः कार्याण्येव दोषदूष्यविकारजानि स्युर्न कारणानीति न वयं प्रतिपद्यामहे पाश्चात्यमतं जीवाणवः क्वापि रोगकारणमिति । तान् प्रतिब्रूमः । न खलु कल्पनामात्रमिदं

केषाञ्चिद् यदेष जीवाणुकारणवादो नाम, प्रत्यक्षप्रमाणोपलब्धे स्तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वाद्रोगाणामार्षसम्मतिदर्शनाच्च । तत्र प्रत्यक्षप्रमाणोपलब्धिर्यथा संक्रामकरोगेषु कुष्ठयक्ष्मादिषु प्रत्यक्षं दृश्यन्ते सूक्ष्मा जीवाणवः शोणितश्लेष्मादिगताश्चक्षुषाऽणुवीक्षणादियन्त्रसहायेन । पृथग्विधाश्चैते प्रतिसंक्रामकरोगम् । इदञ्चेदञ्च नः प्रत्यक्षं यच्चैस्तैर्जीवाणुभिः प्राण्यन्तरेषु परोक्षार्थं संक्रामितैरुत्पाद्यन्ते ते ते रोगाः । अत्र तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वं च रोगाणां यथा—यत्र यत्र ते ते संक्रामिणो रोगास्तत्र तत्र ते ते जीवाणवः । यत्र यत्र न ते जीवाणवस्तत्र तत्र न ते रोगा इति । तथा च प्रतिपाद्यते कार्यकारणभावः । आर्षसम्मतिश्चात्रार्थे भूयसी दृश्यते—तथाहि कुष्ठाधिकारे सुश्रुतः—"सर्वाणि कुष्ठानि सवातानि सपित्तानि सश्लेष्माणि सक्रिमीणि च भवन्त्युपसंग्रहतस्तु दोषग्रहणमभिभवात्" इति (सु० नि० ५ अ०) । न च वाच्यं—सहचारित्वमेवेह क्रिमीणामुपदिष्टं न कारणत्वमिति । यतश्चरकार्थमनुवदन् वाग्भटोऽप्याह—"रक्तवाहिसिरास्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः । अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात् केचिददर्शनाः । केशादा लोमविध्वंसा लोमद्वीपा उदुम्बराः । षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहसौरसमातरः" इति । इह कुष्ठैककर्माण इत्युक्तेः स्पष्टमेव जीवाणूनां कारणत्वम् । एवं सुश्रुतोऽपि "रक्ताधिष्ठानजान् प्रायो विकारान् जनयन्ति ते" (सु. उ. ५४ अ.) इति रक्तजक्रिमीणां प्रायेण रक्ताधिष्ठानजरोगकारणत्वं प्रतिपेदे । दर्शयामास च तांस्तान् रोगान् कुष्ठ-वीसर्प-पिडका-मशक-नीलिका-तिलकालक-न्यच्छ-व्यङ्गेन्द्रलुप्त-प्लीह-विद्रधि-गुल्मवातशोणितादीन् (सु. सू. २४ अ.) । इदञ्च जीवाणुकारणवादस्य बीजं दर्शयतः सुश्रुताचार्यस्य संग्रहवचनम्—"प्रसङ्गाद् गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात्सहभोजनात् । सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् । कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च । औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्" इति (सु. नि. ५ अ.) । यत्र ज्वर इति न सर्वविधो ज्वरः, किन्तु ग्रन्थिकसन्निपातादिरेवेति व्याख्येयम् । शोषो राजयक्ष्मा । औपसर्गिकरोगा मसूरिकादयः । तदेवं सुश्रुतेन संक्रामकरोगाणां संक्रमणकारणसूत्रणाय सम्यग् दिग्दर्शिता । उक्तञ्च "केशादाद्यास्त्वदृश्यास्ते" (सु. उत्तर. ५४ अ.) इति । तांश्चाधुना पृथग्विधान् जीवाणूनणुवीक्षणयन्त्रादिसहायेन चक्षुषा पश्यामोऽपि । तस्मादार्षमताऽविरुद्ध एवायं जीवाणुकारणवादः पाश्चात्यैः सम्यक् विस्तारितः परीक्षया ग्रहणीय एव । आहुश्च—"कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमतामाचार्य" इत्युपक्रम्य "तस्मादमित्रस्यापि धन्यं यशस्यमायुष्यं लौकिकं वचः श्रोतव्यमनुविधातव्यञ्चेति" (च. वि. ८ अ.) । ननु तर्हि परमर्षिभिरेव सर्वज्ञैः कथं न सम्यग्गृहीत इति चेत् ? उच्यते, सत्स्वपि व्याधिबीजभूतेषु जीवाणुषु तदुपयोगिक्षेत्रमपेक्षितं, तच्च अब्रह्मचर्यादिक्षामं शरीरमेव । न हि सम्यग् यमनियमादिवतामप्रतिहतशक्तीनां किञ्चित्करा रोगजीवाणवः । अस्माकन्तु तादृशयमनियमाद्यशक्तानां शरीरेषु प्रकामप्रसरो जीवाणुप्रभाव इत्यस्ति जीवाणुतत्त्वपरिज्ञानस्य सार्थकता । प्रयोजनं चास्य जीवाणुकारणवादस्य जीवाणूनां संक्रमणप्रति-

षेधो निदानपरिवर्जनं चिकित्साविशेषश्चेत्युपरिष्टाद् दर्शयिष्यामो यथास्थानम् ।"—इति ।

अथ यन्त्रशस्त्राणि प्रायः कार्त्स्न्येन आयुर्वेदादेव गृहीतानि पुरा पाश्चात्यैरिति अदर्शयाम मथुरायां वैद्यसम्मेलने आपरितोषं भवताम् । तदुत्तमर्णा वयं तानि चेदिदानीं सकुसीदं गृह्णीम, न खलु वचनीया वयं विज्ञैः । एवञ्च सर्वाण्येव पाश्चात्ययन्त्रशस्त्राणि यथावद्ग्रहणीयान्येव वैद्यैरिति साहसपुरःसरं प्रतिजानीमः ।

एभिश्चोपायैः संवर्द्धितचिकित्सासाधनाःप्राच्यवैद्याः सर्वथैव प्रतिष्ठापयेयुरायुर्वेदस्य विजयवैजयन्तीमिति कस्तावदत्र दूरदर्शी सन्दिहीत ।

नचास्माभीरोगविज्ञानेऽपि प्रमदितव्यम् । कालवशेन परिवर्तिता हि नभोमण्डले ग्रहनक्षत्रादीनामपि कक्षाः, किमत्र चित्रं यदिदानीं रूपान्तरिताः केचिद्रोगाः, विलुप्ताश्चापरे, प्रादुर्भूताश्च केचन नवीना एव, तस्माच्चेदमुक्तमस्माभिः सिद्धान्तनिदाने प्राचीनवचनमुखेन—

"व्याधयोऽपरिसंख्येया भिद्यमाना भवन्ति हि ।
रुजावर्णसमुत्थान स्थान संस्थान नामभिः ॥" इत्युपक्रम्य—
"दोषदूष्यगणेऽभिन्ने संमूर्च्छन विशेषतः ।
अदृष्ट-देश-कालादि-परिणामादनेकधा ॥
पुराणाः प्रविलीयन्ते नवीनाः प्रादुरासते ।
विभिद्यन्ते स्थिताश्चाथ नृणां नानाविधा गदाः ॥" इति ।

अस्य चार्थः । दोषा वातपित्तकफाः । दूष्याणि रसरक्तादीनि तेषां गणः समूहः, तस्मिन्नभिन्ने सर्वदा स्वरूपतस्तथाविध एव वर्तमानेऽपि । अदृष्टदेशकालादिपरिणामाद्धेतोः—अदृष्टस्य शुभाशुभकर्मफलरूपस्य, देशानां कालस्य चानेकधा परिणामात् नानाविधविपर्ययात् । कालादीत्यादिपदेन नानाविधमिथ्याहारविहाराणां ग्रहणम्, तथाहि पूर्वं यादृशा मिथ्याहारविहारा लोकैः क्वचित् कदाचिदुपयुज्यन्ते स्म, तानेवेदानीं नियमेनोपयुञ्जते बहवस्ततोऽपि नवनवरोगविशेषसमुद्भव इति भावः । संमूर्च्छनविशेषतः—तथाविधविपर्ययजनित-दोषदूष्यसंघटनप्रकारभेदात् । पुराणाः प्रसिद्धाः प्राचां ग्रन्थोक्ताः प्रविलीयन्ते विलुप्ता भवन्ति, गदा रोगा इत्यन्वयः । नवीना अभिनवाश्च रोगाः प्रादुरासते प्रादुर्भवन्ति । विभिद्यन्ते स्थिताश्चेति—त एव रोगा भिन्नरूपाः सन्तो रोगान्तरवत् प्रतीयन्ते । तत्र पुराणरोगाणां विलोपो यथा शूकदोषकेशसीमंतकज्वरादीनाम्, तथाहि सुश्रुतः "व्याधयस्तत्रजायन्ते दश चाष्टौ च शूकजा" इत्यादि, "असाध्योबलवान् यस्तु केशसीमन्तकज्वरः" इति च । स्थितानां भिन्नरूपत्वं, यथा माधवीयनिदानोद्धृतचरकोक्त-समत्रिदोष-सन्निपातादेः । नहीदानीं प्रायः सन्निपातज्वरे—"कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानाञ्च दर्शनं" भवति । नवानां प्रादुर्भावः, यथा फिरङ्गरोग-ग्रन्थिकादीनाम्, अत्र चार्थे प्राचां सम्मतिर्यथा—चरके तत्रैव "विकारनामाकुशलो जिह्रीयान्न कदाचन । नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थिति" रिति । अस्य ह्ययमभिसन्धिः । अनन्ताः खलु रोगा

अध्रुवस्थितयश्च, अमी च समुत्पन्नाः समुत्पद्यमानाश्च न तावत्सर्वे शक्या निर्देष्टु-मियत्तया नामतः । ये पुनरिदानीं प्रसिद्धास्तेऽस्तेऽस्माभिनिर्दिश्यन्ते नामलक्षणा-दिभिः; कालान्तरागामिनस्तु लक्षणादिपरिलक्षणेन सम्यग् वेदितव्याः । न चेदं लज्जा-पदं यदस्मदीयसंहितायामपि केषाञ्चिद्रोगाणां न लभ्येरन् लक्षणादीनीति । निरवधिर्हि कालो विपरिणामी, नियतपरिवृत्तिशीलञ्च जगत्, कथं न्वत्र नियमो ध्रुवसंस्थानलक्ष-णास्तथाविधा एव सदा वर्तेरन् रोगा इति । अन्यच्चाह सुश्रुतोऽपि—"अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत्" इति (सू. सू. ३५ अ.) । अस्यायमभिप्रायः । वहवः खल्वस्माभिरभिहिता रोगाः, सन्ति चेतरे समुत्पत्स्यमाना ये नेह शक्या विवरी-तुम् । उपक्रमस्तु तेषां लक्षणदर्शनाद्दोषसंयोगविशेषानुमानतो दर्शितदिशा तत्तद्दोषप्रश-मनाद्युपायविधानेन विधेय इति ।

नन्वेवमास्तां नवीनरोगसंघो नाम । तथापि यदि सौश्रुतेङ्गितानुसारेण तत्तद्रोगा-रम्भकदोषानुमानपुरःसर-दोषप्रशमनभेषजादिप्रदानेनैव तत्तद्रोगनिवृत्तिः, अलं तर्हि नवीनरोगलक्षणपरिज्ञानप्रयासेनेति चेन्, उच्यते । त्रिविधो हि रोगाणामुपक्रमो भवति—हेतुप्रत्यनीको व्याधिप्रत्यनीक उभयप्रत्यनीकश्चेति । तत्र स्वल्पबलदोषारब्धो हेतुप्रत्यनीकोपक्रमेण, मध्यबलदोषारब्धो व्याधिप्रत्यनीकोपक्रमेण । महाबलदोषारब्ध-स्तूभयप्रत्यनीकोपक्रमेण प्रशाम्यति रोगः—इति तत्त्वविदां सिद्धान्तः । वक्ष्यमाणनवीन-रोगास्तु प्रायशो मध्यबलदोषारब्धा महाबलदोषारब्धा वा दुरुपक्रमाश्चेति व्याधिप्रत्यनीको हेतुव्याधिप्रत्यनीको वैषां भवितुमर्हत्युपक्रमः । तादृशोपक्रमश्च व्याधिविशेषपनिश्चाय-कात्तच्चिकित्सा-विशेषोपदेश-काच्चागमादृते न शक्यः कर्तुम् । सौश्रुतोपदेशस्तु स्वल्प-बलनवीनरोगेष्वेव चरितार्थो नाधिकबलनवीनरोगेष्वित्यमोघ एवायमभिनवरोगलक्षण-परिज्ञानप्रयासः । किञ्च, अनभ्यस्तनवीनरोगलक्षणविशेषो भिषङ् नवीनरोगेषु परिज्ञातरोगलक्षणसादृश्याऽसादृश्यदर्शनात् संशयानो नैव वा शक्नुयारुजः प्रतिकर्तुम्, हन्याद्वातुरमसमञ्जसोपक्रमणेन । न चायमलं पूर्वत एव प्रतिविधातुं वक्ष्यमाणस्वस्त-कसन्निपातस्य पञ्चमे, सप्तमे वा दिवसे भविष्यन्तीमकस्माज्ज्वरनिर्मुक्तिं प्रायः प्राणान्तकरीम्, आन्त्रिकाख्ये वा सन्निपाते द्वितीये तृतीये वा सप्ताहे जनिष्यमाणं रक्तस्रावञ्च, तस्मादितोऽपि पुष्पकलफलो नवीनरोगलक्षणाभ्यासप्रयासः । अत-एवाहुः—"तस्माद्विकारप्रकृतीरधिष्ठानन्तराणि च । समुत्थानविशेषांश्च बुद्ध्वा कर्म समाचरेत् ॥" इति (च., सूत्र. १८. अ.) ।

५. अथ पञ्चमं कार्यमधीतायुर्वेदानां भिषजां दुर्दैवशान्नवीनायितेषु, शारीरादि-विषयेषु, केषुचिदाहृतनूतनविज्ञानेषु च उपदेशनम् । सन्ति च हन्त केचन वैद्या ये उपदिश्यमानाः प्रकुप्येयुः, सर्वज्ञाभिमानेन स्तब्धाश्च उद्विजेरन् नवीनविषयकथामात्रेण । न खलु शक्यं तादृशानुपदेष्टुम् । दिष्ट्या सन्ति चापरे ये शास्त्रज्ञा अपि स्वकीयां न्यूनतां सम्यगवबुध्य स्वगुणसम्पदि प्रयतन्ते । तादृशानां कृते सत्वरं स्थापनीयाः

पृथग्विद्यालयाः कुशलैः । सन्तु वा महाविद्यालये एव तादृशाः शिक्षकशिक्षणालयाः येषु वर्षेण वर्षद्वयेन वा नैपुण्यविशेषं कर्माभ्यासञ्चार्जयित्वा विशेषज्ञोपाधिविशेषेण समलङ्क्रियेरन् भिषजः । ईदृशेषु च शिक्षणालयेषु उपदेश्यानि—शारीरपरिचयः, शारीरक्रियाविज्ञानम्, वैकृतशारीरविज्ञानम्, रोगविज्ञानोपायाः, पञ्चकर्मविधयः, शल्यतन्त्रम्, जिवाणुविद्या, नवीनचिकित्साविधयः, व्यवहारायुर्वेदपाश्चात्यागदतन्त्रादयश्च केचन कालोचिता विषयाः । एवं सुशिक्षिताश्च वैद्याः सर्वथा राजपुरुषाणामपि श्रद्धां लभेरन् व्यवहारादिषु इति शक्यं सम्भावयितुम् । एवं विधैश्च शक्यं महाविद्यालये आयुर्वेदपाठशालासु च सम्यक् शिष्यानपि शिक्षयितुम् ।

अहो सुमहदिदं कर्तव्यजातं, शक्तिश्चाल्पा भिषजामिति च मा तावद्विमनायध्वम् । दृढप्रतिज्ञं हि सत्त्वं कार्यपारं प्रापयति—नोपकरणसम्पद् । अतः प्रार्थयामहे—सुमहदिदं कर्तव्यं पुरस्कृत्य विस्मृतकार्यान्तराः सत्त्ववन्तो भवन्तः संघशक्त्या प्रवर्तध्वम् । स्मारयामि चात्र प्रसङ्गे दृष्टान्तम्—

"रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्त तुरगाः, निरालम्बो मार्गश्चरणरहितः सारथिरपि ।
रविर्यात्येवान्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः, क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ॥" इति

किञ्च, अचिरभाविन्या वैद्यकचिकित्सोन्नतेः सन्ति साम्प्रतं शतशश्चिह्नानि । ये हि केचिदायुर्वेदमवैज्ञानिकमित्यधिक्षिपन्ति स्म पाश्चात्यमतावलम्बिनो वैद्यास्त एव स्वगृहेषु साम्प्रतं दुरारोग्य-रोगप्रतीकाराय वैद्यकचिकित्सां शरणीकुर्वन्ति, सफलकामाश्च स्तुवन्ति वैद्यकम् । सन्ति चानेके तादृशा ये पाश्चात्यमतं भूम्ना परित्यज्य वैद्यकचिकित्सामेव वृत्त्यर्थं लोकोपकारार्थञ्चाश्रयन्ते । सहस्रश्च दृश्यन्ते हन्त यूरोपीया येऽपि वैद्यकचिकित्सां प्रति भक्तिं ख्यापयन्ति । ये तु केऽपि आई. एम्. एस्. उपाधिधारिणो कर्नेल ज्याक्सन—डा. सदरलयाण्डादयः पाश्चात्यचिकित्सकाः सुज्ञातमपि सत्यमपलपन्तो वैद्यकचित्साशास्त्रं सुमहता श्रमेण आंग्लभाषानुवादमुखेन आलोचयन्तो निन्दन्ति प्राचीनविज्ञानम्, तेषां दुर्युक्तिजालमस्माभिः सर्वथा खण्डशः कृतं पूर्वं हिन्दू विश्वविद्यालयारम्भसामयिकव्याख्याने अन्यत्र च परं कारणमीदृशोपालम्भस्य स्पष्टमेव । सम्प्रति हि कलिकातादिमहानगरीषु आई. एम्. एस्. पदधारिणः पाश्चात्यवैद्यानतिक्रम्य वर्तन्ते केचन सद्वैद्या वित्तोपार्जनेन यशसा चेति दुर्विषहमेतत्तेषाम् । किञ्च पुराणदुरारोग्यरोगिणो डाक्टरपरित्यक्तान् सहस्रशो नीरुजीकुर्वन्ति भवन्तः—इत्यपि कीर्तिगाथा कर्णे प्रविश्य विदारयन्ति तेषां हृदयम् । तदेतादृशस्तेषां गात्रदाहः साफल्यमेव वैद्यकस्य व्यनक्ति ।

अथापरमपि साफल्यचिह्नं हरिद्वारे आयुर्वेदमहाविद्यालयस्थापनार्थम् अस्मत्परमसुहृदा परमोदारस्वान्तेन महोद्यमेन माननीय श्रीमत् सुखवीरसिंहमहाभागेन अन्यैश्च क्रियमाणस्य प्रयत्नस्य फलोन्मुखत्वम् । तत्र हि महानुभावैः युक्तप्रदेशीयशासनकर्तृभिः आयुर्वेदमहाविद्यालयस्थापनाय सार्धलक्षमुद्रादानं प्रतिश्रुतमिति सन्देशं वः श्रावयतः

आनन्दाश्रुभिरापूर्यते मे नयनम् । अहो प्रथमश्च चिरस्मरणीयश्च वैद्यकेतिहासे पाश्चात्यवैद्यजनाकृष्यमाणहृदयस्य पाश्चात्यराजलोकस्यायं वैद्यकानुरागः । सर्वथा इममेवं दृष्टान्तमनुसृत्य प्रवर्तेरन् अन्येऽपि राजपुरुषाः, भारतीयाः, नरपतयो धनाढ्याश्चेति सानन्दमाशंसामः ।

अपरञ्च चिह्नं सम्प्रति वङ्गेषु यशोहरप्रान्तीयवोर्डेन गवर्नमेण्टानुमोदितस्य आयुर्वेदीयधर्मार्थौषधालस्य स्थापनम् । नखल्वद्यापि केनापि प्रान्तीयवोर्डेन गवर्नमेण्टानुमोदनेनाऽरब्धमिदं कार्यम्, स्थितानाञ्च तादृशौषधालयानां विलोपनाय च प्रतिकूला अभूवन्नद्यापि राजपुरुषाणां प्रयत्नाः, एतदर्थञ्च वेदान्तवारिधिपदभाजो रायबहादुर श्रीमद् यदुनाथमजुमदार महाशयाः यशोहर 'डिस्ट्रिक्ट वोर्ड' सभाधिपतयो राजपुरुषाश्च सर्वथा धन्यवादार्हा वैद्यानाम् । आशास्महे, अचिरेणैव कालेन अन्यैरपि डिस्ट्रिक्ट-वोर्डाख्यप्रान्तीयमण्डलैः स्थापयिष्यन्ते धर्मार्थौषधालया आरोग्यशालाश्च बहुधा ।

इदञ्चावसाने निवेद्यम् । आयुर्वेदोन्नतिं कामयमानैर्भवद्भिः सर्वथा विजितेर्ष्याद्वेषाभिमानैर्विस्मृतस्वार्थै रैकमत्येन सोदरबुध्या वर्तितव्यम् । परस्परविरोधकृतैवेयं भारतीयानां दुर्दशा—मा भूद् वैद्येषु स्वार्थाभिमानान्धता सकलोपजीव्यमायुर्वेदामृतं सेवमानेषु । सन्ति तावदल्पज्ञा बहुज्ञाश्चास्मासु । परं सम्भाव्यते, विद्वेषबुद्धिं परित्यज्य निर्मत्सरैर्भवद्भिर्महोद्देश्यसाधनाय, तुल्यमेव सर्वैः प्रयतिष्यते । अपारसमुद्रापेक्षया घटजलाशययोर्योभेदः, आयुर्वेदवारान्निध्यपेक्षया स एवास्माकम् अल्पविदां बहुविदाञ्च ।

अतः सविनयं प्रार्थयामहे वैद्यलोकम्—

मोहं महाव्यसनजं विजहीहि तस्माद् एतर्हि जागृहि चिरं तमसा न भाव्यम् ।
नीहारनद्धगगनादुपसः पुरस्तादाक्रान्तसर्वहरिदन्त उदेति भास्वान् ॥



१२

निखिल भारतीय वैद्यसंमेलनस्य द्वादशाधिवेशन-सभापतेः,

स्वर्गीय हाराणचन्द्र चक्रवर्ति कविरत्न महोदस्य

अभिभाषणम् ।

यः क्रोधाज्जामदग्निजं त्रिभुवनाद्दावूर्ण्य ससार्णवे वारंवारमुदारधीः प्रतिगतः संमज्ज्य शुण्डाक्रमैः ।
क्षिप्ता भूतल एव कोपमतुलं तत्याज लम्बोदरं वाञ्छापूर्णकरं गजेन्द्रवदनं तं विघ्ननाशं भजे ॥

त्वं कालिकासि कलिकल्मषनाशनाय तारासि दुर्गभवसागरतारणाय ।
मातङ्गिनी भयमतङ्ग-विभञ्जिकासि श्रीकान्तिपुष्टिविभवा कमलात्मिकासि ॥
दुर्गासि दुर्गतिहरा करुणावकीर्णा सर्वान्नदाननिरतासि सदान्नपूर्णा ।
एवं समस्तविभवैकनिदानरूपां तां त्वां नतोऽस्मि भववाग्विभवाय वाणीम् ॥

परात्परमजात्मकं परमकामसन्दोहकं श्रिया गुरुपदाम्बुजद्वयनिबिडसिद्धं रजः ।
करोतु भयभञ्जनं विविधविघ्नविद्रावणं प्रमोहतमसोऽर्द्दनं भवनिबन्धनिर्म्मोचनम् ॥

वर्षेऽस्मिन् प्रववर्ष मर्षणपरो देवो महर्ष्यर्थितो
भारान् भारत नाम भूमिवलये विद्यानिधीनां विधिः ।
येषां प्राक्किरणच्छटाभिरभितो भूमण्डलं प्रोज्ज्वलं
नो रत्नानि च कान्तिमन्ति पुरतो भान्तीह तं वीक्षते ॥
तेषामेकतमं चिकित्सितमहो रत्नं तु यत्नैर्विना
यात्येव प्रलयं प्रपश्यसि न किं नेत्रैस्त्रिभिर्भूपिता ।
त्वत्तेजोऽमृतदीधितेः करुणया पीयूषधारार्पणैः
तत्सद्रक्ष विवर्द्धयस्व नितरामुद्दीपयोद्दीपय ॥

पुरा किल नानाविद्योपार्जितयशोमण्डितपण्डितमण्डलीसमधिष्ठितेऽस्मिन् भारते वर्षे ब्रह्मज्ञाननिधयः कपिल-कणाद-गौतम वादरायणप्रभृतयो महर्षयो यथासन्, अभवंश्च ते ज्ञानगरिम्णा ब्रह्मज्ञेषु सर्वोच्चस्थानमधिकुर्वन्तः, यथा च नीतिवार्त्तादिशास्त्रेषु भृगु-कौटिल्यप्रभृतयो मनीषिणस्तत्र तन्त्रानुशीलनेन जगति प्रधानपदवीमधिरूढाः, तथैवायुर्वेदप्रवर्तका धन्वन्तरि-सुश्रुत-रक्षित-गोपुरात्रेयाग्निवेश-हारीतप्रभृतयो महर्षयोऽध्यापन-योग्याकरण-रुक्प्रतीकारादिभिः कर्मभिः शारीरतत्त्वं सम्यक् समाकलय्य बल-वर्ण सुखायुर्विधित्सवःसमस्ततन्त्रप्रणयनेन जगतां महोपकारं कुर्वन्तोऽमरतया प्रतिभासन्त इवेदानीमपि । कालक्रमतस्तत्रतत्राध्यायनाध्यापनाद्यननुशीलनेन भिषक्छद्मचर-प्रवर्ति-

ततया सुमहदायुर्वेदशास्त्रमिदानीं विलुप्ततरमिव प्रतिभाति । मोहयन्ति चेदानीं वैदेशिकपाश्चात्यचिकित्साशास्त्राणि तत्कौशलानि चायुर्वेदशास्त्रानुशीलनविमुखान् भारतवर्षीयानतत्त्वदर्शिनोऽस्मान् कुहकानिव ।

सुखसंवेदनमेतद् यदुत एवं विधेऽपि दुर्दिने आर्षशक्तिपरिहीना अपि सहसा सुप्तोत्थिता इव वयमायुर्वेदशास्त्रीयप्रकृततत्त्वमनुसन्धित्सवस्तद्विद्यसम्भाषया परस्परं ज्ञानाभिवृद्धये समवेताः स्मः । महर्षिगुणसम्पन्नजनसमालोचनीयमेतदायुर्वेदतन्त्रम्, यस्य च प्रामाण्येनानुमापितं प्रामाण्यमपौरुषेयस्यापि वेदस्य तत्रभवद्भिर्गोतमादिभिः, नानादिग्देशादागत-नानाशास्त्रपारावारपारीण-विद्वज्जनगणवरेण्य-परिपूरितेयम् परिषत्, नगरी चेयम् मुम्बादेवीसमधिष्ठिता इदानीन्तनसमस्तभारतवर्षनिकषायमाणा, तदस्यां नगर्य्यां तादृश्याः परिषदः व्यवस्थापनादि-वपुरादि तत्तद्गुणेन विरहितोऽयं जनः पतित्वेन समाहूतः शङ्कते पाटवादिविरहिततयोपहास्यास्पदतां यास्यति न वेति । आशास्ते च भवादृशैर्महद्भिः सुप्रतिष्ठितया शिलाशकलदेवत्वन्यायेन सर्वथाऽपटुतरोऽपि पतियोग्यतामासाद्य कर्तव्यसम्पादनेन परिषदमेनां कथञ्चिद्विनोदयितुं शक्यत इति । दुःखाकरोति चैनमतीव निष्कर्षः कालस्य, येनाहूतोऽयं सुदूरादर्वाक् पञ्चपेभ्यो दिवसेभ्यः ।

'तथाप्याशैशवसञ्चितप्रबलतरायुर्वेदशल्यतन्त्रानुशीलनवासना-वशीकृत-मनसा बहुतरविघ्नसङ्कुलगुरुकुलवासासहनीयश्रमसहकारेण कलनिनादादिगङ्गातटवर्ति-गङ्गाधरप्रसादलब्धेषु यत् किञ्चिदापञ्चाशद्वर्षानुशीलनलब्ध'—शल्यशालाक्यादितन्त्रनैपुण्यं तदेव विज्ञापयितुं वाग्विभवेन विना कृतोऽपि बलवदभिलापप्रणोदितया समुत्सुकोऽस्मि । तत्र च सदुःखं निवेदयामि—अध्यवसाय-जिज्ञासादिगुणसम्पन्न—सच्छिष्याभावेन बहुतरायासलब्धस्याऽपि यत् किञ्चिनैपुण्यस्य क्षणप्रभाप्रभाविकाशवदतीव विरलप्रचारः संवृत्तः । मन्ये मज्जीवनपर्यन्तस्थायिना तन्नैपुण्येन गन्धर्वपुरवन्नातिचिरं स्थातव्यमिति । सन्ति पाश्चात्यशल्यतन्त्रनिष्णाताः के चनेदानीमायुर्वेदविद्भिपगवृत्तिपरिशीलनेन विज्ञापनप्रभावमासाद्य ख्यात्यर्थोपार्जनमात्रपरमपुरुषार्थाः, ते च कविराज इति नाम्नैव परित्यक्तशल्यतन्त्रव्यवसायाः सुचिराभ्यस्तपाश्चात्यशल्यतन्त्रसाहाय्येनाप्यायुर्वेदीयशल्यतन्त्रमालोचयितुं न बहु मन्यन्ते । केचन तादृशा एव विद्वांसः प्राच्यशल्यतन्त्रमालोचनगुणवत्तादिविरहिततया सम्यग्बोधाविषयीभूतं ज्ञानगाम्भीर्यादियुक्तं भ्रमप्रसादादिकलुषितं विमृश्य नितरामुपेक्षन्ते । एवम्भूते प्रतिकूले काले वयमत्र कृतकृत्या भवितुं शक्नुमो न वेति न जानीमहे ।

मन्यामहे यद्यपि पाश्चात्यशल्यतन्त्रस्यासम्पूर्णतया प्राच्यशल्यतन्त्रमालोचयितुं कालो वर्तत इति । अत्र च भीतभीता इवाशङ्कामहे यदस्मदुक्तमाकर्णयन्तः सभ्या विषमसाहसिकतामाकलयन्तस्तीव्रकटाक्षेण निर्भर्त्सयन्त्यस्मानिति । प्रत्युत अस्मान् प्रतीच्यशल्यतन्त्रस्यासम्पूर्णतैव सिद्धये प्रेरयति, अन्यथा नवोत्साहेन प्रचरतां कृतयोग्यानां प्रतीच्यशल्यतन्त्रविदां वर्तमानतायां स्वयं सिद्धा मादृशाः प्राचीनाः कथं कथ-

मपि प्राच्यशल्यतन्त्रानुसारेण अन्तर्विद्रधिप्रभृतिष्वपि चिकित्सावकाशं लब्धुं नार्हन्ति। असम्पूर्णता च पाश्चात्यशल्यतन्त्रेषु व्रणशोथानामामावस्थासु कारणीभूतदोषानुपेक्ष्यैव यदेकजातीयमेव भेषजमुपदिष्टं, तेन च तेषां सिद्धिर्यादृच्छिकी इति। परमर्षिभिस्तु कारणभूतदोषानादायैव तत्तद्दोषप्रत्यनीकभावेन भेषजत्वेन बहुश उपदिष्टा लङ्घन-शोधन-विम्लापन-निर्वापण-विस्रावणोपनाहादयः निरत्यया उपक्रमाः, तत्प्रभावेण च सिद्धिः करतलामलकवत् सर्वत्र प्रचलति। पक्वावस्थासु च भेदनाद्यनन्तरं शोधनक्रम (Antiseptic process) मात्रसहायस्ते शोधन-रोहण-सवर्णीकरणादिक्रमेण प्रतिविधित्सून् परमर्षीन् स्प्रष्टुमपि न क्षमन्ते। तदिदं ब्रूमः...पाश्चात्यानां तन्त्रेषु यावन्तं कालमीदृशाभावः स्थास्यति तावदेव वयञ्चेत् शिक्षोपायावासाद्युपकरणसचिवाः सम्भूतसम्भारा भवितुमर्हामस्तदा नियतमेव बहुविघ्नसङ्कुलाया अपि प्राच्यशस्त्रप्रक्रियायाः सम्यक् साफल्यमनुभवामः।

तदत्र विवेचयिष्यते—यदुत शिक्षणीयेष्वायुर्वेदशल्यतन्त्रादिविषयेषु मुख्यत्वेनैव कतिपया एव विषया वक्ष्यमाणाः प्रथमतः साग्रहं संग्रहीतुं युज्यन्ते—विषयाश्च ते शल्यतन्त्रे शस्त्रक्षाराग्निकर्माणि, कायचिकित्सातन्त्रे च वमन-वस्त्युत्तरवस्तयः। एतेषु च वस्त्युत्तरवस्ति-शस्त्रकर्माणि पाश्चात्योपदिष्टक्रमेणैवानायासलभ्यानि भविष्यन्तीति कृत्वा तत्र नस्माभिः किमपि वक्तव्यमस्ति। दीर्घकालं सोदाहरणालोचनाद्यभावेन सूत्रकारनिविडवाक्यानामतिदुरधिगमतया क्षाराग्निकर्मादयस्तु सर्वथेदानीमभिनवत्वेनेव प्रतिभान्ति। इत एव सर्वान्तःकरणेन बह्वायासस्वीकारेणापि सावहितैः सोदाहरण-तत्तत्कर्मयोग्याकरणाय च निपुणतरं यतितव्यम्।

भो भो विरलतरप्रचरायुर्वेदोन्नतिकामाः समवेताः सुधियः! दीर्घकालं शास्त्रदृष्ट्या स्वमनीषया च गभीरगवेषणया आचरणप्रत्यक्षीकृतफलदृष्ट्या च यदुपलब्धं क्षारकर्मविषयकं तदेव समासेन किञ्चिन्निवेदयामः। आशास्महे मदीयमेतत् क्षुद्रप्रबन्धपर्यालोचनेन केचन चेच्छिक्षार्थिनः कर्मजीवनेष्वग्रेसरतामभिलपन्तस्तत्त्वबुभुत्सवोऽस्मत्सकाशात् किञ्चिदवगन्तुं समुत्सुका भवेयुस्तर्हिसानन्दमेव सोपक्रमोपसंहारं नितरामकपटं तदुपदेष्टुं प्रभवामः।

यत् प्राप्तं तदेतत्—यदाह सुश्रुतः......"तत्र प्रतिसारणीयः कुष्ठकिटिमदद्रु-किलास-मण्डल-भगन्दरार्बुददुष्टव्रण-नाडी-चर्मकील-तिलकालकन्यच्छव्यङ्ग-मशक-बाह्यविद्रधि-कृमि विषादिषु उपदिश्यते। सप्तसु च मुखरोगेषु उपजिह्वाधिजिह्वोपकुश-दन्तवैदर्भेषु तिसृषु च रोहिणीषु। एतेषु चैवानुशस्त्रप्रणिधानमुक्तम्।"

अत्र चैतेषु सर्वेषु कुष्ठेषु, अर्बुदे दुष्टव्रणे सर्वेषु च मुखरोगेषु नाड़ीभगन्दरादिषु च शास्त्रोक्तविधिना क्षारप्रयोगेणैवाशातिरिक्तं सुफलं प्राप्तम्, अतिदुःसाध्या जालिनीनाम्नी प्रमेहपिड़का, यस्याश्च 'कार्वङ्कल' इति नाम्ना पाश्चात्यानां प्रसिद्धिस्तत्रापि अनुशस्त्रं क्षारप्रयोगेणैव सुखमातुरमुत्थापयामः। किं बहुना पाश्चात्यतन्त्रप्रसिद्ध 'केन्सरा'भिधे-

येष्वसाध्येष्वपि दुष्टव्रणेषु क्षारपातनमेवातितरां युक्तं भेषजमिति बहुशः परिलक्ष्यते। अपि चास्मदनुमतशस्त्रप्रयोगसुखसाध्येषु नाडीव्रण-भगन्दरेषु शस्त्रपातभीतानामबलाजनादीनां शस्त्रपातायोग्यानाञ्च क्षीणदुर्बलानां क्षारसूत्रप्रयोग एव वरम्। एवञ्च क्षीणमूलार्बुदस्य, शस्त्रपातसुखसाध्यत्वेऽपि स्थूलमूले च तस्मिन् शस्त्रपातापेक्षया क्षारप्रयोग एव सुकरत्वेन समीचीनतया प्रतिभाति। स्रवत्प्रभूतशोणितेषु सद्योव्रणादिषु रक्तरोधकत्वेन क्षाराग्निप्रयोग एवान्तिमः पन्थेति मन्यामहे बहुशोऽभिसमीक्ष्य।

कण्ठरवेण शल्यतन्त्रेष्वनुक्तेष्वपि कतिचिद् रोगनिचयेषु दृष्टान्तेनानेन क्षारप्रयोगस्य यदननुभूतपूर्वां सिद्धिमुपलभामहे तत्प्रकाशप्रलोभनमिदानीमतिवर्तितुं न शक्नुमः। यद्येतदपि विदितमस्ति यदस्माभिरुद्भावितेयमभिनवप्रणाली न कथमपीदानीं प्रोत्साहयति भिषजः सर्वानेवानायासेन तथाप्यनुमन्यामहे केऽप्युत्पत्स्यन्ते वर्त्तन्ते वा तादृशो भिषजो विपुलेऽस्मिन् भूमिवलये येषामनुशीलनपरम्परयाऽस्माभिः सूत्रितेयं शैली कालेन जगतामुपकाराय प्रभविष्यति।

तत्र गण्डेषु महर्षिभिः सुव्यक्तमनुक्तस्यापि क्षारप्रयोगस्य सुफलतायाः दृष्टचरता नियोजयति मां परिषदः सकाशे व्याहर्तुम्।

विशेषतस्तु कफजादिवृद्धावपि बुद्ध्यावेक्ष्यावेक्ष्य अस्मत्प्रयुक्तः क्षारः शस्त्रपातशङ्काऽनाकुलिततया निरवशेषमातुरमारोग्येणोपयोजयतीति पश्यामः। निवेदितमेतत् सविस्तरमस्मत्प्रणीते सुश्रुतार्थसन्दीपनाख्ये सुश्रुतसंहिताभाष्ये तद्यथाः..........

"तत्र क्षारपाचनक्रमस्त्वसुकरः सुचिरं गुह्यप्रविष्टश्चेति विशदं निवेदयिष्यामः। तद्यथा प्रथमन्तावदेकतो वृद्धावेकस्मिन् पार्श्वे उभयतश्चोभयोः पार्श्वयोः कनिष्ठाग्रमितं मुष्कप्रदेशं काकोडुम्बरादिजैः कर्कशैः पत्रैर्विघृष्य शस्त्रेण वा विलिख्य द्वित्राणि दिनानि क्षारं पातयेत्। ततः क्षारभक्षितत्वेन प्रसुप्तेऽस्मिन् देशे हंसपक्षनाडी-परिणाहां पृथुमुखीं लौहशलाकां शनैः शनैर्भ्रामयन् प्रवेशयेद्यावन्नातुरो वेदनामनुभवेत् शोणितं वा नागच्छेद्। अनुभूतायां वेदनायां शोणिते वागते पुनः क्षारं निपात्य यथावसरं कच्चीनालं प्रवेश्य कच्चीपत्रेणैवाच्छाद्य वस्त्रपट्टेनावेष्ट्य बध्नीयात्। सर्वमेवं दैनन्दिनं कुर्यात् यावद् भिन्नान्तरावरणत्वेन अन्तरुदकं सवेगं नागच्छेदागते चोदके प्राग्वत् कच्चीनालं प्रवेश्य जयन्तीपत्राणि अग्निसन्तप्ते पिठरे सममङ्गुलोत्सेधं विन्यस्य वस्त्रावच्छन्नेन पाणिना प्रपीड्य 'रोटी' इति प्रसिद्धं पिष्टकमिव कृत्वा कदलीपत्रोपरिविन्यस्तेन सर्वतः वृषणमावेष्ट्य वस्त्रपट्टेन बध्नीयात्। मुञ्चेच्च द्व्यहात् त्र्यहाद्वा यावदारोग्यदर्शनात्। उपद्रवञ्च यथास्वं प्रतिकुर्वीत।" इति।

समादिष्टमपि शास्त्रकृद्भिः परमर्षिभिः गुल्मरोगेषु पानीयक्षारप्रयोगमुपेक्ष्य प्रतिसारणीयक्षारप्रयोगेण कतिचिदातुरानुत्थापयितुमशक्नुमः। कोष्ठग-व्याधिषु प्रतिसारणीयक्षार-प्रयोग-व्यवस्थायाः सविशदमनुक्ताया अपि साफल्यमनुभूय "एवमन्यान्यपि बुद्ध्यावेक्ष्यावेक्ष्य यत् साधु मन्येत तदपि कुर्वीत" इति स्मरणं प्रेरयत्यस्मान् तामेवा-

श्रयितुम्। सर्वेष्वपि गुल्मेषु न तावदेषा कार्यकारिणी भवितुमर्हति। यत्रैव उदराच्छादककलामात्र-निम्नवर्त्ती भवेत्तत्रैवैषा समाश्रयणीया। तत्र च प्रयोक्तव्ये क्षारे गुल्मस्यावस्थानस्थानं सम्यङ् निर्णीय तत्केन्द्रीभूतस्थानमासाद्य व्रीहिमुखेन शस्त्रेण तथा व्यधनं कर्त्तव्यं यथा गुल्मस्यापि चतुर्भागैकभागोऽपि विद्धो भवेत्। ततः शस्त्रमुद्धृत्य तेनैव छिद्रपथेन शलाकया प्रतिसारणीयक्षारं गुल्माभ्यन्तरं प्रवेशयेत्, ततः व्रणमुखं मध्वाज्येनाभ्यज्य यथोक्तं बन्धमाचरेत् व्रणितोपासनीयञ्चावेक्षेत। एवं कृते प्रदाहानन्तरं गुल्मः सम्यगेव प्रचलीयेत। प्रचुरतरमांसशोणितसम्भृते दीर्घकालोच्छ्रिते गुल्मे च तादृशः प्रयोगश्चेत् तद्गतमांसशोणितकोथमापाद्य गुल्मं तमात्मशक्त्या विपाचयेत्तर्हि अन्तर्विद्रधिवदुदराच्छादिकां कलां विपाट्य व्रणं संशोध्य व्रणबन्धं बध्नीयात् व्रणितोपासनीयञ्चावेक्षेत। इत्येवं परैरपरिशीलितः पन्थाऽस्माभिरुद्भावितः।

कायचिकित्सायाञ्च असाध्यत्वेनाभिहितेषु श्वित्रार्शःसु सयुक्तिकं क्षारप्रयोगेणैव शश्वदेवासंशयमातुरमारोग्येणोपयोजयामः।

सत्स्वपि बहुषु वक्तव्येषु समयाभावेन अप्रस्तुततया एतावन्मात्रमुक्त्वैव विरमामः यत्—ये तावत् पाश्चात्यभाव-भाषानुप्राणिताः तद्विद्यसम्प्रदाया ईदृग्ज्ञानगम्भीर्यादिगुणयुक्ततया सर्वाङ्गसम्पूर्णमप्यायुर्वेदशास्त्रम् अवैज्ञानिकत्वेन अव्यवहार्यतामारोपयन्त उपहसन्त इव उपेक्षन्ते तान् प्रति न किमपि वक्तव्यमस्ति। ते यद्यपि सम्यगालोच्य आयुर्वेदशास्त्रं, तत्र अवैज्ञानिकत्वादिदोषानानुभूय तथा प्रतिपद्येरन् तर्हि न भविष्यत्यस्माकं किमपि दुःखकारणम्, प्रत्युत आस्तां तावत्तेषामायुर्वेदज्ञानं, नास्ति तेषां तद्भाषापरिचयोऽपि। न पुष्णन्त्येवमभिमतं सर्वतत्त्वार्थविदः। आशंसामहे नाम्ना समक्षकारितया च सभ्यानां के नाम न विदाङ्कुर्वन्ति कलिकातामहानगरीवास्तव्यम् इदानीं स्वर्गतं तत्र भवन्तं शल्यहर्त्तारं सुरेशप्रसाद-सर्वाधिकारिणम्। एकदा सुश्रुतार्थसन्दीपनभाष्यं समालोचनतया ते न कथाप्रसङ्गतो निम्नोद्धृतमभिसमीक्ष्य अभिहितन्तावद्—एतादृक् चिकित्सानैपुण्यम् अत्युन्नतपाश्चात्य-शल्यतन्त्रेषु नातितरां वर्तत इति। पाश्चात्यतन्त्रेष्वनभिज्ञा वयं न जानीमहे किमेतत् तथ्यमतथ्यं वेति, सुधियः समवेता भवन्त एव तत्र प्रमाणम्। किन्नाम तद्वचनं यत्तादृशमपि शल्यहर्तारं विस्मापयत्यञ्जसा—उच्यते—

"अभिन्नमन्त्रं निष्क्रान्तं प्रवेश्यं नान्यथा भवेत्, पिपीलिका-शिरोग्रस्तं तदप्येके वदन्ति तु ॥
प्रक्षाल्य पयसा दिग्धं तृणशोणितपांशुभिः, प्रवेशयेत् कृत्तनखो घृतेनाक्तं शनैः शनैः ॥
प्रवेशयेत् क्षीरसिक्तं शुष्कमन्त्रं घृताप्लुतम्, अङ्गुल्याभिमृषेत् कण्ठं जलेनोद्वेजयेदपि ॥
हस्तपादेषु संगृह्य समुत्थाप्य महाबलः, भवत्यन्तःप्रवेशस्तु यथा निर्धुनुयुस्तथा ॥
तथान्त्राणि विशन्त्यन्तः स्वां कलां पीडयन्ति च, व्रणाल्पत्वाद् बहुत्वाद्वा दुष्प्रवेशं भवेत्तु यत् ॥
तदापाट्य प्रमाणेन भिषगन्त्रं प्रवेशयेत्, यदास्थानं निविष्टे च व्रणं सव्यीदेतन्द्रितः ॥
स्थानादपेतमादद्ये प्राणान् गुम्फितमेव वा, वेष्टयित्वा तु पट्टेन घृतमेकं प्रदापयेत् ॥
घृतं पिबेत्सुखोष्णञ्च चित्रातैलसमन्वितम्, मृदुक्रियार्थं शकृतो वायोश्चाधः प्रवृत्तये ॥"

इति सुश्रुत चिकित्सा, २ अध्या०।

अत्रैतावदेव वक्तव्यमस्ति यद् ज्ञानविज्ञानप्रभवस्यापि भगवत ईदृग्ज्ञानकार्पण्यं के नाम कृतबुद्धयो विश्वसन्ति यद् भारतेऽस्मिन् वर्षे मानवानुत्पाद्य तेषां रुक्प्रतीकारोपकरणं पारावारापरपारेषु स्थापयाम्बभूव ।

मन्यामहे—येनैव दुर्दैववशेन सुसभ्या अपि वराका वयं देशान्तरजातेन वस्त्रादिना निवारयाम आत्मनोलज्जाम्, यथैव दुर्भाग्यतया आहारेषु प्रधानसाधनं लवणमपि परमुखापेक्षितयैव संगृह्णीमः, यथैव निर्बुद्धितया अस्मद्देशीयानां देशकालाऽसात्म्यम् आहारविहारादिकं विहाय अस्मत्प्रतिकूलेषु आहाराचारादिषु यतमाना ध्वंसोन्मुखा अपि न प्रतीमः—तदेव दुर्दैवं सैव दुर्भाग्यता सैव च निर्बुद्धिता चिकित्सायामपि परमुखानि अपेक्षयितुमस्मान् प्रेरयति । अहो विन्दमानां सुखविरेचनीं निरत्ययां हरीतकीमपहाय विदेशजातमशोधितपारदविकृतिं 'क्यालोमेल' इति पाश्चात्यैराख्यातं समुपसेवमानास्तज्जैरुपद्रवैः सर्वथा परिपीडिता अपि न कुण्ठिता भवामः ।

अत एव ब्रूमो वयम्—अयि सकलगुणगणपारावारापरपारीणाः समवेता भिषजः! नानाविद्यासु वैशारद्यं लभमाना अपि भवन्तः साष्टाङ्गायुर्वेदतन्त्रस्य सुविशदं समनुशीलनेन पुनरुज्जीवयितुमर्हन्ति चेदेतच्छास्त्रं, तदैव भवतां शास्त्रसेवा सार्थिका भविष्यतीति मन्यामहे । नो चेद् भवद्भ्यो भीतभीता इव विद्यैषा देशादस्माद् अचिरादेव तिरोहिता भविष्यति । उक्तञ्च कविना—

"बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति"

इति शम् ।





श्रीमान् वैद्य पंचानन पं. कृष्णशास्त्री कवडे बी. ए. पूना।
अध्यक्ष, नि भा. व. १३ वैद्यसंमेलन राजमहेन्द्री (सन १९२२)।
प्रधान मंत्री, आयुर्वेद महामण्डल।

॥ श्रीः ॥

वैद्यपंचाननानां निखिलभारतीयत्रयोदशवैद्यसंमेलनाधिवेशनाध्यक्षाणां

पण्डित कृष्णशास्त्रि कवडे बी० ए० महोदयानां

जीवन चरित्रम् ।



श्रीमतां कवडे इत्युपाह्वानां कृष्णशास्त्रिणां महाराष्ट्रीयपुण्यपत्तननगरमलंकुर्वणानां सुप्रथितयशोमहिम्नां विदुषां परिचयकरणं पुनरुक्तप्रायमेव । तथापि कीर्तिमत्पुरुषयशोवर्णनं उत्तुंगयशोगिरिशिखरमारुरुक्षुणां आरोहणक्षमां क्षुण्णसरणिं दिशन् महदुपकारकं भवतीति मनस्याधाय किंचित्प्रयत्यते—

महाराष्ट्रदेशे ये केचन चिरलायुर्वेदपारावारीणस्तदुन्नत्ये सततंबद्धपरिकराः कृतानेकपरिश्रमाः शुभनामधेयाः सांप्रतं विलसंति तेषु पंडितप्रवराः कृष्णशास्त्रिणो मूर्धन्या एव । एभिर्विद्वद्वरैः शाके १८०५ तमेवर्षे भाद्रे मास्यसिते पक्षे द्वितीयायां तिथौ स्वजन्मना स्वजनकजननीसंतोषमुदपादि । अष्टवर्षात्मकः श्रीमतां जीवनक्रमो जन्मग्रामे 'पिंपरीपेंढार' इत्याख्ये गतः । नवमे हायने बुद्धिकौशाग्र्यं संपादयितुं भगवत्याः सरस्वत्याः प्रसादमभिकांक्षन्तो पुण्यपत्तनमागमन् । खैस्तीये १९०५ शकाब्दे पुण्यपत्तन एव राष्ट्रीयसभायां स्वकीयैस्तरुणसतीर्थ्यैं सह स्वदेशव्रतं निश्चयेन साकं शपथीकृतम् । तदुध्याचर्यमाणं तद्व्रतं सर्वेषां विदितप्रायमेव । पंडितप्रवराणामांग्लशिक्षणं पुण्यपत्तनस्थायां 'न्यू प्रेपरेटरी क्लासेस्' इत्याख्यायां शिक्षणसंस्थायां जातं, तस्मिन्नेव काले श्रीमद्भिः, कै० प्रो० जिनसीवाले, लोकमान्य तिलक, अप्पासाहेब परांजपे, इत्येतेषां महाशयानां व्याख्यानश्रवणेन आंग्लशिक्षणानंतरं कस्यामपि परकीयसंस्थायां दास्यत्वं न स्वीकर्तव्यमिति महान् निश्चयोऽङ्गीकृतः । यदा तु भुवः स्वदेशविषयको महानुद्योगः प्रादुर्भूतस्तदा एभिर्महाभागै स्वकीयं तीक्ष्णतरं स्वदेशव्रतमंगीकृत्य शिक्षणसंस्थायामपि स्वदेशविषयकमतीव संचलनं दत्तम् । महाभागैः खैस्तीये १९०६ शकाब्दे स्वबुद्धि कौशलेन 'बी० ए०' इत्यांऽग्लशिक्षणोपाधिर्लब्धा । पदवीप्रापणानंतरं पुण्यपत्तनस्थायां 'भावेस्कूल' इत्याख्यायां संस्थायां शिक्षकत्वेन वर्षद्वयपर्यंतं सानंदं सोल्लासं च कार्यं कृतम् । किन्तु खैस्तीये १९०८ शकाब्दे लोकमान्य तिलक, दे० भ० शिवराम महादेव परांजपे, इत्येतयोर्राष्ट्रकार्यकारिणोः स्वदेशशकटधुरंधरयो रुपरि यद्राजद्रोहात्मकत्वेन नियंत्रणं जातं तत्संबधिनं पुस्तकमेषां परमपूज्यैः भ्रातृभिः प्रसिद्धीकृतं, तस्य च रूपांतरकरणे एषां महाभागानां नामाऽग्रेसरत्वेनभावेस्कूलाधिपैः श्रीमद्भिः 'किंकेड' इत्युपाह्वैर्दृष्टम् । तेन च कृष्णशास्त्रिणां तच्छिक्षणसंस्थायाः पूर्वसंबंधः लुप्तः ।

अनन्तरं व्यवहारन्यायशास्त्रस्याध्ययनं कर्तव्यमिति मनसि निश्चित्य कृष्णशास्त्रिभिस्तस्याध्ययनमारेभे । किंतु श्रीमतां 'भाऊसाहेब लवाटे' इत्युपाह्वानामिदं न्यायविदः कर्म युष्मभ्यः अनुचितमित्येवंरूपेण संवादेन तदध्ययनं तथैव समुच्छिष्टम् । ततः देशभक्तिपरायणैः बाबासाहेब परांजपे इत्युपाह्वैर्महाभागैस्त्वयायुर्वेदीयमध्ययनं कर्तव्यमित्यतीव प्रेम्णा सूचितम् । तच्छिरसा प्रमाणीकृत्य वै० शा० सं० वैद्यरत्न गणेशशास्त्री जोशी, वै० शा० सं० सदाशिव वासुदेव भावे,

इत्युपाह्वयोर्विद्वद्वरेण्ययोः साकं चरकसंहिताऽध्ययनं प्रारब्धम्। अनया पद्धत्या संपूर्णायुर्वेदीय-शिक्षणं वैद्यवरेभ्यः भावेशास्त्रिभ्यः सकाशात्संपादितम्। तदेव प्राणाचार्य-बालशास्त्री लागवणकर, वै० शा० सं० अप्पासाहेब पटवर्धन इत्येताभ्यामन्यैश्च बहुभिरायुर्वेदपारावारीणैः सहाऽऽयुर्वेदीया सुसम्भाषा कृता। एतेहि मथुरानगर्यां पञ्चमायुर्वेदीय वैद्यसम्मेलनावसरे 'वैद्यपञ्चाननेति' पदवीमलंकुर्वन्ति स्म।

तस्मादद्यावधि प्रतिवर्षं सम्मेलनाय गत्वाऽऽयुर्वेदशास्त्रसेवां कुर्वन्ति। तथा चाऽऽयुर्वेदशास्त्र प्रेम्णा प्रान्तीयराजकीयसभातस्तथा वरिष्ठराजमण्डलसभातः आयुर्वेदशास्त्रपुनरुज्जीवनार्थं अतीवप्रयतन्ते। खैस्तीये १९१२ शकाब्दे यदा ऑंग्लवैद्यानां रजिस्टर इत्याख्यस्य नियंत्रणस्य प्रश्नः सर्वस्मिन् देशभागे प्रचलितस्तदा पुण्यपत्तनस्थायुर्वेदीयौपधालयस्य नामशेषकरणसमये 'लोकमान्य तिलक' दे-भ हरीनारायण आपटे, इत्येतयोर्महानुभावयोः स्वदेशसेवाकार्यधुरीणयोः साकं प्रयत्नं कृत्वा (ना० ना० सि० कामत इति) महाभागतः 'मुम्बई कायदे कौंसिल इत्याख्यया राजशासनसंस्थया' औपधालयः सुरक्षितः। तद्वदेव प्रतिवर्षं आयुर्वेदीयवैद्यसम्मेलनावसरेऽपि प्रश्नं समुत्थाप्य सर्वस्मिन् देशभागे म्यु० पा०, लो० बोर्ड इत्याख्याभिसंस्थाभिः प्रस्तावरूपेण विना मूल्यं औपधालयस्थापनरूपकार्यकरणे प्रयत्नः कृतः। तस्यैवाद्य भारतवर्षे 'म्युनिसिपालिटी' डि० लो० बोर्ड, इत्येतासां संस्थानां धर्मार्थायुर्वेदीयौपधालयोद्घाटनरूपं प्रत्यक्षदृष्टफलं वर्तत एव। तथैव श्रीमद्भिः पुण्यपत्तन एव महाराष्ट्रीयायुर्वेदविद्यालयः स्थापितश्च तत्रैवाध्यापनकार्यं कृतम्। कलकत्ता नगरे च मद्रास नगरे यथाक्रमं षष्टं सप्तमं वैद्यसम्मेलनं गत्वा अष्टमायुर्वेदीयवैद्य संमेलनं पुण्यपत्तने निमन्त्रितम्। तस्य च संमेलनस्य मन्त्रिपदं स्वयमेव स्वीकृत्य संमेलनागतसङ्कट-समूहान् दूरतः निःसार्य संमेलनकार्यधूः सुव्यवस्थिततया—ऊढा। अष्टमायुर्वेदीयसंमेलनं कीदृक् जातं एतत्तु सर्वेषां विदित प्रायमेव।

ततः राजमहेंद्रीनगरसंजाते त्रयोदश वैद्यसम्मेलने पंडितप्रवराः कृष्णशास्त्रिणः अध्यक्षपद-मारूढाः। तदाहि पूर्वक्रमेणैवायुर्वेदोद्धरणकार्यमतीवसुमनोहरं कृतम्। अद्यापि राजसभायां वा यत्र कुत्रापि आयुर्वेदोद्धारार्थमुचितः समयः प्राप्तश्चेत् तत्र यत्रायुर्वेदं पुरस्कृत्य प्रयत्नो विधीयत एव महाभागैः। तथा च निखिलभारतीयायुर्वेद विद्यापीठशिक्षणक्रमनिश्चयकरणसमितेः सभासद आसन्। तथा च जनस्थाने एकोनविंशतितमं वैद्यसम्मेलनमागत्य पाश्चात्य-पौर्वात्यपद्धत्यनुरोधेन स्वलिखितं निःसंदिग्धं, शास्त्रीयविवेचनपरिप्लुतं, पंडितप्रवरसंमान्यं, क्षोमनिर्णयात्मकं प्रबंधं निर्माय संपाद्य स्वयं मुद्राप्य च तस्य प्रसिद्धीकरणं कृतम्। इत्येवंरूपमायुर्वेदोद्धारार्थं कृतप्रयत्नानां पंडितवरेण्यानां कृष्णशास्त्रिमहाभागानां संक्षेपतः चरित्रं वर्तते। अस्तु, एते हि महाभागाः दीर्घायुषः भवन्त्विति श्रीशचरणकमले प्रार्थनां कृत्वा विरमामः। *

---

* मई सन् १९३० वर्षीय वै० स० पत्रिकातः समुद्धृतम्।

निखिल भारतीय त्रयोदश वैद्यसम्मेलनस्य सभापते-

वैद्यपञ्चानन पण्डित कृष्णशास्त्रिकवडे बी० ए० महाशयस्य

अभिभाषणम् ।

गुणत्रयविभेदेन मूर्तित्रयमुपेयुषे । त्रयीभुवे त्रिनेत्राय त्रिलोकीपतये नमः ॥१॥

ब्रह्मदक्षाश्विदेवेशभरद्वाजपुनर्वसु—सुताग्निवेशचरकप्रभृतिभ्यो नमो नमः ॥२॥

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन

योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां, पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥३॥

नमामि धन्वन्तरिमादिदेवं, सुरासुरैर्वन्दितपादपद्मम् ॥४॥

लोके जरारुग्भयमृत्युनाशं, दातारमीशं विविधौषधीनाम् ॥५॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥६॥

१. अयि विद्वद्वरेण्याः, आयुर्वेदाभिवृद्धिमभिकांक्षमाणा गोदावरीपुण्यतटनिवासिनः, आयुर्वेदपारावारपारीणा भिषग्वर्याः, सभ्याः सभास्ताराश्च, विदितचरमेवैतच्छ्रीमतां यदस्य त्रयोदशवैद्यसंमेलनस्य सभापतिस्थाने मोहमयीस्थानां आयुर्वेदमार्तण्ड यादवजी त्रिकमजी आचार्यशर्मणां योजना स्वागतसमित्या पूर्वं कृताऽऽसीदिति । मम परमसुहृद्भिर्यादवजीशर्मभिः संशोधितं माधवनिदानं केन न पठितम् ? चरकसंहिता केन नावलोकिता ? वर्षद्वयात्प्रागेव प्रकाशिता श्रीडल्हणटीकासमन्विता सुश्रुतसंहिता कस्य दृष्टिपथं नागता ? अपरं चायुर्वेदीयग्रन्थमालायां श्रीमच्छङ्कराचार्यगुरुश्रीमद्गोविन्दभगवत्पादाचार्यविरचितस्य रसहृदयतन्त्रस्य, यशोधरविरचितस्य रसप्रकाशसुधाकरस्य, शोढलवैद्यविरचितस्य गदनिग्रहस्य, श्रीमदुपाध्यायविरचितस्य आयुर्वेदप्रकाशस्य,-रससाररसायनखण्ड-राजमार्तण्ड-रससंकेतकलिका-वैद्यमनोरमा-धाराकल्प-नाडीपरीक्षा-द्यनेकायुर्वेदीयाप्रसिद्धग्रन्थानां संशोधनं प्रकाशनं च कृत्वा यादवजीशर्मभिः आयुर्वेदस्य या महती सेवा कृता, आयुर्वेदीयसंमेलनस्य आयुर्वेदविद्यापीठस्य च यन्महत्कार्यं संसाधितं तदनुसृत्य तेषां योजना सभापतिस्थाने एतत्पूर्वमेव भवितुमुचिताऽऽसीत् । संवत्सरेऽस्मिंश्च मम परमसुहृद्वर्याः यादवजीशर्माणः संमेलनस्याध्यक्षपदमलङ्करिष्यन्तीति श्रुत्वा चाहं परं संतुष्टोऽभवम् । आसीच्च मे मनसि महती आशा यदस्मिन्संमेलने आयुर्वेदोद्धारार्थं मनोवाक्कायकर्मभिर्यतमानानां भिषक्श्रेष्ठानां साररूपममृतोपममुपदेशं शृणुयाम इति । परं मासद्वयात्पूर्वं यादवजीशर्मभिः स्वागतसमित्यै पत्रं प्रेषयित्वा 'अध्यक्षपदं स्वीकर्तुमसमर्थोऽस्मीति' निवेदितम् । अनन्तरं

स्वागतसमित्या चैकमत्येन धुर्यपदं मयि समारोपितम्। मम सुहृच्छ्रेष्टैः ए० लक्ष्मीपतिभिश्च तन्त्रीद्वारेण 'कृपया अध्यक्षपदं स्वीक्रियतामिति' सनिर्बन्धं प्रार्थना कृता। वरतरमभविष्यद्यदि मत्तोऽप्यर्हतरः कश्चिद्वयोवृद्धो ज्ञानवृद्धो भिषक्श्रेष्टोऽध्यक्षपदे वृतोऽभविष्यत्। मत्तोऽप्यर्हतरेषु विद्यमानेषु भिषग्वरेष्वस्यां संसदि ममैव योजनां सभापतिस्थाने कृत्वा महान्मे गौरवः श्रीमद्भिः कृतः। अनुल्लंघनीया हि आयुर्वेदोद्धारार्थं सर्वथा बद्धपरिकराणां तत्र बहुशः कृतोद्यमानां श्रीमतामाज्ञा। नायं मम सम्मानः। अपि तु वयोवृद्धानां ज्ञानवृद्धानां गुरुकल्पानां महाराष्ट्रीयभिषगग्रेसराणामेवायं सम्मान इति विचिन्त्य प्रणतिशतपुरस्सरं साभिनन्दं साभारं चैतत्स्थानं स्वीकरोमि। कार्यभारनिर्वाहे च यद्यपि मम शक्तिरतीव परिमिता तथापि सर्वात्मना समुद्यमं कर्तुं कृतनिश्चयस्य मे महदनुग्रहात्तत्रभवतां भवतां साहाय्येन च सर्वं कार्यं निरंतरायं भवेदिति दृढं विश्वसिमि। अयि श्रेष्ठाः! अनाघ्रातसाहित्यशास्त्रगन्धस्य मे भाषणं विद्वत्तोपाय न भवेदिति दृढं प्रत्येमि। तथापि केवलं स्वाभिप्रायो गीर्वाणवाण्या प्रकटीकरोमीति धियैव सुधियो भाषणमिदं शृणुयुरिति प्रार्थये।

२. अयि भिषक्श्रेष्टाः, विदितचरमेव सर्वेषामत्र समागतानां यद्दिवंगतानां शंकर दाजीशास्त्री पदे महाभागानां प्रयत्नैर्निखिलभारतवर्षीयवैद्यसंमेलनस्य प्रथमाधिवेशनं श्रीगोदावर्याः प्रभवस्थानादनतिदूरे नासिकक्षेत्रे गोदावरीतटे षडधिके ऊनविंशतितमे ऐशवीये संजातम्। ततश्च पनवेल, प्रयाग, कानपुर, मथुरा, कलिकाता, मद्रास, पुण्यपत्तन, लाहोर, देहली, इंदोर, मुंबई, एवं भारतवर्षे नगरान्नगरं गत्वा गोदावर्याः प्रवाहमिव प्रतिवर्षं अधिकाधिकं लोकसंमतं भूत्वा पुनरपि गोदावरीमुखादनतिदूरे स्थितं राजमहेन्द्रीनगरं संप्राप्तम्। श्रीगोदावरीमाहात्म्ये 'आदावन्ते च दुर्लभा' इति गोदावर्या महात्म्यं वर्णितम्। परंतु संमेलननिमित्तेनात्रागतानां सर्वेषामस्माकं सा सुलभा संजातेत्यहो भाग्यम्। सप्तर्षिनामभिः प्रसिद्धैः सप्तभिर्मुखैः श्रीगोदावरी इतोऽनतिदूरे समुद्रं प्रविशति। निखिलभारतवर्षीयवैद्यसंमेलनमपि एवमेव दिने दिनेऽधिकाधिकं लोकादरास्पदं लोकप्रियं च भूत्वा भारतजनतामहोदधौ प्रांतीयसंमेलनरूपैरनेकमुखैरनिरुद्धसंचारं करिष्यति। इतः परं चायुर्वेदस्याभ्युदयेन लोकानां स्वास्थ्यरक्षणं प्राणरक्षणं चेतोऽप्यधिकतरं भविष्यतीति शुभचिन्हानि स्पष्टतरं दृश्यन्ते। आंध्रदेशस्तावत्प्रथममेव गोदावर्याः पुण्यप्रवाहेण पावनः संजातः। परमपरमप्येकं कारणं विद्यते येन श्रीमतां देशः पावनतमः संवृत्तः। यतोऽद्वैतमतप्रतिष्ठापकाः श्रीमच्छङ्कराचार्याः, विशिष्टाद्वैतमतप्रतिपादकाः श्रीरामानुजाचार्याः, द्वैतमतप्रवर्तकाः श्रीमध्वाचार्याः, शुद्धाद्वैतमतोपदेष्टारः श्रीवल्लभाचार्याः, किमु विशेषतया वक्तव्यम्, अद्यावधि सुप्रथिताः सर्वेऽप्याचार्याः आत्मजन्मभिरांध्रदेशमेव कृतार्थमकुर्वन्, इत्याचार्यप्रसविष्णुरयं देश इति नाविदितं श्रीमताम्। वेदविद्याया वैदिककर्मणां च प्रायः सर्वत्र लोपो विद्यते। अत्रः पुनः सर्वं यथापूर्वं दरीदृश्यते। मोगलनृपाणां काले उत्तरभारते महाराष्ट्रेषु च ये विघ्नोपनिपाता

अपतंस्ते श्रीमतां भाग्येनांध्रदेशेऽननुभूताः। यावनधर्मग्रंथे कुराने यद्यन्नास्ति तत्सर्वं मिथ्याऽस्ति। जगति च यद्यत्सत्यं तदवश्यमेव कुराने विद्यते। अतो यवनधर्मग्रन्थ-कुरानव्यतिरिक्तं यस्यां कस्यामपि भाषायां यद्यल्लिखितं तत्सर्वं सर्वात्मना नाशनीयमिति सिद्धान्तमुररीकृत्य अवरंगजेबनृपः प्रतिदिनं यावच्छक्यं संस्कृतग्रन्थेन्धनप्रज्वलिताग्नि-प्रतप्तेन जलेन स्नानं संसाधयन्नासीदिति एल्फिन्स्टनसंपादिते इतिहासे सुप्रथितमेव। एतादृशानां नृपतीनां राज्यं श्रीमतां भाग्येन आंध्रदेशे नासीत्। तेन च भारतवर्षस्या-परस्मिन्भागे ग्रन्थसंपन्नाममात्रा स्थिताऽपि श्रीमतां देशे आयुर्वेदग्रन्थसंपदद्यापि स्पृहणीयावस्थायां वर्तते। अति प्राचीने भेडकाश्यपसंहिते अद्यापि इतोऽनतिदूरे तञ्जापुरीसरस्वतीभाण्डागारे एवोपलभ्येते। संहिताद्वयमप्येतदांध्रभाषायामेव लिखित-मिति विशेषः। याश्च भेडसंहिताः सांप्रतमुपलभ्यन्ते ताः सर्वाः अस्यैव ग्रन्थस्य प्रतिकृतयः। डॉ० होर्न्लेमहोदयमतानुसारेण अस्य लेखनकालः ऐशवीयाधीधिकषोडश-शतकम्। इयं भेडसंहिता गतसंवत्सरे एव कलिकाताविश्वविद्यालयसंस्थायाः कृते आशुतोषमुकर्जीमहाभागैः संशोधनपूर्वकं मुद्रिता। क्षारपाणिसंहिता-जतूकर्णसंहिता-भारद्वाजसंहितात्रयमप्यस्मिन्नेव भूभागे समुपलभ्यते। आयुर्वेदसूत्रं, रुग्हृदयं, रुग्विलासः, रुग्हृदयसार इत्यादयः सूत्रग्रन्थाः तथा अष्टाङ्गहृदव्याख्या विज्ञानेश्वरगङ्गाधर—माधवप्रणीता हृदयप्रियासहिताः, किं च रसतन्त्रप्रबन्ध आनन्दकन्दः, बसवराजविरचितः शिवतत्त्वरत्ना-करश्चात्रैवोपलभ्यते। अतःपरं रसप्रदीपिका रससिद्धान्तानुशासनमित्यादयो रसग्रन्थाः परहितसंहितावृहद्योगतरंगिणीयोगरत्नावलीहितोपदेशभेषजसर्वस्वधन्वन्तरिविलासयोगश-तक-सन्निपातचंद्रिकाप्रभृतय अनेके संग्रहग्रन्थाः श्रीमद्देशे एव सुलभाः। देशांतरेषु विद्यमा-नेषु निघुण्टग्रन्थेषु पुष्पफलमूलत्वक्शाखारूपौषधिपथ्याङ्गवर्णनं न दृश्यते, इयं त्रुटिः श्रीमतां देशे प्रसिद्धतरेण कार्मणनिघुण्टुना निरकास्यत। यतस्तत्र ईदृशं आंध्रदेशीयवनौषधीनां वर्णनं दृश्यते। तेनेदमपि प्रतीयते यत्कार्मणनिघण्टोः प्रणेता इममेव देशं स्वजन्मना अलञ्चकारेति। तथा अन्येऽपि निघण्टवोऽत्र सन्ति। तेषु च पङ्गसवर्णनात्मको निघण्टु-र्विशेषतो दर्शनीयो भिषग्वरैः, अपरं चायुर्वेदबहुलप्रचारो ह्ययं देश इति आंध्रदेशस्य कीर्तिः श्रूयते। चरकसुश्रुतवाग्भटाद्युक्तेभ्यः प्रयोगेभ्यः रसतन्त्रोक्तानां प्रयोगाणामुपयोग आंध्रेष्वधिकतर उपलभ्यते। अत्र सर्पविषस्योपयोगो विशेषतः क्रियते लङ्घनचिकित्सा च बहुशो विधीयते। किंचायुर्वेदीयातुरालयपरिपालनार्थं आयुर्वेदाभिवृद्धिमभिकांक्ष-माणैर्नृपश्रेष्ठैः प्रदत्तानां दानानां कानिचिच्छासनानि अस्मिन्नेव देशे समुपलब्धानि। एषां शासननामुल्लेखो मदीयपरमसुहृद्वरैः पं० डी० गोपालाचार्लुमहाभागैः पुण्यपत्तनी-याष्टमवैद्यसंमेलनसमये पठिते विद्वत्त्वपूर्णे महत्त्वपूर्णे च प्रबन्धे कृत इति प्रायः सर्वेषां चिरपरिचितान्येव तानीति मन्ये। सप्तपञ्चाशुत्तरसहस्रतमे ऐशवीये चेङ्गलपटपण्डले मधुरान्तकोपमण्डलान्तर्गते तिरुमकूडलुग्रामे श्रीवीरचोलेश्वरेण राजकेशरिवीरराजेन्द्र-देवेन श्रीवेङ्कटेश्वरमंदिरस्य गर्भगृहभित्तिस्थशिलाफलकेषु लिखितेऽस्मिन्शासने भगवतः

श्रीवेङ्कटेश्वरस्य नित्योत्सवादिकैः कैङ्कर्यैः वेदशास्त्रपाठशालया च सह विद्यार्थिजनस्यारोग्यपरिपालनार्थं उत्तममेकमातुरालयं निर्वर्तनीयमिति आशासितं दृश्यते ।

वीरचोलातुरालयशासनम् ।

अयमातुरालयः "श्रीवीरचोलेश्वरातुरालय" नाम्ना प्रसिद्धिमुपयातव्यः । अत्र पञ्चदशानामातुराणामवकाशः प्रकल्पनीयः । अस्मिंश्च एकः कायचिकित्सकः, एकः शल्यचिकित्सकः, द्वौ पुरुषपरिचारकौ, द्वे च स्त्रीपरिचारिके, अपरः सेवकपुरुषश्चैकः, द्वारपालश्चैकः, एकः रजकः, कुलालश्चैकः, एते तत्तत्कार्यकरणाय नियोज्या इति ।

कायचिकित्सकः—परम्पराधिगतस्वाम्यविशेषः आलपाकवासी सवर्णगोत्रोद्भवः 'कोदण्डरामाश्वत्थामभट्टर' नामकः अत्र कायचिकित्सकपदव्यां प्रतिष्ठितः । अस्य प्रत्यहं च कुरिणित्रयपरिमितं धान्यं काशाष्टकसंख्यातं द्रव्यं च दातव्यम् ।

शल्यचिकित्सकः—अस्य नाम अनुदाहृत्यैव "शल्यक्रियैप्पण्णुवान्" -(शल्यक्रियाकरः) इति तत्कृत्येनैव निर्दिष्टः । अस्य प्रतिदिनमेककुरिणिपरिमितं धान्यं देयमुपकल्पितम् ।

परिचारकौ—भेषजोपयोगिनीरोषधीराहर्तुं औषधपचनयोग्यानां काष्ठानामानयनाय भेषजोपकल्पनाय च द्वौ पुरुषपरिचारकौ नियमितौ । एतयोश्च प्रत्येकशः एककुरिणिपरिमितं धान्यं एककासुद्रव्यं च निर्णीतम् । अपरपरिचारकः—रुग्णानां परिचरणाय अन्यकृत्यनिर्वहणाय च कश्चिदन्यपरिचारकः नियमितः । अस्य भृतिः दिनस्यैकनाडी परिमितं धान्यम् ।

स्त्रीपरिचारिके—द्वे च स्त्रीपरिचारिके आतुराणां यथोचितं यथाकालं च भेषजपथ्यादिप्रदानाय परिचर्यायै च नियमिते । एतयोः प्रतिदिनं नाडीचतुष्टयपरिमितं धान्यं एककासुद्रव्यं च दातव्यम् ।

रजकः कुलालश्च—आतुरवस्त्रादिपरिशोधनायैको रजकः तत्रोपयोज्यानां मृण्मयपात्राणां सज्जीकरणाय एकः कुलालश्च नियोजितौ ।

द्वारपालकः—अस्मिन् आतुरालये द्वारपालोप्येको नियमितः । तस्य च प्रतिदिनं नाडीचतुष्टयपरिमितं धान्यं, एककासुद्रव्यं च देयतया निर्दिष्टम् ।

आतुराणां शयनाय आस्तरणोपयोज्याः सप्त कटाः, आतुरालये रात्रिषु दीपोपकरणाय वत्सरस्य पञ्चचत्वारिंशन्नाडीपरिमितं तैलं च निर्णीतमस्ति । आतुरालये चिकित्सायै सज्जीकर्तव्यानां ब्राह्मी-रसायन-वासाहरीतकी-गोमूत्रहरीतकी-दशमूलहरीतकी-उत्तमकर्ण्यादितैल-बलाकोरण्टकादितैल-लशुनाद्यैरण्डतैल-बिल्वादिघृत-मण्डूरवटक-द्रववर्ति-सुनेत्रावर्ति-कल्याणलवणादीनां एकविंशतिसंख्याकानां भेषजानां पट्टिका च विरचिता । तेषां भेषजानां परिमितयश्च लिखिताः । इतोऽधिकतरः शासनविस्तरभिया न क्रियते ।

गुंट्रूरुमण्डलान्तर्गतमलंकापुरग्रामे प्रसूत्यारोग्यशालाविषयकं मलेकापुरशिलाशासनं गृहत्यां शिलायां काकतीयवंशचूडामणेः, महाराजश्रीगणपतिदेवमहाराजस्य काले (ऐशवीये सार्धदशशते काले) लिखितमपरं शासनमस्ति। राजमहेन्द्रवरपरिसरवर्तिनः कोरुकोण्डपुरस्य पालकेन श्रीराजामुम्मुडिनायकमहाशयेन नवत्युत्तरे द्वादशशततमे शालिवाहनशकवर्षे लिखितमन्यच्छासनं विद्यते। एवमन्यान्यपि शासनानि सन्ति। तेषामवलोकनात्स्पष्टमवगम्यते यदस्मद्देशीया राजानः पुरातनादपि कालादारभ्य आतुरालयप्रतिष्ठापनेन प्रसूतिशाला-वैद्यशालाप्रतिष्ठापनेन विद्वद्वैद्यपरिपोषणेन वैद्यपुङ्गवेभ्यो ग्रामादिकं दत्त्वा तदुत्साहवर्धनेन, एवमादिभिश्चान्यैः कार्यैरायुर्वेदं पोषयन्त आसन् इति। अतोऽत्रागमनेन संमेलनस्य महांल्लाभो भविष्यतीति दृढं विश्वसिमि। आयुर्वेदोद्धारार्थं क्लेशानपरिगणय्यात्रागतानां भिषग्वराणां गोदास्नानपुण्येनायुर्वेदस्य गतवैभवं पुनरपि प्राप्स्यते, इत्याशासे।

३. अयि वैद्यवराः! मम प्रास्ताविकभाषणस्य पठनात्पूर्वं एकं कष्टतमं कार्यमवश्यं करणीयम्। आयुर्वेदोद्धारार्थमहर्निशं यतमानानां वैद्यरत्न पं. डी. गोपालाचार्लुमहाभागानां स्वर्गमनेन या महती हानिः संजाता सा नूनमनिर्वचनीया। आयुर्वेदाध्यापनं यथाशास्त्रं भवेदिति पं. डी. गोपालाचार्लुमहाभागैः मद्रपुरे आयुर्वेदमहाविद्यालयः संस्थापितस्तत्सिद्ध्यर्थं स्वयं प्रतिवर्षं पञ्चसहस्राधिकमुद्राव्ययं कृत्वा ते आयुर्वेदसेवामकुर्वन्। आयुर्वेदप्रचारिणीसभां स्थापयित्वा अनेकायुर्वेदीयग्रन्थांश्च प्रकाशयित्वा आयुर्वेदीयातुरालयांश्चिकित्सालयांश्च नवीनया रीत्या प्रचालयित्वा तैरायुर्वेदोऽधिकतया लोकादरपात्रं कृतः। यद्यपि चाङ्ग्लभाषायां तेऽप्रवीणा आसंस्तथापि तेषामायुर्वेदमहाविद्यालयव्यवस्था इंग्लैण्डदेशादचिरादागतेनापि तद्देशीयवैद्यवरेणानुकरणीया स्पृहणीया चासीत्।

चिकित्सितात्पुण्यतमं न किञ्चिदपि शुश्रुम, नहि जीवितदानाद्धि दानमन्यद्विशिष्यते।
नार्थार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति, वर्तते यश्चिकित्सायां स सर्वमतिवर्तते॥

इति चरकवचनमवलम्ब्य केवलपरोपकारधिया लोकानां प्राणत्राणं कृत्वा ते राज्ञस्तथैव लोकानामपि विश्वासार्हा आदरास्पदं चाभूवन्। कलिकातायां पष्ठवैद्यसंमेलने ते प्रथममेव संमेलने उपस्थिताः। संमेलनकार्यस्य महत्त्वं ज्ञात्वा च भिषजां निर्बन्धात्ते स्वयं मन्त्रिपदस्वीकारमकुर्वन्। मद्रासप्रांते संचारं कृत्वा प्रांतीयवैद्यमण्डलानि वैद्यसभाश्च स्थापयित्वा आयुर्वेदमुद्दिश्य तैः सर्वत्रान्दोलनं कृतम्। किमु वक्तव्यम्। आयुर्वेदोद्धारमुद्दिश्य ये ये प्रयत्नाः संसूचितास्तेषां सिद्धये पं० डी० गोपालाचार्लुमहाभागा वृद्धत्वेऽपि युद्धकार्यतरुणायमानभीष्म इव कार्यमकुर्वन्। एवं यावज्जीवमिह मनसा वाचा कायेन च आयुर्वेदोन्नत्यर्थं कार्यं कृत्वा अचिरादेव सिद्धिर्भवेदिति स्वर्गेऽपि तदुद्धारार्थं कार्यं कर्तुं दिवंगता इति मन्ये। अस्तु प्रभोरिच्छा सदैवानुवर्तनीया।

४. अयि विद्वच्छ्रेष्ठभिषग्वराः, निर्वृत्तचरेषु संमेलनेषु अध्यक्षपदमारूढैः संमेलन-

सभापतिभिरायुर्वेदेतिहासतत्परम्परादिविषयाणां आयुर्वेदस्याष्टाङ्गोपाङ्गानां त्रिदोषतत्त्वरसवीर्यविपाकप्रभावाद्यायुर्वेदीयसिद्धांन्तानां च सप्रपञ्चं विवेचनं कृतम् । आयुर्वेदस्य वर्तमानहीनावस्थायाश्च वर्णनं कृत्वा तन्निवृत्तयेऽभ्युपाया अपि संसूचिताः । अतो न मम बहु वक्तव्यमवशिष्यते । यत्किञ्चिद्वक्तुमिच्छामि तत्कालोचितं संक्षेपतश्च वक्ष्यामि । इदं तावत्त्रयोदशवैद्यसंमेलनम् । इतः पूर्वेषु संमेलनेष्वस्माभिः किं कृतं, किं संसाधितं, किं च करणीयमिति प्रथममेव विचारः कर्तव्यः । द्वादशसंवत्सरपर्यन्तमेकत्र संमील्यायुर्वेदहिताहितमुद्दिश्यास्माभिः संमेलनसभासु य ऊहापोहः कृतः, ये च प्रस्तावा ऐकमत्येन संमानिताः, संमेलनस्थायिसमित्या आयुर्वेदविद्यापीठेन च यत्कार्यं कृतम्, तत्सर्वं समालोच्य कियतांशेनास्माकं प्रयत्नाः सफलीभूताः ? कियदग्रे च वयमागताः, कियद्दूरं चास्माभिर्गन्तव्यं, कार्यसिध्यर्थं च के केऽपरे समुद्यमाः समाश्रयणीया इति सिंहावलोकनेन निर्णेतुमुचितोऽयं कालः संप्राप्तः । एवं विचार्यमाणे निराशाया अवसरोऽपि न विद्यते । संमेलनप्रस्तावानुसारं यद्यपि शब्दशः कार्यं न संवृत्तं तथापि यदल्पमात्रं कार्यं कृतं तदतीवोत्तेजनपरमाशाजनकञ्च । अस्मिन्काले लोकानां विचारेषु आचारेषु व्यवहारेषु च यत्स्पृहणीयं परिवर्तनं दृश्यते तन्नूनं संमेलनकार्यस्यैव फलमिति मे मतम् । द्वादशवर्षात् प्राक् लोकानां मनसि आयुर्वेदानुरागः आदरश्च आसीत् । परं सः कृतिरूपेण प्रायोऽव्यक्त आसीत् । राजाश्रयस्य वार्ताऽप्यनुच्चारणीयाऽऽसीत् । द्वादशवर्षपर्यन्तं संमेलनेन यत् तप आचरितं तस्य फलमुन्मुखमिति ज्ञात्वा को न आनन्दभाक् भवेत् । संमेलनप्रसङ्गेनायुर्वेदचिकित्सापद्धतेरुपयोगिता फलदायिता सशास्त्रता च लोकानामनुभवपथमधिकतरमागता । तत्तत्स्थानादागतानां वैद्यवराणां दर्शनेन संभाषणेन चिकित्सया च संमेलनसमये लोकानां ये लाभा अनायासेन संजातास्तेनायुर्वेदस्य महत्कार्यं संसाधितम् । आयुर्वेदविद्यालयार्थं धर्मौषधालयार्थमारोग्यशालार्थं च दानशौण्डैरुदारचरितैर्धनिभिः संस्थानिकैश्च दानं दत्त्वा आयुर्वेदोद्धारकर्मणि यथाशक्ति साहाय्यं कर्तव्यमिति प्रार्थना स्थाने स्थाने प्रति संमेलने कृता । तस्याः प्रार्थनायाश्च फलमद्य वयं पश्यामः ।

यतो वैद्यसंमेलनप्रभावाद्भारतीयनगरेष्वायुर्वेदीया धर्मौषधशाला विद्यालयाश्च स्थापिताः स्थाप्यन्ते च इति अधोलिखितपाठशालादिनामपार्यलोचनया विद्वद्दृष्टिपथमागच्छेत् ।

पुरनाम, पाठशालादिनाम, प्रस्थापकनाम, अध्यापनादिकार्यकारिनाम,

मद्रास प्रांत ।

१ मद्रपुरम्, आयुर्वेदमहाविद्यालय, वैद्यरत्नपंडित ए. लक्ष्मीपति महाशयाः
२ ,, ,, आतुरालयौषधालयादि सर्वाङ्गसमन्वितः डी. गोपालालार्डुमहाभागाः
३ ,, औषधालयः ,, ,,

४ मद्रपुरम् , आयुर्वेदवैद्यपाठशाला, कृष्णस्वामि अय्यर
५ ,, आतुरालयः, ,,
६ ,, औषधालयः, ,,
७ ,, मैलापुर व्यंकटरमण आयुर्वेदविद्यालयः, नटेशशास्त्रिणः
८ ,, औषधालयः, ,, ,,
९ ,, जार्जटाउन मद्रपुर कन्यकापरमेश्वरी आयुर्वेद औषधालयः
१० ,, वेपरीभागे धमार्युर्वेदौषधालयः, चंगलवरायः
११ ,, मुंगंबाकं कलवल कंरणन्श्रेष्ठि कलवलरामानुजंश्रेष्ठि
१२ मद्रपुर म्युनिसिपालिटीसंस्थया प्रतिवर्षं सहस्रमितं रूपकाः दीयन्ते ।
१३ नेल्लोर औषधालयः
१४ एल्लोर ,,
१५ बिभ्रवाडा ,,
१६ तेनाल्ली ,,
१७ तिरुपति औषधालयः
१८ कोकोनाडा औषधालयः
१९ गंतूर औषधालयः
२० सालेम ,, म्युनिसिपालिटी
२१ राजमहेंद्री ,, ,,
२२ अनंत (पद्मनाभ पुरम्)
२३ रामेश्वर ,, ७२ द्विसप्तत्यौषधालयाः
२४ त्रिचनापल्ली ,, म्युनिसिपालिटी
२५ त्रिवेंद्रम् ,, आयुर्वेदविद्यालयः सर्वाङ्गसमन्वितः
२६ त्रावणकोरमंडले शताधिकाः (१००) आयुर्वेदीय धर्मार्थौपधालयाः आरोग्यशालाश्च सन्तीति श्रूयते ।
२७ महिशूर, षट्त्रिंशत्संख्याकाः (३६) आयुर्वेदधर्मवैद्यशालाः ५ पंचयावनवैद्यशालाः
२८ नैजाम, सप्तदश आयुर्वेदौषधालयाः, हैद्राबाद, त्रिंशत् यूनानिधर्मौषधालयाः

महाराष्ट्र-प्रांत ।

१ मुंबई, प्रभुराम आयुर्वेदविद्यालयः औषधालयादिसंभारसंभृतः औषधालयः, आतुरालयः, डॉ० पोपट प्रभुराम ।
२ ,, आयुर्वेदपाठशाला, आयुर्वेदमार्तंड यादवजी त्रिकमजी आचार्य पं. हरिप्रपन्नशर्माणश्च
३ ,, मराठी वैद्यकवर्ग, पुरुषोत्तमशास्त्री हेर्लेकर, विनायकशास्त्री गुर्जर

४ मुंबई, राष्ट्रीय वैद्यक विद्यालय, (.नेशनल मेडिकल कॉलेज) डॉ० साठे
५ मुंबई, वैद्यसभाधर्मौषधालयः, मुंबई वैद्यसभा
६ ,, ,, ,,
७ पनवेल, धूतपापेश्वर धर्मौषधालयः, वैद्य अप्पाशास्त्री साठे विष्णुशास्त्री पुराणिक
८ पुण्यपत्तनम्, महाराष्ट्रवैद्यविद्यालयः, डॉ० नरहर परांजपे शिवराम वैद्य गंगाधर शास्त्री जोशी
९ ,, तिलकमहाविद्यालयः, नानलाभिधाः पुरुषोत्तमशास्त्रिणः, जोशी गङ्गाधरशास्त्रिणः
१० ,, धर्मार्थायुर्वेदीय म्युनिसिपलिटी औषधालयः, लागवणकरोपह्वाः बालशास्त्रिणः, गजानन रामचंद्र गद्रे
११ ,, धर्मार्थौषधालयः, पुण्यपत्तनीयम् वैद्यमंडलम्, जोशी इत्याख्याः गंगाधरशास्त्रिणः
१२ ,, ताराचंद हणमंत रामनाथ धर्मौषधालयः
१३ ,, नारायणधर्मार्थौषधालयः, डॉ. ना. म. परांजपे जोशी इत्याख्याः वैद्यभूषण गणेश शास्त्रिणः
१४ सतारा, आर्याङ्ग्लवैद्यकपाठशाला औषधालयः, आयुर्वेदप्रसारमं डॉ. वि. व. भिडे.
१५ वडूज, औषधालयः डि. लो. बोर्ड.
१६ अ. नगर, आयुर्वेदविद्यालय आयुर्वेद औष. आयुर्वेदप्रसारक मंडलम्, वैद्यपंचानन गंगाधर शास्त्रि गुणे.
१७ येवले, गंगादास छविलदास आयुर्वेदविद्यालयः औषधालयः, वल्लभदासमहाभागाः, दाताराभिधा वैद्यभूषण वामनशास्त्रिणः
१८ धुले, धर्मौषधालयः, प्राणिरत्नकसंस्था वासुदेवशास्त्रिनिर्झरकर।
१९ अमलनेर, आयुर्वेदविद्यालयः, खानदेशराष्ट्रीयशिक्षणसंस्था, वैद्यपंचानन गंगाधर शास्त्रि गुणे।
२० कारंजा, काण्णवधर्मार्थ औषधालयः, श्रीरामकाण्णडव दत्तात्रयशास्त्रिगाडगोल।
२१ एलिचपूर, राधाबाई औष. श्री. देशमुख
२२ मूर्तिजापूर औषधालयः
२३ अकोला, धर्मार्थौषधालयः, हरिशास्त्रिपराडकर
२४ अमरावती, आयुर्वेदविद्यालयः, धर्मौषधालयः, पंढरीनाथवामनमुले।
२५ नागपूर, आयुर्वेदविद्यालयः औषधालयश्च इंदूरकरवैद्य

गुर्जर प्रान्त।

१ सुरत, धर्मार्थौषधालयः

२ भाडेश्वर, धर्मार्थौषधालयः (भडोच) आतुरालयश्च
३ वटोदर, दिवाकरधर्मार्थौषधालयः, माधवराव दिवाकर
४ अहमदाबाद, आयुर्वेदविद्यालयः औषधालयादि संभारसंभृतः, डॉ. रावलमहाशयाः
५ पाटण. ,, ,,
६ जामनगर, धर्मार्थौषधालयः

राजपूताना।

१ अजमेर, धर्मार्थौषधालयः, रामदयालुशर्मा
२ जयपुर, राजकीय आयुर्वेदविद्यालयः, जयपुराधिपतयः, आयुर्वेदमार्तंड श्रीलक्ष्मीरामस्वामिनः

संयुक्तप्रांत, देहली।

१ देहली, वनवारीलाल आयुर्वेदविद्यालयः
२ देहली, तिब्बिआयुर्वेदविद्यालयः, हकीम अजमलखान
३ पिलिभीत, ललितहरिवैद्यकविद्यालयः
४ प्रयाग, आयुर्वेदमहाविद्यालयः, औषधालयश्च, आयुर्वेदविद्यालय समिति जगन्नाथप्रसाद शुक्ल।
५ काशी हिन्दूविश्वविद्यालयः

वायव्य प्रांत।

१ हृषीकेष, आयुर्वेदविद्यालयः औषधालयश्च, बाबा कालीकमलीवाला

पंजाब प्रान्त।

१ लाहोर, दयानंद वैद्यकविद्यालयः, आर्यसमाज

वंग प्रान्त।

१ कलिकाता, अष्टाङ्गायुर्वेदविद्यालय, कविराजयामिनीभूषणरायाः
२ जेसोर, धर्मौषधालयः डि. लो. बोर्ड

विहार प्रान्त।

१ मुजफ्फरपुर, राजकीयआयुर्वेदमहाविद्यालयः, विहारप्रान्ताधिपतयः

अन्येऽपि सहस्रशः आतुरालयभेषजालयविद्यालयाः सन्तीति जाने। तथापि विस्तरभिया सर्वेषां नामानि निर्देष्टुं नापारयम् इति तत्तदालयाधिपतयः क्षन्तुमर्हन्ति।

उपरिनिर्दिष्टेषु रुग्णालयपाठशालादिषु बहवः स्वकार्यं स्पृहणीयतया संपादयन्तीति तत्समये मयानुभूतचरम्।

५. मुंबई, पनवेल, जामनगर, अहमदाबाद, राजकोट, लाहोर, कलिकाता, मद्रास इत्यादि पत्तनेष्वायुर्वेदीयौषधशालाः स्थापिताः। तेभ्योऽपि महाँल्लाभो भवति लोकानाम्। पष्ठवैद्यसंमेलनसभापतिभिः आयुर्वेदोन्नत्यर्थं येऽभ्युपायाः संसूचितास्तेषु प्रथम उपायः चिकित्साकर्मणि प्रधानभूतस्य वैद्याख्यपादस्य संस्कारः इति। अस्य संस्कारार्थं आयुर्वेदविद्यालयानां स्थापनं परमावश्यकम्। एषु विद्यालयेषु शास्त्रानुकूललक्षणलक्षिताः सद्वैद्याः आयुर्वेदीयविषयान् शिक्षेरन्। सर्वेषां विद्यालयानां पाठ्यप्रणाल्या ऐक्यरूप्यमुचितम्। तत्तत्प्रांतीयानामेतेषां विद्यालयानां च सूत्रमेकस्मिन् विश्वविद्यालये संबद्धं भवेत्। विश्वविद्यालयश्चायम् भारतस्य सर्वेष्वपि प्रांतीयविद्यालयेषु प्रदत्तपरीक्षेभ्यः छात्रेभ्यः समानमेव उपाधिं प्रदद्यात्। एतेषु विद्यालयेषु प्रयोगशालाऽपि स्थापनीया। भेषजसंग्रहालयोऽपि अत्रापेक्ष्यते। द्वितीयस्य भेषजपादस्यापि संस्कार आवश्यकः। येषु येषु देशेषु या या ओषधय उपलभ्यन्ते, तत्र एवंविधानि प्रामाणिकस्थानानि परिकल्पनीयानि, येभ्यः देशांतरीयवैद्या आवश्यकतानुसारम् ओषधीः उपलभेरन्। एवं प्रसिद्धनगरेषु सिद्धौषधानामपि प्राप्तिस्थानानि स्थापनीयानि येषु सर्वाण्यायुर्वेदप्रसिद्धानि सिद्धौषधानि उपलभ्येरन् सर्वसमये। एतेषां च निर्माणरीतिरपि एकरूपैव संभवेत्। आयुर्वेदमार्तण्डलक्ष्मीरामस्वामिभिः येऽभ्युपायाः संसूचितास्ते यावच्छक्यमुपयोजिता दृश्यन्ते। भारतवर्षे आयुर्वेदीयविद्यालयानाम् औषधालयानाम् आतुरालयानां च वृद्धिः प्रतिदिनमनवरतं भवति। एकरूपा पाठ्यप्रणाली कलिकातासंमेलने एव निश्चिता। आयुर्वेदविद्यापीठमेव आयुर्वेदस्य विश्वविद्यालः। द्वादशवर्षात् प्राक् पुण्यपत्तनीयवैद्यशास्त्रोत्तेजकसभा, मुंबईस्थप्रभुरामआयुर्वेदविद्यालयसंस्था, बटोदरस्थश्रावणमासदक्षिणापरीक्षासंस्था, पुण्यपत्तनीयमहाराष्ट्रवैद्यकशिक्षकसंस्था, सातारानगरस्थायांग्लवैद्यकसंस्था, जयपुरस्थराजकीयायुर्वेदविद्यालयसंस्था देहलीस्थबनवारीलालायुर्वेदविद्यालयसंस्था लाहोरस्थदयानंदवैद्यकसंस्था, मद्रपुरस्थायुर्वेदमहाविद्यालयसंस्था, एवं सर्वाऽप्येताः संस्थाः प्रदत्तपरीक्षाणां छात्राणां योग्यतानुरूपं प्रमाणपत्रं दक्षिणासमन्वितम् उपाधिं च प्रयच्छन्ति। परमधुनाऽऽयुर्वेदविद्यापीठं निखिलभारतवर्षे भिन्नभिन्नपत्तनेषु परीक्षाकेंद्रस्थानानि प्रकल्प्य तत्त'स्थानादागतान् छात्रान् परीक्ष्य प्रदत्तपरीक्षेभ्यश्छात्रेभ्यः' भिषक् 'आयुर्वेदविशारद' अथवा 'आयुर्वेदाचार्य' इति योग्यतानुसारम् उपाधिं प्रयच्छति। विद्यालयेष्वेतेषु अद्यापि भेषजपरिचयागारं प्रयोगशाला शवच्छेदागारं वैकृतशारीरवस्तुगृहं रसशाला भेषजोद्यानं ग्रंथसंग्रहालयः इत्याद्यङ्गानि नोपलभ्यन्ते। परं तेषामपि समावेशोऽचिरादेव भविष्यतीति दृढं विश्वसिमि। संमेलनांगभूतेन आयुर्वेदविद्यापीठेन या एकरूपा पाठ्यप्रणाली निश्चिता तामनुसृत्य च भारतवर्षीयपत्तनेषु या परीक्षाव्यवस्था क्रियते सा लोकानां विश्वासार्हा आदरास्पदं च संजाता। प्रतिवर्षं त्रिशताधिकाः छात्राःपरीक्षार्थमागच्छन्ति। प्रतिवर्षं च परीक्षार्थिनां छात्राणां संख्या वर्धत एव। इदमेव अस्य

विद्यापीठस्य लोकप्रियताया बलवत्तरं प्रमाणम् । आयुर्वेदीयसंमेलनाधिवेशनसमये प्रतिवर्षं यत् प्रदर्शनं क्रियते तच्च वैद्यान् लोकांश्चात्यन्तमुपकरोति । यतः प्रदर्शनेऽस्मिन् पुष्पमूलफलशाखादिपंचांगानां तथैव यावच्छक्यमुपलब्धानामोषधीनां सिद्धौषधानां मणिमंत्राणां शारीरवस्तूनां यंत्रशस्त्रादिकानां मुद्रितामुद्रितप्रधानायुर्वेदीयग्रन्थानामायुर्वेदोपयोगिनां सर्वेषां वस्तूनां च समावेशः क्रियते । तेन च वनौषधीनां परिचयः अनायासेनैव भवति । अदृष्टपूर्वाणि अनेकानि सिद्धौषधानि अनायासेनैव दृष्टिपथमायान्ति । एवं आयुर्वेदोद्धारार्थं अद्यावधि ये प्रयत्नाः कृताः, तैरायुर्वेदस्य उद्धारोऽभूदित्यत्र न कोऽपि संशयः । द्वादशवर्षात्प्राक् यदा नारभ्यत संमेलनकार्यं तदा यः कोऽपि दानशौण्डो धनिकः आतुरोद्धारार्थं पाश्चात्यवैद्यकरीत्या प्रचलितौषधालयाय सहस्रावधिरूप्यकदानेनात्मनं कृतकृत्यमन्यत । परमधुना तत्र महती परिवृत्तिः । यतः पूर्वोक्तसदृशो धनिकः स्वीयं द्रव्यं आयुर्वेदपद्धत्या प्रचलितौषधालयाय दत्त्वा तत्सफलयति । अयं केवलं वैद्यसंमेलनस्यैव उपकार इति सर्वेऽपि तत्रभवन्तो भवन्त उररीकुर्युः । द्वादशवर्षात् प्राक् आयुर्वेदस्य राजसाहाय्यं कियन्मात्रमासीत्तत्सर्वेप्यत्र समागतः भिषग्वराः जान्त्येव । आयुर्वेदस्य राजसाहाय्य कियन्मात्रमपि नासीत् । तेन च तस्य ईदृशी कष्टतमा हीनावस्थाऽऽसीत् । राजसाहाय्यार्थं च सम्मेलनेनाद्यावधि यथाशक्ति प्रयत्नाः कृताः । ते च प्रयत्नाः फलोन्मुखा इति मे मतिः । यदि च वयमेवमेवानवरतं प्रयतेमहि तर्हि निश्चयेन यशभाजो भवेम इति स्पष्टानि चिन्हानि दृश्यन्ते । भारतवर्षीयलोकानामारोग्यावलोकनार्थं राजशासनसभासु आयुर्वेदीयवैद्यानां प्रतिनिधिभूतः कोऽपि वैद्यः सभासदत्वेन स्वीकर्तव्यः इत्याशयात्मकः प्रस्तावः अस्माभिः पूर्वमेव कृतः । म्युनिसिपालिटी लोकलबोर्ड इति नाम्नाच प्रसिद्धाभिः स्थानिकपरिषद्भिः आयुर्वेदीयधर्मार्थौषधालयान् विद्यालयान् आतुरालयांश्च प्रवर्तयित्वा आयुर्वेदसाहाय्यं कर्तव्यमित्याशयात्मकोऽपरः प्रस्तावः संमेलनेषु अस्माभिः कृतः । वैद्यसंमेलनात् पूर्वं अधिकारप्राप्त्यर्थं संमिलितासु सभासु राजकीयविषयाणां उद्घाटनं अनेकवारमभवत् । परं आयुर्वेदविषयकः प्रस्तावः विचारार्थं न कदाऽपि गृहीत आसीत् । परं गतद्वादशसंवत्सरेषु लोकानां दुःखविमोचनार्थमधिकारसंपादनार्थं तत्प्रतिपादनार्थं च याः प्रांतीयराजकीयसभाः समभूवस्तास्वितरमहत्त्वपूर्णप्रस्तावैस्सह आयुर्वेदस्य प्रस्तावोऽपि सर्वत्र स्वीकृतो दृश्यते । एतासु प्रांतीयराजकीयसभासु राजानं सामंतांल्लोकांश्चोद्दिश्य आयुर्वेदीयातुरालयान् आयुर्वेदविद्यालयांश्च संप्रवर्तयित्वा सर्वैरायुर्वेदोत्तेजनं कार्यं इत्याशयात्मकः प्रस्तावः सर्वेषामेकमत्येन संमतः कृतः आसीत् । किमतःपरं यद्राष्ट्रीय महासमित्या (Indian National Congress) अपि अयं प्रस्ताव ऐकमत्येन नागपुरादिनगरस्थाधिवेशनेषु स्वीकृतः । एतत् संमेलनातिरिक्तस्य कस्य कार्यमिति सुधियो विभावयन्तु । तेषु तेषु सामन्तमण्डलेषु च आयुर्वेदसाहाय्यार्थं प्रयत्नाः कृताः । अचिरादेव चायुर्वेदः सामन्तानां कृपापात्रं भविष्यति । गताष्टवर्षे प्रतिवर्षं यस्यां कस्यामपि

राजशासनसभायामायुर्वेदाय राजसाहाय्यं कर्तव्यमित्याशयात्मकः प्रस्तावः आनीतः। प्रधानराजशासनसभायां चायुर्वेदस्योत्तेजनं आदरणं च कियन्मात्रं शक्यम, इष्टं च इत्येतद्विषयविमर्शनार्थं समितिरेका नियजनीया इत्याशयात्मकः श्रीमतः असदअह्निखानमहाशयस्य प्रस्तावो राजमंत्रिभिः स्वीकृतः। तं प्रस्तावमुद्दिश्य कार्यं प्रचलत्येव। अनंतरं च प्रायः सर्वासु प्रांतीयराजशासनसभासु एतादृशाः प्रस्तावाः विचारार्थमुपन्यस्ता आसन्। केषु केषु प्रांतेषु च आयुर्वेदविमर्शकमण्डलानि स्थापितानि दृश्यन्ते, मद्रप्रांते च द्वित्रिवर्षात् प्राक् डॉ० कोमनमहाशयानाम् देशीयऔषधपरीक्षणविषये योजना आसीत्। तैश्च महत्परिश्रमपूर्वकं लिखितोऽभिप्रायः मद्रासराजकीयमुद्रणाधिकारिणा प्रकाशितः। कोमन महाशयस्य अभिप्रायमुद्दिश्य द्रविडवैद्यमंडलेन मद्रासआयुर्वेदीयसभया च उत्तरमपि प्रकाशितम्। मुंबईप्रांतीयराजशासनसभयापि देशीयौषधपरीक्षणकार्यं कस्मिन्नपि पाश्चात्त्यवैद्यशास्त्रनिपुणे उपन्यस्तमिति श्रूयते। मध्यप्रांतीयराजकीयशासनसभायां च आयुर्वेदीयमहाविद्यालयप्रतिष्ठापनार्थं पंचसप्ततिसहस्ररूपकव्ययानुमोदनार्थं प्रस्ताव उपन्यस्त आसीत्। आयुर्वेदीयौषधालयार्थं म्युनिसिपालिटी संस्थया डिस्ट्रिक्टलोकलबोर्ड संस्थया वा कृतः व्ययः शासनानुरूप एव इति तस्यामेव सभायां मंत्रिमहाशयैः अभिप्रायः प्रदर्शितः। संयुक्तप्रांतीयराजशासनसभायामपि एतादृशः प्रस्तावः विमर्शनार्थं आगत आसीत्। संमेलनकृतां प्रार्थनामनुरुध्य विहारप्रांते राजशासनानुरूपं संस्कृतमहाविद्यालये आयुर्वेदाध्यापनं संप्रवर्तितम्। मद्रप्रांतीयाधिपतिभिरपि आयुर्वेदविमर्शनार्थं समितिरेका नियुक्तेति सर्वेषां विदितचरमेव। समित्या चानया प्रश्नावलिरेका मुद्रिता सा च मद्रप्रांतीयवैद्येभ्यः भरतवर्षीयवैद्येभ्यश्च उत्तरार्थं प्रेषिता। वंगीयराजशासनसभायामपि एतादृशः प्रस्ताव ऐकमत्येन स्वीकृतः। आयुर्वेदविमर्शनार्थं च तत्राप्येका समितिर्नियुक्ता। वंगीयायुर्वेदविमर्शिन्या समित्या अपि प्रश्नावलिरन्या मुद्रिता, उत्तरार्थं वंगीयकविराजेभ्यः भरतवर्षीयवैद्येभ्यश्च प्रेषिता।

६. एवमायुर्वेदाय राजसाहाय्यं भवेदिति धिया संमेलनेन कृताः प्रयत्नाः फलोन्मुखा इति शुभचिन्हानि दृश्यन्ते। एतावन्तं कालमैकमत्येनानवरतं च यथाऽस्माभिः प्रयत्नाः कृतास्तथैव यदि फलप्राप्तिपर्यन्तं प्रयतेमहि तर्हि अचिरादेव कालादायुर्वेदे राजसाहाय्यं भविष्यति। परं खिद्यते नश्चेतः मद्रप्रांतीयपक्षभेदश्रवणेन। मद्रप्रान्तीयवैद्येष्वनेके पक्षभेदाः सांप्रतं संजाताः। तेन च कार्यहानिः स्यादिति शंका प्रदर्श्यते। गते वर्षे असहकारिताकार्यक्रममुद्दिश्य यन्महदान्दोलनं कृतं तस्य परिणाम एवमभूद्यद्राजकारणाद्यायोऽलिप्तस्य वैद्यस्याऽपि मनसि विकल्पः संभूतः। तत्र राजनियुक्तायुर्वेदविमर्शकसमितिप्रश्नेभ्यः केनाप्युत्तराणि न दातव्यानीत्येकः पक्षः। आयुर्वेदोद्धार एवास्माकं ध्येयमिति सहकार्येण असहकार्येण विरोधेन येन केनाप्युपायेन आयुर्वेदोद्धारकार्यं संसाधनीयमिति अवश्यमेव उत्तराणि दातव्यानीत्यन्यः पक्षः। वस्तुतस्तु आयुर्वेदविषये पक्षभेदानामवसरोऽपि नास्ति। प्राणरक्षणं सर्वेषां पक्षानामुद्देश्यम्। रणाङ्गणेमूऽपि च्छितानां

शस्त्रादिहतानाम् , अपरेषां च दुःखविमोचनार्थं शत्रुमित्रभेदं विस्मृत्य चिकित्सा क्रियते । तथैव आयुर्वेदशास्त्रविषये सांप्रतं प्रसृताया असहकारिताया अवसरोऽपि नास्तीति सर्वेऽपि सुधियः संमानयेयुः । आयुर्वेदाभ्युदयार्थं के के चोपाया अस्माभिरवलम्बनीया इति विषयमुद्दिश्य सप्तवर्षात्प्रागेव कलिकातासंमेलनसभापतिभिः पण्डितश्रीलक्ष्मीरामस्वामिभिर्यदभिहितं तदपि चिन्तनीयम् ।

"परिशुष्यतो वैद्यकतरोः पुनरभ्युदयाय प्ररोहाय च बहव उपायाः कर्त्तव्या निश्चेतव्याश्च । तेषु सर्वेषु प्रथमो राज्ञः प्रजानां चोभयोः सौमनस्यं सहकारिता च । नहि केवलं राजसाहाय्येन प्रजाभिस्तिरस्कृता सिध्यन्त्यर्थाः । नापि राजविरोधे सत्यपि प्रजानां प्रतीपयत्नैः किमपि संपाद्यते । उदारनीतिपटीयसां घोषितसहानुभूतिपटहानां वर्तमानभारतराजानामायुर्वेदोदये कर्तव्यस्य न केवलं वैद्यरत्नोपाधिना प्रसिद्धभिषजां ख्यापने पर्यवसानं भवितुमर्हति वयं बह्वधिकमाशास्महे—वारं वारं प्रार्थनया स्वीयनिवेदनौचित्यविश्वासेन स्वीयाभिश्च कृतिभिरनुमोदनसाहाय्याकर्षणक्षमाभिः कालेन राज्ञो बहुमूल्यां महाफलां च सहयोगितां प्राप्नुयाम । वयमाशास्महे—यत्पाश्चात्यारोग्यदर्शनस्येव प्राच्यायुर्वेदस्य शिक्षायै पाठशालाः परीक्षा उपाधयश्च निर्धार्येरन् । वयमाशास्महे यत्केवलसंस्कृतदेशभाषाभिज्ञेभ्यो वैद्येभ्यो वनस्पतिशारीररसायनादिविज्ञानलाभाय विद्यालयेषु आंग्लभाषाज्ञाननिगडनमन्तरा प्रवेशः सुलभः संभवेत् । वयमाशास्महे मुद्रणावशिष्टानां संहितादिनिबन्धानां संपादने व्याख्याने प्रचारणे च साहाय्यमुत्तेजनाय लभेमहि । वयमाशास्महे भिषजो दक्षतरा (Doctors) इव प्रामाणिकत्वेन संभाव्येरन् तेषां लेखश्च राजाधिकरणैर्विश्वस्तः संमान्येत । एवमादि बहुविधं वयमाशास्महे । ....सत्यस्माकं बद्धपरिकरत्वे राजोपेक्षां दूरीकर्तुं शक्यमेव । कस्मिन्नप्यर्थे कृतनिश्चयाः प्रजा राजानं रश्मिविवादायाकर्षन्ति । राज्ञां कृतकौदासीन्यं च प्रजानां हार्दपरीक्षार्थं भवति ।"

अत एतावन्तं कालं संमेलनेन यो मार्गः समाक्रान्तः तस्यैवानुसरणं आयुर्वेदाय हितप्रदं भविष्यतीति दृढं विश्वसिमि । राजनियुक्तायुर्वेदविमर्शकसमितिप्रश्नेभ्य उत्तराण्यदत्वा आत्मनाशं करिष्यामः । अस्माकं मौनसमाश्रयणं आयुर्वेदीयसिद्धान्तानामसमर्थनीयत्वप्रदर्शकं गणयिष्यते । निखिलभारतवर्षीयवैद्यसंमेलनं च भारतवर्षे उपहास्यतां यास्यति । यतो गतसंमेलने एव मुंबय्यामस्माभिरैकमत्येन प्रस्तावः कृतो यत्संमेलनसभापतीनां मण्डलं आयुर्वेदीयसिद्धान्तविषयकशंकानां समाधानं कर्तुं सदैव सिद्धम् । राजनियुक्ताधिकारिणोऽन्ये वा केचन महाभागा यदि शंकासमाधानमिच्छन्ति तर्हि तैरवश्यमेव पत्रप्रेषणादिकं कार्यमिति । अपरं च आयुर्वेदविमर्शनविषये प्रधानराजाधिकारिभिः पूर्वं पत्रप्रेषणसमये निखिलभारतवर्षीयवैद्यसंमेलनस्थायिसमितेरायुर्वेदविद्यापीठस्य चास्तित्वमपि अगृहीतमिवासीत् । अतोऽस्य निषेधः संमेलनेन कृतः इति प्रायः स्मरन्त्येव सर्वे । अधुना तु मद्रासायुर्वेदविमर्शकसमित्या संमेलनसंस्थाः पत्र-

प्रेषणादिनानुगृहीताः । समित्या चानयाऽस्य कार्यस्य हेतुरत्यन्तं स्पष्टतया लिखितः । राजनियुक्तायुर्वेदविमर्शकसमितिप्रश्नानामयमेव हेतुर्यद्ये ये आयुर्वेदस्य यावनचिकित्सापद्धतेश्च पुरस्कर्तारस्तैःस्तैः आयुर्वेदीयग्रन्थेषु प्रतिपादितानां विवादात्मकानां सिद्धान्तानां सविस्तरं विवेचनं कृत्वा चिकित्सकधिया वादविवादं कृतवतां शास्त्रज्ञानां शंकासमाधानं कृत्वा आयुर्वेदः यावनचिकित्सापद्धतिर्वा राजाश्रयं तदुत्तेजनं चार्हतीति सिद्धये वैद्यानां संधिरुपलभ्येतेति (The object of the proposed inquiry is to afford the exponents of the Ayurvedic and Unani Systems an opportunity to state their case fully in writing for Scientific criticism and to justify state encouragement of these Systems.) अत एव च मद्रप्रांतीयवैद्येभ्यः भरतवर्षीयवैद्येभ्यश्च प्रश्नपत्रिकाः प्रेषिताः । एवं स्थिते वस्तुतत्त्वे यदर्थमस्माभिर्गते द्वादशवर्षे सर्वात्मना प्रयत्नाः कृताः यश्च मार्गोऽस्माभिर्विवेकपूर्वकं स्वीकृतस्तस्य त्यागः फले दृष्टिपथे विद्यमानेऽपि कृतः स्यातर्हि भाविनो वैद्या अस्माकं गणना केषु करिष्यन्तीति विचार्यताम् । किमद्यावधि कृतं कार्यं रसातलं गच्छतु । प्रवासक्लेशादिकानगणय्य संमेलनकार्यार्थमत्रागतेषु भिषग्वरेषु न कोऽपि एवं मतप्रतिपदको भवेदिति विश्वसिमि । आयुर्वेदविमर्शकसमितिप्रश्नानाउत्तरनमुप्रदानेन यदि आयुर्वेदानुकूलो ग्रहो भवेदायुर्वेदश्च राजसाहाय्यविमुखो भवेत्तर्हि तत्र संमेलनमेव दोषभाक् भविष्यति ।

७. अपरं च शास्त्रीयवादविवादेषु सहकार्यमसहकार्यमनादृत्य केवलं शास्त्रदृष्ट्यैव विचारः करणीयः । जगति सर्वत्रायुर्वेदीयसिद्धान्तध्वजप्रतिष्ठापनमेवास्माकं ध्येयं भवितुमुचितम् । आयुर्वेदीयचिकित्सापद्धतेस्तत्त्वानि नूनमनुपमानि । एकैकतत्त्वमनुसृत्य एकैस्याः चिकित्सापद्धतेरुत्पत्तिः संभूता संभविष्यति च । स्वेदतत्त्वमनुसृत्य नवीना एव स्वेदचिकित्सापद्धतिरमेरिकादेशेषु उत्पन्नेति ज्ञायत एव श्रीमद्भिः । लङ्घनतत्त्वमनुसृत्य लङ्घनचिकित्सापद्धतिरुदिता अमेरिकादेशेषु । एवमेव अनेकतत्त्वानि सिद्धान्ताश्चायुर्वेदे विद्यन्ते येषां व्याख्यानेन आयुर्वेदध्वजः सर्वत्र विलसेत् । आयुर्वेदचिकित्साऽपि यशस्विनीत्यनुभवेन सिध्येत् । तथापि पाश्चात्त्यवैद्यशास्त्रप्रवीणा आयुर्वेदमुद्दिश्य बहुश आक्षिपन्ति, यदत्रत्या निदानपद्धतिश्चिकित्सापद्धतिश्च सर्वथैव त्याज्येति । एतादृशानां आक्षेपाणां खण्डनमतीवावश्यकम् । तच्च प्रश्नावल्युत्तरदिग्दर्शनेनानायासतो भविष्यति । संमेलनेन भिषग्वरैश्च मद्रासप्रांतीयायुर्वेदविमर्शकसमितिप्रश्नानां सविस्तराण्युत्तराणि यदि प्रेषितानि न स्युस्तर्हि अचिरादेव तानि प्रेषणीयानीति सर्वान्भिषग्वरान् संप्रार्थ्य प्रश्नोत्तरदिशं प्रदर्शयामि ।

मद्रदेशीयवैद्यविमर्शकसमितिप्रश्नानां उत्तराणि ।

१ आयुर्वेदमुद्दिश्यैव प्रश्नानां उत्तराणि दास्यामि ।

२ (अ) धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तंत्रस्यास्य प्रयोजनम् ।
विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते ।
सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च ।
तद्दुःखसंयोगा व्याधयः ।

इति चरकसुश्रुतवचनान्यनुसृत्य धातुवैषम्यं रोगः, धातुसाम्यं चारोग्यं, इति आयुर्वेदगतं व्याधिलक्षणं सुस्पष्टमेव । लक्षणमिदं च सर्वेऽपि सुधियः संमानयेयुः । शरीरगतवैषम्यमूला एव सर्वे रोगाः, इत्यत्र नव्यशास्त्रसंप्रदायानुयायिनामपि शंकावसरो न लभ्यते । शरीरमनः शरीरि—(आत्मा) समवायः पुरुष इत्युच्यते, तत्र आत्मा च निर्विकारः सुखदुःखरहितः । निजागंतुविभागेन तत्र रोगा द्विधा स्मृताः । तेषां कायमनोभेदादधिष्ठानमपि द्विधा । एवं रोगा अपि निजाः, आगंतवः, शारीराः, मानसाश्च एवं चतुर्विधाः । पुनस्तेऽपि सहजाः गर्भजाः जातजाः पीडाकृताः कालजाः प्रभावजाः स्वभावजाः इति सप्तविधाः । एवमनेकविधा अपि व्याधयः वैषम्यमूला एव । दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेककारणम् । इति वचनेऽपि वैषम्येव रोगकारणमिति स्पष्टम् । तद्वैषम्यं च कस्माज्जायते इति पृष्टं चेत्तर्हि—

कालार्थकर्मणां योगा हीनमिथ्यातिमात्रकाः ।
सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगारोग्यैककारणम् ॥

श्लोकेऽस्मिन् रोगस्य आरोग्यस्य च कारणमतीव स्पष्टतया वर्णितम् । कालार्थकर्मणां हीनमिथ्यातियोगैः शरीरे वैषम्यं जायते । तेन वैषम्येण च रोगाः प्रादुर्भवन्तीत्यत्र किमशास्त्रीयम् । शरीरगतानां धातूनां घटकावयवानां प्रमाणं च यावत्कालं समं स्यात् तावत्कालं शरीरस्य आरोग्यं स्यात् , यदा च शरीरघटकावयवानां धातूनामाहारविहारादिकारणैः असात्म्येन्द्रियार्थसंयोगप्रज्ञापराधपरिणामकारणैर्वा शरीरगतवातपित्तकफानां चयप्रकोपप्रसरस्थानसंश्रयनिमित्तकं धातु–(दोष) वैषम्यं जायते तदा व्याधयः समुद्भवन्ति । अस्य सविस्तरं विवरणं कलिकाता संमेलनाधिपतिभिः आयुर्वेदमार्तण्ड पण्डित श्रीलक्ष्मीरामस्वामिभिः प्रथमतः द्वादशपृष्ठपर्यन्तं कृतम् । तत्सुधीभिर्यथावसरं द्रष्टव्यम् । अस्मिन् सिद्धान्ते किमप्यशास्त्रीयमसमर्थनीयं वा न विद्यते । गुणलक्षणकार्यात्मकं दोषाणां वर्णनमायुर्वेदीयग्रंथेषु बहुलतरमुपलभ्यते । परं वस्तुरूपनिदर्शकं तेषां वर्णनं न दृश्यते । अतो वातपित्तकफाः काल्पनिकाः न तु शरीरगताः शरीरधातवः इति पाश्चात्यवैद्यकशास्त्रविदुषामन्यथाग्रहः संजातः । तेन विपरीतग्रहेण च नानाविधा आक्षेपा उपन्यस्यन्ते, वस्तुतो विचार्यमाणे दोषा अपि शरीरगताः अवयवा इति सुस्पष्टम् । दोषशब्दः आयुर्वेदीयग्रंथेषु केनाऽर्थेनोपयोजित इत्यस्य प्रश्नस्य निर्णयः दोषशब्दस्य निर्देश आयुर्वेदे येषां येषां शब्दानां साहचर्येण कृतो दृश्यते तेषां सर्वेषां समुच्चयविचारेण भविष्यति । दोषधातुमलमूलं हि शरीरं, त्वचः कलाः धातवः दोषाः मलाः यकृत्प्लीहानौ इत्यादिवचनेषु दोषाणां निर्देशः

कृतः। समानानामेव हि प्रायेण समभिव्याहारा भवन्ति। यदुपरिनिर्दिष्टवाक्येषु धातुमलैः सह दोषशब्दस्य साहचर्यं दरीदृश्यते न तत्केवलं संख्यानार्थं, प्रत्युत विशिष्ट-गुणकर्मसाम्यख्यापनार्थम्। पुण्यपत्तनीयमहाराष्ट्रवैद्यकपाठशालाध्यापकैः नरहरि शिवराम परांजपे इति सुप्रथितनामधेयैर्वैद्यवर्यैः अकोलावैद्यसभायां दोषविज्ञानमुद्दिश्य निबन्धः पठितः। तस्य समारोपः सर्वैः भिषग्वरैरवश्यं मनसि निधेयः। समारोपान्ते दोषविषये यः सिद्धान्तः साररूपेण सर्वेषां विचारार्थं तैरुपन्यस्तः सोऽग्रतो दीयते। दोषधातुमलाः शरीरावयवा इति स्पष्टतमं प्रतिभाति। शरीरं चेदं पांचभौतिकं षड्रसात्मकं सेन्द्रियं सजीवमिति सुप्रथितम्। तस्मिंश्च संग्रहात्मको वर्धनात्मकः विशरणात्मकश्च व्यवहारः कायतनुशरीरशब्दप्रयोगेणावगम्यते। तस्मात् अवयविनः देहस्य संग्रहवर्धनविशरणात्मकस्य व्यापारस्य चालका ये अवयवा दोषधातुमलास्तेऽपि पांचभौतिकाः सेन्द्रियाः सजीवा इति वक्तुं न कोऽपि संशयः। तथापि तेषां अस्तित्वं अनुमानेनैव सिध्यति।

२ (आ) आदौ निदानविधिना विदध्याद्रोगनिश्चयम्।
ततः कर्म भिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥
रोगं निदानप्राग्रूपलक्षणोपशयाप्तिभिः।
दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेताथ रोगिणम्।

इति श्लोकेषु रोगनिदानं कथं कर्तव्यं चिकित्साकर्म च कथं करणीयमिति संक्षेपतया वर्णितम्। रोगनिदानसमये हेतुप्राग्रूपरूपोपशयसंप्राप्तिपंचकस्य विचारः सूक्ष्मतया करणीयः। रोगिपरीक्षासमये च आतुरगृहमभिगम्य उपविश्य आतुरमभिपश्येत्, स्पृशेत् पृच्छेच्च। त्रिभिरेतैर्विज्ञानोपायै रोगाः प्रायशो वेदितव्या इत्येके। तत्तु न सम्यक्। षड्विधो हि रोगाणां विज्ञानोपायः। तद्यथा पञ्चभिः श्रोत्रादिभिः प्रश्नेन चेति। तत्र श्रोत्रेन्द्रियविज्ञेया विशेषा रोगेषु व्रणास्रावविज्ञानीयादिषु वक्ष्यन्ते—'सफेनं रक्तमीरयन्ननिलः सशब्दो निर्गच्छति' इत्येवमादयः। स्पर्शनेन्द्रियविज्ञेयाः शीतोष्णश्लक्ष्णकर्कशमृदुकठिनत्वादयः स्पर्शविशेषाः, ज्वरशोफादिषु। चक्षुरिन्द्रियविज्ञेयाः शरीरोपचयापचयायुर्लक्षणबलवर्णविकारादयः। रसनेन्द्रियविज्ञेयाः प्रमेहादिषु रसविशेषाः, घ्राणेन्द्रियविज्ञेया अरिष्टलिङ्गादिषु व्रणानामव्रणानां च गन्धविशेषाः। प्रश्नेन च विजानीयाद्देशं कालं जातिं सात्म्यमातङ्कसमुत्पत्तिं वेदनासमुच्छ्रयं बलमन्तरग्निं वातमूत्रपुरीषाणां प्रवृत्त्यप्रवृत्ती कालप्रकर्षादींश्च विशेषान्। आत्मसदृशेषु विज्ञानाभ्युपायेषु तत्स्थानीयैर्जानीयात्।

धातुसाम्यक्रियैवायुर्वेदस्य प्रयोजनम्। अतः चिकित्साकर्मसमये वैद्यस्यैतत्प्रधानं कर्तव्यं यद्रोगिशरीरे कस्य घटकावयवस्य वृद्धिः क्षयो वा संजातः इति ज्ञातव्यम्। ज्ञात्वा च वृद्धानां ह्रासनं क्षीणानां वर्धनं च कार्यम्। इदमेव चिकित्सातत्त्वमायुर्वेदे संतर्पणापतर्पणनाम्ना बृंहणलंघनपर्यायेण वा प्रसिद्धेन द्विविधोपक्रमत्वेन वर्णितम्। लंघनमपि शोधनशमनरूपेण पुनर्विभज्यते। स्नेहस्वेदवमनविरेचनशिरोरेकवस्त्यस्र-

विसुतीनां समावेशः शोधनलंघने भवति। पाचनदीपनक्षुत्तृड्व्यायामातपमारुतानां समावेशश्च शमनलंघने भवति। चिकित्साकर्मणि च कस्य द्रव्यस्य उपयोगः कया रीत्या करणीय इति रसगुणवीर्यविपाकप्रभाववर्णनप्रसंगेन पण्डित श्रीलक्ष्मीरामस्वामिभिः चतुर्विंशतिपृष्ठादारभ्य चतुस्त्रिंशत्पृष्ठपर्यंतं मनोरमतया प्रतिपादितम्। तद्भिषग्वरैरवश्यमवलोकनीयम्। चिकित्साकर्मणि सुविमलकीर्तीच्छुभिः भिषग्वरैः किं किमवश्यं करणीयमित्यधोलिखितश्लोकद्वये सम्यक्तया प्रतिपादितम्।

दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः, सत्त्वं सात्म्यं तथाऽऽहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः।
सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषधनिरूपणे, यो वर्तते चिकित्सायां न सस्खलति जातुचित्॥

श्लोकयोरनयोर्व्याख्यानं पं० श्रीलक्ष्मीरामस्वामिभिः पंचत्रिंशत्पृष्ठादारभ्य षट्पंचाशत्पृष्ठपर्यन्तं हृदयंगमतया कृतम्। तच्चानाघ्रातायुर्वेदगंधैः पाश्चात्यवैद्यपण्डितैरवश्यमवलोकनीयम्। पुण्यपत्तनीयायुर्वेदौषधालयेभ्योऽपरेभ्योऽपि धर्मौषधालयेभ्यः प्रमाणदानेन आयुर्वेदीयचिकित्साफलं संसाधयितुं सिद्धोऽस्मि।

(इ) संग्रहणीक्षयातीसारादिरोगेषु आयुर्वेदचिकित्सा विशेषतः फलदायिनीति सर्वत्र लोकग्रहः, अनुभवोऽपि तथैवेति विस्तरोऽनावश्यकः। क्षयस्यासाध्यावस्थां गतौ द्वौ रुग्णौ आयुर्वेदीयचिकित्सया रोगमुक्तौ संजाताविस्युद्घोषयितुं महान्मे आनन्दो भवति। तयोर्नाम्नी स्थाने च यथावसरं प्रकाशयामि।

३. (अ) देशीयायुर्वेदीयौषधालयातुरालयविद्यालयादिसंस्थाभिरहं साक्षात् संबद्धोऽस्मि।

(आ) वर्तमानायुर्वेदविद्यालयौषधालयातुरालयाः।

१ आरोग्यदानदृष्ट्या अपरिपूर्णाः।
२ आयुर्वेदाध्यापनदृष्ट्याऽप्यपरिपूर्णाः।

द्रव्याभावाद्विद्यालयादिकानां कार्यप्रसारोऽतीव कष्टप्रायः संजातः। प्रतितालुकाग्रामं औषधालय एकः, प्रतिजिल्हास्थानं च आतुरालयसमन्वितो विद्यालयः आवश्यकः। सच वनस्पत्युद्यानभेषजसंग्रहालयरसशालौषधशालाग्रंथसंग्रहालयादिनानाविधसंभारसमन्वितो यथाकालं करणीयः।

(इ) एवंविधानां संस्थानामभावे आयुर्वेदस्य कर्मपथाभ्यासशिक्षादानं कष्टतरं संजायते। अतो विद्यमानस्य प्रत्यूहस्य निराकरणमादौ करिष्यामि। वर्तमानायुर्वेदविद्यालयेषु प्रवर्त्यमाना शिक्षणसरणिरतिसुलभेति न कोऽपि संदेहः। परं गुरुगृहमेव विद्यालयातुरालयौषधालयादिसंभारसमृद्धमायुर्वेदशिक्षणसर्वस्वमिति धिया पठतश्छात्रस्य गुरुगृहे आयुर्वेदज्ञानसंपादनं यद्यपि कष्टतरं तथापि नापर्याप्तं इति निःसंदेहमहं प्रतिपादयामि। संप्राप्तं चायुर्वेदः कष्टायां दशायां वर्तमानोऽपि चिकित्साफलतेजसा यदात्मनो भास्वरतां भासयति तत्र प्राचीनायुर्वेदीयशिक्षापद्धतिरेव प्रधानं कारणमिति न कोऽपि संदेहः। वर्तमानशिक्षापद्धत्यां विशेषवस्तुसंभारसमन्वयेन आयुर्वेदज्ञानसंपादने

सुलभता ज्ञानाभिवृद्धिर्वा भवेत्, परं गुरुगृहमेव आयुर्वेदसर्वस्वज्ञानदायि बुद्ध्या शिक्षणं संपादयतां छात्राणां कृते गुरुपरंपराशिक्षणज्ञानपद्धतिरपरिपूर्णेत्युच्चारयितुमहं न प्रभवामि।

४ देशीयवैद्यकशिक्षणपद्धतेरुदात्तध्येयमनुसृत्य यथोचितशिक्षणज्ञानार्थं संसूचिताः सूचनाः संमताः। शनैः शनैः एवमपि स्यात्।

(आ) सांप्रतमेतद्ध्येयमुदात्तं वर्तमानदशायां किं किं करणीयं के के चोपायाः समुपयोजनीया इत्यस्य निर्णयः संमेलने एव भविष्यति।

५ कलिकाताविश्वविद्यालयनियुक्तसमितिमताद्भिन्नं मे मतम्।

६ आयुर्वेदीयशिक्षणप्रणाल्यां पदार्थविज्ञानशास्त्र (Physics) रसतंत्र (Chemistry) जीवशास्त्र (Biology) इत्येतेषां विषयाणां नव्यवैद्यशास्त्रपद्धत्या च शवच्छेदादिसहितशारीरविकृतशारीरजंतुशास्त्रशल्यतंत्रेत्यादिविषयाणां समावेशः कर्तव्यः। तत्र न कापि हानिः। परंतु तेषां ज्ञानमावश्यकमित्याग्रहो न युक्तः। आयुर्वेदविद्यापीठशिक्षणप्रणाल्यनुसारेण शिक्षणं संसूचितया दिशा संमेलनमतानुसारेण परीक्षा उपाधयश्च निर्मिता भवेयुः। समवसितदेशीयशिक्षणक्रमस्य अधीतपंचकाव्यस्य विद्यालयेऽस्मिन्प्रवेशाधिकारो भवेत्। अध्ययनकालश्च यथाग्रंथं त्रिवर्षादारभ्य षड्वर्षपर्यन्तं स्यात्। अध्ययनभाषा च गीर्वाणभाषोपबृंहिता देशीयभाषा स्यात्।

७ वर्तमानपाश्चात्यवैद्यनिपुणानां नामसंग्रथन (Medical Registration) शासनमिवायुर्वेदार्थमन्यच्छासनमनावश्यकम्। तथापि संमेलनद्वारेण सद्वैद्यानामेकत्रसंग्रथनमत्यन्तमिष्टम्। संमेलनसभासद् (च) नियमानुसारेण ये वैद्यसभासदो भवितुमर्हन्ति तेषामेवात्र संग्रथनं भवेत्।

८ पाश्चात्त्यदेशीयवैद्यकपद्धतीरनुसृत्य प्रवर्तितौषधालयातुरालयव्ययस्य तौलनिकपद्धत्या कृतेन पर्यालोचनेन सुस्पष्टं सिद्ध्यति यत् रोगिणमेकमुद्दिश्य देशीयौषधालये चतस्रः कला (4 P.) आरभ्य नवकला (9 P.) पर्यन्तं व्ययो दृश्यते। पाश्चात्यचिकित्साव्ययस्तु अष्टकला (8 Pies) आरभ्य द्विकलाधिकाणकत्रयं (as. 3 P. 2) विद्यते। पुण्यपत्तनीयम्युनिसिपालिटीसंस्थासंप्रवर्तितौषधालयानुद्दिश्याहमेतत् साधिकारं ब्रवीमि।

९ आयुर्वेदस्य हानिः कथं संजाता तदभ्युदयार्थं च के के उपायाः समवलंबनीया इत्येतद्विषये न कोऽपि विवादः। पूर्वतनैः सभापतिभिरस्य विवेचनं कृतचरमेव।

१० भारतनृपश्रेष्ठैः सामन्तचक्रैश्च आयुर्वेदोद्धारकार्यं स्वीकृतं चेत्तर्ह्येतद् भवतु।

११ राजशासनसभासु आयुर्वेदीयवैद्यानां सभासदत्वेन स्वीकारो भवेत्।

१२ लोकानां प्राणत्राणार्थं प्रतितालुकग्रामं देशीयवैद्यपद्धतिमनुसृत्य औषधालयं प्रचलतु।

३ म्युनिसिपालिटी डिस्ट्रिक्टबोर्ड इत्यभिधानां स्थानिकसंस्थानां आयुर्वेदीयौप-

धालयविद्यालयादिकार्यार्थं जनताधनव्ययस्य यथारुचि स्वातंत्र्यं भवतु ।

४ आयुर्वेदीयातुरालयौषधालयविद्यालयवनस्पत्युद्यानभेषजसंग्रहालयसंदिग्धौषध-निर्णयरसशालाग्रन्थसंग्रहालयेत्यादिनानाविधसंभारोपकल्पनमायुर्वेदार्थं भवतु ।

५ पाश्चात्यवैद्यनामसंग्रथनशासनजनितविघ्नानां दूरीकरणं भवतु ।

६ विषोपविषादिदेशीयवस्तुसंपादने विद्यमानशासनजनितविघ्ना दूरतोऽपसार्यन्ताम् ।

७ अमुद्रितायुर्वेदीयाप्रसिद्धग्रंथानां संशोधनं मुद्रणं च भवेत् ।

८ अस्वास्थ्यमुद्दिश्य भिषग्वरैः प्रदत्तो लेखो राजकार्यालयेषु सम्मानितो भवेत् ।

९ क्रमिकशिक्षणपुस्तकेष्वायुर्वेदीयपाठानां समावेशो भवेत् ।

(आ) १० आधीतायुर्वेदानां भिषग्वराणां पाश्चात्यवैद्यशास्त्रनदीष्णानां च भेदबुध्या यथा राजकार्यालयेषु राजानुमोदितसंस्थासु विषमव्यवहारा न भवेयुस्तथा सर्वथा प्रयतितव्यम् ।

(इ) ११ लोकमतानुसारं कार्यार्थं म्युनिसिपलसंस्थायां लोकनियोजनसमये पाश्चात्यवैद्यकशास्त्रनदीष्णानामिव वैद्यानामपि मताधिकारो भवेत् ।

(ई) विश्वविद्यालयसंस्थाश्चायुर्वेदं संमानयित्वा प्रदत्तपरीक्षां विद्यार्थिनां उपाधिवितरणं कुर्युः ।

आयुर्वेदीयग्रंथान् संशोधनपूर्वकं संमुद्रय अप्रसद्धिग्रन्थप्रकाशकायोपायनदानेना-न्येन वाऽभ्युपायेनानुग्रहं कुर्युश्च ।

(उ) आयुर्वेदाभिवृद्धिमभिवांछद्भिः पुरुषैरितरसंस्थाभिश्च यद्यत्शक्यं तत सर्वं सर्वात्मना संसाधनीयम् ।

प्रश्नोत्तराण्यतीव संक्षेपतया प्रदत्तानीत्यहं जाने । अस्यां प्रश्नावल्यां द्वितीयप्रश्न एव विवादास्पदम् । तस्य विवरणं व्याख्यानं च स्वतंत्रप्रबंधरूपेण कर्तुमुचितम् । तथापि कलिकातासंमेलनसभापतिभिः सप्तवर्षात् प्राक्कृतमभिभाषणं मद्रासदेशीयवैद्यविमर्शक-समितिद्वितीयप्रश्नमुद्दिश्य लिखितमिवावभासते । अतश्च मया तस्य निर्देशः कृतः । आयुर्वेदीयग्रन्थेषु प्रतिपादितानि पंचमहाभूतानि अपराणि च न्यायमीमांसादिग्रंथेषु प्रतिपादितान्यन्यानि तत्त्वानि संमतानि न वा विवादार्थमुपपादितप्रमाणेषु प्रत्यक्षानु-मानादिप्रमाणानि च संमतानि न वेत्यज्ञात्वा अस्य विवरणं निरर्थकम् । त्रिदोषसिद्धये च आगमप्रमाणं स्वीकार्यं नोचेत् तत्सिद्धिर्नभवतीति न केनापि प्रतिपाद्यते । आगम-प्रमाणमपहायापि तदितरप्रमाणैः तत्सिद्धिर्भवत्येवेत्यस्माभिः प्रतिपाद्यते । आयुर्वेद-ग्रंथीयरसवीर्यविपाकप्रभावाद्यौषधवर्णनपद्धतिरपि पाश्चात्यवैद्यशास्त्रविदुषामसंमताऽ-स्ति । तथापि पथ्यापथ्यविवेकदृष्ट्या लोकानां भिषग्वराणां चानुभवेन सा उपयुक्तमेति सिद्धम् । अर्वाचीनरसतंत्रानुसारेण हरीतक्यां (Tanic Acid) नामकः पदार्थ उपलभ्यते । तस्य धर्मश्च स्तंभकः । परं हरीतकी विरेचयतीति सर्वेषां सुप्रसिद्धोऽनु-भवः । अत्र किं संमाननीयं रसतंत्रं (Chemistry) आयुर्वेदानुभवो वा ।

कपर्दिकाशंखशुक्तिमौक्तिक भस्मनां गणना रसतंत्रानुसारेण एकस्मिन् वर्गे क्रियते। आयुर्वेदग्रंथेषु तु अत्यौषधं सूक्ष्मसूक्ष्मतयाऽनुभवा वर्णिताः। एवमनेकविधाः प्रश्नाः सन्ति। तेषामूहापोहः उद्घाटनं वा अल्पावसरे कर्तुं अशक्यम्। श्लेष्मकज्वरेण संक्रामकरोगेण पुण्यपत्तनं यदा समाक्रान्तमासीत्तदा पुण्यपत्तनीयैः भिषग्वरैः किमपि वेतनमगृहीत्वा आयुर्वेदीयातुरालयौ प्रचालितौ। तौ च लोकानां तथा विश्वासार्हौ आदरपात्रं च संजातौ यथा समीपवर्तिनं पाश्चात्यवैद्यकातुरालयमपहाय लोकाः आयुर्वेदीयातुरालयं वरतरं मत्वावलम्बयामासुश्चिकित्सार्थम्।

वंगीयायुर्वेदविमर्शकसमितिप्रश्नानां विचारः।

१ आयुर्वेदचिकित्साया लाभः हिंदूयवनयहुदिखिस्तिपारसीकादिसर्वजातीनां भवतीति कस्यापि चिकित्सालयस्य रुग्णसंख्यायाः सिध्यति। मम चिकित्सागृहेऽपि एवमेवानुभवो दृश्यते। आयुर्वेदपद्धतेः स्वीकारो नृपाधिकारिभिः कृतश्चेत् तालुकाग्रामवासिनामन्येषां च दूरतरग्रामेषु निवासं कुर्वतां औषधसाहाय्यं भविष्यति।

२ वर्तमानावस्थायां आयुर्वेदस्यांगोपांगानि विकलानि संजातानि तानि नवीनग्रथोपलब्धज्ञानेन पूरणीयानि। यद्यदायुर्वेदोपयोगि नवीनं ज्ञानं तत्तदात्मसात्करिष्यते। अधुनातनाः शास्त्रीयशोधाः अग्राह्या एव इति न केषामप्याग्रहः। परं यद्यद्ग्रहणीयं तत्तदात्मसात्कृत्वा गृहीतं चेत्तु आयुर्वेदपोषणं भविष्यति इत्येवमायुर्वेदाभिमानिनामाग्रहः शास्त्रमूलकः।

३ सांप्रतं कषायचूर्णगुटिकालेहतैलघृतादिसिद्धौषधानां भस्मनां चोपयोगः क्रियते। विशिष्टस्यौषधस्योपयोगः विशिष्टतया क्रियते इति कथयितुं नैव शक्यते। विशिष्टरोगे च कस्याश्चिकित्सायाः समाश्रयः क्रियते कानि चौषधानि सफलतयैवोपयुज्यन्ते इति कथयितुं सुशकम्। परमेतान्यौषधानीतरवैद्यचिकित्सितौषधेभ्योऽधिकतरं गुणावहानीत्यातुरालयस्थलेखव्यतिरेकेण कथयितुं नेष्टम्। पाश्चात्यवैद्यशास्त्रपण्डितप्रकाण्डानां प्रथितयशसां उपदेशानुसारं औषधानि गृहीत्वाऽपि अप्राप्तारोग्या आयुर्वेदीयचिकित्सासमाश्रयणादनन्तरं केचन रुग्णाः रोगमुक्ताः संजाताः इत्येतादृशोऽनुभवः प्रतिप्रान्तं सर्वेषां विद्यत एव।

४ चरकसुश्रुतसंहितयोः कालः पंचशताधिकद्विसहस्राद्वर्वाचीनो भवितुं नार्हति। तस्मिन् काले आयुर्वेदस्य स्थितिः स्पृहणीयाऽऽसीत्। सिकंदर इति ख्यातेन ग्रीसभूपतिना भरतवर्षं समाक्रान्तम्। परं यदा तस्य सैनिकाः सर्पदष्टास्तदा ग्रीसदेशीयाः भिषजः मूढा इवाभवन्। तेषां हि सर्पविषशमनमगदं अज्ञातमासीत्। तदा च तेषां विषोपशमनमायुर्वेदीयभिषग्वरा एवाकुर्वन्। सिकंदरस्य आहतसैनिकानां क्षतसंशोधनकर्मण्यप्यायुर्वेदीयभिषजामेव योजना कृताऽऽसीदिति श्रूयते। अत एव च युद्धावसाने भरतवर्षीयराजेन सह सिकंदरेण यः संधिः कृतः तस्मिन् आयुर्वेदनिष्णा-

तद्वैद्ययोर्दानमवश्यमिति निर्बन्धः कृतः। अपरेषामपि प्राचीनायुर्वेदीयविभवप्रदर्शकवस्तूनां प्रतिपादनं कर्तुं शक्यते। आयुर्वेदस्यावनतस्थितेः कारणान्यनेकानि। आयुर्वेदस्य प्राचीनवैभवस्य अधुनातनायाः हीनावस्थायाश्च विवरणं सविस्तरं मम सुहृद्वरैर्महामहोपाध्यायकविराजगणनाथसेनमहाभागैः कृतचरमेव। राजश्रयाभावे वैद्यानां च तटस्थवृत्त्या नवीनाविष्कारग्रहणस्य प्रयत्ना न कृताः। राजश्रयलाभेनायुर्वेदीयातुरालये कार्यस्य सन्धिलाभे चैतत्कार्योत्तेजनं भवेत्।

५ वर्तमानं शारीरस्थानं शारीरज्ञानार्थं इंद्रियविज्ञानार्थं वा अपर्याप्तम्। महामहोपाध्यायकविराजगणनाथसेनमहाभागैरियं त्रुटिः स्तोकेनांशेन प्रत्यक्षशारीरस्य प्रथमभागप्रकाशनेन दूरीकृता। इंद्रियविज्ञानशिक्षाया अपि ग्रंथलेखनमावश्यकम्। द्रव्यगुणशास्त्रस्याध्यापनार्थं निघण्टवो विद्यन्त एव। कायचिकित्साशल्यतंत्रं च चरकसुश्रुतसंहितयोरावश्यकभागान् गृहीत्वा अध्यापयितुं सुशकम्। स्वस्थवृत्तं प्रतिबंधकौषधानीतरसंकीर्णप्रकरणानि चायुर्वेदीयग्रन्थेषूपलभ्यन्ते। यदि काश्चन त्रुटयो भवेयुस्ता दूरीकर्तुं शक्यन्ते।

६ आयुर्वेदीयाः संहिताग्रंथाः अपरे च ग्रंथाः लोकानां सुलभा भवेयुरिति ग्रंथप्रकाशकेभ्य साहाय्यं कर्तव्यम्।

७ सांप्रतं तु यानि औषधानि मूलद्रव्याणि वाऽऽपणे उपलभ्यन्ते तान्येव गृह्यन्ते। किंतु परीक्षणपूर्वकं तानि गृहीत्वा तेभ्यश्चूर्णानि गुटिकाश्च क्रियन्ते।

(अ) सांप्रतमुपयुज्यमानानामौषधानां सिद्धौषधानां च परीक्षानिष्कर्षनिर्णयार्थमद्यावधि प्रयत्ना न कृताः।

(आ) तथैव मूलद्रव्याण्यौषधयश्च उत्तमान्येव संभवेयुः, तेषां संग्रहोपि उत्तमतयैव भवेत्, अथ च तान्यापणे विक्रीणीरन्नित्येतद्विषये न केनापि प्रयत्नाः कृताः। रसशालायां प्रयोगं कृत्वा प्रयोगनिर्णयः सर्वेषां ज्ञानार्थं प्रकाशनीयः।

८ मद्रदेशीयवैद्यकग्रंथोत्तमष्टमम्।

९ आयुर्वेदाध्यापनार्थं सांप्रतं पाठशालाः विद्यालयाश्च स्थाने स्थाने स्थापिताः स्थाप्यन्ते च। परं आयुर्वेदशिक्षणस्य उत्तमो मार्गो अद्यापि गुरुगृहमेव इति सानंदं कथयामि। आयुर्वेदीयशिक्षणपाठ्यप्रणालिमनुसृत्य आयुर्वेदोऽध्याप्यते। परं छात्रशीलनिरीक्षणादिदृष्ट्या गुरुरेव शरणम्

१० राजसम्मतायुर्वेदमहाविद्यालयप्रवर्तनं कृतं चेत् तर्हि तत्र—

(अ) पर्याप्ता विद्यार्थिन आयुर्वेदाध्ययनार्थमागच्छेयुः।

(आ) भिन्नभिन्नायुर्वेदीयानां अङ्गोपाङ्गानां पर्याप्ता अध्यापका अपि लभ्येरन्।

(इ) विद्यार्थिनामध्यापनार्थं आवश्यकं सर्वमातुरालये सुलभं भविष्यति। एतादृशान्महाविद्यालयात्परीक्षानंतरं वहिरागतानां वैद्यानां स्थितिरवश्यं स्पृहणीयतरा भवेत्। एवंविधसंस्थायाः कृते दशलक्षरूपकेभ्य आरभ्य त्रिंशल्लक्षपरिमितरूपकाणां व्ययः आवश्यको भवेत्।

११ महाविद्यालयप्रवेश परीक्षा (Matriculation) पर्यन्तमध्ययनकृताय गीर्वाणभाषायां विशेषनिपुणाय च महाविद्यालयप्रवेशाधिकारो भवेत्, शिक्षणक्रमश्च चतुर्वर्षादारभ्य षड्वर्षात्मको भवेत्। शिक्षणं च गीर्वाणभाषाद्वारेण दातव्यम्।

१२ संसूचितानां विषयाणां ज्ञानं विद्यार्थिनां लभाय भवेत्। एतेषां विषयाणां शिक्षणप्रबंधः स्वतंत्रो भवेच्चेत्तर्हि तदतीवोत्तमं नो चेत् आयुर्वेदोपयुक्तस्य भागस्य शिक्षणं यथावसरं दातव्यम्।

१३ शिक्षक्रमस्तु उपाधिदृष्टया निश्चेतव्यः।

१४ पाश्चात्त्यवैद्यनामसंग्रथनशासनेनायुर्वेदीयवैद्यानां महती हानिः संजायते। अस्वास्थ्यविषयको वैद्यानां लेखो राजकार्यालयेषु तिरस्क्रियते। तेनचायुर्वेदेषु बद्धादराऽपि जना अनिच्छया पाश्चात्त्यवैद्यविद्यानिपुणमेव गच्छन्ति चिकित्सार्थम्। शासनमिदं तु पाश्चात्यवैद्यकनिपुणार्थं कृतमप्यधुना तदायुर्वेदीयभिषग्वराणां तापजनकं संजातम्।

१५ मद्रदेशीयवैद्यविमर्शकसमितिप्रश्नावल्यां सप्तमप्रश्नस्योत्तरम्।

१६ दशमप्रश्नोस्योत्तरम्।

१७ कालेन कथयितुं शक्यते।

एवं देशीयवैद्यकविमर्शकसमितिप्रश्नोत्तराणां दिग्दर्शनं कृतम्। ७. एतत्तु मनसि निधेयं यदीतरशास्त्राणामभ्यासमिव आयुर्वेदोऽपि गुरुमुखादेवाध्येतव्यः केवलाक्षरज्ञानेनास्य तत्त्वं विज्ञातुं न शक्यते। यैर्यैश्च पाश्चात्त्यपण्डितैरायुर्वेदीयग्रंथानामास्थापूर्वकमध्ययनं कृतं तेषां सर्वेषां आयुर्वेदानुकूलो ग्रहः संजातः। डॉ० वाईज प्रो० वुइलसन्, डॉ० क्लार्क इत्यादिपाश्चात्त्यवैद्यविद्यापंडितैः सर्जन् जनरल सर पार्डे ल्यूकिस महाभागैरप्यायुर्वेदस्य प्रशंसा कृता। अस्मात् एवं सिध्यति यः कोऽप्यायुर्वेदाध्ययनं निपुणतया कुर्यात्तस्यायुर्वेदतत्त्वानामाकलनं समीचीनं भवेत्। परमायुर्वेदीयग्रंथं हस्तेऽगृहीत्वा आयुर्वेदीयग्रंथप्रतिपादितसिद्धान्तानुद्दिश्य यथारुच्यभिप्रायं प्रकटयितुमुद्युक्तस्यायुर्वेदः सदैवाज्ञातो भवेत्। आयुर्वेदस्य शास्त्रीयता उपयुक्तता च नैतादृशैर्विवादैः संसाधनीया, प्रत्युत तत्प्रतिपादितसिद्धान्तानुसारमनुभवो दृष्टो न वेति विचिन्त्य निश्चेतव्या। अनुभवश्चायं सर्वथायुर्वेदानुकूल इत्यत्र न कोऽपि संदेहः।

भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम्।

अयि श्रेष्ठाः! चिकित्साकर्मणः वैद्यः, औषधं, परिचारकः, रोगी चेति चत्वारः पादाः, येषु पुनर्वैद्यः प्रधानतया गणितः। अतः प्रधानभूतस्य वैद्यस्य स्वगुणसंपदाधानार्थं प्रयत्ना आवश्यकाः। तेषु प्रथमः प्रयत्न आयुर्वेदीयग्रन्थसंग्रहालयरूपो भवेत्। आयुर्वेदग्रन्थानां संपादनं संशोधनं प्रकाशनं च कियत् महत्त्वपूर्णं कार्यं तद्यादवजीशर्मणां प्रयत्नैरेवानुमेयम्। तैरद्यावधि पंचदशाधिकाः रसग्रंथाः प्रकाशिताः। आयुर्वेद-

विषयकाणां सप्तशतसख्याकग्रंथानां नामानि 'ऑफरेक्टसूच्यां'मुपलभ्यन्ते। गतसंवत्सरे एव सरस्वतीनिधानकवीन्द्राचार्याणां सूचीपत्रं प्रकाशितम्। तस्मिन् द्विशतायुर्वेदीय-ग्रन्थानां नामानि विद्यन्ते। तस्माच्च हेमाद्रेः चरकसंहिताया अपि टीका लिखिताऽसीत् इति ज्ञायते। बहवश्च संहिताग्रंथाः अश्रुतपूर्वाः तत्र दृश्यन्ते। कवीन्द्राचार्यास्तावत् शाहजहानसमकालीना आसन् इति तेनैव दत्तेन सर्वविद्यानिधानेत्युपाधिना अनुमीयते। कवीन्द्राचार्यो गोदातटनिवासी महाराष्ट्रीयब्राह्मण आसीत्। अस्याः सूचेरनुसारेण प्रयत्नाः कृताश्चेत्तर्हि बहवआयुर्वेदीयग्रंथाः सर्वेषां सुलभा भवेयुः। अस्मिन् संवत्सरे कलिकाताविश्वविद्यालयसंस्थया भेडसंहितां प्रकाशयित्वा महदुपकृतं सम्मेलनम्। निर्णयसागराख्यमुद्रणालयाधिपतिभिः पांडुरंग जावजी इत्येतैः दाताराभिधवैद्यभूषणवामनशास्त्रिभिः परिशोधितां श्रीचक्रपाणिटीकासमन्वितां चरक संहितां तथैव भिषग्वराढमल्लविरचितटीकासमन्वितां शार्ङ्गधरसंहितां महता व्ययेन प्रकाशयित्वा आयुर्वेदस्य महत्साहाय्यं कृतम्। वडोदाग्रन्थसंग्रहालयाधिकारिभिः कवीन्द्राचार्यसूचीपत्रप्रकाशनेनापि अज्ञातपूर्ववैद्यकग्रंथानां परिचयं कारयित्वा उपकृतं सम्मेलनम्।

ग्रन्थकृतामभिनन्दनम्

अयि श्रेष्ठाः! अत्र प्रोच्यतेऽभिमानास्पदमवश्यवक्तव्यं किंचित् यतस्तद्विना मदीयं कार्यमेव त्रुटिपूरितं स्यादित्यहं मन्ये। तथाहि त्रयो ग्रन्थकाराः सुहृद्वराः सुगृहीत-नामधेया अवश्यं सर्वेषामस्माकमायुर्वेदशास्त्रवृद्धिमभिकाङ्क्षमाणानां स्तुतिभाजनम्। तत्र प्रथमं पण्डितश्रेष्ठमहामहोपाध्यायगणनाथसेनाभिधानमवतरति। एषां पण्डितमहाभागानां प्रत्यक्षशारीरस्य प्रथमो भाग उपोद्घातसहितः सद्वैद्यैरादृत एव। तद्दर्शनेन विद्वद्भिरेषां ग्रन्थचातुरी समनुभूतचरी। अयि श्रेष्ठाः! तं ग्रन्थं पाठयतां प्राचीनमहर्षिग्रन्थ-पाठनरसास्वादोऽनुभवपदवीमागच्छति। तस्यैव ग्रन्थस्य द्वितीयभागमपि सर्वे विद्वांसः सोत्कण्ठाः प्रतिक्षणं प्रतीक्षन्ते। तामुत्कण्ठामचिरादेव सुहृद्वराः पूरयेयुरित्याशासे। अन्यत्किञ्चिन्निवेदनीयम्। अचिरादेव पण्डितवरेण्यैः सिद्धान्तनिदानस्य प्रथमो भागः प्रणीय प्रकाशितः। यत्र च पूर्वोक्तचातुरीमनुभूयान्यदप्यपूर्वं ज्ञानं वैद्यवरा अधिगमिष्यन्ति। यतस्तत्राधुना सर्वत्र जनपदोद्ध्वंसिनः पूर्वतनग्रन्थेष्वनुपलब्धा ग्रन्थिकज्वरश्लेष्मकज्वरश्वसनकज्वरान्त्रिकज्वरादयो बहुधा सप्रपंचं प्रपञ्चिताः। अत्र ग्रन्थे विशेषतोऽभिनन्दनीयमेतद्यदत्र पाश्चात्यग्रन्थेषु यदधिकं तद् वैद्यशास्त्रपद्धतिमनुसृत्य ग्रन्थशरीरे निबद्धम्। येन च सद्वैद्या एतं ग्रन्थं जीवाणुवादप्रदर्शकमपि त्रिदोषतत्त्वाङ्गीकारिणं सरसतया मसात्करिष्यन्ति।

अथ च वैद्यप्रवरैर्नेत्ररोगचिकित्साप्रथितयशोभिर्बालकृष्ण शिवराम मुञ्जेमहाभागैर्नेत्ररोगनामा यो ग्रन्थः प्राणीयत, यश्च सांप्रतं चित्रशालामुद्रणालये मुद्र्यते तेन

मुञ्जेमहाभागा अवश्यं स्तुतिभाजनम् । यतस्तैरस्मिन् ग्रन्थे नेत्रशारीरमारभ्य तद्भेद-प्रदर्शनपूर्वकं तत्तद्रोगविषयकं चिकित्साविषयकं च सविस्तरं वर्णनं गीर्वाणभाषया कृतम् । एतावत्कालपर्यन्तं माधवनिदानगतकिञ्चिज्ज्ञानातिरिक्तं न किञ्चिद्वैद्यवरा जानन्ति स्म । एतद्ग्रन्थालोडनेनाधुना वैद्या नेत्ररोगज्ञानकुशला भवेयुरायुर्वेदाध्यायिनो नेत्ररोगज्ञान-विधुरा भवन्तीति कलङ्कमपाकुर्युरिति विदाङ्कुर्वन्तु श्रीमन्तः । एतस्मिन् ग्रन्थेऽपि पूर्वपद्ध-तिमनुरुध्यैवायुर्वेदगतरोगनामानि तान्येव । यत्र तादृशं नोपलभ्यते तत्रैव नवीनमन्यथ रोगनाम प्रदर्शितम् । अत्र एतावत्कालपर्यन्तमुपलभ्यमाननयनरोगनिदानचिकित्सादिक-माहृतम् । अतःपरमप्येवमेव नासिकागलादिरोगविषयकप्रबन्धान् प्रणीय वैद्यवराननु-गृह्णीयुरज्ञातज्ञापनेन मुञ्जेमहाभागा इति सविनयमाशासे । डॉ. मुञ्जेमहाभागा राज-कीयविषयव्यापृतान्तःकरणा इति सुप्रथितं तथापि पूर्वोक्तग्रन्थवत् अत्रापि ते यथाकालं प्रयतेरन् इति मे मतिः ।

ततः परम् । परमसुहृदः यादवजी त्रिकमजी आचार्याः सादरमभिनन्द्यन्ते । येषां च रसौषधपाठसंग्रहनामा पण्डित हरिप्रपन्नसाहाय्येन ग्रथितः प्रबन्धः केषां नादरास्पदं भविता येन सर्वेषां पाठानामेकत्र संग्रहात् भिन्नस्थानेषु दृश्यमाना औषधभेदा स्तद्गुणभेदाश्च सर्वेषां सुस्पष्टा भवेयुः । किंचानेन प्रबन्धेन विविधा या औषधशालाः सन्ति भविष्यन्ति च तेषामपि सौकर्यं स्यात् । किंच वैद्यसंमेलने नैतदवश्यं विचार्यम् । यदिमं प्रबन्धमनुसृत्य भिन्नभिन्नपाठास्तत्तद्रोगेषु यथोपयुज्यन्ते तथा लोकेषु प्रथनीयं तदर्थं वैद्यसंमेलनेन सद्वैद्यसमितिरेका नियोजनीया । अयं ग्रन्थो रसवद्भिषग्वराणां संग्राह्यः शोभाप्रदश्च भविष्यतीत्यत्र न मे संशयः ।

भरतवर्षीयविश्वविद्यालयसंस्थाभिरमुद्रितायुर्वेदीयग्रन्थानां प्रकाशनं कार्यम् । नवीन-ग्रंथलेखकेभ्यः उत्तेजनमपि देयम् । वर्तमानक्रमिकशिक्षणपुस्तकेषु आयुर्वेदीयपाठानां समावेशः अवश्यं भवेदिति भिषग्वरैः केचन आयुर्वेदीयपाठाः लिखित्वा क्रमिकशिक्षण-पुस्तकव्यवस्थापकेभ्यः प्रेषणीयाः । आयुर्वेदमहाविद्यालयः आतुरालयौषधालयादिनाना-विधसंभारसमन्वितो भवेदिति सर्वात्मना प्रयत्नाः कर्तव्याः । मद्रपुर, लाहोर, प्रयाग, काशी, कलिकाता, त्रिवेंद्रम, अहमदाबाद, पाटण, महिशूर इत्यादिस्थलेषु एतादृश-विद्यालयार्थं प्रयत्नः कृतश्चेत् सः सफलो भविष्यति ।

आतुरालयार्थं द्रव्यं व्ययीकुर्वतामभिनन्दनम् ।

अनेनैव प्रसंगेन अस्मिन् सम्मेलने एकमानंदावहं वृत्तान्तं कथयितुं महान् मे प्रमोदो भवति । येवलेनामके ग्रामे गंगाराम छबीलदास इत्येतेषां स्मरणार्थं सांप्रतं तत्र विद्यालय औषधालयश्च अतीव प्रशंसार्हं कार्यं करोति । परं आतुरालयाद्विना कर्माभ्या-सज्ञानं कष्टतमं भवति । अतः तैः महाभागैः त्रिचतुर्लक्षरूप्यकाः एतत्कार्यार्थं संकल्प्यो-पचिताः प्रतिवर्षं च द्वादशसहस्रपरिमितः व्ययः अस्माद्धनात् भविष्यति । एव-

मातुरालयौषधालयसमन्वितः आयुर्वेदविद्यालयोऽचिरादेव आयुर्वेदोद्धारकार्यं करिष्यतीति श्रुत्वा कस्य आनंदो न भवेत्। औषधशालास्वपि औषधनिर्माणरीतिरेकरूपा भवितुमर्हति। सिद्धौषधपरीक्षानिष्कर्षनिर्णयः प्रयोगेण निश्चेतव्यः। सिद्धौषधेषु केषां द्रव्याणां उपयोगः कार्य इत्यत्रापि विवादः। पाश्चात्त्यवैद्यपद्धत्या सिद्धानां औषधानामुपयोगो वैद्यैरौषधशालासु च करणीयो न वेत्यस्य प्रश्नस्य निर्णयो विवेकेनैव करणीयः।

तदेवौषधमुद्दिष्टं यदारोग्याय कल्पते।
स एव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्॥

इति वचनमवलम्ब्य केचन भिषग्वराः सर्वेषामुपलभ्यमानानां पदार्थानामुपयोगं कर्तुमिच्छन्ति। आयुर्वेदीयपद्धत्या सिद्धानामेवौषधानामुपयोग करणीयः इत्यपरे प्रतिपादयन्ति। एषां वैद्यानामपि अयमेव आग्रहो यद्वैद्याः परावलंबिनो न भवेयुः। नो चेत् महायुद्धसमये किनाईन् इत्याद्यौषधानामप्राप्तौ पाश्चात्त्यवैद्यविद्यापंडितानां या अनुकंपनीया स्थितिः संजाता तामेव दशां भिषजः प्राप्नुयुः। अतो यावच्छक्यमापणे उपलभ्यमानं मूलद्रव्यं गृहीत्वा आयुर्वेदीयपद्धत्या यथोचितं संस्कारान् कृत्वा तस्योपयोगः स्वतंत्रतया सिद्धौषधेषु वा कार्यः। किनाईन् इत्यादिशीतज्वरहराणामौषधानामुपयोगो वैद्यैश्चिकित्सायां कार्यो न वेति महान् विवादार्हः प्रश्नः। एषां द्रव्याणां गुणवर्णनं नोपलभ्यते तेषां गुणवर्णनार्थमप्यस्माभिः प्रयत्नः करणीयः। रसौषधानां सिद्ध्यर्थं ये ये संस्काराः क्रियन्ते तेषां प्रतिसंस्कारं को विपरिणामो जायते? इत्यवलोकनीयम्। एवमपरेषामपि न्यूनानां परिहाराय विमर्शनपूर्वकाः समुद्यमाः समाश्रीयन्ताम् इति। ये ये चोपायाः पूर्वसम्मेलनेषु संसूचिताः तेषां सर्वेषामवलंबनं कृत्वा आयुर्वेदोद्धारः करणीयः।

अयि श्रेष्ठाः! यन्मया वक्तव्यं तन्निःसारत्वात् कर्णारुन्तुदमपि यथा श्रीमद्भिः सहजसौजन्याच्छ्रुतिपथमानीतं तथा विविधेऽस्मिन् संमेलनकर्मणि साहाय्यं कृत्वा श्रीमन्तोऽनुगृह्णीयुर्मामिति संप्रार्थ्य जोषं भावं समाश्रयामि।

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम्।
अभ्यस्तकर्मणाम् भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम्॥

इति शम्।



१४

वैद्यरत्न, कविराज, योगेन्द्रनाथ सेन

एम० ए०, विद्याभूषण (कलकत्ता)

सभापति निखिल भारतवर्षीय

चतुर्दश वैद्य सम्मेलन

कोलम्बो (सिलोन)

सन् १९२३ ई०

खेद है कि आपका चित्र, चरित्र और कोलम्बोवाला भाषण प्राप्त न हो सका।

[चतुर्थाधिवेशनके सभापति पदसे दिया हुआ स्वर्गीय कविराजजी का भाषण यथास्थान छापनेका समय जब आया तब तक आपका वह भाषण सतत प्रयास करते रहने पर भी प्राप्त न हो सका था। अब वह भाषण सौभाग्यवश प्राप्त हो गया है। अतएव यहाँ पर इस अधिवेशनके भाषणके अभावमें प्रकाशित किया जा रहा है।]

निखिलभारतीयवैद्यसम्मेलनस्य चतुर्थाधिवेशनसभापते र्वैद्यरत्न, विद्याभूषण-

स्वर्गीय कविराज योगेन्द्रनाथ सेन एम० ए० महाशयस्य

अभिभाषणम् ।

[एतच्च कानपुरनगरे १९६९ तमेऽब्दे चतुर्थवैद्यसम्मेलने पठितम्, सुमहता प्रयासेन च विलम्बतः प्राप्तमिति यथास्थानं न मुद्रितम्, चतुर्दशाधिवेशनावसरे पठितं च स्वर्गीय सेनमहाभागानां भाषणं नैवोपलब्धमिति तेषामिदमेव भाषणमत्र समुद्ध्रियते ।]

ओं शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ओम् ॥
यः प्राणदं गदशमार्थमथर्ववेदोपाङ्गं स्वयं निगममायुष आततान ।
भाविप्रजाकुशलकामनया पुरैव तं वेधसं परमकारुणिकं नमामि ॥

भो भो विद्याविनयसम्पन्नाः मान्याः अन्वयवयःशीलशौचाचारवन्तो धीमन्तः श्रीमन्तः आर्यमिश्राः—

उपक्रमणिका ।

१—अहमात्मानं बहु मन्ये यदद्य अनवद्यचरितेषु सद्वैद्यविद्यापारावारपारीणेषु धिया धिषणमपि उपहसत्सु ज्ञानेन वयसा च मत्तोऽधिकतरेषु विविधगदोपशमनजनितयशोराशिनिरन्तरधवलितदिगन्तरालेषु अगण्येषु मान्येषु अगदङ्कारेषु उपसन्नेष्वपि अहमस्यां परिषदि भवद्भिरनुकम्पमानहृदयैः परिषत्पतिपदे नियोगेनानुकम्पितः । भवताम् अर्हताम् अनतिक्रमणीयताम् अनुचिन्त्यैव एतद्भवदीयशासनम् अवनतेन शिरसा सबहुमानम् अत्यर्थमभ्यर्थयमानोऽपि आत्मनि अप्रत्ययतया विशङ्के, यादृशे गुरुकर्मणि भवद्भिरहं नियोजितः तत् सर्वथा साधयितुम् अलमस्मि न वेति । भवन्तः साधवः । मया पुनः श्रुतं यत्—

"गृह्णाति साधुरपरस्य गुणं न दोषम्"—इति ।
वत्सवतां करुणावतां सतां गुणगृह्णतामनुस्मरन्नेव प्रसरामि ॥

सम्राजोऽभिषेकमहामहोत्सवः ।

२—जयति जयति महीभुजामग्रवर्ती महाभुजः अस्माकं राजचक्रवर्ती । यस्य शासनं संभ्रमम् अवनतेन मूर्ध्ना समस्तसामन्तनृपमण्डलैः कुसुमस्रगिव समुह्यते । यस्य राज्याधिकारेषु भानुमान् भियेव नास्तं याति । दिष्ट्या तेन महिषीसनाथेन कुलभूधरकन्दराभिराम्रेड्यमानैः युगपदशनिशतपातजातधीरध्वनीन् अपि तिरस्कुर्वद्भिः मुहुर्मुहुरगणितशतघ्नीगर्जितैः उच्चैरुद्घोष्यमाणे राजराजसभाजनागतनिखिलनरपतिवृन्द-

संवाये अभिषेकमहामहोत्सवे मृदुलचरणतलस्पर्शेन एतत् भारतभूमितलं नितरां स्नावितम्।

गोष्ठीप्रवृत्तिः।

३—माननीयाः सभासदः—आयुर्वेदविदां भिषजां गोष्ठीप्रवृत्तिमधिकृत्य आदौ किञ्चिदभिधास्ये। ईदृशी गोष्ठी प्राक् मनीषिणः श्रीमच्छङ्करशास्त्रिणः प्रयत्नेन नासिकनगरे अथ पनवेलनगरे चासीत्। ततः परं वाराणस्यामवधारितप्रवृत्तिरपि, हा हन्त, विद्यानुरागिणि श्रीशङ्करशास्त्रिणि परलोकमुपगते, तच्छुचा प्रतिषिध्यमानाऽसौ पुनरतीते वर्षे भागीरथीकलिन्दनगनन्दिन्योरन्योन्यसङ्गमपवित्रीकृते प्रयागे अभवत्। ततः परं पुनरियं प्रवृत्तिः। आयुर्वेदवेदिनामेवं गोष्ठीप्रवृत्तिः कालवशान्मन्दीभूतस्यापि आयुर्वेदस्य पुनरुच्छ्वासं सूचयति, तदुक्तचिकित्साविधौ च जनानुरागमाकर्षति। भिषजामस्माकमपि तद्विषयसम्भाषणविधौ उपकरोति।

स्वर्गतानां कृते शोकः।

४—अथ महीमहितकीर्तयः सुधियः सुगृहीतनामानो ये च महात्मानः मन्दायमानस्य आयुरान्नायस्य तदुक्तचिकित्सितविधेश्च पुनः प्रकर्षाय अगणिततनूपातमध्यवस्य अतीते वर्षे सुरपतिपुरसुन्दरीपरिभोग्याः जाताः, अग्रतस्तेषां पवित्रचरितानां नामग्रहणम् इह स्वस्त्ययनमिव श्रेयसे मन्ये।

तेषु महोदारहृदयः श्रीमत्कृष्णस्वामी ऐयरमहोदयः, स्वयमवैद्यवृत्तिरपि, वैद्यविद्यायां तदुपदिष्टचिकित्सायां च जातपक्षपातः, तदुत्कर्षसाधने अनारतं प्रयतमानमानसः आसीत्।

महामहोपाध्यायपदलाञ्छनानां मत्तातपादानाम् अन्तेसदः इदानीं जयपुरपतिपुरप्रतिष्ठापितविद्यालयायुर्वेदाध्यापकस्य आयुर्वेदपारावारपारदृश्वनः वैद्यरत्नश्रीमल्लक्ष्मीरामाचार्यस्य सकाशात् विधिवदुपात्तविद्यः ज्ञानगरिष्ठः वयसा पुनरप्रवृद्धः मनस्वी किशोरीवल्लभशास्त्री आयुर्वेदमार्तण्डाख्यं पत्रं प्रकाशयन् आयुर्वेदस्य पुनरभ्युदयाय सर्वथा प्रवृत्त आसीत्।

पर्यवदातश्रुतः परिदृष्टकर्मा भिषक्कुलशिरोरत्नभूतः आयुर्वेदार्थविज्ञाने तदुपदिष्टचिकित्सितेषु च असकृत्प्रकटितपाटवतया प्रीतेन नाटोराधिपतिना स्वनगरे राजवैद्यपदे सबहुमानं प्रतिष्ठापितः कविरत्नोपनामा श्रीमदीश्वरचन्द्रसेनोऽपि आयुर्वेदोक्तचिकित्साविधेरुत्कर्षसाधने बहुलप्रसारणे च सर्वथा प्रयतते स्म।

अनारतव्याधिपीडितदरिद्रजनभेषजदानजनितयशोराशिमहनीयः आरानगरवासी मनस्वी बालगोविन्दत्रिवेदी, तथा लक्ष्नौनगरे लब्धप्रतिष्ठः प्लेगुचिकित्सानिबन्धरचयिता श्रीमान् गदाधरः, तथा प्रयागवास्तव्यो भिषग्वरः श्रीमान् बालानन्दमिश्रः—एतेऽपि अस्मिन्नवसरे ससंभ्रमं कीर्तनीयाः।

आयुर्वेदस्य पुनरुद्धर्ता आचार्यगङ्गाधरः ।

५—मान्याः सभासदः—पुण्यश्लोकः अन्यः कोऽप्येकः यस्य नामनि उच्चार्यमाणे न केवलं सर्वैर्भिषगाचार्यैः, अन्यैरपि, ससंभ्रमम् आवर्ज्यते मौलिः । यस्य जन्मना निखिलवैद्यकुलं कर्मणा च सकलभारतभूमितलम् अतितरां श्लाघितम् । यश्चात्मनो ज्ञानेन आयुर्वेदस्य मन्दीभावदुर्दिनान्धकारे व्याहतबोधदृशां बुभुत्सूनां कृतदीपदर्शन इव आसीत् । दिष्ट्या सोऽसौ भिषक्कुलविजयमुकुटमणिः श्रीमदाचार्य गङ्गाधरः, साक्षाद् गङ्गाधर इव वङ्गभूमाववतीर्णः । येयमस्माकम् आयुर्वर्धनतन्त्राणां ललामभूता चरकसंहिता पठनपाठनयोर्मन्दीभावात् चिरं विलोपमुपगतेवासीत्, सा खल्वनेन सर्वतन्त्रस्वतन्त्रधिया महापुरुषेण अध्ययनार्थिनां कल्पतरुं जल्पकल्पतरुटीकां प्रणीय पठनं पाठनं च प्रवर्त्य पुनरुज्जीवितेव । सांप्रतम् आयुर्वेदविद्यार्थिनः तामेव जल्पकल्पतरुटीकाम् आलम्ब्य निसर्गदुर्बोधपिच्छिलविषमायाम् अपि चरकसंहितायां लब्धप्रसरा भवन्ति । अस्थि-संख्याने भिषजां चरकसुश्रुतादीनां तदितरेषां याज्ञवल्क्यादीनां च परस्परविप्रतिपत्ति-वित् अस्थिविद्याविपश्चित् डाक्टरहरणलिमहोदयः (Dr. A. F. R. Hoernle) चरकसंहितायाः शारीरस्थानस्य जल्पकल्पतरुटीकायाः अस्थिसंख्यानं दृष्ट्वा—

"We have seen that the traditional Non-medical Version entirely neglects to count the two arms and four wrist-bones. From the fact of Gangadhar counting the four wrist-bones, it is evident that he noticed the defect of the traditional recension." (Studies in the Medicine of Ancient India, Part. 1, P. 50).

"अस्माभिर्दृष्टं यत् गतानुगतिका अभिषजः उभयोर्बाह्वोः चतुर्णां मणिबन्धास्थ्नां च परिसंख्याने सर्वथैव प्रमत्ताः । तेषां गतानुगतिकानां प्रतिसंस्कारे तदूनत्वं गङ्गाधरो यदुपलब्धवान् तद् गङ्गाधरस्य चतुर्णां मणिबन्धास्थ्नां परिसंख्यानमेव स्फुटयति"—इत्येनं प्रशशंस ।

अथ यद्यपि जल्पकल्पतरुटीकाधृतचरकसंहितायाः पाठेषु क्वचन क्वचन असङ्गतयः उपलभ्यन्ते, तथापि तत्र आदर्शपुस्तकानामप्राचुर्यमेव कारणं मन्ये । तदानीं गमनागमन-सौकर्याभावात् लोकप्रेषणैर्नानादिग्भ्यः नानादेशेभ्यश्च लिखितानां प्राचीनपुस्तकानां समाहरणम् असाध्यसम्भवमेवासीत् ।

प्रतिदिशम् उच्चैरुद्गीयमानैः काशकुसुमसमानैर्विविधविद्याविज्ञानजनितैर्यशोभि-र्महनीयः श्रीमदाचार्यगङ्गाधरः, न केवलं चरकसंहितायाः टीकां, मनुस्मृतेः तथा भगवद्गी-ताया अपि टीकां वैशेषिकदर्शनस्य च भाष्यं व्यरचयत् । व्याकरणादीन्यधिकृत्यापि विविधान् निबन्धान् आततान । स च षड्दर्शनटीकाकृत्, उपनिषदां व्याख्याकृच्चाप्या-सीत् । बहवोऽध्ययनार्थिनः नानादिग्देशादागत्य तस्माद् विविधा विद्याः अधिजग्मुः ।

महामहोपाध्यायपदभाजो मत्तातपादाः, तथा कविरत्नोपनामा श्रीमदीश्वरचन्द्रसेनोऽपि, तस्यान्तेसदः । चिरादस्तंगतस्यापि तस्य महापुरुषस्य नामसंकीर्तनमपि सर्वदैव अस्माकं श्रेयसे ।

आयुर्वेदस्य अनादित्वम् ।

६—माननीयाः समासदः—इयं खल्वायुर्वेदविदां कोविदभूयिष्ठा परिषत् । तदत्र आयुर्वेदविषयकमपि किञ्चित् वाच्यं मन्ये । आयुर्वेदस्तावदपौरुषेयः अनादित्वान्नित्यः । न हि नाभूत् कदाचित् आयुषः सन्तानः । शाश्वतश्चायुषो वेदिता । स चायुर्वेदः शाश्वतः निःश्वसितमिव हिरण्यगर्भेण अप्रयत्नेन लीलान्यायेन अभिव्यञ्जितः । श्रूयते हि निःश्वसितवद्वेदस्य अभिव्यक्तिः । तथा च

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतत् यदृग्वेदः । इत्यादि ।

न च तस्य कर्ता कश्चित् अस्ति । स्मर्ता च हिरण्यगर्भः स्मर्यते । तथा च

न कश्चिद्वेदकर्ताऽस्ति वेदस्मर्ता चतुर्मुखः ॥ इति ।

हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम् ।
त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधे यं पितामहः ॥

इत्याह महर्षिश्चरकः । सुश्रुतसंहितायाम्—

"अनुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रम् अध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः" ।

इत्यत्र यत् 'कृतवान्' इत्युक्तं तदवबोधमुपदेशं च द्वयमधिकृत्यैव । अर्थेदशमहामूलीयेऽप्येवमेव उक्तं महर्षिणा चरकेण ।

न हि आयुर्वेदस्य अभूतोत्पत्तिरुपलभ्यते । अन्यत्र अवबोधोपदेशाभ्याम् ॥ एतच्च द्वयम् अधिकृत्य उत्पत्तिमुपदिशन्त्येके । इति

आयुर्वेदस्य उपवेदत्वम् ।

७—केचित्—

युवं च्यवनमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ॥

(ऋग्वेद, १।११७।१३)

हे अश्विनौ युवां वृद्धं च्यवनमुनिं चिकित्सया पुनर्युवानं कृतवन्तौ ।

सद्यो जंघामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥

(ऋग्वेद, १।११६।१५)

हे अश्विनौ युवां छिन्नजंघायै विश्पलायै गमनार्थं लौहमयीं जंघां कृतवन्तौ ।

युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः ॥ (ऋग्वेद, १०।३९।८) ।

युवां जराग्रस्तस्य कलेः पुनर्यौवनमकुरुतम् ।

त्रिधाह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू ।

(ऋग्वेद, १।११७।२४) ।

हे शोभनदानावश्विनौ युवां त्रिधा विच्छिन्नं श्यावाख्यम् ऋषिं पुनर्जीवयामासथुः ।

अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्ताम् अपिन्वतं शयवे अश्विना गाम्।

(ऋग्वेद, १।११७।२०)।

युवां शयवे ऋषये कृशावयवाम् अतः निवृत्तप्रसवां धेनुं पयसा अपूरयतम्।

इत्याद्याः ऋचः आकलयन्तः आयुर्वेदं ऋग्वेदस्य उपवेदं मन्यन्ते। चरणव्यूहे महर्षिणा श्रीकृष्णद्वैपायनेनापि "ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदः" इत्युक्तम्।

अस्माकमाद्यगुरवः महीमहनीयानुशासनाः प्रज्ञैकलोचनाश्चरकसुश्रुतादयः पुनः आयुर्वेदमथर्ववेदस्य उपाङ्गमाहुः तथा, च सुश्रुते—

इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य। इति।

चरके च—

चतुर्णां ऋक्सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदेऽस्योक्तिः। वेदो हि अथर्वा दानस्वस्त्ययनबलिमङ्गलहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासमन्त्रादिपरिग्रहाच्चिकित्सां प्राह। इति।

(चरक, श्लोकस्थान, ३० अध्याय)।

वृद्धवाग्भटेऽपि—

तान् दृष्ट्वैव सहस्राक्षो निजगाद यथागमम्।
आयुषः पालकं वेदमुपवेदमथर्वणः॥ इति।

(अष्टाङ्गसंग्रह, सूत्रस्थान, १ अध्याय)।

भावप्रकाशेऽपि—

विधाताऽथर्वसर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन्।
स्वनाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयीमृजुम्॥ इति।

आयुर्वेदस्य लक्षणं निरुक्तिश्च।

८—स च आयुर्वेदः सुखं दुःखं हितम् अहितं चेति चतुर्विधम् आयुः, तस्य स्वलक्षणं, प्रमाणाप्रमाणे च वेदयति। आयुष्याणि अनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माण्यपि वेदयति। अतः स स्वस्थातुरपरायणं रोगशमनार्थिभिरातुरैः स्वास्थ्यरक्षणार्थिभिः स्वस्थैश्च उपसेवनीयः। अतः खल्वायुर्वेदस्य प्रयोजनं व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षणं स्वस्थानां स्वास्थ्यरक्षणं च। तदर्थं हि लोके आयुर्वेदस्य प्रवृत्तिः। स चायुर्वेदः ऐहिकामुष्मिकोभयविधहितोपदेशात् सर्वेषु वेदेषु उत्तमः। उक्तं च महर्षिणा चरकेण—

तस्यायुषः पुण्यतमो वेदो वेदविदां मतः।
वक्ष्यते यन्मनुष्याणां लोकयोरुभयोर्हितम्॥ इति।

सोऽयमायुर्वेदः प्रत्यक्षफलः। तत्प्रामाण्येनैव अन्ये च सामादयो वेदाः प्रमाणपदवीमारोहन्ति। महर्षिणा अक्षपादेन आन्वीक्षिक्याम् अन्येषां वेदानां प्रामाण्यम् आक्षिप्य पुण्यतमस्य अस्य आयुर्वेदस्य प्रामाण्यबलेनैव पुनरुपपादितम्। तथा च सूत्रं—

मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यम् आप्तप्रामाण्यात्॥ इति।

(न्यायदर्शन, २।१।६७)।

अस्य वात्स्यायनकृतं भाष्यं च—"किं पुनरायुर्वेदस्य प्रामाण्यम् ? यदायुर्वेदेनोपदिश्यते, इदं कृत्वा इष्टमधिगच्छति, इदं वर्जयित्वा अनिष्टं जहाति, तस्य अनुष्ठीयमानस्य तथाभावः सत्यार्थता अविपर्ययः.....................दृष्टार्थेन आप्तोपदेशेन आयुर्वेदेन अदृष्टार्थो वेदभागः अनुमातव्यः प्रमाणम्"—इति।

आयुर्वेदस्यावतरणम्।

९—अस्य पुण्यतमस्य आयुर्वेदस्य आविर्भावः उपदेशपारम्पर्यम् इह भूलोके अवतरणं च एवं श्रूयते—भगवान् परमकारुणिकः स्वयम्भूः प्रजासृष्टेः प्रागेव स्रक्ष्यमाणप्रजानां व्याधिविकलतामाशङ्क्य तदुपशमनोपायम् आयुराम्नायम् आदौ सस्मार। ब्रह्मणः प्रजापतिर्जग्राह। प्रजापतेरश्विनौ। अश्विभ्यामिन्द्रः। एवंयावदायुर्वेदस्य उपदेशपारम्पर्ये सर्वेषां सूत्रकृतामविसंवादः। इतः परं भूलोकावतरणे ते पुनर्विभिन्नमतयः उपलभ्यते।

चरकसंहितायाम् आयुर्वेदस्य भूलोके अवतरणम् इत्थम् उपवर्णितम् तथा च—पुरा भूलोके स्वाध्यायोपवासतपोब्रह्मचर्यादीनाम् अन्तरायभूतेषु धर्मार्थकाममोक्षाख्यानां चतुर्णां पुरुषप्रयोजनानां प्रधानसाधनस्य आयुषो व्याघातकरेषु व्याधिषु प्रादुःपत्सु यमनियमसम्पन्नाः लोकशरण्याः तपस्तेजसा हूयमाना हुताशना इव, ब्रह्मज्ञाननिधयः अङ्गिरोभरद्वाजात्रेयप्रभृतयो महर्षयः तेषां व्याधीनाम् उपशमनेन आत्मनो भूतानां च जीवितं दीर्घं चिकीर्षन्तः व्याधिशमनोपायम् अवधारयितुं गौरीगुरोर्हिमवतः शुभे पार्श्वे समेत्य समाहितेन चेतसा व्याधिशमनोपायम् आयुराम्नायं तत्प्रवक्तारं च भगवन्तं मघवन्तम् अवबुध्य आयुर्वेदाध्ययनार्थं सुमेधसं भरद्वाजं सुरलोके इन्द्रसकाशे प्रेषयामासुः। भरद्वाजः शक्रान् हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम् आयुर्वर्धनम् आयुर्निगममधिगत्य भूलोके प्रत्यावृत्य अन्येभ्योऽपि ददौ। अथ तेषु भूतानुकम्पिहृदयः पुनर्वसुरात्रेयः पुण्यतमस्य तस्य आयुर्वेदस्य भुवि भूम्ना प्रवृत्तये—अग्निवेशः भेड़ः जतूकर्णः पराशरः हारीतः क्षारपाणिश्चेति—षड्न्तेवासिनः पुनरन्वशात्। तेषु अग्निवेशस्य बुद्धेर्विशेष आसीत्। अतः स प्रथमं तन्त्रस्य कर्ता बभूव। ततो भेड़ादयोऽपि स्वस्वनाम्ना पृथक् पृथक् तन्त्राणि व्यरचयन्।

भावप्रकाशे तु इन्द्रादात्रेयस्य आयुर्वेदाध्ययनमुक्तम्। यदुक्तम्—

"आयुर्वेदं पठिष्यामि नैरुज्याय शरीरिणाम्।
इति निश्चित्य गतवानात्रेयस्त्रिदशालयम्॥
मुनीन्द्र इन्द्रतः साङ्गमायुर्वेदमधीत्य सः।
अभिनन्द्य तमाशीर्भिराजगाम पुनर्महीम्॥
ततोऽग्निवेशं भेड़ं च जूतकर्णं पराशरम्।
क्षारपाणिं च हारीतमायुर्वेदमपाठयत्॥" इति।

सुश्रुते च धन्वन्तरिरिन्द्रादयुर्वेदमधीत्य भूलोकमागत्य औपधेनवादीन् अपाठयत् इत्युपवर्णितम् । तथा चोक्तम्—

ब्रह्मा प्रोवाच । ततः प्रजापतिरधिजगे । तस्मादश्विनौ । अश्विभ्यामिन्द्रः । इन्द्रादहम् । मया त्विह प्रदेयमर्थिभ्यः प्रजाहितहेतोः । भवति चात्र—

अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम् ।
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम् ॥

(सुश्रुत, सूत्रस्थान, १ अध्याय ।)

तथा—

अथ खलु भगवन्तममरवरमृषिगणपरिवृतमाश्रमस्थं काशिराजं दिवोदासं धन्वन्तरिमौपधेनववैतरणौरभ्रपौष्कलावतकरवीर्यगोपुररक्षितसुश्रुतप्रभृतय ऊचुः । भगवन् ! शारीरमानसागन्तुस्वाभाविकैर्व्याधिभिर्विविधवेदनाभिघातोपद्रुतान् सनाथानप्यनाथवद्विचेष्टमानान् विक्रोशतश्च मानवानभिसमीक्ष्य मनसि नः पीड़ा भवति । तेषां सुखैषिणां रोगोपशमनार्थमात्मनः प्राणयात्रार्थं च प्रजाहितहेतोरायुर्वेदं श्रोतुमिच्छाम इहोपदिश्यमानम् । अत्रायत्तमैहिकामुष्मिकं च श्रेयः । तद्भगवन्तमुपपन्नाः स्मः शिष्यत्वेनेति । तानुवाच भगवान् । स्वागतं वः । सर्वं एवामीमांस्या अध्याप्याश्च भवन्तो वत्साः । इति च । (सुश्रुत, सूत्रस्थान, १ अध्याय) ।

आयुर्वेदस्य लक्षणम् ।

१०—आयुर्वेदस्य लक्षणं तत्पदव्युत्पादनं च चरके—

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ इति ।

(चरक, श्लोकस्थान, १ अध्याय) ।

तत्र आयुर्वेदयतीति आयुर्वेदः । कथमिति चेत् ? उच्यते—स्वलक्षणतः, सुखासुखतः, हिताहिततः, प्रमाणाप्रमाणतश्च । यतश्च आयुष्याण्यनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि वेदयति अतोऽपि आयुर्वेदः । इति च । (चरक, श्लोकस्थान, ३० अध्याय) ।

सुश्रुतस्तु—

आयुरस्मिन् विद्यते अनेन वा आयुर्विन्दतीति आयुर्वेदः । इत्याह ।

(सुश्रुत सूत्रस्थान, १ अध्याय) ।

भावप्रकाशे च—

आयुर्हिताहितं व्याधिर्निदानं शमनं तथा ।
विद्यते यत्र विद्वद्भिरायुर्वेदः स उच्यते ॥
अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च ।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः ॥

स्वयम्भूर्नराणामल्पायुष्ट्वमल्पमेधस्त्वं चावलोक्य तमिममायुर्वेदमष्टधा विभक्तवान् । यथा,

शल्यं शालाक्यं कायचिकित्सा भूतविद्या कौमारभृत्यमगदतन्त्रं रसायन तन्त्रं वाजीकरणतन्त्रमिति । इति । (सुश्रुत, सूत्रस्थान, १ अध्याय) ।

चरकसंहितायां च—

कायचिकित्सा शालाक्यं शल्यापहर्तृकं विषगरवैरोधिकप्रशमनं भूतविद्या कौमारभृत्यं रसायनं वाजीकरणम्। इति। (चरक, श्लोकस्थान, ३० अध्याय)।

चरकप्रादुर्भावः।

११—सभ्याः—यदिदमस्माकं तन्त्रं चरकसंहितेति प्रसिद्धं तच्चरकेण प्रतिसंस्कृतं, न तु कृतम्। तस्य कर्ता पुनः पुनर्वसोरात्रेयस्यान्तेवासी अग्निवेशः। एतच्च प्रत्यध्यायं स्फुटमुक्तम्। तथा च—

"अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते"—इति।

प्रतिसंस्कारो हि संक्षिप्तानां विस्तरः, अतिविस्तृतानां च संक्षेपः। तदुक्तं—

विस्तारयति लेशोक्तं संक्षिपत्यतिविस्तरम्।
संस्कर्ता कुरुते तन्त्रं पुराणं च पुनर्नवम्॥ इति।

(चरक, सिद्धिस्थान, १२ अध्याय)।

चरकेण प्रतिसंस्कृत्य नवीकरणात् तदेवाग्निवेशकृतं तन्त्रं प्रतिसंस्कारात् परं चरकसंहितेति प्रसिद्धिमागतम्। श्लोकनिदानविमानशारीरेन्द्रियचिकित्सितकल्पसिद्ध्याख्यानि अष्टौ स्थानानि चरकसंहितायाम्। भगवतः फणिपतेरवतारत्वेन सुविश्रुतो बहुश्रुतो महर्षिश्चरकः सर्वभूतोपचिकीर्षया अग्निवेशकृततन्त्रस्य प्रतिसंस्करणकर्मणि प्रवर्तमानोऽपि नैव प्रारिप्सितपरिसमाप्तिमकरोत्। स च श्लोकनिदानविमानशारीरेन्द्रियस्थानानि चिकित्सितस्थानस्य त्रयोदशाध्यायांश्च प्रतिसंस्कृत्य, हा हन्त, अन्तर्दधे। ततः पञ्चनदपुरे जातः दृढबलनामा कश्चिन्मनस्वी चिकित्सितस्थानस्य शेषान् सप्तदशाध्यायान् कल्पसिद्धिस्थाने च प्रतिसंस्कृत्य चरकप्रारिप्सितं समाप्तिमनयत्। उक्तं च चरकसंहितायाम्—

अतस्तन्त्रोत्तममिदं चरकेणातिबुद्धिना।
संस्कृतं तत्तु संसृष्टं विभागेनोपलभ्यते॥
तच्छङ्करं भूतपतिं संप्रसाद्य समापयत्।
अखण्डार्थं दृढबलो जातः पञ्चनदे पुरे॥
कृत्वा बहुभ्यस्तन्त्रेभ्यो विशेषाच्च वलोच्चयम्।
सप्तदशौषधाध्यायसिद्धिकल्पैरपूरयत्॥ इति।

(चरक सिद्धिस्थान, १२ अध्याय)।

तदेवमुभाभ्यां प्रतिसंस्कृतं तदग्निवेशकृतं तन्त्रं चरकसंहितेति प्रसिद्धम्।

चरकस्य फणिपतेरवतारत्वं भावमिश्रेण दर्शितं—

यदा मत्स्यावतारे तु हरिणा वेद उद्धृतः।
तदा शेषश्च तत्रैव वेदं साङ्गमवाप्तवान्॥
अथर्वान्तर्गतं सम्यगायुर्वेदं च लब्धवान्।
एकदा स महीवृत्तं द्रष्टुं चर इवागतः॥

तत्र लोकान् गदैर्ग्रस्तान् व्यथया परिपीड़ितान् ।
स्थलेषु बहुषु व्यग्रान् म्रियमाणांश्च दृष्टवान् ॥
तान् दृष्ट्वाऽतिदयायुक्तस्तेषां दुःखेन दुःखितः ।
अनन्तश्चिन्तयामास रोगोपशमकारणम् ॥
संचिन्त्य स स्वयं तत्र मुनेः पुत्रो बभूव ह ।
प्रसिद्धस्य विशुद्धस्य वेदवेदाङ्गवेदिनः ॥
यतश्चर इवायातो न ज्ञातः केनचिद्यतः ।
तस्माच्चरकनाम्नाऽसौ विख्यातः क्षितिमण्डले ॥
स चापि चरकाचार्यो वेदाचार्यो यथा दिवि ।
सहस्रवदनस्यांशो येन ध्वंसो रुजां कृतः ॥
आत्रेयस्य मुनेः शिष्या अग्निवेशादयोऽभवन् ।
मुनयो बहवस्तैश्च कृतं तन्त्रं स्वकं स्वकम् ॥
तेषां तन्त्राणि संस्कृत्य समाहृत्य विपश्चिता ।
चरकेणात्मनो नाम्ना ग्रन्थोऽयं चरकः कृतः ॥ इति ।

(भावप्रकाश, १ खण्ड) ।

मत्स्यावतारे हरौ प्रलयसलिलमग्नान् वेदान् उद्धरति फणिपतिरथर्ववेदोपाङ्गभूतमायुर्वेदम् अधिगतवान् । अथैकदा स चर इव प्रच्छन्नविग्रहो भुवि विचरन् तत्र लोकान् विविधव्याधिपरिपीड़ितान् आलोक्य जातकारुण्यः आयुर्वेदानुशासनेन व्याधितानुजिघृक्षुः वेदवेदाङ्गवेदिनः कस्यचिन्मुनेर्गृहे चरकनाम्ना जातः । ततः आत्रेयस्य अन्तेवासिनामग्निवेशादीनां तन्त्राणि संस्कृत्य तेभ्यः सारमाहृत्य चरकाख्यं ग्रन्थं व्यरचयत् ।

"संचिन्त्य स स्वयं तत्र मुनेः पुत्रो बभूव ह ।
प्रसिद्धस्य विशुद्धस्य वेदवेदाङ्गवेदिनः ॥"

इत्यत्र विशुद्धस्येत्येतदाख्यापदं विवेच्य श्रीमता गोण्डालाधिपतिना निजनिर्मिते ग्रन्थे (History of the Aryan Medical Science) चरको विशुद्धाख्यस्य मुनेः पुत्र इत्युक्तम् । तच्चिन्त्यम् । तत्र विशुद्धपदं विशेषणतयापि सुष्ठु अन्वेतुं शक्यते ।

धन्वन्तरिप्रादुर्भावः ।

१२—इदानीं धन्वन्तरेः प्रादुर्भावो वर्ण्यते । भगवता मघवता भूलोके लोकान् व्याधिविकलान् विलोक्य करुणावता सता तत्प्रतिकारार्थं भुवि सुरश्रेष्ठो धन्वन्तरिः साङ्गमायुर्वेदमध्याप्य प्रेषितः । धन्वन्तरिर्भुवमागत्य काश्यां कस्यचित् क्षत्रियस्य गृहे लब्धजन्मा तत्र दिवोदास इत्याख्यया आहूयमानः महता तपसा ब्रह्माणं प्रसाद्य काशीराज्ये आधिपत्यमलभत । तथा च भावप्रकाशे—

अधीत्य चायुषो वेदमिन्द्राद्धन्वन्तरिः पुरा ।
आगत्य पृथिवीं काश्यां जातो बाहुजवेश्मनि ॥

नाम्ना तु सोऽभवत् ख्यातो दिवोदास इति क्षितौ ।
बाल्य एव विरक्तोऽभूच्चचार सुमहत्तपः ॥
यत्नेन महता ब्रह्मा तं काश्यामकरोन्नृपम् ।
ततो धन्वन्तरिर्लोके काशिराजोऽभिधीयते ॥ इति ।

सुश्रुतस्य प्रादुर्भावः तत्कृतं तन्त्रं च ।

१३—विश्वामित्रात्मजः सुश्रुतः तस्माद्धन्वन्तरेः साङ्गमायुर्वेदं विधिवद् अधीत्य तन्त्रमेकम् आततान । तत्तन्त्रमिह सुश्रुतसंहितेति विश्रुतिमागतम् ।

"अस्मिन् शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इत्युच्यते । तस्मिन् क्रिया । सोऽधिष्ठानम् । तद्दुःखसंयोगा व्याधय इत्युच्यन्ते । चेतनाधिष्ठानभूतमिदं शरीरं पञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मकम् ।" इति । (सुश्रुत, सूत्रस्थान, १ अध्याय) ।

"अत्र सप्त सिराशतानि । पञ्च पेशीशतानि । नव स्नायुशतानि । आशयास्तु वाताशयः पित्ताशयः श्लेष्माशयो रक्ताशय आमाशयः पक्वाशयो मूत्राशयः । स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टमः ।" इति । (सुश्रुत, शारीरस्थान, ५ अध्याय) ।

यकृत्प्लीहानौ शोणितजौ । शोणितफेनप्रभवः फुप्फुसः । शोणितकिट्टप्रभव उण्डुकः । रक्तमांसप्रसादाद्वृक्कौ । मांसासृक्कफमेदःप्रसादाद् वृषणौ । शोणितकफप्रसादजं हृदयम्, यदाश्रया हि धमन्यः प्राणवहाः । तस्याधो वामतः प्लीहा फुप्फुसश्च । दक्षिणतो यकृत् क्लोम च । परिपक्वस्य भुक्तद्रव्यस्य सारो रसः ।

सम्यक्पक्वस्य भुक्तस्य सारो निगदितो रसः ॥ इति । (भावप्रकाश) ।
रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रस्य सम्भवः ॥ इति ।
(सुश्रुत, सूत्रस्थान, १४ अध्याय) ।

अस्थीनि शरीरस्याभ्यन्तरसाराः । तैरेव शरीरं ध्रियते । तदुक्तं—

अभ्यन्तरगतैः सारैर्यथा तिष्ठन्ति भूरुहाः ।
अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनां ध्रुवम् ॥
तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम् ।
अस्थीनि न विनश्यन्ति सारास्ते वपुषः स्मृताः ॥ इति ।
(सुश्रुत, शारीरस्थान, ५ अध्याय) ।

१४—अस्थीनि सषष्टीनि त्रीणि शतानि इति आयुर्वेदविदो अस्थिसंख्यानम् मन्यन्ते । तथा च चरके—

त्रीणि षष्ट्यधिकानि शतान्यस्थ्नां सह दन्तोलूखलनखैः । इति ।
(चरक, शारीरस्थान, ७ अध्याय) ।
अस्थ्नां शतानि षष्टिश्च त्रीणि दन्तनखैः सह । इति ।
(वाग्भट, शारीरस्थान, ३ अध्याय) ।

त्रीणि सषष्टीन्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषन्ते । इति ।

(सुश्रुत, शारीरस्थान, ५ अध्याय)

याज्ञवल्क्यस्मृतावपि—

तथाऽस्थ्नां च सह षष्ट्या शतत्रयम् । इति । (याज्ञवल्क्य, ३।८४) ।

शतपथब्राह्मणे च श्रूयते—

त्रीणि च शतानि षष्टिश्च पुरुषस्यास्थीनि । इति ।

(शतपथब्राह्मण, १२।३।२।३) ।

शल्यतन्त्रे पुनरस्थ्नां शतत्रयमुक्तम् । सुश्रुतेन तन्मतमनुसृतम् । तथा च "त्रीणि सषष्टीन्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषन्ते । शल्यतन्त्रे त्रीण्येव शतानि । तेषां सविंशमस्थिशतं शाखासु । सप्तदशोत्तरं शतं श्रोणिपार्श्वपृष्ठोदरोरःसु । ग्रीवां प्रत्यूर्ध्वं त्रिषष्टिः । एवमस्थ्नां त्रीणि शतानि पूर्यन्ते । इति । (सुश्रुत, शारीरस्थान, ५ अध्याय) ।

भावमिश्रेण च सुश्रुतस्य मार्गोऽनुसृतः । तथा च—

शल्यतन्त्रेऽस्थिखण्डानां शतत्रयमुदाहृतम् । इति ।

ऋषयो हि सर्वज्ञाः । तेषामार्षं ज्ञानमव्याहतम् । ते च करतलगतमामलकमिव निखिलभुवनं पश्यन्ति । अतीन्द्रियेऽपि दृष्टिस्तेषाम् अकुण्ठिता । तेषां कथम् एवमिन्द्रियमाहात्म्यानामस्थ्नां संख्याने विप्रतिवादः—इति चेत् ? उच्यते—मुनयो हि स्वेषु तन्त्रेषु स्वतन्त्रतया प्रायशो विभिन्नमतयो भवन्ति । एतच्च सुष्ठु उक्तं—

"नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम् ।" इति ।

एकैरेकस्यास्थित्वमङ्गीकृतम् । पुनरन्यैस्तन्नाङ्गीकृतम् । यथा चरके दन्तोलूखलौ नखाश्च अस्थिमध्ये परिगणिताः । तथा च—

त्रीणि षष्ट्यधिकानि शतान्यस्थ्नां सह दन्तोलूखलनखैः । इति ।

शल्यतन्त्रे तेषामस्थित्वं नैवोररीकृतम् । भुवनविश्रुतेन महर्षिणा सुश्रुतेन शल्यतन्त्रपक्षपातिनाऽपि मतद्वयमुदाहृतम् । तथा च—

त्रीणि सषष्टीन्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषन्ते । शल्यतन्त्रे त्रीण्येव शतानीति ।

(सुश्रुत, शारीरस्थान, ५ अध्याय) ।

तन्मन्यामहे अस्थिसंख्याने मुनीनाम् एवं विप्रतिपत्तिः संज्ञायाम् । न तु वस्तुनि ।

आयुर्वेदाध्ययनस्य प्रयोजनम् ।

१५—आयुर्वेदविदां वरेण्याः—पुण्यः खल्वयम् अस्माकम् आयुर्वेदः, व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षणाय, व्याधीनां निदानं लक्षणम् उपशमनं भेषजं च ज्ञापयति । स्वस्थानां च स्वास्थ्यरक्षणाय आयुष्यानायुष्याणि हेयोपादेयानि द्रव्यगुणकर्माणि च उपदिशति । अतो व्याधितैरिव स्वस्थैरपि स्वास्थ्यरक्षणाय आयुर्वेदः सेवनीयः ।

आयुर्वेदोपसेवाय च लोकः इदम् आयुष्यम्, इदम् अनायुष्यम्, इदं पथ्यम्, इदम् अपथ्यम्, इदं हितम्, इदम् अहितम्—इति ज्ञात्वा, हेयं हित्वा, उपादेयं च गृहीत्वा, अनिष्टं जहाति, इष्टं चाधिगच्छति । तथा च चरके—

तेनर्षयस्ते ददृशुर्यथावज्ज्ञानचक्षुषा ।
सामान्यं च विशेषं च गुणान् द्रव्याणि कर्म च ॥
समवायं च तज्ज्ञात्वा तन्त्रोक्तं विधिमास्थिताः ।
लेभिरे परमं शर्म जीवितं चाप्यनश्वरम् ॥ इति ।

(चरक, श्लोकस्थान, १ अध्याय)।

अङ्गिरःप्रभृतयो महर्षयः पुण्यतमम् आयुर्वेदमधीत्य उपादेयतया आयुष्याणि, तद्विपरीततया अनायुष्याणि द्रव्यगुणकर्माणि, तेषां वृद्धिकारणं सामान्यं, ह्रासकारणं विशेषं, द्रव्यगुणयोरपृथग्भावरूपसम्बन्धं समवायं च, ज्ञात्वा आयुर्वेदविधिमाश्रित्य आरोग्यरूपं सुखम् उपभुञ्जाना दीर्घं जीवनं लेभिरे। पुरुषाः आयुर्वेदविहितनियमान् प्रतिपालयन्त एव नीरोगाः दीर्घजीविनो जायन्ते। यदिदानीम् अखिला लोकाः प्रायशो व्याधिविकलाः स्वल्पायुषश्च दृश्यन्ते तत्रायुर्वेदविधीनाम् अतिक्रमणमेव कारणम्। इह खलु स्वास्थ्यं नाम सर्वैर्निरन्तरं मार्गणीयं किमप्यनर्घं धनम्। सत्यपि धनवत्त्वे, आभिजात्ये, किमधिकं सागरमेखलायाः वसुधाया आधिपत्येपि, नैव अस्वस्थः क्षणमपि सुखम् अनुभवति। व्याधिपरीतः पुरुषः इह अमुत्र च श्रेयस्करं किमपि साधयितुं न खल्वलम्। अतः 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' इत्युक्तम्। शरीरं न केवलं धर्मस्य साधनम्, अन्येषां त्र्याणाम् अपि पुरुषप्रयोजनानां साधनम्। सत्येव शरीरस्वास्थ्ये लोकश्चतुर्वर्गसाधने प्रभवति। एवम् अत्यर्थं प्रार्थ्यमानं तच्च स्वास्थ्यरक्षणम् आयुर्वेदाधिगमनं विना न संभवति। अतः सर्वैः सर्वदा सर्वथा आयुर्वेदाधिगमे प्रयत्नो विधेयः।

दोषत्रयवादः।

१६—व्याधीनामाश्रयः शरीरं सत्त्वसंज्ञं मनश्च। व्याधीनां कारणं त्रिविधम्—असात्म्येन्द्रियार्थसंयोगः, प्रज्ञापराधः, परिणामश्चेति। तत् त्रिविधं कारणं शरीरचरं वायुपित्तं कफं च दूषयित्वा विकारान् उत्पादयति। तत्र वातः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चलो विशदः खरश्च। पित्तं सस्नेहमुष्णं तीक्ष्णं द्रवमम्लं सरं कटुकं च। कफो गुरुः शीतो मृदुः स्निग्धो मधुरः स्थिरः पिच्छिलश्च।

ते च वातपित्तकफाः यदा समाः प्रकृतिमापन्नास्तदा देहं धारयन्तीति, अतो धातवः इत्युच्यन्ते यदा विषमाः विकृतिमापन्नाः तदा देहं दूषयन्तीति, अतो दोषाः इत्युच्यन्ते। मलिनीकरणान्मलाः इत्यपि। तथा च शार्ङ्गधरेणोक्तं—

शरीरदूषणाद्दोषा धातवो देहधारणात्।
वातपित्तकफा ज्ञेया मलिनीकरणान्मलाः॥ इति।

(शार्ङ्गधर, पूर्वखण्ड, ५।२०)।

चरकसंहितायां च—

सर्वशरीरचरास्तु खलु वातपित्तश्लेष्माणः सर्वस्मिन् शरीरे कुपिताकुपिताः शुभाशुभानि

कुर्वन्ति। प्रकृतिभूताः शुभान्युपचयबलवर्णप्रसादादीनि। अशुभानि पुनर्विकृतिमापन्ना विकार-संज्ञकानि। इति। (चरक, श्लोकस्थान, २० अध्याय)।

रसप्रदोषजा रोगा वक्ष्यन्ते रक्तदोषजाः।

इत्यादिरसादिदोषजा अपि रोगाः श्रूयन्ते यद्यपि, तथापि ते वातपित्तकफान्नाति-गच्छन्ति। उक्तं च चरके—

यथा हि शकुनिः सर्वा दिशः अपि परिपतन् स्वां छायां नातिवर्तते, तथा स्वधातुवैषम्य-निमित्ताः सर्वे विकारा वातपित्तकफान्नातिवर्तन्ते। इति। (चरक, श्लोकस्थान १९ अध्याय)।

एषां शरीरचराणां वातपित्तश्लेष्मणां स्थानानि, स्थानभेदात् नामानि कर्माणि च भिद्यन्ते। तथा चोक्तं भावप्रकाशे—

उदानस्तदनु प्राणः समानोऽपान एव च।
व्यानश्चेतानि नामानि वायोः स्थानप्रभेदतः॥
पाचकं रञ्जकं चापि साधकालोचके तथा।
भ्राजकं चेति पित्तस्य नामानि स्थानभेदतः॥
कफस्यैतानि नामानि क्लेदनश्चावलम्बनः।
रसनः स्नेहनश्चापि श्लेषणः स्थानभेदतः॥

तेषां स्थानानि यथा—

कण्ठे हृदि तथाधस्तात् कोष्ठवह्नेर्मलाशये।
सकलेऽपि शरीरेऽसौ क्रमेण पवनो वसेत्॥
अग्न्याशये यकृत्प्लीह्नोर्हृदये लोचनद्वये।
त्वचि सर्वशरीरेषु पित्तं निवसति क्रमात्॥
आमाशयेऽथ हृदये कण्ठे शिरसि सन्धिषु।
स्थानेष्वेषु मनुष्याणां श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात्॥

तेषां कर्माण्यपि वक्ष्यन्ते। तद्यथा—

उदानो नाम यस्तूर्ध्वमुपैति पवनोत्तमः।
तेन भाषितगीतादिप्रवृत्तिः, कुपितस्तु सः॥
ऊर्ध्वजत्रुगतान् रोगान् विदधाति विशेषतः।
यो वायुः प्राणनामासौ मुखं गच्छति देहधृक्॥
सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते।
प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान् गदान्॥
आमपक्वाशयचरः समानो वह्निसंगतः।
सोऽन्नं पचति तज्जांश्च विशेषान् विविनक्ति हि॥
स दुष्टो वह्निमान्द्यातिसारगुल्मान् करोति हि।
पक्वाशयालयोऽपानः काले कर्षति चाप्ययम्॥
समीरणः शकृन्मूत्रशुक्रगर्भार्तवान्यधः।
क्रुद्धस्तु कुरुते रोगान् घोरान् वस्तिगुदाश्रयान्॥

शुक्रदोषप्रमेहांश्च व्यानापानप्रकोपजान् ।
कृत्स्नदेहचरो व्यानो रससंवाहनोद्यतः ॥
स्वेदासृक्स्रावणश्चापि पञ्चधा चेष्टयत्यपि ।
गत्यपक्षेपणोत्क्षेपनिमेषोन्मेषणादिकाः ॥
प्रायः सर्वाः क्रियास्तस्मिन् प्रतिबद्धाः शरीरिणाम् ।
प्रस्पन्दनं चोद्वहनं पूरणं च विरेचनम् ॥
धारणं चेति पञ्चैवाश्चेष्टाः प्रोक्ता नभस्वतः ।
क्रुद्धः स कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान् ॥
युगपत् कुपिता एते देहं भिन्द्युरसंशयम् ।
पाचकं पचते भुक्तं शेषाग्निबलवर्धनम् ॥
रसमूत्रपुरीषाणि विरेचयति नित्यशः ।
रञ्जकं नाम यत् पित्तं तद्रसं शोणितं नयेत् ॥
यत्तु साधकसंज्ञं तत् कुर्याद्बुद्धिं धृतिं स्मृतिम् ।
यदालोचकसंज्ञं तद्रूपग्रहणकारणम् ॥
भ्राजकं कान्तिकारि स्याल्लेपाभ्यङ्गादिपाचकम् ।
क्लेदनः क्लेदयत्यन्नमात्मशक्त्याऽपराण्यपि ॥
अनुगृह्णाति च श्लेष्मस्थानान्युदककर्मणा ।
रसयुक्तात्मवीर्येण हृदयस्यावलम्बनम् ॥
त्रिकसञ्चारणं चापि विदधात्यवलम्बनः ।
उभावपि ततः सौम्यौ तिष्ठतश्चान्तिके यतः ॥
यतो रसान्विजानीतो रसनारसनौ समौ ।
स्नेहनः स्नेहदानेन समस्तेन्द्रियतर्पणः ॥
श्लेषणः सर्वसन्धीनां संश्लेषं विदधात्यसौ ॥ इति ।

एते च वातपित्तकफाः विकृतिभावमापन्नाः विपरीतगुणैर्विपरीतगुणभूयिष्ठैर्वा द्रव्यैरभ्यस्यमानैरेव प्रशमं यान्ति । विशेषस्य ह्रासहेतुत्वात् । उक्तं च—

ह्रासहेतुर्विशेषश्च । इति । (चरक, श्लोकस्थान १ अध्याय) ।

चिकित्सायाः सलक्षणम् ।

१७—आर्या भिषग्वर्याः,—चिकित्साम् अधिकृत्य किञ्चिद्वक्ष्ये । धातुसाम्यक्रिया हि चिकित्सा । सा खलु आयुर्वेदस्य प्रयोजनम् । उक्तं च चरके—

धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम् । इति ।
(चरक, श्लोकस्थान, १ अध्याय) ।

तत्र चिकित्सायां भिषक् भेषजद्रव्यं परिचारको रोगी च—एतच्चतुष्टयमपेक्ष्यते । उक्तं च—

भिषग् द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् ।
गुणवत् कारणं ज्ञेयं विकारव्युपशान्तये ॥ इति ।

(चरक, श्लोकस्थान, ९ अध्याय) ।

तत्र भिषजः प्राधान्यम् ।

१८—तत्र भिषगेव प्रधानं कारणम् । सत्यप्यातुरे सोपद्रवम् आमूलमात्मनो रोग-विवरणं विवृण्वति सत्यप्युपसन्ने आप्ते उपचारक्षमे भर्त्तरि भक्तिमति परिचरजने, उपनीतेऽपि वीर्यवति विविधकल्पनोचिते बहुले भेषजद्रव्ये, पर्यवदातश्रुतो भिषक् असन्निहितश्चेत् तत्तद्रोगप्रतिकारक्षमाणाम् औषधानामनिर्धारणात्, उपचारक्रमस्यानिर्देशात्, पथ्यापथ्यादीनामनिरूपणाच्च न विकारप्रशमो भवति । मृद्दण्डचक्रादिषु सत्स्वपि कुम्भकारमन्तरेण यथा न कुम्भः सम्भवति, तथा सत्स्वपि द्रव्यादिषु त्रिषु, भिषजं विना चिकित्सा न प्रवर्त्तते । तदुक्तं चरकेण—

विज्ञाता शासिता योक्ता प्रधानं भिषगत्र तु ॥
पक्तौ हि कारणं पक्तुर्यथा पात्रेन्धनानलाः ।
विजेतुर्विजये भूमिश्चमूः प्रहरणानि च ॥
आतुराद्यास्तथा सिद्धौ पादाः कारणसंज्ञिताः ।
वैद्यस्यातश्चिकित्सायां प्रधानं कारणं भिषक् ॥
मृद्दण्डचक्रसूत्राद्याः कुम्भकारादृते यथा ।
नावहन्ति गुणं वैद्यादृते पादत्रयं तथा ॥ इति ।

(चरक, श्लोकस्थान, ९ अध्याय) ।

भिषजो गुणाः ।

१९—भिषक् विधिवदायुर्वेदमधीत्य लब्धनिर्मलज्ञानः बहुशः परिदृष्टकर्मा भेषजाद्युपकल्पनकुशलः बहिरन्तश्च शौचवांश्च भवेत् । तदुक्तं चरकसंहितायां—

श्रुते पर्यवदातत्वं बहुशो दृष्टकर्मता ।
दाक्ष्यं शौचमिति ज्ञेयं वैद्ये गुणचतुष्टयम् ॥ इति ।

(चरक, श्लोकस्थान, ९ अध्याय) ।

न च केवलमधीतशास्त्रः, न वा केवलं दृष्टकर्मा, यस्तु उभयज्ञः स एव राजार्हो भिषक् चिकित्सायाम् आद्रियते । उक्तं च सुश्रुते—

यस्तु केवलशास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः ।
स मुह्यत्यातुरं प्राप्य प्राप्य भीरुरिवाहवम् ॥
यस्तु कर्मसु निष्णातो धार्ष्ट्याच्छास्त्रबहिष्कृतः ।
स सत्सु पूजां नाप्नोति वधं चार्हति राजतः ॥
उभावेतावनिपुणावसमर्थौ स्वकर्मणि ।
अर्धवेदधरावेतावेकपक्षाविव द्विजौ ॥ इति ।

(सुश्रुत, सूत्रस्थान, ३ अध्याय) ।

पुनस्तत्रैव—

यस्त्वभयज्ञो मतिमान् स समर्थोऽर्थसाधने।
आहवे कर्म निर्वोढुं द्विचक्रः स्यन्दनो यथा॥ इति।

भिषजां त्रैविध्यम्।

२०—चरकसंहितायां भिषजां त्रैविध्यमुक्तम्।

तथा च—

भिषक्छद्मचराः सन्ति सन्त्येके सिद्धसाधिताः।
सन्ति वैद्यगुणैर्युक्तास्त्रिविधा भिषजो भुवि॥ इति।

(चरक, श्लोकस्थान, ११ अध्याय)।

तेषां त्रिविधानां भिषजां लक्षणानि तत्रैव यथाक्रमम् उक्तानि।

तथा च—

वैद्यभाण्डौषधैः पुस्तैः पल्लवैरवलोकनैः।
लभन्ते ये भिषक्शब्दमज्ञास्ते प्रतिरूपकाः॥
श्रीयशोज्ञानसिद्धानां व्यपदेशादतद्विधाः।
वैद्यशब्दं लभन्ते ये ज्ञेयास्ते सिद्धसाधिताः॥
प्रयोगज्ञानविज्ञानसिद्धिसिद्धाः सुखप्रदाः।
जीविताभिसरास्ते स्युर्वैद्यत्वं तेष्ववस्थितम्॥ इति।

(चरक, श्लोकस्थान, ११ अध्याय)।

इह केचिदनधीतशास्त्राः केवलं चिकित्सापुस्तकानाम् औषधभाण्डानां च रक्षणेन वैद्यवद्वाग्विस्तरेण अवलोकनचातुर्येण च आत्मानं वैद्यं प्रख्यापयन्तः वैद्यवेशं धृत्वा इतस्ततः सञ्चरन्ति। ते भिषक्छद्मना सञ्चरणात् भिषक्छद्मचरा इत्युच्यन्ते। ते च वैद्यप्रतिरूपकाः, न तु वस्तुतो वैद्याः।

केचिच्च अज्ञाः जातु चिकित्साकर्मणा श्रियं यशः ज्ञानं तत्र सिद्धिं च अनाप्नुवन्तोऽपि मयाऽमुत्र चिकित्सया बहु धनमासादितं श्रीर्यशश्च लब्धम्, अस्ति मे चिकित्सिते भूयोदर्शिता, दुरारोग्यव्याधिष्वपि मया बहुशः, सिद्धिर्लब्धा, इत्येवम् अन्यत्र सिद्धिं व्यपदिश्य आत्मनो वैद्यत्वं साधयन्ति। ते सिद्धसाधिताः ज्ञेया।

ये पुनर्विधिवदधीतशास्त्राः, तत्र पर्यवदाताः, चिकित्साकर्मनिष्णाताः, औषधप्रयोगेण शास्त्रज्ञानेन लोकव्यवहारज्ञानेन चिकित्साकर्मसिद्ध्या च प्रख्याताः, व्याधितानाम् आरोग्यसंज्ञकसुखदाः, ते व्याधितानां जीविताय आयुषे च अभिमुखीभूय सरन्ति इति जीविताभिसरा उच्यते। त एव प्रकृतवैद्यपदवाच्याः चिकित्सायामाद्रियन्ते।

अज्ञाः आतुरैः सर्वथैव हेयाः। उक्तं च—

यस्मात्मा कुतोऽन्येन न चिकित्सा प्रवर्तिता । इति ।

(चरक, श्लोकस्थान, ९ अध्याय) ।

तथा—

तस्माद्भिषजा युक्तं युक्तिबाह्येन भेषजम् ।
धीमता किञ्चिदादेयं जीवितारोग्यकाङ्क्षिणा ॥ इति ।

(चरक, श्लोकस्थान, १ अध्याय) ।

भिषक्शास्त्रमनधीत्यापि भिषग्वृत्त्या वर्तमानान् वैद्यप्रतिरूपकान् मूर्खान् उद्दिश्य कमुक्तं भूतानुकम्पिना महर्षिणा चरकेण—

वरमाशीविषविषं क्वथितं ताम्रमेव वा ।
पीतमत्यन्तसन्तप्ता भक्षिता वाप्ययोगुडाः ॥
न तु श्रुतवतां वेशं बिभ्रता शरणागतात् ।
गृहीतमन्नं पानं वा वित्तं वा रोगपीडितात् ॥ इति ।

(चरक, श्लोकस्थान, १ अध्याय) ।

गुरुमुखादध्ययनस्यौचित्यम् ।

आयुर्वेदः खल्वतीव दुरवगाहः । स्वधिया कथं कथमपि केवलाक्षरार्थसङ्गत्या नास्य तत्त्वं केनापि विज्ञातुं शक्यते । शक्यते पुनर्गुरुमुखात् । अतो भिषग्बुभूषया धीमद्भिः प्रशान्तैरार्यप्रकृतिकैः अध्ययनार्थिभिः गुरुगृहम् अध्युष्य गुरुमुखादेव आयुर्वेदः श्रोतव्यः, तत्कर्मचर्योऽपि द्रष्टव्यः । गुरुसेवया च विद्यायाः प्रसादः, बुद्धेर्निर्मलीभावः, शास्त्रार्थे दृढ़ता, तत्त्वविज्ञानं च जायते । मन्ये तदर्थमेव अस्माकम् आद्यगुरुभिः असामान्यधीशक्तिसम्पन्नैरपि मान्यैरात्रेयादिभिर्मुनिभिः गुरुकुलवासक्लेश ऊरीकृतः । पुनरेतच्च भिषग्भिः अवश्यमनुध्येयं यत्—

मैत्री कारुण्यमार्तेषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षणम् ।
प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा ॥ इति ।

(चरक, श्लोकस्थान, ९ अध्याय) ।

अन्यच्च—

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।
स एव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥ इति ।

(चरक, श्लोकस्थान, १ अध्याय) ।

आयुर्वेदे शल्यतन्त्रम् ।

२२—अस्मिन्नवसरे एतदपि वाच्यं मन्ये यत् यूरोपीयचिकित्सिते जातपक्षपाताः केचित् इदानीन्तनभिषक्सम्प्रदायस्य शस्त्रोपचारेष्वप्रवृत्तेः अखिलजगतीतलमान्यानां मनीषिणाम् अव्याहतार्षज्ञानदृशाम् ऋषीणां शस्त्रकर्मविज्ञाने संशेरते । ते खलु प्रज्ञाभिमानिनः, तैः कदाप्यस्माकम् आयुराम्नायः न सम्यगालोचितः, न पठितः, न च

दृष्टः, न वापि परिश्रुतः। अस्मच्छास्त्रेषु शस्त्रोपचारो बहुश एवोपदिष्टः तथा च चरक-संहितायां द्विव्रणीयचिकित्सितेऽध्याये—

ऊर्ध्वभागैरधोभागैः शस्त्रैर्बस्तिभिरेव च।
सद्यः शुद्धशरीराणां प्रशमं यान्ति हि व्रणाः।

इत्युपक्रम्य—

पाटनं व्यधनं चैव च्छेदनं लेखनं तथा।
प्रच्छनं सीवनं चैव षड्विधं शस्त्रकर्म तत्।
नाड़ीव्रणाः पक्वशोथास्तथाक्षतगुदोदरम्।
अन्तःशल्याश्च ये देशाः पाट्यास्ते तद्विधाश्च ये॥
दकोदराणि सम्पक्वा गुल्मा ये ये च रक्तजाः।
व्यध्याः शोणितरोगाश्च वीसर्पपिड़कादयः॥
अर्शःप्रभृत्यधीमांसं छेदनेनोपपादयेत्।
उद्वृत्तान् स्थूलपर्यन्तानुत्सन्नान् कठिनान् व्रणान्॥
किलासानि सकुष्ठानि लिखेल्लेख्यानि बुद्धिमान्॥
वातासृग्ग्रन्थिपिड़काः सकोठा रक्तमण्डलाः।
कुष्ठान्यभिहतं चाङ्गं शोथांश्च प्रच्छयेद् भिषक्॥
सीव्यं कुक्ष्युदरार्थं तु गम्भीरं यद्विपाटितम्।
इति षड्विधमुद्दिष्टं शस्त्रकर्म मनीषिभिः॥ इति।

(चरक, चिकित्सितस्थान, २५ अध्याय)।

सुश्रुते विशिष्यैव शस्त्रकर्म उक्तम्। तथा च—

अस्मिन् शास्त्रे शस्त्रकर्मप्राधान्याच्छस्त्रकर्मैव तावत् प्रथममुपदेक्ष्यामः, तत्सम्भारांश्च। तच्च शस्त्रकर्माष्टविधम्। यद्यथा—छेद्यं भेद्यं लेख्यं वेध्यमेष्यमाहार्यं विस्राव्यं सीव्यमिति। (सुश्रुत, सूत्रस्थान, ८ अध्याय)।

सुस्रुते छेद्यादिकर्मसाधनानि शस्त्राण्यप्युक्तानि। तथा च—

विंशतिः शस्त्राणि। तद्यथा—मण्डलाग्रकरपत्रवृद्धिपत्रनखशस्त्रमुद्रिकोत्पलपत्रकार्धधारसूची-कुशपत्राटीमुखशरारिमुखान्तर्मुखत्रिकूर्चककुठारिकाव्रीहिमुखारावेतसपत्रकबड़िशदन्तशंकैषण्यः। इति। (सुश्रुत, सुत्रस्थान, ८ अध्याय)।

येन येन शस्त्रेण यत् यत् कर्म साध्यते तदप्युक्तम्। तथा च—

तत्र मण्डलाग्रकरपत्रे स्यातां छेदने लेखने च। वृद्धिपत्रनखशस्त्रमुद्रिकोत्पलपत्रकार्धधाराणि छेदने भेदने च। सूचीकुशपत्राटीमुखशरारिमुखान्तर्मुखत्रिकूर्चकानि विस्रावणे। कुठारिका व्रीहि-मुखारावेतसपत्रकाणि व्यधने, सूची च। बड़िशं दन्तशंकुश्चाहरणे। एषणी एषणे, आनुलोम्ये च। सूच्यः सीवने। इत्यष्टविधे कर्मण्युपयोगः शस्त्राणां व्याख्यातः। इति। (सुश्रुत सूत्रस्थान, ८ अध्याय)।

येषु येषु व्याधिषु यत् यत् शस्त्रकर्मोचितं तदपि सुश्रुते सूत्रस्थाने अष्टविधशस्त्र-कर्मण्ये अध्याये—'छेद्या भगन्दरा ग्रन्थिः' इत्युपक्रम्य सविस्तरमुक्तम्—

वृद्धवाग्भटे च—

शस्त्राणि षड्विंशतिर्भवन्ति । तद्यथा—दन्तलेखनमण्डलाग्रवृद्धिपत्रोत्पलपत्राध्यर्धधारसुद्रिकाकर्तरीसर्पवक्त्रकरपत्रकुशपत्राटीमुखान्तर्मुखशरारिमुखत्रिकूर्चकुठारिकाव्रीहिमुखशलाकावेतसपत्राराकर्णव्यधनसूचीसूचीकूर्चखजैपणीवडिशनखशस्त्राणि । प्रायशश्च तानि षडङ्गुलानि सूक्ष्माग्रवर्तितायोघटितान्युत्पलपत्रनीलानि सुग्रहाणि सुरूपाणि सुधाराणि सुसमाहितमुखाग्राणि अकरालानि प्रत्येकं च प्रायो द्विशाणि स्वप्रमाणार्धचतुर्थभागफलानि । तानि व्याधिदेशवशात् प्रयुञ्जीत । इति । (वृद्धवाग्भट, सूत्रस्थान, यन्त्रशस्त्रविध्यध्याय)

तेषां कर्माणि च द्वादश । यथा—लेखनं, पाटनं, भेदनं, छेदनं, प्रच्छानं, व्यधनं, सीवनं, कुट्टनं, मथनम्, एषणं, ग्रहणम्, उद्धरणं चेति । येषु येषु व्याधिषु यद् यच्छस्त्रम् उपयुज्यते तदपि तत्र विस्तरेण उपदिष्टम् ।

आयुर्वेदे मूढगर्भचिकित्सा ।

२३—इदानीं यूरोपीयचिकित्साशास्त्रविदो भिषजो गर्भव्यापदि शस्त्रकर्मणा ख्यातिमर्जयन्तः स्पर्द्धन्ते । तच्चास्माकमाद्यगुरुभिर्महर्षिभिर्नाप्यविदितमासीत् । तथा च सुश्रुते मूढगर्भचिकित्सिते उक्तम्—

नातः कष्टतममस्ति यथा मूढगर्भशल्योद्धरणम् । अत्र हि योनियकृत्प्लीहान्त्रविवरगर्भाशयानां मध्ये कर्म कर्तव्यं स्पर्शेन । उत्कर्षणापकर्षणस्थानापवर्तनोत्कर्तनभेदनच्छेदनपीडनर्जूकरणदारणानि चैकहस्तेन गर्भं गर्भिणीं चाहिंसता । तस्माद् अधिपतिमापृच्छ्य परञ्च यत्नमास्थायोपक्रमेत । इति । (सुश्रुत, चिकित्सितस्थान, १५ अध्याय) ।

गर्भिण्याः व्यापदि अपि जीवति गर्भे शस्त्रोपचारोऽप्युक्तः । तथा च—

वस्तमारविपन्नायाः कुक्षिः प्रस्पन्दते यदि ।
तत्क्षणाज्जन्मकाले तं पाटयित्वोद्धरेद्भिषक् ॥ इति ।

(सुश्रुत, निदानस्थान, ८ अध्याय) ।

अत्र डल्लणाचार्यः—वस्तमारो मृगवन्मरणम् । एतेन ग्रीवामोटनेन आशुतममक्लिष्टं मरणमुक्तम् । वस्तमारेण विपन्नायाः स्त्रियाः कुक्षिः यदि प्रस्पन्दते । एतेन गर्भस्य जीवितत्वमुक्तम् । भिषक् तत्क्षणात् घटिकाद्वयमध्ये—ततः परं गर्भोऽपि मरिष्यतीति भावः । जन्मकाले नवमदशमादिमासे स्त्रीकुक्षिं पाटयित्वा विदार्य्य तं जीवन्तं शिशुमुद्धरेत् । इति ।

अष्टाङ्गहृदये च—

वस्तिद्वारे विपन्नायाः कुक्षिः प्रस्पन्दते यदि ।
जन्मकाले ततः शीघ्रं पाटयित्वोद्धरेच्छिशुम् ॥ इति ।

(वाग्भट, शारीरस्थान, २ अध्याय) ।

अत्र अरुणदत्तः—व्यापन्नायाः मृतायाः गर्भिण्याः यदि कुक्षिः प्रस्पन्दते । क प्रदेशे ? वस्तिद्वारे तत्समीपे । कदा ? जन्मकाले गर्भप्रसवोन्मुखे काले । तदा कुशलो वैद्यः शीघ्रं कुक्षिप्रस्पन्दनादनन्तरं पाटयित्वा शिशुम् उद्धरेत् । इति ।

मनस्वी श्रीमदुमेशचन्द्रकविराजः स्वरचितवैद्यकशब्दसिन्धुनामकग्रन्थस्य' भूमिकायामुक्तवान् यत्—

"The subjects of मूढ़गर्भ and अश्मरी, which relate to difficult delivery and operation of stone respectively, are treated in so masterly a manner that, Dr. Charles (the then Principal of the Calcutta Medical College), desired to see them. At his repuest, Dr. Durgadas Gupta and myself translated them into English and submitted the said for his perusal. Dr. Charles, highly praised the process of delivery in difficult cases and even confessed that, with all his great experience in Midwifery and Surgery, he nevar had any idea of the like being found in all the medical works that came under his observations." (Vaidyakashabdasindhu, Preface. page 39).

'कालिकाताराजकीयचिकित्साविद्यालयाध्यक्षे डाक्टरचार्लसमहोदये आयुर्वेदानुशिष्टं मूढ़गर्भचिकित्सितविधिम् अश्मरीचिकित्सितविधिं च बुभुत्समाने यूरोपीयचिकित्साशास्त्रविदा भिषजा दुर्गादासगुप्तेन मया च तत्तत्स्थानम् इंलण्डीयभाषायामनूद्य तस्मै दत्तम्। स च मूढ़गर्भचिकित्सितविधिमतितरां प्रशशंस, धात्रीविद्यायां शास्त्रोपचारविद्यायां च बहुशो दृष्टकर्मणापि तेन पठितेषु सर्वेष्वेव चिकित्सानिबन्धेषु नेदृशो विधिरुपलब्ध, इत्यपि व्यक्तम् उक्तवान्' इति।

आयुर्वेदस्योत्कर्षः।

२४—माननीयाः सभासदः,—सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतः पुण्यः स्वर्ग्यो यशस्यश्च।

युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः॥ (ऋग्वेद, १।११७।१३)।

हे अश्विनौ, युवां वृद्धं च्यवनमुनिं चिकित्सया पुनर्युवानं कृतवन्तौ।

सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्॥ (ऋग्वेद, १।११६।१५)।

हे अश्विनौ, युवां छिन्नजङ्घायै विश्पलायै गमनार्थं लौहमयीं जङ्घां कृतवन्तौ।

आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे॥ (ऋग्वेद, १।११७।१७)।

हे अश्विनौ युवां चक्षुर्हीनम् ऋज्राश्वं चक्षुष्मन्तं कृतवन्तौ।

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजम् प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः॥ (ऋग्वेद, १।११२।८)।

हे अश्विनौ, युवाम् अन्धं खञ्जम् परावृजं दृष्टिशक्त्या युक्तं विगतजानुकं च श्रोणम् इतस्ततः परिक्रमणक्षमं कृतवन्तौ।

घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम्॥ (ऋग्वेद, १।११७।७)।

हे अश्विनौ, युवां कुष्ठव्याधिग्रस्तां घोषां व्याधिमुक्तां कृतवन्तौ। तस्यै पतिं दत्तवन्तौ च। तां विवाहयोग्यामकुरुतम्, इत्यर्थः।

अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत् पुनर्युवा ।
(चरक, चिकित्सितस्थान, १ अध्याय) ।

ओषधीनां पतिं सोममुपयुज्य विचक्षणः ।
दशवर्षसहस्राणि नवां धारयते तनूम् ॥
(सुश्रुत, चिकित्सितस्थान, २९ अध्याय) ।

स्वयम्भुवः शिरश्छिन्नं भैरवेण रुषाऽथ तत् ।
अश्विभ्यां संहितं तस्मात् तौ जातौ यज्ञभागिनौ ॥
देवासुररणे देवा दैत्यैर्ये सक्षताः कृताः ।
अक्षतास्ते कृताः सद्यो दस्राभ्यामद्भुतं महत् ॥
वज्रिणोऽभूद्भुजस्तम्भः स दस्राभ्यां चिकित्सितः ।
सोमान्निपतितश्चन्द्रस्ताभ्यामेव सुखीकृतः ॥
विशीर्णा दशनाः पुष्णो नेत्रे नष्टे भगस्य च ।
शशिनो राजयक्ष्माऽभूदश्विभ्यां ते चिकित्सिताः ॥
(भावप्रकाश, १ भाग) ।

आयुर्वेदस्याधोगतिः ।

इत्याद्युक्तय एवास्माकमायुर्वेदीयचिकित्सितविधेरुत्कर्षं प्रख्यापयन्ति । मान्यैर्मुनिभिरात्मनो योगबलेन भूयोदर्शनेन धीशक्तिसम्पदा च चिकित्सिततत्त्वमवगत्य सर्वभूतहितैषया उपनिबद्धान्यायुर्वर्धनतन्त्राणि न केवलं भारतवर्षे अन्येष्वपि वर्षेषु भारतीयानामार्याणां धीसम्पदुत्कर्षं तेषां विद्याविभवञ्च उच्चैः उद्घोषयन्तितराम् । अहो बत येषां पूर्वे मनीषिणः आत्मनो बुद्धिसम्पदुत्कर्षेण लोकातिशायिनः आसन् ते खल्वद्य भारतवासिनः आत्मकृतकर्मणां दुर्विपाकेन उत कालप्रभावेण मलिनबुद्धयः पूर्वेषां निबन्धेष्वप्यनधिकारिणः अन्येषामुपहास्याः जाताः । यत् साम्प्रतं भारतवासिनः प्रायशो विविधव्याधिविकला हीनतेजसः स्वल्पायुषश्च भवन्ति, तत्र ऋषीणामार्षज्ञानोत्कर्षभूतेषु आयुर्वर्धनतन्त्रेषु वीतरागता तदुक्तविधेर्व्यतिक्रमः, एवमाद्यास्तेषामात्मापराधाः एव कारणम् । भारतभूमीललामभूतैर्भारतीयानां शरीरधातुतत्त्वज्ञैस्तपःप्रभावसम्पन्नैर्मनीषिभिर्मुनिभिरनुशिष्टा आयुर्वेदसंहिताः तथा भारतभूमीजाताः भारतीयानां प्रकृत्यनुकूलाः वीर्यवत्यः ओषध्य एव भारतीयानां रोगोपशमनेषूपयुज्यन्ते ।

येषामायुर्वर्धनतन्त्राणि अन्येषामप्युपजीव्यानि, येषां चिकित्सितमव्याहतफलं, येषां भेषजप्रभावेण प्रवया अपि तरुणायितः, मृत्युरप्युपहसितः, हा हन्त कालवशेनाद्य तेऽपि भारतवासिनः यूरोपीयचिकित्सितैकशरणाः जाताः । यूरोपीयभेषजानि प्रायशो मद्योपकल्पितानि भवन्ति । मद्यं यूरोपीयानां प्रकृत्यनुगुणमपि नैवास्माकं भारतीयानां सात्म्यम् । अतस्तदुपकल्पितान्यौषधानि कथम् अस्माकं श्रेयसे कल्पेरन् ।

विदेशीयचिकित्साशास्त्रविदाम् आयुर्वेदानुशासने अनुरागः ।

२५—दिष्ट्या यूरोपीयचिकित्साशास्त्रविदो भिषजोऽपि अस्माकमायुर्वेदानुशासने

शनैः सानुरागाः उपलभ्यन्ते । ते च आत्मचिकित्सिते आयुर्वेदीयभेषजो बिल्वनिम्बगुडूच्यादीन्यपि उपयोजयन्ति । विकारोपशमनेषु विलासकस्तूरीभैरवादीनां वीर्यवतां आयुर्वेदीयभेषजानामप्युपयोगमाद्रियन्ते । जलं लवणानि च प्रतिषिध्य केवलं दुग्धं पेयमुपदिशन्ति । पूर्वमनङ्गीकृताया शुक्राश्मर्याः सम्भवमिदानीमङ्गीकुर्वन्ति ।

तदानीं कलिकाताराजकीयचिकित्सालयाध्यक्षः इदानीं राजकीयचिकित्स नायकश्रेष्ठः महोदारहृदयः लिडकिस्महोदयः (Dr. Lukis) कलिकातानगर्यां तपादैश्चिकित्स्यमानमुदरिणमुद्दिश्य जललवणवर्जनमुपदिश्य व्यक्तमुक्तवान् यत्—

"We have many things to learn from the people o this country in respect of medicine."

'भेषजे चिकित्साविज्ञाने च भारतवासिनां सकाशाद् अस्माकमपि बहु शिक्षितव्यमस्ति' इति ।

उदररोगे जललवणवर्जनं दुग्धपानविधानं च चरके चिकित्सितस्थाने उदररोगचिकित्सिते उक्तम्—

औदकानूपजं मांसं शाकं पिष्टकृतांस्तिलान् ।
व्यायामाध्वदिवास्वप्नं यानयानञ्च वर्जयेत् ॥
तथोष्णलवणादीनि विदाहीनि गुरूण्यपि ।
नाद्यादन्नानि जठरी जलपानञ्च वर्जयेत् ॥
शोकानाहार्तितृण्मूर्च्छापीडिते कारभं पयः ।
शुद्धानां क्षीणदोषाणां गव्यं छागं समाहिषम् ॥ इति ।

(चरक, चिकित्सितस्थान, १३ अध्याय) ।

वङ्गविभागे वस्तुसंयोगतत्त्वपरीक्षाकर्मणि लब्धप्रतिष्ठो धीमान् रायबहादुरोपनामा डाक्टरचुन्नीलालवसुमहोदयः अधुनातनविज्ञानविधिना आयुर्वेदोक्तानि कानिचित् भेषजानि सम्यक् परीक्ष्य तेषां गुणवीर्यप्रभावानधिकृत्य भारतीयपत्रिकायां "मया यद् यत् परीक्षितं तत् तथैव इत्युक्तवान् ।

पाश्चात्यचिकित्साशास्त्रे आयुर्वेदस्य उपजीव्यत्वम् ।

२६—आयुर्वेदविहितचिकित्सितानां समुत्कर्षादस्माकं आयुर्वर्धननिबन्धाः अन्यदेशभाषाभिरनूदिताः लब्धप्रसरास्तेषु तेषु देशेष्वपि चिकित्साविज्ञानस्य उपजीव्या आसन् ।

तथा च श्रीमता गोण्डालाधिपतिना स्वरचितचिकित्साविज्ञानेतिहासनामके ग्रन्थे (History of the Aryan Medical Science)—

"The great works of Charaka and Susruta were translated into Arabic under the patronage of Kaliph Almansur

in the 7th Century. The Arabic version of Susruta is known by the name of "Kelale-Shaw-shoore-ul-Hindi." These translations were, in their turn, rendered into Latin. The Latin versions formed the basis of European medicine wnich remained indebted to the Eastern Science of Medicine down to the 17th Century." (History of the Aryan Medical Science, Page 196—Quoted in the Introduction, Page X,, of Kaviraj K. L. Bhishagratna's English Translation of the Susruta Samhita).

'ख्रीष्टीयसप्तमशताब्द्यां अलमञ्जरनाम्नः अरबभूमिपतेरनुकम्पया चरकः सुश्रुतश्च आरब्यभाषया अनूदितौ। तत्र सुश्रुतस्यानुवादग्रन्थः "केलाले-शओसुरि-उल-हिन्दी" इति नाम्ना प्रसिद्धः। तावनुवादग्रन्थौ लैटिनभाषया पुनरनूदितौ। तावेव यूरोपीय-चिकित्साविज्ञानविधेर्मूलम्। अतः स यूरोपीयचिकित्साविज्ञानविधिः सप्तमशताब्दी-मारभ्य सप्तदशशताब्दीं यावत् प्राच्यचिकित्साविज्ञानस्याधमर्णः' इत्युक्तवान्।

डाक्टर वाइज (Dr. Wise) साहेबमहोदयः आत्मनो हिन्दुभेषजविधिविवृति-नामकनिबन्धे (Commentary on the Hindu System of Medicine)—

"The native practice of medicine may now be said in this lamentable state of depression over all Hindustan; but it was far otherwise as cultivated by the ancient Hindus." (Introduction, Page V. Dr. Wise's Commentary on the Hindu System of Medicine).

'हिन्दुचिकित्सितं हन्त अधुना हिन्दुस्थानं परितः अतीव शोच्यां दशामुपागतम्। तत्तु पुरा प्राचीनैर्हिन्दुभिरात्मनो धीशक्तिसम्पदा सुतरामुत्कर्षं प्रापितम्' इत्यभिधाय ततः पुनः—

"A people, who had distinguished themselves at such an early age, by their power and riches, as well as by their successful cultivation of the Science, may be, supposed to have studied with much care the means of succouring the wounded and maimed, of alleviating pain and curing diseases. The Hindu history of Medicine proves this to have been the case." (Dr. Wise, Introduction, Page Vii).

'ये च तादृशे पुराकालेऽपि आत्मनः शौर्येण वीर्येण धनसम्पदा तथा अमोघ-विज्ञानानुशीलनेनापि अतीव प्रसिद्धिं गताः ते खलु यद् अतिमहता प्रयत्नेन आत्मनः घातादिशोधनस्य व्याधिवैकल्यप्रशमनस्यापि अनुशीलनं चक्रुः तत् तेषां चिकित्सा-विधिरेव प्रमाणयति इत्युक्त्वापुनः—

"Arrian informs us that in the expedition of Alexander to India, the Greecian Physicians found no remedy against the bites of snakes; but the Indians cured those who happened to fall under the misfortune."

'आरियाननामा विद्वान् अस्मान् ज्ञापयति यत् आलेकजाण्डार इत्याख्यया सुविश्रुतस्य ग्रीसभूपरिवृढस्य भारतवर्षाभियानसमये ग्रीसदेशीयैर्भिषग्भिः सर्पविषशमनमगदम् अज्ञातमासीत्। तदा ये च सर्पैर्दष्टाः तेषां विषोपशमनं भारतीया भिषज एव चक्रुः।' इत्युक्त्वा पुनरपि—

"Professor wilson is of opinion that the Arabians of the 8th Century cultivated the hindu works on Medicine before those of the Greeks; and that the Charaka, the Susruta and the treatises called Nidana, &c, were translated and studied by the Arabians in the days of Harun and Mansur (A. D. 773), either from the originals, or more probably from translations made at a still earlier period into the language of Persia." (Dr. Wise. Introduction, Page xvii).

'अध्यापकः विलसनसाहवसहोदयो मन्यते यत् आरबदेशीयाः अष्टमशताब्द्यां ग्रीसदेशीयचिकित्साग्रन्थानुशीलनात् प्रागेव भारतीयान् चिकित्सानिन्धानानुशीलयामासुः। त्रिसप्तत्यधिकसप्तशततमेऽब्दे हारुणअल्-रसिद इत्याख्ये तथा मञ्जर इत्याख्ये च भूमिपतौ आरबभूमि परिपालयति मूलसंस्कृतग्रन्थान् उत अतिपुरैव पारसीकैः पारसीकभाषया कृतानुवादग्रन्थानेव आलम्ब्य तैश्चरकः सुश्रुतो निदानाख्यः संग्रहग्रन्थश्च आरव्यभाषया अनूदिताः अधीताश्च' इत्युक्तवान्।

श्रूयते च आलेकजाण्डारनाम्ना ग्रीसभूमिपतिनापि आहतसैनिकानां क्षतसंशोधने आयुर्वेदविदो भिषज एव नियोजिता आसन् इति।

डाक्टरक्लार्क (Dr. Clarke) साहेबसहोदयेनाप्युक्तम्—

"If the Physicians of tne present day would drop off from the pharmacopia all the modern drugs and chemicals and treat their patients according to the methods of Charaka, there would be less work for the undertakers and fewer chroanic invalids in the world."

'सम्प्रति चिकित्सकाश्चेत् इदानीन्तनानि सर्वाणि भेषजानि रसायनानि च वर्जयित्वा चरकमतमनुसृत्यैव व्याधितान् चिकित्सेयुः तदा पृथिव्यां मृत्युः क्षीणप्रभावः जीर्णाः व्याधयश्च विरला भवेयुः' इति।

अधुना जर्मनदेशीयैर्भिषग्भिर्यक्ष्मिणां यश्छागोपयोगचिकित्साविधिः (goat-tretment) प्रवर्तितः स चास्माकं

छागं मांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सशर्करम् ।
छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥ इति ।
(चक्रदत्त, यक्ष्मचिकित्सा) ।

तथा—

आजं क्षीरं घृतं मांसं क्रव्यान्मांसं तु शोषजित् ॥ इति ।
(वाग्भट, चिकित्सास्थान, ५ अध्याय) ।

इत्याद्यायुर्वेदानुशासनान्नातिरिच्यते ।

अपि च युरोपीयानां सीजेरियन् सेक्सन् (Caesarian section), लिथोटोमिक आपरेशन् (Lithotomic operation), सर्कुलेशन् अफ् व्लड (Circulation of blood) इत्याद्याश्चिकित्साविधयोऽपि अस्माकम् आयुर्वेदोक्तान् मूढ़गर्भ-नेत्र-कर्णरोगादिचिकित्साविधीन् तथा सुश्रुतोक्तरक्तसञ्चरणविधिं च नातिवर्त्तन्ते ।

इदानीं युरोपीयचिकित्सकाः वातपित्तश्लेष्मणां विकारकर्तृत्वं नाङ्गीकुर्वन्ति । मन्ये ते च जात्वपि तदेवापि मतम् उपजीव्य नवाविष्कृतव्याधिनिदानविषय इव भविष्यन्ति ।

डाक्टरवाइज (Dr. Wise) साहेवमहोदयेनोक्तम्—

"The Hindu philosophers undoubtedly deserve the credit of having though opposed by strong prejudice, entertained sound and philosophical views respecting the use of the dead to the living, and were the first scientific and successful cultivators of the most important and essential of all the departments of medical knowledge, practical anatomy." (Dr. Wise, Quoted in Kunja Lal Bhishagratna's English Translation of the Susruta Samhita, Introduction, Page. XX.)

'आर्यशास्त्रविदः सत्यपि वलवति शवस्पर्शनिषेधविधौ जीवितानां मृतदेहव्यवहारमनुमत्य असंशयं प्रशंसनीयाः सन्ति । ते हि आद्याः विज्ञानविदस्तथा चिकित्साविद्यायाः शारीरतत्त्वविद्यायाश्च विभागेषु अमोघम् अतिहितं सारं मूलतत्त्वमुद्भावितवन्तश्च ।' इति ।

अहो वत इत्थमत्यारूढ़िमधिगतोऽपि सोऽयमायुर्वेदः भारतीयानां दुरदृष्टवशात् सम्प्रति नितरां शोचनीयो जातः । यस्य प्राधान्यं देशान्तरेष्वपि धीमद्भिरवनतेन शिरसोररीकृतं, मतमनुसृतं, विधिरनुकृतः भेषजोपयोगश्च अनुमोदितः । यश्च यमनियमवतामस्माकम् ऋषीणां योगप्रभावः, तपसः फलम्, आर्षज्ञानस्य परिणतिः, धीशक्तेः प्रकर्षः, भूयोदर्शितायाः पराकाष्ठा, विज्ञानस्य चरमोत्कर्षः, हा हन्त हन्त

सोऽयमायुर्वेदः उपरक्तपार्वणशर्वरीश्वर इव मन्दीभावमुपगतः। आयुर्वेदस्य पठनपाठने शनैर्मन्दायमाने तदुक्तचिकित्सितमपि ह्रीयमानप्रभावं क्षीयमाणाधिकारञ्च। आयुर्वेदस्य मन्दीभावाद् भारतभूमिवासिनः खल्वल्पमेधसश्चाल्पायुषो जाताः। एवं दुर्दिनेऽपि महामान्येन मुम्वइभूभागगवर्नमेण्टेन कथं कथमपि लब्धात्मनः आयुर्वेदीयचिकित्सा-विधेः प्रसरो यदुपरुद्धः, तन्न युक्तमाचरितम्। अन्यच्च युरोपीयचिकित्साप्रसारपक्षपाति-भिरपि राजपुरुषैः एतच्चिन्तनीयं यद् यूरोपीयचिकित्साशास्त्रविदां भिषजामननुरूप-संख्यकत्वाद् भारतीयानां चिकित्सितेषु अद्यापि अत्यन्त्येषां भिषजामपेक्षा। अपि च यूरोपीयचिकित्सायां प्रसह्य प्रसरमधिगच्छन्त्याम् अपि अद्यापि बहवो भारतीया यथा आयुर्वेदचिकित्सायां सानुरागाः न तथा यूरोपीयचिकित्सायामुपलभ्यन्ते।

कलिकातावीडनोद्याने मत्तातपदानां प्रतिष्ठितप्रस्तरमूर्त्तेरावरणोन्मोचनोत्सवपरिषदि सभापतिः कलिकाताप्रधानविचारालयस्य प्रधानविचारपतिपदे लब्धप्रतिष्ठो माननीयो मनस्वी सर लारेन्स जेङ्किन्स् (Sir Lawrence Jenkins) साहेवमहोदयः प्रोक्तवान् यत्—

"This at least I may safely say that the Kaniraj of to-day is the inheritor of observations of Centuries and the collective experience of ages, and it is difficult to suppose that in that heritage nothing of good is to be found; rather would I believe that it embodied much that is high utility and worthy of investigation of the modern scientist. ❀ ❀

In India, with all its hundreds of millions, if we exclude the few, who have come under the spell of Western influence, it is to the Kaviraj and the Hakim that the sick men turn in their sufferings and their ailments, for their mental consolation; and it is in the method of their healing art and in their words of hope that the paients' confidence is placed." (Reported in the Bengalee of the 30th June, 1912, Town Edition.)

'अहमिदानीमसंशयं शंसामि यदिदानीन्तनाः आयुर्वेदविदो भिषजः शताब्दीभिर-र्जितस्य शास्त्रानुशीलनज्ञानस्योत्तराधिकारिणः बहुदिवससमाहृतबहुदर्शितायाः समवा-याश्च भवन्ति। अनेनोत्तराधिकारित्वेन न किञ्चित् हितं साध्यते एतन्नैव वक्तुमुचितम्। अहं पुनर्मन्ये इत्थमुत्तराधिकारित्वम् इदानीन्तनविज्ञानानुशीलनकृतां गवेषणायोग्यं श्लाध्यविज्ञानानुशीलनस्य च अङ्गम्। ❀ ❀ ❀ असंख्यैर्भारतीयैरध्युष्यमाणायामस्यां भारतभूमौ व्याधिताः यूरोपीयचिकित्साविधौ परिनिष्णातेषु केषुचिद्भिषक्षु श्रद्धालवोऽपि आत्मनो व्याध्युपशमनार्थं प्रायशः आयुर्वेदविदस्तथा हकीम इत्याख्यानगदङ्कारानु-

प्रतिष्ठन्ते। तेषां च भेषजद्रव्याण्याद्रियन्ते। आयुर्वेदविदां हकीमाख्यभिषजां च चिकित्सितविधिः तैरुक्तम् आश्वासनवचनञ्च तेषां व्याधितानां मनःशान्तये विश्वासाय च भवति' इति।

इदानीं कर्तव्यम्।

२७—माननीयाः भिषजः,—कालप्रभावात् उत दुर्ग्रहवशात् भारतवासिनाम् आत्मकृतकर्मणां दुर्विपाकाद् वा येन केनापि जातायामायुर्वेदस्येत्थमधोगतौ वयमत्र-पराद्धाः निरवशाः इत्यपि वक्तुमस्माभिर्नैव शक्यते, यतोऽयमायुर्वेदः अनर्घरत्नमिव अस्मास्वेव न्यासीकृतः। अस्य योगक्षेममस्माभिः खल्वनुचिन्तनीयम्। यथाऽस्य पठनं पाठनञ्च भूयो भूम्ना प्रवर्त्तितप्रसारं बहुलं भवेत्, तदुक्तचिकित्सितेष्वपि सर्वेषामनुरागो वर्धेत तथाऽस्माभिः सर्वदा सर्वथैव प्रयतितव्यम्।

तत्रायुर्वेदस्याध्ययनाध्यापनयोर्बहुलप्रवृत्तये तदुक्तचिकित्सितविधीनां च प्रकर्षाय आदौ तावदितस्ततः आयुर्वेदविद्यालयाः आयुर्वेदचिकित्सालयाः आयुर्वेदीयभेषजालयाः आयुर्वेदविद्यापरीक्षालयाश्च प्रतिष्ठापयितव्याः।

तत्रविद्यालयेषु वृत्तिपुष्टाः पर्यवदातश्रुताः परिदृष्टकर्माणो दक्षाः क्लेशक्षमाः ज्ञापन-समर्थाः शिष्यवत्सलाः अध्यापकाः प्रशान्तान् आर्यप्रकृतिकान् धृतिस्मृतिमतः शील-चेष्टावतो मेधाविनोऽत्यमनिनोऽनलसान तद्विद्यकुलजानन्तेसदः आहूय आयुर्वेदोपसेवा-गुणकीर्तनेन प्रवर्त्तयन्तो वृत्त्या पोषयन्तो वात्सल्येन गुरुभक्तिमुत्पादयन्तः आक्षेपसमाधिना शास्त्रानुरागं जनयन्तः अनधिगम्यमानमर्थमसकृद् आवेदयन्तः तथा अध्यापयेयुर्यथा तेषां शास्त्रावगतिः शास्त्रार्थे दृढता तत्त्वविज्ञानम् अभिधानसौष्ठवं च जायेत। एवं कृते पठनपाठनयोर्बहुला प्रवृत्तिर्भवेत्। अपि च अधुना मुद्रायन्त्रप्रभावात् पुस्तकानां सौलभ्येऽपि मुद्रितेषु पुस्तकेषु प्रायशः अशुद्धिबाहुल्यमुपलभ्यते। अतस्तत्संशुद्धये तत्त्वावगतये च लिखितानि पुरातनानि कालस्य लीलावैचित्र्यसाक्षीणि पुस्तकानि अति-महता यत्नेन बहुभिः परिश्रमैः विपुलवित्तव्ययैर्लोकप्रेषणैश्च नानादिग्भ्यः नानादेशेभ्यश्च समाहृत्य तेषु विद्यालयेषु संरक्षितव्यानि।

चिकित्सालयेषु चिकित्स्यमानानामातुराणां निदानपूर्वरूपलिङ्गादिभिर्व्याधिनिरूपणं तेषु तेषु व्याधिषु तत्तद्भेषजप्रयोगाः हिताहितयोरायुष्यानायुष्ययोर्विधप्रतिषेधौ च इत्येवं भिषक्कर्माणि, तथा भेषजालयेषु देशकालगुणवीर्यप्रभावसम्पन्नैः मात्रावद्भिर्द्रव्यैर्विविध-भेषजकल्पनानि भिषक्सहचरा एवान्तेमन्दो भूयो भूयः पर्यवेक्षेरन्। ततः समाप्तविद्येषु विद्यार्थिषु गृहं प्रस्थातुकामेषु आचार्यास्तान् परीक्षागृहेष्वाहूय तेषां शास्त्रार्थविज्ञानं चिकित्सिते भेषजकल्पने च कौशलं सम्यक् परीक्ष्य तान् भिषग्वृत्तये अनुमन्येरन्। एवमाचार्यैरनुमतेषु एव भिषग्वृत्तौ प्रवर्त्तमानेषु चिकित्साविधेरुत्कर्षः अज्ञानाञ्चोपरोधो भवेत्।

तत्र उपायाः ।

२८—अथ इत्थं गुरुकर्माणि विपुलवित्तैरेव साध्यानीति चेत् ? नात्राप्यस्माभिर्निराशामलीमसैर्भवितव्यम् । इदं भारतं वर्षं आत्मश्रियैव सुविश्रुतम् । अस्य धनधान्यसम्पदमन्यदेशीयाः अपि कामयन्ते । उपजीव्य वर्तन्ते च । अत्र बहवः कारुण्यपुण्यपीयूपनिष्यन्दिहृदयाः शान्तप्रकृतयो महान्तः पुण्यश्लोका धनवन्तः सन्ति । ते चास्माभिः प्रारिप्सिते कर्मणि धौरेयाः भविष्यन्ति । अन्यच्च पाकशासनसमानशासनः अनवरतम् अवनतसामन्तनृपतिवृन्दमौलिमालालालितचरणयुगलः उद्धतवैरिवंशदावायमाननिजभुजप्रतापः विद्योत्साही गुणग्राही निखिलभारतभूमिचक्रवर्त्ती अस्माभिरुपस्थानीयः । स चास्माकं पुण्ये कर्मणि सहायो भविष्यति । राजा हि प्रजानां धनस्य धर्मस्य जीवितस्य च रक्षिता । स एव प्रजानां योगक्षेमकरः । अपि च अन्यथापि राजा भिषग्भिरुपाचरणीयः । तथा च सुश्रुते मूढगर्भचिकित्सिते—

उत्कर्षणापकर्षणस्थानापवर्तनोत्कर्तनभेदनच्छेदनपीडनर्जूकरणदारणानि चैकहस्तेन गर्भं गर्भिणीं चाहिंसता । तस्मादधिपतिमापृच्छ्य परं च यत्नमास्थायोपक्रमेत । इति । (सुश्रुत, चिकित्सितस्थान, १५ अध्याय) ।

सभ्याः, इत्यास्तां विस्तरः । केवलमाशास्महे—

स्निग्धैः स्निग्धैर्दतिकरुणापुण्यपीयूपवर्षैः कामं कामं सुचिरमभवत् तर्पितः सर्वलोकः ।
आयुर्वेदो ग्रहपरिगतः पार्वणः शर्वरीशः सोऽयं भूयः प्रकटितरुचिर्जीवजीवातवेऽस्तु ॥

इति शम् ।





श्रीमान् वैद्य पं. यादवजी त्रिकमजी आचार्य, बम्बई.
संपादक, आयुर्वेदीयग्रन्थमाला।
अध्यक्ष, नि. भा. व. १५ वैद्यसंमेलन हरिद्वार (सन १९२५)
नि. भा. व. २१ वैद्यसंमेलन ग्वालियर (सन १९३१)

॥ श्रीः ॥

निखिलभारतीयपंचदशवैद्यसम्मेलनाधिवेशन हरद्वारके सभापति

श्रीमान् आयुर्वेदमार्तण्ड वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य महोदयका जीवन चरित्र।



श्रीमान् आचार्यजीका शुभ जन्म संवत् १९३८ में मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदाके दिन पोरवन्दर (काठियावाड़) में हुवा। आपके पिता श्रीत्रिकमजी आचार्य पोरवन्दरके राणासाहवके राजवैद्य थे। आप वंबई में संवत् १९४५ में पधारकर वैद्यक-व्यवसाय करने लगे। हमारे चरित्र नायकका विद्याभ्यास अपनी जन्मभूमिमें यज्ञोपवीतके उपरान्त पोरवन्दरराज्यकी संस्कृत पाठशालामेंही प्रारंभ हो गया था; किन्तु वंबई आनेपर आपने प्रसिद्ध पंडित श्रीवासुखीमजी वालजी, और व्यास घेलाराम मथुरादासजी, और शास्त्री जीवराम लल्लु भाईसे क्रमशः व्याकरण काव्य आदि पढ़कर पंडित श्रेणी में प्रवेश किया। आप वाल्यकालसे ही प्रतिभाशाली थे।

आपने संस्कृत साहित्यकी समाप्तिकर अपने कुल-परंपरागत चिकित्सा-व्यवसाय की ओर ध्यान दिया और अपने पूज्य पिताजीसे और राजस्थान निवासी श्रीमान् पं० गौरीशंकरजी वैद्यके पास आयुर्वेदशास्त्रका अध्ययन किया एवं साथही साथ वंबईमें प्रयाग निवासी प्रवासी श्रीमान् हकीम रामनारायणजीसे युनानी वैद्यकका आवश्यकज्ञान प्राप्तकर चिकित्सा व्यवसायमें प्रवृत्त हुवे। आपके पूज्य पिताजीका स्वर्गवास आपकी १८ वर्षकी अवस्था होनेके समयमेंही हो गया था—इसलिये आप पर सारे परिवारके भरण-पोषणका भार आ पड़ा। आपने सन् १८९९ में माधव-निदान मधुकोश व्याख्यासहितका संशोधनकार्य प्रारंभ किया और सन् १९०१ में प्रथम संस्करण निर्णयसागरप्रेसवालोंने प्रकाशित किया। उस समय आपकी अवस्था केवल १९ वर्षकी थी, इसी समय आपके आयुर्वेद-ग्रन्थ-संशोधन-कार्यका श्रीगणेश हुआ और वह सिलसिला आजतक निरतंर चला आ रहा है। आपने अवतक अनेक ग्रन्थ संशोधित व प्रकाशित किये हैं। संशोधन-कार्यके लिये आपने अनेक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंका संग्रह किया और आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला के प्रकाशन कार्यमें लग गये, जिसमें सन् १९१० से आजतक निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं।

१ रसहृदय तंत्र, २ रसप्रकाश सुधाकर, ३ गदनिग्रह, ४ राजमार्तंड, ५ नाड़ी-परीक्षा, ६ वैद्य-मनोरमा, ७ धारा-पद्धति, ८ आयुर्वेद-प्रकाश, ९ रसायन खंड, १० रस-पद्धति, ११ लौह-सर्वस्व, १२ रस-सार, १३ रस-संकेत-कलिका, १४ रस-कामधेनु ३ पाद, और १५ क्षेमकुतूहल।

इसके अतिरिक्त निर्णयसागरप्रेसके अध्यक्षको नीचे लिखे ग्रन्थ संशोधन कर प्रकाशनार्थ दिये हैं—माधवनिदान मधुकोश और आतङ्कदर्पण व्याख्यासहित, सुश्रुत श्रीडल्हण विरचित, निबंधसंग्रह व्याख्यासहित, चरकसंहिता श्री चक्रपाणि दत्त विरचित, श्री शिवदास सेन कृत व्याख्यासहित।

इसी प्रकार पं० जेठाराम मुकुन्द जी पणिया, बुकसेलर (बंबई) को निम्नलिखित ग्रन्थ

प्रकाशनार्थ दिये—सिद्ध मंत्र निघन्टु श्री केशव विरचित, श्री पं० वामदेव कृत व्याख्या समेत, वातप्रत्वादि निर्णय पं० नारायण विरचित, त्रिशती रावल शार्ङ्गधर विरचित।

गुजराती न्यूज प्रिंटिंग प्रेसके अध्यक्षको नीचे लिखे ग्रन्थ संशोधन कर प्रकाशनार्थ दिये—अनङ्गरंग, पंचसायक, कंदर्प चूड़ामणि।

इसके अतिरिक्त स्वर्गीय डा० श्रीमान् वामन गणेश देसाई बी. एस्. सी. (लन्दन) एल. एम. एन्ड एस्. (बंबई) एम्. बी. (लन्दन) विरचित औषधि संग्रह और भारतीय रसशास्त्र मराठी भाषाके परम उपदेय ग्रन्थ अपने ही व्ययसे प्रकाशित किये और "कर्म क्षेत्र" नामक बंगला ग्रन्थ श्रीमान् पं० शशिभूषण सेन विरचितका गुजराती अनुवाद करके प्रकाशित किया। आपका अनुवाद इतना सुन्दर हुआ कि हिन्दीमें भी उसका भाषान्तर हो गया है।

आप इतने उदार हैं कि अत्यन्त व्यय और कठिनता से संग्रह किये हस्त लिखित ग्रन्थ निम्नलिखित सज्जनोको प्रकाशनार्थ दे दिये—१ रसेन्द्र चूडामणि सोमदेव विरचित, मोतीलाल बनारसीदास संस्कृतबुक्‌डिपो लाहोर को दिया। २ काक चंडीश्वर कल्पतन्त्र, ३ रसाध्याय सटीक, चौखभा संस्कृतपुस्तकालय काशीके अध्यक्षको दिया। ४ वसवराजीय वैद्य-चिन्तामणि (यंत्रस्थ) श्रीमान वैद्यभूषण गोवर्धनजी छांगाणी नागपुर निवासीको दिया।

श्रीमान कविराज ठाकुरदत्तजी मुलतानी (लाहोर) को रसरत्नप्रदीपिका नामक पुस्तक दी। जिसे उन्होंने प्रकाशित किया।

श्रीमान् वैद्य पं० हरिप्रपन्नजीको 'रसयोगसागर'के संग्रहके लिये नीचे लिखी हस्तलिखित पुस्तकें आपने दीं—

१ चिकित्सारत्नाभरण, २ चिकित्सारहस्य, ३ भैषज्यसारामृतसंहिता, ४ योगसमुच्चय, ५ रसकंकालीय, ६ रसकल्पलता, ७ रसकामधेनु, ८ टोडरानंद, ९ रसकौमुदी (ज्ञानचन्द्रकृत), १० रसज्ञान, ११ रसदीपिका, १२ रसपद्धति, १३ रसप्रदीप, १४ रसपारिजात, १५ रसरत्नमणिमाला, १६ रसमुक्तावली, १७ रसरत्नदीपिका, १८ रसराजलक्ष्मी, १९ रसराजशंकर, २० रसराजशिरोमणि, २१ रससागर, २२ रसायनसंग्रह, २३ रसावतार, २४ रसावतार (माणिक्यचंद जैन), २५ रसालंकार, २६ रसेन्द्ररत्नकल्पद्रुम, २७ रसेन्द्रचूड़ामणि, २८ रसेन्द्रमंगल, २९ रसेन्द्ररत्नकोश, ३० लोहपद्धति, ३१ लोहसर्वस्व, ३२ योगचन्द्रिका, ३३ वसवराजीय, ३४ वैद्यचिन्तामणि, ३५ वैद्यचिंतामणि (लघु), ३६ वैद्यदर्पण, और ३७ स्त्रीविलास।

महामहोपाध्याय श्री कविराज गणनाथ सेन महोदय विरचित प्रत्यक्षशारीरका गुजराती अनुवाद डा० बालकृष्ण अमरजी पाठक एम. बी. बी. एस. द्वारा कराकर वैद्य जुगतराम शंकर प्रसाद भट्ट (झन्डु फार्मसीके संस्थापक) के साथ मिलकर छपवाकर प्रकाशित किया। आप नेपालके अति प्रवल गोरखा दक्षिणवाहु मान्यवर हेमराज शर्मा पंडित ज्यू महोदयसे प्राप्त कौमारभृत्य विषयक काश्यप संहिता वा वृद्धजीवकीयतंत्र मुद्रण करा रहे हैं जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

निबंधसंग्रह व्याख्या सहित सुश्रुत संहिताका तृतीय संस्करण कर रहे हैं। उसके निदान स्थानमें गयदास कृत न्यायचन्द्रिका नामक और पत्रिका नामक व्याख्या भी सम्मिलित कर रहे हैं।

आप दो वार नि. भ. वैद्य सम्मेलनके प्रमुख हो चुके हैं, और आप कई वार नि. भा. आयुर्वेदविद्यापीठके प्रधान रह चुके हैं।

आपको महामना मालवीयजी महाराजने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके आयुर्वेदिक कालेजका प्रथम प्रिंसिपल नियत किया; किन्तु अस्वस्थ्य हो जानेके कारण आप बंबई वापस चले गये।

आपको लाहोर, अमृतसर, कानपुर, पटना, कलकत्ता, बनारस और थाना जिलाके गुजरात प्रान्तीय पंचम वैद्य सम्मेलनके अवसर पर सम्मान पत्र दिये गये हैं।

आपको नि. भा. वैद्य सम्मेलनने मथुरा (यू. पी.) के वार्षिक अधिवेशनके अवसर पर "आयुर्वेदमार्तंड"की पदवी प्रदान कर गौरवान्वित किया।

आप चुपचाप कार्य करनेवालोंमें से हैं। आपने आजतक अपने नामके साथ वैद्य शब्दके अतिरिक्त किसी पदवी आदिका प्रयोग नहीं किया।

रसयोगसागरके प्रणेता वैद्य पं० हरिप्रपन्नजीके साथ मिलकर सन् १९११ में मुंम्बई आयुर्वेदीय पाठशाला स्थापित की जो अबतक चल रही है।

काशीके त्रिदोष और पंचमहाभूत परिषदके अधिवेशनके आप प्रधान मंत्री थे। आपकी उपस्थितिसे सारे देशके दार्शनिक और विद्वान वैद्य एकत्रित होकर ८ दिनतक कार्य करते रहे।

आप बड़े मिलनसार सरल और मृदुस्वभावके हैं। आप सदाही विद्यार्थियों की हितचिन्तना करते रहते हैं। आपका यह विचार रहता है कि काम करनेवाले वैद्य सारे देशमें तैयार करते रहना चाहिये। आपके उपदेशोंसे अनेक योग्य विद्वान इस समय कार्यक्षेत्रमें प्रवेश कर चुके हैं।

आप आयुर्वेदीय अनेक संस्थाओंके उच्चपरिक्षाओंके परीक्षक नियुक्त होते रहे हैं।

आपका आयुर्वेदीय औषधालय, बंबई-जैसे महानगरमें धनाढ्योंके साथही साथ असंख्य दीनजनोंकी निस्वार्थ सेवा करा रह है।



१५

निखिलभारतीय पंचदश वैद्यसम्मेलनाधिवेशन हरद्वारके सभापति, बम्बईके स्वनामधन्य चिकित्सक, श्रीमान् आयुर्वेदमार्तण्ड वैद्य

यादवजी त्रिकमजी आचार्य महोदयका भाषण।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम्॥
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि॥

परममाननीय धन्वन्तरितुल्य वैद्यमहोदय तथा अन्य उपस्थित सभ्यगण!

आज इस सभामें मेरेसे अधिक ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध वैद्य महोदयोंके विद्यमान होनेपर भी आप लोगोंने मुझे इस आसनके ग्रहण करनेकी जो आज्ञा दी है उसके योग्य न होनेपर भी आप महानुभावोंकी आज्ञाका पालन करना अपना परम कर्तव्य समझकर ही मैं इस आसनको ग्रहण करता हूँ।

यह हरद्वार क्षेत्र वही पुण्यभूमि है जहाँ हिमालयके पवित्र प्रदेशमें हमारे पूर्वज महर्षिगण जगत्‌हितकी कामनासे आयुर्वेदकी पुण्यकथा करनेके लिये एकत्रित होते थे और आयुर्वेदके गूढ़ तत्त्वोंपर विचार करते थे, तथा अपने तप और बुद्धिके प्रभावसे आयुर्वेदको सर्वसम्मानित शास्त्र बनाये थे, आज उसी आयुर्वेदवर्धिनी पुण्यभूमिपर हम लोग उस आयुर्वेदकी रक्षाके लिये तथा उसकी अवनत दशाको उन्नत करनेके लिये एकत्रित हुए हैं।

आयुर्वेदकी—जगत्‌के सर्वचिकित्साशास्त्रोंकी अपेक्षा प्राचीनता, आयुर्वेदका इतिहास, आयुर्वेदके सिद्धान्तोंकी प्रामाणिकता, आयुर्वेदके विषयमें विदेशीय विद्वानोंके उत्तम अभिप्राय, आयुर्वेदीय चिकित्सापद्धतिकी और चिकित्सापद्धतिओंकी अपेक्षा विशेषता इत्यादि विषयोंका पूर्वसम्मेलनोंके सभापति महोदयोंने बड़ी विद्वत्ता और प्रामाणिकतासे विवेचन किया है। उन विषयोंमेंसे मेरे लिये कोई वक्तव्य बाकी नहीं रह गया है। अतः उनहीं बातोंकी-पुनरुक्ति करके आपके बहुमूल्य समयको मैं व्यर्थ लेना नहीं चाहता, किन्तु आयुर्वेदकी वर्तमान अवनतदशासे उसको फिर उन्नतिके पथपर लानेके लिये वर्तमान समयमें हमको क्या-क्या करना चाहिए इस विषयपर

मैं थोड़ेसे कुछ अपने विचारोंको आप लोगोंकी सेवामें उपस्थित करता हूँ। आशा है कि उसपर आप लोग अवश्य ही विचार करेंगे।

आयुर्वेदके अध्ययन-अध्यापनका प्रचार।

आयुर्वेदकी रक्षा और उन्नतिके लिये यह बात अति आवश्यक है कि आयुर्वेदके पठन-पाठनका प्रचार करके सुशिक्षित और अनुभवी वैद्य तैयार किये जाँय। ऐसे वैद्य तैयार करनेके लिये भारतवर्षके सब प्रान्तके बड़े-बड़े शहरोंमें आयुर्वेदके विद्यालय और महाविद्यालय स्थापित किये जाँय। आयुर्वेदके एक सर्वाङ्गपूर्ण और आदर्श महाविद्यालके स्थापन करनेका प्रस्ताव इस सम्मेलनने किया था और इस कार्यके लिए भारतवर्षके कुछ अग्रगण्यवैद्य महोदयोंने कुछ प्रयत्न भी किया था; परंतु बड़े खेदकी बात है कि हमारे दुर्भाग्यवश वह प्रस्ताव अभीतक कार्यरूपमें परिणत नहीं हुआ है। मेरी रायसे भातवर्षके बड़े-बड़े शहरोंमें जहाँ चार पाँच भी पठित और अनुभवी वैद्य हों, वहाँ विद्यालयका स्थापित होना आवश्यक है। जहाँ पढ़ानेके साथ प्रत्यक्षकर्मदर्शनका भी प्रबन्ध हो, वहाँके स्थानीय वैद्य आपसमें मिलकर उस विद्यालयमें अवैतनिक कार्य करें तो थोड़ेही खर्चमें अच्छा विद्यालय चल सकता है। उन विद्यालयोंमें अध्यापनोपयोगी पुस्तकसंग्रह, शारीरके नकशे और प्रतिकृति (Models) अस्थिकंकाल (Skeleton) बाजारमें मिलनेवाली खनिज और उद्भिज औषधियाँ तथा विद्यार्थी और अध्यापकोंके बैठने पढ़ाने योग्य फर्नीचर इतनी सामग्रियाँ हों। वहाँ स्थानीय वैद्य नियत समयपर आकर विद्यार्थियोंको पढ़ाया करें और औषधप्रयोग बनाना तथा रोगीको देखकर उसकी चिकित्सा कराना इन कार्योंको सायं प्रातःकाल अपने घरपर दिखलावें। छुट्टीके दिन विद्यार्थियोंको शहरके बाहर लेजाकर हरी वनस्पतियोंका भी परिचय करावें। यदि इतना प्रबन्ध किया जाय तो अच्छे, सुशिक्षित और अनुभवी वैद्य तैयार हो सकते हैं। विद्यालयका स्थान किसी वैद्यके घर न रख कर उसे स्वतंत्र रखना चाहिए। इतना कार्य करनेके लिये कोई विशेष धनकी भी आवश्यकता नहीं है। केवल प्रारंभिक खर्च—हजार, दो हजार रुपयोंसे ही कार्यका आरंभ हो सकता है। इतना व्यय स्थानीय वैद्य स्वयं या उस शहरके धनी लोगोंकी सहायतासे कर सकते हैं। इसके लिये केवल इतनी ही बातकी जरूरत है कि वहाँके स्थानीय वैद्य आपसके वैमनस्यको छोड़कर प्रेमभावसे मिलकर कार्य करें, तो अच्छी सफलता मिलेगी। ऐसे कार्योंमें स्थानीय विद्वान् वैद्योंको अपना कर्तव्य समझकर अवैतनिकभावसे कार्य करना चाहिए। तभी ऐसे कार्य चल सकते हैं, अन्यथा इन कार्योंके लिये वैतनिक अनुभवी और पठित वैद्योंका मिलना मुश्किल है। ऐसे विद्यालय चलानेसे वैद्योंको कई प्रकारके लाभ होंगे। एक तो उनकी पढ़ी हुई विद्या उपस्थित रहेगी, (व्यवसायमें पड़े हुए विद्वानोंको अपनी विद्याको उपस्थित रखनेके लिये अध्यापनसे उत्तम उपाय

दूसरा नहीं है।) इससे उन्हींका अनुभव बढ़ेगा। लोगोंमें खूब यश होगा, और वे ऋपिऋणसे मुक्त होंगे।

भारतवर्षके सब स्थानोंमें आयुर्वेदका पाठ्यक्रम, परीक्षा और पदवियोंके एक समान होनेकी आवश्यकता।

आज सारे भारतवर्षमें आयुर्वेदके जितने विद्यालय हैं, उन सबमें पाठ्यक्रम भिन्न २ रखा गया है और परीक्षायें भी अपनी २ भिन्न २ रखी गई हैं, तथा पदवियाँ भी भिन्न २ दी जाती हैं। इस तरह सबको अपनी अलग २ खिचड़ी पकाना ठीक नहीं है। सम्पूर्ण भारतवर्षके लिये आयुर्वेदकी पाठ्यप्रणाली, परीक्षा और पदवियाँ एक प्रकारकी होनी चाहिए। ऐसा करनेसे हमारी पदवियोंका लोगोंमें गौरव बढ़ेगा और लोग उनका अधिक विश्वास करेंगे। नि. भा. आयुर्वेद विद्यापीठने एक पाठ्यप्रणाली तैयार की है और नि. भा. वैद्यसम्मेलनने इस पाठ्यप्रणालीको स्वीकार भी किया है। मेरी राय है कि सब आयुर्वेदविद्यालयोंमें इस पाठ्यप्रणालीके अनुसार ही पढ़ानेका प्रबन्ध हो और सभी विद्यार्थियोंको विद्यापीठकी परीक्षामें बैठाया जाय।

आजकल कई संस्थायें नि. भा. आयुर्वेदविद्यापीठके सदृश अपनी २ परीक्षा लेकर पदवी देने लग गई हैं, यह भी ठीक नहीं है। यदि वे लोग कुछ कार्य करना चाहते हैं तो सम्मेलनमें आकरही कार्य करें। यदि हमारे हाथमें राज्यसत्ता होती तो ऐसी डिग्री (पदवी) देनेवालोंको कानून बनवाकर रोक देते। हालमें ऐसी सत्ता हमारेमें नहीं है, तथापि इतना हमको अवश्य जाहिर कर देना चाहिए कि एक २ संस्थायें स्वतन्त्र रूपसे परीक्षा लेनेका आडंबर करके जो डिग्रियाँ देती हैं वे विश्वास योग्य नहीं है।

नि. भा. आयुर्वेदविद्यापीठके पाठ्यक्रमानुसार नई पाठ्यपुस्तक बननेकी आवश्यकता।

हम ऊपर कह चुके हैं कि संपूर्ण भारतवर्षके लिये आयुर्वेदका पाठ्यक्रम एक होना चाहिए। इस बातको लेकर वैद्यसम्मेलनने एक पाठ्यक्रम तैयार करके प्रकाशित किया है। पाठ्यक्रम वर्तमान समयमें उपयोगी और बहुत अच्छा है। परन्तु इसमें व्यवहारायुर्वेद, प्रसूतितन्त्र, विषतन्त्र, मानसरोग आदि कई विषय ऐसे रखे गये हैं कि जिन विषयोंपर अभी तक कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इसके अलावा शारीर, शल्यतन्त्र, शालाक्यतन्त्र आदि और विषयोंपर भी जब तक पाठ्यक्रमानुकूल ग्रन्थ तैयार न हो जाँय तब तक विद्यार्थियोंको और पढ़ानेवालोंको पठन-पाठनमें बड़ी ही असुविधा होती है, और पाठ्यक्रमानुसार सब स्थानोंपर पढ़ानेका प्रबन्ध न होनेसे और परीक्षाके समय परीक्षकोंके द्वारा पाठ्यक्रमानुसार प्रश्नपत्र निकलनेसे विद्यार्थियों-

को परीक्षा देना कठिन हो जाता है, इसलिये मेरी रायमें या तो पाठ्यक्रमानुसार पुस्तक शीघ्र बन जानी चाहिए या परीक्षाप्रणालीमें परिवर्तन होना चाहिए। पाठ्यक्रमानुसार नये ग्रन्थ लिखनेका प्रारम्भ कई महोदयोंने किया है। जैसा कि श्रीमान् महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेनजीने प्रत्यक्षशारीरके दो खंड और सिद्धान्त-निदानका एक खंड प्रकाशित भी किया है। परन्तु ये दोनों ग्रन्थोंके संपूर्ण न छप जानेसे पढ़ने-पढ़ानेवालोंको बड़ी असुविधा होती है, क्योंकि शारीरका विषय आधा इस ग्रन्थसे पढ़ाया जाता है और अवशिष्ट भाग "हमारे शरीरकी रचना" प्रभृति पुस्तकोंसे पढ़ाया जाता है। दोनोंमें जो पारिभाषिक शब्द दिये गये हैं वे कई अंशमें भिन्न २ हैं, इस कारण विद्यार्थी लोग अधिक भ्रममें पड़ जाते हैं। इसलिये कविराज महोदयजीसे हमारी प्रार्थना है कि वे इन दोनों ग्रन्थोंको संपूर्ण करके शीघ्र प्रकाशित करें। नेत्ररोगके ऊपर नागपुरवाले श्रीमान् डाक्टर मुंजेजीने एक पुस्तक संस्कृत भाषामें लिखी है। जिसके छपनेकी सूचना श्रीमान् पंडित कृष्णशास्त्री कवडेजीने राजमहेन्द्रीके वैद्यसम्मेलनके अध्यक्षस्थानसे दी थी, जिसको आज दो वर्ष हो चुके हैं, परन्तु अभी तक वह पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है। श्रीमान् डाक्टर मुंजेजीसे भी हम प्रार्थना करते हैं कि वे अपनी पुस्तकको शीघ्र प्रकाशित करें।

आयुर्वेदीयपारिभाषिकशब्दकोशनिर्माण।

जब हम पाठ्यक्रमोपयुक्त नवीन पुस्तक निर्माण करनेका विचार करते हैं, तब हमारे सामने यह विचार आकर उपस्थित होता है कि उन ग्रन्थोंके लिखनेके समय जो नूतन पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग करना पड़ेगा, उन शब्दोंका निर्माण कैसे करना चाहिए। नया ग्रन्थ बनाते समय इस विषयमें आयुर्वेदकी अपेक्षा यूनानी या पाश्चात्य चिकित्साशास्त्रमें जो बातें अधिक और संग्राह्य मालूम हों उनको लेनेके लिये अरबी और अंग्रेजी ग्रन्थोंकी जरूर सहायता लेनी पड़ेगी, और उस समय उन नये अरबी और अंग्रेजी शब्दोंके स्थानपर किन २ संस्कृत शब्दोंका प्रयोग होना चाहिए, इस प्रश्नका निर्णय सब प्रान्तके वैद्योंकी सम्मतिसे होना चाहिए, बाद उसको एक कोश-(Dictionary) के रूपमें छपवाकर प्रसिद्ध करना चाहिए। इस कोषमें जहाँतक मिलसकें प्राचीन शब्दोंको उपयोगमें लाना चाहिए और नये शब्दोंको भी तदनुकूल ही बनाना चाहिए; तथा सब ग्रन्थलेखकोंसे प्रार्थना करनी चाहिए कि वे सब लोग उन ही शब्दोंका प्रयोग करें, अपने २ नये २ शब्द न बनावें; क्योंकि एक द्रव्यके लिये कई नये पारिभाषिक शब्द बननेसे अव्यवस्था होनेकी संभावना रहती है।

हस्तलिखित पुस्तकोंका संग्रह और प्रकाशन।

आयुर्वेदका प्राचीन ग्रन्थभाण्डार बहुत बड़ा है। हमारे पूर्वज हमारे लिये बहुत बड़ी ग्रन्थसंपत्ति छोड़ गये हैं। बीकानेर, मैसोर, जम्मू, नेपाल, तांजोर, अलवर,

बडोदा आदिके राजकीय पुस्तकालयोंमें तथा ऐशिआटिक सोसायटी बंबई, ऐशिआटिक सोसायटी कलकत्ता, संस्कृतकॉलेज कलकत्ता, कीन्स् कॉलेज बनारस, भाण्डारकर रिसर्च इन्सस्टीट्यूट् पूना, आनंदाश्रम पूना, डी. ए. वी. कॉलेज लाहोर, गवर्नमेंट ओरिएन्टल् लाइब्रेरी मद्रास, इन्डिआ ओफिस लाइब्रेरी लंडन आदिके पुस्तकालयोंमें तथा भारतवर्षके भिन्न २ प्रान्तस्थ वैद्योंके घरोंमें वैद्यकके सब विषयोंके सैकड़ों ग्रन्थ रखे हुए हैं। विशेष यत्न करनेसे इन ग्रन्थोंकी नकल (प्रतिलिपि) मिल सकती है। परंतु यह बात सबके लिये सुलभ नहीं है, इसलिये वैद्यसंमेलनको इन ग्रन्थोंका संग्रह करके अपना एक पुस्तकालय बनाना चाहिए। इसकार्यमें लाखों रुपयोंकी जरूरत नहीं है। हालमें दसहजार रुपयोंके चन्देसे कार्यारंभ किया जा सकता है। ऊपर कहे हुए पुस्तकालयोंसे ग्रन्थ लिखवाकर मँगाये जाँय। प्रत्येक ग्रन्थकी दो दो नकल (प्रतियाँ) रखीं जाँय। कोई वैद्य महाशय इनको देखनेके लिये मँगाना चाहें तो उनसे द्विगुण या त्रिगुण द्रव्य जमानत (Deposit) रखवाकर निर्धारित समयतकके लिए पुस्तक दी जाँय। ऐसे ग्रंथसंग्रहालयके होनेसे वैद्योंका बड़ा भारी उपकार होगा।

जिसतरह इन पुस्तकोंका संग्रह करना आवश्यक है वैसेही इन ग्रन्थोंका संशोधन करके छपवाना भी परम आवश्यक है। आजकल ये ग्रन्थ खानमें पड़े हुए रत्नोंके सदृश किसीके भी उपयोगमें नहीं आते। इन ग्रंथोंका संशोधन करके प्रकाशन करना बहु धन और समय सापेक्ष है। यह किसी एक व्यक्तिसे होनेवाला कार्य नहीं है। यदि भारतवर्षके विद्वान् और धनी वैद्य महोदय इन ग्रन्थोंमेंसे एक-एक ग्रन्थ भी संशोधन करके निज-निजके व्ययसे छपवाकर प्रसिद्ध करें तो थोड़े ही समयमें यह ग्रन्थसंग्रह सबका सब प्रसिद्ध हो जायगा। इससे वैद्य समाजको बड़ा भारी लाभ होगा, और साथ-साथ उन ग्रन्थप्रकाशकोंका भी संसारमें बड़ाभारी यश होगा। इस ओर ध्यान देनेके लिये मैं अपने वैद्य भाइयोंसे विशेष रूपसे आग्रह करता हूँ।

विशेषफलप्रद प्रयोगोंका संग्रह।

आयुर्वेदके ग्रन्थभाण्डारमें एक-एक रोगपर सैकड़ों प्रयोग लिखे हुए हैं। उनमेंका कोई भी प्रयोग सर्वथा निष्फल नहीं है। देशकालादिके अनुसार प्रयोग करनेसे सब प्रयोग कुछन कुछ काम देते ही हैं। तथापि उनमेंके कई प्रयोग तो विशेषरूपसे फलप्रद सिद्ध हुए हैं। कई प्रयोग ऐसे भी हैं कि जिनको एक-एक प्रान्तवाले विशेषरूपसे काममें लाते हैं, और उससे बहुत लाभ उठाते हैं, परंतु दूसरे देशके वैद्य उन प्रयोगोंके नाममात्रसे भी अज्ञात रहते हैं। जैसे सूतशेखररसको महाराष्ट्र देशमें आबालवृद्ध सब जानते हैं और आरोग्यवर्धनीरसको काठियावाड़ प्रान्तके वैद्य बहुत उपयोगमें लाते हैं, ऐसेही तत्तप्रान्त प्रसिद्ध और विशेषफलप्रद प्रयोगोंका संग्रह करके उसको

ग्रन्थरूपमें प्रकाशित करना चाहिए। उसमें किस प्रान्तमें, किन किन बीमारियोंपर, किस हालतमें और किस अनुपानसे उसका व्यवहार करते हैं, यह भी लिखना चाहिए। ऐसी पुस्तक वैद्योंको चिकित्सामें अत्यन्त उपयुक्त होगी।

औषध द्रव्योंकी और प्रयोगोंकी देशकालानुसार मात्रा (Dose) का निर्णय होनेकी आवश्यकता।

यद्यपि "मात्राया नास्त्यवस्थानं कालमग्निं वयो वलम्। प्रकृतिं देशदोषौ च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत्।" ऐसा आयुर्वेदका सिद्धान्त है। तथापि नवीन चिकित्सा करनेवाले और अल्पबुद्धि तथा अल्पज्ञानवाले वैद्योंके लिये औषध द्रव्यों और प्रयोगोंका सामान्यरूपसे तथा मात्राका ज्ञान होना अति आवश्यक है। इसी उद्देश्यसे शास्त्रकारोंने कई स्थानोंपर प्रयोगोंकी मात्रा लिखी भी है। परंतु वह मात्रा उस समयके अनुकूल होनेपर भी वर्तमान समयके क्षीण-बल-शरीरवाले लोगोंके लिये अधिक होनेसे अयोग्य है, और औषधद्रव्योंकी मात्रा प्रायः निघण्टुओंमें लिखी ही नहीं गई है। इसीलिये प्रसिद्ध २ प्रयोगोंकी वर्तमान समयोपयोगी मात्राको अनुभवी वैद्योंके द्वारा निर्णीत कराकर प्रसिद्ध करना चाहिए। औषधद्रव्योंकी मात्राका निर्णय करते समय यूनानी हकीमोंके 'मखजन उल अदविया' तथा डाक्टरोंकी 'मिटीरिया मेडिका' से भी सहायता मिल सकती है। इनकी सहायता और विद्वान् वैद्योंके अनुभवसे उनकी भी मात्राका निर्णय कराकर प्रसिद्ध करना चाहिए।

मानपरिभाषाके निर्णयकी आवश्यकता।

चरक, सुश्रुत, शार्ङ्गधर, भैषज्यरत्नावली आदि ग्रन्थोंकी मानपरिभाषामें अन्तर है। हालके व्यवहारमें भी बङ्गालके और दूसरे देशके वैद्य जो मानपरिभाषाका व्यवहार करते हैं, उसमें भी फरक है। द्रवद्वैगुण्यपरिभाषाके विषयमें ग्रन्थकारोंमें भी मतभेद देखा जाता है और वर्तमान समयका वैद्यव्यवहार भी भिन्न-भिन्न है, इससे व्यवहारमें बहुत असुविधा होती है। इसलिये सब प्रान्तके वैद्योंकी सम्मतिसे सारे भारतवर्षके लिए एकही मानपरिभाषा निश्चित होनी चाहिए, और तदनुकूल सर्वत्र व्यवहार होना चाहिये।

रसशास्त्रके प्रतिसंस्कारकी आवश्यकता।

आयुर्वेदके चिकित्साविभागमें रसशास्त्रका स्थान बहुत ही उच्च है। वर्तमान समयमें रसचिकित्सासे हम लोग बहुत ही लाभ उठा रहे हैं, आयुर्वेदके ग्रन्थभांडारमें रसग्रन्थोंका संग्रह आधेसे कम नहीं है। परन्तु इन रसग्रन्थोंके अन्दर कई बातें ऐसी भी हैं, जिनको वर्तमान समयमें वैद्यलोग चिकित्साके काममें नहीं लाते। उदाहरणस्वरूप जैसेकि जारण, रञ्जन, सारण, क्रामण, वेधन, आदि संस्कारोंको ठीक-ठीक जाननेवाले

और जानकर भी उसको काममें लानेवाले वैद्य इस समय भारतवर्षमें विरलेही हैं, रसशास्त्रमें कहे हुए धातुवादको कई लोग कृत्रिम (Imitation) सोना रूपा बनानेकी विद्या बताते हैं, और कई लोग इसको बिलकुल मिथ्या ही बताते हैं। रसशास्त्रमें कही हुई दिव्यौषधि, शिलोदक आदिका परिचय हालमें किसी वैद्यको है या नहीं इसमें भी सन्देह है। रसशास्त्रके अंदर कई बातें ऐसी हैं जिनका ठीक २ मर्म समझना हम लोगोंके लिये, गुरुपरंपरा नष्ट होनेके कारण कठिन काम हो गया है। अध्यापनके समय इन बातोंका शब्दार्थ ही हम विद्यार्थियोंको बता देते हैं। स्वयं अनुभव न होनेसे इन बातोंका ठीक-ठीक मर्म हम विद्यार्थियोंको नहीं बता सकते। मेरी रायमें पाठ्यपुस्तकोंसे ऐसी बातें जिनको कि हम हालमें काममें नहीं लाते उनको हटा देना चाहिए, यातो उनको समझनेके लिये सम्मिलित प्रयत्न करना चाहिए या प्रयत्न करनेवालेको पुरस्कार देनेका निश्चय करना चाहिए। लाहोरके वैद्यराज श्रीमान् कविराज नरेन्द्रनाथ मित्रने रसतरंगिणी नामक ग्रन्थ हालमें प्रसिद्ध किया है। जिसमें उन्होंने बहुत-सी नयी; परंतु उपयुक्त बातोंका संग्रह किया है और अनुपयुक्त बातें प्रायः छोड़ दी हैं। इसलिये हालमें और ग्रन्थोंकी अपेक्षा यह ग्रन्थ विद्यार्थियोंको पढ़नेके लिये विशेष उपयुक्त होगा। उन्होंने प्राचीन ग्रन्थोंसे संगृहीत कई द्रव्योंको संदिग्ध समझकर छोड़ दिया है। आशा है कि भविष्यमें उन द्रव्योंका भी निर्णय करके अपने ग्रन्थमें समाविष्ट कर देंगे।

इसी प्रकार रसशास्त्रमें प्रसिद्ध और अति उपयोगी ऐसे कई द्रव्य हैं, जैसे कि वैक्रान्त, चपल, खर्पर, कंकुष्ठ, रसाञ्जन, अग्निजार, सौराष्ट्री आदि द्रव्य भी अभी वैद्योंके सामने संदिग्ध हैं। वैक्रान्त शब्दसे कई लोग तुरमरी (Tormalina) और कई लोग चकमकका पत्थर (Quartz), कंकुष्ठ शब्दसे कई लोग मुरदारसींग (Litharge) और कई लोग उशारेरेवंद (Gamboge) लेते हैं। रसाञ्जन शब्दसे बंगालके वैद्य कालासुरमा लेते हैं। सौराष्ट्री शब्दसे कई वैद्य गोपीचंदनकी मिट्टीको भी काममें लाते हैं। ऐसे ही और चीजोंके विषयमें भी सन्देह है। परंतु विस्तारभयसे मैंने संक्षेपमें कुछ चीजोंको उदाहरणके तौरपर यहाँ बताया है। इन चीजोंका निर्णय न होना हमारे लिये एक बड़ी भारी लज्जाकी बात है, इस विषयमें हमारे बंबईके परममित्र श्रीमान् डाक्टर वामन गणेश देसाईने बड़े परिश्रमसे कई पदार्थोंका निर्णय करके एक पुस्तक लिखी है, जो थोड़े दिनोंमें प्रसिद्ध होगी। हम लोगोंमें जो वैद्य महोदय विद्वान् और साधनसंपन्न हैं, उनसे मेरी प्रार्थना है कि रसतन्त्रके जारणादि संस्कार और धातुवादके विषयमें स्वयं अनुभव करके उससे जो फलनिष्पत्ति हो उसको प्रसिद्ध करें।

रोगविशेषके चिकित्सक।

इस समय भी भारतवर्षमें लिंगनाश (cataract), ग्रहणी, अर्श, भगन्दर

आदि विशेषरोगोंकी चिकित्सामें सिद्धहस्त बहुत वैद्य हैं, उनका विशेषरूपसे समादर करना चाहिए। दूसरे नेत्रकर्णादि रोगचिकित्साओंके विशेषज्ञ तैयार हों, ऐसा यत्न करना चाहिए।

आयुर्वेदीयपद्धतिके अनुसार शिक्षित परिचारक, परिचारिका और साविका (दाई) तैयार करना।

चिकित्साका एक अंग परिचारक भी है। बहुत-से रोगी अच्छी परिचर्यासेही अच्छे हो सकते हैं, इस बातको ध्यानमें लेकर पाश्चात्यवैद्योंने एक परिचारिका (Nurse) का वर्ग तैयार किया है। हमको भी अपनी सहायताके लिये ऐसा एक वर्ग तैयार करना चाहिए, और उनको आयुर्वेदानुकूल रोगीपरिचर्या सिखलाकर प्रमाणपत्र देना चाहिए। उनकी शिक्षाके लिये रोगीपरिचर्याके विषयमें अंग्रेजीमें अच्छे-अच्छे ग्रन्थ बने हैं, उनमेंसे जो बातें अपने देशकालानुसार अनुकूल हों उनको ग्रहण करके तथा उनमें आयुर्वेदानुसार पथ्यविधान, काथादि बनाना आदि विषयको बढ़ाकर संस्कृत और देशीय भाषाओंमें पुस्तकें तैयार करना चाहिए।

इसी प्रकार आयुर्वेदीय पद्धतिके अनुसार शिक्षित साविका (Midwife) का एक वर्ग भी वैद्योंकी सहायताके लिये तैयार करना चाहिए। अपने देशमें परदेका रिवाज होनेसे पुरुषवर्ग प्रसव-कार्य नहीं करा सकता। इस समय अपने देशमें इस कामको करनेवाली बहुत स्त्रियाँ हैं, परन्तु वे अनुभवी होनेपर भी अशिक्षित हैं। इसलिये इस विषयमें भी प्राचीन वैद्यक और पाश्चात्य वैद्यककी सहायतासे अपने देशकालानुसार ग्रन्थ तैयार करके कुछ पढ़ीलिखी स्त्रियाँ इस विषयकी शिक्षा देकर तैयार की जाँय, तो इससे भी वैद्योंको बहुत सहायता मिलेगी।

आयुर्वेदविद्यालयोंमें प्रत्यक्षकर्मदर्शनके प्रबन्धकी आवश्यकता।

हालमें हिन्दुस्तानके प्रायः सब प्रान्तोंमें देशी राजाओंकी और धनी लोगोंकी तरफसे आयुर्वेद विद्यालय खुल गये हैं, यह हर्षका विषय है। परंतु उनमें अधिकांश विद्यालय ऐसे हैं, जिनमें प्राचीन प्रणालीसे केवल ग्रन्थ मात्र पढ़ा दिये जाते हैं, वहाँ प्रत्यक्षकर्मदर्शनके लिये कुछ भी व्यवस्था नहीं है। आयुर्वेदशास्त्रमें न्याय-व्याकरण आदिके सदृश केवल पठन-पाठनमात्रसे ही काम नहीं चल सकता। जो पढ़ाया जाय उसके अधिकांश भागको प्रत्यक्ष करके दिखलानेकी भी जरूरत है। सुश्रुतने लिखा है कि "यस्तु केवल शास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः। स मुह्यत्यातुरं प्राप्य प्राप्य भीरुरिवाहवम्।" अतः उन विद्यालयोंके संस्थापकोंसे हमारा निवेदन है कि जिस तरह उन लोगोंने धन लगाकर विद्यालय खोलकर अपनी उदारताका परिचय दिया है, उसी प्रकार उसमें प्रत्यक्षकर्मदर्शनका भी प्रबन्ध करके अपने कार्यकी सफलताके लिये विशेष प्रयत्न करें। ताकि किया गया खर्च विशेष रूपसे सफल हो।

निघण्टुओंमें अधिक द्रव्य, तथा अधिक द्रव्यगुणके संग्रह करने और वनस्पतियोंके नवीनरूपसे वर्गीकरण करनेकी आवश्यकता।

हम लोग चिकित्सामें जिन द्रव्योंको कार्यमें लाते हैं, उनकी अपेक्षा कई अधिक दृष्टफल (Useful) द्रव्योंको यूनानी हकीम और डाक्टर लोग काममें लाते हैं। जैसेकि इपेकाक्युआन्हा डिजिटेलिस्, अर्गट, सिंकोना, उशवा, कोकेन आदि उनमें कई द्रव्य ऐसे हैं, जो वास्तवमें चिकित्सामें अत्यन्त उपयोगी हैं। अपने निघण्टुओंमें उनका संग्रह अवश्य करना चाहिए। कई उपयुक्त द्रव्य ऐसे भी हैं जिनका संग्रह प्राचीन निघण्टुओंमें नहीं है। जैसेकि—गुड़मार, वाकेरी, सप्तरंगी, अमरकंद आदि, और उनसे हम विशेष लाभ भी उठाते हैं। हमारे निघण्टुओंमें ऐसे द्रव्योंका संग्रह होना चाहिए।

कई द्रव्योंके कई विशेष गुण हमारे निघण्टुओंमें नहीं लिखे हैं, परंतु यूनानी हकीमोंने मखजनमें और डाक्टरोंने मिटीरिआ मेडिकामें उन गुणोंको लिखा है। जैसे कि दाडिमके मूलकी छाल और पीतकुष्मांडबीजका कृमिनाशक गुण, बिंबी (कुंदरू)का मधुमेहनाशक गुण आदि। इनका संग्रह भी परीक्षणपूर्वक अपने निघण्टुओंमें करना चाहिए।

अपने निघण्टु ग्रन्थोंमें प्रायः प्रत्येक ग्रन्थोंमें जुदे जुदे प्रकारसे वनस्पतियोंका वर्गीकरण किया गया है। किसी भी एक निघण्टुके वर्गका दूसरे निघण्टुके वर्गके साथ मेल नहीं बैठता। इस प्रकार अपने निघण्टुओंके वर्गीकरणके ज्ञानसे वैद्योंको अपेक्षित लाभ नहीं होता। पाश्चात्य वनस्पतिशास्त्रज्ञोंने वनस्पतियोंकी नैसर्गिक रचना और धर्मके अनुसार उनका वर्गीकरण किया है। इस वर्गीकरणके अनुसार एक वनस्पतिके ज्ञानसे उस वर्गकी कई वनस्पतियोंका ज्ञान हो जाता है, या हो जानेकी संभावना रहती है, और साथ साथ उस वर्गके सामान्य गुणोंका भी ज्ञान हो जाता है। इसलिये हमको चाहिए कि पाश्चात्य विद्वानोंने वनस्पतियोंके वर्गीकरणके लिये जिस पद्धतिसे काम लिया है उसीसे हम भी काम लें और हमारे निघण्टुओंकी सुगम रचना फिरसे हो।

संदिग्धद्रव्यका निर्णय।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, और निघण्टुओंमें जो औषधद्रव्य लिखे गये हैं, उनमेंसे कई द्रव्य वर्तमान समयमें हमारे विचारमें संदिग्ध हैं। एक ही शास्त्रीय नामसे, हिन्दुस्तानके भिन्न भिन्न प्रान्तवाले जुदा जुदा द्रव्यको काममें लाते हैं। उदाहरण लीजिये। जैसे—रास्ना, बंगालके वैद्य वृक्षोंपर होनेवाले एक प्रकारके बांदेको रास्ना कहते हैं। पञ्जाब, राजपूताना और युक्तप्रान्तके कई भागोंमें सनायके जैसी पत्तीको रास्ना-नामसे काममें लाते हैं। गुजरातमें एक प्रकारके सफेद मूलको रास्ना कहते हैं। महाराष्ट्र और मद्रास इलाकेवालोंकी भी रास्ना जुदी जुदी है। इसी प्रकार ब्राह्मी, तगर,

प्रसारणी, जीवन्ती, कंकोल आदि वनस्पतियाँ एक ही नामसे जुदा जुदा देशोंमें जुदा जुदा काममें लाई जाती हैं। ग्रन्थिपर्ण, स्थौणेयक, चोरक, स्पृक्का आदि शास्त्रमें लिखी गई वनस्पतियोंका पता भी हम लोगोंको कुछ नहीं है। इन द्रव्योंका निर्णय—प्राचीन ग्रन्थमें आये हुए उन वनस्पतियोंके परिचय दिलानेवाले नाम, कहीं कहीं टीकाकारोंके दिये हुए वर्णन, हकीमोंकी मखजन उल अदवीया और भारतीय वनस्पतियोंके विषयमें लिखे गये पाश्चात्य विद्वानोंके ग्रन्थके सामग्री की सहायतासे करना चाहिये।

आयुर्वेदकी परिपूर्तिके लिये यत्न।

वर्तमान समयमें अपने पास जो आयुर्वेदीय ग्रन्थभाण्डार उपलब्ध हैं, उनमें बहुतसे विषयोंमें जो जो बातें वर्तमान डाक्टरी चिकित्सामें पाई जाती हैं वे बातें उपयुक्त होनेसे अवश्य संग्राह्य हैं। जैसे कि रोगविज्ञान, शल्य (शस्त्र) चिकित्सा, रोगजीवाणुविद्या (क्रिमिशास्त्र) व्यवहारायुर्वेद, सार्वजनीनस्वस्थवृत (Hygiene and public Health) अगदतन्त्र, मानसरोगविज्ञान, प्रसूतितन्त्र, उद्भिज्जशास्त्र (वैद्यकोपयोगी), स्त्रीरोगविज्ञान आदि विषयोंमें वर्तमान पाश्चात्यवैद्यककी अपेक्षा कई बातोंमें हमारे वर्तमान आयुर्वेदीयग्रन्थोंमें न्यूनता है, यह हमको अवश्य मानना पड़ेगा। अतः बाहरसे आयुर्वेदमें इन विषयोंकी पूर्ति करना भी हमारा परम कर्तव्य है। इसलिये इन विषयोंमें आयुर्वेदकी अपेक्षा यूनानी, ऐलोपैथी आदि चिकित्साशास्त्रोंमें जो जो बातें अधिक हों उनको देशकालानुसार परीक्षापूर्वक अपने पारिभाषिक शब्दोंमें (संस्कृत या हिन्दीमें) अनुवाद करके आयुर्वेदमें मिलालेना चाहिये। दक्षिण भारतमें आयुर्वेदकी एक शाखा अगस्त्यसंप्रदायके नामसे प्रचलित है, जिसका कुछ परिचय हमको स्वर्गीय भिषगग्रगण्य श्रीमान् पं० डी० गोपालाचार्लुजीके 'दक्षिणभारते आयुर्वेदविद्याप्रचारः, नामके निबन्धसे मिलता है। इस संप्रदायमें भी कई नई-नई बातें हैं, जो विद्यमान आयुर्वेदके अन्यग्रन्थोंमें नहीं हैं। परंतु वे सब ग्रन्थ द्राविड़ भाषामें हैं। संस्कृत भाषामें नहीं हैं। उन ग्रन्थोंमें जो नई-नई बातें हों उनका भी संस्कृतमें अनुवाद करके उसे आयुर्वेदमें मिलालेना चाहिये। इस कार्यको आयुर्वेदमहामण्डलके वर्तमान मन्त्री श्रीमान् पं० दूरैस्वामी अय्यंगरजी बहुत अच्छे प्रकारसे कर सकते हैं; क्योंकि आप द्राविड़ और संस्कृत दोनों भाषाओंके परिपूर्ण पण्डित हैं।

आयुर्वेदीय औषधनिर्माणशालाओंकी आवश्यकता।

मैंने भ्रमण करते समय भारतवर्षके बहुत-से भागोंमें देखा है कि बंबई, कलकत्ता, देहली, मद्रास-जैसे कुछ बड़े शहरोंके अलावा छोटे-छोटे कसबोंमें भी तैयार डाक्टरी दवा बेचनेकी कई दूकानें हैं। परन्तु तैयार देशी दवा बेचनेवाली एक भी दूकान वहाँ

नहीं है। अगर दवा बनाना भी चाहें तो वहाँ पसारी ही नहीं है, या पसारी भी है तो उसके यहाँ अच्छी-अच्छी दवाइयाँ नहीं मिलतीं। यह स्थिति आयुर्वेदके उन्नतिकी नहीं परन्तु अवनतिकी सूचक है। डाक्टरी दवा सबस्थानोंमें सुलभतासे मिल सकती है इसीलिये उस चिकित्साका प्रचार खूब बढ़ रहा है। हमारी यदि यह इच्छा है कि डाक्टरीके सदृश देशी चिकित्साका प्रचार खूब बढ़े तो हमको भी उत्तम तैयार औषधप्रयोग सब स्थानोंमें सुलभतासे मिले ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये। डाक्टरी दवाइयाँ जिस तरह प्रायः सर्वत्र एक भावसे और सुलभ मूल्यमें मिलती हैं, उसी तरह देशी दवाइयोंका भाव भी प्रायः सर्वत्र एकसा रहना चाहिये, और वह सुलभ भी होना चाहिये। जिसे वैद्य लोग भी तैयार औषध लेनेके लिये आकर्षित हों। इसलिये जहाँ वनौषधियाँ सुलभतासे अच्छी मिल सकती हों, मजदूरी कम हो और रेल भी समीप हो ऐसे स्थानोंपर औषधनिर्माणशाला (फार्मसी) खोलनी चाहिये। उनके प्रबन्धकर्ताओंको चाहिये कि वनस्पतियोंमें जो वस्तु जहाँ अच्छी मिलती हो वहाँसे तत्काल ताजी मँगावें। प्रयोग शास्त्रानुसार पठित और अनुभवी वैद्योंकी देखरेखमें हो। सूचीपत्रमें तथा बोतलके ऊपर किस ग्रन्थके पाठानुसार यह दवा बनी है यह भी लिख दें। जैसा डाक्टरी दवाओंके ऊपर बी. पी. (अर्थात् ब्रिटिश फार्माकोपियाके अनुसार बनी) आदि लिखा रहता है। ऐसा होनेसे वैद्य लोग मालूम कर सकेंगे कि यह दवा अमुक ग्रन्थके पाठानुसार बनी है। आयुर्वेदीयचिकित्सा-प्रचारार्थ ऐसी फार्मसियोंके खोलनेकी और गाँव-गाँवमें देशी दवाइयाँ सुलभतासे मिलने लग जाँय ऐसी व्यवस्था होनेकी परम आवश्यकता है।

धर्मार्थ दातव्य देशी औषधालय खोलनेकी आवश्यकता।

इस समय देशी राजाओंकी और धनी लोगोंकी तरफसे जो धर्मार्थ दातव्य औषधालय हैं, उनमें अपेक्षाकृत डाक्टरी दवाखाने खोलनेकी ओर लोगोंकी अधिक प्रवृत्ति देखी जाती है। अतः वैद्योंको उचित है कि वे इसमें क्या कारण है, यह सोचकर उस कारणको दूर करनेका प्रयत्न करें। धनी लोगोंका मन देशी औषधालय खोलनेकी ओर झुके ऐसे उपाय सोचें। अर्थात् देशी औषधसे होनेवाले लाभोंको धनियोंके समक्ष रखें। दूसरी बात यह है कि जो देशी धर्मार्थ औषधालय हैं, उनकी व्यवस्था डाक्टरी औषधालयोंकी अपेक्षा निकृष्ट है। वहाँ औषधादिकोंका प्रबन्ध जैसा होना चाहिये वैसा नहीं है। इससे इन औषधालयोंसे लोगोंको जैसा लाभ चाहिये नहीं पहुँचता, इतनाही नहीं बल्कि देशी चिकित्सासे रोगी अच्छे नहीं होते ऐसी बदनामी भी होती है। इसलिये उन औषधालयके खोलनेवालोंसे प्रार्थना है कि यदि आपने परोपकार-बुद्धिसे औषधालय खोला है तो उसमें और थोड़ा-सा अधिक धन लगाकर उन औषधालयोंको सर्वाङ्गपूर्ण बनानेकी चेष्टा कीजिए।

म्युनिसिपलिटी और लोकलबोर्डोंकी तरफसे आयुर्वेदीय औषधालय खुलवानेकी आवश्यकता।

प्रत्येक प्रान्त और जिलोंके प्रधान-प्रधान शहरोंमें म्युनिसिपलिटी और लोकल-बोर्डोंकी तरफसे धर्मार्थ आयुर्वेदीय औषधालय खुलवानेके लिये हमको कोशिश करनी चाहिये। इससे लोगोंको आयुर्वेदीय चिकित्साका विशेष बोध होगा और लाभ भी होगा और लोगोंमें आयुर्वेदीय चिकित्सा सम्बन्धी अधिक विश्वास उत्पन्न होगा। इस समय सर्वत्र म्युनिसिपलिटी और लोकलबोर्डोंमें स्वराज्यपक्षीय सभासदोंकी संख्या अधिक है और वे लोग देशीय औषधालय खुलनेके विषयमें अनुकूल भी हैं। बम्बई म्युनिसिपलिटीने बम्बईके प्रत्येक वॉर्डमें एक-एक आयुर्वेदीय और यूनानी औषधालय खुलनेका प्रस्ताव हालहीमें पास किया है। इसलिये उसको मैं धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि और म्युनिसिपलिटी और लोकलबोर्ड इसका अनुकरण करेंगे।

आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये वैद्योंका कर्त्तव्य।

वर्तमान समयमें आयुर्वेदकी घोर अवनत दशा हो रही है, इस दशासे आयुर्वेद-का पुनरुद्धार करनेके लिये हमारे आगे अनेक कर्त्तव्य उपस्थित हैं। उनमेंसे कुछ तो मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार आप लोगोंकी सेवामें निवेदन किए हैं। इन कार्योंको अपना कर्त्तव्य समझकर इनके सुसंपन्न वैद्योंको अपने तन-मन-धनसे यथाशक्ति निरंतर यत्न करना चाहिए। इन कार्योंके सम्पादनके लिये सबसे पहिले धनकी और स्वार्थत्यागपूर्वक पूर्वोक्त कार्योंमेंसे जो जो कार्य वैद्यगणसे होने योग्य हों उनके संपादनमें वे सत्त्वर लग जाँय, और अपनेसे जितना बने धनकी सहायता भी करें। "वैद्यः कथं दास्यति याचमानो यो मर्तुकामादपि हर्तुकामः" यह लोकोक्ति कुवैद्यपरक है, सद्वैद्योंके लिये नहीं है, यह बात अपने कर्त्तव्यसे सिद्ध करके दिखलावें। यूरोपके लोग आज-कल चिकित्साशास्त्रकी उन्नतिके लिये इतना भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं कि एक-एक विषयके आविष्कारके लिये अपने जीवन तक खर्च कर देते हैं। परन्तु इधर हम लोग अब भी घोर निद्रामें सो रहे हैं। अब समय ऐसा आया है कि हमको भी शीघ्र जागृत होना चाहिए। मैंने आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये ऊपर जो जो कर्तव्य बताए हैं उनमेंसे बहुतसे कर्तव्योंको ऋषिकुल आयुर्वेदविद्यायल हरद्वार, डी. ए. वी. आयुर्वेद-विद्यालय लाहोर, आयुर्वेदिक एण्ड युनानी तिब्बी कॉलेज देहली आदि संस्थाएँ कर सकती हैं। इस विषयमें हिन्दूविश्वविद्यालय बनारससे भी हम बहुत आशा कर सकते हैं; क्योंकि इन संस्थाओंमें और संस्थाओंकी अपेक्षा आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये अधिक सामग्रियाँ विद्यमान हैं, और हो सकती हैं।

आयुर्वेदके अभ्युदयार्थ राज्याश्रय संपादनकी आवश्यकता ।

इस समय भारतवर्षमें अंग्रेजोंका राज्य है। अंग्रेज जातिको अपने विद्या और ज्ञानका भारी अभिमान है। वे सहसा दूसरेके ज्ञानकी कदर करनेके लिये तैयार नहीं होते। इसके सिवा यह भी कारण है कि चिकित्साके साथ व्यापारका भी घनिष्ट संबंध है। करोड़ों रुपएकी विलायती दवाइयाँ हिन्दुस्तानमें हरसाल बिकती हैं। इसलिये भी वे यह नहीं चाहते कि हिन्दुस्तानमें देशी चिकित्साकी उन्नति हो, इस कारण इस राज्यमें आयुर्वेदको सहसा राज्याश्रय मिलना कठिन है। राज्याश्रयके विना किसी भी विद्या—कलाकी ठीक ठीक उन्नति नहीं हो सकती यह बात स्पष्ट है। ऊपर कहे हुए कारणोंसे अंग्रेज लोग आयुर्वेदको खुशीसे आश्रय देवें यह संभव नहीं है, तथापि महान् प्रयत्न करनेसे इन लोगोंसे कुछन कुछ आश्रय मिल सकता है। इसका एक उदाहरण इस हरद्वार ऋषिकुल आयुर्वेद विद्यालयका लीजिये। इसको यू. पी. गवर्नमेण्टकी तरफसे प्रारंभिक ५०००० रुपये और प्रतिवर्ष ५००० रुपये सहायता श्रीमान् देशहितैषी परमोदारचेता लाला सुखवीरसिंहजीके अति परिश्रमसे मिलती है। इस उपकार उपलक्ष्यमें हम लोग श्रीमान् लालासाहबको शतशः धन्यवाद देते हैं। लालाजी आयुर्वेदके सच्चे प्रेमी और सेवक हैं। आप जब बंबई आये थे तब मैंने देखा कि आप दिनरात आयुर्वेदकी उन्नतिके विचारमें लगे रहते हैं। लालाजीने आप लोगोंके समक्ष यह एक कल्पवृक्ष लगा दिया है। इसको अपनाना और इसकी उन्नतिके लियें यत्न करके उनके उत्साहको बढ़ाना यह वैद्योंका परम कर्तव्य है। दूसरा उदाहरण मद्रासका लीजिये। वहाँकी जनताके अत्याग्रहसे मद्रास गवर्नमेण्टको देशी वैद्यककी जाँचके लिये एक कमिटी बनानी पड़ी। इस कमिटीने सारे हिन्दुस्तानमें भ्रमण कर और सब वैद्योंके मन्तव्यको सुनकर आयुर्वेदके पक्षमें अपने निर्णयकी रिपोर्ट प्रसिद्ध की है, इस रिपोर्टकी सिफारिशसे मद्रास सरकारने एक आयुर्वेदिक स्कूलकी स्थापना की है। ऐसीही एक कमिटी बंगाल गवर्नमेन्टने भी बनाई है। इन दो उदाहरणोंसे प्रतीत होता है कि यदि हम लोग जनताके द्वारा इस विषयमें भगीरथ आंदोलन करते रहेंगे तो कुछ राज्याश्रय भी प्राप्त कर सकेंगे। इस प्रयत्नको देशी राज्योंमें भी करना चाहिए। उसका भी कुछन कुछ उत्तम फल अवश्य होगा। हालमें बड़ोदा राज्यके पाटण शहरमें वहाँके आयुर्वेदप्रेमी श्रीमान् सेठ उजमशी पीतांबरने एक लक्ष रुपये आयुर्वेदीय पाठशाला और आतुरालयके लिये इस शर्तके साथ देनेकी प्रतीज्ञाकी थी कि श्रीमान् गायकवाड़ सरकार भी उतनीही सहायता इस कार्यमें करे। श्रीमान् बड़ोदा नरेश सयाजीराव महाराजाने सेठजीकी इस शर्तको स्वीकार करके एक लक्ष रुपये राज्यकी तरफसे दे दिया, जिससे दो वर्षसे वहाँ एक आयुर्वेदीय विद्यालय और आतुरालय सफलताके साथ चल रहा है।

उपसंहार।

अन्तमें अपने वक्तव्यका उपसंहार करते हुए मुझे कहना पड़ता है कि अखिल भारतवर्षीय वैद्यसंमेलनका यह पंद्रहवाँ वार्षिक संमेलन है। इस संमेलनसे हमारे वैद्योंमें आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये कुछ जागृति जरूर उत्पन्न हुई है, और हम दूर दूर देशनिवासी अपने व्यवसायबन्धुओंके विशेष परिचयमें तो आये हैं, परंतु ऐसे ऐसे संमेलनोंके प्रबन्धमें जो हम कष्ट उठाते हैं और धनव्यय करते हैं, उसके प्रमाणमें संमेलनसे कोई विशेष लाभ हम नहीं उठा रहे हैं। अलबत्ता संमेलन-द्वारा उत्पन्नकी हुई जागृतिसे कई विद्यालय और धर्मार्थ दवाखाने खुलगए हैं। कुछ नवीन ग्रन्थ-रचनाका भी आरंभ हुआ है। सम्मेलनने अगर कोई भी कार्य निजकी तरफसे चलाया है तो वह आयुर्वेदविद्यापीठ है। इसको अभीतक हम लोग परीक्षा लेनेवाली संस्थाही बना सके हैं। परंतु शिक्षा देनेवाली या शिक्षाका प्रबन्ध करनेवाली संस्था नहीं बना सके। विद्यापीठका कार्य जैसा अभी होता है, उससे भी विशेष नियमबद्ध हो एतदर्थ हमको और विशेष यत्न करना चाहिए। परीक्षाकेन्द्र थोड़े ही रहें तो कोई हर्जकी बात नहीं है। परंतु वहाँका प्रबन्ध विशेष नियमानुकूल हो इस बातपर हमको अधिक ध्यान देना चाहिए। हमारा यह संमेलन अब बाल्यावस्थासे उत्तीर्ण होकर यौवनावस्थामें प्रवेश कर रहा है, अतः हम लोगोंको भी युवाओंकी तरह विशेष उत्साहके साथ कर्तव्यक्षेत्रमें अग्रेसर होना चाहिए। आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये अभी हमको बहुत कुछ करना है, उनमेंसे जो बातें वर्तमान समयमें आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये मुझे विशेष रूपसे आवश्यक माल्म हुई हैं और जिनको हम वर्तमान परिस्थितिमें सरलतासे कर सकते हैं उनही विषयोंपर मैंने अपने अल्प विचार अपनी निज बुद्ध्यनुसार आप लोगोंकी सेवामें निवेदित किया है। आपने इन विचारोंको कृपा दृष्टिसे सुना इसलिये मैं आप लोगोंको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि इनमेंसे कोई बात आपको यदि आवश्यक माल्म हो तो उसके करनेमें आप अग्रेसर हों।

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम्।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम्॥

The Life of Pandit Madan Mohan Malaviya

Seventy four summers.

Four more than the Biblical three score and ten. And may the summers lengthen into a full hundred for the good and glory of India.

Each summer is brighter than the previous one.

It is a great blessing indeed to be so singularly gifted in earthly life.

In 1861 Pandit Madan Mohan Malaviya was born.

He is a child of Prayag, and of the Trebeni.

To-day by common consent he is the most distinguished citizen of Allahabad—nay of the whole province.

Pandit Malaviyaji has had a beautiful carreer from the beginning

From his saintly father, Pandit Braj Nath ji, he inherited his passionate love for Sanskrit and Srimad Bhagwat. From his venerable mother, his ocean like heart and love for all sentient things. From his childhood he learnt to walk in the path of Dharma. In his childhood he studied in Pathshalas.

Then he went on to the English School and then to the Muir Central College.

While yet a boy he founded the "Hindu Samaj" at Allahabad.

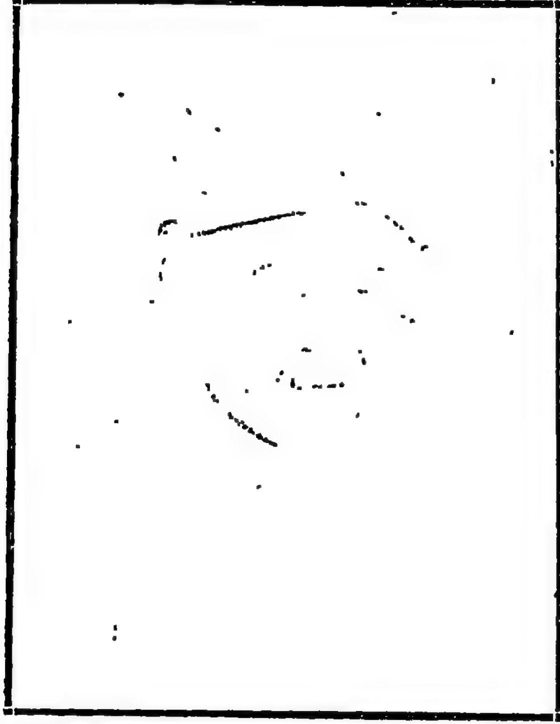
Pandit Aditya Ram Bhattacharya was his earliest Guru in the College. It is remarkable that the Guru lived to see his chela founding the Benares Hindu University of which he himself became the first Venerable Rector in 1918.

In 1884 Madan Mohan graduated from the Calcutta University and seven years later he took his LL. B.

Pandit Malaviyaji started his life as a teacher. Then he became a journalist and edited the "Hindustan". During the last 50 years he has founded more than half a dozen news papers in India. The "Abhyudya", "The Leader", "The Hindustan Times", "the Sanatan Dharma Patrika." In 1893 Panditji joined the Bar at Allahabad and it is said that he was one of the leading members of the Bar. At one time his earnings were Rs. 8000/- a month.

But he gave up the legal profession after being 10 or 15 years in it, for Panditji's mind, from the day he joined the Congress in 1886, was in the service of his country. Year after year he attended the National Congress and became conspicuous in the public life of India.

In Allahabad he undertook civic responsibilities, was Vice-Chairman of the Municipality and did yeomen service in the days of plague.



श्रीमान् महामना पं. मदन मोहन मालवीय
अध्यक्ष, नि. भा. व. १६ वैद्यसंमेलन जयपुर, सन १९२६ ई.।
वाइस चान्सलर, बनारसहिन्दुयुनिवर्सिटी.

Panditji entered the Provincial Legislative Council in 1905 and was an active member for many years.

In his 48th year Pandit Madan Mohan Malaviya became the President of the Indian National Congress. Thrice he presided over that august Assembly, once in Lahore and twice at Delhi.

In 1911 Malaviyaji became a member of the Imperial Legislative Council. He was later a member of the Legislative Assembly and for a time leader of opposition. Till 1930 Malaviyaji was a Legislator.

During the Civil Disobedient Movement he courted imprisonment thrice and was in the Bombay and Allahabad jails.

Panditji with Mahatma Gandhi went to Europe in 1931 and attended the Second Round Table Conference in London.

He returned to India in 1932 in his seventieth year.

Who does not know the Benares Hindu University and the great part which Panditji has played in bringing this unique institution into existence ? For sixteen years he has been its Vice-Chancellor and guardian angel. The University is the result of Panditji's tapasya and heroic endeavours. He has collected large sums of money for the institution and he has given to Young India a monument which will last for generations. In the Benares Hindu University, Arts and Sciences flourish, as well as ancient Hindu Culture. Panditji's love for Ayurveda is well known. From the beginning of his life he has taken an absorbing interest in Hindu Medicine and Surgery. He presided over the All India Ayurvedic Conference in 1926. Under his watchful care the Ayurvedic faculty has developed excellently and the University Ayurvedic Hospital is a great boon to the poor.

Panditji is 75 years now. He is quite fit and works hard for 12 to 14 hours a day. He takes a pleasure in continuously working for the good of the Mother Land. Malaviyaji can well be called Karamyogi.

16

The sixteenth All-India Ayurvedic Conference, Jaipur.

(1926)

THE PRESIDENTAL SHORT SPEECH.

(REPORTED)

After the speech of Rai Bahadur Sir Pandit Gopinath Ji, M. A. C. I. E., the Hon'ble Pandit Madan Mohan Malaviya rose up and said before occupying the chair that as he was not a scholar of Ayurveda or a Vaidya, he was not at all fit for this place which up till now used to be occupied by the learned and famous Vaidyas of the country. He was elected as a president evidently for other reasons. The Vaidyas had probably done so, because they sometimes, for curing a serious disease, made use of an ordinary remedy as honey or cloves, etc, as a vehicle; so they had elected him thinking him to be Sewak सेवक of Ayurveda probably for the collection of the necessary Samagri (articles) required for the completion of this Ayurvedic Yagna यज्ञ of which the former presidents as noted above, were so many more able and learned physicians or Vaidyas of India. There was little doubt in his being a Sewak or servant of Ayurveda from his boyhood when the bleeding from his throat or lungs, not relieved by allopathic Doctors, was cured by an Ayurvedic medicine known as Sarvadyaghrit. They had probably also elected him, because recently they knew an Ayurvedic College had been sanctioned for Benares Hindu University.

He then thanked the Vaidyas and delegates present for the honour done to him and proceeded with his address which was in Hindi. He spoke for over two hours often quoting passages from Charka substantiating his view-point, and explaining them in Hindi.

He said he was not a Vaidya and would therefore lay before the Vaidyas certain ideas which in his opinion were urgently needed to be spread into the public mind and which he requested them to

remember. These were to prevent the occurrence of diseases amongst them to prevent the further spread of consumption amongst the youth of the country and spread shastric Swastha Vritta स्वस्थवृत्त hygienic rules and also spread the rules of Rasayan amongst the grown-up persons and the weak to prevent untimely decay. The chapter of Charak dealing with the Swasth Vritta and the Rasayan was the speciality of Ayurveda and deserved special culture and attention from the Vaidyas.

He then read out or quoted extracts from the writings of various scholars (foreign and Indian) speaking highly of the development, progress and usefulness of Ayurveda even at the present day.

He then referred to the origin of Ayurveda from Charak from which several Sutras of the Ist chapter were read out and explained. The primary object was to attain long life and to prevent the occurrence of disease and to cure it. He laid great stress upon the rule of Swastha Vritta (good conduct in his words) of Charak from which many passages were read out and explained. He requested the Vaidyas to teach the public, the principles of Yukta Ahar Vihar upon which so much stress was laid by Bhagwan Shree Krishna also. He read out the important principle which he called Choupuria of Charak, viz, (1) Brahmacharya, (2) Pathya, (3) Vijayam, (use of hita-congenial Ahar and Vihar) and (4) Avoidance of Droha, excesses.

He then drew the attention of the Vaidyas towards the increase of consumption and diseases of women amongst young females as a result of which the young men and women of this country were prematurely succumbing to preventable disease. He further described the treatment of this disease (consumption) as it is described in Sushruta with goat's milk and living outside the towns, etc.

He then referred to the Rasayan Chikista, so important for the prolongation of life. He said he at first hated the name;—*Vajikaran* but when he read Charak's description of Rasayan, his views were changed as the aims of Rasayan were not bad. He said the Swasth Vritta and the Rasayan portion of Ayurveda were the special and distinctive features of Ayurveda and help to prolong the lives of their countrymen. He also pleaded further preservation of the goats and extensive use of their milk also for the cases of consumption.

In his opinion, the foremost duty of the Vaidyas and this conference was to have a complete and fully equipped Ashtanga Ayurvedic Institute or Vidyalaya—where complete education in all other branches of Ayurveda may be rendered possible. This, the Vaidya Conference has not yet been able to do. In his opinion, one such Vidyalaya is an immediate necessity whether it is in Kashi Vidyalaya (if

they think it advisable) or any other Institute. It matters little to him whether they help the Kashi or any other but there should be one such College.

1. A Research department.
2. A big Aushadhalaya or Bhandar.
3. An Ayurvedic paper (All-India)
4. One fresh vegetable drugs house or store.
5. One Sanshodhan section for publication of correct books.
6. Nursing house for consumptives outside the town-where goats may be kept and their milk used plentifully.



श्रीमान् आयुर्वेदपञ्चानन, भिषग्मणि पं. जगन्नाथप्रसाद शुक्ल प्रयाग।
सभापति, नि. भा. व. १७ वैद्यसम्मेलन, पटना (सन १९२७)।
बिहारप्रान्तीय प्रथम वैद्यसम्मेलन मुस्तफापुर पो. नगवाँ पटना।
संयुक्तप्रान्तीय २ वैद्यसम्मेलन, हरदोई (स. १९१९) संपादक "सुधानिधि"।

॥ श्रीः ॥

निखिलभारतीय सप्तदश वैद्यसम्मेलनाधिवेशन पटनाके सभापति,

आयुर्वेदपंचानन श्री पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्लका

जीवन चरित्र।

आयुर्वेदपञ्चानन पण्डित जगन्नाथप्रसाद शुक्लका जन्म महर्षि भरद्वाजके कुलमें हुआ है। आपके वंशजोंका स्थान असनी भी गंगातटपर एक प्रसिद्ध स्थल है। यह स्थान अश्विनीकुमारोंका लीला-निकेतन कहा जाता है। यहाँ अब तक अश्विनीकुमारोंका मन्दिर और मूर्ति है। आपके वंशमें बराबर वैद्य होते आये हैं; क्योंकि आपके पूर्वजोंके रहनेका जो मकान है, वह भी वैद्योंवाला घर कहा जाता है। यहाँ पर प्रतिष्ठित कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंकी बस्ती है। यहींके रहनेवाले शुक्ल वंशमें आपका जन्म फतेहपुर जिलाके एकडला ग्राममें संवत् १९३६ भाद्रशुक्ल ८ सोमवारको हुआ। आपके पितामह पं० रामकृष्ण शुक्ल असनीसे आकर यहीं बस गए थे। आपके पिताका नाम पण्डित गयाप्रसाद शुक्ल था।

आयुर्वेदकी ओर आकर्षण—वंशपरम्परागत वैद्यकुलमें उत्पन्न होने पर भी इन्हें अपने घरवालोंसे वैद्यक सीखनेका अवसर नहीं मिला। इनके पिताका स्वर्गवास उस समय हो गया जब इनकी अवस्था केवल ३॥ वर्षकी थी। जेष्ठ पितृव्य पण्डित रामरत्न शुक्ल संस्कृतके विद्वान, हिन्दीके कवि, तन्त्रशास्त्रके ज्ञाता और आयुर्वेदके प्रेमी तथा अभ्यासी थे; किन्तु बालकपनमें ही उनके पितृव्यको पक्षवध हो गया और उनकी मस्तिष्क सम्बन्धी शक्ति भी बिगड़ गयी। जिस समय शुक्लजी ११ वर्षके थे उस समय उनकी माताको सन्निपात हो गया और उनकी सेवा-सुश्रूषा भी इन्हींको करनी पड़ी। गाँवमें कोई प्रसिद्ध वैद्य नहीं था रावत जवाहिर सिंहजीके पास एक हिन्दी भाषाकी वैद्यक-पुस्तक थी। वे उसीसे कुछ वैद्यक किया करते थे। उनके बताये औषधि-प्रयोगसे इनकी माता आराम हुईं। तब इनके मनमें आयुर्वेदके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। तब गाँवके एक प्रतिष्ठित पण्डित गौरीदत्त तिवारीसे संस्कृत सीखने लगे। किन्तु घटनाक्रमसे यह सिलसिला भी टूट गया और मध्यप्रदेशमें जाकर पढ़ने और फिर अध्यापकी करनेमें इन्हें प्रवृत्त होना पड़ा। सन् १९०१ में आप 'प्रयाग समाचार' के सम्पादक होकर प्रयाग आये। यह पत्र स्वर्गीय राजवैद्य पण्डित जगन्नाथ शर्माका था। इस समय आपका आयुर्वेद-प्रेम फिर जागृत हुआ। अतः शुक्लजी पत्रके लिये शर्माजीसे आयुर्वेद सम्बन्धी लेख लिखाते और उन्हें अपने ढंग पर सजाकर पत्रमें छापते। डेढ़ साल बाद "श्री वेंकटेश्वर समाचार" के सम्पादक होकर आप बम्बई गये, और वहाँ चार वर्ष तक स्वर्गीय आयुर्वेदमहोपाध्याय पण्डित शंकरदाजी शास्त्री पदेके सन्निधिमें रहनेके कारण इनका आयुर्वेद सम्बन्धी प्रेम परिपक्व हुआ। सन् १९०७ में "हिन्दी-केसरी" के सम्पादक होकर आपको नागपुर आना पड़ा। यहाँ भी पदे शास्त्रीजीका शाखा कार्यालय और विद्यालय था; जो वैद्यपञ्चानन पण्डित लक्ष्मण शास्त्री फणशीकरके तत्वावधानमें चल रहा था। अतएव सम्पादनकार्यके अतिरिक्त आपका फणशीकरजीके पास आयुर्वेदका

अध्ययन भी चलता रहा। सन् १९०८ के अन्तमें सरकारी कोपसे हिन्दी-केसरी बन्द हो गया और फरवरी १९०९ में पदे शास्त्रीजीके आग्रहसे आप प्रयाग चले आये।

प्रत्यक्षकार्यारम्भ—आयुर्वेदमहोपाध्याय पण्डित शंकरदाजी शास्त्री पदे वैद्यसम्मेलनका काम स्थायी और दृढ़ बनानेके लिये उसका कार्यालय उत्तर भारतमें स्थापित करना चाहते थे और इस कार्यके लिए उन्होंने प्रयागराजको पसन्द किया था। शुक्लजीको यद्यपि कलकत्तेके "भारत-मित्र" वाले बुला रहे थे; किन्तु शंकरदाजी शास्त्री पदेने उन्हें सम्पादकीय कार्यसे परावृतकर वैद्यकके प्रत्यक्षकार्यमें लगनेका आग्रह किया। फाल्गुनशुक्ल एकादशी सं० १९६५को आप प्रयाग आए और पदे शास्त्रीजी उससे पहले ही यहाँ पहुँच गये थे। संवत १९६६ के प्रारम्भ दिवस चैत्रशुक्ल प्रतिपदको शुक्लजीके हाथोंही आपने प्रयागकी शाखाका मुहूर्त किया। बीचके पन्द्रह बीस दिन आयुर्वेदकी आवश्यक बातें समझाने, आवश्यक नोट देने और वैद्यसम्मेलन तथा आयुर्वेद-विद्यापीठका सञ्चालन करनेके सम्बन्धकी आवश्यक चर्चा करनेमें शास्त्रीजीने बिताये। इसी बीच पदे शास्त्रीजी बीमार पड़े और रामनौमीके दिन स्वर्गवासी हो गये। शास्त्रीजीके सौंपे हुए कार्यको स्वीकारकर और बीमारीके समयकी उनकी अन्तिम इच्छा और आयुर्वेदोद्धार सम्बन्धी प्रबल आकांक्षा एवं विकलताका ध्यानकर शुक्लजी उनके स्थापित "प्रयागराज महौषधालय" का सञ्चालन पदे शास्त्रीजीके स्मारक स्वरूप कर रहे हैं। शुक्लजीके अध्यवसायसे स्वयं शुक्लजीकी और इस औषधालयकी जो भारतव्यापी गौरवपूर्ण प्रतिष्ठा हुई है, वह सबको विदित है। खासकर गरीबोंके लिये यह औषधालय खासा अवलम्ब रहता आया है।

सुधानिधि—शुक्लजीकी प्रवृत्ति पठनकालसे ही सभाएँ स्थापित करने, उनमें भाग लेने, समाचारपत्र पढ़ने, उनमें लेख लिखने, पुस्तकोंका अवलोकन करने और कविता रचना करनेमें रहती आयी है। अतएव कोरी वैद्यकवृत्तिमें ही न तो उनकी तृप्ति हो सकती थी और न उनका पूर्ण मनोरञ्जन ही हो सकता था। इसके सिवाय स्वर्गीय शास्त्री पदेजीके अभीष्ट कार्यकी सफलताके लिये, आन्दोलनकी सुविधाके लिये एक समुचित साधनकी आवश्यकता थी। पदे शास्त्रीजीका "सद्वैद्यकौस्तुभ" बन्द हो चुका था। पण्डित जगन्नाथशर्माका आरोग्यदर्पण भी नहीं रहा था। कलकत्तेका "सारसुधानिधि" भी सूख चुका था। हिन्दी संसार वैद्यकपत्र और वैद्यक चर्चासे एकदम शून्य था। अतएव प्रयागस्थ बाघम्बरी गद्दीके महन्त स्वामी रामकृष्णानन्द गिरिजीकी सहायतासे संवत १९६७ के आषाढ़माससे आपने "सुधानिधि" नामक मासिकपत्र निकाला। आरम्भिक दो वर्षोंमें इसमें आयुर्वेदिक चर्चाके अतिरिक्त धार्मिक और साहित्यिक चर्चा भी रहती थी। पहले-दूसरे वर्ष महन्तजी महाराजकी सहायता रही, किन्तु तीसरे वर्षसे यह केवल वैद्यक सम्बन्धीपत्रके रूपमें चलने लगा और इसके संचालनमें जो घटी आती थी वह औषधालयकी आमदनीसे पूरी की जाती थी। वैद्यसम्मेलनको सफल और गौरवपूर्ण बनानेमें इस पत्रने बड़ा काम किया। आयुर्वेदिक आन्दोलनके हर एक पहलूपर इसने मार्मिक विचार प्रकट किये। आयुर्वेदका महत्त्व प्रकट करने और आयुर्वेदके आक्षेपोंका उत्तर देनेमें यह सदा आगे रहा। शास्त्रीय विवेचना और चर्चाके साथही इसने आयुर्वेदके सार्वजनिक विषयों-पर सदा और बराबर लेख लिखे, आन्दोलन किये। आयुर्वेदके वर्तमान अभ्युदयमें इसका आन्दोलन भी सहायक था। २१ वर्षतक यह पत्र अर्थ हानि होते हुए भी चलाया गया बीचमें शुक्लजीके राजनैतिक आन्दोलनमें अधिक लगे रहनेके कारण सम्पादनमें अड़चन पड़ने लगी,

घटी पूरी करना कठिन होने लगा। इसके सिवाय उस समय हिन्दीमें कई आयुर्वेदिक पत्र सफलतापूर्वक चलने लग गये थे। इसलिये सुधानिधिके न होनेपर भी आयुर्वेदकी कोई विशेष हानि न देख इसका प्रकाशन स्थगित कर दिया गया।

वैद्यसम्मेलन—स्वर्गीय आयुर्वेदमहोपाध्याय पण्डित शंकरदाजी शास्त्री पदेने वर्षोंके उद्योग, परिश्रम और तपस्याके पश्चात संवत् १९६३ में नासिकमें प्रथम वैद्यसम्मेलन किया। शुक्लजी उसमें सम्मिलित थे। द्वितीय सम्मेलन पनवेलमें हुआ। किन्तु वहाँ वैद्योंमें परस्परका द्वेष और ईर्षाका ऐसा भयंकर स्वरूप दिखाया कि आगे उसके काममें बाधा पड़नेका भय होने लगा। शंकरशास्त्री पदे सम्मेलनकी जड़ मज़बूत करना चाहते थे और प्रयागमें उसका केन्द्र-स्थल स्थापित करनेके उद्योगमें ही आये थे, किन्तु वे स्वर्गवासी हो गये। शुक्लजी वैद्यक संसारमें नये थे और प्रयागमें भी नये न होने पर भी सर्व परिचित नहीं थे। शास्त्रीजीका उद्देश्य अवश्य उनके सामने था। अतएव धीरे-धीरे आपने प्रयागके वैद्यों और हकीमोंसे परिचय प्राप्त कर "आयुर्वेद-प्रचारिणी-सभा" स्थापित की। इसके अनुकरण पर अन्य स्थानोंमें भी वैद्यक सभाएँ स्थापित हुईं। संवत् १९६८ आश्विनमें प्रयागमें द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन होनेवाला था। उसी समय प्रयागमें तृतीय "वैद्य सम्मेलन" का अधिवेशन भी किया गया। इस समयसे छः वर्षों तक आप वैद्य सम्मेलनके प्रधान मन्त्री रहे। वैद्य सम्मेलनकी नयी नियमावली, आयुर्वेद विद्यापीठका संगठन और पाठ्यक्रम तैयार कराकर परीक्षाओंका कार्य आरम्भ करनेमें आपको खूब परिश्रम करना पड़ा। आपके परिश्रम और प्रसिद्ध वैद्योंके सहयोगसे वैद्यसम्मेलन की जड़ मज़बूत हो गयी। इस प्रकार स्वर्गीय आयुर्वेदमहोपाध्याय पण्डित शंकरदाजी शास्त्री पदे वैद्यसम्मेलनके जन्मदाता और संस्थापक हैं और शुक्लजी उसे फिरसे संचालित करनेवाले सम्मेलनके प्रवर्तक हैं। इस समय भारतकी सुसंगठित संस्थाओंमें इसकी गणना है। सन् १९२१ में आप निखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलनके पटनामें सभापति भी हो चुके हैं।

प्रान्तीय-सम्मेलन—शुक्लजीने नि० भा० वैद्यसम्मेलनके संगठनमें ही नहीं; किन्तु भारतके प्रत्येक प्रान्तमें प्रान्तीयसम्मेलन स्थापित करनेके लिये वैद्योंको उत्साहित किया। इसके फलस्वरूप इस समय प्रायः सभी प्रान्तोंमें प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन स्थापित है। विहार और मध्यदेशके वैद्योंका तो आपपर इतना अधिक अनुराग था कि वहाँ वालोंने अपने वैद्यसम्मेलनका आरम्भ आपके सभापतित्वसे ही किया। संयुक्तप्रान्तीय वैद्यसम्मेलनके भी आप हरदोई के द्वितीय अधिवेशनके सभापति हो चुके हैं।

अन्य आयुर्वेदिक कार्य—आयुर्वेदके लिये जहाँ कुछ कार्य होनेकी सम्भावना हो, वहाँ शुक्लजी अपनी सेवा और परिश्रम लगानेके लिये प्रायः तैयार रहते हैं। सन् १९१२ के लगभग वैद्यराज नारायणदत्तजी ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रममें वैद्य थे और चाहते थे कि वहाँ आयुर्वेदके कार्योंका विस्तार हो। अतएव शुक्लजी मद्रासके स्वर्गीय वैद्यरत्न पं० डी० गोपालाचर्लू, आयुर्वेद-प्रेमी डाक्टर प्रसादीलालझा आदिके साथ ऋषिकुलके उत्सवमें पहुँचे और वहाँ एक आयुर्वेद-विद्यालय स्थापित करनेकी योजना तैयार की गयी। स्वर्गीय आनरेबुल सुखवीरसिंह तथा कलकत्तेकी ऋषिकुल सहायक कमिटीके उद्योगसे ऋषिकुलका आयुर्वेदविद्यालय स्थापित होकर अब अच्छी उन्नत दशामें पहुँच गया है। इस समय भी शुक्लजी उसकी प्रबन्धकारिणीसमितिमें हैं। आरम्भमें वैद्यसम्मेलनकी जड़ मजबूत करने, वैद्योंकी ओर उसका आकर्षण बढ़ानेके लिये

आपको मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, राजपूताना, दिल्ली, विहार, वंगाल तथा संयुक्तप्रान्तोंके स्थानोंमें दौरा करना पड़ा था। आगरा, दिल्ली, प्रतापगढ़, कानपुर, लखनऊ आदिके वैद्योंके प्रेमाकर्षणके कारण शुक्लजी वहाँ गये और स्थानिकसभा तथा उत्सव परिचालनमें वैद्योंके सहयोगी हुए। आयुर्वेदकी ओर इंडियन नेशनल कांग्रेसका आकर्षण वढ़ानेके लिये भी कई वार शुक्लजी-को कांग्रेस और कई प्रान्तिक कानफ्रेन्सोंमें उद्योग करना पड़ा। नागपुरकी कांग्रेसके समय उनके साथ पं० भिकाजीविनायकडेग्वेकरने भी वड़ा परिश्रम किया। विहारके वैद्योंका शुक्लजी पर वहुत विश्वास और प्रेम है अतएव विहारके आयुर्वेदिक कार्योंमें पण्डित रामावतारमिश्र और आयुर्वेद-रत्नाकर पण्डित वृजविहारी चौवेके आग्रह पर आप वहाँ प्रायः जाया करते थे और इस समय भी विहारी वैद्योंके उद्योगकी यशःपताका फहरानेवाले सरकारी आयुर्वेदविद्यालयकी परामर्शदात्री समितिके शुक्लजी सभासद हैं। संयुक्तप्रान्तीय आयुर्वेद-यूनानी जाँचकमेटीके समयसे आरम्भकर इस समय तक वे वोर्डआफइण्डियनमेडिसिनमें आयुर्वेदकी मान प्रतिष्ठा वढ़ानेके लिये आप वरावर उद्योग करते रहते हैं। हिन्दूविश्वविद्यालयके लिये आरम्भिक पाठ्ययोजनाके लिये मालवीयजी महाराजने भारतके सुप्रसिद्ध वैद्योंका आह्वान किया था उस समय शुक्लजीने भी इसमें योग दिया और इस समय भी हिन्दूविश्वविद्यालयकी आयुर्वेद फेकल्टी के आप मेम्वर हैं। आयुर्वेदविद्यापीठका पाठ्यक्रम निस्सन्देह उच्चकोटिका है और वही इस समयके समस्त आयुर्वेदिकपाठ्यक्रमोंका आधारभूत हुआ है; किन्तु देशमें वैद्योंकी संख्याका विस्तार करनेके लिये, देहातोंमें वैद्योंकी सेवा वढ़ानेके लिये यह आवश्यक है कि प्रान्तीयभाषओंमें और विशेकर राष्ट्रभाषा हिन्दीमें आयुर्वेदकी शिक्षा और परीक्षाका क्रम वढ़ाया जाय। कुछ विचारशील वैद्योंको भय है कि इससे संस्कृत-द्वारा आयुर्वेद सीखनेकी प्रवृत्ति ढीली पड़ जायगी। किन्तु शुक्लजीका विश्वास है कि संस्कृत जाननेवाले विद्यार्थी तो इस कामको करते ही जाँयगे साथ ही संस्कृत अल्प जाननेवाले; किन्तु आयुर्वेद सीखकर भारतीय जनताकी सेवा करनेकी इच्छा रखने-वाले वैद्योंकी भी एक श्रेणी इस प्रकार तैयार होगी। इसी विचारसे हिन्दीसाहित्यसम्मेलनके साथ हिन्दीविश्वविद्यालयकी परीक्षाओंमें आयुर्वेदकी भी स्वतन्त्रपरीक्षाकी योजना आपने आरम्भ करायी है। स्त्रियोंमें स्वास्थ्यसंरक्षण और सन्तानपालनकी योग्यता होना परमावश्यक जान महिलाविद्यापीठकी परीक्षाओंके साथ भी आपने वैद्यक विषय रखनेका प्रयत्न किया है। इस समय जिन संस्थाओंके द्वारा आयुर्वेदिक परीक्षाएँ ली जाती हैं और जिनका प्रयत्न शुद्ध आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये है, जिनके प्रयत्न वैद्यसम्मेलनके उद्देश्योंकी पूर्तिमें सहायक हो सकते हैं, प्रायः उन सभी संस्थाओंकी परीक्षाओंसे परामर्शदाता या परीक्षक रूपसे शुक्लजीका सम्बन्ध है। यद्यपि इधर आपका स्वास्थ्य ऐसा नहीं रहता कि अधिक परिश्रम साध्य कार्य हो सकें इसके सिवाय अन्य कार्योंकी ओरसे आपमें कुछ उदासीनताके भाव भी वढ़ते देखे जाते हैं, तथापि आयुर्वेदकी सेवाका जहाँ भी अवसर मिले आप मुख नहीं मोड़ना चाहते। सारांश यह कि आयुर्वेदकी सेवा आपके जीवनका प्रधान लक्ष्य है।

श्रीयोगीन्द्रचन्द्रशुक्ल, प्रयाग।





श्रीधन्वन्तरये नमः ।

निखिलभारतीय सप्तदश वैद्यसम्मेलनाधिवेशन पटनाके सभापति,

आयुर्वेदपंचानन श्री पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, वैद्यका अभिभाषण ।

श्रीमान् कलयतु शश्वत् क्षेमम् धन्वन्तरिस्सतां देवः ।
कामं सुरवरतत्यै कामितदानाय दुग्धवार्धि भवः ॥ १ ॥
करधृतदिव्यसुधावरकलशः परिपूर्णषड्गुणश्रीशः ।
परिहृतभक्तक्लेशस्सुरुचिरतरकान्तिकान्तवरवेशः ॥ २ ॥
विश्रुतविलसत्कीर्तिर्भक्तानन्दप्रदानवरमूर्तिः ।
निस्तुलकरुणाशक्तिर्भात्येष श्रीहरिः स्वयं जगति ॥ ३ ॥
करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः ।
पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी ॥ ४ ॥
सानन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोधयुक्तम् ।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्रीमद्गुरुं "शंकर" मानतोऽस्मि ॥ ५ ॥

आत्रेय-भरद्वाज सदृश ऋषिकल्प पूज्य वैद्यवरो और आदरणीय मित्रो तथा आयुर्वेदप्रेमी सज्जनो !

आप सब ज्ञानवृद्ध और अनुभवसिद्ध महानुभावोंके समक्ष मुझे सभापतिके आसनपर आसीन होते हुए बहुतही संकोच हो रहा है। आसन सर्वोच्च और कार्य महान् है। मैं अल्पशक्ति, अज्ञान और सर्वथा अयोग्य हूँ। जिस आसन पर इसके पहले धन्वन्तरिकल्प और ऋषिकल्प विद्वान्, सुयोग्य तथा वाग्मी सज्जन सुशोभित हो चुके हैं। उस पर मेरे जैसे आयुर्वेदके "कुली" स्वरूप सेवकका बैठना कमसे कम मेरे लिये संकोचका कारण अवश्य हो सकता है। तथापि पाण्डव और कौरवदलके मध्य उपस्थित होने पर अर्जुनकी जो परिस्थिति हुई थी, उससे मेरी परिस्थिति कुछ भिन्न और आशाजनक है। वहाँ अर्जुनके सामने युद्धाकांक्षी और विनाशमुखी कौरव-दल दीख रहा था; किन्तु यहाँका जनसमुदाय मेरी सहायता करने और आयुर्वेदकी उन्नति-कामनाके लिये उत्सुक दिखाई पड़ रहा है। इसलिये बुद्धि कुंठित होने और

शरीर काँपनेके बदले मेरे मनमें धैर्य बढ़ रहा है और हृदय श्रद्धा-भक्तिसे पूर्ण होकर आप सब महानुभावोंको सप्रेम और साञ्जलि अभिनन्दन तथा अभिवादन करनेके लिये समुत्सुक हो रहा है। मैं अयोग्य हूँ सही; किन्तु आयुर्वेदका और आप सबका तुच्छ सेवक होनेके नाते आप लोगोंकी सहानुभूति, सहायता और कृपाका मैं पूर्ण-पात्र हूँ। इसके सिवाय हिम्मतका एक और भी कारण है कि विहारप्रान्तकी और विहारके सुयोग्य वैद्यवरोंकी कृपा मुझपर आयुर्वेदिक आन्दोलनोंके आरम्भसे ही विशेष रही हैं। विहारप्रान्तीय प्रथम वैद्यसम्मेलनसे लेकर अबतक मुझे विहारप्रान्तकी सेवा करनेका अनेक बार गौरव प्राप्त हुआ है। साथही अपने सेवकसे सब प्रकारकी सेवा लेनेका अधिकार मालिकको है ही, ऐसी दशामें जो भी सेवा सौंपी जाय, उसे विना आपत्ति पूर्ण करना सेवकका कर्तव्य है, इसलिये आप लोगोंकी सहायता और सहानुभूतिके भरोसे मैं भी आज्ञापालनमें तत्पर होता हूँ। सज्जनों, मैं समझ रहा हूँ, आजका यह आदर मुझे नहीं; बल्कि उन्नीसवीं और बीसवीं सदीके सन्धिकालीन युगके महान् कर्मवीर, राष्ट्रप्रेमी और आयुर्वेदीय आन्दोलनके उत्पादक तथा वैद्य-सम्मेलन-संस्थाके जन्मदाता स्वर्गीय आयुर्वेदमहोपाध्याय पं० शंकरदाजी शास्त्री पदेका स्मरणकर उन्हींकी श्रद्धा-पूर्तिके लिये आप लोग उन्हींका गौरव कर रहे हैं, अतएव स्वर्गसे उनकी आत्मा प्रसन्नता और आशीर्वादकी लहरी लहरा रही है, जिसका आभास हम सब पर परिलक्षित हो रहा है। जिस गौरवशाली और इतिहास प्रसिद्ध विहार-प्रान्तकी भूमिमें हमलोग सम्मिलित हुए हैं, वह बड़े-बड़े साम्राज्य-सुख भोग चुकी है, बड़े-बड़े तपस्वियों और ज्ञानियों-विज्ञानियोंसे पवित्र हो चुकी है, नालन्द-जैसे विश्वविद्यालय और बौद्धकालीन विहारोंके द्वारा सम्पूर्ण भारतवर्षही नहीं अखिल सभ्य जगतको अनेक विद्याओंकी शिक्षा-दीक्षा दे चुकी है और इस समय भी अपने कर्मशील और प्रभावपूर्ण सपूतोंके द्वारा अन्य किसी प्रान्तसे आयुर्वेदकी सेवा और कामोंमें कहीं आगे है। अतएव ऐसे कीर्तिशाली प्रान्तका अभिनन्दन करते हुए और अधिक गौरववृद्धिकी कामना करते हुए, हमें इस सम्मेलनरूपी यज्ञानुष्ठानमें प्रवृत्त होना चाहिये।

स्वर्गीय वैद्योंके लिये शोक

आगे बढ़नेके पहले हमें अपने उन मित्रों और आयुर्वेदसेवियोंकी याद आये विना नहीं रहती, जो इसी वर्षके भीतर स्वर्गवासी हुए हैं और जिनके चिरवियोगके कारण उनकी प्रतिभा और कर्मशीलताका प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त करनेसे हम वञ्चित हुए हैं। उनमेंसे मद्रास वैद्य सम्मेलनके सभापति और कलकत्तेमें अष्टाङ्गआयुर्वेद विद्यालय खोलनेके अनुष्ठानकर्त्ता कविराज यामिनीभूषण राय एम० ए०, एम० बी० महोदयका स्वर्गवास बहुत ही हानिकारक हुआ है। आपने उच्च डाक्टरी परीक्षा पास

करनेपर भी आयुर्वेदिक चिकित्सा आरम्भ की, उससे यश और ऐश्वर्य प्राप्त किया, यूनिवर्सिटीके फेलो और अनेक संस्थाओंके सदस्य रह आयुर्वेदका गौरव बढ़ाया और "अष्टाङ्ग आयुर्वेद विद्यालय" स्थापितकर अपनी सारी शक्ति और कमाईका बहुत-सा द्रव्य उसमें आपने समर्पितकर दिया। ऐसे यशस्वी कर्मवीरको खोकर आयुर्वेदिक संसार बहुत दुःखी और खिन्न हुआ है। 'जर्नल आफ आयुर्वेद' के शब्दोंमें सचमुच आप आयुर्वेदके लिये जिये और आयुर्वेदके लिये ही मरे। साथही 'जर्नल आफ आयुर्वेद'के सम्पादक कविराज ए० सी० विशारद महोदयके स्वर्गवाससे भी आयुर्वेद-की बहुत हानि हुई है और अपने कीर्त्ति विस्तारक कार्यकर्त्ताके चिरवियोगसे वैद्य-समुदाय बहुत ही दुःखी हुआ है। वर्तमान कालीन गुरुकुल शिक्षाका आदर्श स्थापितकर उसके पीछे अपना सर्वस्व समर्पित करनेवाले तथा गुरुकुल शिक्षामें आयुर्वेदिक शिक्षा-दीक्षाको भी महत्वपूर्ण भाग देनेवाले महात्मा स्वामी श्रद्धानन्दजी की एक निष्ठुर मुसलमान घातक-द्वारा हत्याका होना इस वर्षकी सबसे अधिक घृणित और खून खौला देनेवाली घटना हुई है। स्वामीजी-जैसे सच्चे आयुर्वेद-हितैषीके चिरवियोगसे हमें बहुत ही दुःख है।

प्राचीन कीर्त्ति

अब यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि हमारा आयुर्वेद इतना प्राचीन है कि इससे पहले संसारमें कोई चिकित्साशास्त्र विद्यमान नहीं था। भारतवर्षसे ही अरब, ईरान, रूम, यूनान, आदि देशोंमें चिकित्साविज्ञानका प्रकाश पहुँचा। यहींके चरकसुश्रुतादि प्राचीन ग्रन्थ अनुवादित होकर भिन्न भिन्न भाषाभाषियोंकी चिकित्सा-शास्त्र सम्बन्धी आकांक्षापूर्ण किया करते थे। यहाँ तक्षशिला, नालन्द आदिके विश्वविद्यालयोंमें समस्त विश्वके विद्वान आकर शिक्षा प्राप्त करते और फिर अपने देशमें जाकर विद्याका प्रकाश फैलाते थे। यदि वेद अनादि हैं (कमसे कम उनसे पहले कोई विधिवद्ध ऐसा ज्ञानका भंडार न था) तो ऋग्वेद और अथर्ववेदका उपाङ्ग होनेके कारण आयुर्वेद भी अनादि है। आयुर्वेद, संसारके चिकित्साशास्त्रका जगद्गुरु है, और यद्यपि आज वह राखमें ढके हुए अग्निके समान प्रभाहीन हो रहा था, तथापि कुछ ही प्रयत्नसे आज भी उसमें वही तेज, वही चमक दमक, वही प्रभाव और वही जगद्गुरु होनेकी गुणगरिमा आ सकती है। भारतीय-धर्म, भारतीय समाज, आयुर्वेदमय हैं। वेद, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, काव्य, धर्मशास्त्र सब आयुर्वेदकी महिमा और प्रभावसे ओत प्रोत और भरे हुए हैं। यूरोप और अमेरिकाके सुप्रसिद्ध विद्वान और डाक्टर आयुर्वेदका लोहा मानते हैं। उसकी श्रेष्ठता और उपयोगिता स्वीकार करते हैं। इस विषयके प्रमाण भरे पड़े हैं और अनेक बार वैद्य-सम्मेलनके मञ्चसे भी दुहराये जा चुके हैं। विश्रुतकीर्ति महामहोपाध्याय कविराज

गणनाथ सेन सरस्वती, वैद्यरत्न कविराज योगेन्द्रनाथ सेन विद्याभूषण, 'आयुर्वेद-मार्तण्ड पण्डित श्री लक्ष्मीराम स्वामीजी महाराज प्रभृतिने इस विषय पर कहने योग्य बातें कह दी हैं। इसलिये मैं प्राचीन कीर्तिके गुणगानमें कुछ नहीं कहूँगा। उसे सब जान गये हैं; अतएव उसका कोई विशेष उपयोग भी नहीं है। मैं केवल इसी बातपर निवेदन करूँगा कि वर्तमान परिस्थितिके अनुसार हमारा कर्तव्य क्या है? हम पर किस बातका उत्तरदायित्व है और सम्मेलन-संस्थाको स्थायित्व देने और गौरवशाली बनाये रखनेके लिये हमें क्या करना चाहिये।

वर्तमान कालीन उत्तरदायित्व

शान्तिके समयकी अपेक्षा क्रान्तिके समयमें प्रत्येक मनुष्यकी जिम्मेदारियाँ बहुत बढ़ जाती हैं। आयुर्वेदके लिये यह क्रान्तिका समय है। हमारे बहुतसे वैद्य भाई आँख खोलकर देखें अथवा न देखें; परन्तु पौ फट चुकी है, अन्धेरा विलीन हो रहा है, पूर्वकी ओर उषाकी लालिमा सहसा दृष्टिको अपनी ओर खींच रही है! जनताका अधिकांश भाग यद्यपि मुग्ध है, तथापि प्रबुद्धोंकी भी कमी नहीं हैं। कौंसिलोंमें आयुर्वेदके लिये प्रस्ताव पास होते हैं। सरकार उसके सत्व और स्वत्वका विचार करने लगी है, कहीं कहीं अपनी सदाशयताका भी परिचय देने लगी है। यही समय है कि यदि हम चाहें तो आयुर्वेदके लिये कुछ कर सकते हैं और आलस्य प्रमादमें यदि पड़े रहें तो अपने भविष्य, अपनी उन्नति और आयुर्वेदके उत्कर्षको भारी धक्का भी पहुँचा सकते हैं। यही हमारी कर्तव्यशीलताकी परख करने और अपना उत्तरदायित्व सँभालनेका समय है। कहीं सरकारी कमेटियाँ बन रही हैं, कहीं वैद्योंके नामकी रजिस्ट्री कराने और आयुर्वेदकी शिक्षा और पाठ्यक्रमका निर्णय करनेका आयोजन हो रहा है; कहीं पाठशालाएँ और कालेज खुल रहे हैं और कहीं वैद्यसम्मेलनका प्रतिनिधित्व स्वीकार किया जा रहा है। सारांश दूसरे लोगोंका ध्यान आयुर्वेदकी ओर खिंच रहा है, उसका भविष्य साँचेमें ढालनेकी तैयारी हो रही है। ऐसे समय क्या आँख मींचकर बैठना वैद्योंके लिये उचित होगा? यही समय है, जब वे कर्तव्य-निर्धारण कर अपना उत्तरदायित्व समझते हुए कमर कसकर भिड़ जावें। आलस्य-ईर्षा-डाह-परस्परका मनो-मालिन्य बड़े छोटेका विचार भूल कर केवल कर्तव्य पर दृष्टि रखें; व्यक्तिगत और समाजगत सभी कर्तव्य और उत्तरदायित्वको समझें और संभालें। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो हम पर आत्महत्या, धर्मच्युति और राष्ट्रहननका महापातक लगेगा और संसारके इतिहासमें हम महाधिनौने जीव समझे जायँगे।

सम्मेलनका भविष्यकर्तव्य

सम्मेलन-संस्थाको अवतीर्ण हुए २० वर्ष हो चुके और आज उसके सत्रह अधिवेशन भी पूर्ण हो रहे हैं। सम्मेलन अब युवा अवस्थामें पहुँच गया है। अब

उसकी नाबालगी छुट रही है, अब वह अपने प्रकृत अधिकारोंका अधिकारी होनेवाला है। अब तक उसने जान अथवा अनजानमें, भला अथवा बुरा, जो कुछ किया वह क्षमा योग्य भी हो सकता है, वह उसके बालचापल्यका द्योतक समझ विचारमें नहीं भी लाया जा सकता; परंतु अब आगे उसका प्रज्ञापराध किसी तरह क्षमा-योग्य नहीं हो सकेगा। उसे बहुत समझ-बूझकर अपना कर्तव्य सँभालनेकी आवश्यकता है। अब तक सम्मेलनके काम अधिकतर आन्दोलनात्मक रहे हैं। उसके स्वयं करनेकी बातें कम रही हैं; किन्तु वैद्योंमें और सर्व-साधारणमें सहानुभूति और जागृति करनेके लिये प्रयत्न किया जाता रहा है। किन्तु अब केवल उसीसे काम नहीं चलेगा, अब सम्मेलनको आन्दोलनात्मक-कार्य केवल सहारामात्रके लिये रखना होगा। अधिकतर उसे ठोस काम करना पड़ेगा, विधायक और संगठनात्मक कार्य करना पड़ेगा। उसे आयुर्वेदकी उन्नतिके अधिकांश कामोंको अपने सिरपर लेलेना पड़ेगा। उसे साहित्यकी पूर्तिके लिये, साधनोंकी सिद्धिके लिये, त्रुटियोंकी खोज और उनकी पूर्तिके लिये, अनुसन्धानका अनुष्ठान करनेके लिये बद्धपरिकर होना पड़ेगा। कार्यका विस्तीर्ण मैदान है, जो जिस लायक हो, उसके जिम्मे वैसेही काम सौंपने होंगे। सम्मेलनको एक चतुर व्यवस्थापक बनकर सूत्रधारकी तरह सूत्रसञ्चालन करना होगा। उसे अपने पुराने कामोंके साथही कुछ नये कामोंको भी स्वेच्छासे अपने ऊपर लेना होगा। समयसूचकतासे काम निकालना होगा। भविष्य-कर्तव्य निर्धारणमें बहुत सावधानी और विशेषज्ञोंकी सम्मतिका समादर करना होगा। अन्यथा सम्मेलन-संस्था निरर्थक हो जावेगी, समयकी दौड़में पिछड़ जावेगी। यह सत्य है कि सम्मेलनने अपने आन्दोलनमें आशानुरूप अच्छी सफलता प्राप्त की है। जनताके हृदयमें, कौंसिलरों और असेम्बलीके मेम्बरोंमें सरकार-दरबार देशी रजवाड़ोंमें, म्युनिसिपलबोर्ड और डिस्ट्रिक-बोर्डोंमें वैद्य और देशी वैद्यककी चर्चा उठने लगी है, उनके अधिकारोंपर विचार होने लगा है, ऐसे समयमें हमें गम्भीरताके साथ अपने भविष्य-कर्तव्यका निर्धारण करना होगा। कहीं ऐसा न हो कि हमारे आलस्य और प्रमादसे अबतकका किया कराया काम मिट्टीमें मिल जाय। ऐसे समय सम्मेलनके प्रति, देशके प्रति आयुर्वेदके प्रति,

वैद्योंका कर्तव्य

—क्या है यह हमें और प्रत्येक वैद्यको सोचना और निश्चय करना चाहिये। इस समय देश उठनेका प्रयत्न कर रहा है; आँख मींचकर अँगड़ाई लेकर बैठ गया है, उठता और अन्धकार देखकर फिर बैठ जाता है। ऐसे समय उचित यह है कि देशके सभी अङ्ग, सभी विभाग और श्रेणीमें जागृति हो, देशको सभी श्रेणी और वर्गके लोगोंमें जागृतिकी ज्योति जगमगा उठनी चाहिये। विभावरीका अवसानसूचक प्रभावतीकी तान और भैरव राग के आलापसे देशके प्रत्येक हृदयकी आनन्द लहरी

लहरा उठनी चाहिये। सबका एक ध्येय, एक ज्ञेय, एक प्रेय और एक श्रेय देशकी उन्नति, देशकी स्वतन्त्रता और सर्वाङ्गीण स्वराज्यकी प्राप्तिका लक्ष्य होना चाहिये। जैसे समुद्रमन्थनके समय देवता और दैत्य सभी मिलकर समुद्रमन्थनमें भिड़ गये थे और एकके बाद दूसरे चौदह रत्नोंकी प्राप्ति कर सके थे, अमृत प्राप्त कर सके थे, उसी तरह सबके तन-मन और धनका झुकाव और उपयोग देशके उत्थानकी ओर होना चाहिये। यह आवश्यक नहीं और मनुष्य-स्वभावके अनुकूल भी नहीं कि सभी लोग एकही कार्य और ढङ्गमें लगें। अपनी-अपनी रुचि, अपनी-अपनी योग्यता तथा अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार कार्यविभाग और कर्त्तव्य-निर्धारण कर लेना चाहिये; किन्तु लक्ष्य सबका एक राष्ट्रीय उत्थान होना चाहिये। प्रत्येक राष्ट्रीय कार्यका विभागीकरण हो जाय और अपने-अपने विभागको सामूहिक पद्धतिके अनुसार सँभाल कर प्रत्येक व्यक्ति अपना कार्य और अपना कर्त्तव्य चुन ले। उस समूहका एक सङ्गठन हो और सभीको उसका कायल होकर काम करना चाहिये। केन्द्रीयशक्ति सम्पादित किये बिना कार्य निश्चित पद्धतिसे नहीं हो सकता और न उसमें प्रभावशाली और सफलतादायिनी शक्तिही आती है। अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग अलग आलापनेसे स्वर-ताल सब अलग और कर्णकर्कश हो जायगा। वह किसीको आकर्षित नहीं कर सकेगा। सितार तार मिले हुए न होनेसे कभी इच्छित राग-रागिनीका स्वर उसमेंसे नहीं निकल सकता। अपने चिकित्सा-विज्ञानकी उन्नति करना उसे झाड़ पोंछकर निर्मल और दर्शनीय बनाना भी राष्ट्रीय कार्य है और इसे पूर्ण करनेका भार उस विज्ञानके अवलम्बियों परही निर्भर हो सकता है। हमारा आयुर्वेद जगत्-कल्याणकारी है और उसे जानने, समझने, उपयोग करने और उससे लाभ उठानेका अधिकार सबका होनेपर भी वह हमारी खास सम्पत्ति है, हम उसके परम्परागत वारिस और ट्रस्टी हैं। उसकी उन्नतिका काम हमें ही करना होगा, बिना हमारे उठे, बिना हमारे भिड़े अन्य कोई इसमें सहायक नहीं हो सकता। यह हमारे वैद्योंका ही कर्त्तव्य है कि देशके प्रत्येक व्यक्ति तथा प्रत्येक समष्टि तथा प्रत्येक शक्तिको उसकी सहायतामें प्रयुक्त करनेका उद्योग करें। हमारे कर्तव्यशील नहीं होनेसे इस अङ्गका उत्थान होना असम्भव है। इस लिये प्रत्येक वैद्यको समझ रखना चाहिये कि जब देश उन्नतिकी दौड़में सरपट जा रहा है, तब हमें अपने विभागको पीछे रखनेका कोई हक नहीं है। हमें अपने राष्ट्रीयधर्म और कर्तव्यसे पराँमुख होनेका कोई अधिकार नहीं है। हमें भी देशके अन्य विभागोंके साथ विवेचना पूर्वक आगे बढ़नाही होगा। धर्मपतित होकर अधोगतिमें जाना अक्षम्य अपराध है, आत्मघात और राष्ट्रीय अपमान है। इस बातको समझकर प्रत्येक वैद्यको अपनी केन्द्रीय शक्तिका अंग बनना पड़ेगा, और उसके अङ्गभूत होकर अपने योग्य कर्तव्य चुनकर उसमें आलस्य-प्रमाद और कुत्सित-स्वार्थको त्यागकर जुट जाना पड़ेगा। हमारा ध्येय आयुर्वेदकी उन्नति, हमारा

प्रेय उसकी केन्द्रीयशक्ति वैद्यसम्मेलनका सर्वाङ्गीण सङ्गठन और हमारा श्रेय सम्पूर्ण विश्वमें अपने चिकित्सा विज्ञानकी फिर एक बार धाक जमानेका है। उस कर्तव्यको सचाईके साथ निभाना होगा। इसी एक बातमें वैद्योंके सारे कर्तव्योंका समावेश हो जाता है। व्यक्तिगत योग्यता प्राप्त करना, शास्त्र लिखित मर्यादाका पालन करना, शास्त्रनिर्दिष्ट चिकित्सोपयोगी गुणोंका सम्पादन कर पीयूषपाणि और प्राणाभिसर-प्राणाचार्य पदको पहुँचना, पारस्परिक प्रेमभावकी वृद्धि और सहानुभूतिका वर्ताव रखना, सब मिलजुलकर अपना व्यक्तिगत और राष्ट्रीय कर्तव्य सँभालना प्रत्येक वैद्य का कर्तव्य, धर्म और अनुष्ठेय सदाचार है।

संगठन

हम वैद्यसम्मेलनको इतना दृढ़ और सुसङ्गठित देखना चाहते हैं कि वह वैद्योंकी सरकार हो सके। आयुर्वेदके काममें प्रमाण हो, उसका इशारा हमारा प्राणवायु हो, उसकी आज्ञा हमारा शिरोधार्य विषय हो, वह हमारा पञ्च-परमेश्वर हो। इस सङ्गठनके जमानेमें "सङ्घशक्तिः कलौयुगे" के मन्वन्तरमें शङ्घशक्ति सम्पादन किये विना, अपना पूर्ण सङ्गठन किये विना किसी समाजमें न तो स्थिरता आती है, न प्रभावशाली स्वरूप प्राप्त होता, न कार्यसिद्धिकी शक्ति उसमें उत्पन्न होती है। अभी तक हमारा सङ्गठन शक्तिमान नहीं है। अभी तक हमने उसे अपना सर्वस्व नहीं बना लिया है। अभी तक उसके इशारे पर हम अपना कर्तव्य और रुख सञ्चालित करने पर बाध्य नहीं हुए हैं। अभी सम्मेलनका शासन आयुर्वेदीय जगतमें बहुमान्य होने पर भी सवमान्य नहीं हो पाया है। शासन दो प्रकारसे होता है, एक तो कानूनसे बँधकर, लाचारीके साथ, अनिच्छा होते हुए भी शक्ति और सख़्तीके साथ हमें उसके अधीन होना पड़ता है। ऐसा शासन शरीर पर भले ही हो जाय; परन्तु मन पर नहीं होता। उस शासन पर शासितकी श्रद्धा-भक्ति नहीं उत्पन्न हो सकती। दूसरा शासन स्वेच्छापूर्वक अपनी केन्द्रीय शक्तिके अधीन आत्मसमर्पण कर देनेसे होता है। कोई जनसमुदाय अपनी कार्य-सुविधाके लिये जब अपना सङ्गठन करनेके विचारसे अपनी एक केन्द्रीयशक्ति स्थापित कर अपने ही बनाये नियमोंसे आप ही बँध जाता है और शक्ति सम्पादनके लिये उसे दृढ़ करता है, उसके शासनाधीन आत्मसमर्पण कर उसका गौरव बढ़ाता और स्वयं गौरवशाली बनता है, तब वह शक्ति एक सरकारके समान हो जाती है। उस पर उस समूहकी स्वयं स्फूर्तिसे श्रद्धा भक्ति उत्पन्न होती है और न्याय तथा धर्म-विवेचनाके साथ उसका सञ्चालन होते रहनेसे दिनोंदिन वह शक्ति दृढ़ और प्रभावशाली होती जाती है। हमें ऐसे ही शक्ति संचय और ऐसे ही सङ्गठनकी अपेक्षा है। भगवान धन्वन्तरि हमारे सम्राट, आयुर्वेदीय जगत हमारा साम्राज्य, अन्य चिकित्सा जगतमें आयुर्वेदके प्रभावविस्तार

और गौरव-गरिमाकी स्वीकृति हमारे उपनिवेश, वैद्यसम्मेलन हमारी पार्लमेंट और प्रान्तीय सम्मेलन हमारी प्रान्तीय सरकार होंगी। यह सुख-स्वप्न कब सत्य हो सकता है ? जब हम स्वेच्छासे अपने ही नियमोंमें आप ही इस प्रकार बँध जायँ, सम्मेलनकी आज्ञाको अटल और अचल समझ उसकी पूर्तिमें आत्मसम्मान समझें, व्यक्तिगत स्वार्थ, व्यक्तिगत सम्मान और व्यक्तिगत अभिमानको उसीके स्वार्थ-सम्मान और अभिमानमें सम्मिलित कर दें। ऐसा सङ्गठन अच्छी विधिव्यवस्थाके साथ ही हो सकता है।

ऐसे संगठनकी इमारत तैयार करनेके लिये हमें गहरी नींव बहुत नीचे तक स्थापित करनी होगी। ऐसे संगठन रूपी अश्वत्थवृक्षकी जड़ें बहुत गहरे जाकर सुविशालवृक्ष हो और वह सब ऋतुसुखदायी शान्तिप्रद छाया दे सके इस विचारसे, बीजारोपण, और वृक्ष-संवर्धन करना होगा। अभी हम डाली और पत्ते सींच रहे हैं; किन्तु जड़की परवाह नहीं कर रहे हैं। यही कारण है कि हमारा सम्मेलन वृक्ष रूखा सूखा रोठियाया-सा बना है। हमें उसकी जड़में खाद पहुँचाना और जल सिंचन करना होगा। अभी हम सालमें एक बार आयुर्वेदमहामण्डलका चुनाव कर और प्रान्तीय मन्त्रियोंका नामनिर्देश कर सम्मेलन सरकारका कार्यसञ्चालन करने लग जाते हैं; परन्तु देशके गहरे हृदय तक नहीं पहुँच पाते। हमें सोचना चाहिये कि हमारा संगठन किस प्रकार दृढ़ हो। हमें अपने संगठनका एक सुन्दर स्वरूप तैयार करना चाहिये। कल्पनाका प्रसार होनेके लिये मैं एक मोटी कल्पना उदाहरणके तौर पर उपस्थित करता हूँ, जिससे हमारे अगुवा और विद्वान वैद्य उसका विस्तार कर स्वरूप निर्णय करनेमें मनोनिवेश कर सकें। संगठन वही स्थायी और दृढ़ होगा जो नीचेसे ऊपर बढ़ेगा। हमारे देशका अधिकांश जनसमुदाय नगरोंकी अपेक्षा देहातोंमें रहता है। वही नगरोंका भी पोषक है। अतएव हमें देहातोंकी ओर ध्यान देना होगा। देहातके अनेक गाँवोंमें प्रथम तो अभी वैद्य हैं भी नहीं और जहाँ हैं भी वहाँ उन्हें अभी नये ढँगसे कार्य संचालनमें असुविधा होगी। इसलिये प्रत्येक गाँवमें तो नहीं; किन्तु प्रत्येक तहसीलको केन्द्र मान कर हमें मण्डल सभाएँ स्थापित करनी चाहिये। प्रत्येक तहसील मण्डल अपने प्रभावक्षेत्र के सम्पूर्ण गाँवोंके वैद्योंको वैद्यसम्मेलनके सदस्य बनावें, पहले हरएक तहसीलके कुछ उत्साही वैद्य अपनी तहसीलमें सम्मेलनके सदस्य बनावें और फिर दश बारह ग्राम समूहका एक "ग्राममण्डल" मान उस मण्डलके सदस्योंकी ओरसे एक या दो दो प्रतिनिधि चुन "तहसील मण्डलका" संगठन करें, जिसमें २५ से ५० तक सदस्य रहें। फिर इन तहसील सभाओंकी ओरसे प्रतिनिधि चुन कर जिलेकी सभा बने और जिलेकी सभाओंके प्रतिधियोंके द्वारा प्रान्तिक सम्मेलनका चुनाव हो। इस प्रकार प्रान्तिक सम्मेलन पूर्ण प्रातिनिधिक संस्था होगी और उसके संगठनमें प्रत्येक गाँवका हाथ रहेगा। इन्हीं प्रान्तिक सम्मेलनोंके द्वारा आयुर्वेदमहा-मण्डलका चुनाव होवेगा (जैसाकि आजकल भी किसी अंशमें होता है)। प्रान्तिक

सम्मेलनोंको और भी अधिक अधिकार पूर्ण और प्रभावशाली बनाना चाहिये, जिससे अपने प्रान्तका अधिकांश वही कार्य करे,"आयुर्वेद महामण्डल" केवल निरीक्षण रखे। इससे कार्यमें सुविधा होगी और आयुर्वेदमहामण्डलका प्रभाव तो बढ़ जायगा; किन्तु कार्य-जाल विस्तृत न होकर सुव्यवस्थित हो जायगा। यह आवश्यक है कि प्रान्तीयसम्मेलन अधिक सजीव कर्मदक्ष अवधानपूर्ण रहे, जिससे अपने प्रान्तका नियम निर्धारितकर पूरी व्यवस्था कर सके। मान लीजिए कि प्रत्येक सभासद की फीस १) रखी जाय, उसमें से ~) ग्राममण्डलोंके पास, =) तहसील मण्डलोंके पास, =) जिला मण्डलोंके पास, ।) प्रान्तिकमण्डलोंके पास और ।=) आयुर्वेदमहामण्डलके पास पहुँचना चाहिये। प्रत्येक वैद्यको सभासद बनानेके लिये कुछ आकर्षण भी होना चाहिये। अतएव सम्मेलनके सभासदोंको रुपयोंकी रसीदके सिवाय सभासद होनेके प्रमाणस्वरूप एक प्रमाणपत्र भी मिलना चाहिये। जिसका अर्थ योग्यता सूचक नहीं; बल्कि सभासद होनेका प्रमाणसूचक हो। इसके सिवाय ऐसे लोगोंको सम्मेलन-पत्रिका आधे दाममें और सम्मेलनसे प्रकाशित अन्य ग्रन्थसाहित्य भी आधे अथवा चौथाई कम दाममें मिलना चाहिये। सम्मेलनके कार्योंमें भाग ले सकनेकी सुविधा सूचक कुछ नियमशृंखला भी रहनी चाहिये। यदि आवश्यक समझा जाय तो आयुर्वेद-महामण्डलके प्रतिनिधि सदस्योंसे २), प्रान्तीय सम्मेलनके प्रतिनिधि सदस्योंसे १) तथा जिला मण्डलके प्रतिनिधि सदस्योंसे आठआना और तहसीलमण्डलके सदस्योंसे ।) वार्षिक अतिरिक्त शुल्क भी लिया जा सकता है। सभासद बनाने तथा इस कार्यकी सिद्धि और प्रचारके लिये सम्मेलनकी संस्थाओंको कुछ वैतनिक प्रचारक भी रखने पड़ेंगे। जिससे तहसील मण्डलके कार्यकर्त्ताओंका अधिक परिश्रम बचे और उनके अल्पप्रयास और अधिक प्रभावके कारण ही कार्य—व्यवस्था चलती रहे। इससे सम्मेलन बहुत प्रभावपूर्ण संस्था और पूर्ण प्रातिनिधिक संगठितशासनशक्ति बन सकेगी। उसके हजारों लाखों सभासद हो सकते हैं; वह अपना कार्य-विस्तार बहुत कुछ बढ़ा सकता है। उसे आन्दोलन कार्यके साथही बहुतसे विधायक कार्य और स्थिर साहित्य निर्माणके काममें ध्यान देनेका अवसर मिल सकता है। किन्तु इसमें सफलता तभी होगी जब प्रत्येक वैद्य सम्मेलनके प्रति अपना कुछ कर्तव्य समझेगा, अपने भाग्यविधाता आयुर्वेदकी सेवा करना अपना धर्म मानेगा और भगवान् धन्वन्तरिकी आज्ञाओं और आदेशोंको श्रद्धाभक्ति और सच्ची लगनसे पूर्ण करनेमें अपना गौरव और अपना कल्याण समझेगा। अन्यथा ये कल्पना प्रसूत कार्य कल्पना मात्र रह जायँगे। इस संगठन युगमें सङ्गठनके लिये तत्पर न होने वाला मनुष्य यथार्थ मनुष्य कैसे कहा जा सकेगा, यह विचारणीय विषय है। जापान, यूरोप और अमेरिकाके विद्वान अपने शास्त्र, अपने विज्ञान और अपनी अभीष्ट विद्याके लिये अपना-अपना जीवन समर्पित कर देते हैं और एकन एक सिद्धान्तके निकालनेमें

समर्थ होते हैं। वहाँ एक-एक सोसायटी इतनी दृढ़ और प्रबल है कि वह विश्वव्यापी काम करनेमें समर्थ होती है और अपने पास लाखोंका फण्ड रखती है।

सर्वसाधारणका कर्तव्य

जनता जनार्दनका स्वरूप है। जिस काममें जनताका समर्थन और प्रोत्साहन नहीं होता, वह कभी सफल नहीं हो सकता। राष्ट्रीय और सार्वजनिक कामोंमें जनताकी पुष्टि बहुत अपेक्षित है। जनताकी शक्तिही प्रबल और असरकारक शक्ति है। जनताका जोर बड़े-बड़े साम्राज्योंको बनाता और बिगाड़ता है। जनताकेही जोरके कारण यूरोप और अमेरिकाकी क्रिश्चियन सोसायटियाँ, वैज्ञानिक और भौगोलिक अन्वेषण करनेवाली संस्थाएँ विश्वव्यापी काम करनेमें समर्थ होती हैं। संसारका ऐसा कौन देश है जहाँ ईसाइयोंकी सोसायटियाँ अपना धर्म फैलानेके लिये विविध उपायों-का जाल नहीं फैलाये हुए हैं। भिन्न-भिन्न संस्थाओंके प्रतापसेही कहीं उत्तरी ध्रुवकी खोज होती है और कहीं गौरीशङ्करकी चोटी नापी जाती है। हमारा वैद्य-सम्मेलन जो कुछ भी सफलता पा सका है वह जनताको सहानुभूतिके कारणही पा सका है। परन्तु यह कहना पड़ेगा कि अभी हमारे इस विभागको जनतासे यथेष्ट सहायता नहीं मिली है। यह सत्य है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके द्वारा और कहीं-कहीं पञ्चायतों और संस्थाओंके द्वारा कुछ धर्मार्थ औषधालय खोले गये हैं, कुछ आयुर्वेदविद्यालय चलाये जा रहे हैं। अन्य आयुर्वेदिक संस्थाओंको भी कुछन कुछ सहायता मिलही जाती है। परन्तु अपने इस प्राचीन विज्ञान और जगद्गुरु विद्याके लिये, भारत गौरव स्वरूप आयुर्वेदके प्रचार और सुधारके लिये लाखों और करोड़ोंकी सहायता अनायास मिलनी चाहिये। मन्दिर बनाने, कुँवा खुदवाने, तालाब बनवाने और धर्मशालाएँ तैयार करानेमें हमारे धनियोंका धन सनातनसे लगता आ रहा है। उसी तरह अब अपनी विद्याके लिये, आयुर्वेदकी शिक्षा-दीक्षाके लिये, आयुर्वेदके अनेकों कार्यों की सिद्धिके लिये धनियोंका ध्यान आकर्षित होना चाहिये। देशकी ३२ करोड़ जनतामेंसे ५ करोड़ मनुष्य भी कुछ संयम स्वीकार कर एक बार एक-एक रुपया भी दें तो सम्मेलनके पास ५ करोड़ रुपयेका एक फण्ड हो सकता है। यही क्यों देशमें हजारों लाखों मनुष्य हैं, जो निस्सन्तान होनेके कारण, या धार्मिक उत्साहके कारण अपना स्मारक बनाये रखनेके लिये अथवा अपनी कीर्तिरक्षाकी, धार्मिक प्रवृत्तिकी तृप्तिके लिये कुछ करना चाहते हैं; वे यदि वैद्यसम्मेलन या अन्य आयुर्वेदिक संस्थाओंको ऐसी रकम देकर विल कर दें या सम्मेलनको अपना ट्रस्टी बनाकर विद्यालय, औषधालय, अन्वेषण, पुस्तकप्रकाशन, उद्यान प्रभृतिके लिये अपनी रकम लगा दें तो सम्मेलनकी अर्थकृच्छ्रता दूर हो और वह कुछ उपयोगी और स्थायी कार्य करनेमें समर्थ हो। यूरोप-अमेरिकाके धनी ऐसी संस्थाओंके नाम लाखोंका विल कर

जाया करते हैं। वैद्योंका उद्योग होना चाहिये कि जनताकी प्रवृत्तिको इधर झुकानेका प्रयत्न करें। मन्दिर और धर्मशालाओंसे राष्ट्रमन्दिर और विज्ञान मन्दिरकी स्थापना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। इससे देशवासियोंका क्षणिक तोष नहीं; बल्कि स्थायी और अनन्तकालव्यापी शारीरिक, धार्मिक और आत्मीय उन्नतिके साधन सुधरने और राष्ट्रीयउत्थान तथा देशके प्रभाव विस्तारमें सहायता मिलती है। इसीलिये वैद्योंका यह प्रधान कर्तव्य है कि वे जनताके निकटतम तो हैं ही, अपने उद्योग और कार्योंसे जनताके हृदयपर स्थान करें और केवल स्वार्थके लिये ही नहीं, अपने आयुर्वेदके लिये उनसे कुछ सहायता लेते रहनेका उपाय करें। जिस शास्त्रका सम्बन्ध राष्ट्रकी अभिवृद्धि और जीवन-मरणसे है, स्वास्थ्यरक्षा और अमनचैनसे है; राष्ट्रीयशक्ति तथा सार्वजनिक आनन्द और उन्नति-अवनतिसे है; झुकानेपर उसकी ओर जनताका झुकाव न हो यह कभी हो ही नहीं सकता।

देशी रजवाड़ोंकी अनुकूलता

सुविस्तृत भारतवर्षकी एक तिहाई भूमि देशी रजवाड़ोंके द्वारा शासित होती है। इसके सिवाय देशमें ऐसे भी बहुत-से राजा, रईस, ताल्लुकेदार और जमींदार हैं, जो स्वयं अधिकार प्राप्त शासक तो नहीं; परन्तु बहुत-से भूखण्डपर एक तरहका शासन और प्रभाव रखते हैं; देशकी लाखों करोड़ों जनताके ये अधीश्वर हैं और बहुत कुछ करनेमें समर्थ हैं। एक विदेशी सरकार और शासकोंकी मनोवृत्तिपर अपने राष्ट्रीय भावोंकी छाप लगाना उतना सरल नहीं है जितना अपने ही देशवासी, अपने ही जाति और सहधर्मी तथा अपने ही रक्तमांस होनेके कारण देशी नरेशों और ताल्लुकेदार-जमींदारोंको अपनी आवश्यकता और अपने मनोभाव समझाकर उन्हें अपने अनुकूल बनाना सरल और सुसाध्य है। देशी रजवाड़ोंपर हमारा काफी प्रभाव पहलेसे चला आ रहा है, उसे दृढ़ और सुविस्तृत बनाना हमारा कर्तव्य है। हम मानते हैं कि आजकल अनेक देशी नरेश विदेशी भावापन्न होते जा रहे हैं, अपनी प्राचीनताको भुलाते जा रहे हैं, अपने गौरवसे गिर रहे हैं और अपनापन सुरक्षित रखनेके बदले विलासिता और व्यसनोंके-पीछे पड़ अपना और अपनी जनताका अपकार कर रहे हैं। तथापि ऐसे नरेशोंकी भी तो कमी नहीं है जो सहानुभूतिपूर्ण हृदय रखते हैं, अपने कर्तव्य पालनकी ओर दत्तचित्त रहते हैं। उन्हें अपनी इस विद्याकी ओर ले आना क्या हमारा कर्तव्य नहीं है। प्रत्येक राजवाड़ोंमें पहले राजवैद्य होते थे और वे प्राणाचार्य और प्राणाभिसर राजगृहके पास ही रह राजाकी प्राणरक्षा, प्रजाकी स्वास्थ्यरक्षा और सेनाकी शक्तिरक्षाका काम किया करते थे।

राजा राजगृहासन्ने प्राणाचार्य निवेशयेत्।
सर्वदा स भवत्येवं सर्वत्र प्रतिजागृविः॥

परन्तु आज जहाँ देखो वहाँ मेडिकल आफिसर और सिविलसर्जनोंकी तूती बोल रही है। कचित् अवसरोंको छोड़कर वैद्योंसे बात भी नहीं पूछी जाती! ऐसा क्यों होता है? क्या इसमें सारा दोष राजाओंका ही है? क्या अच्छी योग्यता सम्पादन न करनेके कारण राजवैद्य लोग अपना अधिकार खो नहीं बैठे? हाँ नरेशोंका भी इतना दोष अवश्य है कि अपने राजवैद्योंको योग्यता प्राप्त करनेके लिये उन्होंने बाध्य नहीं किया। कैसे वैद्यकी नियुक्ति होनी चाहिये, उन्होंने इसका विचार नहीं किया। शास्त्र कहता है—

श्रुतचरित समृद्धे कर्मदक्षे दयालौ भिषजि निरनुबन्धं देहरक्षां निवेदय।
भवति विपुल तेजः स्वास्थ्यकीर्तिप्रभावः स्वकुशलफलभोगी भूमिपालश्चिरायुः॥

अतएव देशी नरपतियोंसे हमें प्रार्थना करनी चाहिये कि वे अपने यहाँ अच्छे राजवैद्य नियुक्त करें राज्यमें औषधालय, विद्यालय, रुग्णालय प्रभृति खोलें और धीरे-धीरे अपने मेडिकल डिपार्टमेण्टमें राजवैद्यका काफी प्रभाव स्थापित करें। स्वर्गीय रीवाँ नरेश महाराज वेंकटरमणसिंहजू देव बहादुरने वैद्यसम्मेलनके सहयोगसे एक आयुर्वेद महाविद्यालय खोलवानेका उत्साह प्रकट किया था; किन्तु उनके अचानक स्वर्गवासके कारण वह कार्य न हो पाया। बड़े रजवाड़े तो अपना विद्यालय चाहें तो अलग भी कर सकते हैं; किन्तु यह अधिक सुविधाजनक होगा कि कई रजवाड़े मिलकर देशमें कई विद्यालय खोलें और उनमें कार्य कुशल तथा विद्याविशारद वैद्य तैयार करानेका उपक्रम करें। इस कामको वे चाहें तो वैद्यसम्मेलनके सहयोगसे कर सकते हैं और चाहे अपनी बनी बनायी हुई एक कमेटीके निरीक्षणमें लगा सकते हैं। उदाहरणार्थ एक विद्यालय राजपूतानेके रजवाड़ोंके द्वारा, एक बघेलखण्ड-बुन्देलखण्ड-मध्यभारत और मध्यप्रदेशके रजवाड़ोंके द्वारा प्रस्थापित हो सकता है। एक पंजाब और संयुक्तप्रान्तके बीच, एक दक्षिणमें और एक बिहार और बंगालके नरेशोंके द्वारा हो सकता है। ऐसा होनेसे सम्मिलित शक्तिके कारण ये विद्यालय अपने सम्पूर्ण अंग-उपांगोंके साथ चलाये जा सकते हैं। पटियाला, ग्वालियर, भरतपुर, जयपुर, इन्दौर, बड़ोदा, हैदराबाद, मैसूर, कोचीन, त्रावणकोर, दरभंगा, प्रभृति मान्य नरेशोंने इस कार्यमें जो उत्साह प्रकट किया है वह अभिनन्दनीय है और समय-समयपर सम्मेलन इस कार्यके लिये उन्हें कृतज्ञता पूर्वक धन्यवाद दे चुका है। यदि ये तथा अन्य देशी नरेश ऐसे कार्योंमें समय-समयपर वैद्यसम्मेलन और प्रतिष्ठित वैद्योंकी सलाह लेते रहें तो इस कार्यमें अधिक सुविधा हो सकती है। एक बात और भी सुझाये बिना मैं अपने इस अंशको समाप्त नहीं कर सकता। श्रीमान् निज़ाम सरकारने अपने यहाँ एक विश्वविद्यालय स्थापित किया है और बड़ोदा नरेश तथा मैसूर नरेशने भी अपने यहाँ विश्वविद्यालय स्थापित करनेकी तैयारी कर रहे हैं। हमें इन तीनों मान्य नरेशोंसे प्रार्थना करनी चाहिये कि इन विश्वविद्यालयोंमें

जहाँ अन्य शास्त्रोंकी शिक्षा-परीक्षा और उपाधि-दानकी व्यवस्था होगी तहाँ साथ ही आयुर्वेदकी सर्वाङ्ग-पूर्ण शिक्षा-परीक्षा और उपाधिदानकी व्यवस्था होनी चाहिये। देशी रजवाड़ोंका हमारा अभिन्न सम्बन्ध है और उसे प्रति दिन अधिक घनिष्ट, दृढ़ उपयोगी और प्रभावशाली बनानेका प्रयत्न करते रहना चाहिये।

सरकारी सहायता

जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे जलाकर्षण कर फिर मेघोंके द्वारा प्रजाकी रक्षा और भलाईके लिये जलवृष्टि करता है, उसी तरह राजा प्रजासे टैक्स वसूल कर विविध विभागोंके द्वारा प्रजाकी शिक्षा-रक्षा और हितके लिये खर्च करनेको बनाया गया है। एक समय था जब देशी रजवाड़ोंमें आयुर्वेदकी रक्षाके लिये अच्छी रकम खर्च करनेकी प्रवृत्ति रहती थी। तक्षशिला और नालन्दके विश्वविद्यालयोंमें राजकुमार लोग अतुल-सम्पत्तिके साथ आयुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये भेजे जाया करते थे। प्रजाके स्वास्थ्य और शक्ति-संचय पर नरेशोंका विशेष ध्यान रहता था। किन्तु जबसे भारत पराधीन हुआ तबसे अपने स्वास्थ्य, शक्ति और साहसमें भी दीन-हीन-मलीन होता जा रहा है। अवश्य ही मुसलमानी शासन कालमें आयुर्वेदविद्याकी रक्षा और प्रचारके लिये कोई प्रत्यक्ष कार्य नहीं हुआ; किन्तु अप्रत्यक्ष रूपसे उसके विनाशके साधन भी प्रवर्तित नहीं किये गये। अब अंग्रेजी शासन कालमें एलोपैथीके मोह और प्रचारके गुप्त प्रकट अभिप्रायके कारण और विदेशी औषधियोंकी विपुल बिक्रीकी वाणिज्य नीतिके कारण सरकारी नीति सदा आयुर्वेदके विपरीत ही रही। यह सत्य है कि विदेशी शासकजातिकी दृढ़ता और अस्तित्व इसी पर निर्भर रहता है कि वह सदा इस बातका प्रयत्न करे कि शासित जाति अपनेसे शासकजातिको अधिक योग्य और श्रेष्ठ मानने लगे। आयुर्वेदकी उत्कृष्टता यदि बराबर बढ़ने दी जाती तो शासित जातिको एक और अंशमें गौरव और अभिमान करनेका कारण होता। दुर्भाग्यसे उसकी इतनी उतरती कला भी हो चुकी थी कि वह सहसा जबरदस्ती विदेशी चिकित्सा पद्धतिपर प्रभाव डालनेमें समर्थ भी न हो सकी। यही कारण है कि डेढ़ दो सौ वर्षसे आयुर्वेद बराबर अधोगतिको पहुँचता रहा। उसे रसातल भेजनेके अभिलाषी उसकी लाचारी, दीनता और परवशतापर बराबर कहकहे लगाते और मजाक उड़ाते रहे। कभी बम्बई कौंसिलमें उसे रद्दी, निस्सार और जादू टोनेके समान अवैज्ञानिक पद्धति बतलाया जाता और कभी मद्रास कौंसिलमें किसी काफ्यू या जिफर्डके मुँहसे उसे गाली-सुननी पड़तीं और आयुर्वेदकी सहायता करना चलती घड़ीकी सूईको पीछे हटाना माना जाता, यह चिकित्सापद्धति निरर्थक कही जाती। वैद्योंका दर्पदलन करनेके लिये बम्बईसे आरम्भ कर धीरे धीरे सभी प्रान्तोंमें मेडिकल-रजिस्ट्रेशनएक्ट बने, डाक्टरोंको वैद्योंसे मिलने, उनसे चिकित्सा सम्बन्धी सलाह

मशविरा करने और उनके विद्यालयोंमें पढ़ाने जानेको रोका जाने लगा। आघात पर आघात जारी रहे। अपमान और उपमर्दसे वैद्य तलमला उठे। जनता और जनार्दनके दरबारमें उनकी पुकार और आहभरी साँसे पहुँचने लगीं! धूलि भी पादाक्रान्त होने पर सिर पर चढ़ती है फिर वैद्योंने कौंसिलके मेम्बरों और सरकारी अफसरोंके दरवाजे खटखटाये तो इसमें आश्चर्य ही क्या? कौंसिलमें लगातार प्रश्न और प्रस्ताव होते रहनेसे सरकारका आसन डोल उठा। सबसे पहले कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमीशनने आयुर्वेदकी श्रेष्ठता स्वीकारकी और उसकी पढ़ाई प्रवर्तित करनेकी उपयुक्तता मानी। इधर देशी मिनष्टरोंके होनेसे भी कुछ मार्ग सुगम हुआ। मद्रास सरकारने एक इन्कायरी कमीशन (अनुसन्धान समिति) बैठाया। कुछ लोगोंने उसे ढकोसला और मामलेको टकराने तथा खटाईमें डालनेका जरिया समझा। पहले अनेक कमीशनोंकी यही गति हो चुकी थी। इसलिये संयुक्तप्रान्तके वैद्योंने यह कह कर उस कमीशनका बहिष्कार किया कि जब तक सरकारका दृष्टिकोण प्रमाण द्वारा सहानुभूति-सूचक न सिद्ध हो तब तक हम इसमें भाग न लेंगे। खैर धन्यवादार्ह डाक्टर लक्ष्मीपति जैसे सहानुभूति पूर्ण कमिश्नरोंके कारण कमीशनकी रिपोर्ट बढ़िया निकली। उसमें खुले दिलसे आयुर्वेदकी श्रेष्ठता, उपयोगिता और वैज्ञानिकता स्वीकार की गयी। सरकारने रिपोर्ट पर अपनी मुहर लगा दी और फलस्वरूप एक आयुर्वेदिक स्कूल भी मद्रासमें खोल दिया। सरकारी दृष्टिकोणमें परिवर्तन होनेका प्रमाण मिला। इसके लिये उसके उद्योगी सज्जन और सरकार धन्यवादके पात्र हैं। इसके बाद बंगाल सरकारने भी एक इन्कायरी कमेटी बनायी। मालूम नहीं उसकी रिपोर्ट कैसी रही; परन्तु कलकत्तेके अष्टाङ्ग-आयुर्वेदविद्यालयको कुछ सरकारी सहायता शायद मिली है और आगे मिलनेवाली है। संयुक्तप्रान्तीय सरकारने भी आनरेबल जस्टिस पं० गोकर्णनाथ मिश्रके सभापतित्वमें जाँच करनेकी कमेटी बनायी जिसमें वैद्य भी सम्मिलित किये गये और विशेष बात यह है कि उसमें वैद्यसम्मेलनको एक मान्य संस्था समझ उस कमिटीमें वैद्यसम्मेलनका भी एक प्रतिनिधि रखा गया। जिसके कारण कविराज प्रतापसिंहजी और मुझे भी उस कमेटीमें काम करनेका अवसर मिला। उस कमेटीकी रिपोर्ट भी देशी चिकित्सापद्धतिसे पूर्ण सहानुभूति प्रकट करनेवाली और उसकी उपयुक्तता तथा वैज्ञानिकता स्वीकार करनेवाली प्रकट हुई। संयुक्तप्रान्तीय सरकारने अपने ऊपर आयुर्वेदविद्यालय चलानेकी जहमत-झंझट तो मंजूर न की; परन्तु काशी हिन्दू विश्वविद्यालयको आयुर्वेदका कालेज चलानेके लिये पाँच लाख रुपया एक कालीन और पचास हजार रुपये सालकी सहायता देना स्वीकार किया। इसी तरह आनरेबल सुखवीरसिंहके उद्योगके फलस्वरूप हरिद्वार ऋषिकुल आयुर्वेदविद्यालयको भी एक लाख रुपया एक कालीन और पचीस हजार रुपया सालाना देना स्वीकार किया। यूनानी चिकित्सापद्धतिके

लिये भी इसी तरहकी सहायता स्वीकार की गयी। यही नहीं एक "बोर्ड आफ इंडियन मेडिसन" की स्थापना कर उसमें भी वैद्यसम्मेलनका प्रतिनिधि रखना स्वीकार किया गया; जिसमें इस समय हमारे सुहृद चिकित्सकचूड़ामणि पं० रामेश्वर मिश्रजी काम कर रहे हैं। बोर्डमें यद्यपि अभी चुने हुए वैद्य हकीमोंका मतबाहुल्य नहीं है; तथापि जो कुछ है वह प्रारम्भिक सन्तोषजनक है। इस बोर्डने आयुर्वेदकी शिक्षा और परीक्षाका विधान तैयार किया है और कई पाठशालाओं और औषधालयोंको वार्षिक सहायता देना भी आरम्भ किया है। अवश्यही इसके लिये संयुक्तप्रान्तीय सरकारके मिनिस्टर राय राजेश्वरवली, कौंसिलके मेम्बर और जस्टिस पं० गोकर्णनाथजी मिश्र धन्यवादके पात्र हैं। किन्तु सबसे आगे छलांग विहारप्रान्तने मारी है। जो आंशिक काम अन्य प्रान्तोंने बड़े आडम्बरके बाद करना आरम्भ किया है उससे अधिक काम विहारने चुपचाप बिना शोरगुलके कर डाला है। विहार प्रान्तके कौंसिलर जनताके जितने निकट हैं और जनताका हृदय-स्पन्दन जितनी कुशलतासे समझते हैं उतनी भावुकता शायद अन्य प्रान्तोंमें नहीं देखी जाती। यही नहीं इस प्रान्तके मिनिस्टर और शासक भी अधिक लगनवाले और प्रजारञ्जक हैं। इसका ताजा प्रमाण तो यही है कि इस प्रान्तके मिनिस्टर श्रीमान गणेशदत्तसिंहजीने इस सम्मेलनकी आयुर्वेदिक प्रदर्शिनीका उद्घाटन किया है। जो हो विहार सरकार पटनेमें एक आयुर्वेदविद्यालय और मुजफ्फरपुर तथा पुरीमें एक एक आयुर्वेदिक स्कूल चला रही है। यही नहीं जब अन्य प्रान्तोंमें डिस्ट्रिक्टबोर्ड और म्युनिसिपलबोर्ड आयुर्वेदिक औषधालय चलानेमें रोके टोके जाते थे तब भी यहाँ इसके लिये उत्तेजना दी जाती रही है। एक जमाना था जब सरकार म्युनिसिपलबोर्डों और डिस्ट्रिक्टबोर्डोंको वैद्य रखनेमें रोकती, फटकारती, उनका खर्च नामंजूर करती और हजार अड़ंगे लगाती थी; किन्तु अब इस विषयमें भी सुविधा कर दी गयी है। इस हृदय-परिवर्तनके कारण मैं सरकारका अभिनन्दन करता हूँ और जिन देशभक्त अगुवों और कौंसिलके मेम्बरों तथा मिनिस्टर महोदयोंके कारण यह अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न हुई है उन्हें कृतज्ञतापूर्वक अनेक धन्यवाद देता हूँ। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि पञ्जाब सरकार वर्षोंसे दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेजकी आयुर्वेदिकक्लासको जो मंजूर करती आ रही है अब उससे आगे उससे कमेटीको आयुर्वेदकालेज बनाने देना और सहायता करना स्वीकार किया है। किन्तु बम्बईकी सरकार सबसे पहले आयुर्वेदकी निन्दा और भर्त्सनाको प्रोत्साहन देकर तथा मेडिकल एक्ट बनाकर जो आयुर्वेदका अहित कर चुकी है उसके परिमार्जनकी उदारता उसने अब तक नहीं दिखाई है। अभी कुछ महीने पहले बम्बईकी कौंसिलमें यह सिफारिश करनेकी चर्चा चली थी कि मद्रासके समान बम्बई सरकार भी एक आयुर्वेद विद्यालय स्थापित करे। उसपर सरकारने टाल-मटूल की और कहा कि मद्रास सरकारके विद्यालयका अनुभव और परिणाम देखकर

सरकार विचार करेगी। हम लोगोंको सरकारोंसे उदारताके लिये आग्रह करना चाहिये। अभी हालमें ही मध्यप्रान्तकी लेजिस्लेटिव कौंसिलने डा० खरेके प्रस्तावपर प्रस्ताव पास किया है कि इस प्रान्तमें एक मेडिकल कालेज खोला जाय और उसमें सांगोपाङ्ग आयुर्वेदकी शिक्षा और परीक्षाका भी प्रबन्ध हो। आशा है सरकार इसे स्वीकार कर कार्यमें परिणत करेगी। इस प्रकार सरकारी दृष्टिकोणकी अनुकूलता अधिक उपादेय करनेके लिये हमें प्रयत्नशील रहना चाहिये और अपनी आवश्यकताएँ कौंसिलके मेम्बरों और मिनिस्टर महोदयोंके समक्ष रखते रहना चाहिये। प्रजाका यह हक है कि अपनी स्वास्थ्य रक्षा और सम्पन्नताके लिये उचित उपायोंको काममें लानेके लिये सरकारसे आग्रह करे और सरकारको भी एलोपैथीका मोह और दुराग्रह छोड़कर देशी चिकित्सा पद्धतिको अधिक अधिक अपनाते जाना चाहिये। वैद्योंमें सर्जरी और आधुनिक ज्ञानकी जो कमी बतलायी जाती है वह भी नये विद्यालयोंके द्वारा दूर करायी जा सकती है।

सम्मेलन कार्यालय और कार्यकर्ता

जिस ढंगसे सरकारी रुख परिवर्तन हो रहा है, वह यदि उन्नतिके साथ बढ़ता जाय तो बहुत सम्भव है कि हर एक प्रान्तमें सरकारी तन्त्रसे चलनेवाले विद्यालय हो जायँगे, उनमें शिक्षा और परीक्षाके साधन दिनोंदिन बढ़ाये जायँगे! वैद्योंकी जैसी गति और परिस्थिति है उससे यह आशा करना अभी अधिक सम्भावनीय नहीं मालूम होता कि वे अपना पूर्ण उपकरणोंसे युक्त कोई आदर्श-विद्यालय स्थापित कर सकेंगे। ऐसी परिस्थितिमें यही होनेवाला दिखता है कि सरकारी परीक्षाएँ जोर पकड़ेंगी, वैद्य सम्मेलनका आन्दोलनकारी कार्य बहुत कुछ घट जायगा और आयुर्वेद विद्यापीठकी परीक्षाएँ प्रभाहीन हो जावेंगी। उस समय या तो वैद्य सम्मेलन-संस्थाको अपना काम सम्पुटित करना पड़ेगा या अधिक उपयोगी परिवर्तनके लिये सन्नद्ध होना पड़ेगा। अवश्यही परिवर्तन ऐसा करना होगा कि सम्मेलनका काम अधिक स्थायी और अधिक प्रभावशाली होजाय। ऐसी परिस्थितिमें सम्मेलनको कौन कौन-से काम करनेके लिये सन्नद्ध होना पड़ेगा उनका कुछ दिग्दर्शन मैं अपनी अल्पमतिके अनुसार करूँगा; जिससे हमारे कर्णधारों और विद्वानोंको विचारका आधार मिले। सबसे पहले मैं सम्मेलन कार्यालय और उसके कार्यकर्ताओंके सम्बन्धमें कुछ कहूँगा। स्थायीकार्य करनेके लिये यह भी आवश्यक है कि सम्मेलनका कार्यालय भी स्थायी हो। अभी सम्मेलनका कार्यालय परिवर्तनशील है। आज प्रयाग तो कल मद्रास और परसों कानपुर तथा नरसों दिल्ली जा सकता है। चाहे हम उसे हर साल बदलते रहें! इससे उसके द्वारा ऐसे कार्योंका सूत्रपात सहसा नहीं किया जा सकता, जिनका कार्यालयके साथ परिवर्तन होनेमें असुविधा उत्पन्न हो सके।

कार्यकर्ता लोग भी जानते हैं हमें चलतू कार्य ही करना है, इसलिये वे अपने दिमागको अधिक कष्ट नहीं देना चाहते। आवश्यकता यह है कि खूब सोच विचारकर, आगापीछा देखकर, मनको खूब तौलकर ऐसा स्थान चुनना चाहिये जहाँ सम्मेलनका कार्यालय स्थायी रूपसे रहे। जबतक कोई विशेष परिस्थिति न उत्पन्न हो, सम्मेलनका अस्तित्व खतरेमें न हो तबतक स्थान परिवर्तनका नाम न लिया जाय। ऐसा होनेसे एक नहीं अनेक स्थायी कार्योंका सूत्रपात हो सकेगा। हिन्दी साहित्य सम्मेलनका उदाहरण हमारे सामने है। उसका स्थायी कार्यालय स्थायीरूपसे प्रयागमें है। अतएव उसके द्वारा पुस्तक प्रकाशनका कार्य धड़ल्लेसे हो रहा है, सम्मेलनके शिक्षा क्रमके अनुसार शिक्षा देनेके लिये हिन्दी विद्यापीठकी स्थापना हो गयी है, उसके अन्तर्गत कृषि शिक्षाके लिये डिस्ट्रिक्टबोर्ड और सरकारसे सहायता मिलनेका सूत्रपात हो गया है। कृषि शिक्षाके प्रत्यक्ष ज्ञानके लिये सरकारकी सहायतासे १०० एकड़ जमीन मिल गयी और एक सुविशाल ग्रन्थ संग्रहालय बनानेकी आयोजना हो रही है, जिसमें हिन्दीके मुद्रित-अमुद्रित नये पुराने ग्रन्थ और लेखकोंके चित्र, लेख, नमूने और कार्य संग्रहीत होंगे। भगेलू कार्यालयोंके द्वारा ऐसे कार्योंकी सुविधा नहीं हो सकती।

कार्यकर्ताओंके सम्बन्धमें भी कुछ कहना आवश्यक है। अभी सम्मेलनमें कार्यकर्ताओंका चुनाव होता है। बहुतसे लोग पदलालसामें उस समय स्वीकृत तो कर लेते हैं, परन्तु कामके समय समय नहीं दे सकते। फल यह होता है कि कागजोंमें नाम तो बहुतोंका छपा करता है; परन्तु एक दो कार्यकर्ता ही पिसते रहते और किसी तरह काम ढकेले जाते हैं। जिसका जिसपद पर चुनाव हो वह यदि उस पदका भार सँभालनेके लिये तैयार है तबतो उसे स्वीकार करे; अन्यथा संस्थाको हानि पहुँचानेका कारण न बने। एक बात और है, यदि हमें सम्मेलनसे प्रेम है और सम्मेलन चलाना है तो उसके लिये इतना फण्ड इकट्ठा करना चाहिये जिससे उसका काम अच्छी तरह चल सके। अवैतनिक माननीय कार्यकर्ताओंपर निरीक्षण और सिद्धान्त स्थिर करने मात्रका बोझ डालना चाहिये, शेष कार्य सम्पादनार्थ वैतनिक कार्यकर्ता होने चाहियें। यदि अवैतनिक कार्यकर्ताओंको क्लर्क और चपरासीका भी काम करना पड़ा तो उससे उसके सब काम चौपट होकर रहेंगे और एक बार फँस जानेके बाद फिर उस पदकी प्राप्तिका वह नाम भी नहीं लेगा। सबसे पहले हमें सम्मेलन कार्यालयके लिये एक योग्य, कार्यदक्ष वैतनिक सहकारी मन्त्री रखना चाहिये, जो सम्पूर्ण कार्यालयके सञ्चालनका मन्त्रीकी सलाहके अनुसार उत्तरदायी होगा। यथावश्यक क्लर्क तथा अन्य कार्यकर्ता भी रखकर सुव्यवस्थित कार्य सञ्चालन करना आवश्यक है।

अन्य सार्वजनिक संस्थाओंसे सम्बन्ध

हमारा सम्मेलन एक वैज्ञानिक संस्थाका सञ्चालन करनेवाला महान विभाग है।

उससे यद्यपि राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि संस्थाओंके आन्दोलनोंसे कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है; तथापि अपने उद्देश्योंकी पूर्ति और सिद्धिमें जिस अंशमें कोई संस्था सहायक हो सके उस अंशमें हमें उससे सहयोग करनेमें हिचकना नहीं चाहिये। हमें समय समयपर अपना मार्ग साफ करनेके लिये, अपना कार्य साधनेके लिये जैसे सरकारके दरवाजे खटखटाने पड़ते हैं उसी तरह राष्ट्रके इस राष्ट्रीय अंगकी पूर्तिके लिये—

राष्ट्रीय महासभा

—के सामने भी हमें समय समय पर अपने दावे पेश करने चाहियें। इस अंगकी पूर्तिके लिये योजना उपस्थित करनी चाहिये और उसकी सहायता और सहानुभूति प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। कुछ वर्ष पहले इस सम्बन्धमें कुछ उद्योग हमारी ओरसे होते थे तब कांग्रेसके प्रस्तावों और उसके सभापतिके भाषणोंमें देशी चिकित्सा पद्धतिका कभी कभी नाम निर्देश हो जाया करता था। राजनैतिक स्वराज्यके साथ यदि हमें चिकित्सा सम्बन्धी स्वराज्य प्राप्त न हो तो हम उस स्वराज्यको पूर्णांग-सम्पन्न नहीं समझेंगे। हिन्दू महासभा भी भारतके एक बहुत बड़े जनसमुदायकी प्रतिनिधि सभा है। इस हिन्दू विज्ञानकी उन्नतिके लिये उससे सहायता न मिले इसका कोई कारण प्रतीत नहीं होता। किन्तु उसके मञ्च तक हमें अपने विचार और अपनी योजना पहुँचानेका प्रयत्न करना चाहिये। हिन्दी-साहित्य सम्मेलनसे हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होने पर भी हिन्दी भाषाके द्वारा आयुर्वेदीय ज्ञान फैलानेका, उसके द्वारा बड़ा प्रयास हो रहा है, उसकी परिक्षाओंमें आयुर्वेद एक विषय है और सर्वोच्च परिक्षामें तो "रत्न" की उपाधिकी एक प्रथक परीक्षा ही है। इसी तरह प्रयागकी महिलाविद्यापीठ भी अपनी परिक्षाओंके द्वारा स्त्रियोंमें आयुर्वेदिक ज्ञान फैलानेका बड़ा काम कर रही है। ऐसी सब संस्थाओंके साथ हमारी हार्दिक सहानुभूति है और आवश्यकता पड़ने पर हम उन्हें अपने विषयमें उचित सहायता और परामर्श देनेके लिये तैयार हैं। भारतीय यूनिवर्सिटियोंसे जब एलोपैथी चिकित्सा विज्ञानकी उपाधि देनेकी व्यवस्था है तब कोई कारण नहीं कि उनके द्वारा आयुर्वेदकी उपाधियोंकी व्यवस्था न हो। किन्तु इसके लिये खाली प्रस्ताव पास करनेसे काम नहीं चलेगा बल्कि प्रस्तावके साथही उन संस्थाओंके अधिकारियों और उनके कोर्टके सभासदोंसे भी बारम्बार मिलकर प्रयत्न करना पड़ेगा। जब काशीके हिन्दू विश्वविद्यालयने इसका स्तुत्य उदाहरण लेकर मार्ग प्रदर्शन किया है तब अन्य विश्वविद्यालयोंको भी उसका अनुकरण करना अनुचित कैसे कहा जा सकता है? हिन्दू विश्वविद्यालयमें आयुर्वेदकी खाली पढाई ही नहीं होती बल्कि १०० से अधिक रोगियोंके रखनेका अस्पताल, रोगियोंको दवा देनेका औषधालय, एक पुस्तकालय, वस्तु संग्रहालय, औषध निर्माण

शाला और वनौषधिउद्यानका भी प्रबन्ध होगया है। अभी विश्वविद्यालयके स्वरूपके अनुसार अस्पतालकी बिल्डिङ्गको छोड़ अन्य प्रयास भले ही स्वल्प जचें; किन्तु जो कुछ हो रहा है वह अभिनन्दनीय और आशाजनक है। इसी तरह सनातनधर्म सभा, आर्यसमाज, गुरुकुल; ऋषिकुल आदि जितनी सार्वजनिक संथाएँ हैं और जिनसे अयुर्वेदके अभ्युदयमें हमें कुछ सहानुभूति प्राप्त हो सकती है उनसे समय-समयपर हमें सम्बन्ध स्थिर करनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये।

आयुर्वेदमहाविद्यालय

वैद्योंकी शक्ति कितनी है, शक्ति होनेपर भी हमारी परस्परकी खींचातानीके कारण उस शक्तिका विनियोग कितना हो सकता है, यह तो दूसरी बात है; किन्तु यह आवश्यक अवश्य है कि प्रत्यक्ष वैद्योंकेही द्वारा प्रस्थापित और सञ्चालित एक आयुर्वेद महाविद्यालयकी नितान्त आवश्यकता है। इस विषयमें वर्षों पहिले सम्मेलनने प्रस्ताव पास किया था और कुछ प्रधान वैद्योंके उद्योगसे तथा स्वर्गीय रीवाँ नरेश महाराजा वेङ्कटरमणसिंहजू देव बहादुरके अवलम्बन दानसे इसका काम बहुत कुछ आगे बढ़ गया था, यही नहीं किन्तु एक छोटे विद्यालयकी स्थापना हो भी चुकी थी; किन्तु वैद्यसमाजकी शिथिलताके कारण, कृपणताके कारण और इस भावके कारण कि अमुक स्थानमें ही विद्यालय क्यों बने हमारे स्थानमें क्यों न बने, हम अपने यहाँका एकत्र किया हुआ रुपया दूसरी जगह क्यों जाने दें, वह विद्यालय बन्द हो गया और उसका उद्योग भी शिथिल पड़ गया। ये भावनाएँ मनुष्य स्वभावके अनुकूल कितनी ही हों; किन्तु कार्य साधनकी सुविधाके लिये रुकावट डालनेवाली और घातक हैं। कमसे कम एक आदर्श-आयुर्वेद-महाविद्यालय वैद्यसम्मेलन और वैद्योंके उद्योगसे स्थापित होना और उन्हींके सम्मिलित तन्त्रसे चलना आवश्यक है। इसके बिना हम आदर्श शिक्षाप्रणालीके प्रचलनके लिये आदर्श ढङ्गोंके व्यवहारके लिये, आदर्श वैद्योंकी तैयारीके लिये व्यावहारिक प्रयोग करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। यह सत्य है कि जहाँ तहाँ सरकारी विद्यालय खुल रहे हैं और प्रगतिशील अनुकूलता रहनेसे प्रायः सभी प्रान्तोंमें ऐसे विद्यालयोंकी स्थापना हो जावेगी तो भी सरकारी तन्त्रका धीमापन हम अच्छी तरह जानते और समझ सकते हैं, उसपर प्रत्यक्ष दाब रखकर शीघ्र प्रगतिके लिये आदर्श द्वारा जोर देना हमसे बन नहीं पड़ेगा और जो उन्नति हम शीघ्र करना चाहते हैं वह हो नहीं सकेगी। यह सत्य है कि देशके अनेक भागोंमें उत्साही और दानी धनियोंके द्वारा अथवा सद्वैद्योंके उद्योग द्वारा कुछ विद्यालय स्थापित हुए हैं और इसके लिये उनके स्थापनकर्त्ता धन्यवाद-भाजन हैं; किन्तु ऐसे विद्यालयोंकी शक्ति परिमित है और उनसे यह आशा करना कि वे विद्यालयके सभी उपांग अपने यहाँ चला सकेंगे

यह सम्भव नहीं है। ऐसी दशामें होना यह चाहिये था कि ऐसे विद्यालय अपनी शक्ति और उपस्थित साधनोंके द्वारा शिक्षा देकर विद्यार्थी तैयार करें और विशेष ज्ञान तथा प्रत्यक्ष कार्यदर्शनके लिये उन्हें सम्मेलन सञ्चालित महाविद्यालयमें कुछ निश्चित समयके लिये भेजें। ऐसा होनेसे नये जमानेकी टक्कर लेनेके लिये हम अच्छे वैद्य तैयार कर सकेंगे और जमानेकी दौड़में अपनेको उपयुक्त सिद्ध कर सकेंगे।

एक अच्छे विद्यालयसे हमारा मतलब यह है कि उसके साथ आवश्यक सब अंग रहें। (१) अष्टांग आयुर्वेदकी शिक्षाके लिये विद्यालय रहे (२) रोगियोंको देखकर रोग और निदानका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने, औषधि वितरणका ढंग सीखने, रोग और रोगीकी अवस्था विशेषमें निदान, पथ्यापथ्य और रोगपरिज्ञानका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करनेके लिये अतुरालय रहे (३) स्वास्थ्य सुधारने और रोग विशेषकी चिकित्साके लिये, विशेष ज्ञानप्राप्तिकी सुविधाके लिये आरोग्यशाला अथवा सेनिटोरियम रहे (४) औषधालयकी व्यवस्था और रोगी देखकर दवा देनेकी शिक्षा देनेके लिये धर्मार्थ औषधालय रहे (५) स्त्री और बालकोंके रोग और अवस्थाकी व्याधिके परिज्ञान और अभ्यासके लिये स्त्री विभाग रहे (६) औषधियोंके बनानेकी शिक्षा देने और रसप्रक्रिया सिखानेके लिये भेषजनिर्माणशाला और रसशाला रहे (७) प्राचीन तथा अर्वाचीन पद्धतियोंके अनुसार अनुभव प्राप्त कर विविध प्रकारके आविष्कार और अनुसन्धान करनेके लिये प्रयोगशाला रहे (८) प्रत्यक्षज्ञान और वस्तुपरिचयके लिये प्रदर्शिनी रहे (९) चिकित्साविज्ञानके तुलनात्मक ज्ञानसम्पादनकी सुविधाके लिये अच्छा पुस्तकालय रहे और (१०) वनौषधियोंके प्रत्यक्षज्ञान और अनुभवके लिये भेषज उद्यान रहे। यह कार्य छोटे साधनोंसे खुले हुए विद्यालयोंके द्वारा कभी नहीं हो सकता। अतएव एक केन्द्रस्थानमें देश भरकी शक्ति और पूँजीसे सञ्चालित एक आयुर्वेदमहाविद्यालयकी बहुत आवश्यकता है। किन्तु यदि इस समय यह अशक्य हो तो कमसे कम प्रत्येक प्रान्तमें किसी प्रचलित विद्यालयको सम्मेलन अपना ले और उसकी उन्नति और शिक्षा आदिका सञ्चालन करे। कलकत्तेके कविराज यामिनीभूषण राय और महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेन सरस्वतीके द्वारा स्थापित अष्टांगआयुर्वेदविद्यालय, मद्रासका पुण्यश्लोक स्वर्गीय पं० डी० गोपालाचार्लु संस्थापित विद्यालय, बम्बईके आदर्शकर्मी यादवजी भाई, पं० हरिप्रपन्न आदि द्वारा सञ्चालित विद्यालय अथवा प्रभुराम आयुर्वेदविद्यालय, पञ्जाबमें डी० ए० वी० कालेज सञ्चालित विद्यालय, दिल्लीमें बनवारीलाल आयुर्वेदविद्यालय, संयुक्तप्रांतमें कानपुर, पीलीभीत, ऋषिकेश अथवा हरिद्वारके विद्यालय, बिहारमें आयुर्वेदरत्नाकर पं० व्रजविहारी चतुर्वेदी द्वारा प्रस्थापित हाजीपुरका विद्यालय हाथमें कर अपने शिक्षाकेन्द्र स्थापित किये जा सकते हैं। इसके सिवाय कुछ बड़े शहरोंमें ऐसी पाठशालाएँ भी स्थापित हों जिनमें उस नगर के दो चार उत्साही और सुयोग्य वैद्य अवैतनिकरूपसे शिक्षा दें और यथासम्भव

प्रत्यक्ष कर्मदर्शनकी भी सुविधा करावें। इनमें तैयार हुए वैद्य अनायास कुछ दिनों किसी प्रान्तिक विद्यालयमें जाकर विशेषज्ञान और कर्मदर्शनका अनुभव प्राप्त कर सुयोग्य चिकित्सक बन सकेंगे। ऐसी पाठशालाओंमें छोटा पुस्तकालय, औषधालय, प्रयोगशाला, वस्तु-संग्रह, शारीरिक नकशे, अस्थिकंकाल तथा आवश्यक बैठने और पढ़ानेके फर्नीचर अलम् रखना बस होगा। बारी बारीसे प्रतिष्ठित वैद्योंके यहाँ जाकर भी प्रत्यक्ष कर्मदर्शनका अनुभव प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिये आवश्यक व्यय वैद्योंके उद्योग और नगरके धनियोंसे प्राप्त किया जा सकता है।

एकसा पाठ्यक्रम

ऐसा होनेसे आयुर्वेदविद्यापीठ निर्धारित पाठ्यक्रमका प्रचार सार्वदेशिक रूपसे किया जा सकता है और कहीं कोई, कहीं कोई पाठ्यक्रम प्रचलित होनेसे शिक्षाके आदर्शमें जो विषमता आ सकती है उससे देशको बचाया जा सकता है। इसके सिवाय पास पास और अधिक संख्यामें आयुर्वेदिक शिक्षाकी सुविधा होनेसे इस विद्याके अभिलाषियोंकी अभिलाषा सहज ही पूर्ण हो सकेगी। इससे उन लोगोंके उद्योगमें आपही रुकावट आवेगी जो परीक्षाओंका ढकोसला कर सस्ती पदवियाँ बाँटनेका व्यापारसा कर रहे हैं। एकसा शिक्षाक्रम होनेके साथही विद्यालयोंमें परीक्षा भी एकसी होनी चाहिये और उत्तीर्ण होनेवालोंको पदवियाँ भी एकसी देनी चाहियें। आयुर्वेद विद्यापीठकी पदवी हैं ही। सरकारी परीक्षा होनेसे उसकी पदवी भी प्रचलित होंगी। अब भिन्न भिन्न संस्थाएँ और विद्यालय अधिक पदवियोंकी संख्या न बढ़ावें यही उचित है। देशमें अधिक पदवियोंकी भरमार होनेसे जनताको असली और नकली पदवी समझनेमें अड़चन पड़ती है। इसलिये नकली पदवियोंकी वृद्धि हो रही है। ऐसी पदवियोंको रोकनेके लिये सम्भवतः सरकारी बोर्ड कुछ कार्रवाई करें; किन्तु सम्मेलन अधिक शक्ति न रखते हुए भी समय समय यह घोषणा कर सकता है, कि अमुक पदवियाँ मान्य हैं और अमुक विश्वास योग्य नहीं है।

पाठ्यक्रम संशोधन

आयुर्वेदविद्यापीठ निर्मित और वैद्यसम्मेलन स्वीकृत पाठ्यक्रम इस समय देशमें एक आदर्श पाठ्यक्रमके रूपसे प्रचलित है। किसी विद्यालय अथवा संस्थाको जब आयुर्वेदिक शिक्षाका विचार करना पड़ता है, तब आयुर्वेदविद्यापीठका पाठ्यक्रम ही आधार और आदर्शरूपसे सामने आता है। सरकारी बोर्ड और हिन्दू-विश्वविद्यालय आदिको भी इसीसे अच्छी सहायता और सुविधा मिली है। यह सब गौरवकी बात अवश्य है; परन्तु समय समय पर हमें अनुभवके आधार पर उसमें संशोधन करते रहना चाहिये। हमारा पाठ्यक्रम सिद्धान्त और आदर्शकी दृष्टिसे तो बहुत

अच्छा है; परन्तु प्रत्यक्ष व्यवहारकी दृष्टिसे पढ़ानेमें उतना सुविधाजनक नहीं है। हमने प्रत्येक विषयके लिये चरक-सुश्रुत और वाग्भटके अंशों और अध्यायोंका उल्लेख किया है; किन्तु इससे एक तो एक विषय तीन तीन वार पढ़ना पड़ता है, दूसरे पढ़नेवालोंपर बोझा अधिक पड़ता है। आयुर्वेदाचार्य और आयुर्वेदविशारदवालोंके लिये तो यह ढङ्ग भी विषयानुसार पाठ्यक्रमकी पुस्तकें वननेसे ठीक होगा; किन्तु "भिषक" श्रेणीवालोंके लिये उनकी योग्यता और मस्तिष्कसे अधिक भार उन पर पड़ जाता है। साथही इसमें स्त्रीचिकित्सक तथा दाई-साविका तैयार करनेके लिये और कम्पौंडरीके कामके लिये उपयुक्त उपवैद्य तैयार करनेकेलिये पृथक योजना हमें उपलब्ध नहीं होती। अतएव इस सम्बन्धमें हम यदि कुछ पुनर्विचार कर संशोधन करें तो अनुचित नहीं होगा।

हिन्दीमें वैद्यकशिक्षा

हमारी विद्याके सम्पूर्णप्रतिष्ठित और आर्षग्रन्थ संस्कृतभाषामें हैं; इसलिये उच्च आयुर्वेदिक शिक्षाका आदर्शतो संस्कृतमें हमें रखना ही पड़ेगा; परन्तु साथ ही यह भी रखने की बात है कि कोई भी विज्ञान कभी किसी भाषाकी चहारदीवारीमें वन्द नहीं रखा जा सकता। विज्ञानको विस्तृत मैदान चाहिये और किसी भाषामें ही आवद्ध रखना उसे सम्भव नहीं है। संस्कृत हमारी सभ्यताकी भाषा है, हमारी धर्मकी भाषा है, हमारी प्राचीन देशव्यापी भाषा भी है। किसी अंशमें यह भी सत्य है कि आर्ष-ग्रन्थोंका रहस्य संस्कृत भाषामें जैसी खूबीसे प्रकट होता है वैसी सफाईसे शायद अनुवादमें न खुले, मामूली ज्ञानविस्तारके लिये अनुवादसे काम चलाया जा सकता है। "आयुर्वेद विशारद" और "आयुर्वेदाचार्यकी" परीक्षाएँ ज्योंकी त्यों संस्कृतमें रहें और भिषक् परीक्षा भी सभी प्रान्तिक भाषाओंमें ज्योंकी त्यों प्रचलित रहे। हमारे देशकी राष्ट्रीयभाषा इस समय हिन्दी है। आलइण्डिया कांग्रेस कमेटीके काममें भी अब हिन्दी भाषा अनिवार्य रूपसे व्यवहृत होती है। हिन्दू महासभा और हमारे वैद्य-सम्मेलनके व्यवहारमें भी इसका अबाध व्यवहार होता है। यह भारतके सभी प्रान्तोंमें समझी और पढ़ी जाती है। मद्रास, आसाम, सिन्ध आदि जिन प्रान्तोंमें इसका विपुल प्रचार नहीं वहाँ भी हिन्दीसाहित्यसम्मेलनके उद्योगसे इसका आवश्यक प्रचार हो रहा है। संस्कृतकी अपेक्षा इसका सीखना सरल और कुछ महीनोंका काम है। इस समय देशमें हमें वैद्योंकी संख्या खूब बढ़ाना अभीष्ट है, देशके सभी भागोंमें पढ़े लिखे वैद्योंको पहुँचा देना हमारा कर्त्तव्य है। डिस्ट्रिक्टबोर्डों और म्युनिसिपल-बोर्डोंमें वैद्योंकी संख्या दिनों दिन बढ़ती जानेकी आशा है। कम आमदनीवाले और छोटे बोर्ड भी थोड़े वेतनमें शिक्षित वैद्य पा सकें, इसलिये हमें परीक्षाका ढंग कुछ उन्नति शील करना होगा। सभी प्रान्तिक भाषाओंमें परीक्षाओंकी वृद्धि करना

अनुविधाजनक है। ऐसी दशामें राष्ट्रभाषा हिन्दीमें कुछ परीक्षाएँ बढ़ा दी जाँय, तो शायद अनुचित नहीं होगा। हम नहीं चाहते कि परीक्षाका आदर्श घटाया जाय। इसलिये भिषक परीक्षाके बाद दो परीक्षाएँ और बढ़ा दी जायँ। किन्तु उनका पाठ्य-क्रम वही रहे जो विशारद और आचार्यका है। भेद इतना ही रहे कि जो परीक्षार्थी आयुर्वेद विशारदके प्रश्नोंका उत्तर संस्कृत भाषामें दें उन्हें उत्तीर्ण होनेपर "आयुर्वेद विशारद" की उपाधि दी जाय और जो उन्हीं प्रश्नपत्रोंका उत्तर हिन्दीभाषा द्वारा दें उन्हें "भिषग्भूषण" की उपाधि दी जाय; इसी तरह जो परीक्षार्थी आयुर्वेदाचार्यके प्रश्नपत्रोंका उत्तर संस्कृत भाषा द्वारा दें उन्हें "आयुर्वेदाचार्यकी" उपाधि दी जाय और जो उन्हीं प्रश्नपत्रोंका उत्तर हिन्दीभाषा द्वारा दें; उत्तीर्ण होनेपर उन्हें "भिषग्रत्न" की उपाधि दी जाय। इन दोनों परीक्षाओंमें बैठनेवालोंको "भिषक्" परीक्षा अनिवार्य हो। अर्थात् पहले भिषक् परीक्षा देनेके बादही "भिषग्भूषण" में परीक्षार्थी सम्मिलित किया जाय और भिषग्भूषण होनेके बादही भिषग्रत्नकी परीक्षामें कोई बैठ सके। अर्थात् परीक्षाओंकी एक श्रेणी भिषक, भिषग्भूषण और भिषग्रत्नकी रहे और दूसरी उच्च श्रेणी आयुर्वेद विशारद और आयुर्वेदाचार्यकी रहे। सम्मेलन चाहे तो इस विषयको विचार कोटिमें लेकर इसे कार्यमें परिणत कर सकता है।

भिषक्परीक्षा

भिषक्परीक्षा इसलिये प्रवर्तित की गयी थी कि साधारण कोटिके वैद्य तैयार किये जायँ जो विशेषकर देहातोंके लिये उपयोगी हो सकें; क्योंकि देहातियोंको पठित वैद्योंकी औषधि कम व्ययमें मिलना सुगम हो जाय। किन्तु भिषक्परीक्षा इस समय त्रिशंकुकी अवस्थामें है। न तो कोई उसका पाठ्यक्रम है और न कोई उसका आदर्श मालूम होता है। हमारी नियमावली एक वाक्यमें उसके भाग्यका निपटारा कर देती है कि भिषक्का पाठ्यक्रम "आयुर्वेद विशारदके समान होगा" किन्तु इस श्रेणीके परीक्षार्थियोंके साथ सहृदयता और सहानुभूतिके साथ विचार करनेसे विदित होगा कि यह उनकी शक्ति और मस्तिष्कसे अधिक उनपर बोझा लादना है। विशारदके पाठ्यक्रममें प्रत्येक विषयके लिये चरक-सुश्रुत और वाग्भटके अध्याय और अवतरण अनिवार्य रूपसे छोयांश रखे गये हैं। इन आर्षग्रन्थोंका समझना उनके लिये सुविधा-जनक नहीं है। मेरी समझमें इस श्रेणीके परीक्षार्थियोंके लिये कुछ पुस्तकोंका निर्देश कर देना आवश्यक है। जिससे वे निश्चित रूपसे पठनीय ग्रन्थोंको तैयार कर सकें। उदाहरणके लिये मैं विषयानुसार यहाँ कुछ पुस्तकोंका निर्देश करता हूँ—

१ स्वस्थवृत्त—आरोग्यविधान और अष्टाँगहृदयके १ से ८ अध्याय तक।

२ रोगविज्ञान—माधवनिदान और नाड़ी परीक्षा।

३ द्रव्यगुणशास्त्र—हरीतक्यादि निघण्टु और अभिनव निघण्टुके वे द्रव्य और अंश जो हरीतक्यादि निघण्टुमें नहीं है।

४ शारीरशास्त्र—हमारे शरीरकी रचना।
५ कायचिकित्सा—चक्रदत्त, भावप्रकाश, शार्ङ्गधर, गदनिग्रह, इनमेंसे कोई
६ रसायन और वाजीकरण—अष्टांगहृदयका ३९ और ४० अध्याय।
७ रसतन्त्र—रसेन्द्रसार संग्रह अथवा भावप्रकाश और शार्ङ्गधरके सम्बन्धी अंश और औषधिय।
८ अगदतन्त्र—पं० धर्मानन्दशास्त्री आयुर्वेदाचार्य कृत अगदतन्त्र अथवा हृदयके उत्तर स्थानके ३५, ३६, ३७ और ३८ अध्याय।
९ शल्यतन्त्र—अष्टांगहृदय सूत्रस्थान अध्याय २५ से ३० अध्याय शारीरस्थान ३, ४ अध्याय, चिकित्सा स्थान १३, १८ अ और उत्तर स्थान ८ से ३० अध्याय तक।
१० प्रसूतितन्त्र—कानपुर चिकित्सक कार्य्यालयसे प्रकाशित प्रसूतितन्त्र।
११ कौमारभृत्य—कौमारभृत्य पं० किशोरीदत्तशास्त्री-प्रकाशित।

सम्मेलन और आयुर्वेदविद्यापीठ इसमें आवश्यक संशोधन कर अपनी वलीमें इसका पृथक् उल्लेख कर दे तो इस परीक्षाके परीक्षार्थियोंका पाठ्यक्रम निश्चित रूपमें आजायगा।

स्त्रीचिकित्सकवर्ग

यद्यपि कुछ स्त्रियोंने आयुर्वेद विद्यापीठकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की हैं, तथापि इ संख्या अभी अंगुलियोंमें गिनने लायक है। विद्यापीठके पाठ्यक्रमने पढ़ी-ि स्त्रियोंका उतना भी आकर्षण नहीं किया, जितना "महिलाविद्यापीठके" वैद्यक ि ने उसकी परीक्षामें बैठनेके लिये स्त्रियोंको खींचा है। देशमें स्त्रीचिकित्सकोंकी आवश्यकता है। पर्दे और लज्जाशीलके कारण अधिकांश स्त्रियाँ पुरुष वैद्योंसे खोलकर अपनी बीमारीके हाल नहीं बतला सकतीं और यदि उन्हें सुयोग्य चिकित्सक प्राप्त हों तो पुरुषोंकी अपेक्षा उन स्त्रियोंसे दवा कराना वे अधिक करेंगी। हमारे विद्यापीठकी परीक्षा उत्तीर्ण करनेवाली स्त्रियोंने चिकित्सा-व्यव कैसी सफलता प्राप्त की इसकी रिपोर्ट और जानकारी तो हमारे पास नहीं है, ि हम देखते हैं कि स्त्रीचिकित्सा-सम्बन्धी कुछ नवीनताको प्रवर्तितकर प्रयागकी यशोदा देवीजीने रोगी संख्यः और द्रव्य प्राप्तिकी दृष्टिसे अच्छी सफलता पायी आवश्यकता तो यह है कि स्त्रीचिकित्सा सम्बन्धी शिक्षाके लिये एक पृथक विद्या हो, जिससे पढ़ी-लिखी स्त्रियोंको आयुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त करनेमें कोई संकोच न इस ओर उन स्त्रियोंको उत्तेजना दिलायी जा सकती है जिनके जिम्मे सन्तान और गृहस्थीके कामोंका अधिक भार नहीं है। यदि ऐसा हो जाय तो देशकी अ विधवाओंकी जीविकाका प्रश्न भी इसके द्वारा सहजही हल हो सकता है। विद्य

का प्रश्न तो सहजही हल नहीं हो सकता; किन्तु आयुर्वेदविद्यापीठ स्त्रीचिकित्सकोंके लिये एक अच्छा पाठ्यक्रम शीघ्रही तैयार कर सकता है और उसे ऐसा करना भी चाहिये। ऐसे पाठ्यक्रममें १ स्वास्थ्यविज्ञान २ द्रव्यगुणशास्त्र ३ शारीरका सामान्य और स्त्री तथा बालकोंकी शरीर रचनाका विशेषज्ञान ४ रसशास्त्रका सामान्य ज्ञान ५ साधारण रोगोंका साधारण ज्ञान और स्त्रियों तथा बालकोंके रोगोंका विशेष ज्ञान ६ कायचिकित्सा सम्बन्धी साधारण रोगोंका साधारण ज्ञान और स्त्री रोगोंका विशेष ज्ञान ७ गर्भधारण, गर्भ रक्षण, धात्रीशिक्षा और प्रसूतिशास्त्रका विशेषज्ञान ८ कौमार-भृत्य ९ शल्य और शालाक्य तन्त्रका सामान्यज्ञान १० अगदतन्त्रका सामान्य ज्ञान और ११ नर्स तथा सेविकाका ज्ञान प्राप्त हो ऐसी बातें रखना आवश्यक होगा। भिषकपरीक्षाके सामान स्त्रीचिकित्साकी परीक्षा भी अलग होनी चाहिये और उसके प्रश्नपत्र भी अलग ही बनाये जायँ। उत्तम तो यह होगा कि पाठ्यक्रम स्त्रीचिकित्साके लिये और दूसरा दाई-साविका तथा नर्स तैयार करनेके लिये बनाया जाय। पाश्चात्य विद्वानोंने इस विषयके साहित्यका निर्माण किया है। उसका उपयोगी अंश अपने ढङ्ग पर लेकर इस सम्बन्धकी पुस्तकें तैयार होनी चाहिये।

उपवैद्य-कम्पौण्डर

हमारे विद्यापीठमें कम्पौण्डर अर्थात् उपवैद्य तैयार करनेके लिये भी एक पाठ्य-क्रम तैयार करना चाहिये। जमानेकी माँग और आवश्यकताके अनुसार अब वैद्योंको भी कम्पौंडर रखने पड़ते हैं और नये आदमी तैयार करनेमें बहुत समय लग जाता है। यदि आवश्यक शिक्षा और औषधिदानक्रम सीखे हुए उपवैद्य तैयार होने लगें तो वैद्योंको बहुत सुविधा हो जायगी। इस श्रेणीके लिये निम्नलिखित विषयोंका ज्ञान अपेक्षित है—

१ पारिभाषिक शब्द कोष—परिभाषाप्रदीप, २ पथ्यापथ्य—पथ्यापथ्यदर्पण, पथ्यापथ्य निरूपण, ३ अनुपान—अनुपान तरङ्गिणी, अनुपानकल्पतरु, औषधि-निर्माणपद्धति, ५ औषधिमिश्रण पद्धति, ६ औषधिदान व्यवस्था, ७ औषधियोंका हिसाब रखना, ८ सांकेतिक चिह्नोंका ज्ञान, ९ नुसखे लिखनेका ढङ्ग, १० औषधालय-आलमारी, यन्त्रशस्त्र और शीशियोंके रखने और सजाने का ढङ्ग। इन विषयोंको लेकर एक पुस्तक निर्माण करनेकी आवश्यकता है।

पाठ्यक्रमकी पुस्तकें

हमने विद्यापीठकी नियमावलीमें प्रत्येक विषयके ज्ञानके लिये चरक-सुश्रुत और वाग्भटके अध्यायोंका उल्लेख किया है; किन्तु पढ़ने और पढ़ानेवालोंके लिये इसमें बहुत असुविधा होती है। पाठ्यक्रमको आधार रख नयी पुस्तकें तैयार करनेकी बहुत

आवश्यकता है। पुस्तकोंका विवेचन ऐसा हो कि जहाँ विषयवर्णन तीनों आर्ष ग्रन्थोंमें समान रूपसे हो वहाँ उसका वर्णन कर मतभेदकी बातें खोल दी जायँ। यदि कोई बात किसी ग्रन्थमें कुछ अन्तर या घुमावके साथ हो तो वह भी दर्शा दी जाय। श्रीमान् महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन महोदयने शारीर और निदान ग्रन्थकी कमी पूर्ण करनेकी आयोजना की है और आशा है वह शीघ्र समाप्त हो जायगा। इसी तरह व्यवहारायुर्वेद, मानसरोग, शल्यतन्त्र और शालक्यतन्त्र पर भी संस्कृत अथवा हिन्दीमें पुस्तकें तैयार होनी चाहिये। नाड़ीविज्ञान, प्रसूतितन्त्र और कौमारभृत्यपर हिन्दीमें राजवैद्य किशोरीदत्त शास्त्रीजीने एक-एक पूर्ण पुस्तक छपायी है, इनसे अभी काम निकाला जा सकता है? अगदतन्त्र परभी एक नयी पुस्तक पं० धर्मानन्द शास्त्रीजीने तैयार की है; आशा उससे भी एक सामयिक आवश्यकता पूर्ण हो जायगी। नेत्ररोग चिकित्सापर भी एक पूर्ण ग्रन्थ श्रीमान् डाक्टर मुञ्जे तैयार कर रहे थे। आयुर्वेदविद्यापीठको अप्रस्तुत ग्रन्थोंकी पूर्तिके लिये उद्योग करना चाहिये और आवश्यकता हो तो पुस्तकें तैयार कर उसे स्वयं प्रकाशित करना चाहिये।

सम्मेलन-पत्रिका

जब पहिले वैद्यसम्मेलनपत्रिका प्रकाशित हुई तब उसका यही उद्देश्य सोचा गया था कि वैद्यसम्मेलनके कार्योंका उसके द्वारा सर्वसाधारणको ज्ञान कराया जा सकेगा, आयुर्वेदके आवश्यक विषयोंपर प्रकाश डाला जा सकेगा। किन्तु सम्मेलनपत्रिकाकी परिस्थिति कुछ अच्छी नहीं है। उसका अच्छा सम्पादक होना चाहिये। वह चाहे मासिक पत्रिका रहे, चाहे ऋतुपत्रिका अथवा चाहे त्रैमासिक रूपमें रहे, परन्तु उसकी व्यवस्था अच्छी हो। आयुर्वेद और चिकित्सा विज्ञानके सामयिक विषयोंपर उसमें विवेचन होता रहे, समय-समयपर देशी चिकित्सापद्धति और वैद्योंपर. जो आक्षेप हुआ करते हैं, उनका जोरदार उत्तर दिया जाया करे और जहाँ वैद्योंको सच-मुच कमजोरी हो वहाँ भी विविध लेखों द्वारा वैद्यसमाजका ध्यान आकर्षित करते रहना चाहिये। आयुर्वेदके किन अंगों-उपांगों और विषयोंकी पूर्ति अथवा संशोधनके लिये क्या करना चाहिये इसमें विद्वानोंकी सम्मति संग्रह करते हुए उपाय और ढंग काममें लाते रहना चाहिये। वैद्यसम्मेलनकी वार्षिक रिपोर्ट और प्रति वर्ष सम्मेलनमें पढ़नेके लिये स्वीकृत होनेवाले अच्छे निबन्ध भी इसमें प्रकाशित होते रहें पत्रिकाका अच्छा सम्पादन करनेके लिये सुयोग्य सम्पादक भी दरकार होगी। यदि अवैतनिक रूपसे इसके करानेमें असुविधा हो तो कुछ रकम सम्पादकको पुरस्कार अथवा आन-रेरियमके लिये भी स्वीकृत करना अच्छा होगा।

आयुर्वेदका वार्षिक इतिहास

जहाँ वैद्य सम्मेलनके सालभरके किये हुए कार्योंका विवरण प्रति वर्ष प्रकाशित

होता है तहाँ आयुर्वेदके वार्षिक इतिहासपर भी प्रकाश डालनेवाली एक पुस्तक प्रति वर्ष प्रकाशित होनेकी आवश्यकता है। इसमें इन सब बातोंका वर्णन किया जाय कि साल भरके भीतर देशमें आयुर्वेदसम्बन्धी क्या क्या कार्य हुए, आयुर्वेदके सम्बन्धमें किसने कब और कहाँ क्या अभिप्राय प्रकट किया, सरकार, रजवाड़े, सर्व-साधारण, कौंसिल, सभा सोसायटियों, म्युनिसिपैलिटियों, डिस्ट्रिक्टबोर्डों आदिके द्वारा क्या हित और अनहितकी बातें हुईं; सार्वजनिक मासिक, साप्ताहिक, दैनिक आदि पत्रोंमें आयुर्वेदके सम्बधमें कैसी चर्चा रही; सालभरमें आयुर्वेद सम्बन्धी कौन बढ़िया पुस्तकें और सामायिक पत्र प्रकाशित हुए, कौन प्राचीन पुस्तकोंकी खोज कहाँ-कहाँ हुई, आयुर्वेदविद्यापीठ सम्बन्धी ज्ञातव्य विषय भी इसमें रहें, आयुर्वेद सम्बन्धी कहाँ-कहाँ कारखाने, धर्मार्थ औषधालय, अतुरालय, आरोग्यशाला, पाठ-शाला, उद्यान, प्रदर्शिनी प्रभृति हैं उनका वर्णन भी आना चाहिये मेरी समझमें इस कार्यके लिए एक अलग समिति रहे और वह सालभर बराबर इसके लिये साहित्य-संग्रह करती रहे। इससे हमारे आयुर्वेदकी उन्नति-अवनति और परिस्थितिका प्रतिवर्ष ज्ञान होता रहेगा और वैद्य सम्मेलनका प्रभाव विस्तार कहीं अधिक होता रहेगा। पहले कुछ वर्षों तक इसका एक स्वरूप लोगोंके सामने आता रहा है। इस क्रमको आगे जारी रखना अच्छा ही है।

वैद्यडाइरेक्टरी

वर्षों पहले सम्मेलनने वैद्योंकी एक डाइरेक्टरी तैयार करनेकी आवश्यकता समझी थी और स्वर्गवासी पं० जटाशङ्कर लीलाधर त्रिवेदी महोदयने इस कार्यको अपने जिम्मे लिया था। उन्होंने इस विषयमें कुछ काम भी किया था; किन्तु वे अपने जीवनमें इसे पूरा न कर सके। अन्य सज्जनोंने भो इसे पूरा करनेका मंसूबा किया, किन्तु अभी तक यह हुआ नहीं। आवश्यकता है कि वैद्यसम्मेलनकी स्थायीसमिति स्वयं इस कार्यको उठा ले और एक उपसमिति बनाकर इसे पूर्ण करे। जो उपसमिति आयुर्वेदका वार्षिक इतिहास तैयार करनेके लिये रहे उसेही यह काम भी सौंपा जा सकता है। जिन सज्जनोंने इसके लिये जो सामग्री इकट्ठी की है उसे तथा नये प्रयत्नसे साहित्य उपलब्ध कर एक वर्षमें यह कार्य सम्पन्न किया जा सकता है। यों तो यह ऐसी वस्तु है कि कभी भी सम्पूर्ण न मानी जाय; परन्तु काम चलाऊ काम तैयार हो सकता है। प्रति तीन या पाँच वर्षमें इसका संशोधन या नया संस्करण निकाला जाया करे। सम्प्रति इसमें इतनी बातोंका उल्लेख बस होगा—

(१) अकारादि क्रमसे वैद्योंका नाम, पता, जाति, जन्म, सेवा, अभ्यास या योग्यता, भाषा, दी हुई परीक्षा कौन और कहाँ, कोई उपाधि है तो कौन और कहाँसे कोई आश्रय आदि है तो कैसा और कहाँ, वैद्यकके सिवाय कोई अन्य व्यवसाय है,

कोई पुस्तक लिखी है तो कौन-कौन, किसी प्रकारकी विशेष योग्यता या अनुभव किया हो तो, अन्य आवश्यक बातें।

(२) मुद्रित ग्रन्थ, अमुद्रित ग्रन्थका नाम, मुख्य विषय, लेखक-प्रकाशक, भाषा, मिलनेका पता या किसके पास है, अनुवाद ग्रन्थ।

(३) वैद्यक शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएँ, उनके नाम, सञ्चालक, आश्रय, अभ्यासक्रम, शिष्यवृत्ति, अभ्यासकी अवधि आदि।

(४) वैद्यक सम्बन्धी सामयिक पत्र, उनके पते, सम्पादक और प्रकाशक कबसे निकलता है। वार्षिक मूल्य।

(५) शास्त्रसिद्ध और अनुभव सिद्ध औषधियोंके बनने और बिकनेके कारखाने उनके स्वत्वाधिकारी और कबसे चलते हैं।

(६) वनौषधि, खनिज, विषौषध आदि औषध द्रव्योंके मिलनेके पते, आयुर्वेदिक संग्रहालय, उद्यान, पुस्तकालय आदि।

(७) किसी विषयका विशेष ज्ञान प्राप्त करनेवाले, अन्वेषण, शास्त्रीय प्रयोग और आविष्कार करनेवालोंकी सूची और संक्षिप्त परिचय।

(८) वैद्यककी सहायता करनेवाले राजा, महाराजा, जमींदार, रईस; महाजन आदि।

(९) कहाँ-कहाँ औषधालयोंके जङ्गल, खान और अन्य वस्तुओंके मिलनेकी जगह है ?

(१०) आयुर्वेदिक सभाएँ और उनका विवरण।

(११) आयुर्वेदका संक्षिप्त इतिहास।

(१२) वैद्यसम्मेलनका इतिहास।

वैद्यसेवासमिति

आयुर्वेदका मुख्य सिद्धान्त जनताकी सेवा करना है। प्रत्येक वैद्य व्यक्तिगत रूपसे नित्य प्रति अपने द्वारा जनताकी सेवामें लगाही रहता है, अथवा उसे लगाही रहना चाहिये। किन्तु यह कार्य व्यक्तिगत उपायोंके अतिरिक्त समष्टि और संगठित रूपसे भी किया जा सकता है। तीर्थस्थानों और मेलों-ठेलोंके समय तथा कहीं कोई संक्रामक व्याधि फैली हो उस समय वैद्य सम्मेलनकी ओरसे जनताकी वैद्यक सम्बन्धी सेवाका काम होते रहनेसे हमारी संस्थाकी ओर लोगोंका प्रेम और सहानुभूतिकी दृष्टि अधिक और अवश्य रहेगी। इस कार्यके लिये वैद्य सम्मेलनकी स्वीकृतिसे और उसीकी अंगरूप "वैद्यसेवासमिति" नामकी एक संस्था स्थापित है। परन्तु यह अंग जितना उपयोगी और गौरवपूर्ण है, वैद्यसम्मेलन उतनाही उसकी ओरसे उदासीन है। प्रयाग, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र आदिके मेलोंके समय यह अपना काम किया करती है।

यदि यह अधिक संगठित और सुव्यवस्थित बनायी जाय तो इसकी ओरसे प्रचारक नियुक्त कर उन स्थानोंमें औषधिवितरण हो सकती है जहाँ डिस्ट्रिक्टबोर्ड आदिका प्रबन्ध नहीं है। साथही सम्मेलनके उद्देश्योंका प्रचार, सभासद बनाने, उपदेश देने आदिके काम भी इसके द्वारा कराये जा सकते हैं। सम्मेलन इस संस्थाको अधिक अपनावे, उसका वार्षिक चुनाव, आयव्ययका निरीक्षण, कार्य पद्धति आदिपर दृष्टि रखनेके काम, सम्मेलनकी ओरसे हो। वह सम्मेलनका प्रत्यक्ष विभाग रहे और उसकी कार्यशैली और नीति सम्मेलनकी ओरसे निर्धारित हो। इसके द्वारा सम्मेलन एक महत्वपूर्ण विधायक कार्य करा सकता है। अभी पण्डित नारायणदत्तजी शर्मा वैद्यराज विशेषकर अपनेही उद्योग और परिश्रमसे इस संस्थाको चला रहे हैं। सम्मेलनका प्रत्यक्ष हाथ होनेसे उन्हें बहुत सहायता और सुविधा प्राप्त हो जायगी।

दवाइयोंके कारखाने

कुछ वर्ष पहले इस बातकी आवश्यकताका अनुभव किया जाता था कि आयुर्वेदिक औषधियोंको तैयार करनेके कुछ ऐसे प्रामाणिक कारखाने रहें जो शास्त्रोक्त औषधियाँ तैयारकर वैद्योंको सुलभ मूल्यमें दिया करें। जिससे औषधियोंकी तैयारीमें वैद्योंका जो बहुत समय नष्ट होता है वह अन्य उपयोगी काममें लगाया जासके। इस समय कई ऐसे कारखाने चलने लग गये हैं और वैद्योंकी आवश्यकताकी पूर्ति भी करने लग गये हैं। अब उनके प्रति सम्मेलनकी कुछ जिम्मेदारीका समय आगया है। उन कारखानोंमें जिस पद्धतिसे औषधियाँ तैयार होती हैं, जिस तरह औषधियोंका शोधन-मारण आदि प्रयोग होते हैं, उनका निरीक्षण कर निश्चय करना चाहिये कि वह कहाँतक उपयुक्त है। इसके सिवाय तैयार हुई औषधि कहाँतक ग्रन्थोक्त कार्य करनेमें समर्थ होती हैं; इसका निर्धारण भी हमें जाना चाहिये। ऐसा होनेसे उन कारखानोंकी भी भलाई है और वैद्योंको भी सुविधा है। लाभके लोभसे कारखानेवाले सस्ती किन्तु कम गुणवाली औषधि तैयार करनेका लोभ कर सकते हैं और वैद्य मँगाकर यथेष्ट लाभ न उठा सकनेके कारण फँस सकते हैं। यह ख्याल रखना पड़ेगा कि जो निरीक्षण हो वह शास्त्रोक्त हो मुँह देखा न हो।

आविष्कार और अन्वेषण

समयकी आवश्यकताके अनुसार वैद्यसम्मेलनका सबसे बड़ा जो काम है वह अब आयुर्वेदविद्याके संशोधन और पूर्ण करनेका है। केवल आन्दोलनसे अब कुछ काम नहीं चल सकता; अब संगठन और विधायक कार्योंमें सम्मेलनको स्वयं लग जाना होगा। आन्दोलनका उद्देश्य अपनी परिस्थिति दिखाकर उसके प्रति जनताको जागृत करने और कर्तव्य समझानेके लिये होता है, वह अधिकांशमें हुआ है। आयुर्वेदकी उन्नति और अभिवृद्धिके लिये क्या होना चाहिये, इसे सम्मेलनको

स्वयं करके बतलाना चाहिये। यह हो सकता है कि सम्मेलन एक आदर्श सामने रखे, एक ढर्रा चला दे, फिर उस कार्यमें दूसरी संस्थाएँ लग जायँ। परन्तु आरम्भमें कार्यपद्धति सोचकर कार्यमें परिणत करना यह सम्मेलनका ही काम है। जिन लोगोंका आक्षेप है कि आयुर्वेद जहाँ,चरकके जमानेमें था वहीं आज भी है, उसमें कोई आविष्कार नहीं होता, कोई नई खोज नहीं होती, प्रयोगोंके द्वारा सिद्धान्तोंका निर्द्धारण नहीं होता; उस आक्षेपका हमें खण्डन करना चाहिये। पहले तो यही ठीक नहीं कि चरकके बादके विद्वानोंने कुछ नया प्रकाश फैलाया ही नहीं। चरकके बाद सुश्रुत और फिर वाग्भटने बहुतसे विषयोंमें नयी बातें कही हैं, अपना स्वतन्त्र अभिप्राय दिया है। रससिद्ध आचार्योंने तो उथल पथल मचा दिया है, समयानुसार कुछ न कुछ नवीनता बादके लेखक लाते ही गये हैं। हमें ऐसे विषयोंकी खोजकर इसका एक व्यवस्थित इतिहास तैयार कराना चाहिये। वैद्यसम्मेलनको एक आविष्कार और अन्वेषणका विभाग खोलना चाहिये और उसके कई उपविभाग स्थापित करने चाहिये। उनमेंसे कुछ विभागोंका नामल्लेख मैं नीचे करूँगा। समय, आवश्यकता और सुविधाके अनुसार विभागोंकी रचना होती रहेगी। यह कार्य जैसा महत्वपूर्ण वैसा ही भारी और कठिन है। इस कार्यमें लाखों रुपयोंकी आवश्यकता होगी। रुपया इकट्ठा करना वैद्योंके लिये असम्भव तो नहीं है; परन्तु लगन और दृढ़ताके साथ इसमें जुटकर वे कितनी सफलता पाते हैं यह दिखा देना उनका काम है। दूसरी अड़चन मनुष्योंकी होगी पहिले तो सुयोग्य मनुष्य जो इस विषयमें अनुभव और योग्यता रखते हों कम मिलेंगे, फिर अपने व्यवसायमें वे जितना कमा लेते हैं, उतना सम्मेलन दे सके यह सम्भवनीय नहीं है। स्वार्थत्याग और विज्ञानप्रेमके व्रती होकर विद्वान कितना लग सकते हैं यह समय बतलावेगा। तीसरी अड़चन हमारी पराधीनताके कारण पड़ेगी; परन्तु प्रयत्नसे सम्भवतः यह दूर हो सकेगी। अतएव यह काम सम्मेलनके उठा लेने योग्य है। ऐसा नहीं होनेसे सम्मेलनकी आवश्यकता, उपयोगिता और अस्तित्वका कठिन विवादास्पद प्रसंग उपस्थित हो सकता है। प्रारम्भमें इस विभागके द्वारा कौन-कौन काम कराये जा सकते हैं इसका कुछ दिग्दर्शन कराना आवश्यक है।

१ ऐतिहासिक खोज

अनादि होनेपर भी आयुर्वेदके प्रवर्तन और क्रम-विकासका काल निर्धारण करना, वेदकालीन समयसे लेकर पौराणिक और वर्त्तमान कालके सम्मेलनप्रवर्त्तन काल तक इसमें कौन कैसा विकास हुआ, उसका उल्लेख होना चाहिये। चरक-सुश्रुत आदि आयुर्वेदाचार्यों और रससिद्धोंके समय और कार्योंका निरूपण होना चाहिये। दूसरी खोज सम्मेलन कालसे इधर कार्यों, घटनाओं और उद्योगोंको लेकर एक इतिहास

तैयार करनेके लिये होना चाहिये। प्रसिद्ध ग्रंथकारों, उद्योगियों और वैद्योंके जीवन-चरित्रोंका संग्रह होना भी आवश्यक है।

२ वैज्ञानिक खोज

दूसरा विभाग वैज्ञानिक खोजका होना चाहिये। एलोपैथी, होमियोपैथी, क्रोमोपैथी, यूनानी-मिश्रानी, प्राकृतिक आदि प्रचलित चिकित्सा-पद्धतियोंके सिद्धान्तोंका अन्तर्भाव हमारे आयुर्वेदके हेतुविपरीत, व्याधिविपरीत, हेतुव्याधिविपरीत, विपर्यस्ताकारी आदिमें हो जाता है; और सबके सिद्धान्तोंका बीज हमारे यहाँ मौजूद है; तथापि इन विषयोंका विवेचनकर विधिवद्ध करना बहुत आवश्यक है। पश्चिमी-विज्ञानमें नित्य उथल पथल मच रहा है, नये-नये सिद्धान्त स्थापित हो रहे हैं, पुराने सिद्धान्तोंका परिवर्तन हो रहा है, आश्चर्यजनक आविष्कार हो रहे हैं, बूढ़ोंको जवान बनाया जा रहा है। एक जीवधारी इन्द्रिय दूसरोंमें लगाकर प्रयोग हो रहे हैं, बन्दरकी इन्द्रियका कुछ प्रयोगकर नपुंसक और अल्पवीर्य पुरुष वीर्य सम्पन्न बनाये जा रहे हैं, यहाँ तक कि स्त्रियोंको साक्षात पुरुष बनाकर उन्हें किसी स्त्रीसे विवाह करने योग्य बनाया जा रहा है. ऐसे समयमें हमारा हाथमें हाथ धरे बैठा रहना कहाँ तक ठीक होगा? कुष्ट, श्लीपद, अण्डवृद्धि, नेत्ररोग आदि कई रोगोंपर हमें फिर नये सिरेसे छानबीन करनी पड़ेगी और अधिक उपयोगी तथा सफल प्रयत्नोंकी खोज करनी होगी। हमारा रसायन और कायाकल्पवाला सिद्धान्त इस समय पुस्तकोंमें ही दर्ज है, उसके विषयमें हमें बहुत खोज, बहुत प्रयोग और सिद्धान्त निर्द्धारण करने पड़ेंगे। पारदके संस्कार और उसकी शक्ति, अभ्रकादिधातुओंका सत्वपातन तथा रसविद्या सम्बन्धी कितनी ही बातोंपर विशेष प्रकाश डालना पड़ेगा। खेचरी गुटिका, कीमियाँ आदिकी बातें कहाँ तक सत्य है इसकी ऊहापोह करनी होगी। इस समय बिजलीकी शक्तिका चिकित्साके काममें आश्चर्यजनक प्रयोग हो रहा है; एक्सरेजके द्वारा शरीरके भीतरी हिस्सोंके विकार जाननेमें विलक्षण मदद ली जारही है, चर्मरोगोंपर इनसे काम लिया जारहा है। भगन्दर, नासूर आदिमें उनसे काम लिया जारहा है।

अदृश्य और सूक्ष्य कीटाणुओंका सिद्धान्त हमारे यहाँ मौजूद रहनेपर भी हमने उनके सम्बन्धमें नयी बातें नहीं जानीं; परन्तु पश्चिमी वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा उनकी गतिविधि वृद्धि और रोगोत्पादकशक्ति आदिकी जाँच कर रहे हैं, सूचिकाभेद (इनजेंकशन) द्वारा अधिकांश रोगोंमें प्रयोग किये जारहे हैं। ऐसे समय हमारा निस्तब्ध बैठना समय सूचकताके विरुद्ध होगा। हमें इन बातोंकी जानकारी प्राप्त कर देखना होगा कि हमारी चिकित्सापद्धतिमें कहाँ तक इनकी सहायता दरकार हो सकती है। सारांश रोगों और चिकित्सा तथा चिकित्सासिद्धान्त और चिकित्साके साधनोंके सम्बन्धमें नये पुराने विज्ञानका निचोड़ निकालकर हमें अपने अनुकूल

कुछ सिद्धान्त निश्चय करना और अपनी चिकित्साकी पूर्तिका प्रयत्न यह सच है कि हमारी चिकित्साविद्या अधिकांश पूर्ण है; परन्तु हमें घबड़ाना नहीं चाहिये। विज्ञान किसी एक जाति या देशकी बपौती नहीं है। विज्ञानसे जब अन्य देशोंने अब तक लाभ उठाया है तब उसका उपयोग समझ पड़े तो हम क्यों न करें ? अच्छी बात जहाँ से मिले वहाँ से लेना है। हाँ हमें आँख मूँद कर किसीका अन्धानुकरण नहीं करना है। बहुत खोज बहुत विचारके बाद उपयोगी अंश अपने ढङ्गपर हमें स्वीकार करना होगा। निश्चय हमारा वैज्ञानिकअन्वेषण विभाग ही करेगा। हमें अपना स्वरूप बिगाड़ कोई काम नहीं करना है।

२ शस्त्रचिकित्सा

आज कलके वैद्योंको देखकर कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकेगा कि भारतीय वैद्य भी प्राचीन समयमें प्रत्यक्षशारीरविज्ञानसे परिचित थे, सजीव मनुष्यों और मुर्दोंका चीर फाड़ किया करते थे और कुशल शस्त्रचिकित्सक हुआ करते थे। बौद्ध-कालमें मुर्दोंका छूना और शरीरका चीरफाड़ करना घृणित समझा जाने लगा और चिकित्साविद्याका सारा काम औषधियोंसे ही लिया जाने लगा। शस्त्रचिकित्साको हम लोग एक दम भूल गये। परन्तु हमारा प्राचीन साहित्य इस बातकी साक्षी दे रहा है कि भारतीय वैद्य पहले कुशलताके साथ शस्त्रक्रिया किया करते थे, कटे अंगोंको जोड़ते, नकली पाँव लगा देते, टूटे दाँतोंकी जगह नकली दाँत लगाते, कटी गर्दन पर दूसरे जीवोंकी गर्दन जोड़ दिया करते और कठिनसे कठिन मूढ़गर्भ आदिकी शस्त्र-क्रिया करते, पोते और जलोदरका पानी निकालते; पथरी तोड़ कर और चीर कर निकालते थे। पश्चिमी विद्वानोंने इस बातको स्वीकार किया है कि जिस समय दुनियाके सब देश अन्धकारमें पड़े हुए थे, उस जमानेमें भी भारतीय शस्त्रचिकित्सा इतनी ऊँचे पहुँची हुई थी जितनी कई बातोंमें आजकी उन्नत शस्त्रचिकित्सा भी नहीं पहुँच पायी है। सुश्रुतमें शस्त्रचिकित्साको चिकित्साका प्रधान अङ्ग माना है। महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेन महोदयने यह सिद्ध कर दिया है कि पश्चिमी सर्जरीका मूलाधार भारतीय शस्त्रचिकित्सा है, यहाँ तक कि चीर फाड़के यन्त्रोंके नाम और उनकी बनावट भी हमारी ही नकल है। कहीं कहीं तो प्रत्यक्ष रूपसे किसी किसी शस्त्र-कर्मका नाम ही इण्डियन सर्जरी है। परन्तु अब इन किस्सोंसे तो काम नहीं चलेगा। कई धनी और आयुर्वेद प्रेमियोंके द्वारा आयुर्वेदपाठशालाएँ खुली हुई हैं; परन्तु विशेष कर उनमें ग्रन्थ ही पढ़ाये जाते हैं। बहुत कम पाठशालाओंमें बहुत थोड़े स्वरूपमें प्रत्यक्ष कर्मदर्शनकी सुविधा है। केवल शास्त्र पढ़ा हुआ वैद्य अनुभवी वैद्य नहीं कहला सकता "यस्तु केवल शास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः। समुह्यत्यातुरं प्राप्य प्राप्य

भीरुरिवाहवम् ।" हमें प्रयत्न करना होगा कि खुले हुए विद्यालयोंमें यथासम्भव प्रत्यक्ष कर्मदर्शनकी सुविधा हो और सरकार द्वारा तथा सरकारी सहायता द्वारा खुले हुए विद्यालयोंमें मुर्दे और जीवित शरीरोंके चीरफाड़का प्रबन्ध अवश्य रहे। मुर्देकी चीरफाड़से कर्मकी कुशलता आवेगी और जीवित शरीर चीरनेकी हिम्मत मिलेगी। यही नहीं शरीरकी शिरा-धमनी-नाड़ी-आशय आदि अवयवोंका प्रत्यक्ष ज्ञान होगा। प्रत्येक विद्यालयमें शारीरिक नकशे और शरीरकी बनावटके नमूने (माडल) रहनेकी आवश्यकता है, उनसे इसके समझनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। यह ठीक है कि अभी भी कहीं-कहीं किसी-किसी बातके शस्त्रचिकित्सक हम वैद्योंमें ही मिल जाते हैं, नासिकके प्राणाचार्य महोदय यकृतप्लीहामें हाथके शिराकी दाह किया करते थे, काठियावाड़में प्रभाशङ्कर नानाभाई और उत्तरभारतके अनेक स्थानोंमें अच्छे नेत्र चिकित्सक हैं जो आँखोंकी सर्जरी करते हैं; किन्तु आरम्भमें इस विद्याके सिखानेके लिये हमें डाक्टरोंकी सहायता लेना पड़ेगी। हम जब इस अंशको भूले हुए हैं तब जो इसे जानता हो उससे सीखनेमें—कहींसे भी गुण प्राप्त करनेमें हमें लज्जा नहीं होनी चाहिये। चरकाचार्य कहते हैं—

"नचैवह्यस्ति सुतरामायुर्वेदस्य पारम्। तस्मादप्रमत्तः शश्वदभियोगमस्मिन् गच्छेत्। कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमतामाचार्यः शत्रुश्चाबुद्धिमतामतश्चाभि समीक्ष्य बुद्धिमताममित्र स्याऽपि धन्यं यशस्यमायुष्यं पौष्टिकं लौकिकमभ्युपदिशतो वचः श्रोतव्यमनुविधातव्यश्चेति।"

(च० वि० अ० ८)

अतएव जिसे हम नहीं जानते उसे बिना किसी प्रमादके सीखनेके लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। बुद्धिमान सारग्राही मनुष्यके लिये सारा विश्व अपना गुरु मालूम पड़ता है; किन्तु जो दोषदर्शी और अनुदार हैं उन्हें सारा विश्व शत्रुके रूपमें दिखाई पड़ता है। बुद्धिमान मनुष्यका कर्तव्य है कि यदि शत्रुकी भी कोई बात हितकारी हो, शत्रुका कोई गुण प्रशंसा योग्य हो, आरोग्यता वर्धक हो और जनसमाजके लिये अनुकूल हो तो उसे स्वीकृत करना और ग्रहण करना चाहिये।

अतएव आरम्भमें हमें डाक्टरोंकी सहायता लेने और डाक्टरोंसे सर्जरी सीखनेमें जरा भी हिचकिचाना नहीं चाहिये। किन्तु इसके बाद हमपर एक बड़ी जवाबदारी आ जाती है। आरम्भमें हमें डाक्टरी शस्त्र; डाक्टरी औषध और डाक्टरी साधनोंसे काम लेनाही पड़ेगा; किन्तु इसके बाद हमारे निपुण चिकित्सकों और वैज्ञानिकपरिशोधमण्डलके विद्वानोंको इस बातकी खोजमें लगजाना पड़ेगा कि हम किस प्रकार डाक्टरी परतन्त्रतासे मुक्त हों। हमें अपने प्राचीन और नवीन यूरोपीय अस्त्रों-शस्त्रोंकी समीक्षा कर निश्चय करना होगा कि हमारे अस्त्र-शस्त्रोंमें कहाँ परिवर्तन और उन्नतिकी आवश्यकता है। जिन विदेशी साधनोंके बिना (उदाहरणार्थ क्लोरोफार्म) काम न चले उन्हें तबतक स्वीकार कीजिये जब तक आप स्वयं कोई उपयुक्त साधन ढूंढ न

निकालें; किन्तु कीटाणुनाशक औषध और काढ़े; घाव धोनेकी दवा और काढ़े, घाव पकाने और घाव न बिगड़ने देना तथा घाव भरनेकी दवाइयाँ, मलहम, पट्टी आदि हमें बहुत शीघ्र अपने निश्चय कर लेने होंगे। सारांश हम किसी प्रकार सर्जरी सीखकर उसमें अपनापन ले आवें इसके लिये हमारे खोजी चिकित्सकों और वैज्ञानिकमण्डलको सावधान रहना पड़ेगा।

४ संदिग्ध औषधियोंका निर्णय

सालपर साल बीत रहे हैं, सम्मेलनपर सम्मेलन होते जा रहे हैं; परन्तु जिन औषधियोंके सम्बन्धमें हममें मतभेद, सन्दिग्धता और अज्ञान फैला हुआ है वह ज्योंका त्यों है। इसके लिये हमें विशेष ध्यान देना चाहिये। प्रतिवर्ष पहलेसे कुछ औषधियाँ निश्चयार्थ चुन ली जाया करें और प्रदर्शिनीमें उनके नमूने सभी प्रान्तोंसे मँगाकर संग्रह करना चाहिये। इसके बाद एकत्रित वैद्यसमुदाय शास्त्राधारसे यह निश्चित करें कि कौन नमूना शास्त्रानुकूल है और उसका निश्चय घोषित कर देना चाहिये। अथवा प्रत्येक सम्मेलनमें एक उपसमिति बनायी जाय और उसके जिम्मे कुछ वस्तुएँ निश्चयार्थ सौंप दी जायँ। वह उपसमिति साल भर ऐसी वस्तुओंके नमूने सभी प्रान्तोंसे मँगाकर इकट्ठा करे। उनकी परीक्षा करे, गुणोंका अनुभव करे, और दूसरे सम्मेलनमें अपने विचार उपस्थित करे सम्मेलनमें समवेत विद्वानोंकी उसपर आलोचना होनेका अवसर दें। इसके बाद सम्मेलन उसपर अपना निश्चय प्रकट कर दे। उन्नावके संयुक्तप्रान्तीय वैद्यसम्मेलनने रास्नाका और हरिद्वारके वैद्यसम्मेलनने अष्टवर्गकी एक दो औषधि तथा अन्य एक दो औषधिका निर्णय किया था। हमारे विद्वान् वैद्य इस बातकी चिन्ता न करें कि आज जिसे हम एक औषधिके रूपमें निश्चय करेंगे, कुछ वर्षों बाद वह सही न मालूम हो तो हमारी समझकी हँसी उड़ायी जायगी। ऐसा करनेसे तो हम कभी भी किसी बातका निश्चय न कर सकेंगे। निश्चय करते समय जितनी सावधानीकी और जाँचकी आवश्यकता है वह कीजिये। इसके बाद भी आगे चलकर हमारी भ्रान्ति प्रकट होजाय तो इसमें हमें प्रसन्न ही होना चाहिये। मनुष्यकी बुद्धि सदा निर्भ्रान्त ही नहीं हो सकती। अतएव प्रत्येक सम्मेलनमें हम कुछ-कुछ औषधियोंका निश्चय करते चलें तो कुछ वर्षोंमें बहुतसा काम समाप्त कर लेंगे। अष्टवर्गके नामसे दो तीन वर्षोंसे हमारे सामने कुछ नमूने आ रहे हैं उनपर हमें विचार करनाही चाहिये। मूर्वा, शालपर्णी, प्रसारणी, प्रियंगु, सोमलता, बलाचतुष्टय आदि पर हमें विचार करना चाहिये। इस सम्मेलनको उचित है कि एक उपसमिति बनाकर सन्दिग्ध औषधियोंकी एक सूची तैयार करा लें और फिर उसीके अनुसार प्रति वर्ष कुछ औषधियोंका निर्णय होता चले। इस विषयको ढीलमें डालना ठीक नहीं।

५ निघण्टु संशोधन

· हमारे अन्वेषण विभागमें एक उपविभाग निघण्टु संशोधनके लिये होना चाहिये। जमानेको देखते हुए हमारा निघण्टु पूर्ण नहीं कहा जासकता हमें श्रीयुक्त डाक्टर वामनराव देसाई और वनस्पतिशास्त्री जयकृष्ण इन्द्रजीके वनस्पतिज्ञानका लाभ लेकर वनस्पतियों और औषधियोंका वर्गसंशोधन करना चाहिये। वैद्यराज बापालाल भाई और श्रीयुक्त कृष्णाजी रामकृष्ण दातेका परिश्रम और अनुभूत भी हमारे लिये उपयोगी होगा। औषधियोंके वर्णन और गुणदोष विवेचनमें विचार करना चहिये। प्रत्येक औषधिके रस-गुण वीर्य-विपाक और प्रभावका निर्णय कर उसके स्वतन्त्र और संयुक्त प्रयोगोंका कुछ वर्णन तथा रासायनिक संयोग और विरुद्ध संयोग आदिका जिक्र आना आवश्यक है। प्रत्येक औषधिकी मात्रा, उसका शोधन और यदि उसके सेवन अथवा अतियोगसे कोई हानि हो सकती हो तो उसका दर्पदलन भी बतला देना चाहिये।

यन्त्र साहाय्य—सूक्ष्मदर्शक यन्त्रके द्वारा यूरोपीय विद्वान छोटी वनस्पतियोंके सम्बन्धमें बड़ी ढूँढ़ खोज कर रहे हैं। लिचन, पार्मीलिया, गोनिडिया, एलजी, फंगस आदि जातिकी वायुमण्डल अथवा वृक्षों और चट्टानोंमें होनेवाली सूक्ष्म औषधियोंका वे बहुतही मनोरंजक वर्णन करते हैं। हमारी विज्ञान शालाओंमें भी आवश्यक यन्त्रोंका अब समयानुसार उपयोग होना आवश्यक है। जंगल और पहाड़ोंमें जानेपर अपनी अल्पज्ञता पर बड़ाही क्रोध आता है। अनन्त औषधियोंका विशाल भण्डार भरा हुआ है; परन्तु हम नाममात्रको बहुत थोड़ीसी औषधियोंको पहचान पाते हैं। हमारे निघण्टुमें छः सात सौ औषधियोंका वर्णन है; किन्तु कहीं कहीं हजार बारह सौ औषधियों तकका वर्णन उपलब्ध हो जाता है। कर्नल कीर्तिकर, मेजर बी० डी० बसु महोदय की अंगरेजी पुस्तकमें बारह सौसे ऊपर वनौषधियोंका जिक्र आया है; किन्तु हम आधीका भी ज्ञान नहीं रखते। हमारे शास्त्रकारोंने वनवासी कोल, भिल्ल और गोपालक अहीर आदिकी सहायतासे अपनी वनौषधि पहचाननेकी प्यास बुझानेकी सलाह दी है। हमें ऐसेही अनेक उपायोंसे अपना ज्ञानवर्धन करना आवश्यक है।

नयीखोज—हमें उन औषधियोंका भी नाम, चित्र और गुण लिपिबद्धकर लेना आवश्यक है जो भिन्न भिन्न प्रान्तों और स्थानोंमें प्रसिद्ध हैं, वहाँ वाले उनका उपयोग करते हैं, किन्तु निघण्टुओंमें उनका कहीं जिक्र नहीं है। हिमालयकी तराई और कम ऊँचाईमें अनेक औषधियाँ प्रसिद्ध हैं और वहाँ वाले उनका उपयोग भी करते हैं; ज्वरांकुश, सीता सुपारी, निर्विषी आदि नामोंसे उन्हें अभिहित करते हैं, गयाकी पहाड़ोंमें एक बूटी छरीलाकी तरह होती है, जिसे प्रसूतिका विकारमें दिया जाता है। शिवरी नारायण, सोनाखान और नरसिंहपहाड़ीकी ओर कितनीही विचित्र वनौषधियाँ

प्रसिद्ध हैं। एकका नाम "रक्तविडार" अथवा रक्तविदारण है। जिन प्रसूतिका स्त्रियोंका दोप निर्गम और रक्तकी सफाई ठीक न हो सकनेके कारण, प्रसूतिक ज्वर, मक्कलशूल आदि हो जाते हैं, उन्हें वहाँ वाले इसका काढ़ा कालीमिर्च मिलाकर पिलाते हैं। इससे सब सञ्चित रक्त निकलकर स्त्री शुद्ध और आरोग्य हो जाती है। एक "माँझा" नामकी औषधि होती है 'माँझा मनहुँ मीन कहँ व्यापा' इसे कुचल कर पानीमें डाल दीजिये जब पानी काला हो जायगा, मछलियाँ और जलके छोटे जन्तु मर कर ऊपर उतरा आवेंगे। इसके बाद दो चार दिनमें जल निर्दोष और स्वच्छ हो जायगा। जैसे परमेंगनेट आफ पोटास डालनेसे होता है। नीलोत्पलका नाम ही नाम ग्रन्थोंमें पढ़ते थे और एक प्रकारके ईषन् श्याम कुमुदनीका उसके बदले प्रयोग करते थे; परन्तु वहाँ प्रत्यक्ष नीलोत्पल देखा। इसके फूल कुमुदनीसे छोटे होते हैं। रक्तोत्पल (लालकुमुदनी) तो कभी देखा ही न था, यहाँ उसका सुन्दर, लाल फूल देख चित्त प्रसन्न होगया। एक औषधि और देखी जिसके रहनेसे मूसे और मच्छड़ नहीं सताते। अमर कण्टककी पहाड़ीमें और उड़ीसाके जङ्गलोंमें कामराज, भोजराज, बलराज, तेजराज आदि सात प्रकारके राज होते हैं और कहीं कहीं औषधियोंके नुस्खोंमें उनका उपयोग भी होता है। हमें पता लगाना चाहिये कि यह सप्तराज हमारे निघण्टु ग्रन्थोंकी किन औषधियोंके नामान्तर हैं। यदि ये नयी औषधि हैं तो इनका वर्णन निघण्टुमें सम्मिलित करना चाहिये। उसबा, कोकेन, सिंकोना, अर्गट, गुड़मार, बांकेरी आदि देशी विदेशी अन्य औषधियाँ भी हैं जिनका जिक्र हमारे अभिनव निघण्टुमें होना चाहिये। इस प्रकारकी नयी औषधियोंकी खोजकर हमें एक "अभिनव निघण्टु" ग्रन्थ सङ्कलित करना चाहिये। इसमें पहिले उन उन स्थानोंके लोगोंसे पूछकर गुण लिखना चाहिये। इसके बाद अनुभव और खोजसे अन्य गुणोंका समावेश हो जायगा। कुछ औषधियोंमें ऐसे गुण भी हैं; जो हमारे ग्रन्थोंमें तो नहीं लिखे; परन्तु यूनानी हकीमोंके 'मखजन' और डाक्टरोंके "मटेरिया मेडिका" में उनका उल्लेख है। आचार्य यादवजी भाईने अपनी वक्तृतामें कचनारकी जड़की छाल और पीतकूष्माण्डके बीजकी कृमिनाशक शक्ति और कुन्दरूकी मधुमेह नाशक शक्तिका जिक्र किया था। इन सब बातोंकी परीक्षा कर हमें अपने अभिनव निघण्टुमें सम्मिलित करना चाहिये।

वर्ग-संशोधन—अपने निघण्टु ग्रन्थोंमें वनस्पतियोंका जो वर्गीकरण किया गया है वह एक मतसे नहीं हुआ। एक निघण्टुकारका वर्गीकरण दूसरेसे मेल नहीं खाता। किसीने एक औषधिको एक वर्गमें लिया है तो दूसरेने दूसरेमें। अब हमें आधुनिक ज्ञानका भी सहारा लेकर वनस्पतियोंकी नैसर्गिक रचना और गुणधर्मके अनुसार वर्गीकरण करनेका प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा करनेसे सामान्यगुण और जातिवाली औषधि अपने-अपने वर्गमें आ जावेगी।

मात्रा-निर्णय—यद्यपि यह ठीक है कि किसी औषधिकी ठीक मात्रा काल-अग्नि-वय-बल-प्रकृति-देश-दोष परिस्थिति आदिका विचार कर प्रत्येक रोगीके अनुकूल वैद्य निश्चय कर सकता है। तथापि यह काम समय पाकर अभ्यास बढ़नेसे होगा। अल्प-मत और नये वैद्योंकी सुविधाके लिये हमें औषधियोंकी एक सामान्य मात्रा निश्चित कर देनी चाहिये। हमारे ग्रंथोंमें काष्ठौषधिकी सामान्यमात्रा एक तोला लिखी है अब नया चिकित्सक विचारमें पड़ेगा कि सोंठ भी एक तोला, धतूरा भी एक तोला, सफेद कनेरकी जड़ भी एक तोला। ग्रन्थोंमें जो मात्रा दी है वह समयके अनुकूल नहीं है। अब हमें समयके अनुकूल और पदार्थकी तीक्ष्णता आदिका विचारकर हर एक वर्ग अथवा हर एक औषधके लिये अलग-अलग मात्राका विचार करना होगा विद्वान और अनुभवी वैद्योंकी उपसमिति द्वारा इसका निर्णय कराना चाहिये और मखजनउलअद्-विया तथा मटेरिया मेडिकासे भी सहायता लेनी चाहिये।

मानपरिभाषा—हमारे ग्रन्थोंमें औषधियोंकी तौल और मापके लिये जो परिभाषा लिखी है वह सभी ग्रन्थोंमें एकसी नहीं है। मागधमान कुछ और कहता है और कालिंगमान कुछ और ही, इसके विपरीत आजकल हम लोग जो तौल व्यवहारमें लाते हैं वह कुछ और ही है। आज हम छः रत्तीका माशा नहीं ८ रत्तीका माशा मानते हैं, दश माशेका तोला नहीं १२ माशेका तोला मानते हैं, ६४ तोलेका सेर नहीं ८० तोलेका सेर और ४० सेरका मन मानते हैं। इस असमानतासे व्यवहारमें बहुत असुविधा होती है। इसके निर्णयके लिये वर्षों पहले वैद्यसम्मेलनने एक उप-समिति बनायी थी और आचार्य यादवजी भाईने इसके लिये कुछ परिश्रम भी किया था। अब हमें एक मानपरिभाषा निश्चय कर प्रसिद्ध कर देनी चाहिये।

वनौषधि उद्यान—सभी वनौषधि सभी जगहोंमें नहीं होतीं। इसलिये उनकी पहचान और अभ्यास करनेमें असुविधा होती है। विद्यार्थियोंके अभ्यासकी सुविधा और विद्वानोंकी खोज सुविधाके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक प्रान्तमें नहीं तो भारतके किसी एक स्थानमें तो वनौषधियोंका एक बड़ा उद्यान रहे; जहाँ बैठकर विद्यार्थी और वैज्ञानिक अपनी ज्ञान पिपासा पूर्ण कर सकें। यों तो हर एक आयुर्वेद-विद्यालयके साथ उद्यान आवश्यक है; किन्तु यह विशेष विशाल और पूर्ण होना चाहिये। यूरोपियन विद्वान तो हमारे देशके अफगानिस्थानसे तिब्बत और हिमालयसे लंका तककी औषधियोंकी छानबीन कर ग्रन्थपर ग्रन्थ तैयार कर डालें और हम अपने घरमें बैठे मक्खी मारा करें यह कभी शोभा नहीं दे सकता। जंगलों और पहाड़ोंमें हमारी खोज जारी रहनी चाहिये तथा उपयुक्त औषधियोंको अपने उद्यानमें लाकर लगाना चाहिये। सुनते हैं जावाद्वीपमें सन् १८१७ में एक उद्यान स्थापित हुआ था वह आज तक मौजूद है उसमें बराबर अनेक प्रयोग होते रहते हैं। ३२ करोड़के विशाल जनपदमें ऐसा कोई महान उद्यान न हो यह न तो हमारी सरकारके लिये

प्रसिद्ध हैं। एकका नाम "रक्तविडार" अथवा रक्तविदारण है। जिन प्रसूतिका स्त्रियोंका दोष निर्गम और रक्तकी सफाई ठीक न हो सकनेके कारण, प्रसूतिक ज्वर, मक्कलशूल आदि हो जाते हैं, उन्हें वहाँ वाले इसका काढ़ा कालीमिर्च मिलाकर पिलाते हैं। इससे सब सञ्चित रक्त निकलकर स्त्री शुद्ध और आरोग्य हो जाती है। एक "माँफ" नामकी औषधि होती है 'माँफा मनहुँ मीन कहँ व्यापा' इसे कुचल कर पानीमें डाल दीजिये जब पानी काला हो जायगा, मछलियाँ और जलके छोटे जन्तु मर कर ऊपर उतरा आवेंगे। इसके बाद दो चार दिनमें जल निर्दोष और स्वच्छ हो जायगा। जैसे परमेंगनेट आफ पोटास डालनेसे होता है। नीलोत्पलका नाम ही नाम ग्रन्थोंमें पढ़ते थे और एक प्रकारके ईषत् श्याम कुमुदनीका उसके बदले प्रयोग करते थे; परन्तु वहाँ प्रत्यक्ष नीलोत्पल देखा। इसके फूल कुमुदनीसे छोटे होते हैं। रक्तोत्पल (लालकुमुदनी) तो कभी देखा ही न था, यहाँ उसका सुन्दर, लाल फूल देख चित्त प्रसन्न होगया। एक औषधि और देखी जिसके रहनेसे मूसे और मच्छड़ नहीं सताते। अमर कण्टककी पहाड़ीमें और उड़ीसाके जङ्गलोंमें कामराज, भोजराज, बलराज, तेजराज आदि सात प्रकारके राज होते हैं और कहीं कहीं औषधियोंके नुस्खोंमें उनका उपयोग भी होता है। हमें पता लगाना चाहिये कि यह सप्तराज हमारे निघण्टु ग्रन्थोंकी किन औषधियोंके नामान्तर हैं। यदि ये नयी औषधि हैं तो इनका वर्णन निघण्टुमें सम्मिलित करना चाहिये। उसवा, कोकेन, सिंकोना, अर्गट, गुड़मार, बांकेरी आदि देशी विदेशी अन्य औषधियाँ भी हैं जिनका जिक्र हमारे अभिनव निघण्टुमें होना चाहिये। इस प्रकारकी नयी औषधियोंकी खोजकर हमें एक "अभिनव निघण्टु" ग्रन्थ सङ्कलित करना चाहिये। इसमें पहिले उन उन स्थानोंके लोगोंसे पूछकर गुण लिखना चाहिये। इसके बाद अनुभव और खोजसे अन्य गुणोंका समावेश हो जायगा। कुछ औषधियोंमें ऐसे गुण भी हैं; जो हमारे ग्रन्थोंमें तो नहीं लिखे; परन्तु यूनानी हकीमोंके 'मखजन' और डाक्टरोंके "मटेरिया मेडिका" में उनका उल्लेख है। आचार्य यादवजी भाईने अपनी वक्तृतामें कचनारकी जड़की छाल और पीतकूष्माण्डके बीजको कृमिनाशक शक्ति और कुन्दरूकी मधुमेह नाशक शक्तिका जिक्र किया था। इन सब बातोंकी परीक्षा कर हमें अपने अभिनव निघण्टुमें सम्मिलित करना चाहिये।

वर्ग-संशोधन—अपने निघण्टु ग्रन्थोंमें वनस्पतियोंका जो वर्गीकरण किया गया है वह एक मतसे नहीं हुआ। एक निघण्टुकारका वर्गीकरण दूसरेसे मेल नहीं खाता। किसीने एक औषधिको एक वर्गमें लिया है तो दूसरेने दूसरेमें। अब हमें आधुनिक ज्ञानका भी सहारा लेकर वनस्पतियोंकी नैसर्गिक रचना और गुणधर्मके अनुसार वर्गीकरण करनेका प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा करनेसे सामान्यगुण और जातिवाली औषधि अपने-अपने वर्गमें आ जावेगी।

मात्रा-निर्णय—यद्यपि यह ठीक है कि किसी औषधिकी ठीक मात्रा काल-अग्नि-वय-बल-प्रकृति-देश-दोष परिस्थिति आदिका विचार कर प्रत्येक रोगीके अनुकूल वैद्य निश्चय कर सकता है। तथापि यह काम समय पाकर अभ्यास बढ़नेसे होगा। अल्प-मत और नये वैद्योंकी सुविधाके लिये हमें औषधियोंकी एक सामान्य मात्रा निश्चित कर देनी चाहिये। हमारे ग्रंथोंमें काष्ठौषधिकी सामान्यमात्रा एक तोला लिखी है अब नया चिकित्सक विचारमें पड़ेगा कि सोंठ भी एक तोला, धतूरा भी एक तोला, सफेद कनेरकी जड़ भी एक तोला। ग्रन्थोंमें जो मात्रा दी है वह समयके अनुकूल नहीं है। अब हमें समयके अनुकूल और पदार्थकी तीक्ष्णता आदिका विचारकर हर एक वर्ग अथवा हर एक औषधके लिये अलग-अलग मात्राका विचार करना होगा विद्वान और अनुभवी वैद्योंकी उपसमिति द्वारा इसका निर्णय कराना चाहिये और मखजनउलअद-विया तथा मटेरिया मेडिकासे भी सहायता लेनी चाहिये।

मानपरिभाषा—हमारे ग्रन्थोंमें औषधियोंकी तौल और मापके लिये जो परिभाषा लिखी है वह सभी ग्रन्थोंमें एकसी नहीं है। मागधमान कुछ और कहता है और कालिंगमान कुछ और ही, इसके विपरीत आजकल हम लोग जो तौल व्यवहारमें लाते हैं वह कुछ और ही है। आज हम छः रत्तीका माशा नहीं ८ रत्तीका माशा मानते हैं, दश माशेका तोला नहीं १२ माशेका तोला मानते हैं, ६४ तोलेका सेर नहीं ८० तोलेका सेर और ४० सेरका मन मानते हैं। इस असमानतासे व्यवहारमें बहुत असुविधा होती है। इसके निर्णयके लिये वर्षों पहले वैद्यसम्मेलनने एक उप-समिति बनायी थी और आचार्य यादवजी भाईने इसके लिये कुछ परिश्रम भी किया था। अब हमें एक मानपरिभाषा निश्चय कर प्रसिद्ध कर देनी चाहिये।

वनौषधि उद्यान—सभी वनौषधि सभी जगहोंमें नहीं होतीं। इसलिये उनकी पहचान और अभ्यास करनेमें असुविधा होती है। विद्यार्थियोंके अभ्यासकी सुविधा और विद्वानोंकी खोज सुविधाके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक प्रान्तमें नहीं तो भारतके किसी एक स्थानमें तो वनौषधियोंका एक बड़ा उद्यान रहे; जहाँ बैठकर विद्यार्थी और वैज्ञानिक अपनी ज्ञान पिपासा पूर्ण कर सकें। यों तो हर एक आयुर्वेद-विद्यालयके साथ उद्यान आवश्यक है; किन्तु यह विशेष विशाल और पूर्ण होना चाहिये। यूरोपियन विद्वान तो हमारे देशके अफगानिस्थानसे तिब्बत और हिमालयसे लंका तककी औषधियोंकी छानबीन कर ग्रन्थपर ग्रन्थ तैयार कर डालें और हम अपने घरमें बैठे मक्खी मारा करें यह कभी शोभा नहीं दे सकता। जंगलों और पहाड़ोंमें हमारी खोज जारी रहनी चाहिये तथा उपयुक्त औषधियोंको अपने उद्यानमें लाकर लगाना चाहिये। सुनते हैं जावाद्वीपमें सन् १८१७ में एक उद्यान स्थापित हुआ था वह आज तक मौजूद है उसमें बराबर अनेक प्रयोग होते रहते हैं। ३२ करोड़के विशाल जनपदमें ऐसा कोई महान उद्यान न हो यह न तो हमारी सरकारके लिये

और न हमारे ही लिये शोभाजनक है। देहरादूनका उद्यान इस कार्यके लिये काफी नहीं है। ऐसे उद्यानमें या अलग एक वस्तु संग्रहालय भी चाहिये जहाँ प्राणिज औषधि, प्राणि संग्रह, खनिज द्रव्य, विषोपविष, समुद्रमें मिलनेवाली वस्तुएँ आदि भी संगृहीत रहें।

ग्रन्थ और साहित्यविभाग

आविष्कार और अन्वेषण विभागके समान ही हमें एक साहित्य विभाग भी बनाना होगा, जो प्राचीन ग्रन्थोंकी खोजकर उनका संग्रह करे अथवा कहाँ कहाँ ऐसे प्राचीन ग्रन्थरत्न हैं और उनमें किन विषयोंका वर्णन है, ग्रन्थ कितना बड़ा है इत्यादि बातोंकी सूची तैयार करे, नये ग्रन्थोंका निर्माण, पुरानोंका संशोधन, टीकाग्रन्थोंका संशोधन आदिपर दृष्टि रखेगा। सम्मेलनको अपना अस्तित्व बनाये रखने और अपनी उपयोगिता साबित रखनेके लिये इस विभागको खोलना ही पड़ेगा। पहले मेरा विचार था कि सम्मेलनको व्यावसायिक सम्बन्धसे अलग रहना चाहिये और उत्साही व्यवसायियोंको उत्तेजित करते रहना चाहिये। किन्तु मैं देखता हूँ कि हिन्दीटीका ग्रन्थोंमें जैसी अशुद्धि है और होती जारही है तथा प्रकाशकोंका ध्यान आकर्षित करानेपर भी वे जैसे इसमें लापरवाह हैं और सस्तेमें काम निकालनेके लालचसे जैसे ग्रन्थ तैयार कराते हैं उससे सम्मेलन जब तक स्वयं आदर्श साहित्यका दिग्दर्शन नहीं करावेगा तब तक इस विभागकी बुराइयोंकी रोक नहीं हो सकेगी। सम्मेलनको अपने तत्वावधानमें आयुर्वेदीय ग्रन्थरत्नोंके सम्बन्धमें बहुत बड़ा कर्तव्यपालन करना है। यह हो सकता है कि वह ग्रन्थ स्वयं प्रकाशित करे, चाहे, प्रकाशकोंको दे; परन्तु आयुर्वेदिक साहित्यपर उसकी आलोचक दृष्टि सदा बनी रहनी चाहिये। यह तब तक नहीं हो सकता जब तक इसके लिये एक अलग विभाग ही न हो। इस विभागको सामान्यतः निम्नलिखित कार्योंपर ध्यान रखना होगा।

प्राचीन ग्रन्थोंकी खोज—आयुर्वेदका बहुत सा ग्रन्थ साहित्य अभी तक अप्रसिद्ध अवस्थामें देशके अनेक स्थलोंमें भरा हुआ है, उसकी खोज होनी चाहिये। जर्मनी, फ्रांस, इंगलैंड आदिके खोजी लोग हमारे देशसे हजारों रुपये खर्च कर प्राचीन हस्त लिखित ग्रन्थ ले जाया करते हैं और उनका मनमाना उपयोग कर लाभ उठाया करते हैं। देशमें तो हैं ही; परन्तु आयुर्वेदके बहुतसे ग्रन्थ तिब्बत आदि दूर देशोंमें प्राप्त होजाते हैं। वैद्यसम्मेलनको इस कामको हाथमें लेना चाहिये। अखिलभारतीय वैद्यसम्मेलन और प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन मिलकर इसे सम्पादित कर सकते हैं। अधिक नहीं तो प्रत्येक प्रान्तमें एक एक खोज करनेवाले नियुक्त किये जायँ वे एक एक जिलेको लेकर गाँव गाँव घूमें और पता लगावें कि कहाँ कौन हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। उनमें जो मिल सकें उन्हें वैद्यसम्मेलनके संग्रहालयके लिये ले लिया जाय। जिनकी

मूल प्रति सम्मेलनके संग्रहालयके लिये न मिल सके उनकी नकल करा ली जाय। साथ ही प्रत्येककी सूची भी तैयारकी जाय। कौन पुस्तक कहाँ है, उसका नाम, लेखक और रचयिताका नाम, वर्णित विषय, रचनाकाल आदिका नोट ले लिया जाय। इसके सिवाय देशके अनेक पुस्तकालयोंमें भी ऐसे ग्रन्थरत्न बहुत मिल सकेंगे। जयपुर, बीकानेर, काश्मीर, नैपाल, मैसूर, तंजोर, अलवर, बड़ौदा, काशी, आदिके राजकीय पुस्तकालयोंमें तथा कलकत्ता और बम्बईकी रायलएशियाटिक, सोसायटी, कलकत्ता, और काशीमें संस्कृत कालेजके पुस्तकालय, आनन्दाश्रम पूना, भण्डार कर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, डी० ए० वी० कालेज लाहौर, गवर्नमेंट ओरिएण्टल लायब्रेरी मद्रास, इण्डिया आफिस लायब्रेरी लन्दन, खुदाबक्स लायब्रेरी पटना आदिकी लायब्रेरियोंमें भी बहुतसे ग्रन्थरत्न मिल सकेंगे। इनकी नकलें करा लेना भी आवश्यक है। ऐसी पुस्तकोंकी यदि दो दो नकलें रहें तो एक नलक सदा सम्मेलनके पुस्तकालयोंमें रहे और माँगने पर निश्चित समयके लिये खोजी वैद्योंको देखनेके निमित्त भी दी जा सके। इस कार्यमें सम्मेलन उद्योग करे तो देशी नरेशों, सरकार और धनी सज्जनोंसे सहायता मिलना कठिन न होना चाहिये। पचीस हजार रुपयोंके व्याजसे यह काम चलता रह सकता है।

ग्रन्थ-प्रकाशन—इन पुस्तकोंकी नकल ले कर खाली संग्रह ही न किया जाय; बल्कि धीरे धीरे आवश्यक ग्रन्थ संशोधनकरा कर छापे भी जायँ। एक त्रैमासिक पत्रिकाके द्वारा भी धीरे धीरे ऐसे ग्रन्थ छापे जा सकते हैं। व्यक्तिगत प्रयत्नसे आयुर्वेदमार्तण्ड पण्डित यादवजी त्रिकमजी आचार्य, राजवैद्य जीवराम कालिदास, श्रीयुत मोती लाल बनारसी दास, कविराज नरेन्द्र नाथ मित्र आदि सज्जन प्राचीन पुस्तकोंकी खोज कर उनके प्रकाशनका काम यथासाध्य और यथावकाश किया करते हैं; परन्तु ये काम संघशक्ति द्वारा जितनी सुलभतासे होंगे उतनी सुविधासे व्यक्तिगत प्रयत्न द्वारा नहीं हो सकते। सम्मेलन इस कार्यको उठा ले तो इन सब सज्जनोंकी सहायता भी उसे प्राप्त हो सकती है। यदि एक एक पुस्तक एक एक नरेश, धनी और उदार सज्जनके द्वारा सहायता पाकर भी छापी जा सके अथवा पैसा ले कर प्रकाशकोंको दी जा सके तो भी बहुत सा काम हो जायगा। अथवा सम्मेलन इस कामके लिये एक लिमिटेड कम्पनी खड़ी करावे, उसमें सौ सौ रुपयेके शेयर रखे जायँ और उसीके द्वारा ऐसे ग्रन्थ छापे जायँ। ग्रन्थोंकी तैयारी और स्वीकृति वैद्य सम्मेलनकी समित द्वारा हो और कम्पनीके लाभका एक निश्चित अंग सम्मेलनके फण्डमें दिया जाया करे। उद्योग होनेसे इस कार्यमें सफलता अवश्य हो सकती है।

नवीन ग्रन्थोंका निर्माण और प्रकाशन—प्राचीन पुस्तकोंकी खोजके साथ ही आवश्यक नवीन ग्रन्थोंका निर्माण और प्रकाशन भी होना चाहिये। सबसे पहले परीक्षोपयोगी पाठ्यग्रन्थ नियमावलीके अनुसार तैयार कराये जायँ। जिनमें आयुर्वेदके

अष्टांगमेंसे प्रत्येक अङ्गपर पूर्ण और समीक्षायुक्त ग्रन्थ तैयार हों। व्यवहारआयुर्वेद, मानसिकरोगविज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, रसायनशास्त्र अथवा संयोगशास्त्र, कीटाणुशास्त्र, पदार्थविज्ञान तथा प्राकृतिक भूगोल सम्बन्धी आयुर्वेदिक विद्यार्थियों और वैद्योंके उपयोगी अंशोंसे युक्त पुस्तकोंकी तैयारी भी होनी चाहिये। इसके सिवाय अपने यहाँ जो विषय संक्षेपसे कहे गये हैं, उन्हें वैज्ञानिकपद्धति और खुलासेवार तैयार कर प्रकाशित किया जाय। त्रिदोष-विज्ञान, रसपरिज्ञान, प्राकृतिक चिकित्सा; धाराकल्प, सौरचिकित्सा प्रभृति परभी पुस्तकें लिखी जानी चाहिये। एलोपैथी, यूनानी, होमियो-पैथी आदिपर भी आयुर्वेदकी दृष्टिसे समालोचनात्मक ग्रन्थ निकलने चाहिये।

आयुर्वेदीय-पारिभाषिकशब्दकोष—एक विशेष आवश्यकता आयुर्वेदीय-पारिभा-षिक-शब्दकोषके निर्माणकी है। आजकल आयुर्वेदके जितने आलोचनात्मक और विवेचनापूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित होंगे उनमें अनिवार्यरूपसे नये विज्ञानके विषयोंका उपयोग करना होगा और ऐसी स्थितिमें नये पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग करना पड़ेगा। हर एक लेखक अपने कल्पित शब्द न लिखकर निश्चित पारिभाषिक शब्दोंका निर्माण करना अच्छा होगा। सब लोग वे ही शब्द लिखें; इसके लिये पश्चिमी चिकित्साशास्त्र और यूनानीके शब्द लेते समय हमें उसके अर्थबोधक संस्कृत शब्द बनाने होंगे। काशी नागरीप्रचारिणी सभाने जैसे अपना वैज्ञानिक कोष तैयार किया था, उसी तरह हमें एक समिति बनाकर इस कार्यका सम्पादन करना होगा। शब्द निर्माणके समय जटिलता नहीं व्यावहारिकतापर ध्यान देते हुए ऐसे शब्द लिये जायँ जिनका प्रचार सुगमतासे हो सके। ऐसा होनेसे सभी लेखक एकसे शब्दोंका प्रयोग करेंगे। जैसे पारिभाषिक शब्दोंका निर्माणकर उन्हें कोषरूपमें संग्रह करनेकी आव-श्यकता है, उसी तरह प्राचीन आयुर्वेदिक पारिभाषिक शब्दोंका संग्रह, परिभाषा और व्याख्या, कोष रूपमें तैयार करनेकी आवश्यकता है।

आयुर्वेदिकफर्माकोपिया—इस बातको ओर वर्षोंसे लोगोंका ध्यान आकर्षित हो रहा है कि ऐसी पुस्तक तैयार की जाय जिसमें ग्रन्थोक्त ऐसे प्रयोगोंका संग्रह हो जो आयुर्वेदिक संसारमें प्रायः अधिक प्रचलित हैं। भिन्न भिन्न ग्रन्थोंमें अनेक औष-धियोंके पाठोंमें अन्तर है। विद्वानोंके अनुभवसे यह निश्चय होना चाहिये कि किस औषधिका कौनसा पाठ विशेष लाभदायक है, उसीका ऐसी पुस्तकमें संग्रह हो। यूरोप अमेरिकामें फर्माकोपियाके अनुसार निश्चित पाठोंके अनुसार ही कारखानोंमें औषधियाँ बनायी जाती हैं। आयुर्वेदिक औषधियाँ भी कारखानोंसे बनने और वैद्यों-के यहाँ पहुँचने लगी हैं। ऐसी स्थितिमें आवश्यक है कि हर एक औषधि एक निश्चित पाठके अनुसार ही तैयार की जाय। कुछ ऐसे भी प्रयोग हैं, जो हैं तो शास्त्रोक्त; परन्तु किसी प्रान्तके वैद्य तो उन्हें बहुतायतसे बनाते और उनसे लाभ उठाते हैं; किन्तु अन्य प्रान्तोंके लोग उनसे अनभिज्ञ रहते हैं। ऐसी पुस्तकमें उनका

भी संग्रह होना चाहिये, साथही एक ऐसी पुस्तक हो जिसमें शास्त्रीय प्रयोग तो न हों; बल्कि भिन्न भिन्न रोगोंमें भिन्न भिन्न वैद्योंके अनुभूत प्रयोगोंका संग्रह हो। आजकल विशेषकर नये वैद्योंमें ऐसे प्रयोगोंकी अभिरुचि बढ़ी हुई है, उसकी पूर्तिका प्रयत्न भी होना ही चाहिये। हमारे मित्र पं० ठाकुरदत्त शर्मा ऐसे साहित्यके संग्रहमें अच्छा परिश्रम कर रहे हैं। सम्मेलन चाहे तो ऐसे कामको अपने हाथमें ले और चाहे ऐसेही उत्साही सज्जनोंके द्वारा पूर्ण करावे। इसीके साथही ऐसी पुस्तक भी बननी चाहिये जिसमें रस-भस्म-रसायन और मात्रा औषधियोंके प्रसिद्ध वैद्यों द्वारा स्वीकृत भिन्न भिन्न रोगोंके लिये लाभप्रद अनुपानका निदर्शन हो। इसके होनेसे भी वैद्योंकी सुविधा बहुत बढ़ जायगी।

अंगपूर्ति—आयुर्वेदके जो अङ्ग विशेष परिपुष्ट नहीं हैं उन्हें उपलब्ध साहित्य और अन्य चिकित्साविज्ञानकी सहायतासे पूर्ण बनानेका प्रयत्न होना चाहिये। रोगविज्ञान हमारा पूर्ण होनेपर भी उसमें अभी और नये प्रकाश और विस्तारकी आवश्यकता है। विशेषकर रोगोंकी सम्प्राप्तिका खुलासा और बढ़िया होना चाहिये। हमारा स्वस्थ्यवृत्त बहुत संक्षिप्त है, सार्वजनिक स्वस्थवृत (Hygiene and public Health.) तथा व्यक्तिगत स्वस्थवृत पर अलग-अलग और पूर्ण विवेचना युक्त पुस्तकें बननी चाहिये। शल्यशालाक्यतन्त्र, प्रसूतितन्त्र, स्त्रीरोगविज्ञान आदिमें जहाँ कमी है, जहाँ विषय संक्षिप्त है, वहाँ उन्हें विशदकर पूर्ण करना चाहिये। दक्षिण भारतमें "अगस्त्यसम्प्रदाय" नामकी एक अलग चिकित्सापद्धति प्रचलित है और उसके ग्रन्थ द्राविड़ी भाषामें हैं। उन्हें संस्कृतमें लानेका प्रयत्न होना चाहिये। रसशास्त्रके विकासके लिये अभी बहुत मैदान खाली है। उसके लिये पारदसंस्कार, जारणमारण, रञ्जन, सारण, वेधन आदि क्रियाओंका अनुभव पूर्ण अन्वेषण और प्रयोगकर सिद्धान्त निश्चित करने चाहिये और सप्रयोग वर्णन ग्रन्थोंमें भी संशोधित और परिवर्धित होना चाहिये। हमारे मित्र कविराज नरेन्द्रनाथ जीने इस विषयमें कुछ प्रयास आरम्भ किया है। धातुवाद अर्थात किमियाके सम्बन्धमें कहाँ तक सफलता होती है, इसका सप्रयोग वर्णन लिखा जाना चाहिये। अभीतक अनेक आचार्योंने इसके लिये उद्योग किया; किन्तु प्रत्यक्ष सफलता कहाँ तक हुई यह अप्रकट है।

टीका ग्रन्थ

आयुर्वेदिक ग्रन्थोंकी जो संस्कृत टीकाएँ हैं वे तो अपने-अपने ढंगकी अच्छी हैं; परन्तु देशी भाषाओंमें जो टीकाएँ हुई हैं वे सौभाग्यसेही कोई-कोई अच्छी हैं। विविध प्रकाशकोंने हिन्दी भाषामें जो टीकाएँ प्रकाशित की हैं उनमें अधिकांश पैसेके लोभसे अवैद्योंके द्वारा, शुद्ध वैयाकरणोंसे करायी गयी हैं अथवा छद्म वैद्यों द्वारा की

गयी हैं जिससे "विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्" हो गयी है। अष्टांगहृदयकी बम्बईमें एक हिन्दी टीका प्रकाशित हुई है। उसमें अशुद्धि-अव्यवस्था और मूर्खता कमाल दर्जेको पहुँच गयी है, शिखरपर पहुँच गयी है। अरुणदत्तकी टीकामें अष्टांग वर्णन करते हुए बालतन्त्रके प्रसंगमें कहा गया है 'बालौपयिकभेषजं धात्रीदुग्ध लक्षणं दुग्धोद्भवव्याधिप्रशमादिनिर्देशाच्च" गजत्रके हिन्दी टीकाकारने धात्री शब्दका अर्थ आँवला ग्रहण कर लिख मारा है "बालकको उपयोग करनेवाला औषध आँवलेका दूध कहा है" इसलिये मालूम पड़ता है यह दिग्गज टीकाकार बालकके बीमार होनेपर आँवलेकी ही दवा करना विधेय समझता है। सुझानेपर भी प्रकाशकोंकी प्रवृत्ति इनके संशोधनकी ओर प्रबल रूपसे नहीं होती। इसलिये सम्मेलनको इस कामको भी हाथमें लेना पड़ेगा, इस गन्दगीको दूर किये बिना आयुर्वेदके यश विस्तारमें बाधा अवश्य आवेगी। केवल हिन्दीभाषी वैद्य ऐसी टीकासे धोखा खावेंगे और अनर्थ करेंगे तथा विद्वान ऐसी टीका देख हँसेंगे और वैद्योंकी परिस्थितिपर पश्चाताप करेंगे।

अलोचना

इस समय आयुर्वेदके जो नये पुराने ग्रन्थ निकल रहे हैं, समाजमें उनकी यथेष्ट प्रतिष्ठा स्थापित करने और यथोचित उनका समादर करनेके लिये उनकी आलोचना प्रकाशित होते रहनेकी बड़ी आवश्यकता है। यह काम साधारण लोगोंके नहीं विद्वानोंके हाथमें सौंपा जाना चाहिये। इससे सुयोग्य ग्रन्थोंका समादर होगा और अयोग्य ग्रन्थोंका प्रचार रुकेगा। अनधिकारियोंका ग्रन्थकार बननेका शौक मर्यादित हो जायगा। यह काम प्रचलित वैद्यक पत्रों द्वारा भी हो सकता है; परन्तु आलोचना आदान प्रदानके तलपर नहीं खरी और बेलाग तथा उस विषयके निष्णात वैद्यों द्वारा होनी चाहिये।

विद्वत्परिषद

इस समितिके अन्तर्गत अथवा अलग एक ऐसी विद्वत्परिषद् भी रहनी चाहिये जिसमें सुयोग्य और विद्वान वैद्य ही सभासद हों। ग्रन्थोंकी समीक्षा करने, और आयुर्वेद पर होनेवाले आक्षेपोंका समय पर उत्तर देने आदिके काम इसे सौंपे जावें।

नोवलप्राइज-ग्रन्थकारोंको पारितोषिक

हमारी नियमावलीमें एक नियम है कि नये आविष्कार करनेवाले, वैद्यसमाजके लिये, उपकारी ग्रन्थोंका निर्माण करनेवाले सज्जनोंको आयुर्वेदविद्यापीठकी ओरसे प्रशंसापत्र, पदक तथा उपाधि आदिसे विभूषित कर सम्मानित किया जायगा। किन्तु इस नियमको काममें लानेकी प्रवृत्ति नहीं देखी जाती है। हमें अपने विभागके सुयोग्योंका समादर करनेके लिये तैयार रहना चाहिये और अपनी गुण ग्राहकता बराबर

दिखाते रहना चाहिये। इसमें कुछ अड़चनें अवश्य हैं; परन्तु यह नहीं कि अड़चन हल न की जा सकती हों। महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन सरस्वतीका प्रत्यक्षशारीर और सिद्धान्त निदान, वैद्यरत्न कविराज योगीन्द्रनाथ सेन विद्याभूषणका चरकोपस्कार, पं० सदानन्द शर्मा और कविराज नरेन्द्रनाथ मित्रकी रसतरंगिणी तथा आयुर्वेदमार्तण्ड पण्डित यादवजी त्रिकमजी आचार्यका रसग्रन्थ प्रकाशन ऐसा काम नहीं है जिसे केवल मामूली वाहवाही द्वारा टाला जा सके। अन्य कुछ वैद्योंके द्वारा भी ऐसे काम हुए हैं और हो रहे हैं जिनकी कुछ न कुछ कदर सम्मेलनको करनी चाहिये। वैद्य सम्मेलन जैसी एक समूहकी सर्वोच्च और मान्य संस्थाके लिये विशेष प्रसंगमें उपाधि, पारितोषिक, पदक और प्रशंसापत्र देनेकी व्यवस्था करना कोई अनुचित काम नहीं है। यूरोपके "नोबल प्राइज" की प्रतिष्ठा संसार व्यापी है संसारके किसी एक विषयके सर्वोच्च अधिकारीको यह प्रतिवर्ष मिला करता है। जिसमें सवालाखके करीब रकम दी जाती है। कई वर्षोंसे हिन्दी साहित्य सम्मेलनके द्वारा "मंगला प्रसाद पारितोषिक" दिया जाता है। इतिहास, साहित्य, विज्ञान, दर्शनमें से बारी बारीसे एक एक वर्ष उस विषयके सर्वोत्तम ग्रन्थ लेखकको बारह सौ रुपये पारितोषिक दिया जाया करता है। कलकत्तेके खड्गप्रसाद शीतलप्रसाद फर्मके मालिकने अपने भाई मङ्गला प्रसादजीके स्मरणार्थ चालीस हजार रुपये हिन्दी साहित्य सम्मेलनको दिये थे। उसीके व्याजसे यह बारह सौ रुपयोंका पारितोषिक दिया जाया करता है। इस वर्ष यह पारितोषिक "हमारे शरीरकी रचना" नामक पुस्तकके लेखक डा० त्रिलोकीनाथ वर्माको मिला है। यदि वैद्यसम्मेलनकी ओरसे भी इसी प्रकारके एक पारितोषिककी व्यवस्था हो सके तो बहुत उत्तम होगा। यदि कोई उदार वैद्य बारह हजार रुपये जमा कर दे तो पाँच छः सौ रुपयोंकी पारितोषिक और एक स्वर्णपदककी व्यवस्था हो सकती है। इस प्रकार आयुर्वेदके सर्वोत्तम ग्रन्थके निर्माण अथवा किसी उत्तम वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रकाशके लिये यह पारितोषिक और दूसरे ग्रन्थके लिये स्वर्णपदक दिया जाया करे। इस प्रकार विद्वानों और प्रशंसनीय कार्योंके आविष्कारकोंकी प्रतिष्ठा करनेसे सम्मेलनके प्रति सर्वसाधारणकी प्रतिष्ठा गौरव और मान कहीं अधिक बढ़ जावेगा।

स्वास्थ्य आदि पर व्याख्यान

सर्वसाधारणको लाभ पहुँचानेके लिये और अपना कर्तव्य पालन करनेके लिये वैद्योंको स्वास्थ्यरक्षा, कठिन बीमारियोंसे बचने और जनपदोध्वंसनीय-संक्रामक व्याधियोंकी उत्पत्ति और रोकके सम्बन्धमें व्याख्यानों और उपदेशोंका प्रबन्ध करना बहुत आवश्यक है। ऐसे व्याख्यान जहाँ सुविधा हो मैजिक लैन्टर्न के द्वारा देना और भी आकर्षक और मनोरञ्जक होगा। इससे जनता अपनी स्वास्थ्य-

रक्षाके उपाय समझ पावेगी और संक्रामक व्याधियोंसे बचनेके ढंग जान सकेगी। वैद्य जनताके हृदयपर और भी अधिक प्रेम और आदरका स्थान पावेंगे और अपनी सार्वजनिक उपयोगिता सिद्ध कर सकेंगे। ऐसे कामके लिये कुशल उपदेशक तैयार करनेके लिये हमें एक उपदेशक वर्ग खोलनेकी आवश्यकता पड़े तो उस पर भी हमें विचार करना चाहिये।

विशेषज्ञोंकी श्रेणी।

यों तो प्रत्येक वैद्यको आयुर्वेदके अष्टांगोंका ज्ञान होना ही चाहिये और सब प्रकारके रोगियोंकी चिकित्सा करनेकी योग्यता भी उसमें होनी चाहिये; तथापि यदि आयुर्वेदके एक एक अङ्गमें विशेष योग्यता प्राप्त वैद्योंकी एक श्रेणी हो तो चिकित्सा और उसके उपाय अन्वेषणमें अधिक सुविधा हो। जिस वैद्यने नेत्र चिकित्सामें विशेष अभ्यास किया हो वह उसीकी विशेष चिकित्सा करे, उस विषयके ज्ञानके विस्तारमें अधिक परिश्रम और मनोयोग दे, उसकी चिकित्सा निर्धारणमें कुछ विशेष दक्षता दिखलावे। इसी तरह बालचिकित्सा, स्त्री चिकित्सा, विष चिकित्सा तथा एक एक रोग विशेष पर विशेष अनुभवी वैद्योंकी श्रेणी तैयार हो तो उन्हें उस विभागका अधिक अनुभव प्राप्त करने और उसकी अधिक ज्ञानवृद्धि कर उन्नति करनेका विशेष अवसर प्राप्त हो। उन्हें उसी अंगके प्रयोग और उपाय निर्धारणमें अपना समय और दिमाग़ लगाना पड़े तो उस विभागका अवश्य कुछ अधिक उपकार हो सकेगा। सम्मेलनकी ओरसे ऐसी विशेष परीक्षाएँ अथवा निबन्ध लेखन द्वारा उनकी योग्यता निर्धारणका भी प्रबन्ध किया जा सकता है।

स्नातकसमिति

आयुर्वेद विद्यापीठकी परीक्षाएँ सर्वप्रिय और सर्वमान्य हो रही हैं। प्रतिवर्ष उसके द्वारा १०० से अधिक परीक्षोत्तीर्ण स्नातक निकलते हैं। अब धीरे-धीरे उनकी संख्या एक हज़ार के ऊपर पहुँच रही है। अपने ऐसे स्नातकोंका सम्बन्ध दृढ़ रखने और सम्मेलनसे उनका बराबर प्रत्यक्ष लगाव रखनेके लिये प्रयत्न होना चाहिये। अच्छा हो यदि उनकी एकसङ्गठित संस्था बन जाय, सम्मेलनके साथ ही उसका प्रतिवर्ष अधिवेशन होता रहे। ये लोग परस्पर मिलें जुलें, प्रेम बढ़ावें, ज्ञानका आदान प्रदान करें, सम्मेलनकी उन्नति और भलाईके विषयमें सोचें और सम्मेलनको सुझावें, सम्मेलन भी इन्हें अपना अङ्ग भूत बनावे, सम्मेलनकी स्थायीसमिति और आयुर्वेदविद्यापीठके निर्माणमें उनका प्रतिनिधित्व रहे सम्मेलनकी परीक्षाओंकी उपयोगिता बढ़ानेमें ये भाग लें। इससे नवयुवकों और नयी उमङ्ग तथा उत्साहियोंके संयोगसे सम्मेलनको नयी शक्ति और नया जोश मिलेगा, नये पुरानोंका मेल अच्छी शक्ति उत्पन्न करेगा।

साप्ताहिक वैद्यक पत्र

यह आनन्दकी बात है कि भारतकी प्रचलित प्रायः सभी भाषाओंमें आयुर्वेदिक मासिक और कुछ पाक्षिक आदि पत्र निकल रहे हैं। उनमेंसे कई विषयविवेचनाकी दृष्टिसे बहुत अच्छे, गम्भीर, प्रभावोत्पादक तो हैं ही, बाह्यदृष्टिसे भी आकर्षक और मनोरम हैं। आवश्यकता है कि उनमें शास्त्रीय विषयोंकी विवेचनाके साथ ही सामयिक विषयोंकी चर्चा और आन्दोलनका जोरदार भाग रहे। जिससे वैद्यों और सर्वधारण पर आन्दोलनोंका रहस्य प्रकट होता रहे और आयुर्वेदकी आवश्यकताएँ प्रतिभासित होती रहें। इतना होने पर भी एक साप्ताहिक वैद्यक पत्रका अभाव बहुत खटक रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान दैनिक और साप्ताहिक पत्रोंसे आयुर्वेदके आन्दोलनोंमें बड़ी सहायता मिलती है; किन्तु यदि इसी उद्देश्यको लेकर कोई विशेष पत्र प्रगट होता रहे तो वह कहीं अधिक और विस्तृत कार्य कर सकता है। आन्दोलनकी दृष्टिसे और सर्वसाधारणमें प्रचलित आयुर्वेदिक और स्वास्थ्यरक्षा सम्बन्धी ज्ञान-विस्तारकी दृष्टिसे उसमें लेख निकलें, आयुर्वेदिक घटनाओं पर चर्चा हो; आलोचनात्मक, सम्पादकीय लेख निकलें। जिसे साधारणतः छोटी घटना समझकर हम उपेक्षा कर जाते हैं; उसका भी बारीकीसे मर्म निकाल उससे होनेवाली हानियोंसे बचनेके मार्ग दिखाये जाँय तो बड़ा काम निकल सकता है। अवश्यही ऐसे पत्रको आरम्भमें लाभ नहीं होगा; किन्तु खर्च अधिक पड़ेगा। अतएव एक व्यक्तिका इसमें साहस प्रकट करना सहसा सहज नहीं। यदि पचीस पचीस रुपयोंके शेयरोंसे एक कम्पनी खड़ी कर यह काम उठा लिया जाय तो सहज ही सिद्ध हो सकता है।

उपसंहार

प्यारे वैद्यबन्धुओ, आपही आयुर्वेदके ट्रस्टी-संरक्षक और वंश परम्परागत अधिकारी हैं, आपही आयुर्वेदके लिये विशेष आशास्थल और चिकित्साके चार पादोंमें आपही प्रधान हैं। समाजकी स्वास्थ्यरक्षा और रोगपरिहारका भार आप पर ही है। अतएव आपकी योग्यता पर समाजकी सुखशान्ति अवलम्बित है। गुरुतर कर्तव्य भारके समान ही वैद्यकी योग्यता और—

वैद्यके सम्पादनीयगुण

—भी विशेष और उच्च होने चाहिये। आप समाजके सेवक अतएव समाजके प्रेमपात्र भी हैं। सेवासे ही मेवा मिलता है, सेवासे ही मनुष्य नरका नारायण होता है, सेवाओंके उपलक्ष्यमें ही अश्विनीकुमारोंने यज्ञ भाग पाया था, वेदोंकी भूरि भूरि प्रशंसाके भागी हुए थे, सेवासे ही वैद्य समाजमें प्रतिष्ठालाभ करते हैं। चरकाचार्यने आपको ही शीलवान-बुद्धिमान-शास्त्रपारगामी द्विजाति होने पर "प्राणाचार्य" और मनुष्योंका गुरु समान पूज्य बतलाया है।

शीलवान् मतिमान्युक्तो द्विजातिः शास्त्रपारगः।
प्राणिभिर्गुरुवत्पूज्यः प्राणाचार्य सहिस्मृतः॥

आप प्रयत्न करें कि विद्वान, गुणवान, शास्त्रपारदर्शी और क्रियाकलाप ज्ञाता वैद्य तैयार हों; क्योंकि अन्य तीन पाद हीन होने पर भी गुणवान वैद्य अकेले रोगी-को रोगके समुद्रसे पार कर सकता है।

वैद्यस्तु गुणवानेकस्तारयेदातुरम् सदा।
प्लवं प्रतितरैर्हीनं कर्णधार इवाम्भसि॥

आप ही पहले वैद्य, शस्त्रचिकित्सक, सैनिक वैद्य और राजवैद्य होते थे, अपने गुणोंकी वृद्धि कर फिर उन पदोंके अधिकारी वैद्योंको बनाइये। आरोग्यता प्रदान करना ही वैद्यका मुख्य गुण और कर्तव्य है; क्योंकि वही औषधि है जो आरोग्यता दे और वही भिषकश्रेष्ठ है जो रोगीको रोगसे मुक्त करे।

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।
स एव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्॥

आप प्रयत्न कीजिये कि वैद्य आदर्शवादी बनें, वे सोचें कि—

वैद्योंकी शिक्षाका आदर्श

—क्या है? जैसा जिसका आदर्श होता है, वैसीही उसकी कार्यविधि होती है। इसलिये वैद्योंको अपना आदर्श निश्चितकर लेना परमावश्यक है। हम ऋषि सन्तान हैं; ऋषिही हमारे आदर्श हैं। आयुर्वेद अर्थकरी विद्या है सही; किन्तु यही आयुर्वेद विद्याका प्रधान लक्ष्य नहीं है। अर्थ पिशाच बनना नहीं; बल्कि दुखियोंका दुःख दूर करना, समाजका सेवक बनना, देशभक्त और देश हितैषी बनना हमारी शिक्षाका आदर्श है। हमारी शिक्षा और हमारी चिकित्सा बहुत कम खर्चवाली होती आयी है और होती रहनी चाहिये। हमारे वैद्य दिखावटी और आडम्बर प्रिय न हों; बल्कि देशका मुख उज्ज्वल करनेवाले और अपनी सफलतासे आयुर्वेदका महत्व बढ़ानेवाले हों। वैद्य किसीकी बिना समझेबूझे नकल न करें; बल्कि मस्तिष्क परिचालन कर, विवेक बुद्धि उद्दीप्त कर, प्रत्यक्ष-प्रयोग और कार्य दर्शन द्वारा क्रियाकुशलता प्राप्त कर चपलमति और प्रखर बुद्धिवाले वैद्य तैयार हों। जिसने गुरुके पास शास्त्रज्ञान और कर्माभ्यास प्राप्त नहीं किया उसे शास्त्र वैद्य नहीं तस्कर कहते हैं।

शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चासकृत्।
यः कर्म कुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः॥

हमारा प्रयत्न होना चाहिये कि देशमें छद्मचर वैद्य और सिद्धसाधित वैद्योंकी संख्याका ह्रास हो, नकली परीक्षाओंका प्रचार अवरुद्ध हो। शीशी, लेबिल, जड़ी-बूटी खरलबट्टा, कुछ पुस्तकें और दवा जोड़ बटोरकर जो भानुमतीका कुनबा जोड़ता है उसे छद्मचर वैद्य कहते हैं और बिना वैद्यक ज्ञानके केवल डींग हाँककर

जो लोगोंमें विश्वास पैदा कर ठग विद्या फैलाते हैं उन्हें सिद्धसाधक वैद्य कहते हैं। हमारे आदर्श वैद्य आयुर्वेद पारंगत होनेके साथ ही उससे सम्बन्ध रखनेवाले ज्योतिष, पदार्थविज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र (संयोगशास्त्र) तथा अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंका भी परिचय रखनेवाला होना चाहिये—

स्वतन्त्रः कुशलोऽन्येषु शास्त्रार्थेष्ववहिष्कृतः।
वैद्योध्वजइवाभाति नृपतद्विध पूजितः॥

ऐसे ही वैद्य कीर्तिपताका फहरावेंगे और राजाप्रजामें आदर और पूजा प्राप्त करेंगे। सारांश हमें ऐसे प्रयत्न करने होंगे जिससे सुयोग्य, गुणवान, प्रयोग और ज्ञानविज्ञान पूर्ण सुखकारी जीविताभिसर वैद्य ही देशका मुख उज्ज्वल कर सकें।

प्रयोग ज्ञानविज्ञान सिद्धिसिद्धाः सुखप्रदाः।
जीविताभिसरास्ते स्युर्वैद्यत्वं तेष्व स्थितम्॥

ऐसा होनेसे और निर्दिष्ट कार्यपद्धतिको पूर्ण करनेसे ही जो पहले चिकित्सा-विज्ञानका जगद्गुरु था भविष्यमें वही—

आयुर्वेद पथप्रदर्शक

—होगा। आग कितनी ही राखमें छिपी रहे, किन्तु आवरण हटते ही वह फिर अपने गुण प्रकाश करेगी; चकमक पत्थर हजारों वर्ष पानीमें पड़ा रहे; परन्तु रगड़ खाते ही वह ज्योति प्रदान करेगा, अग्नि उत्पन्न करेगा। अब तक आयुर्वेदा-भिमानी पूर्ण रूपसे जागे नहीं हैं, उसके लिये तनमनधनसे कटिवद्ध नहीं हो गये हैं, जमानेको परखकर अपनी त्रुटियोंको दूरकर आदर्श और कर्तव्यवीर नहीं बन गये हैं, अतः यह आयुर्वेदकी उतरती कला बनी रहेगी; किन्तु यह निश्चय है कि एक दिन फिर संसारमें आयुर्वेदकी दुंदुभी बजेगी; और जो कल स्वार्थवश इसे अवैज्ञानिक और अपूर्ण कहते थे वे भी इस शरणमें आवेंगे और इसके विज्ञानको समझ चिकित्साविज्ञानकी असली वैज्ञानिकता जान पावेंगे। धीरे-धीरे हमारी बातें, हमारी औषधियाँ, हमारे चिकित्साके सिद्धान्त डाक्टरी समाजमें प्रवेश पारहे हैं प्रभाव जमा रहे हैं। क्षयमें बकरीके दूध, घी और मांसकी उपयोगिता, शोथमें नमकका महत्व, मकरध्वज-नारायणतैल-च्यवनप्राश आदि औषधियोंकी श्रेष्ठता स्वीकार करना इसका प्रमाण है। उभयज्ञान सम्पन्न चिकित्सकोंका दल तैयार होनेसे वे आयुर्वेदका महत्व और भी अधिक मनवावेंगे, उसके सिद्धान्त और भी अधिक प्रकट होंगे, उसके एक एक तत्व संसारका अज्ञान मिटावेंगे, आयुर्वेदिक सिद्धान्तोंकी विजय होगी। आयुर्वेदकी विजयपताका ऊँचे फहरावेगी और आयुर्वेद संसारका पथप्रदर्शक माना जावेगा। अतः हमें कर्तव्यमें सुस्त न होकर—

आयुर्वेदका सार्वभौम प्रचार

—करनेका उद्देश्य सामने रख स्वयं बड़े होने, बड़प्पन पानेकी सामाजिक आकांक्षा जागृत रखनी चाहिये। आयुर्वेदका देशव्यापी प्रचार कर सरकार और राजदरबारमें मान-प्रतिष्ठा बढ़ाकर विदेशोंमें भी अपनी धाक जमाने, अपने आयुर्वेदका प्रचार करनेका उद्योग करना चाहिये। होमियोपैथीको राजमान्यता नहीं है; परन्तु दुनियाके सभी भागोंमें उसका प्रचार है। पवित्र भारतवर्षमें प्रतिवर्ष लाखोंकी विदेशी दवाइयाँ आती हैं फिर वह अपने रस-भस्म-मात्रा-च्यवनप्राश-तैल आदि विदेशोंमें भेजने और उनका व्यवहार बढ़ानेका उद्योग क्यों न करें। इसके लिये यूरोपीय तथा अन्य देशोंकी भाषाओंमें ट्रैक्ट छपाने और बाटनेका प्रयत्न करना चाहिये; सच्चे और प्रभावशाली विज्ञापन वितरण करनेमें भी न चूकना चाहिये। इस कार्यके लिये शीशी, लेबिल आदिके बाह्यस्वरूपमें कुछ अधिक मनोरम दिखावा रखना पड़ेगा। किन्तु औषधियाँ शास्त्रोक्त और सच्ची हों।

सबका सारांश यह है कि हमें रात और दिन अपनी अन्तर्बाह्य उन्नतिके लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। विद्यासम्पादन करना, विद्याका विस्तार करना, अपने दोषोंको छोड़ना, पराये गुणोंका आदर करना; दुःखियोंका दुःख दूर करना; सुखियोंके सुखमें साझीदार होना और उनसे आयुर्वेदके उपकारके लिये अपना अधिकार सुरक्षित कराना परस्पर मिलकर रहना, ज्ञानका आदान प्रदान करना, रोगीके सामने कई वैद्य इकट्ठा होनेपर अपनीही धाक जमानेका प्रयत्न न कर रोगीका उपकार किस प्रकार होगा वैसी ही सलाह और युक्ति बताना, अपने व्यवसाय और व्यवहारमें सचाई, गम्भीरता, उदारता और भूत दयाको प्रधान रखना, आप सार्वजनिक प्राणोंके संरक्षक हैं, इस उत्तरदायित्वका सदा ध्यान रखना; मत्सरके वशवर्ती हो अपने किसी भाईकी निन्दाको अपनी ही निन्दा समझ त्यागना, वृद्धोंको "बालादपि सुभाषितम्" ग्रहण करना और जवानोंको वृद्धोंका गुरुवत मान रखना सदा उचित है। क्रोधके-वशवर्ती हो अपनी और अपने आयुर्वेदकी प्रतिष्ठामें कभी बाधा न आने देनेका अवसर उपस्थित नहीं करना। रोगी श्रीमान् हो या गरीब हो, जिस प्रकार उसमें आयुर्वेदकी श्रद्धा दृढ़ हो वैसा ही करना। विकार वासनाओंको कभी हृदयमें स्थान न दे अपने पास चिकित्सामें आये हुए पुरुष, स्त्री, बालक, बालिका सबको अपने माता, पिता, पुत्र, पुत्रीके समान समझ, ध्यान पूर्वक उनकी बातें सुन उचित उपाय बताना आयुर्वेदका आदेश और वैद्यका धर्म है।

विसृजत्यात्म नात्मानं न चैनं परि शंकते।
तस्मात्पुत्र वदेत्वैनंपालयेदातुरं भिषक्॥

नवयुवक उत्साही वैद्योंको ज्ञानसे कभी तृप्ति नहीं होनी चाहिये। वे सदा अपना भण्डार हिलोड़ते रहें और समय तथा सुविधाके अनुसार यूनानी, यूरोपीय आदि

पद्धतियोंके तत्व जानने के लिये भी उत्सुक और उद्योगशील रहें, कोई नवीन अनुभव और ज्ञान प्राप्त होने पर अपने भाइयोंमें प्रकट कर देना, जिससे उस ज्ञानकी विस्तृति और संस्कृतिमें सुलभता हो। वैद्योंकी विशेषतामें नाड़ीज्ञान एक मुख्य अङ्ग है। समाजमें नाड़ीज्ञानके कारण वैद्योंका विशेष समादर है। उस ज्ञानकी प्राप्ति पुस्तकोंसे नहीं अभ्याससे विशेष होती है। इसलिये "नाड़ीज्ञानं विना वैद्यो न लोके पूज्यतां व्रजेत्" पर ध्यान रख व्यक्तिगतरूपसे इसकी प्राप्ति पर ध्यान रखना चाहिये। इष्टके बिना इष्टसिद्धि नहीं होती, इसलिये वैद्योंमें अपने अभीष्टदेवका इष्ट होनेके सिवाय आदि वैद्यभगवान धन्वन्तरिका इष्ट होना आवश्यक है। इससे उनकी औषधियोंसे विलक्षणशक्ति आवेगी, उनका पीयूषपाणित्व बढ़ेगा। प्रतिवर्ष प्रत्येक नगरमें श्रीधन्वन्तरि महोत्सव होना चाहिये और सर्वसाधारणमें श्रीधन्वन्तरिपूजाका महत्व प्रतिबिम्बित करना चाहिये जो अपनी इज्जत करना जानता है, उसकी संसारमें इज्जत होती है। अपने वैद्यसम्मेलनको अपनी शक्ति, अपनी समष्टि, और अपनी प्रतिष्ठाका केन्द्र समझना और बनाना चाहिये। सम्मेलनको शक्तिमान कर संसारमें आयुर्वेदका प्रताप बढ़ानेके लिये उसे समर्थ करना चाहिये, जिससे ईसाइयोंके मिशनके समान, आर्यसमाजकी प्रतिनिधि सभाओंके समान हर प्रकारके उपायोंसे वह कार्यसिद्धिके प्रयत्न करता रहे। अपने प्रत्येक कार्यमें सत्य और ईश्वरका दृढ़ बल चाहिये। सच्ची कर्तृत्वशक्ति ईश्वरका बल है, ईश्वरका अंश और प्रसाद है। जो वैद्य रोगी और समाजके हितकार्यमें प्रवृत्त रहता है वह इस लोकमें धर्म-अर्थ-काम-सज्जनोंका आदर और कीर्ति भोगकर अन्तमें स्वर्गका अधिकारी होता है।

धर्मार्थौ कीर्ति मत्यर्थं सतां ग्रहण मुत्तमम्।
प्राप्नुयात्स्वर्गवासं च हितमारभ्य कर्मणा॥

मानवी कर्तव्यों, उच्च सिद्धान्तों और पवित्र आकांक्षाओंके पीछे एक दिव्यशक्ति रहती है, जो मनुष्योंको पतनसे बचाती है, इस बलसे अवश्य सफलता मिलती है। अपना हृदय सदा उच्च, दृढ़, गम्भीर और विशाल रख कर्तव्य क्षेत्रमें अवतीर्ण होना चाहिये। हमें नकल नहीं अपनी विशिष्टताका सदा ध्यान रखना चाहिये। केवल अपने कर्तव्यमें लगे रहनेसे ही प्रतिष्ठा होती है, प्रतिष्ठाकी आकांक्षा या प्रतिष्ठाके प्रयत्नसे मनुष्य प्रतिष्ठित नहीं होता।

"बड़े न हूजे गुणन बिन, बिरद बड़ाई पाय।
कनक धतूरेसों कहें गहनो गढ़ो न जाय"॥

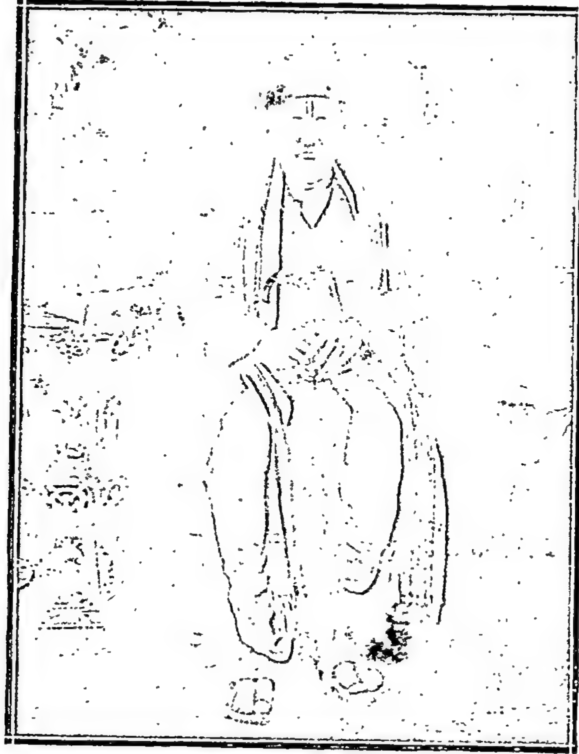
किन्तु नीरव कर्तव्यसाधनका फल बड़ा मधुर, सुखकर और स्थायी होता है। अपनी-अपनी अलग खिचड़ी पकाना बन्द होना चाहिये, अपना सम्मेलन और अपने विद्यापीठके अङ्गरूप होकर ही आयुर्वेदके कार्योंका विस्तार होना चाहिये, जिससे किसीको यह कहनेका साहस न हो कि वैद्योंका, सङ्गठन नहीं है। इस प्रकार भीतरी

और वाहरी कर्तव्यों और प्रयत्नोंसे हमारा उज्वल स्वरूप प्रकाशित कीर्ति वढ़ेगी, हमारे आयुर्वेदके महत्वका विस्तार होगा, हमारा अभ्युदय देशका कल्याण और गौरव स्पृहणीय होगा। हमारी धवल ध्वजा फह मानप्रतिष्ठा, हमारी सामाजिक स्थिति, उच्च होगी। हम होंगे, हमारा देश हमारे आयुर्वेदका विश्वव्यापी प्रभाव होगा। "तथास्तु"

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनां।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम्॥
संस्थेयं स्यात् प्रशंस्याऽभिनव विभुविभा वैद्यसम्मेलनस्य
देशोत्थानस्य हेतुः प्रभवतु नितरां कार्यमस्याश्च सत्यम्।
मन्यन्तां वैद्यवर्या अपि पर मनुजा मानमस्याः स्वचित्ते-
स्युस्तेऽजस्रं तदर्थं तनु-धन-मनसा मपणे तत्पराश्च॥
वैद्यानामुन्नतिः स्यादहरह रथ च प्रोज्ज्वलत्कान्त कीर्ति-
स्युर्दिग्व्यापि प्रभावा विदधतु च जनास्तत्सुसाहाय्यमत्र।
मुञ्चन्तु द्वेष-दम्भौ छलमपि च मिथस्ते परित्यक्त दर्पाः
सौहार्दं सानुभूतिं विदधतु सततं संलभन्तां सुकीर्तिम्॥
आयुर्वेदस्य सम्यक् स्युरथ पृथु लसत्प्रोन्नतौ दत्तचित्ताः
शिक्षा दीक्षासु ते चाददतु वहुतरम्भागमादावनर्घम्।
योग्याःस्युः स्ते हि वैद्यास्तदमल सुयशो विश्वमात्रे चकास्तु
तद्विद्या चानवद्या सकल हितरता हृद्यहृद्या तथास्तु॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।





श्रीमान् प्राणाचार्य वैद्यराज पं. कृष्णशास्त्री देवधर, नासिक।

अध्यक्ष, नि. भा. व. १८ वैद्यसंमेलन (१९२८) फतेहपुर (राजपुताना);

अध्यक्ष, वरार प्रान्तीय वैद्यसंमेलन, अकोला।

निखिलभारतीयवैद्यसम्मेलनस्य अष्टादशाधिवेशन सभापते-

प्राणाचार्य, कृष्णशास्त्रीदेवधर महोदयस्य

अभिभाषणम् ।

मूकं करोति वाचालं पंगुंलंवयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वंदे परमानंदमाधवम् ॥ १ ॥
नमस्करोमि तं साक्षात् जनतापरमेश्वरम् ।
सद्वैद्यवृंदपरिषद्रूपं त्वा समागतम् ॥ २ ॥
यस्य सामर्थ्यतो मूकोऽहं वक्तुं चापलायितः ।
अध्यक्षस्थाननामानम् गिरिमारोढुमुद्यतः ॥ ३ ॥
तं नत्वा परमेशानं प्रार्थयाम्यहमादरात् ।
त्वमेव पारं नय मां स्वसहायप्रदापनात् ॥ ४ ॥
त्वया सभापतित्वेहं युक्तो नेच्छन्निमं पदम् ।
अतस्त्वमेव नाहं स्याम् दोषभागिति मे मतम् ॥ ५ ॥
यः साहित्यविशारदो विपुलधीर्धन्वन्तरिर्वैद्यके ।
यश्चाष्टाङ्गयुतां तु कालवशतोऽनंगस्वरूपं गताम् ॥
दृष्ट्वा वाग्भटवैद्यवर्यरचितामङ्गाष्टसंग्राहिकीम् ।
प्राजीवीत्सुविशोध्यटिप्पणियुतां संमुद्रयतत्संहिताम् ॥ ६ ॥
नत्वा श्रीगुरुचरणौ स्मृत्वा तन्नाममङ्गलं पुण्यम् ।
तर्टेकुलावतंसं गणेशमपरं धिया गणेशमिव ॥ ७ ॥
तेषां भागवते ग्रंथे भक्तिं भगवतीश्वरे ।
धृत्वा हृदि प्रारभेऽहं कार्यं संसन्नियोजितम् ॥ ८ ॥

अयि सकलभारतीविद्याभूषणालंकाराः पंडितप्रकाण्डा आयुर्वेदनभोगभस्तयो महाभागाः प्रथमं तावत् सप्रश्रयमपि तथ्यमेव वदामि यदहमिमं सभापतिस्थानं समलंकर्तुं याथातथ्येनासमर्थः । यतः मत्पूर्वं यैर्यैरसामान्यप्रज्ञाधारिभिः पंडितप्रवरैर-लंकृतमासीदिदं स्थानं तेभ्यः शुभनागकेभ्योऽहं अल्पमतिश्चानभ्यस्त एवास्मिन् सभासंमेलनविषये । प्रथममेव मया स्वागतसमित्यै पत्रप्रेषणेननागांगीकृतमासीदिदं स्थानम् । परं च महाराष्ट्रीयाणां अस्मत्परममान्यानां सर्वेषां वैद्यवराणां भवतां च प्रेम-

गौरवभयान्वितान्तात् हठाग्रहाच्च निरुद्धोऽहमनिच्छन्नपि भवदाज्ञां प्रमाणीकृत्यात्रागतोस्मि। अतः कृपांजलिभिर्भवद्भिस्सुमहत्साहाय्यं दत्वा भवदारब्धमेवेदं संमेलनकार्यं अनन्तरायं सुप्राप्तमहत्फलं कर्तुं यथाहं समर्थः स्याम् तथा विधेयम्। तथाचाद्यावधि एकवारमप्या-निर्वाचिताध्यक्षाः ये केचनास्मद्भारते सिंधपंजाबादयो भागा विद्यंते तेषामेव प्रथमोयं मानभाग इत्यहं मन्ये। प्राप्तैकद्विवाराध्यक्षसंमानत्वात् सर्वेपि महाराष्ट्रीयाऽस्मत्सुहृदश्च मन्यन्ते। केवलं तैः सांप्रतं प्राप्तानेकवाराध्यक्षसम्मानेभ्यो वंगादिभागेभ्यः प्राप्ताल्प-मानतया पुनःसम्मानाप्तये आदावेव महान्समुद्यमः कृत इति हेतोः हस्तान्निसृष्टं शरमिवेति मन्वानास्ते सहमता एव सिंध्वादिभागवासिभ्य इति निःसंदेहमहं ब्रवीमि। भवतु यद्भाव्यं तद्भवतीति मत्वा प्रकृतमनुसरामः।

अयि महाशयाः! वयं सर्वेप्यायुर्वेदं पुनरपि प्राप्तपरमोत्कर्षं दिदृक्षवः तदर्थं प्रारब्धा-नेकशुभप्रयत्नाः समागताः सोयमायुर्वेदो ऋग्वेदस्यादथर्ववेदस्यवोपवेदो नित्यत्वाच्चतुरान-नेन स्मारितः दक्षाश्विनेन्द्रात्रिपुत्रादिपरंपरया सर्वेषां सुरासुरमनुजानामनारोग्यनाशाया-रोग्यदानाय दीर्घजीवित्वाय च प्रभविष्णुर्भूत्वा महतीं कल्याणपरंपरां साधयित्वा स्ववेदत्वं यथार्थी चकार। तस्मिंश्च शुभमये काले प्रथितयशसोस्यायुर्वेदस्याष्टावप्यंगानि बलवंति दृढीयांसि स्वकार्यकरणसमर्थान्यासन्। तेभ्यश्च संपूर्णावयवेभ्यः सुपुष्टः सुतेजा आयुर्वेदद्रुमा सर्वान्जनपदजानपदान् गभीरानेकामयगर्तनिमग्नान् समुद्धारयामास। किमहो तस्य तदानींतनो महिमा पराक्रमश्च! यस्य साहाय्यतोऽश्विनौ आयुर्वेदसार-कस्य प्रजापतेच्छिन्नं शिरः पुनरपि संसाधयामासतुः। ताभ्यामेव च वज्रिणो भुजस्तंभः, पूष्णः शीर्णा दन्ताः, भगस्य च नष्टे नेत्रे, शशांकस्य राजयक्ष्मा, चिकित्सयासर्वेपि दिवौकसः सुखीकृताः। अतस्तौ स्वप्रज्ञाबलतो यज्ञभागिनौ संमानत्वेनजातौ। महाभागाः किमेन्? किंवदंती वाऽसन्प्रलपनं वाऽधुनिकानामुपहासास्पदा पौराणिकी वार्तेति भवतां मतम्! वाऽस्त्यत्र संपूर्णं सत्यत्वमिति! शिरःसंधानं शीर्णदंतभग्ननेत्रराजयक्ष्मादीनां चिकित्साकरणं चातुरसुखप्रदानमिति तात्कालिकी परमोच्चा यशःसिद्धिरायुर्वेदस्य, तत्तदंगेषु परमपदप्राप्तिरिति मे मतम्। या सिद्धिर्याच पदप्राप्तिरद्यापि दृष्टिपथमपि नारोहति रुग्विनाशनसिद्धकौशलगर्वभारभरितस्य पाश्चात्यायुस्संरक्षकशास्त्रस्य। जीवतश्छिन्नशिरस्कस्य पुनः शिरःसंधानमिति विजयो वा सिद्धहस्तता वा शस्त्रकर्मणः किमतः परं उर्वरितं शस्त्रकर्मणः कर्म यदलौकिकीम् श्रेष्ठतामापादयेन्। सोयं विजयः-शस्त्रकर्मणः। अयमपरोनामविजयः आयुर्वेदकायचिकित्सांगस्य यच्छशांकस्य राज-यक्ष्मचिकित्सितम्। रोगराड् हि राजयक्ष्मा। गहनं दाव इव शरीरम् दहन् क्षीणं करोति जीवितम्।

सर्वशरीरसंचालकानां सर्वेन्द्रियकर्मकरणभूतानां चैतन्यपरमाणूनां चैतन्याभाव-करणे बद्धपरिकरोऽयं राजयक्ष्मेति सिद्धम्। विनष्टचेतनांशस्य पुनश्चेतनावाप्तिसाधनं चिकित्सा राजयक्ष्मणः। सा चेद्धस्तवशगा अश्विनोस्तदा परमविजयोऽयं कायचिकि-

त्सांगस्यायुर्वेदस्य । नाद्याप्येतादृक् सामर्थ्यं प्राप्तं पाश्चात्याश्विभ्यां, पाश्चात्यशास्त्रेण च । तथाच 'शतायुर्वै पुरुषः' इति वचनेन मानवस्य परिमितायुः केनापि प्रयत्नेन न वृद्धिमाप्नुयात्सा हि परागतिरिति विचारपरंपरया दैवाधीनं नरायुरिति मन्वानानां हृत-बुद्धिबलानां सहजन्मनैव प्राप्तस्यानियतकालस्यायुषो मर्यादामेकक्षणमात्रेणाऽपि वर्धने वयमनीशा इति निश्चित्य मरणकालमर्यादातटे समागत्य कृतप्रायोपवेशनानां जनाना-मयमायुर्वेदऊर्ध्वबाहुर्भूत्वोद्घोषयति यदायुषः कालवर्धने कृतोद्यमाः प्राप्तसुमहद्यशसः पुरुषकारविजयशालिनो बभूवुरमिता महर्षयो मदीयरसायनांगपरिचरणान्न भेतव्यं न वा प्रायोपवेशनं कार्यमिति ।

दीर्घमायुःस्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः ।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलं परम् ॥ १ ॥
वाक्सिद्धिं प्रणतिं कांतिं लभते ना रसायनात् ।
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ॥ २ ॥

(चरकचिकित्सास्थानाध्यायः प्रथमः) ।

अत्र केचिद्विवादयेयुः नेयं भवतां विचारसरणिरस्मद्बुद्धेर्ग्रहणम् करोति । यतः कुत्र वा भवतां ब्रह्मा कौतावश्विनौ कदा वा शिरश्छिन्नं कदा वा संहितं इति ऐतिह्य-प्रमाणपथेन न विश्वासार्हमेतत् । च परं भवद्भिरस्याः कथायाः दृश्यमानोत्तानार्थः कथितः, सा कथैव कदाचित् गूढार्थप्रतिपादिनी रूपकात्मिकापि स्यात् , यथा—भगवतः सहस्र-रश्मेरुपायाः रूपकं तद्वत् । भवेदेतत् । तथापि सभ्यैरिदं विचारमार्गे नेयम् । यदर्थ-कल्पनां विना तदर्थप्रतिपादकशब्दसंभवो न संभवति, अपुत्रः पुत्रनाम न निश्चिनोति 'अस्ति भाति प्रियं रूपं नामचेति च पंचमम्' इत्यत्रापिरूप नामयोर्यथाक्रममेव समुद्देशः कृतः । रूपाभावे नामाभावः । रूपसत्त्वे नामसत्त्वम् । अर्थाभावे तदवग्राहकशब्दाऽभावः । अर्थसत्त्वे तद्द्योतकशक्तिमतो शब्दस्य सद्भावः । यद्यपि कविकुलगुरुणा 'वागर्थाविव-संपृक्तौ' इत्यनेन शब्दार्थयोः अभिन्नांशत्वं प्रतिपादितं, तथापि अर्थेभ्यः पूर्वं शब्दानां संभव उत शब्देभ्यः पूर्वं अर्थप्रादुर्भावइति तत्त्वविचारवेलायामेतदेव हृदयाभिमतं भवति । यथा जन्मनःसाकं मृत्युसद्भावेऽपि जन्मनः पूर्वं सद्भावः पश्चान्मृत्योः ।

यदि जन्मनः प्रादुर्भावाभावस्तदा विनाशस्याप्यसंभवः । 'यत्सत्त्वे यत्सत्त्वं यदभावे यदभावः' इत्यनेन न्यायेन शब्दसत्त्वे अर्थसत्त्वं शब्दाभावे अर्थाभाव इति । अनया विचार-सरण्या यदि वैद्यकशास्त्रग्रंथेषु शिरस्संधानत्व-दीर्घायुष्त्व-शीर्णदन्तभग्ननेत्र-चिकित्साकरणत्व-राजयक्ष्म-यक्ष्मप्रापणत्वादयः शब्दा अनुत्पन्नार्थज्ञापका एवेति कथं भाव्यम् । तथैव पुष्पकादिविमानकल्पना समुद्रलंघनं युद्धभूमौ एकसमयेऽमितजनमार-कशक्तीनामनेकाश्चर्यंजनयितॄणामस्त्राणां सामर्थ्यं, विश्वामित्रस्य प्रति-सृष्टिकर्तृत्वसमारंभ इत्यादयोऽर्थप्रतिह्लादकाः शब्दा अपि मूर्खप्रलपनं केवलमिति वक्तुं कथं पार्येत ? पुरा-तनो हि भारतदेशः, पुरातनी हि महाप्रभावाणामार्याणां संस्कृतिः । परमवैभवपदा-

रोहावरोहाः सहस्रशः संजाता आर्याणाम्। ज्ञानविज्ञानकलाकुशलत्वप्रतिपादका उपयुक्तार्थसंज्ञापकाश्चेमे शब्दाः सांप्रतं गताभरणकर्णविवरमिवोपहासास्पदीभूताः संजाताः। प्राचीनभाषाशास्त्रविदोपि भूतकालीनमानवलोकस्य समाजधर्मवाणिज्यविद्याशास्त्रकलाराजवैभवादीनामनुमापकं प्राचीन-भाषाशब्दसमूहं मन्यंते प्रमाणीकुर्वंति। तथाच चरकादिग्रंथ-पाठितास्त्विमे भूतपूर्वार्याणां वैद्यकशास्त्रे परमप्राविण्यप्रमापकाः शब्दा एवेति मे मतम्। अस्तु। सर्वथापरिपूर्णस्यामितसंहिताप्रकरणसंग्रहग्रंथभारभरितस्याप्यायुर्वेदस्य इदानीतनां दुःस्थितिं न कोऽपि द्रष्टुं समर्थो भवेत्। अस्यायुर्वेदस्य वैभवधवलगिरेरुत्तुंगशृंगतो विनाशगर्तोन्मुखीभवने राजसत्ताराहित्यं सहस्राब्दपर्यंतं परचक्र दुर्लालित्यमित्याद्यनेकान्यपि संति कारणानि। तथापि अस्माकमपि विवेकभ्रष्टत्वं सर्वेभ्यः प्रधानंकारणमिति न विस्मरणीयम्। राजसत्ताभावोहि प्रधानतमं कारणं वर्तत एव। यथा धर्मविद्याकलावाणिज्यशौर्यादयो मानोत्कर्षसंसूचका गुणाः राजसत्तानिगूढा एवेति सत्यम्। पाश्चात्यानां स्वराज्यसत्तात्वे सर्वगुणाभिवृद्धिः समजनि। अस्माकं तु सर्वथा हानिर्गुणानामभावान् स्वराज्यसत्ताया इति भानुप्रकाश इव स्पष्टम्। वैद्यशास्त्रस्योद्धारे वा वैद्यानां स्वकर्मकरणेऽपि राजसत्तायाः साहाय्यमावश्यकमेव यतः—

अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत्।
तस्मादापृच्छ्य कर्तव्यं ईश्वरं साधुकारिणा॥ १॥

(सुश्रुतचिकित्सास्थानाध्यायः सप्तमः)

तस्याः स्वराज्यसत्ताया अभावान् महती हानिर्जाताऽऽयुर्वेदस्येति सत्यम्। यवनसत्तायामेतादृशी हानिर्न जाता यथास्यामांग्लसत्तायाम्। यवनसत्ता हि वाणिज्यवृत्तिरहिता नवीनशास्त्रोन्मेषस्याप्रसवित्री पराजितजनशरीर एव स्वसामर्थ्यसंचालिन्यासीत्। इयंहि आंग्लराजसत्ता प्रखरमेधावती सत्तावाणिज्योद्देशद्वयधारिणी परास्तजनशरीरमनोबुद्धीन्द्रियेष्वपि स्वप्रभावसंस्थापिकेति न विस्मर्तव्यम्। तया च—"बुद्ध्याहतास्तु नितरां सुहता भवंति" इत्ययेन न्यायेनास्मदीयानां सर्वेषामेव बुद्धेर्विघातः कृतः। भारतीया एव वयं भारतीयानामस्माकं सर्वमपि अनुपपन्नमयोग्यमज्ञानमयम् ऱ्हासहेतु (विद्या-कलानीति-धर्म,भाषावेषादि वेदशास्त्रभारतस्मृतिग्रंथसमूहादि) न बुद्धिमत्वप्रकाशकमिति मन्वाना आत्मशत्रुत्वाचरितं चरन्तः स्वविनाशं स्वयमेव कुर्वन्तस्तमेवोत्कर्षमार्गमितिरुच्चैरुद्घोषयंत आस्म। कश्चन वैदिको वा तर्कादिशास्त्रसंपन्नो वाऽऽयुर्वेदवैद्यो वा प्राचीनासामंजस्यस्य स्थानमिति परिहासविषयएव स्वीयैः कृताः किमुत तमेवोद्देशं हृदि कुर्वद्भिस्त्वेतरैः। अयमेवहि विवेकभ्रंशः यत्स्वत्वस्य स्वकीयत्वस्यच द्वेषपूर्वकोपहासः मरणमर्यादांगतस्यापि तस्यसंजीवने औदासीन्यदर्शनं। तथाच पाश्चात्यैः स्वविद्याकलाशास्त्रप्रसारेण प्रत्यहं नूतनूतनतत्त्वसिद्धांतोत्पादेन परमाश्चर्योत्पादकातर्क्ययन्त्रशस्त्रादीतामुत्पादनेन निगूढानेकविधशक्तीनां पंचमहाभूतानां, भगवतः सहस्ररश्मेः, तरलजीवितमिव चपलस्वभावायाश्चपलायाश्च मानव्यवहारोपयोगे सुखापादने च नम्रपरिचारकमिव सेवार्थं

बद्धांजलितया सदा संमुखीकरणेन, अस्मन्मनीषाऽप्राप्तानामपि अग्निरथ-विद्युद्यंत्रा-विद्युच्छ्रवणयंत्र–शतमारशतघ्नी–नभस्तलगमनसाधन–विमानाद्यनेकविध–तर्कप्रतिष्ठापक-शास्त्रसिद्धसाधन-संजननेन सर्वं मानवीयं जगत् वयमपि कुंठितबुद्धयो भूत्वा स्वीयं सर्वमपि न तर्कप्रतिष्ठापकम् नवैतादृक् प्रत्यक्षतरसुखावहमिति निश्चित्य त्यक्तविश्वासास्संजाताः, इदमप्यपरं कारणमवनतेः वैद्यकशास्त्रेप्येतादृश्येवावस्था समजनि ! प्रथमतस्तैश्शरीरविचिकित्सां कृत्वा तद्घटकपदार्थानां तत्पदार्थस्थितशक्तीनां तच्छक्त्युत्पन्नकार्याणां कार्यकारणपरंपरया वैज्ञानिकशास्त्रसिद्धांतसरण्याच प्रत्यक्षतः संमुखीकरणेन शल्ये शालाक्ये शस्त्रकर्मणि यंत्रशस्त्राद्यनेक साधनानां अभूतपूर्वाणां निर्मित्या चिकित्सा-साधनीभूतखनिजवानस्पत्यादिद्रव्याणां रासायनिकशक्त्युत्कर्षावगत्या तत्संयोगविभाजनोत्पन्न-भिन्न-भिन्न-गुणावगुणानां परिज्ञानेन च व्याधिपरित्राणकानामौषधानामपि सहजसेव्यत्वादि-सूचीभरणत्वादिकल्पनावैविध्यसंपादनेन जनमनोहरस्वरूपापादनेन चास्मदीये परमपुरातने सहस्राब्दपर्यंतं कृतमानवजीवरक्षणे आयुर्वेदशास्त्रे चाश्रद्धानाः सर्वे वयं संभूताः ।

अथ सोऽयं कालः परमदारुणः समनुप्राप्तः कथं वा वयं स्वधर्मकलाभाषाशास्त्रनयविद्यानां स्वसंस्कृत्याश्च रक्षणे समर्था भवेमेति चिंताकुलान्तःकरणवृत्तिभवनस्य । परमावनतेः परमाकाष्ठा भाव्युत्कर्षप्रसवित्रीति सिद्धांतमुररीकृत्य मोहनिद्रामनुत्साहं क्लैब्यं परोपजीवित्वं परमगुणपरमाणुसहस्रीकरणं च त्यक्त्वा उत्साहवीर्यधारणाबलशालित्वाद्यंगीकरणेन नितान्तप्रेमरज्ज्वा संबद्धा भूत्वा आयुर्वेदोन्नत्यै प्रयत्नशतकरणस्यायमेव कालः । मोदते मे हृदयम् , सर्वभारतदेशप्रभवै र्वैद्यवरैः द्वाविंशतितमाब्दात्पूर्वमेव आरब्धमिदम् संभूयोत्थानमूलकं भारतीयवैद्यसंमेलनाधिवेशनकार्यमिति । अनेन महता कार्येण सर्वेऽपि भारतीयवैद्यश्रेष्ठाः प्रत्यब्दं संमील्य परस्परस्नेहभावं वर्धयंतः आयुर्वेदोत्कर्ष-साधनानि चिंतयामासुः । सर्वेषामासेतुहिमाचलपर्यंतानां वैद्यवराणामेकमेव दुःखमेकमेव च सुखोपाय इति सहमतत्वमुत्पन्नम् । निखिले भारते देशे संमेलनांगभूतनिखिल-भारतीय-विद्यापीठ-प्रणीत-शिक्षाप्रणाल्यनुसारेण परीक्षाग्रहणेन चोपाधिदानेनच समकालमेवाध्येतॄणां तुल्यकक्षता संपादिता । आयुर्वेद-पठन-पाठन-प्रचारवृद्धिश्च-संपन्ना । प्रत्यब्दं संमेलन-प्रसंगतः तमेवोद्देशमुद्दिश्य संभाषण-लेखन-साधनेन संपादितया जन-जागृत्या स्थले स्थले प्रांते प्रांते धनिनां दानवृत्त्या कार्यकर्तॄणामुत्साह-संपदा उद्घाटिता आयुर्वेदपाठशालाः समुत्थापिताश्चौषधालया आतुरालयाश्च । वैद्यवराणामपि परस्परमायुर्वेद-महोदधि-मंथने उत्साहो द्विगुणितः । अनेके पंडितमति-संतोषदायिनः शास्त्रविवादाः समुत्पन्नाः । कालवशादंधे तमसि निमग्नानामप्राप्तभानु-प्रकाशानामपि स्वयंप्रकाशानां प्राचीनग्रंथशोधन-मुद्रण-मुद्रापणाद्यादरणीयः प्रयत्नः कैश्चिदारब्धः । कैश्चिच्च विमलविपुलबुद्धिभिर्नवीन-ग्रंथकरणेन भरितमायुर्वेदभांडागारम् । स्थाने स्थाने च स्थानीयस्वराज्यसंस्थाः जनतारोग्यसंपादनं स्वीयं कार्यमायुर्वेदौषधालयैरलंकर्तुं प्रवृत्ता ।

प्रांतीय राजमण्डलान्यपि कुत्रचित् द्रव्यसाहाय्यदानेन कुत्रचिदायुर्वेदसंशोधनसमिति-निर्माणेन कुत्रचिदुत्साहवर्धनार्थं निकषपरीक्षणार्थं वा महाविद्यालयस्थापनेन आयुर्वेदे स्वीयां वक्रदृष्टिमुत्सृज्य कोणदृष्ट्यानुमतिं दातुं प्रवृत्तानि। अयि महाशयाः! एतावता प्राप्तेन सुयशसा संमेलनकार्यं संपन्नमिति न मन्तव्यम्। केवलमयं प्रारंभः। कार्यभारः भरस्तु वर्तत एवाग्रे।

अतः सावधानया बुध्या समाहितेन मनसा सुनिपुणमालोच्य तथा वर्तितव्यं यथा शीघ्रमेव करमाह्निकं स्यात्। तदर्थमपि संक्षेपेण क्रियते किंचिद्विवरणम्—प्रथमं तावदिदं ब्रूमः, ये इमे आयुर्वेदीयप्राचीनग्रंथप्रकाशन-शुद्धौषधिसंग्रहण—दूषितौषधिनिष्कासन—पठनपाठनप्रचारपाठशालौषधिशालातुरालयोद्घाटन–संरक्षणाद्यनेकविधोपायाः पूर्वाध्यक्षवरैरन्यैश्च महाभागैरुक्तास्ते सहमता एवस्माकम्। ते तु सर्वथैवादरणीयाः व्यवहारणीयाश्च समयाभावात् केवलं तेषां पुनरुक्तिनिवारणाय निर्देशं कृत्वा अग्रे सरामि। वृद्धावस्थां यातस्य चातुश्चत्वारिंशदब्दपर्यन्तम् आयुर्वेदचिकित्सापरस्य तत्पठनपाठनव्यसनव्यवसिनो मे हृदि चिकित्सारंभकालादेतावत्कालं मर्यादीकृत्यैकं सुमहच्छल्यं वर्तते। चरकसुश्रुतवाग्भटाद्यनेकग्रंथपरायणपराणां पीयूषपाणिनां चिकित्साकौशलभृतां सिद्धहस्तानां दुर्निवाररोगपंकमग्नानेकरुग्णगणोद्धरणसंपादितकीर्तिनां वैद्यवराणां राजशासनसंस्थासु एकयापि कपर्दिकया न मूल्यं न वा सम्मानप्राप्तिर्न वा प्रमाणत्वेनोपस्कारः, उतच पदे पदे मानहानिर्मृत्युतुल्यया पीडया साकं भवतीति। त्रिचतुरब्दकालावधिप्रदत्तांग्लवैद्यकविद्यस्य चतुर्विंशतिवयसो नाद्यापि चिकित्सया चिकित्सितैकातुरस्याऽप्राप्तानुभवस्य कस्यचिद्यूनो डॉक्टरपदवाच्यस्य या राजशासनसंस्थासु मानदानपद्धतिश्चिकित्साधिकारप्रामाण्यम्, नैव तस्य शून्यांशेनापि प्रवृद्धप्रथितानुभूतस्य लब्धयशसो भिषज इति दृष्ट्वा स्मरणपदवीमुपयाति प्रवृद्धस्य भारतीयस्य स्वकार्यकरणकुशलस्याप्युन्नतिमार्गे पदे पदेऽपमानितस्य कस्यचिद्वृद्धभृत्यस्य सत्ताकुलजत्वेनैव प्राप्तमुख्याधिकारपदेन नूत्नेनोदयोन्मुखश्मश्रुणा केनापि कोमलेनापरिपक्वेन गौरकायेन सादृश्यम्। तदिदं ममेव सर्ववैद्यप्रवरहृद्विदारकं शल्योद्धरणं यथाशीघ्रं भवेत्तथा प्रयतितव्यम्। सत्यत्वेन राजसत्ताधारिणामेवैतदाद्यं कर्तव्यम्, यत्प्रजाजनानां सर्वांगीणोत्कर्षोपादनम्। प्रजाजनेभ्य एव करग्रहणादिना द्रव्योत्पादनं कृत्वा तेषामुद्धारे यदि ते कृतकत्वेन वर्तेरंस्तदा दोषावहमेवैतत्। प्रजाजनोद्धारः स एव, येन कयापि वृत्त्या विद्यया वा केनापि गुणेनोद्योगेन वा प्रजानाम् प्रवर्तिते जगच्चक्रे अन्यूनताप्राप्तिः। अस्मदायुर्वेदोपस्कारं कृत्वा तत्पठनपाठनप्राचुर्यविधाने तत्सामर्थ्यप्रकटीकरणे वर्धने च तस्य अखिलजगत्प्रचारणे राजसत्ताशासका एव प्रथमाधिकारिणः। तेषामेवेदमग्रिमं निसर्गप्राप्तं कर्म। त एव यदि तन्नाशकालं वाञ्छन्तः तिष्ठेयुः तर्हि हन्त भक्षितं क्षेत्ररक्षकेणेति। अस्माभिस्सर्वथा ते आयुर्वेदाभिवृध्यै तत्परिशुध्यै च साहाय्यदानाय याचिताश्चेदशास्त्रीयो भवदायुर्वेद इत्युद्घोषयंति। भवदारोपिताशास्त्रीयत्वहानाय

तत्सिद्धशास्त्रत्वप्रकटनाय वा भवदभिमतशास्त्रतासंपादनाय वाऽपेक्ष्यते द्रव्यसत्ता-सहायमिति कृतप्रार्थनास्ते तमेवाशास्त्रत्वारोपमुपढौकयंति इति विस्मयास्पदं चापमान-रोपावहमपि। तानाह्वानं कृत्वा स्पष्टं निवेदयामि अलं परिहासेनोपेक्षया वंचनया च। कोनाम दुरवस्थां गतः साहाय्यंविना समुन्नतिमुपैति। बालोऽपि साहाय्येनैव लब्धविद्यो भूत्वा स्वकुल-स्वदेश-स्वधर्म-स्वराष्ट्रोन्नत्यै प्रभवति। भवतामपि जगज्जेतृसामर्थ्यवत्यः सर्वाहि दृश्यमाना विद्याः सर्वाणि शास्त्राणि च तेषामुत्पत्तिकालएव राजसाहाय्यं विनैव संपूर्णानीति प्रतिज्ञां कृत्वा कथयंतु भवन्तः। अहं प्रतिज्ञां कृत्वा ब्रवीमि यद्यस्मदपेक्षित-पद्धत्यनुसारेण द्रव्यसत्तासाहाय्यं भवंतो वितरेयुः तदा दशाब्दादर्वागेव दर्शयिष्यत्य-स्मदायुर्वेदः स्वीयं जगल्लोचनोन्मीलयितृप्रज्ञानतेजः, स्थापयिष्यतिच सच्छास्त्रता-प्रतिष्ठामात्मनः।

आर्यभारतवासिजनेभ्यः दत्तराजसत्ताविभागेषु आगत इदानीमारोग्यरक्षणविभागः। सांप्रतं तत्सत्तासंचालकैःस्वीयैर्मंत्रिभिः आयुर्वेदोन्नत्यै कोऽप्येतावान् द्रव्यभागो वितर-णीयो येन लब्धावकाशा वयम् आयुर्वेदोत्कर्षं साधयामः। एतादृशी वा घटना कार्या या राजसाहाय्यं लब्ध्वा राजशासननियमानुसारेण प्रवर्तितायुर्वेदमहाविद्यालयात् समवाप्तविद्या वैद्यावतंसा राजसंमानितायुर्वेदपदवीधारका बहिरागच्छेयुः। अत्यंतामिमां वांछां पूरयेयुः यत्र यत्रायुर्वेदोद्धरणे विद्वांसः कृतद्रव्यत्यागाः प्रयत्नवंतः आर्याग्लोभय-शास्त्रविदः केवलम् सच्छास्त्रजिज्ञासया प्रेम्णा संभूय आरब्धसत्कार्याः उभयशास्त्राध्या-पनेन तुलनयाच शास्त्रबलाबलं परीक्ष्य अध्यापनं कुर्वन्तो द्रव्यसहायं विनैवापूर्ण-समुद्यमाः मनस्येव विलीयमान-मनोरथाः केचिदातुरालयं वा विद्यालयं वा प्रस्थाप्य निरलसतया आयुर्वेदसेवां कुर्वन्ति, तेषां चातकानाम् जीवनमिव द्रव्यदानवांछापूरणा-भयदानैरुत्साहवर्धनं कार्यम्। एतत् अकरणान्मंदकरणं श्रेयः, इति न्यायेन वरम्। वर्तते एतादृश्यः तिस्रः संस्था महाराष्ट्रे। एका पुण्यपत्तनस्था आर्याग्लवैद्य-विद्याभूषितैः संचालिता तिलकमहाविद्यालयांगभूता विद्यालयातुरालयौषधालयशव-विच्छेदसाधनोपबृंहिता संस्था। द्वितीया वैद्यवरगुणेशास्त्री, डॉ. सप्तऋषि-प्रमुखैस्संचालिता तथैव साधनोपेताऽहमदनगरे वर्तते। तृतीया सातारानगरे गजेन्द्रगडकर प्रभृतिभिः प्रवर्तिता। मोहमयी प्रांतीय राजसत्तांशधारिभिः नामदार देसाई मंत्रिभिः सहायं कृत्वा किमपि स्वकर्तव्यं कर्तव्यम्। तथाच राजशासनमंडले जनैर्निर्वाचितानां नियुक्तानां सदस्यानामप्येतत्कार्यम् यदायुर्वेदसहायदाने ऐकमत्येन निर्बंधं कृत्वा राजशासकेभ्यः सहायदापनम्। सर्वेषामपि भारतीयानां जनानामिदमावश्यकं कृत्यम्, यत्स्वमतदानेन निर्वाचितसदस्यानामायुर्वेदहितार्थं सावधानतया राजशासनमंडले वर्तनमेव पुनस्तन्मंडलप्रवेशसाधनमिति सविचारप्रकटनम्। सर्वथा सर्वैरपि सएव यत्नः कार्यः येन राजसत्तसहायं आयुर्वेदः प्राप्नुयात्। द्रव्यसाहाय्यं ग्रंथसाहाय्यं बुद्धिसाहाय्यं सर्वमप्यपेक्षतेऽस्माभिस्तथापि 'सर्वं पदं हस्तिपदे निमग्नमिति' लौकिकोक्त्या

राजसत्ता सहाय्ये अमीषां सर्वेषां समावेशात् तत्प्रथममेव यथा लभेत तथा प्रयत्नाति-शयस्समादरणीयः ।

तथा वैद्यवरैरपि अधोलिखितविचारपद्धत्याः समादरः कार्यः । अतःपरं अगृहीत-वैद्यशास्त्रशिक्षणः एकोऽपि वैद्यो मा भवतु ।

तथाच अस्मदीयायुर्वेदः सत्सिद्धांतसिद्धांतितोऽपि विपक्षैरशास्त्रीयत्वेनारोपितः सर्वे-ऽपि पाश्चात्यशिक्षणशिक्षिता अस्मदीया बंधवोऽपि आयुर्वेदं अशास्त्रीयतत्त्वोत्पन्नं प्रत्यक्ष-सिद्धप्रयोगाप्रयोगितम् विश्वासानर्हमिति मन्यते । स्वीकुर्वंति च सच्छास्त्रतया परकीया-न्यौषधशतानि । समाद्रियंते पाश्चात्यवैद्यकं मानयंतिच पाश्चात्यवैद्यविभूषितान् । इयं हि आधुनिकशास्त्रसिद्धे तत्त्वे विश्वासप्रवर्तिनी शिक्षणपद्धतिः सर्वभारतव्यापिकाचिरादेव भविष्यति । अपेक्षतेऽस्माभिरपि जनानां शिक्षणसंपन्नत्वं प्रत्यक्षदृष्टे वस्तुनि विश्वासाग्रहो बुद्धेरपि । नायं कालः केवलायाः श्रद्धायाः परं तर्कतर्कितमतिविलासस्य । पूर्वं हृतबुद्धीनां प्रत्यक्षावलोकनमेव विश्वासजनकमिति निश्चिन्वतां जनानां आयुर्वेदशास्त्रे विश्वासोद्भा-वनार्थमस्माभिरपि प्रत्यक्षसिद्ध नूत्नतत्त्वोद्भावितपद्धतयाः स्वीकारं कृत्वा तन्निकषोद्घर्षितं तत्पावकसंजातविशुद्धं आर्यवैद्यशास्त्रसुवर्णं अलंकारिष्यमाणं यथा झटिति भवेत्तथा विधेयम् भट्टपादकुमारिलाचार्योदाहरणं पुरस्कृत्य स्वसिद्धांतानाम् विपक्षैरपि स्वीकारणाय स्थापनायच विपक्षविश्वासोत्पादनार्थं तत्पुरस्कृततत्त्वावलंबनं न सत्यत्वेन परमतांगीकारः वा स्वीयसर्वस्वत्यागः । अकुतोभयं हि तत्तत्त्वं त्रिकालाबाधितम् । यदि सतत्त्वरत्नरत्ना-करोऽस्मदायुर्वेदस्तदा तुलनात्मकपद्धत्याः स्वीकारं कृत्वा पाश्चात्यविद्यापद्धत्यैव आयुर्वेद-रत्नाकररत्नप्रगटीकरणे का हानिरायुर्वेदस्येति न ज्ञायते। केवलमपेक्षते पूज्यपादभट्टकुमारि-लाचार्याणामिव परमा भक्तिः स्वीये आयुर्वेदशास्त्रे तदुज्जीवने च । ममत्वियं पराश्रद्धा यदस्माकं त्रिदोषतत्त्वं, पंचकर्म, निदानपंचकं, रोगानुत्पादनीयविधानं, शल्यशालाक्य-विधिः, क्षाराग्निकर्म, सिराव्यधः, प्रतिरोगं अवस्थाविशेषतः चिकित्साकरणसरणिः, अनेकविधाश्च चिकित्सोपायाः, वाजीकरण रसायनप्रयोगाश्चास्मदीयशारीशास्त्रमपि-पाश्चात्यविचिकित्सापद्धत्या विचिकित्सितमपि अनतिदीर्घकालादेव आधुनिक-सच्छास्त्रतत्त्वयुतमेवेति प्रसिद्धिं यास्यन् विश्वासमाश्रयं चोद्भावयिष्यति विपक्षाणां विश्वेषां जनानामपि । अपेक्षते चास्माभिः साहाय्यं आंग्लवैद्यविद्याविभूषितानां प्रथतिबुद्धिमता-मायुर्वेदशास्त्रे स्वजननीजनकयोरिव भक्तिश्रद्धावतामायुर्वेदविदां सुश्रुतचरकाध्ययन-पराणां संमानद्रव्यस्वार्थत्यागवृत्तीनां केवलमायुर्वेदोद्धारएव परं जन्मकार्यमिति कृतनिश्चयानां वैद्यवराणां । आयुर्वेदोद्धरणमेव परं दानं परंपुण्यं परोधर्मः परंतप इति गृहीतधियां धनिकानांच । विविधप्रकारान्तरायनाशनविविधोपकरणोपादाने संजात-मानसानां राजशासनाधिकारिणांच । एतैः सर्वैः सह संमीलितै र्भूत्वा यदि सुविस्तृते-ऽस्मिन् भारते देशे सांप्रतम् एकमेवायुर्वेदमहाविद्यालयं आतुरालयसहितं संशोधन साधनयुतं चालितं चेत् महान् हर्षोत्कर्षावसर इति मे मतिः ।

उपर्युक्तानां सर्वेषामेवायुर्वेदोक्ततत्त्वानां विधीनां चांगानां शक्यते प्रत्येकशो महिमा वर्णयितुम् च तन्निगूढतत्त्वोद्घाटयितुम्। तथापि समयस्यात्यल्पत्वान्मत्पूर्वै स्सर्वैरपि संमेलनप्रमुखैरुपवर्णितत्वाद्भवद्भिस्सुज्ञातत्वान्न तत् कर्तुमुत्सहे।

तथैवान्यदपि यद्वक्तव्यं तद्गूढार्थमपि स्वल्पाक्षरैरेव निरुपयित्वा स्वकार्यम् साधयामि।

१ आयुर्वेदविद्यापीठेन या सांप्रतम् विषयपरा शिक्षणप्रणाली परीक्षात्रयग्रहणार्थं स्वीकृता सा मे न रोचते। ग्रंथप्रधानशिक्षाप्रणाल्योपस्कारपरोऽहम्। विवादास्पदोऽयं विषयस्तथापि स्पष्टमतप्रदर्शनकरणं युक्तमिति कृत्वोल्लिखामि। विषयपरायां पद्धत्यां एको महान् दोषो वर्तते। येन छात्रो अनेकवस्त्रखंडनिर्मितकंथाधारकइवाऽनेकग्रंथोद्धृततत्तद्विषयखंडधारको भवति। तस्य कस्यापि सांगग्रंथस्य ज्ञाने-पठने-पाठनेच सामर्थ्यं नोद्भवति। अस्य महादोषस्य निःसारणं केवलया पूर्वपरंपराप्राप्तसांगग्रंथपठनपाठनपद्धत्यैव स्यादतंस्तस्यास्स्वीकारः कार्यः। यतः वैद्यवरवाग्भटैरपि स्वीयेऽष्टांगहृदयग्रंथे स्पष्टमुक्तम्, तद्यथा—

"एतत्पठन् संग्रहबोधशक्तः—स्वभ्यस्तकर्मा भिषगप्रकंप्यः।
आकंपयत्यन्य विशाल तंत्र कृताभियोगान्यदि तन्न चित्रम्॥"

(वा० उ० अ० ४० श्लो० ८२)

२ आयुर्वेद पठनपाठनपद्धत्यां नवीनांग्लविद्यासिद्धानां नित्यकर्मोपयुक्तानां शवविच्छेदनपुरःसरशारीरेन्द्रियसंप्राप्तिशास्त्राणामन्येषामावश्यकमेव समावेशः कार्यः। यतः यत्किंचिदावश्यकं चात्यन्तोपयोगिकं तदन्यतोऽपि ग्राह्यम्। श्रीमद्भिस्सुश्रुताचार्यैरुक्तमेव—

"एकं शास्त्रमधीयानो न विद्याच्छास्त्रनिश्चयम्।
तस्माद्बहुश्रुतःशास्त्रं विजानीयाच्चिकित्सकः॥"

(सु० सू० अ० ४ श्लो० ३७)

वाग्भटेनाप्युक्तम् अन्योपि यः कश्चिदिहास्ति मार्गो हितोपदेशेषु भजेत तं च। आयुर्वेदशास्त्रे शरीरविचय—पूर्वक चिकित्सायाः प्राशस्त्यं तत्र तत्रोपवर्णितमेव। तथाच पूर्वाचार्यैर्नित्यव्यवहृतान्यनेकानि शस्त्रकर्माणीति स्पष्टमेव। पाश्चात्यविद्यासंग्रहणविषयेऽस्मदीयप्राणभूततत्त्वानां यथा नाशो न भवेदित्येषा सावधानता प्रथमं कार्येति युक्तमेव।

३ अपरंच परमावश्यकमेव प्राचीन ग्रंथोद्धरण प्रकाशनम्। नवीन ग्रंथरत्न निर्माणम् च। नवीनग्रंथनिर्मातृभिरायुर्वेदसत्यसिद्धान्तानां तत्स्वीकृतार्थसंज्ञानां साभिप्रायप्रयुक्तशब्दपरिभाषायाश्च वास्तवत्त्वं पारंपर्यंच यथाभिरक्षितम् स्यात्तथा प्रयत्नः करणीयः। अथ च यैर्वैमहाभागैः कृता वा मुद्रिता वा संगृहीता वा ग्रंथास्तान्स्तान् वैद्यवरयादवजी; पंडितहरिप्रपन्न, भिषग्रत्नगुणे, वैद्यवर हिर्लेकरशास्त्री, वैद्यवर केडगाँवकरशास्त्री, डॉ. भट प्रभृतिमहोदयानन्यांश्चाविज्ञातान् सर्वानपि सम्मानपुरस्सरं संभावयामि च

महामहोपाध्यायाद्यनेकपदवीभूषिताम् कविराजगणनाथसेनान् संप्रार्थयामि स्वग्रंथराजद्वयसमापनाय तत्प्रकाशनायच ।

४ नितरामनुशोचामि शोकविह्वलान्तःकरणेन विद्वद्रत्नमूर्धन्य डॉ. वामन गणेश देसाई महाभागानामकालाकस्मिकमृत्युना । तैर्हि आयुर्वेदस्यात्यन्तिकी महत्तरा सेवाकृता औषधिक्रिया-भारतीयरसशास्त्रमितिमहामूल्यग्रंथद्वय निर्माणेनउपकृतं समग्रं महाभागैरिदम् भारतम् । तेषा ग्रंथप्रकाशने च मदीयपरमसुहृद्भिः पंडितप्रवरैर्वैद्यवर यादवजीशर्मभिः यः सुमहान् समारंभः समारब्धस्तमपि ते शीघ्रं निरवशेषं कुर्वन्त्विति तानभ्यर्थये । सविशेषं संभावयामिच रसयोगसागरमुल्लंघयितृन् वायुसुत समुत्साहिनः पंडितप्रवरान् हरिप्रपन्नान् । तेपि समापितरसयोगसागरसमुल्लंघनाः शीघ्रं भवेयुरित्याशासे ।

एकमुर्वरितं कष्टवरं कार्यम् कृत्वा समापयामि संभाषणम् । खानदेशनिवासिनां धुलेनगर प्रतिष्ठितानां वाहालकरोपाह्व यादवशर्मणाम् चिकित्सकचूडामणीनां तथा मदीयप्रथमान्तेवासिनां कृतानेकशास्त्रावगाहनानां अभ्यस्तवेदानां वेदशास्त्रसंपन्नेति सार्थपदवीभृतां इंदोरनगरस्थानां खरे इत्युपनामक चिंतामणिशर्मणामन्येषां चाज्ञात शुभनाम धेयानां समुत्पन्नमृत्युना महती हानिर्जाताऽस्माकमिति सशोकं कथयामि । वैद्यवर खरेशास्त्रिभिः रससमुच्चये रसग्रंथे गूढार्थप्रकाशिनी टीका कृतेति श्रूयते सा चेत्प्रकाशं यास्यति तर्हि समीचीनं स्यात् ।

अतःपरम् कालस्याल्पत्वाद्यायुर्वेदस्यानंतपारत्वान् तथा समारब्धसंमेलन-समुत्थितानांमहत्तरकार्यकरणोद्दिष्टत्वात्र परं किंचिदपि वक्तु मुत्सहते चेतः । मान्यवराः ! दूराद्दूरतस्थानान् प्रवासजनितप्रदुःखानि सोढ्वा समुपस्थितैर्भवद्भि स्सावधानतयैतावत् समय पर्यन्त मश्रावि मद्भाषणं तदर्थं नितरां भवद्भिनंदनं कृत्वा संमेलनाप्रवर्तिकार्यकरणे बद्धकरैस्समाहितशांतमानसैर्भाव्यमिति विज्ञाप्य विरमामि ।

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनां ।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम् ॥





श्रीमान् केप्टन जी. श्रीनिवासमूर्ति वैद्यरत्न, बी. ए; बी. एल., एम्. बी. एन्ड सी एम् मद्रास।
अध्यक्ष नि. भा. व. १९ वैद्यसंमेलन नासिक (१९२९ ई)
अध्यक्ष कर्णाटक प्रान्तीय प्रथम वैद्यसंमेलन बेलगांव।
प्रिन्सिपाल गवर्नमेन्ट स्कूल ऑफ इन्डियन मेडीसिन मद्रास।

Biographical notes regarding Captain G. Srinivas Murti

B. A., B. L., M. B. & C. M., Vaidya Ratna-President, All-India Ayurveda Mahamandal, 19th session held at Nasik in May 1929.

Born in 1887 at the village of Gorur in MYSORE Province in a Brahmin Srivaishnava family of very limited means. Matriculated in 1901 from Madras University passing high in First Class and securing one of the State Scholarships then granted by the Government of Mysore to the first five candidates of each year strictly in the order of merit irrespective of the community to which the candidate belonged. Passed B. A. examination in 1905 from Central College, Bangalore, securing again a State Scholarship for study of Medicine at the Madras medical College where he secured the majority of available prizes, Medals etc., leading to the award of the Johnstone Medal—the blue ribbon awarded to the best outgoing student as judged by the candidate's performance throughout the whole period of his work and study. Side by side with his medical studies, he also studied for Law and passed his B. L. examination in 1913. After taking a course and receiving Diploma in Sanitary Engineering, he entered the Madras Medical Service towards the end of the same through the door of competitive examination and served successfully as Lecturer, Medical School, Tanjore (with collateral duties at the attached hospital) and then as Lecturer at the Royapuram Medical School (with collateral duties as Superintendent, Government Leper Hospital then situated at Royapuram) being transferred thence to the Madras Medical College as Assistant Professor of Biology and Medical Jurisprudence with collateral duties at the Government General Hospital. While there, he was placed on special duty in connection with the preparation of the last triennial Report of the late General Bannernon, the then Surgeon-General with the Government of Madras.

In 1917, he was ordered for service in the Great War serving as Temp. I. M. S, Officer at various War hospital for four years till 1921 when he was permitted to return to Civil duty and to retain his Military rank for life. On his return to Madras, he was selected to

serve as Lecturer in Surgery at the Royapuram Medical School and First Surgeon at the Government Royapyram Hospital. While here he was selected as the secretary to the Madras Government Committee on the Indigenous system of Medicine (commonly known as the Usman Committee after Mr. (Now Sir) Muhammad Usman who was the President of the Committee). This gave him unrivalled opportunities to study further the theory and practice of Indian Medicine at first hand from the most learned and authoritative exponents all over India. As a result of this study, he submitted to the Committee a Memorandum on "The Science & Art of Indian Medicine" which was adopted by them and submitted to Government who, in their turn ordered the publication of the same for general information. From the very first it was enthusiastically hailed by the most learned and authoritative exponents of Indian Medicine all over India as the ablest exposition so far written on the subject; and many requests were received for permission to translate the same in different languages of India. When, as a result of the commendations contained in the Report of the Usman Committee, the Government of Madras decided to establish a Government School of Indian Medicine at Madras he was again selected by the Government for special duty in connection with the drawing up of Courses of Training, Schemes of Study and other necessary preliminaries, his services being transferred from Medical School, Coimbatore (where he was the serving as Assistant Superintendent and Lecturer) to be Special officer at the Government Secretariat at Madras. When this work was completed and the special report submitted, he was again selected as the First Principal of the Government School of Indian Medicine which started functioning on 6th January, 1925. When towards the end of 1932 the Government of Madras decided to institute a Central Board of Indian Madicine at Madras, he was selected as the First President of the Board. He is also the Adviser to Government in all matters relating to Indian Medicine and Head of the Department in control of over 350 institutions spread all over the Presidency. He has also served as President of a number of Ayurvedic Confernces all over India, The First Karnataka Ayurvedic Conference at Belgaum, The Andhra Ayurvedic Confernce at Guntur, The Siddha Ayurvedic Conference at Madura and The 19th Session of the All-India Ayurveda Mahamandal held at Nasik in 1929. He is the recipient of the title of "Vaidya Ratna", conferred on him in the Honours List issued on the occasion of His Majesty's Birthday on 3rd June, 1932. There have been many other activities to which he has interested himself from time to time. At a time when the present Official Agency for Child-welfare and School Medical

Inspection had not yet come into being, he worked as Honorary Medical Officer, of the first non-official agency for carrying on Medical Inspection and welfare-work among children of the Olcott Panchama-now called Harijan - Free Schools at Adyar, Madras. It is during this period he wrote his works on the subject of "Infant Mortality" and 'Medical Inspection of School Children"-works sold out long ago and out of print for many years. He was one of the founders of the Madras Medical Association and served as its Secretary and Editor, Madras Medical Journal for many years. He is still the Secretary of the Medical Section of the Indian Officers' Association, Madras. He has also taken active interest as Life-member of the Society for the Promotion of National Education, as a member of the Governing Body and Managing Committee of the Young Men's Indian Association and other similar movements for the promotion of National well-being. He is at present a prominent member of the Theosphical Society with its Headquarters at Adyar, Madras, holding the office of Hon. Recording Secretary. From the beginning of this year he is also serving as the Hon. Director of the world-famous Adyar Library, one of the biggest if not also the biggest among Libraries possessing priceless manuscripts and printed works in the different branches of Oriental learning,



१६

॥ श्रीः ॥

निखिलभारतीयवैद्यसम्मेलनस्यैकोनविंशत्यधिवेशन सभापते-
वैद्यरत्न, बी० ए०, बी० एल०, एम० बी० ऐंड सी० एम०, प्रिंसिपल
गवर्नमेंट इंडियन-मेडिसिन स्कूल, आफ् मद्रास—

श्रीयुत कैप्टेन जी० श्रीनिवासमूर्ति महोदयस्य

अभिभाषणम् ।

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥
गुरुभ्यस्तद्गुरुभ्यश्च नमोवाकमधीमहे । वृणीमहे च तत्राद्यौ दम्पती जगतां पती ॥
योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥
लक्ष्मीकैरवबन्धुकल्पकतरून्लब्ध्वाथ लब्धेप्सिते भूयो मथ्नति देवदानवगणे दुग्धाब्धिमुद्धश्रमे ।
तस्यानन्दथुना समं समुदयन्कुंभं सुधापूरितं बिभ्राणः स्वकरे करोतु जगतां भद्राणि धन्वन्तरिः ॥
'क पदं वैद्यवर्याणां सम्मेलनसभापतेः । क चाहं वैद्यविद्यायां किंचिदेव कृतश्रमः ॥
क विद्या सर्ववेदज्ञैरायुर्वेदमहर्षिभिः । कृता त्रिकालतत्वज्ञैः कचाल्पविषया मतिः ॥
कथं चाहं महासिन्धुमध्यक्षाख्यं तराम्यहो । तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥'
इति चिन्तयतो मेऽद्य मनस्यासीदियं मतिः । 'यदीदमीप्सितं सभ्यैस्तदयुक्तं हि चिन्तनम् ॥
मत्वा निमित्तमात्रं त्वं यथाज्ञप्तस्तथा कुरु । त्यक्त्वा हृदयदौर्बल्यं कार्यं कर्म समाचर ॥'
इति मत्वा महाभागा आज्ञां वः शिरसा वहन् । आगतोऽस्मि यथाज्ञप्तः पादमूलं भवादृशाम् ॥
आयुर्वेदे नितरां निष्णाताः कीर्तिमन्त इह येच ।
प्राप्ताश्च कालधर्मं तेभ्यः सद्भ्यो नमोऽस्तु सततं नः ॥
स्वस्त्यस्मिन्वैद्यवर्याणां संमेलनमहोत्सवे । राजभ्यः सर्वसभ्येभ्यः प्रणामा मम सन्तु वः ॥
वन्दे तीर्थार्थशास्त्रज्ञानन्यशास्त्रबहुश्रुतान् । ज्ञानविज्ञानसंपन्नान्कर्मदक्षान् शुचिव्रतान् ॥
ज्ञानपूर्णा दयापूर्णास्सर्वभूतहिते रताः । जितहस्ता भिषग्वर्या भूयो भूयो नमोस्तु वः ॥
धन्योस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि महाजनाः । यत्सेवा पुण्यकार्येऽस्मिन् लब्धा मे त्वत्प्रसादतः ॥
अनुज्ञा दीयतां भद्रैरधमेऽस्मिन् शुभोदये । भवद्भिस्सह विद्वद्भिः संसत्कर्म समारभे ॥

स्वस्ति ! श्रीमतां तत्रभवतामनितरसाधारणवैदुषीसहकृतशेमुषीभूषितानामतिध-
वलयशःपूरपावनीकृतनिखिलदिङ्मण्डलानामखिलागमपारदृश्वनामप्यायुर्वेदमहाम्बुधिप्र-

मथनोपात्तविज्ञानामृतास्वादनाधरीकृतविबुधवरेण्यानामकृतकमैत्रीपरिकर्मितानामत्राखिलभारतवैद्यसंमेलनमहोत्सवमेनं निजागमनेन सभाजयितुं सदयं समवेतानां पण्डितमणीनां सहृदयशेखराणां समेषां विरचितानेकप्रणामः श्रीमत्कारुण्यकल्पकमेव सुदृढमवलम्ब्य प्रवृत्तोऽहमस्मिन्नध्यक्षपदनिर्वाहे ।

श्रीमन्तः सदयमिदमाकलयन्तु कुत्र वा वयमद्य संगता महाकार्यनिर्वर्तनायेति । नैतत्किमपि नूत्नतया निवेदनीयम् । परन्तु सर्वतः प्रथितमेव । यदिदं भगवता श्रीमद्वाल्मीकिमहर्षिणा दिव्यैः सुधारसमयैः कविलोकजीवातुभिः स्वीयवाग्गुम्भैः विविधरीत्युपवर्णितं नासिकाभिधानं पुण्यक्षेत्रं पञ्चवटीप्रदेशान्तःपतितं गोदावरीतीरविराजितञ्च ।

एतद्रामणीयकाकृष्टचेताः सर्वलोकशरण्यो भूतभावनः श्रीजानकीजानिरत्रोपात्तलीलामानुषविग्रहः हस्तायातं राज्यमपि तृणाय मत्वा, त्यक्त्वा दिव्यामपि साकेतनगरीं, सौमित्रिविरचितोटजे प्रियया साकमत्रैव निवसन् प्रमोदाच्चिरञ्चकारेव वैकुण्ठनिवाससौख्यजातम् । भवतश्चात्र श्लोकाविमौ पुण्यश्लोकेनामलानन्देन प्रोक्तौ—

"त्र्यम्बकजटाजूटकलनाय विनिर्मिता । पाण्डुरेव पटी भाति यत्र गोदावरी नदी ॥"

"सकुसुमफलचूतरुद्धघर्मद्युतिकरपातवनालिपूपजाते ।
तमसि हरकिरीटचन्द्रशुभ्रे धवलनिशा इव भान्ति वासराणि ॥"

INTRODUCTORY.

My first duty—and that a most pleasant one—is to tender you my heartiest thanks for conferring on me this great honour and high recognition—the great and the highest that this all India assembly of physicians can confer on any member of our brotherhood. Cold and deed, indeed, must be the heart that is not moved—and moved to its warmest emotions—by the overwhelming expressions of appreciation, affection and trust which it has been your pleasure to lavish on me in so abundant a measure.

When I received a telegram asking me to accept the Presidentship of this session of the Ayurveda Mahamandala, I hesitated and delayed in deciding on acceptance, as I then felt and do still feel that it was too premature for me to be the recipient of so high and great an honour; but I soon decided the question by saying to myself that it was none of my business to judge whether the decision of the Reception Committee in electing me as the President was wise or otherwise; and that, if it was their pleasure to command, it must be my pleasure to obey, as counselled by the poet who said "आज्ञा गुरूणाह्यविचारणीया". Hence it is that I am here to-day to do your bidding to the best of my ability.

The occassion has also served to bring vividly to my mind a famous passage of Bhartrhari where that immortal poet and royal sage depicts the ways of the truly great and good in the following terms so strongly suggestive of your own gracious ways towarde me:

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

It may be granted that, as a general rule, the poet's statement is true that very rare indeed are those noble souls, who delight themselves in viewing the occasional good deeds of others through microscope which magnify mole-hills to mountains while, to their own Himalayan deeds of mercy and help, they apply instruments which do just the reverse and reduce mountains into mole-hills or even to atoms; but, I trust, I shall be wholly forgiven if, with my present experience, I dare to join issue with the poet-sage and say "It may be that, generally speaking, your suggestion is true that noble souls such as those depicted above are very rare in any organisation; but, the All-India Ayurveda Mahamandala must be reckoned as an exception; for, here such noble and high-souled ones must abound; or I would not be in this Presidential chair."

OUR AIMS AND IDEALS

For many years past, it has become customary for Presidents of All-India Ayurveda Sammelans to devote a good part of their addresses to defend Ayurveda against the many hostile criticisms levelled against it from time to time. On this occasion, however, I propose to make a departure and desist from following this customary practice. In the first place, I had occasion only a few years ago, to refer to this question at some length and there is really very little I could now add even if I had the desire to play the part of a combative controversialist, a role which, most emphatically, I do not wish to assume. In the next place, I now see clear signs everywhere that the revivalist movement in Ayurveda has come to stay and is becoming an integral part of a far wider Indian renaissance which none can stay. India has been a contemporary, in the past, of many civilisations which have had their days of glory but have now ceased to be; one after another, her contemporaries of succeeding ages have disappeared from the stage but she has lived on throughout the ages. True, she had recently gone into sleep; but, that was only to wake up into a more glorious day. I am one of those who believe that if, in the All-wise dispensation of Providence, India has been treated to this unique distinction of living with successive and mighty civilisations of the past but not dying with them, it is because

she has still her own great part to play in the plan of the Most High whose Will "Sweetly and mightily ordereth all things"; we are now at the dawn of a new day when India will, once again, labour strenuously and achieve mightily, in every field of human endeavour and enterprise. In that high achievement of the near future, Ayurveda will have her full share of glory. To us has now come the call and the opportunity to serve the motherland by devoting ourselves to the cause of Ayurveda and sharing in the travails, the thrills and the joys of a high adventure, whose end will be a great triumph, no matter who seizes the opportunity and who lets it slip. To every aspirant in this field has now come the call similar to that which came to Arjuna on the field of Kuruksetra, through those memorable words "निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्". May we all be impelled to respond dutifully to that ancient call and to offer at the feet of the beloved mother our highest measures of capacity, achievement and service.

The extraordinary thing about the ways of many of our "scientific" judges is that while they are generally seen to *begin alright* by honestly confessing they have not studied Ayurveda, they follow it up by condemning its teaching as superstition and its practice as quackery; probably they know all about Ayurveda, either instinctively or by way of Revelation, as, of knowledge by way of study, they confessedly have none. If such superior folk still deem it good sport to enjoy themselves in attacking something of their own creation to which they give the name of Ayurveda, why deny them the joy of it ? Rather, let us echo the sentiments contained in the following memorable verse of our immortal poet, Bhavabhuti:

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

In any case, I do not propose to repeat here the answers I have prveiously given elsewhere to hostile criticisms of this description. What I am now far more deeply concerned and interested in is in planning and working for the achievement of that high ideal which, I ventured, some years ago, to place before our medical brothers in the following terms and which, with your leave I desire to re-state on this occasion :—

After all, is it necessary to be ever talking of rival systems of medicine, as though scientific truths can possibly vary with the orient of this, that or the other geographical unit ? If the one-pointed search after truth is everywhere, the aim of scientific endeavour, there can be but one system—ane without a second—of any science, whether it be physics, chemistry, biology, medicine, or any other. Theories and hypotheses have been and can be many, but truth is one; it is

neither Eastern nor Western but Universal. It cannot be that water is H_2O in the West and something else in the East. Theories and methods of Easterners may well differ from those of the Westerners and there may also be different schools and sub-schools of thought among the Easterners and Westerners themselves. Wherever knowledge is imperfect, as it undoubtedly is in medicine, such differences of opinion, in theories and hypotheses are inevitable. But no true scientist, Eastern or Western, would ever reject a proposition, merely because it is advanced by one born or living in an orient different from his own. If it is proved that the other view is better than his own, he would not have the least hesitation in loyally accepting it. Ever since the dawn of history there has been free and unrestricted communion between the East and the West in the domain of learning. In medicine, as in other branches of knowledge each has freely and joyously given to, and taken from the other in the past. Even when kings were engaged in mortal strife, the men of medicine were freely fraternising as members of that universal brotherhood of knowledge and wisdom which knows no distinctions of race, creed or community. The supreme object of all students of medicine, Eastern or Western, is the maintenance of health and the prevention and the cure of disease. There is no better way of working towards the fulfilment of this object than to think in terms of the whole of Humanity, and of no lesser unit such as the European, the Asiatic and the like, which sometimes, unfortunately, and may I also say, so unscientifically, divide man from fellowman even in the colourless domain of science ? Many years ago, Charakacarya laid down the following for the guidance of his disciples :

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥

(CHARAKA—*Sutrasthan*—Chapter I.)

न चैवास्ति सुतरामायुर्वेदस्य पारम् , तस्मादप्रमत्तः शश्वदभियोगेऽस्मिन् गच्छेत् । . . . कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमतामाचार्यः । शत्रुश्चाबुद्धिमतामेव अतश्चाभिसमीक्ष्य बुद्धिमताऽमित्रस्यापि धन्यं यशस्यमायुष्यं पौष्टिकं लौकिकमभ्युपदिशतो वचः श्रोतव्यमनुविधातव्यञ्चेति ॥

(CHARAKA—*Vimanasthan*—Chapter VIII.)

" That alone is the right treatment which makes for health. He alone is the best doctor who frees us from diseases.

" There is no end to the science of Ayurveda ; hence heedfully shouldst thou devote thyself to its acquisition. Unto men possessed of intelligence, the entire world acts as a preceptor ; unto men destitute of intelligence, the entire world appears as an enemy. Hence

the wise should listen to and follow the counsels of even an opponent when they are instructive, praiseworthy, calculated to promote health and life and well-suited to the conditions of the people."

Can there be wiser counsels for us to follow than what is contained in the above and may we not also adopt the view that, in so far as the one common ideal of all Systems of medicine is the prevention of health and prevention of cure of ill-health there can really be but one system of medicine, of which the many existing "Systems" are but parts, each part being more appropriately looked upon as a special "School" of thought rather than as an independent systems of medicine ? Consistently with this view, one would like to see that the future practitioners of India—no matter whatever special denomination they belong to—Ayurveda, Unani, Siddha, or Western Medicine are so schooled and trained so as to bring to bear on the problems of Health and Ill-health not only the expert knowledge of their own systems but, as far as practicable, the best that is in other systems also. May I also add further that we should not remain content with simply enriching our own knowledge by taking in whatever is valuable in others and equipping ourselves to serve our own people more efficiently than we could otherwise do, but should also consider it our high mission to serve the rest and the whole of humanity by so presenting our own treasures to the followers of other systems that they also may be able to enrich their own knowledge and serve their own people more efficiently than they could otherwise do.

MEDICAL TRAINING

In the pursuit of this high ideal, lovers of Ayurveda have now found it necessary to so re-model their courses of study as to cure Ayurvedic training of certain known deficiencies of recent origin and to make for a future when, as in the progressive days of the past, practitioners of Ayurveda would become efficient, up-to-date and progressive in the theory and practice of *all* the Asta-angas or eight divisions of Medicine and would prove equal to the task of efficiently ministering to both the medical and surgical needs of the suffering public, instead of being obliged, as at present, to seek the help of others for the relief of surgical ailments. It is only then that practitioners of Ayurveda would be able to exchange thoughts freely with the rest of the medical world, to promote mutual enlightenment and benefit and to add their own quota to the sum-total of medical knowledge of the world and the general advancement of medical Science as a whole. It is to the foresight, wisdom and initiative of the All-India Ayurveda Mahamandala and Vidyapitha that we owe the new orientation given

to our Medical education in the direction indicated above. Since then, the model of the Vidyapitha has beed adopted all over India and is being widely followed, with suitable modifications, in institutions of all kinds--private, University, Government and many other. These models are still on their trial and may need certain modifications in the light of future experience. It is only recently that many of them have begun to function and some time must elapse before we can usefully review their results, Nor do I propose on this occasion to go into such details as the curriculum of studies, the length of study, the preliminary general training for entrants—particularly, in the direction of requiring an elementary knowledge of the six Darsanas, the medium of instruction, the nature of Laboratory and Hospital training, and the like ; for, the time has not yet come when I can add anything really useful to what I have already stated at some length in the report of the Madras Government Committee on the Indigenous System of Medicine.

POST GRADUATE COURSES

The rise of the new generation of practitioners of Indian Medicine who will prove equal to the task of ministering to both our medical and surgical needs will necessarily take some years. Till then, the present inconvenience of resorting to practitioners of Indian Medicine for the relief of medical ailments and to allopathic practitioners for the relief of surgical illnesses will continue, so far the great majority of our suffering public, nearly 90 per cent of whom are known to resort to Indian Medicine, are concerned. But, in the meantime much may be done by way of transitory arrangements. It would be a very wholesome rule if every one seeking to practise in India was required to equip himself with a working knowledge of Indian Medicine, no matter what his other medical qualifications may be. *If it is found desirable and necessary that every civil servant recruited for service in India should be required to make himself acquainted with the vernacular language of the people among whom he is posted for duty, it is vastly more desirable and necessary for every allopathic practitioner seeking to practise in India to be required to make himself acquainted with Indian Medicine, to which it is admitted, nearly 90 per cent of our population resort for relief.* The Government of Madras have recently instituted Post Graduate Courses of study in Indian Medicine extending over a period of two years and open to fully qualified practitioners of Allopathic Medicine Here is a chance for allopathic practitioners to get themselves acquainted with the theory and practice of Indian Medicine. It is desirable that such courses of Post-Graduate study are instituted in

other parts of India as well. What is perhaps even more desirable is the institution of Post-Graduate courses in allopathic medicine to practitioners of Indian Medicine who have, so far, been trained to deal with medical cases only and not surgical ones. Such a proposal is now under the consideration of the Government of Madras. Post-Graduate courses of either kind are very desirable during the present period of transition and as long as there is a demand for their continuance.

A STANDARD PHARMACOPŒIA

Another urgent need of the hour is the preparation of a standard Pharmacopœia. As you are well aware we are now using pharmocopeal yogams from a variety of sources : Charaka. Susruta, Vagbhata, Sahasrayogam, Chintamani, Bhaisajya Ratnavali, Bhava Prakasa, Sarangadhara, Vangasena, Gada Nigraha, Yoga Ratnakara, Rasendra Sara Sangraha, Rasaratnasamuchchaya and so on, not to speak of the recipes for many manuscripts yet unpublished. Further, in the case of a number of Yogams, there is some variation in the formulæ as given in the different compilations. This may not have led to much difficulty so long as each physician was his own chemist and dispenser but modern conditions have made bifurcation of this combination inevitable as evinced by the increasing number of pharmacies of Indian Medicine that are springing up all over the country. There are now a number of renowned physicians who will be glad to devote themselves solely to the giving of medical advice and to give up the practice of dispensing their own prescriptions, if that could be done without detriment to the interests of their patients ; but, as we now stand , is it possible for any pharmacy of Indian Medicine to prove itself equal to the task ? In the first palce the prescribing physician may have taken the yogam from a source not familiar to the staff of the pharmacy concerned: in the next place, even where the name of the preparation is well known, there may arise doubts in some cases as to whether it is to be prepared according to the fromulae given in one publication or in another. Furthermore, there are now an increasing number of institutions of Indian Medicine which are being established by local bodies, public charities and the State, where it has become very necessary to fix the details of medical supplies and equipment which each institution should possess. It is for gatherings such as these to lay down a list of standard yogams with their exact formulæ for general use in such instituitons all over the country. In the Hospital attached to the Government School of Indian Medicine at Madras, we are now engaged in compiling such pharma-

copæias for Ayurveda, Siddha and Unani sections separately; we have already found that a very large number of drugs are common to all schools of Indian Medicine and that, in a number of cases, the yogams also are very nearly. allied. It is our hope that when the three separate pharmocopæias are completed, we may be able to take up the work of compiling a unified Indian Pharmocopœia suitable for use in institutions of Indian Medicine all over the country. But, it is only with the wise guidance and valued co-operation of the learned and experienced practitioners all over the country that this project could be expected to come to a speedy conclusion; and nothing could be more appropriate than that the proposed Pharmocopœia should be published under the high auspices of so learned and authoritative a body as the All-India Ayurveda Maha-Mandal.

RESEARCH

Research in Indian Medicine is, at present, greatly hampered and restricted by the notion prevailing in certain high quarters that what is most valuable and therefore worth investigating in Indian Medicine is only its materia medica—its drugs and recipes, and not its basic and fundamental teachings which, in their view, are all wrong because based on the Tridosa theory which they are pleased to characterise as " the exploded humoral theory". To Ayurvedists, on the contrary, the most vital, valuable, precious, and indispensible thing in the whole field of Medicine is the Tridosa teaching. If the whole of the Ayuryedic materia medica were suddenly to perish to-day, Ayurveda may still live and thrive; because the Ayurvedist who has understood the Tridosa teaching has the key and the power to create a new materia medica of his own; but, if the Tridosa teaching is lost, all is lost. It is a teaching which becomes more and more precious to us, the more we study, practise and learn. If, even under the unfavourable conditions of recent times, the services of renowned Ayurvedic practitioners are in high demand by persons of light and leading in all walks of life—scientists of world-wide reputation, judges skilled in weighing evidence, merchant-princes noted for their judgment, Allopathic practitioners who have exhausted the resources of Allopathy and many others who are in a position to command the highest Allopathic advice available—it is to the excellence of the Tridosa teaching that our practitioners would attribute their undeniable success.

But, what is it that is being done to day in the name of "Research in Indian Medicine". Drugs are being tested by persons who have no knowledge of the teaching on which its use is recommended.

The value of the art is being judged by persons who have no knowledge of the science on which the art is based. We know that the use and value of remedy depends on many factors such as Dosam, Dusyam, Balam, Kalam, Anilam, Vayuh, Prakrtih, Satvam, Satyam and so on. A remedy which acts like nectar when used by an Ayurvedic practitioner may prove useless or even dangerous in the hands of persons who do not know how and when to use it. It is a striking testimony to the excellence of the Tridosic teaching that two princes among successful Ayurvedic physicians like our two ex-Presidents; the late Dr. Yamini Bhushan Roy, M. A., M. B. & C. M., whose premature death is an irreparable loss to the cause of Ayurveda and Dr. Gananatha Sen, M. A., L. M. & S., who, happily for us, has now been restored to health and is with us here, both of whom had the inestimable advantage of being experts in Ayurveda as well as Allopathy have attributed their phenomenal success chiefly to their knowledge of Tridosic teaching through the help of which they were best enabled to diagnose and treat efficiently not only the disease but also the patient who is suffering from disease. The emphasis laid is more on the sufferer than on the suffering. To the Ayurvedist, it is not sufficient to say that dysentery is to be treated by Kutajam (Kurchi) or leprosy by Tuvarakam (Chalmoogra); for, his treatment of any suffering would differ according to the nature of the sufferer. Two sufferers may be suffering from the same disease ; and yet, for one, we may have to select specific medicines and diets which are anti-Vatic in nature and of "hot" potency while to another, we may have to select specific medicines and diets which are anti-Pitta in nature and of "cold" potency. It is in this most acientific sdjustment of specific medicines and diets to the individual nature of not merely the particular *suffering* but also of the particular *sufferer* that the remarkable successes of our renowned practitioners of Indian Medicine largely lies ; and it is also in this direction that Indian Medicine can make one of its most valuable and unique contributions to the sum-total of the Medical knowledge of the world as a whole. I believe the day will soon come, if indeed it has not come already, when Allopathists will be obliged by the irresistible logic of modern discoveries—specially in the fields of Endocrinology, Bio-Chemistry and Psychology, to re-instate the discarded and "exploded" humoral theory, whatever may be the name and from—nama and rupa—which the theory may bear in its new incarnation. I believe too that the time is near at hand when there will be a better appreciation of the other excellences associated with the Tridosa teaching—excellences which really form part and parcel of the general teachings of the

Physical and Biological Sciences of the Hindus. Prominent among these may be mentioned the following:

(1) *Theory of Matter.*—The Indian teaching known as the Pancha-bhuta theory views matter as existing in five states and not only in the three, *viz*, solids, liquids and gases—known to modern science.

(2) *Theory of Prana.*—The existence of Pranic currents has not yet been recognised by western biology. According to Indian teaching, however, the body ceases to be alive if Prana ceases to course through the body.

(3) *Theory of Mind.*—Western psychologists seem to think that Mind is, as it were, bigger than consciousness and it comprehends both " consciousness " and " unconsciousness, " so that when the conscious part is split off, the unconscious alone remains. According to Indian teaching, however, consciousness is a category quite distinct from, and far above Mind or Manas, which, being an evolutionary product of Prakrit, is always Jada or unconscious so that the expression "conscious mind" is a contradiction in terms while the term " unconscious mind" is mere tautology.

According to Western Science, Matter is that which exists in the three well-known states of Solids, Liquids and Gases. Mind is not matter. According to the Samkhyas, however, both are included under "Matter," both being Vikrtis or modifications of Prakret; mental matter differs from physical matter, only in the type of Guna-combination; but both alike are combinations of the three Gunas—Satva, Rajas and Tamas.

(4) *Theory of Bonsciousness,*—According to Indian teaching, consciousness exists in four states, *viz*, Jagrat (or waking state), Svapna (or dream state). Susupti (deep sleep state), and Turiya (or the fourth state). Till recently, Western Psychology knew only of fhe Waking State; now, they have begun to speak of the " Dream State ". May they soon learn to recognise the other two states also ?

(5) *The Theory of the Special Senses.*—There is nothing. so far, in Western Science which suggests even remotely lhe Indian conception of each special sense being correlated with a special type of Proto-matter and Matter (Tanmatra and Bhuta).

(6) *The Pharmacological Doctrine of* Dravya.—Rasa-Guna-Virya-Vipaka and Prabhava.

These are a few prominent features, the proper appreciation of which would be valuable to any student of medicine besides being an invaluable desideratum for those who would engage themselves in making researches into the field of Indian Medicine.

It is from the lack of a proper appreciation of the real excellen-

ces of Indian Medicine such as those indicated above—more especially in the lack of a proper understanding of the Tridosa teaching, that the notion is still prevalent in certain high quarters that all that is possibly worthy of research in Indian Medicine are comprehended in its drugs and recipes and that the only way to conduct research in this field is long lines of investigation carried on for the last decade or so in the Pharmacological Department of the Tropical School of Medicine at Calcutta. The small extent of the field covered by these investigations and the slow rate of progress that is possible of achievement even where the investigations are carried on by a team of devoted and selected experts working in close co-operation with one another may be gathered from the following statement made a few years ago by Col. Chopra, the Head of this Department of Research at the School of Tropical Medicine: "The time and labour required to work out the Chemical composition of a drug is enormous. This may be judged from the fact that it would take an experienced chemist about two or three months to isolate in a pure state and roughly state the nature of different chemical constituents of a single crude drug; the determination of the chemical constitution of the active principle concerned would take another two years provided the chemist devoted his time entirely to one active principle. The isolation of a sufficient quantity of the active principles and testing them pharmacologically would take a few months. One can see that it will take years to complete the work on indigenous drugs which has now been started at the Calcutta School of Tropical Medicine. At present our work is seriously hampered owing to the fact that there is only one Professor of Chemistry without even an assistant; under these conditions the work would take a generation to complete." Considering that we have hundreds of reputed drugs in common use and that even in the hands of our devoted hands of efficient and earnest workers, the work of investigating about a dozen drugs only has taken so many years, I venture to think that Col. Chopra's estimate that it would take only one generation to investigate all indigenous drugs is decidedly an under-estimate, unless, of course he has in mind a verv large extension of hin own laboratories at Calcutta and the opening of many other laboratories like his throughout India employing teams of experts and envolving expenditure of millions of money. Even so, the value of these investigations to practitioners of Indian Medicine itself is likely to be only indirect, doubtless, Allopathists may begin to use Punarnava, Kurchi and other reputed druge when their own experts confirm the teachings of Indian Medicine regarding their therapeutic value; and in so far as this may lead to such bits of

teaching of Indian Medicine regarding their therapeutic value; and in so far as this may lead to such bits of teaching of Indian Medicine becoming part and parcel of the knowledge of the medical practitioners of the world as a whole, the investigations will be of distinct service to the cause of both science and suffering humanity.

But, there is one line of investigation which may prova specially helpful to practitioners of Indian Medicine, if the workers at the Calcutta School and other such institutes would adopt it; and it is this. In ancient times, Indian physicians seem to have been their own collectors of herbs, making their collections from neighbouring forests just as they were their own chemists and dispensers. Under modern conditions, however, it frequently happens that raw herbs and drugs are not collected by the practitioners themselves but are brought from bazar supplies, which are not always of excellent or even good quality. It is true that physicians, specially experienced in this line can distinguish the good from the bad and grade the good samples in their order of excellence. But, if modern research could reveal to us the specific physical and chemical features of those samples which are selected by experts of Indian Medicine as the best ones from the standpoint of Therapeutics, then, we may have a comparatively easy method of standardising the crude drugs commonly included among our bazar supplies. So far, this work does not seem to have been undertaken by the research workers either at the Calcutta School or elsewhere. Thus it happens that the help likely to accrue to the practitioners of Indian Medicine by the sort of research that is being conducted for over a decade at the Calcutta School seems to be of a very limited nature, not merely because about a dozen drugs only have so far been investigated as from the fact that the great majority of medicines used in Indian Medicine are compound preparations, the investigation of which Col. Chopra does not seem to be in a position to undertake at present; he wants us to send him only single drugs for investigation; practitioners of Indian Medicine, on the other hand, hold that the therapeutic value of the great majority of compound preparations lies more in the particular combination than in any one drug taken separately so that what they want is an investigation into the combination as a whole which Col. Chopra is not prepared to undertake at present; and one can fully sympathise with him and his co-workers when they say they have enough to do with single drugs and cannot undertake to do more. It may be that the researches of BOSE may soon enable us to solve the difficutly in respect of drugs and drug-combinations while the researches of RAMAN may likewise enable us to understand the hidden secrets of the atomic and

molecular world which make for the observed differences between, say, a mercurial salt of the Western chemists and the analogous preparation of Indian physicians—apparently the same so far as chemical analysis goes but so different in their therapeutic potencies. Such things, however, are in the womb of the future. At the present moment, it seems to me that the most promising line or investigation is clinical research into the reputed values of the methods of treatment (including dietics) followed in Indian Medicine and conducted in institutions where there are facilities for a hearty co-operation between practitioners of Indian and Western Medicine. The actual treatment should be left to practitioners of Indian Medicine while specially selected Allopathists should collaborate as Medical Registrars and maintain careful, detailed and accurate records of diagnosis treatment and daily progress of all cases treated in the hospital, and publish the results in such language as would enable the followers of Western Medicine to benefit from them, if they wish to.

THE SPECIALITY OF GENERAL PRACTITIONERS

This sort of Research does not require any phenomenlly expensive laboratories, perched in stately isolation on some far off hill-top away from the haunts of the ordinary denizens of the plains and the vallies, and manned by a proportionately expensive staff of investigators belonging to some superior cadre Rather is it the case that this thrives best, only when it is carried on as the speciality of the general practitioners with their intimate living touch with the common lives of the common folk and in places where hospitals for the general public and laboratories exist side by side so that the clinical and laboratory workers have best opportunities of working in closest possible co-operation with each other. To speak, in this manner, of Clinical Research being the speciality of the general practitioners may should stange to those who, in the name of progress, have recently introduced certain special features into the system of Western medical education which have a distinct tendency to make the science and art of diagnosis merely a matter of "piecing together reports" of a number of specialists, and to overburden the curriculum with so many subjects of special study as to result in the students "failing to see the wood for the trees"—failing to grasp the basic principles amidst the mass of confussing details. At such a time as this when many among the general practitioners themselves are showing distinct signs of developing "an inferiority complex" consequent on the exaggerated values acttached to the findings of laboratory experts, it is very much to be desired that at least those who are engaged in the field of Indian

Medicine, may profit themselves by the following wise observation of the late Sir James Mackenzie :

"The records taken to-day are not a bit more helpful than those taken fifty years ago. I know this will be disputed ; for, there is a belief that medicine has made such gigantic strides that signs and symptoms are now detected that were never before recognised. Thus a physician who has had some laboratory training in bio-chemistry includes in his notes the chemical constitution of some fluid. Another who has studied the blood will reflect his speciality in his records. If he has studied becteriology, the records will describe the various bacteria found while blood-pressure records and electro-cardiograms will show the bent of others, and so on. Each one finds his justification in the belief that in recording fact he is adding to the sum of human knowledge, whereas he is but adding to that enormous mass of chaotic deatails which darkens and confuses medicine to-day....... There is not a single mechanical or laboratory method ever introduced but has had an extremely limited sphere of usefulness. Time an d again, great expactations have been raised on the announncement of some wonderful discovery that was going to have a revolutionary effect upon clinical medicine, but in every case, as time went on, when its sphere of usefulness came to be recognised, it was found to be a very limited one.

In dealing with the clinical aspects of research, and particularly with the opportunities of the general practitioner, I must dwell upon the limitation of laboratory methods, and I may seem to belittle their importance. This is far from my intention. No one recognizes the importance of laboratory methods more than I do, and probably no clinical observer has received greater help from them. Indeed, I consider, that I have a better appreciation of their methods than many who indiscriminately belaud them. My experience not only enables me to appreciate their value, but also to recognise their limitations.

Let us briefly look at one aspect of the subject by considering where medical research has been successful. The highest aim of all research, is the prevention of disease. If we take the instances where this aim has been achieved we find a uniform method of procedure. In every case, the clinical observer, by the exercise of the peculiar methods, took the first step. He recognized in the sick man the signs of disease, he differentiated these signs in such a manner that he was able to recognize separate forms of disease. He recognised these signs at such an early period that he detected the circumstances that favoured or induced the disease. He was then able to take steps to

prevent the disease. Such is the history of such diseases as typhoid fever, syphilis, rabies. At other times he has not been able to carry the investigation so far, andrecognizing his limitations, he handed the subject over to the laboratory worker, as in malaria and allied disease. Such in brief is the method which common-sense tells us should be followed in the case of every disease, but where is the clinical observer to be found to-day ? A foolish idea has arisen that the methods by which he made his contributions to research are so easily understood that they need little consideration and so easily recognized that they need no special investigation. There never was a greater fallacy. *We know that it takes many years before a man becomes trained in bacteriological technique. It requires a much longer time to train a man to recognize the early symptoms of disease. It takes many years of experience to put intelligent questions to the patient, and more years of experience to enable the replies to be interpreted.* The part which the clinical observer should play in medical research is to-day not recognized, and there follows as a consequence an insurmountable obstacle to attaining the chief aim in medicine—the prevention of disease. If you do not recognize the early symptoms of disease, you can never recognize the circumstances that favour or cause its onset. This to me is such plain common sense, that it is one continual source of wonder that our authorities fail to see it. Once this is seen the next question is, who is the man that has opportunity for seeing the early stages of disease, and the circumstances that favour its onset ? *There is only one person, and that is the general practitioner*".

THE IDEA AND METHOD IN RESEARCH

The intellectual friction between kindred minds of experts endowed with vivid imagination, rigid reasoning, and penetrating powers of observing, experimenting and inferring is one of the most powerful ways in which the fire of discovery is stuck and the light of Research kindled. The atmosphere suitable for the promotion of Research or University Life is not mererely a matter of elaborately equipped laboratories and piles of buildings erected according to certain standard forms of type-designs. Where daring spirits with well-stocked minds gather to labour together; where fiery intellects scintillating with brilliant ideas play upon one another to set aglow the light of creative fire at which many orhers lights are lighted; and where wondrous minds, clad in intuitive flashes, disport themselves in taking gigantic, Newtonian leaps from the falling apple to the falling moon"—there we have the atmosphere of Research and University Life no matter how humble the buildings may be. What does it

avail to have laboratories lavishly equipped and elaborately furnished, if the minds of the labourers working therein are but poorly equipped and furnished merely with the mechanical details of what is known as the experimental method. Far be it from me to belittle the value of the experimental method ; unquestionably, it is a thing of undoubted value, but, what I do wish to suggest and emphasise is that the creative idea is vastly more important than the mere method; the idea is the life; the method is but the form. It is not every person included in some superior cadre on the strengh of his having undergone some training in conducting the rituals of the experimental method that will prove himself fit for initiating and conducting original research; for, discovery and research are not commodities that can be made to order, merely by building elaborately equipped laboratories and recruiting workers at phenomenal rates of salaries and allowances. At a time when the relative importance of the creative idea and the experimental method are being threatened to be reversed, it is as well we ponder over the following wise observation on "The Idea and Method in Medical Research" published in the Journal of the American Medical Association in its issue No. 15 of October, 1928 :—

"Claude Bernard, in his "Introduction a Letude de la Medicine Experimentale," summed up briefly the relationship between the idea and the method in research.

"*The experimental method cannot give new and fruitful ideas to men who have none* ; it can serve only to guide the ideas of men who have them to direct their ideas and to develop them so as to get the best possible results. As only what has beea down in the ground will ever grow in it, so nothing will be developed by the experimental method except the ideas submitted to it. The method itself gives birth to nothing. Certain philosophers have made the mistake of according too much power to method along these limes."

In view of the emphasis placed to-day on scientific interest and research in our medical schools and of the large and increasing number of persons engaged in medical research, it appears worth while to restate the relative importance of the idea and the method, with some indication of the contributions to medical knowledge that may be expected from various types of research. To quote Claude Bernard further, "Men with a presentiment of new truths are rare in all the sciences ; most men develop and follow the ideas of a few others. We usually give the name of discovery to recognition of a new fact ; but I think that the idea connected with the discovered fact is what really constitutes the discovery." Obviously only a small proportion

of those actually engaged in medical research are born investigators; what may be expected then, from the vast majority in whom training in the methods of investigation is substituted for creative genius? From the majority of them, nothing! Included among these are the large numbers of young men who try their wings and fail to discover a real liking or aptitude for scientific work. Yet their seemingly futile efforts must not be regarded as waste since from the ranks of the beginners must be drawn the successes as well as the failures. Moreover, no one, however inept, can have first hand contact with the difficulties of advancing knowledge without carrying away with him some appreciation of the scientific method and of the way in which progress is made. The tragedy comes only when the misfit through bad judgment or advice, continue to go through the motions of research instead of striving for a career in other directions.

From another group may be expected accurate observation particulary valuable in establishing new facts or in confirming the results of others. Thus every discovery of a new therapeutic method must be subjected to widespread tria and on the results of such trial, finally accepted or rejected. Much of this trial is quite unscientific but there are now sufficient numbers of scientifically trained observers to make possible the rapid evaluation of any newly introduced therapeutic method, so that the issue does not remain long in doubt. Many of these observers are clinicians scientifically trained who find time in the busy routine of practice to observe accurately and their contributions to medical knowledge must not be undervalued.

Still another group, working either in the laboratory or in the clinic are capable of painstaking contributions by what may be called the analytic method. This method which is the one employed by the majority of established investigators varies from the minor set piece of research, the German arbeit, to elaborate investigations having as an object the analysis of natural phenomena with the hope of re-synthesis and complete understanding of the subject under understanding of the subject under investigation. It may be and usually is employed by the investigator well trained in scientific method but lacking in original ideas and from the method, come many pieces of solid contribution to knowledge. The only danger here lies as pointed out by Claude Bernard in attributing too much power to method as a substitude for ideas.

Finally come the favoured few in whom the value of idea transcends all questions of method. Theirs are the intellects which are so endowed as to perceive and grasp the subtle and delicate relations which exist but of which the average mind is not aware. An idea

arises in such a mind which "may be a sort of intuitive anticipation of successful research." From these few and from these only may we expect great and strikingly original contributions to medicine. That they must use the methods common to all investigators in establishing the truth of their ideas is of course understood, but the place of method in their lives is distinctly subordinate to the idea—and rightly so !"

PROFESSIONAL RECORDS AND CONTRIBUTIONS

May I, in this connection, beg leave to draw your attention—especially of those who are now working in Public institutions maintained by the state, Local bodies, or private charity—to the great need of keeping careful records of their cases and experiences so as to serve as valuable material for investigation and research. It is also very much to be desired that whenever anyone finds something likely to be useful or interesting to the profession, he may send a contribution on the topic for publication in the medical journals which may be available for the purpose, as for example, *The Vaidya Sammelana Patrika* published under the auspices of the Mahamandal itself.

PROFESSIONAL MEETINGS

There is also another most desirable way through which a proper atmosphere for the promotion of research can be maintained and that is by the organisation of periodical meetings at which physicians may meet, discuss, exchange thoughts and learn from each other. This, you may remember, is one of the methods by which the ancient preceptor Charcka counselled us to keep ourselves up-to-date and progressive. The words in which the Father of our Medicine has reffered to this topic run as follows :

भिषक् भिषजा सह संभाषेत । तद्विद्यसंभाषा हि ज्ञानाभियोगसंहर्षकरी भवति । वैशारद्यमपि चाभिनिर्वर्तयति । वचनशक्तिमपि चाधत्ते । यशश्चाभिदीपयति । पूर्वश्रुते च सन्देहवतः पुनःश्रवणात् श्रुतसंशयं अपकर्षति । श्रुते चासन्देहवतो भूयोऽध्यवसायमभिनिर्वर्तयति अश्रुतमपि च कंचिदर्थं श्रोत्रविषयमापादयति ॥

"A physician should discuss with a physician. When one discusses with another that is possessed of a knowledge of the same science, such discussion leads to increase of knowledge, understanding and happiness. It makes for greater expertness, promotes the power of lucid exposition and enhances one's reputation. Doubtful points are cleared and certainty gained in respect ef certain other points. Certain matters unheard of before become known as a result of such discussions."

COLLECTION OF UNPUBLISHED MANUSCRIPTS AND COMPILATION OF REVISED TEXT-BOOKS

It is a matter for gratification that the importance and urgency of this problem is now fully realised. Extant works have still to be collected, catalogued and indexed. Existing text-books have to be revised and rendered complete and up-to-date by incorporating into them whatever has been found useful in other schools of Indian Medicine such as the Unani and the Siddha as well as in Western Medicine. You will be pleased to learn that the Government of Madras have now appointed a committee to publish a series of text-books based on the vast mass of the hitherto unpublished literature of the Siddha School or the Agastya Sampradayam, the rich treasures of which have, till now, remained unknown and unknowable to all except a few Tamil scholars in South India.

OTHER TOPICS

There are many other topics (prominent among which may be mentioned the question of Medical registration for practioners of Indian Medicine) which I leave untouched on this ocassion, because I have already dealt with them at some length in the Report of the Madras Committee on the indigenous systems of Medicine, and have now really very little to add.

There have recently arisen some good people who apparently think that the easiest way of proving that Indian Medicine is unscientific is by monopolising the use of the word "Scientific Medicine" for use in connection with Allopathic or Western Medicine only. This being secured, the rest of argument becomes irresistible as may be seen from the following :

Western Medicine alone is scientific medicine ; that which is not Western Medicine is not scientific medine ; Ayurveda is not Western Medicine ; therefore Ayurveda is not scientific Medicine ; therefore Ayurveda is unscientific—Q. E. D.

After this stunning proof, one is scarcely surprised at the following performance which may appear to common folk, a extraordinary contradiction contradiction but really it is uncommon fun which may be stated thus :

If a follower of the Allopathic school adopts or improves upon certain teachings of Indian Medicine in regard to the treatment of dysentery or leprosy, that of course is proof of scientific open-mindedness which is willing to learn from whatever source useful knowledge may come. If, however, an Ayurvedist does likewise in respect of

certain teachings of Western surgery, that is prove, not of scientific open-mindedness, but of the habit of invading into or poaching upon the preserves of another.

Then, again, we have other "lovers of Ayurveda" who are deeply distressed because present day Ayurveda has ceased to be the "pure" Ayurveda of the recent past when it confined itself to medical practice but has now become "defiled" by the touch of surgery. How delighted they would be to preserve for us for ever the "purė" Sanskrit pandit qualified to be appointed as Sanskrit pandit qualified to be appointed as Sanskrit teacher on Rs. 30 to 40 a month and to save us from the "hybrid" type represented by Ganapati Sastri on the one hand and Bhandarkar on the other?

There are also some who would still argue that it is not possible to build up a system of Indian Medicine, which, while founded on the solid bed-rock of Tridosic teaching and practice, would, at the same time, incorporate into its structure whatever has been found useful in other system. To these, we are now fortunately in a position to return the best of all posssible answers, *viz.*, that what has been argued to be impossible of achievement has already been achieved and that therefore, the arguments have to be re-considered in the light of the poet's saying :

न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन निवार्यते ॥

I am also now in a position to declare from my own experience at the Government School of Indian Medicine at Madras that practitioners of Indian Medicine *could* successfully treat not only chronic cases—a fact which is generally admitted—but acute cases as well, a fact which is not yet so generally admitted and is even doubted in some quarters. We have treated all sorts and varieties of cases both at our Outpatient and In-patient dapartments. When we started work, provision was made for a maximum out-patient attendance of about 150 per day. Within a few mouths, the attendance rose to over 500 per day and now we are ranging between 700 to 900 per day and on certain days the figures have gone to over a thousand even. In the In-patient department also, we have received and treated, not only chronic cases, (certain types of which specially seek admission at our institution) but also acute ones like Typhoid, Pneumonia and the like where also the results have been quite satisfactory. The plan adopted in the Government School of Indian Medicine has, to my mind, this inestimable advantage that Ayurvedic, Siddha, Unani and allopathic experts work, side by side, in close co-operation with one another, to the greater advantage of patients, students, physicians as well as the cause of medical science itself. You may remember that

this was exactly the plan adopted at the Ayurvedic and Unani Tibbi College at Dehli by that great patriot-physician the late Hakim Ajmal Khan of unforgettable memory whose premature death was so great a loss to the cause of Indian advancement in general and of Indian Medicine in particular. It seems to me that, wherever possible, it would be most desirable to plan our medical institutions on such a model, so that, sooner or later—let us hope it will be sooner than later—we shall achieve the ideal of having a unified system of medical science in which all existing systems will take their place as integral parts of one synthetic whole.

Our immediate need is to train, as rapidly as possible, a large number of qualified practitioners of Indian Medicine trained to be efficient in dealing with both medical and surgical cases. This means more and well equipped schools of Indian Medicine with efficient professors; more and well equipped hospitals with efficient physicians; and adequate provision for Laboratories, Museums, Pharmacies, Libraries, Herb-gardens, and the like. This, in turn, means considerable sums of money, for the raising of which appropriate means and machinary have now to be devised,

A CENTRAL FUND

One of our most urgent needs is the organisation of a central fund for promoting Research, publications and other items of the programme indicated in the foregoing paragraphs. We have, in the organisation of the Indian Medical Research Fund, a model on which our own organisation may be planned. If we make a good beginning and show that we mean business, we may reasonably hope for our resources being enhanced by substantial grants from state funds and encouraging donations from public trusts and private charities.

HEALTH-EDUCATION AND HEALTH-CULTURE.

Study and research concerning the cause and cure of diseases, the prevention of ill-health and the promotion of health are doubtless essential in order that our knowledge in regard to these topics may grow from more to more; but, it is also essential that methods should be devised whereby a portion of such knowledge as is necessary is communicated to each individual in the community in order that he may make it his own and co-operate intelligently in carrying out measures intended to prevent diseases and promote health; for, without such intelligent co-operation of each individual, there will be many a weak link in our chain of preventive medicine and public health;

Commissioner of Health for Western Australia, who is in a position to speak authoritatively on this subject. Below is a summary of his views, put in his own words as far as possible.

'The results (of the present-day methods) are appallingly slow; the ignorance of the general public in regard to even the simplest principles of Hygiene is still colossal; *if we have succeeded in imparting the knowledge, we have not succeeded in pursuading the great majority of individuals to apply it.* If facts are pushed before them, they wake up temporarily and take notice, but tend to forget readily and fall back into ignorance. Our literature pushed under their noses, is casually read and thrown away. Our lectures are attended by the few and for the most part by those already so instructed in the subject as not to need them. Our lantern slides are viewed out of curiosity and if amusing, are appreciated for the laugh they invoke rather than for the message they convey. And so, much of our time is wasted.

It is all so temporary in its effect and so casual and infrequent in its presentation. It does not arouse permanent interest nor retention. In other words it does not stick.

Now the question is to consider what it is that has led to this unsatisfactory result. The Answer is that it is because we approach the question in the wrong way, in that we endeavour to teach it as we would a science, academically, instead of trying to develop it as a sense, the Public Health sense or conscience if you like, a sense of right and healthful communal and individual living.

Now, how may this sense be developed? The answer is that it *must originate with first impressions very early in life.* If the parents themeselves had this public health sense and knowledge developed from their infancy, they would unwittingly develop it in their offspring. The imitative infant watching its mother convey food to the mouth might equally well watch her drive away the flies from the milk jug and cover the jug. During this infant stage, the parents should give the lead. During the next stage, the teachers of the very young can do a lot through stories, nursery rhymes and the like. Why not invent stories with a definite health value, stories that will, whilst being of a nature to hold the child's interest and remain in his memory, convey real facts and principles of value in later life. What an opoortunity we are missing! Just think how tellingly one might describe the adventures of a ghoulish fly which-laid its eggs in the manure heap of the palace stable; how out of these eggs came a legion of other ghoulish flies intent upon slaying the princess's baby; how they fed upon filth which they carried to the golden cradle and with which they contaminated the babys' lips. The baby thereupon

sickens and the distracted princess calls for a knight who will go forth and swat all flies or better still destroy all fly-breeding manure heaps; and then, think, too, of the illustrations that may accompany this story and help to keep the moral alive for evermore; so too, think of the nursery rhymes; what an opportunity to hass up our hygiene in neverto-be-forgotten forms. If we wish to see that every individual has his health-sense so welltrained that living and reacting hygienically under all circumstances is with him a matter of unconscious behaviour and that his pursuit of hygienic acts and avoidance of unhygienic ones are both as a matter of correct habit, then, it is necessary to *begin Health-education and Health-training right from the very commencement of infancy*—through nursery rhymes and songs for little children; through poetical or musical recitations, memory-aiding jingles and interesting stories for the children at the primary school stage; through themes in drama, poetry, prose. music, painting, cinemas, etc , for adolescents, aided in all cases by right examples of parents, guardians, teachers and others who may serve as examples. The fundamental idea shouid be that in every case, health knowledge should be presented in a manner which is interesting enough to grip the attention of the child and make a lasting impression on his memory: it should be unobstrusive yet persistent; not occasional, academical lessons chilling to the child and divorced from his life-activities but regular events of his daily routine, so planned that by constant practice the child acquires the *habit* of right living as a joyous and almost unconscious function of his life-activity. It is in our power to revive the ancient necessary rhymes and songs, stories and ballads, the Ahara-vihara Vidhis and the like in a manner that are suited to modern conditions; we have excellent models as, for instance, the chapters on Dinacharya (rules of daily conduct) Ritu-charaya (rules for the different seasons) and the like, which are found in all ancient books on Medicine, not to speak of the wise sayings scattered in many other sastraic works, specially the Grhya sutras and Smrtis such as those of Manu, Yajnavalkya and Parasara. There are certain unique excellences in our ancient models which, one would very much wish, modern medicine may follow with advantage; and one of them is this; the ancients loved to express themselves through verses which were at once classic works of mellifluous poetry as well as standard works of medical science, with the result that their appeal was lasting and widespread; the verses were easily and eagerly committed to memory and treasured up as permanent possessions not only by students of Medicine but my many others as well. Another and a most precious feature of our ancient health-maxims lies in the

very strong emphasis that is laid everywhere on the profound truth that the health of the body is closely interrelated with the health of the emotions and the mind and that, therefore, it is vitally necessary to provide the latter with the Ahara (food) and Vihara (practices) that they need as it is to provide the physical body with the food and practices it needs. Time there was and that not long ago when it was the fashion to hold up to ridicule the ancient Ayurvedic teaching that certain emotions like anger, sorrow, fear, hatred, jealousy, etc., would make for ill-health while certain others like affection, charity, contentment, compassion, joy, etc., would make for good-health. This was ridiculed as evidence of the incurable habit of our ancients to go about mixing up scientific laws with rules of ethics on the one hand and superstitious beliefs on the other. Fortunately for all concerned, the times are now fast changing and the discoveries of modern science are seen to confirm the ancient teaching; modern science is now prepared to explain that with every fit of anger or rage, there will be a corresponding unhealthy stimulation of the adrenal gland which, if frequently repeated, may lead to such exhaustion of the affected gland as to result in, say, neurasthenia. Modern Science seems to be prepared to look for even epidemics of emotional disorders as, for instance, in the statement of an American doctor that "when stocks go down in New York, diabetes goes up". It will perhaps be explained that widespread financial crash results in widespread emotional crash of a specific nature which in turn leads to a correspondingly widespread pancreatic bankruptcy resulting in an epidemic of diabetes.

Far from ridiculing the ancients as persons who knew no better than to mix up health and ill-health with the practice and nonpractice of the social and moral virtues, Modern Science itself may well be prepared to preach an "ethical" sermon, somewhat in the following strain :

"If you habitually allow yourself to get into fits of anger or rage, the result will be, among other things, unhealthy stimulation of your adrenal glands, leading perhaps to neurasthenia. If, at the time of taking your food, you habitually get into temper as often as you can, you will surely have to pay the penality for it, in the shape of dyspepsia and such other troubles. If, on the contrary, you are ever affectionate and cheerful, radiating sunshine wherever you go, you may safely trust to your own glands—both the ductless and the ducted, to keep you ever young. In brief, judged even from the most materialistic standpoint of sheer physical well-being it will pay you exceedingly well to practice altruism, sobriety, cheerfulness, affec-

condition expressed in the following manner of Charakacharya :

काम्यं यशस्यमायुष्यं अलक्ष्मीघ्नं प्रहर्षणम् ।
श्रीमत्पारिषदं शस्तं निर्मलांबरधारणम् ॥
मेध्यं पवित्रमायुष्यं अलक्ष्मीकलिनाशनम् ।
पादयोर्मलमार्गाणां शौचाधानमभीक्ष्णशः ॥

Where else, again, can we find the following recommendations for the practice of the social and moral virtues laid down as being essential for the promotion of Physical Health, as has been done by our Vagbhatacharya :

हिंसास्तेयान्यथाकामं पैशुन्यं परुषानृते । संभिन्नालापव्यापादमभिध्यादृग्विपर्ययम् ॥
पापं कर्मेति दशधा कायवाङ्मनसैस्त्यजेत् । आत्मवत् सततं पश्येत् अपि कीटपिपीलिकम् ॥
अवृत्तिव्याधिशोकार्तान् अनुवर्तेत शक्तितः । उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेप्यरौ ॥
संपद्विपत्स्वेकमनाः हेतावीर्ष्येत् फले न तु । अनुयायात्प्रतिपदं सर्वधर्मेषु मध्यमाम् ॥
जनस्याशयमालक्ष्य यो यथा परितुष्यति । तं तथैवानुवर्तेत पराराधनपण्डितः ॥
पूर्वाभिभाषी सुमुखः सुशीलः करुणामृदुः । नैकः सुखी न सर्वत्र विश्रब्धो न च शंकितः ॥

Heirs to such noble traditions and excellent teachings, may not the public rightfully look to you to re-edit the ancient Achara-Vidhis laid down for the conditions obtaining in the specious and leisurely days of old with its peculiar social, economic and other environments so as to adapt them to the much altered conditions of the rural and urban lives of our modern day ? There are none who, by their vast learning, noble traditions and expert knowledge, are so well fitted to undertake this work of immense benefit to the public good as the members of the All-India Ayurveda Mahamandal. It is also a consummation devoutly to be wished that, progressing along the lines of Health-culture indicated above, a day may soon come when the value of a physician and his institution would be judged, not by the large numbers and variety of the sick seeking relief therein (a test which, under present conditions, we cannot altogether supercede) but rather, by the progressively dacreasing number of those who suffer from ill-health in that neighbourhood. It is to take steps to hasten the advent of such a happy day, to offer our thanksgiving for all the good that has accrued to us during the past year and to dedicate ourselves for continuous work during the year to come, that we are met here to-day in this thrice-sacred region of Janasthan, sanctified by the lotus-feet of the blessed Sita, rendered holy by the presence of Tryambakeshvara, the remover of all ills, and memorable to Sri Ramachandra, whose reign on earth has been referred to, by the ancient of poets, as being characterised by a total absence of all ills that humanity is heir to.



वैद्यरत्न राजवैद्य पं. रामप्रसादजी. पटियाला।
अध्यक्ष, नि. भा. व. २० वैद्यसंमेलन कराची (सन १९३०)।
अध्यक्ष, पंजाब प्रान्तीय १ वैद्यसंमेलन लाहोर (सन १९२८)

निखिलभारतीय विंशतितम वैद्यसम्मेलनाधिवेशन कराचीके सभापति,

वैद्यरत्न श्री पं० रामप्रसाद शर्मा राजवैद्य-पटियालाका

अति संक्षिप्त परिचय।

(एक प्रतिष्ठित सम्वाददाता-द्वारा)

पटियाला स्टेटके टकसाल नामक ग्राममें संवत् १९३९ में पण्डित द्वारिकादासजी उपाध्यायके यहाँ पं० रामप्रसादजी पुत्ररत्नका जन्म हुआ। आपके वंशमें संस्कृत-विद्याका प्रचार परम्परासे चला आता है। आप गौड़ ब्राह्मण हैं। आयुर्वेदके अतिरिक्त आप व्याकरण और दर्शनशास्त्रके भी योग्य पण्डित हैं। आपने चरकादि कई ग्रन्थोंका भाषानुवाद किया है। संस्कृतमें 'आयुर्वेदसूत्र' और अष्टांगहृदयपर विस्तृत टिप्पणी लिखी है। आप आयुर्वेदके प्रचार और उन्नतिमें सदा यत्नवान रहते हैं।

इस समय आप पटियाला राजधानीके आयुर्वेद-विभागमें सबसे प्रधान और राज्यके राज्यवैद्य हैं। आपकी चिकित्सा और ग्रन्थ आदि देखकर भारतीय गवर्नमेंटने आपको सन् १९२३ में 'वैद्यरत्न' पदवीसे विभूषित किया है। आप गतवर्ष पंजाब प्रान्तीय वैद्यसम्मेलनके सभापति थे। लाहौर और बम्बई आदिकी जनता और वैद्योंने आपको कईवार मानपत्र देकर सम्मानित किया है। इस वर्ष आपही सर्वसम्मतिसे निखिलभारतीय वैद्यसम्मेलन कराचीके सभापति चुने गये हैं।

वै० स० प० नवम्बर १९२९ से उद्धृत।

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

निखिलभारतीय विंशतितम वैद्यसम्मेलनाधिवेशन कराचीके सभापति,

श्री वैद्यरत्न पं० रामप्रसाद शर्मा, राजवैद्य, पटियालाका अभिभाषण ।

नमामि गिरिजाकान्तं देवं वाग्भटदं शिवम् ।
प्रसादाद्यस्य वालोऽपि वाग्भटेषु विशिष्यते ॥ १ ॥
यथार्थसुखदं शुद्धं वेदानां सारमुत्तमम् ।
अनादिं शाश्वतं पुण्यमायुर्वेदं नमाम्यहम् ॥ २ ॥
आयुर्वेदप्रचारार्थं यतन्ते ये भिषग्वराः ।
द्वेषमानादिकान् त्यक्त्वा तेभ्यो भक्त्या नमाम्यहम् ॥ ३ ॥

माननीय भद्र पुरुषो, आयुर्वेदका हित करनेवाले दिव्य वन्धुओ, मुझ-समान साधारण भ्राताओ और होनहार युवक वैद्य भाइयो !

आपने जो आज भारतके इस प्रसिद्ध नगर कराचीमें अखिलभारतीय वैद्य-महासभाके सभापतित्वका मानभरा आसन देकर मुझे सम्मानित किया है। इसके लिये मैं कृतज्ञ हूँ, और आपके दिये हुए इस मानको नम्रतापूर्वक ग्रहण करता हूँ।

मैं समझता हूँ। इतनी बड़ी महासभाके सभापतित्वके ग्रहण करनेकी योग्यता मुझमें नहीं है। परन्तु जिस पुरुषपर आप-जैसे योग्य समूहके इस प्रकार उदारभाव हों, इतने बड़े-बड़े वैद्योंका संघ अपने यथार्थ सहयोगसे उस सामान्य पुरुषसे जो कार्य्य कराना चाहे करा सकता है। मुझे विश्वास है कि आप-जैसे उदार और योग्य आयुर्वेद प्रेमियोंकी कृपासे ही मैं यह सेवा करनेमें सफलता प्राप्त कर सकूँगा। मैं अपनी इतनी बड़ी महासभाका आशीर्वाद चाहता हूँ, जिससे मेरा चित्त स्वार्थ या रागद्वेषकी ओर न जाकर आयुर्वेदकी शुद्ध सेवामें संलग्न रहे।

माननीय सत्पुरुषो ! आपका यह पुण्य समागम और सर्व हितकर सम्मेलन तथा स्वार्थत्यागपूर्वक प्रेमसम्मिलन मुझे जिस सुख-शान्ति और आनन्दका अनुभव करा रहा है, वह किसके लिये सुखप्रद नहीं हो सकता। मैं इस समारोहको देखकर यह अनुभव कर रहा हूँ कि आयुर्वेद-प्रेमी और आयुर्वेदज्ञोंके सिरका आपत्ऋण कम होनेका समय आ रहा है।

मान्यवर सत्समुदाय ! मैं सर्वाङ्गसम्पूर्ण आयुर्वेदका यथार्थ ज्ञाता न होते हुए भी आयुर्वेदका भक्त हूँ। मुझे विश्वास है संसारका सुख आयुर्वेद-द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। सच्चासुख मन और शरीरकी नीरोगितामें है, और यह सुख संपूर्ण संसारको आयुर्वेदके प्रचार और तदनुकूल आचरण करनेसे ही प्राप्त हो सकता है।

ऋषियोंने आयुर्वेदको अनादि माना है। महर्षि चरक कहते हैं—

न हि-आयुर्वेदस्यअभूतोत्पत्तिरुपलभ्यते अन्यत्रअवबोधोपदेशाभ्याम्। एतद्ध द्वयमधिकृत्य-उत्पत्तिमुपदिशन्त्येके।"

अर्थात् आयुर्वेदका ब्रह्माको स्मरण हुआ, ब्रह्माने प्रजापतिको उपदेश किया। इत्यादि वाक्योंके अतिरिक्त आयुर्वेद किसने बनाया यह कहीं प्रतीत नहीं होता। आत्रेय महर्षि कहते हैं कि इस स्मरण और उपदेशकोही कोई उत्पत्ति मानते हैं; परन्तु यथार्थमें तो आयुर्वेद अनादि ही है।

चरकसूत्रस्थानके तीसवें अध्यायमें लिखा है—

'चतुर्णां ऋक्-सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदेऽस्योक्तिः।'

अर्थात् चारों वेदोंकी आत्माभूत आयुर्वेदको अथर्ववेदमें विशेष रूपसे वर्णन किया है। इत्यादि।

धन्वन्तरिजीने सुश्रुतमें कहा है कि—

'अनुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रञ्च कृतवान् स्वयम्भूः।'

प्रजाको उत्पन्न करनेसे पहलेही लक्ष श्लोकोंमें और सहस्र अध्यायोंमें ब्रह्माने एक संहिता आयुर्वेदकी बनाई थी। इस वाक्यमें भी ब्रह्माने एक संहिताका निर्माण किया, इतनाही कहा है, आयुर्वेदकी उत्पत्तिका वर्णन नहीं है। ऐसे आप्तवाक्योंसे आयुर्वेदका अनादि होना तो निश्चयही है।

वेदोंमें भी आयुर्वेदके मंत्र इस प्रकार बहुतसे देखे जाते हैं। जैसे—

'या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शंतमा वृषणो या मयोभु। यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं चयोश्च रुद्रस्य वश्मि। ऋग्वेद २।३३।१३।

हे मरुतः रुद्रपुत्राः वो-युष्माकं, या-यानि, शुचीनिपवित्राणि, सन्ति। हे वृषण-कामाना वर्षितारो मरुतः, या-यानि च युष्मदीयानि भेषजानि, शंतमा-अतिशयेन सुखकराणि, या-यानि च भेषजानि मयोभु-मयसः सुखस्य भावयितृणि, नोऽस्मत्पिता मनुः यानि भेषजानि युष्मदीयानि वृतवान् ता-तानि रुद्रस्य शंचयोश्च यच्छमनीयानां रोगाणामुपशमनं यावनीयानां भयानां पृथक्करणं तदुभयं च वश्मि कामये।

अर्थात् हे रुद्रपुरुषो ! आपकी जो पवित्र औषधियें हैं। हे कामना पूर्ण करनेवाले मरुतो ! जो आपकी अधिक सुख और आरोग्य देनेवाली औषधियें हैं, तथा जिन सुखके अनुभव करानेवाली आपकी औषधियोंको हमारे पिता मनुजीने ग्रहण किया था, वह सब कल्याणकारी औषधियें एवं जो दोषोंके सञ्चय और रोगरूपी म्लेच्छोंके भयको

दूर करनेवाली शमन और शोधन औषधियें हैं, हम उनको ग्रहण करनेकी आपसे इच्छा करते हैं।

अश्वावती सोमावती मूर्जयन्ति मुदोजसम् आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये।
ऋग्वेद १०।८।९७।७।

ऋग्वेदमें लिखा है कि अश्वावती (वाजीकरण औषध), सोमावती (आयुवर्द्धक औषध), ऊर्जवती (ओजवर्द्धक औषध) और ऊदोजस (बुढ़ापे और रोगको दूर करनेवाली) औषधियें होती हैं। यह सब रोग और मृत्युको दूर करनेके लिये प्रयोग की जाती हैं। इस प्रकार ऋग्वेदके बहुतसे मन्त्रोंमें आयुर्वेदका वर्णन है। ऐसे ही—

'यद्वः सहः सहमाना वीर्यं यच्च वो बलम्। तेनेममस्माद् यक्ष्माद् पुरुषं मुञ्चत-ओषधीरथो कृणोमि भेषजम्। अथर्व० ८।७।५।

अथर्ववेदमें कहा है कि वैद्य रसवीर्यसंपन्न औषधको लाकर रोगीको देते समय अपने मनके भाव इस प्रकारके बनावे कि हे औषध ! जो तेरे रस, वीर्य, बल आदि रोगनाशक गुण हैं, तू उन अपने गुणोंसे इस पुरुषको इस यक्ष्मासे बचा दे इस कारण मैं तेरा औषधरूपसे प्रयोग करता हूँ। यहाँ यक्ष्म शब्दसे विकृत हुवे वातादि दोष; ज्वरादि रोग और राजयक्ष्मा, इन सबका ग्रहण है। जैसे चरक विमान अध्याय छठेमें लिखा है—

"दोषा एपि रोगशब्दमातङ्कशब्दं यक्ष्मशब्दं दोषप्रकृतिशब्दं विकारशब्दं च लभन्ते। व्याधयश्च रोगशब्दमातङ्कशब्दं यक्ष्मशब्दं दोषप्रकृतिशब्दं विकारशब्दं च लभन्ते।"

इस प्रकार अथर्ववेदमें तो आयुर्वेदका विशेष वर्णन है ही; जो विस्तारके भयसे यहाँ अधिक न कहकर इतना कह देता हूँ कि वेदोंमें आयुर्वेदका विशेष वर्णन है और विद्वानोंने इसपर बहुतसे लेख भी लिखे हैं, जो संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजीमें छपे हुए मिल सकते हैं। यह तो हुई वेदोंकी बात, न्याय-दर्शनमें गौतमजीने भी लिखा है—

"मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्।"

इन सब वाक्योंसे आयुर्वेदको वेदोंने और ऋषियोंने किस प्रकार प्रामाणिक माना है और अनादि माना है, इसको तो आप सबही समझ सकते हैं।

अब रहा आयुर्वेदका सम्बन्ध, सो सम्पूर्ण प्राणीमात्रसे है, क्योंकि शरीर और जीवात्माके योगको जीवन कहते हैं। वह जीवन जितने समय तक बना रहे, उसको आयु कहते हैं। आयुके यथार्थ विज्ञानको आयुर्वेद कहते हैं, सो इस निश्चयात्मक आयुके विज्ञानका सम्बन्ध केवल वैद्योंसे ही नहीं; किन्तु सम्पूर्ण आयुधारी राजा, प्रजा, धनी, रोगी, नीरोग, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, वृद्ध, बाल और सब मतमतान्तरसे समानरूपसे है; क्योंकि आयुर्वेद सबकोही समभावसे हितकारी है।

सतयुगके आदिमें मनुष्य सत्य, ब्रह्मचर्य्य, तप आदिके कारण दीर्घायु, नीरोग, तेजस्वी, स्मरणशक्तिवाले और धारणशक्तिवाले होनेसे दिव्यज्ञानयुक्त होते थे। जब

सतयुग जानेलगा, तो ब्रह्मचर्य्य, तप आदिके क्षीण होनेसे रज और तमकी वृद्धि होकर मनुष्योंका तेज, धारणा और स्मृति क्षीण होने लगी। भविष्यत्के जाननेवाले ऋषियोंने मनुष्योंको अधःपतनसे बचानेके लिये जब विचार किया था, तब सबसे प्रथम कपिलदेवजीने सांख्यशास्त्रका कथन किया। सांख्यशास्त्रमें प्रकृतिपुरुषका वर्णन और प्रकृतिके विकारोंकी संख्या महत्तत्त्वादिकोंके आविर्भाव होनेका क्रम कथन किया, और प्रकृतिपुरुषके ज्ञान-द्वारा दुःखोंसे मुक्त होनेका उपाय बतलाया।

फिर प्रकृतिके महतत्त्वादि विकारोंसे उत्पन्न हुवे पञ्चमहाभूतोंमें एकसे दूसरेका क्या सम्बन्ध है और उनमें क्या क्या विशेषताएँ हैं, पुरुषके मन, आदिसे इनका क्या सम्बन्ध है, इन सब विशेषताओंके ज्ञानको कणादऋषिने अपने वैशेषिकशास्त्रमें कह डाला।

इसके अनन्तर सांख्यमें और वैशेषिकमें कहे हुए विषयोंको किस प्रमाणसे किस प्रकार, किस विकाशक्रमसे साफ किया जाए इसको मुख्य रखते हुए गौतमजीने प्रमाण-प्रमेय आदिका वर्णन करते हुए आत्मा, मन, कर्म, जन्म, मरण आदि विषयोंके ज्ञानको स्पष्ट किया और 'प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः' को सिद्ध करते हुवे मनुष्यके कर्माधीन सुख-दुःख और 'कर्मनिमित्तं' जन्म यह सब कह डाले।

परन्तु यह सब कुछ ज्ञान होजाने पर भी आत्माको किस प्रयोगसे बहुत ऊँचा बनाया जाए और मनुष्यमें किस प्रकार अणिमा, लघिमा, आदि आदि सिद्धियें आ सकती हैं तथा मनुष्य कैसे परमात्मामें लीन हो सकता है। इस विषयको लेकर पतञ्जलिजीने योगशास्त्रका कथन किया। और योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। तदात्मा-स्वरूपेवस्थानम्। अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। आदि कह दिया। परन्तु यदि कोई लक्ष्य सन्मुख न रहनेसे अभ्यासमें कठिनाई पड़े, तो दूसरा उपाय ईश्वरप्रणिधानाद्वा भी कह डाला। अर्थात् एक उपाय यह भी है कि यदि लक्ष्यरहित अभ्याससे चित्त-को न टिका सके, तो परमेश्वरमें चित्त लगाओ।

अब ईश्वरमें कैसे मन लगावें और उस सर्वव्यापक ईश्वरका पूजन उसकी सृष्टिकी शुद्ध-सेवाके अतिरिक्त कैसे करें, इसको श्रीजैमिनी महर्षिने मीमांसाशास्त्रमें यज्ञ, पूजा आदि कर्मकाण्डके विधानसे स्पष्ट करके कह डाला।

इन सब बातोंके हो जानेके अनन्तर आत्मज्ञानका परमसुख प्राप्त होकर निर्वैर, समदृष्टि और परमशान्ति प्राप्त होनेसे मनुष्य सब झंझटोंसे विमुक्त कैसे हो सकता है, यह सब व्यासदेवजीने वेदान्तशास्त्रमें कथनकर दिया।

इस प्रकार इन छः शास्त्रोंने सब कुछ भी कहा, तब भी ऋषियोंके पवित्र जीवन-व्रत नियम आदिमें रोगविघ्न करनेही लगे। तब उन तप और तेजसे प्रकाशमान् ऋषियोंने इन्द्रकी शरण ली और इन्द्रसे अनादि आयुर्वेदको लाए और यथार्थ सुखके लिये इसका प्रचार करने लगे, क्योंकि आयुर्वेदके उपदेश-द्वाराही शरीर और मन

नीरोग रह सकते हैं। मन और शरीरके नीरोग रहने परही ऋषियोंके यम, नियम चल सकते हैं और गृहस्थियोंके भी सब कृत्य नीरोगिता परही निर्भर हैं।

जिस विषयको छः दर्शनोंने बड़े आडम्बरके साथ कहा था, वह आयुर्वेदका एक साधारण अङ्ग था, क्योंकि आयुर्वेदने बतला दिया कि "तद्दुःखसंयोगो व्याधयः इत्युच्यन्ते" अर्थात् जिस आत्माके सुखकेलिये सबशास्त्र यत्न करते हैं, उस आत्माका दुःखके साथ संयोग होनाही व्याधियाँ कही जाती हैं। वह व्याधियाँ अगण्य होते हुए भी शारीरिक, अगन्तुक, मानसिक और स्वाभाविक, इन भेदोंसे चारप्रकारकी श्रेणियोंमें विभक्त होती हैं।

इनमें आहार-विहार-जनित वातादिदोषप्रकोपमूलक, ज्वरातिसारादि रोगोंको शारीरिक रोग कहते हैं।

वाहरसे आकर शस्त्र, चोट आदि लगने तथा सांप-वृश्चिक आदिके दंश और विषयुक्त वायु आदिके संसर्गसे होनेवाले रोगोंको आगन्तुक व्याधि कहते हैं।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्षा, विषाद आदि रजोगुणतमोगुणके विकारोंको मानसिकव्याधि कहते हैं।

एवं जन्म-मरण आदि स्वाभाविक रोग कहे जाते हैं। इन सब व्याधियोंकी निवृत्तिके लियेही भगवान्ने आयुर्वेदका प्रचार किया है। आयुर्वेदकेही छोटे-छोटे अङ्ग, जो मानसिक तथा स्वभाविकरोगोंकी निवृत्तिका उपायभूत हैं। वह छः दर्शनशास्त्र कहे जाते हैं, जिनको तर्क-वितर्कके बलपर टीका-टिप्पणी करनेवाले विद्वानोंने बहुत गम्भीरतामें डालकर केवल वादविवादमूलक आडम्बर बढ़ा डाला है। अस्तु, यह भी आयुर्वेदके अङ्गभूत दिव्यशास्त्र हैं। इसही मानसिकरोग निवृत्तिको चरक शारीर अ. ५ में इस प्रकार लिखा है।

लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि पश्यतः।
परावरदृशः शान्तिर्ज्ञानमूला न नश्यति॥ १॥
पश्यतः सर्वभावान् हि सर्वावस्थासु सर्वदा।
ब्रह्मभूतस्य संयोगो न शुद्धस्योपपद्यते॥ २॥
नात्मनः कारणाभावाल्लिङ्गमप्युपलभ्यते।
स सर्वकारणायोगान्मुक्त इत्यभिधीयते॥ ३॥
विपापं विरजः शान्तं परमक्षरमव्ययम्।
अमृतं ब्रह्म निर्वाणं पर्य्यायैः शान्तिरुच्यते॥ ४॥

अर्थात् सम्पूर्णजगत्के भावोंको अपनेमें और अपने सम्पूर्णभावोंको जगत्में देखते हुवे तथा आत्मा और प्रकृत्यादि अन्यभावोंको यथार्थरूपसे जानते हुवे, जो ज्ञानमूलक शान्ति प्राप्त होती है, वह कभी नष्ट नहीं होती। इस प्रकार ज्ञानपूर्वक शान्ति प्राप्त होनेके अनन्तर उस जीवन्मुक्त, ब्रह्ममय, शुद्ध पुरुषका रजतममूलक दुःखकारी

भावोंसे संयोग नहीं होता। प्रवृत्तिमूलक रजतमय कारणोंके अभावसे मुक्तात्मा पुरुषके दुःखमूलक सब चिह्न भी नहीं रहते। इस प्रकार सब प्रवृत्तिमूलक कारणोंके अयोगसे वह पुरुष मुक्त कहा जाता है। इसी मुक्तिको विपाप, विरज, शान्त, पर, अक्षर, अव्यय, अमृत, ब्रह्म और निर्वाण कहते हैं। इसीका नाम परमशान्ति है।

मेरा विनम्रनिवेदन है कि संसार की कोई भी कितनीही अच्छी संस्था हो, जब उसके अधिकारीवर्गमें यह काम, क्रोध, मान आदि मानसिकरोग उत्पन्न हो जाते हैं। तब उस संस्थासे संबन्ध रखनेवाली विद्याएँ और शुभगुण आपसकी फूटसे नष्ट-भ्रष्ट होजाते हैं। दार्शनिक विज्ञानके तात्पर्य्यको न समझनेवाले लोगोंमें संस्कृतका थोड़ासा ज्ञान हो जानेसे दुर्भाग्यवश विरोध और अहंकार प्रायः बढ़ जाता है। विद्या और देशकी सेवाके लिये ग्रहण किये हुये अधिकारोंका दुरुपयोग होने लगता है। तब व्यक्तिगत विरोध और ईर्ष्या, मान आदि उस पवित्र संस्थाकाही नाश नहीं कर डालते; बल्कि स्वार्थान्ध-पुरुष ईश्वरीय पवित्रविद्याकोही दूषित करदेते हैं। तब उस विद्याके शत्रुओंको उनकी निन्दाका अच्छा मौका मिल जाता है। संसारकी सब समृद्धियें सब विद्याएँ, और सब सम्पत्तियें इन ईर्ष्याद्वेषमूलक व्यक्तिगत विरोधोंनेही नष्टकी हैं। इस कारण मेरी नम्रप्रार्थना है कि संस्थाकी रक्षाके लिये और इस उभयलोकहितकारी आयुर्वेदकी रक्षाके लिये आपसका व्यक्तिगत विरोध संस्थामें काम नहीं लाना चाहिये। मनुष्यसे अनेक अज्ञानमूलककार्य्य होजाते हैं। कभी हम करते हैं कभी हमारे भाई करडालते हैं। अपने दोषोंकी क्षमा माँग लेना और दूसरोंके दोषोंको क्षमाकर देना और सबको प्रेमपूर्वक मिलकर इस सर्वहितकारी आयुर्वेदका हितसाधन करते हुवे, कर्तव्यसे पतित नहीं होना चाहिये; क्योंकि आपसके द्वेषसे नष्ट हुई संस्थाएँ सुधरनी बहुत कठिन हो जाती हैं।

इस समय भारतवर्षके सब प्रान्तोंमें जिस प्रकार आङ्गलभाषाकी उन्नति है, उनके अङ्गभूत डाक्टरी आदि विद्याओंकी भी वैसीही अच्छी अवस्था है। इस विद्याके विद्यालय भी सर्वाङ्गसम्पूर्ण हैं। किसी अवस्थामें संस्कृतकी भी कहीं-कहीं शास्त्री और आचार्य्य तककी परीक्षाएँ होतीही हैं। संस्कृतमें कुछ-कुछ दर्शनोंके पढ़ानेका भी सरकारकी ओरसे प्रबन्ध है। परन्तु जिस आयुर्वेदके अङ्गभूत ये शास्त्र हैं, उसका उस वेदके गुरुत्वयोग्य उतना ऊँचा कोई महाविद्यालय नहीं है। तो भी किसी रूपमें यू० पी०, बिहार, मद्रास और लङ्का आदिकी सर्कारने अन्य विद्यालयोंके साथ-साथ आयुर्वेदकेहितके लिए भी हाथ बढ़ानेका कर्तव्य-पालन किया है। बिहारमें गवर्नमेंट आयुर्वेदिक स्कूल, हिन्दूविश्वविद्यालयमें आयुर्वेदिकविद्यालय, हरिद्वारमें ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज आदिमें सर्कारकी ओरसे आयुर्वेदको सहायता मिलने लगी है। जिसके लिए उन प्रान्तोंकी सर्कारोंको धन्यवाद देना चाहिये। अन्य प्रान्तोंकी सर्कारोंसे अनुरोधपूर्वक प्रार्थना करनी चाहिये कि और प्रान्तोंमें भी वह अपने कर्तव्यका पालन करें।

यद्यपि सम्पूर्ण भारतके प्रान्तोंकी एकही प्रधान शासक शक्ति है और एक जैसी ही सब प्रजा है। प्रजा और शासनका सब स्थानोंपर एक जैसाही सम्बन्ध है। परन्तु भारतके जिस प्रान्तमें प्रान्तीय सर्कारके मिनिस्टर और कौंसिलोंके सदस्य शासन-शक्ति और प्रजाके हितचिन्तक हैं, तथा योग्य हैं, उन प्रान्तोंमें अन्य विद्याओंके साथ-साथ आयुर्वेदका हित होना भी आरम्भ हो गया है। यही कारण है कि यू० पी० और बिहार आदि स्थानोंमें देशीय चिकित्साके हितके लिये सर्कारकी ओरसे यत्न होने लगा है।

इसके लिये संपूर्ण प्रान्तोंके वैद्यों, आयुर्वेदके हितचिन्तकों और योग्य प्रजाजनों तथा राजा प्रजाके हितचिन्तकोंको उचित है कि चुनावके समय राजसभा आदि शासन-सभाओंके लिये दूरदर्शी विद्वान्, राजप्रजाके हितचिन्तक, और आयुर्वेदके हितकारी सदस्योंका चुनाव आरम्भ किया जावे। देखनेमें आता है कि देशीय चिकित्सापद्धतिसे अनभिज्ञ सदस्य सभाओं और कमेटियोंमें अनभिज्ञता और अयोग्यताके कारण ऐसी अनर्गल बातें कह डालते हैं, जिनसे जनतामें क्षोभ और विद्वेष तथा पिता-पुत्रकेसे सम्बन्धवाले राजप्रजामें विद्वेषकी अग्नि उत्पन्न होजाती है। जिससे शासक-शक्ति और प्रजाजनोंके पवित्र और उच्च भाव बिगड़कर अशान्ति फैल जाती है। इस कारण सदैव ऐसी सभाओंके लिये योग्य व्यक्तियोंका ही चुनाव करना चाहिये।

आयुर्वेदके विद्वानोंको यथार्थ मान और अधिकार न मिलनेसे भी आयुर्वेदकी उन्नतिमें बहुत बाधा पड़ती है। इसके अतिरिक्त कुछ अनुचित स्वार्थी भी आयुर्वेदको हानि पहुँचा रहे हैं।

जैसे एक ओर तो पाश्चात्य-विज्ञानके अनुसार चिकित्सक बननेवाले अपने नियमानुसार एफ्० एस्० सी०, बी० एस० सी० पासकर मेडिकल कालेजमें पाँचवर्ष विद्यापढ़कर डाक्टर बनते हैं। दूसरी ओर आयुर्वेद किस वस्तुका नाम है? इसको न जाननेवाले वैद्यराजकी सनदें घर बैठे लोगोंके पास थोड़ासा मूल्य लेकर पहुँचा रहे हैं। इन स्वार्थियोंके इस कार्य्यसेभी आयुर्वेदके जाननेवालोंका ज्ञान सबको न होनेसे हानि हो रही है।

प्रथम तो आयुर्वेद पढ़नेसे पहले व्याकरण, सांख्य और न्याय आदि शास्त्रोंका ज्ञान होना आवश्यक है। फिर अच्छे विद्यालयमें योग्य गुरुओंसे आयुर्वेद पढ़ना और अभ्यास करना सीखना चाहिये। अब तो इस विद्याके साथ साथ अंग्रेजीभाषाभी यथार्थ जानना आवश्यक हो गया है; क्योंकि जब आयुर्वेदके उच्चकोटिके विद्यालयोंमें शारीर-विज्ञान तथा शल्य, शालाक्य आयुर्वेदिक और पाश्चात्यपद्धतिके साथ सिखानेका प्रबन्धभी हिन्दूविश्वविद्यालय काशी, अष्टाङ्ग आयुर्वेद विद्यालय कलकत्ता, दयानन्द आयुर्वेद विद्यालय लाहौर, ऋषिकुल आयुर्वेद विद्यालय हरिद्वार आदि स्थानोंमें

किया गया है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजीभाषा शासकोंकी भाषा है। इसलिये आयुर्वेद-की ध्वनि उनके कानोंतक पहुँचानेके लियेभी अंग्रेजीका ज्ञान आवश्यक है।

क्योंकि आयुर्वेदके प्रचारमें जो-जो हानियाँ अँग्रेजीभाषाके बिना पड़ती हैं, मैं अंग्रेजी न जाननेवाला होनेके कारण उनको यथार्थ अनुभव कर चुका हूँ। इस समय जिन पुरुषोंके हाथमें अधिकार या धन है, प्रायः वे सब अंग्रेजीभाषाके विद्वान् हैं। वें सब प्रकार योग्य होते हुवे भी संस्कृतकी पदार्थविद्या संस्कृतके बिना जाने समझ नहीं सकते और संस्कृतके योग्यविद्वान् भी आंग्लभाषामें मुझसमान अनभिज्ञ होनेसे आयुर्वेदके वैज्ञानिक सिद्धान्त उनको ठीक-ठीक समझा नहीं सकते। एवं बिना यथार्थ रूपसे समझे उनको आयुर्वेदमें श्रद्धा नहीं हो सकती, क्योंकि उनकी प्रथमा-वस्थामें ही उनपर आंग्लविद्याके संस्कार पड़ चुकते हैं।

यही कारण है आज धनी और अधिकारी इस समय लोकहितकारी, सब अव-स्थाओंमें सुख देनेवाले, आयुर्वेदसे विमुख हैं। इस कष्टकी निवृत्तिके लिये भी आयु-र्वेदके जाननेवालोंको अंग्रेजीका विद्वान् होना चाहिये।

आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये सर्वप्रथम अच्छे-अच्छे आयुर्वेद विद्यालय होने चाहियें और जो दयानन्द आयुर्वेद महाविद्यालय-जैसे विद्यालय हैं, उनकी आवश्य-कताएँ पूर्णकर देनाभी देशके अधिकारी और धनीपुरुषोंका पहिलाकाम होना चाहिये।

आयुर्वेदकी उन्नतिकेलिये कुछ कहींसे लाना नहीं है। इस वेदका इतना विशाल-भण्डार है कि इसकी चरकसंहिता-जैसी छोटीसी पुस्तकको यह घमंड है कि—

"यदिहास्ति तदेवास्ति यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।"

अर्थात् जो कुछ इस ग्रन्थमें देखतेहो; वहही अन्यस्थानोंमेंभी सम्भव है मिल सकें; परन्तु जो इसमें नहीं वह कहींभी नहीं है। यह आर्षविज्ञान ऐसे सूत्रोंमें भरा है, जिस पदार्थकी जितनी खोजकरो वह इनमें उतनेही शुद्धरूपसे मिलता है।

जिन प्लेग, इन्फ्लुएंजा आदि देशनाशकरोगोंके निदानचिकित्सापर विशाल धन खर्च होने परभी उसके अंगप्रत्यङ्गका भ्रम दूर नहीं होता, वह चरक-सुश्रुतके छोटे-छोटे सूत्रोंमें ऐसे स्पष्टशब्दोंमें कहा हुआ मिलता है, जिसको पढ़कर कोई खोज शेष नहीं रहजाती। चरक विमानस्थानका जनपदोद्ध्वंसनीयाध्याय, सुश्रुतके सूत्रस्थानका छठाअध्याय इन रोगोंकी उत्पत्ति आदि क्रम कहनेमें जैसा उत्तम है, सो पढ़ने-सुनने-वालोंकोही ज्ञान हो सकता है।

इन्फ्लुएंजाको सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

"विषौषधिपुष्पगन्धेन वायुना उपनीतेन आक्रम्यते योदेशस्तत्र दोषप्रकृत्यविशेषेण कास-श्वास-वमथुप्रतिश्याय-शिरोरुग्-ज्वरै-रुपतप्यन्ते"।

अर्थात् विष या विषयुक्त औषधि पुष्प आदिकी गन्धवाली वायुसे जो देश आक्रमण किया जाता है, उस संपूर्णदेशके मनुष्योंको एकसे दोष स्वभाववाले खाँसी,

श्वास, वमन, प्रतिश्याय (नजला जुकाम) मस्तकमें पीड़ा और ज्वर आदि रोग एकही समयमें कष्ट देने लगते हैं। यह है सूत्रसा आधा टुकड़ा, इसकी व्याख्याएँ बहुत विस्तारसे हैं। जैसे इन देशके विघ्नध्वंसकारी रोगोंका इन ग्रन्थोंमें सूक्ष्म-विज्ञान है, उसीप्रकार चिकित्साभी अद्वितीय है। सुश्रुतके कल्पस्थानमें मौषिकजनपदोद्ध्वंसन (प्लेग) और गन्धजजनपदोद्ध्वंसन (इन्फ्लुएंजा) आदि रोगनिवृत्तिके लिये, ऋषभागद, क्षारागद आदि सिद्धयोगभी लिखे हैं, जिनका फल इसप्रकार कहा है। ऋषिभागद—

एतेन भेर्यः पटहाश्च दिग्धा, नानद्यमाना विषमाशु हन्यु।
दिग्धाः पताकाश्च निरीक्ष्य सद्यो, विषाभिभूताः त्वविषा भवन्ति ॥ (क्षारागद)
अनेन दुन्दुभिं लिम्पेत्-पताका तोरणानि च।
श्रवणाद्दर्शनात् स्पर्शाद् विषात् संप्रति मुच्यते ॥

आदि। अर्थात् इन ऋषिभागद और क्षारागदको ढोल-नगारे आदिपर लेपकर बजानेसे, और कपड़ेके झण्डे, परदे-चिक आदिपर लगानेसे आकाशमें पवन-द्वारा व्याप्त हुआ विष दूर होजाता है, और मकानमें लेपन आदिसे घर ऐसे रोगोंसे रहित होता है। मनुष्यके पास रहनेसे उसपर मकड़ी, साँप, चूहे, मेंढक, सियार, कुत्ते आदिका विष प्रभाव नहीं करता। इनके अतिरिक्त ऐसे रोगोंसे युक्त पुरुषोंकीभी अतिउत्तम चिकित्साएँ कही हैं, जो उन ग्रन्थोंमें देखनी चाहियें।

ऐसेही आयुर्वेदके रस-विभागकी एक छोटीसी औषध मकरध्वजको जिसने सेवन किया है, वह इसका भक्त बन जाता है। रसविभागमें मकरध्वजसे बहुत बढ़कर अनेक रस हैं, जो अभी मकरध्वजके भक्तोंने सेवन नहीं किये हैं; परन्तु दुःख है, मकरध्वजके बदलेमें सिंगरफ बेचनेवाले लोगोंने मकरध्वजपरसे श्रद्धा हटानेमेंभी कोई न्यूनता नहीं की। झूठी सनदें और नकली औषधोंवालेभी पापीपेटके लिये दयालु, आयुर्वेदसे शत्रुता करते जाते हैं, यह दुःखकी बात है।

आयुर्वेदकी रोगपरीक्षा (निदान) भी ऐसे वैज्ञानिक क्रमसे बना हुआ है, जिसके द्वारा रोगोंके कारण, रूप और सम्प्राप्ति सबही आसानीसे समझमें आजाते हैं, जो भ्रमरहित होते हैं। इस विज्ञानके अनुसार चिकित्साभी सर्वथा सिद्ध और हितकारी-ही होती है।

आयुर्वेदका शरीरशास्त्रभी किसीसे पीछे नहीं है, इसमें त्वचा, कला, धातु, मल, दोष, यकृत्, प्लीहा, फुप्फुस, ऊंडूक, हृदय, आशय, आंत्र, वृक्क, स्रोत, कण्डरा, जाल, कूर्च, रज्जुएँ, सेवनी, संघात, सीमान्त, अस्थियें, स्नायुवें, पेशियें, मर्म, शिरा, और योगवाहीस्रोत जिस विशालक्रमसे कहे हैं, उनसेभी आयुर्वेदके दिव्यज्ञानका महत्व प्रतीत हो सकता है, जो सुश्रुतके शरीरस्थान आदिमें देखना चाहिये।

आयुर्वेदके शरीरज्ञानमें वात, पित्त, कफके त्रिदोषविज्ञानको जाननाभी अत्या-

वश्यक है, जो अभी आयुर्वेदज्ञोंके अतिरिक्त अन्यचिकित्सक समझ नहीं सके हैं। जैसे वाग्भटमें लिखा है—

"वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः।
विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्तयन्ति च ॥"

अर्थात् वायु, पित्त और कफ ये शरीरमें रहनेवाले तीन दोष हैं। ये साम्याऽवस्थामें रहते हुये देहको धारण करते हैं, इस लिये इनको धातु भी कहते हैं। जब मिथ्या आहार-विहारसे ये मलिन होकर रसादि धातुओंको मलिन करते हैं, तो इनको मल भी कहा जाता है। किसी-किसी तन्त्रवाले रक्तकोभी दोष मानते हैं। परन्तु "दूषयन्तीति दोषाः" यह वाक्य वात, पित्त और कफपरही सार्थक हो सकता है। तथा जैसे वातप्रकृति, पित्तप्रकृति और कफप्रकृति, सब तन्त्रकारोंने मानी है, वैसे सुश्रुतादि आचार्य्योंने कहीं रक्तकी प्रकृति पृथक नहीं लिखी है।

इसके अतिरिक्त जैसे यह वातज्वर है, यह पित्तज्वर है और यह कफज्वर है, यह सुश्रुतादि आचार्य्योंने लिखा है, वैसे यह रक्तका ज्वर है यह किसीने नहीं लिखा। यदि कहो कि जैसे वातादि ज्वरोंमें वातादि दोष कारण होते हैं, उसी प्रकार कुष्ठ-विसर्पादिकोंमें रक्तका प्रकोप कारण होनेसे रक्तकोभी एक चौथा दोष मानना चाहिये, तो हम कहते हैं कि विशूचिकामें इसीप्रकार रसकी विकृति कारण है, और मेदरोगमें दुष्टमेद कारण है, अध्यस्थिमें अस्थिविकृति और शुक्राश्मरि आदिमें शुक्रविकृति कारण है। यदि रक्तको चौथा दोष माना जाए, तो रसादि धातुओंकोभी उन्हीं हेतुओंसे दोष मानना चाहिये और इस प्रकार कल्पना करनेसे दोषोंकी अनन्तकल्पना की जा सकती है। वस्तुतः कुष्ठ विसर्पादिकोंमें घृतदग्धन्यायसे अर्थात् जिस प्रकार लोकमें गर्म हुए घी-तेल आदिके भीतर रहती हुई अग्निसे जलजानेपर घी आदिसे जलगया, ऐसा कहा जाता है, उसी प्रकारसे रक्तमें स्थितहुए वातादि दोषोंके प्रकोपसे कुष्ठविसर्पादिकोंकी उत्पत्ति होती है, केवल रक्तसे नहीं, इसलिये संक्षेपसे वात, पित्त और कफ यह तीनही दोष माने जाते हैं।

सम्पूर्ण मनुष्योंके सुख और दुःख उनके स्वास्थ्यपर निर्भर हैं। उस स्वास्थ्यमें वात, पित्त और कफकी साम्यावस्थाही कारण है। यथार्थमें सम्पूर्णसृष्टिके स्वास्थ्यका कारण सूर्य्य, चन्द्रमा और वायु हैं; क्योंकि वेदोंमें जगत्को अग्निसोमात्मक माना है। इसीके आधारपर धन्वन्तरि भगवान् का कथन है कि—

"शीतांशुः क्लेदयत्युर्वी विवस्वाञ्छोषयत्यपि। तावुभावपि संश्रित्य वायुः पालयति प्रजा ॥"

अर्थात् चन्द्रमा पृथ्वीको क्लेदित करता है और सूर्य्यशोषण करता है, वायु इन दोनोंका आश्रय लेकर पालन करता है।

वर्तमान अन्यचिकित्साप्रणालीमें इस विज्ञानमूलक वात, पित्त और कफका पूर्ण विचार न होनेसेही उनकी चिकित्सा और द्रव्य-गुण आदि नित्य परिवर्तित होते रहते

हैं। इतना ही नहीं उनके ढंगका दशवर्ष पहलेका उन्नतज्ञान आज अयोग्य समझा जाने लगा है। आयुर्वेदके त्रिदोषविज्ञानका महत्व दिग्दर्शनमात्रके लिये किंचित कथन कर देता हूँ।

सम्पूर्ण प्राणिमात्रके शरीरमें सदैव तीन क्रियाएँ होती रहती हैं। जैसे सञ्चालन, स्वेदन और स्नेहन। इनमें सञ्चालनक्रिया करनेवाला शारीरिक वायु है; इसीका धर्म है शरीरमें सम्पूर्ण सञ्चालनक्रिया करतेहुए मल-मूत्रादि निकालना और रसरक्तादि धातुओंका यथासमय परिवर्तन, विभाग आदि करना तथा पित्त और कफकोभी साम्यावस्थामें रखते हुए शरीरका पालन करना, एवं प्राण, अपान आदि गतिको ठीक रखते हुए शरीरका धारण रखना। वह वायुकी क्रिया मनकी गतिके किञ्चित् परिवर्तन होनेसेभी विकृति हो जाती है। जैसे लंघनादि कारणोंसे वायुकी साम्यावस्था बिगड़कर वातप्रकोप हो जाता है, वैसेही काम, शोक आदि मनके विकारोंसेभी तुरन्त वायुका प्रकोप होजाता है, जो आयुर्वेदिक विज्ञानक्रमसे शीघ्रही प्रतीत होने लगता है; परन्तु आधुनिक अन्य विज्ञानवाले मूर्छित या मृतशरीरमें जिस प्रत्यक्षमूलक क्रमसे शरीरके स्थूलअवयवोंको देखते हैं, उनमें इस वातका ज्ञान उनको नहीं हो सकता यही कारण है, वे इस विज्ञानसे कुछ लाभ न उठा सके।

यद्यपि वे नित्य देखते हैं कि किसी मनुष्यको धनपुत्रादि प्रियवस्तुके नाश होनेकी खबर मिलतेही उसके शरीरमें तत्काल विचित्रविकृति या मृत्युतकभी होजाती है; परन्तु दोषविज्ञानको न जाननेवाले "किसीकारणसे हृदयकी गति रुक गई" कह देनेके सिवाय वातादि विज्ञानके विषयमें अभी तक वे कुछ कह नहीं सकते।

जैसे साम्यावस्थामें रहता हुआ वायु, शरीरकी रक्षा और पोषणआदि करता है, और विकृत होनेपर शरीरका विनाशतक कर डालता है, उसी प्रकार पित्त शरीरमें स्वेदन, पाचन आदि क्रिया करता हुआ शरीरकी रक्षा, वातकफकी साम्यावस्था, अन्नके परिपाकादि और रसके रक्तादि बनानेमें तथा आलोचन प्रकाशन आदि क्रियाओंको करता रहता है। अपने कारणोंसे विकृत होनेपर शरीरमें रोगादिका कारण हो जाता है। ऐसेही कफस्नेहन आदि क्रियाओंसे शरीरका पालन, वात-पित्तकी साम्यावस्था और शरीरके अङ्गोंको स्थिर रखता हुआ, दीर्घायुका कारण होता है। यही विकृत होनेपर पवनकी गतिको बिगाड़कर तथा स्रोतोंको रोककर कफके रोगोंका और मृत्युका कारण हो जाता है।

जैसे वायु अपनी साम्यावस्थामें रहकर शरीरमें रसरक्तादिका सञ्चालन करता हुआ यथार्थ रूपसे शरीरका पालन करता है, वैसेही पित्त स्वेदन और कफ स्नेहन क्रियासे शरीरका पालन करता है, जैसे कामादि मनोविकारसे वायु विकृत होकर अपनी शुद्ध क्रियाओंको बिगाड़ देता है। वैसेही क्रोधसे पित्त बढ़कर शरीरमें विकार उत्पन्न करता है। तथा ऐसेही मनकी अधिक प्रसन्नतासे कफकी वृद्धि होकर

शरीरमें स्थौल्यादि कफके रोग उत्पन्न होते हैं। यदि पवन बढ़कर शरीरमें विशेष गतिको प्राप्त हो जाए तो स्नेहन क्रियासे शोषण होकर कफकी हानि और उसी अंगमें शोषण आदि वातविकार उत्पन्न हो जाते हैं। यदि इसमें विकृत पित्तका संसर्ग हो, तो इस वातव्याधिमें दाहादि पित्तविकारके लक्षणभी दिखाई देने लगते हैं। यदि विकृत कफका इसके साथ साथ संसर्ग हो, तो उस वातदूषित अंगमें गुरुत्वादि कफविकारके लक्षणभी दिखाई देने लगते हैं।

तात्पर्य यह है कि किंचित् मनोविकारसे वातादि दोष विकृत होकर शरीरके पालन और धारण करनेवाली क्रियाओंको बिगाड़कर रोग और विनाशका कारण हो जाते हैं। तथा एक दोषकी विकृतिसे अन्य दो दोषका भी विकृत होना आवश्यक है, इसलिए मूलकारने ठीक लिखा है कि ये तीनों दोष अविकृत अर्थात् साम्यावस्थामें रहनेसे शरीरका धारण और पालन आदि करते हुए दीर्घायुके कारण होते हैं और साम्यावस्थासे विपरीत अर्थात् न्यूयाधिक होनेसे शरीरके नाशका कारण होते हैं। इसप्रकार शारीरिक पदार्थोंमें त्रिदोषका जानना अत्यावश्यक है।

इस त्रिदोष विज्ञानके समानही द्रव्य विज्ञानभी आवश्यक है। आयुर्वेदके द्रव्य-विज्ञानमें जिमीकन्द, आलू, मूली, शालव, सींगिया विष, मानकन्द, सोमकन्द आदि पृथ्वीके भीतरके कन्द एकही छड़ीसे नहीं हाँके जाते। आयुर्वेदका द्रव्य विज्ञानभी त्रिदोष विज्ञानके समान दिव्य है, जैसे प्रत्येक द्रव्यमें रसविज्ञान, गुण विज्ञान, वीर्य विज्ञान, विपाक विज्ञान और शक्ति विज्ञान ये पाँचों वैज्ञानिक क्रमसे जानने चाहियें। यहाँ यह भी जानने योग्य बात है कि फलीके अन्दरके माप, मटर, मूँग सब अलग गुणवाले होते हैं। ऐसेही जमीनके अन्दर अमृत समान कन्द और विषमी पृथक और विपरीत गुणवाले होते हैं। इन सबमें इनकी उत्पति क्रममें पंच भौतिक संघातकी विचित्रतासेही परस्पर विपरीत और विचित्र गुण होते हैं, जो आयुर्वेदिक विज्ञानसेही यथार्थ कहे जा सकते हैं। द्रव्योंका अचिन्त्य प्रभाव आयुर्वेदही कह सकता है। जैसे द्रोणपुष्पीके रसको नेत्रमें डालनेसे अथवा सहदेवीकी जड़ सिरमें बाँधनेसे चातुर्थिकज्वर दूर हो जाता है। ऐसेही अर्धनारी नटेश्वर अञ्जन-को जिस आँखमें डालें, शरीरके उसी आधे अंगका ज्वर उतर जाना आदि प्रभावके गुण हैं। जिनके आगे ज्वरका कृमि विज्ञान सिर झुकाही देता है।

आयुर्वेदके वनस्पति विज्ञानके आधारपर चिकित्सा करनेवाले वैद्योंको किसी जंगलमें खड़े होतेही ईश्वरकी सृष्टिके लिये अनन्त औषध मिल जाती हैं। एक वट-वृक्षके नीचे बैठा वैद्य अपने शरण आए रोगियोंको किस प्रकार लाभ पहुँचा सकता है, सो कुछ थोड़ासा कह देता हूँ। वटके शुंगोंको दूसरे तीसरे महीनेमें गर्भवती खावे, तो सुन्दर पुत्रको उत्पन्न करती है। वटके पत्रोंकी भस्म दहीमें मिलाकर लेप करनेसे खालित्य दूर होता है। वटका दूध बतासोंमें खानेसे कृच्छ्र दूर होता है। वटके

दूधका फाहा कनफटियोंपर लगानेसे नेत्राधिमन्थ दूर होता है। वटके दूधका फाहा तलुएपर लगानेसे बालकोंका दन्तोद्भेदकरोग दूर होता है। इस दूधके फाहेपर सिंदूर बुरकाकर चिपटा देनेसे पुत्रिणीपिटिका दूर होती है। वटके बीजोंका चूर्ण धातुपुष्ट करनेवाला होता है। वटके छिलकेका चूर्ण पुरुषोंके शुक्रस्राव और स्त्रियोंके सोमरोगको दूर कर देता है। वटकी जटाका क्वाथ रक्तविकारको हरता है, इत्यादि अनेक गुण एक-द्रव्यके पृथक् पृथक् अंगोंमें पंचभौतिक संघ.तके विकासकी विचित्रतासे होते हैं। इस प्रकार वनस्पति विज्ञानभी महान् है, जिसको आयुर्वेदके जाननेवालेही जान सकते हैं।

आयुर्वेदिक पंचभौतिक विकासको जाननेवाले वैद्योंनेही हीरे-पन्ने आदि पत्थरों-का और स्वर्णादि धातुओंका गुण जानकर इनका मूल्य अधिक बढ़ा दिया था, और इनके दिव्यरस निर्माण करनेकी विधिका प्रचार किया था।

आयुर्वेदका यंत्र, शस्त्र, वस्तिकर्मभी किसीसे पीछे नहीं है—कंकमुख, गृध्रमुख, जाम्बवोष्ठ, सिंहमुख आदि यन्त्रशस्त्रोंका अनुकरणही सब ओर देखनेमें आता है। आँख बनाना, नाक बनाना आदिभी आयुर्वेदका अनुकरणही किया जारहा है।

आयुर्वेदकी व्रणचिकित्सामें सातक्रिया कही हैं, जैसे व्रणशोथका विम्लापन, अवसेचन, पाचन, शोधन, रोपण और विकृतिविनाशन इन सात क्रियाओंसे आगे संसारकी कोईभी सर्जरी नहीं जा सकती। परन्तु सब विद्याओंकी उन्नतिमें शास्त्र विज्ञानके अनन्तर अभ्यासही मुख्य होता है। दुःखकी बात है कि वैद्योंके लिये शल्य और शालाक्यके अभ्यासका अभीतक कोई यथार्थ सुभीता नहीं है।

जब आयुर्वेदिक सर्जरीका अभ्यास आयुर्वेदके जाननेवालोंको था, तब अश्विनी-कुमारोंने दक्षका कटा हुआ सिर जोड़ दिया था और ब्रह्माका कपाल जब वीरभद्रने फाड़डाला था, तो अश्विनीकुमारोंने ही ठीक किया था, ऐसेही भोजके समयभी उसके मस्तकमें गए हुए जन्तु शालाक्य क्रमसेही निकाले थे। अभीतक भी अर्शके मस्से काटने, पथरी निकालना आदि सब सर्जरीके क्रम आयुर्वेदसे बाहर नहीं गए हैं; परन्तु रोगोंकी ऐसी औषधिएँभी आयुर्वेदमें हैं, जिनके प्रभावसे अर्श, पथरी और ऐसे-ऐसे अनेक रोग बिना सर्जरीकेही नाश होजाते हैं। औषधि पिलाकर गुर्दे और मसानेकी पथरियें मैंनेभी अनेक निकाल डाली हैं, ऐसी बहुतसी औषधियाँ प्रायः सब वैद्य जानते हैं।

आयुर्वेदका वस्तिकर्मभी ऐसा विस्तृत और पृथक्-पृथक् योगोंके साथ किया जाता है, जिससे अनेक रोग दूर करनेके अतिरिक्त उनका रसायनकर्ममेंभी प्रयोग है। वस्तियोंके आस्थापन, निरूहण और अनुवासन प्रकार मलद्वारसे प्रयोग किये जाते हैं। मूत्रद्वारसे प्रवेश करनेकी वस्तियोंके स्त्रियों और पुरुषोंके लिये अलग-अलग अनेक प्रकार हैं, उनको उत्तरवस्तियें कहते हैं। ऐसेही शिरोवस्ति, कर्णवस्ति, मांसवस्ति और त्वग्वस्ति आदि अनेक प्रकार हैं, जो आयुर्वेदज्ञ जानते हैं।

आयुर्वेदका स्वास्थ्यविज्ञानभी विशेष वैज्ञानिक क्रमसे भरा हुआ है; क्योंकि आयुर्वेदका पहला उपदेश तो संसारको सम्पूर्णरोगोंसे बचानाही है। जब आयुर्वेदका यथार्थ प्रचार था, तो किसी प्रान्तमें रोगका फैलजाना उस प्रान्तके वैद्योंकी अयोग्यताका प्रमाण समझा जाता था। आगको लगनेदेना और मकान जल जानेपर बुझानेका यत्न करना, कोई योग्य कार्य नहीं है। आत्रेय महर्षिने जनपदोद्ध्वंसनको रोक देनेके उपाय अपने शिष्योंसे बहुतकाल पहले कहकर रोगोंसे संसारको बचा दिया था।

सब मनुष्योंका स्वास्थ्य स्थिर रखनेके लिये जो आयुर्वेदके उपदेश हैं, वे ऋतुचर्या, दिनचर्या आदि नामोंसे आयुर्वेदमें विशेषरूपसे लिखे हैं, जिनके अनुसार चलनेसे मनुष्य रोगीही नहीं हो सकते।

जिस सर्वजगत्के रचयिताका रचा हुआ यह संसार है, उसके ज्ञान आयुर्वेदका महत्व विस्तारसे, तो मनुष्य सम्पूर्णजीवनमें भी नहीं कह सकता; परन्तु आयुर्वेदके सामान्य उपदेश सम्पूर्ण गृहस्थियोंको सदा सुनने चाहियें, और अपने-अपने स्त्री-पुत्रादिकोंकोभी सिखाने चाहियें।

आयुर्वेदके प्रचारसे संसारमें संसर्ग रोग नहीं रह सकते, और न अन्नजलके समान नित्य औषध खाते रहनेका अभ्यास रखनेकी आवश्यकता होगी; क्योंकि आयुर्वेद उपकारमूलक और व्यापारमूलक नहीं है।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मेरे मालिक पटियाला महाराजाने जैसे प्रजाके हितके लिये अंग्रेजी अस्पताल खोले हुए हैं, प्रजाकी रुचिके अनुसार वैसेही आयुर्वेदिक औषधालयभी खोले हुए हैं। इस समय पटियाला सर्कारसे नौकरी पानेवाले दस वैद्य हैं। जब-जब श्री १०८ महाराजाधिराजसे आयुर्वेदिक सहायताके लिये प्रजाने प्रार्थनाकी है उनको उनकी इच्छानुसार सहायता दी गई है। पटियालेमें १५ वर्ष पहले आयुर्वेदिक औषधालय नहीं थे; परन्तु प्रजाकी इच्छानुसार अब जगह-जगह औषधालय बन गए हैं। इनमें एक तो श्री भूपेन्द्र आयुर्वेदिक औषधालय, श्री १०८ महाराजासाहबके नामपरही खुला हुआ है। इन औषधालयोंमें सबकी बिना मूल्य और बिना फीस चिकित्सा होती है। इसके अतिरिक्त जब-जब कहीं आयुर्वेदिक सम्मेलन होता है श्री १०८ महाराजाधिराज अपने राजवैद्यको राज्यसे टी० ए० देकर आयुर्वेदिक उन्नतिके विचारसे उन सम्मेलनोंमें प्रतिवर्ष भेजते हैं। इत्यादि आयुर्वेद संबन्धी सुभीते पटियालेकी प्रजाको हैं। यह पटियालानरेशकी प्रजावत्सलता सर्वथा सराहनीय है।

हमारे वैद्यसमुदायको चाहिये कि अपनी दृढ़ आयुर्वेदिकभक्ति और अपने सद्गुणोंसे सर्कार और सारी जनताको आयुर्वेदसे होनेवाले लाभोंको समझाकर तथा आयुर्वेदके सद्गुण दिखाकर इस सर्वहितकारी आयुर्वेदके प्रेमी बना देवें और सर्कार तथा सर्कारकी प्यारी प्रजाके हितके लिये अच्छे-अच्छे आयुर्वेद विद्यालय और स्थान-

स्थानपर धर्मार्थ औषधालयभी खुलवा देनेका प्रयत्न करें। मैं समझता हूँ, संसारकी सामयिक उन्नतिके साथ-साथ आयुर्वेदमहामण्डलको भी अपना पाँव आगे बढ़ाना चाहिये। कार्यकारिणीके सदस्योंमें आयुर्वेदके हितचिन्तक कुछ धनी, मानी और दृढ़ कार्य कर्त्ताओंका समावेशभी कर लेना चाहिये जिनकेद्वारा सार्वजनिक और राजकीय सहायता यथार्थरूपसे प्राप्त हो सके।

किसीभी प्रकारके अधिकार अपने सद्गुणों और प्रेमयुक्त कर्त्तव्यसे प्राप्त हो सकते हैं। आप यह सत्य बात सबको समझा सकते हैं कि आयुर्वेद परमेश्वरका धर्मग्रन्थ है। भारत सरकारके खजानेका दिव्य रत्न है। मनुष्य मात्रके पूर्वज ऋषियोंकी महासम्पत्ति है। इसके गुण जाननेवाले सद्वैद्यो! अपने सद्गुणोंसे आयुर्वेदरूपी महारत्नका महत्व सबके हृदयमें बसादो। एवं यह दिखा दो कि आयुर्वेद परमेश्वरका जो धर्मग्रन्थ है। जो सनातन धर्मी, आर्यसमाजी, जैनधर्मी, सिक्ख, बौद्ध, क्रिश्चियन और मुसलमान आदि संसारके मनुष्य मात्रके लिये बिना किसी पक्षपातके समान रूपसे हितकारी है; जिसमें राजा-प्रजाके हित, प्रेम और सुखके साधन हैं। जिसके अनुकूल चलनेसे नित्य रोगोंका भय नहीं रहता। इस अपने ऋषियोंके धनको संभालो और इसका प्रचार करो।

गण्यमान्य सद्गृहस्थो! वैद्यो! और सरकार तथा प्रजाके प्यारे अधिकारियो! यदि आप ध्यान न दोगे तथा इस आयुर्वेदके प्रति अपना कर्तव्य-पालन न करोगे, तो वैद्योंकोही हानि नहीं पहुँचेगी; किन्तु देशसे रोगोंका नित्यका आक्रमणभी न जावेगा, संसारमें योग्य सुखी, शान्तियुक्त, राजभक्त, देशभक्त और ईश्वरभक्तभी कम हो जाँयगे।

यदि आयुर्वेदिक औषधालय न होंगे, तो धीरे-धीरे दवाई बेचनेवालोंकी दुकानें स्वयं बन्द हो जावेंगी। यदि देशी दवाईकी दुकानें न रहीं, तो जड़ी-बूटी आदिके बड़े व्यापारियोंकी दुकानेंभी उठ जावेंगी। यदि देशी औषधियोंके थोक खरीदार न रहें, तो सर्कारकी प्रजाके वे जंगलो झोंपड़ोंमें रहनेवाले गरीब, जो जंगलोंमें जड़ी-बूटी इकट्ठीकर बेचकर अपने बाल-बच्चोंका पालन करते हैं भूखे मरने लगेंगे, तो इस कामको छोड़ देंगे। फिर जंगलकी वे वनौषधियें जो प्रतिवर्ष सर्कारकी प्यारी प्रजाके हितके लिये बड़े मान और उदारतासे उत्पन्न होती हैं; बिना आदरके अपने स्थानपर खड़ी-खड़ी सूखकर गिर जावेंगी। तब धीरे-धीरे उनके नाम और गुणोंको जाननेवाले न रहनेसे उनके दिव्यगुण लुप्तप्राय हो जावेंगे, और जनताको दिव्य पवित्र औषधियोंके स्थानमें अपवित्र पदार्थोंकी शरण लेकरभी यथार्थसुख नहीं मिल सकेगा।

क्योंकि "यस्यदेशस्य यज्जन्तु जज्जं तस्यौषधं हितं" अर्थात् जो मनुष्य जिस देशमें उत्पन्न होता है, उसी देशमें उत्पन्न हुई औषधि उसके लिये हितकारी होती है। जिस देशके मनुष्योंको अपने स्वभावके अनुकूल औषधि नहीं मिलती उस देशसे

रोगोंके समूह बाहर नहीं जा सकते। देशमें नित्य रोगवृद्धि होकर सर्कारकी प्यारी प्रजा, निर्बल, रोगी, और दुःखी रहनेसे चिड़े हुये स्वभाववाली होजाती है। तब धार्मिकभाव न रहनेसे असंतोष आदि दुःख नित्य बने रहते हैं। गृहस्थियोंकी सन्तान-भी विपरीत गुण द्रव्योंके प्रभावसे अपने माता-पिताको दुःख देनेवाली होने लगती है।

इस कारण सर्कार और धनिक पुरुषोंकी ओरसे जनताके हितके लिये आयुर्वेद विद्यालय और औषधालय खोलकर आयुर्वेदके प्रचार-द्वारा जनताका हित करना चाहिये; क्योंकि आयुके वेदसेही जीवधारियोंका कल्याण हो सकता है।

आयुर्वेदके ज्ञानसे, आयुर्वेद पढ़नेसे, आयुर्वेदमें लिखित वैज्ञानिक प्रक्रियाओंको जाननेसे, आयुर्वेदके उपदेश सुननेसे और तदनुसार चलनेसे धन, धर्म, मान, बल, वीर्य, शुद्ध सन्तान, परलोक और इहलोकके सब सुख तथा मोक्ष तककी प्राप्ति हो सकती है। यदि एकता, अधिकार और धनसे आयुर्वेदरूपीरत्नका यथार्थ संस्कार किया जाए, तो यह भारतीय वैद्योंके आलस्यसे लगे हुये मलसे स्वच्छ होकर पूर्व-कालके समान सर्वोच्चप्रकाश सम्पूर्णभूमण्डलको दे सकता है। इसलिये सभ्य पुरुषो! इस वेदका हितसाधन करो।



निखिलभारतीय वैद्यसंमेलनस्य तृतीयैकादशैकविंशतितमाधिवेशनाध्यक्षाणां

महामहोपाध्याय कविराज श्रीगणनाथसेन सरस्वती

एम० ए०, एल० एम्० एस० विद्यासागर महाशयानां

जीवनचरितम् ।

अस्ति वङ्गभूमिपश्चिमसीम्नि भगवत्या भागीरथ्याः पश्चिमतटस्थे राढाख्यभूखण्डे श्रीखण्ड-सौरभो ग्रामः श्रीखण्डो नाम । स च वैष्णवशिरोमणिभिः श्रीमन्मुकुन्द-मुरारिनरहरि-रघुनन्दन-गोस्वामिप्रभृतिभिः सर्ववर्णमन्त्रोपदेष्टृभिर्विप्रवर्यैरध्युषितपूर्वोऽद्यापि वैष्णवोच्चमधामतया प्रथां भजते । तत्र श्रीमान् रघुनन्दनगोस्वामी माणवकदशायामेव भगवन्तं नन्दनन्दनं स्वभक्ति-प्रभावात् पाषाणविग्रहतश्चिन्मयविग्रहेणाऽविर्भाव्य स्वकरेण लड्डुकमभोजयत्, स्वीचक्रे च तनयीकृत्य कलिपावनावतारैः श्रीकृष्णचैतन्यचरणैरिति गायन्त्यद्यापि वैष्णवा वङ्गेषु । तस्य दौहित्रकुलजो वङ्गेश्वर-महाराजलक्ष्मणसेनदेवानां सभाकवेः पवनदूतकारस्य धोयिसेनस्य वंशधरो गङ्गाधर इवाऽपरो गङ्गाधरकविराजः शेषे वयसि वाराणसीमध्युवास । तस्य च द्वौ सुतौ गणपतिकार्त्तिकेयवदभूताम् । तयोर्ज्येष्ठो यज्ञेश्वरकविराजो महातपस्वी चिरकुमारः सर्वतन्त्रस्वत-न्त्रश्चिकित्साकौशलेन सुमहद्यशोऽर्जयाञ्चकार । कनिष्ठः कुञ्जविहारि कविराजस्तु सर्वायुर्वेद-निष्णातोऽपि कलकत्ताराजधान्यां तदानीं (ई० १८३५ वर्षे) सद्यः स्थापिते मेडिकल कालेजे शवव्यवच्छेदादिना स्वज्ञानसम्पद्वर्द्धनाय शारीरसहितं शल्यशालाक्यादितन्त्रमधीत्य G. M. C. B. (Graduate, Medical College, Bengal) इति परीक्षामुत्तीर्णः "सेनासंरक्षकः सेनः"—इति कुलप्रसिद्धेः समुचिते सेनासर्ज्जन (Army Surgeon) पदे गुणग्राहिभी राज-पुरुषैर्नियोजितः । कियन्ति वर्षाण्येवं नियुक्तश्चासौ भोटानयुद्धादौ स्वविद्याविभवोचितां शल्य-तन्त्रकर्मकुशलतां प्रदर्श्य राजपुरस्कारमर्जयित्वा गृहान् प्रतिनिववृते । ततः प्रभृति च वैद्यका-ध्ययनाध्यापनचिकित्साकर्मणि सुदृढं मनो न्यधात् । तेनैव चेदं निरणायि—आयुर्वेदस्य सम्य-गुत्थानाय प्राचामुपदेशमनुसृत्य शवव्यवच्छेदमूलं शारीरज्ञानमवश्यमेवार्ज्जनीयं वैद्यैस्तदर्थञ्च प्रत्यक्षज्ञानपरो नवीनः शारीरग्रन्थो गीर्वाणगिरा निर्माणीयः—इति । स च निर्णयस्तत्पौत्रेण गणाथेन तत्कराब्जलब्धान्नप्राशनसंस्कारेण तदाशिषैवोत्तरकाले "प्रत्यक्षशारीरं" निर्माय सफलतामनायीतिस्मरणार्हमदो वृत्तम् ।

अथामुष्य पुरुषसिंहस्य द्वौ सुतौ स्वनामधन्यौ समभूताम् । तयोर्ज्येष्ठः केदारनाथ कविराजो यौवनारम्भ एव बहुशास्त्रनिष्णातो भरतस्य नानाप्रदेशेषु पर्यटन् लोकोत्तरप्रतिभया सभाशत-जयार्जितकीर्त्तिरनतिप्रौढे वयसि स्वोपार्जितं पुष्कलं वित्तमर्थिसात्कृत्य सन्यासाश्रममशिश्रियत् । ततः प्रभृति च चिद्घनानन्द स्वामीति प्रथया हिमाद्रिसानुषु प्रसिद्धश्चरमे वयसि निःसङ्गनिरु-द्देशतामभजदद्वैतामृतनिर्वृत्तः ।

कनिष्ठस्तु विश्वनाथ कविराजः सर्वविद्याकरतया वाराणसेयपण्डितमुख्यैः "विद्याकल्पद्रुम" इत्यन्वर्थोपाधिना विभूषितश्चिकित्साल्ब्धलोकोत्तरकीर्त्तिः शिष्यानसंख्यानध्यापयामास, येषु गोपालदत्त त्रिपाठि—सीतारामभट्टादयः केचन शिष्यवरा वाराणस्यामेवातिप्रसिद्धा भिषजोऽभूवन्। सहधर्मिणी च तस्य सौदामिनी देवी परमरूपगुणसम्पन्ना देवीव गिरां देवगिरां भाषिणी कलानिपुणा चासीत्। एतादृशजननीजनकयोरेकपुत्रो गणनाथः सं० १९३४ (ई० १८७७) वर्षस्य आश्विनकृष्णसप्तम्यां काश्यामेव समजनि। जननी चास्य पञ्चवर्षदेशीयं पुत्रं पत्युः करयोः समर्प्य काश्यामेव मुक्तिमाप। तद्वियोगविधुरो विश्वनाथकविराजस्तु तत्रान्तरे वङ्गदेशीयमैमनसिंहमहाराजेन चिकित्सार्थमाहूतः कलकत्तानगरमतः परमध्यवात्सीत्।

पञ्चवार्षिकशिशुर्गणनाथश्च ऋषिकल्पेन जनकेन जनकवदेव निःसङ्गसंसारिणा अप्रौढेनापि पुनरकृतदारेण एकाकिनैव पित्रोर्भारमुद्वहता स्वाङ्के निवेश्य लालितः शिक्षितश्च कण्ठेन सह संस्कृतभाषणेन समग्रममरकोषमष्टाध्यायीसमेतम्। अथ गर्भाष्टमेऽब्दे पितुरेव सावित्रीदीक्षामुपलभ्य द्वादशभिर्दिनैर्लक्षगायत्रीजपं पुरश्चरणविधिना समाप्य समावर्त्तितो गणनाथो नवमे वर्षे लघुकौमुद्या सह त्रिचतुरान् लघुसाहित्यग्रन्थानधीतवान्। तदानीमस्य पितुश्चपेटाघातदुःखितस्येदृशः प्रथमकवितोन्मेषः सम्बभूव।

"नराः सन्ति लोकेषु दुःखानि दातुं न वै कोऽपि शक्तः प्रतीकार कर्तुम्।
जगन्नाथनाथो जगल्लोकपूज्यः स मे दुःखहर्ता प्रतीकारकर्ता॥

(इह "प्रतीकारकर्तुम्"—इत्यत्र च्युतसंस्कारता वालकवेर्मर्षणीया) अथ नवमवर्षीयो गणनाथस्तातपादैराम्नायमधीतुं नियोजितो वेदाचार्याणां पं० श्री सत्यव्रतसामश्रमिणां चरणोपान्ते वर्षद्वयं श्राम्यन् साङ्गमृग्वेदं भूयश्च सिद्धान्तकौमुदीञ्चाधिजगे। ततः पुनरपि तातपादान्तिके भारवि-कालिदासादिमहाकाव्यानि साहित्यदर्पणं सुश्रुतसंहिताञ्चाधीतुमारेभे। द्वादशवर्षदेशीयस्य चास्य श्रुतिधरत्वं शीघ्रकवित्वं संस्कृतभाषणपटुताञ्च विलोक्य तदानीं बहुधा विस्मयन्ते स्म विद्वांसः "पूर्वजन्मार्जिताऽस्य विद्येति" निर्दिशन्तः।

एवंगते कदाचित्प्रयोजनवशादागता राजकीय संस्कृतकालेजाध्यापकमुख्या महामहोपाध्यायचन्द्रकान्त तर्कालङ्कारपादा गणनाथस्य बाल्य एव लोकोत्तरप्रतिभावैदुष्ययोः स्फुरणदर्शनेन कृताश्चर्या उपादिशन्—"नायं बालः केवलं संस्कृतशास्त्राण्येवाधीतुमर्हति, आंग्लभाषाकोविदत्वमप्यनेनार्जनीयमवश्य"मिति। ततस्तैरेव करे गृहीत्वा तस्मिन्नेव विद्यालये प्रवेशितोऽसौ वर्षचतुष्टयेन प्रथमां श्रेणिं (मैट्रिकुलेशन कक्षाम्) अधिरुरोह। ईदृशे समये (ई० १९९४) असमाप्तप्रायायां परीक्षायामस्य तातपादानां परमपदप्राप्तिरभूत्। महाप्रयाणदिने च तेषां वर्षं यावज्जलोदरार्त्तानां प्रभातएव दत्तप्रयाणसूचनानां मध्याह्नसमये योगेन तनुत्यागस्तीव्रां तपःसिद्धिं प्रकटयाम्बभूव।

पूर्वञ्च प्रयाणकालाद्धनेषु निःस्पृहतया नियतमेव मुक्तहस्तानां वर्षं रोगार्त्ततयोपार्जनाऽक्षमाणां तेषां प्रतारकेभ्यः क्रीतस्य भूमिखण्डस्यार्थे व्यर्थ 'हाईकोर्ट' व्यवहारेण सर्वस्वान्तता समापद्यत, येन बाल्य एव मातृहीनो गणनाथो तदानीं न केवलं पितृवियोगव्यसनं किन्तु निरालम्बरङ्कत्वञ्चाभजत्, समापयच्च नैराश्येन मुह्यमानमना यथाकालं मातुराभरण विक्रयादिना किञ्चिद्धनं संगृह्यपितुः पारलौकिकं कृत्यम्। अग्रहीच्च स ततः प्रभृति पित्राध्युषितं महाभूतिकं भवनं परित्यज्य द्वादशरूप्यकमासिकशुल्कं क्षुद्रं गृहमावासाय सह दरिद्रया ज्येष्ठभगिन्या भागिनेयाभ्याञ्च।

पितृश्राद्धवासरान्ते चास्य उषसि मातापित्रोः पितृलोकस्य च यथा स्वप्ने सन्दर्शनमभूत्, सोऽसौ वृत्तान्तः परेद्युरनेन "निशीथस्वप्न"ख्ये सन्दर्भे पद्यैरुपनिबद्धः। तस्य कतिचित्पद्यान्युपह्रियन्ते यतस्ततः—

"शेफालिकाकुसुमराशिशयानमूर्त्तिस्तन्वी तुषारसिंनिभैकनिधानरूपा।
राका शशाङ्ककिरणप्रतिभासिताङ्गी स्वप्ने मया क्वचन काचन सा विलोकि॥
वीणागुणारणनलग्नकराङ्गुलीनां कान्त्या प्रवालदलकलान् परितः किरन्ती।
सम्मूर्च्छनार्चितमनोज्ञकलस्वरेणाकण्ठेन दिव्यमिव रागमुदञ्चयन्ती॥

❀ ❀ ❀ ❀

केयं तडागतटभूमिजपद्मिनीव सद्यःसमाप्तरचनेव शशाङ्कलक्ष्मीः।
इत्यद्भुतं सपदि चेतसि चिन्तयन्तं सा मां दविष्ठमपि दृग्विषयीचकार॥
चम्पाप्रसूनरुचिराभिरथाङ्गुलीभिर्वीणां सखित्वमपहाय कृपैकताना।
आकर्ष्य मामथ तदीयपदारविन्दे बिम्बाधरादमृतमित्थमियं ववर्ष॥
"एह्येहि वत्स नयनाञ्जन मा प्ररोदीः संवत्सरा दशगतास्तव मां विनैव।
अत्यन्त दुःसह शुचा परिभूयमानं त्वां वीक्ष्य तात नितरां स्वयमस्मि खिन्ना॥"
"बालोऽसि वित्तरहितोऽस्यसहायकोऽसीत्येवं शुचं धृतिमपास्य च मा प्रयासीः।
ताते गतेऽपि दिवि संसृतिसागरेऽस्मिन् कैशोरकेऽपि ननु सन्तरणक्षमः स्याः॥
सत्याशिषो ध्रुवमवेहि गुरूंस्त्वदीयांस्तेषां तवास्ति च मनोगतमस्तु पूर्णम्।
एकोऽपि नाम कुलतन्तुरमी च पूर्वे त्वामेव साग्रहदृशा पितरः श्रयन्ते॥
इति मधुरमुदारं दिव्यसङ्गीतसारं प्रतिरणितमिवासीत्तद्वचो दिक्षु यावत्।
अभिगगनमुदग्रं तावदह्नाय किञ्चित् स्थिरतडिदुपमानं ज्योतिरिद्धं दिदीपे॥
तेजः प्रदीप्तपरिवेशविशेषशोभांस्तत्रान्वपश्यमतिभासुरदिव्यदेहान्।
वर्षात्ययाच्छजलदावृतभानुभासः सद्यः समर्चितपदं जनकं पितॄंश्च॥
सोत्कण्ठवीक्षितविलक्षमुखारविन्दान् धन्यानधन्यमपि मां करुणार्द्रदृष्टीन्।
हर्षाद्भुतस्थगितचित्तमुदश्रुनेत्रं रोमाञ्चिताखिलतनुः किल तानुदीक्ष्य—
यावत्प्रणामविधिसंयुतपाणिरासं तद्वक्त्रचन्द्रवचनामृतबिन्दुलुब्धः।
तावत्प्रभातचरपक्षिकुलारवेण क्वापि क्षणेन सकलं विलयञ्जगाम॥
(कुलकम्)

जलान्तरप्रहितभानुमरीचिभासा क्व केति मां विहसतेव च वायसेन।
द्राग्वीतनिद्र उदतिष्ठमुदीर्णशोकं निःसीमसंसृतिपयोधि तृणायमानः॥

स चैष स्वप्नवृत्तान्तः कैशोरेऽपि वयसि गणनाथस्य दिग्दर्शकोऽभूदिति तस्य मुख श्रूयते तदन्तरङ्गैर्मित्रैः।

अस्मिन्नेव दशाविपर्यये नैराश्यवशंवदेन गणनाथेन "अभयाष्टकादयः केचिदन्येऽपि विरचिताः प्रकाशिताश्च तदानीमेव विद्योदयादिमासिकपत्रिकासु। तत्र अभयाष्टकात् मिहोपह्रियते। (अभयाष्टकञ्च कलकत्तोपकण्ठस्थे पीठे देवीदर्शनकाले कृताञ्जलि गणनाथेनारचितं कण्ठेन, लिखितञ्च पश्चात्)।

"स्मरामि भयवारिणि त्रिभुवनाम्ब सीदन्नहं त्वदीयचरणाम्बुजं शरणमत्र शोकाम्बुधौ।
वरा भयलसत्करक्षरदमन्दमाध्वीकणैः पिपासितहृदं सुतं करुणयाद्य सन्तर्पय॥"
"अकिञ्चनजनो जनेष्वहह याम्यवज्रापदं विभीषयति मन्मनश्चिरदरिद्रता राक्षसी।
त्रिलोकजनतारिणि त्वरितमेत्य सन्तार्यतां नहि त्रिभुवनाद्बहिर्न खलु नास्मि सूनुस्तव॥"
"अहो बत तवाऽदया यदिह पादपद्मान्तिके पतंस्त्रिजगतीपतिः करुणया न संलोक्यते।
गतिः कथय कीदृशी हतदृशो भवेन्मादृशः पतिः सखलु वार्यतां न पुनरेष साश्रुः शिशुः॥"

अथैवं कृच्छ्रेणात्मनः सकुटुम्बस्य व्ययभारमुद्वहन्ननन्यभक्त्याऽहर्निशं संस्मरंश्च स्वेष्टदेवतां गणनाथः 'कलकत्ता राजकीय संस्कृत कालिजे' तर्क-सांख्य-धर्मशास्त्रादिभिः सह आंग्ल साहित्य-विज्ञानादिकमधीयानो वर्षद्वयेन विश्वविद्यालयस्य एफ्. ए. (First Examination in Arts) परिक्षामुत्ततार, लेभे च प्रतिमासिकपञ्चविंशतिरूप्यकमितां विद्यावृत्तिम्। अत्रान्तरे कदाचिद्विद्यालयाध्यक्षा महामहोपाध्याय महेशचन्द्रन्यायरत्नपादा गणनाथस्य लोकोत्तर प्रतिभादिदर्शनेन दयमानास्तस्य दारिद्र्यदुःखमोचनाय मासिकशतरूप्यकभृतिके कस्यचिद्राजपुरुषस्य संस्कृताध्यापनकर्मणि तं नियोक्तुमीषिषुः। गणनाथस्तु "नाहं कदापि कस्यापि भृत्यः स्याम्" इति सुदृढसङ्कल्पमाचक्षाणस्तान् प्रत्याख्यातवानिति तदानीं रुष्टप्राया अपि ते उत्तरकाले गणनाथस्य स्वतन्त्रतामात्मनि दृढप्रत्ययञ्च बहुधा प्रशशंसुः।

एफ्-ए. परीक्षोत्तीर्णश्च गणनाथो बी-ए. (B. A.) परीक्षामुत्तरीतुं वर्षद्वयमांग्ल साहित्य-विज्ञान-दर्शनानि सह पूर्वोत्तरमीमांसादर्शनाभ्यामधीतुमारेभे, परं परीक्षाकाले दारुणदुर्दैववशाद्विषमज्वरार्त्तो नाशकत् परीक्षार्थमुपवेष्टुम्। तथाप्यनेनैव कालेन परमशिष्यवत्सलानामायुर्वेदमहाध्यापकानां कविराज कालीप्रसन्नकविरत्नानां सविधे चरक-सुश्रुताख्यसंहिताद्वयमष्टाङ्गहृदयञ्चाधीयानः स्वयं च पञ्चषान् शिष्यान् प्रतिदिनमध्यापयन्नयं हानिमिमामापूरयदुपार्जनक्षमश्चाभूदिति सौभाग्योदयश्चास्य युगपदेव बभूवेति मन्तव्यम्। अत्रैवान्तरे चायमुपयेमे आत्मोचितां सत्कुलोद्भवां कन्यां सुनीतिदेवीं नाम।

आसीच्चादित एवाऽस्य हृदये सङ्कल्पस्तातपादानामुपदेशानुसारी "शारीराङ्गाणां प्रत्यक्षदर्शनाय विलुप्तशल्यशालाक्यतन्त्रादिप्रतिसंस्काराय च पाश्चात्यचिकित्साविद्यानिपुणत्वमपि समुपार्जनीयं" विरचनीयश्च-नवीनः शारीरग्रन्थ इति। तथा चाध्यवस्य ई० १८९८ संवत्सरेऽसौ मेडिकल कालिजाख्यं राजकीय चिकित्साविद्यालयं छात्ररूपे प्राविशत्। प्रतिपदे च प्रतिवर्षं परीक्षासाफल्यविशेषार्जितां विद्यावृत्तिपरम्परामुपभुञ्जानो नियमितेन वर्षपञ्चकेन पाश्चात्य-चिकित्साविद्यानिष्णातत्वं सह पुष्कलैरुपाधि-पुरस्कार-प्रशस्ति-पत्रादिभिः।

अथैवं (ई० १९०३ संवत्सरे) "डाक्टरी" परीक्षोत्तीर्णोऽपि गणनाथः पूर्वंवदायुर्वेदमतानुसारिणीमेव चिकित्सापद्धतिमनुसरन् क्रमेण स्वल्पशुल्कं लघुवेश्म परिहाय मासिकशतरूप्यकभृतिकान् बृहत्तरात् गृहानग्रहीत् कलकत्ता नगर्यां ६५ नं० वीडन स्ट्रीटाख्य वर्त्मनि। तत्राव-तिष्ठमानश्च वैद्यकाध्यापनचिकित्साकर्मभ्यामधिकाधिकं यशो वित्तञ्चार्जयन् शल्यतान्त्रिकनैपुण्यञ्चात्मनो विशेषतः प्रकटीकुर्वन् शनैः समुन्नतिसोपानपरम्परामधिरुरोह। एवं स्ववृत्तिव्यापृतश्चासौ ई० १९०८ संवत्सरे कलकत्ता विश्वविद्यालयस्य विशिष्टानुमत्या युगपदेकस्मिन्वर्षे जून मासे बी. ए. (B. A.) परीक्षां, ततो नवेम्बर मासे संस्कृतशास्त्रेषु एम्. ए. (M. A.) परीक्षां च लीलयैवोदतरत्, अभजच्च प्रशंसाविशेषं विशिष्टानां परीक्षोत्तीर्णताशिखरमधिरूढः।

ततः पाश्चात्य चिकित्साविद्याया अपि श्रेष्ठास्पदवीम् 'एम्. डी.'—इत्युपाधिमधिगन्तुं पुनरपि श्राम्यतोऽस्य सुमहच्चैरादयमभूत्, तदीयाध्यापकानां 'मेडिकल फ़ैकल्टी' कर्नेल हैरिस (Dean of the medical Faculty) साहबानां कूटनीतिप्रसूतेन द्वारेण। ते हि अन्वशिषन्—"यदि त्वयेत्थं प्रतिज्ञायते 'नाहम् एम्. डी. परीक्षोत्तीर्णो चिकित्सापद्धतिमनुसरिष्ये'—इति तदैव तुभ्यं विश्वविद्यालयनियमानुसारेण परीद मतिर्देया नान्यथेति"। ततश्चिरपोषितमनोरथभञ्जनीं तादृशीं प्रतिज्ञां कर्तुमशक्तेन गणना एम–डी. परीक्षोत्तरणसङ्कल्पः सविषादः परित्यक्तः, जगाद च "ज्ञानचेन्मया लब्धं सुपर्याप्त 'एम–डी.' परीक्षोत्तीर्णेभ्योऽप्यधिकामेव प्रतिष्ठां काले समासादयेयम् भगवत्कृपयेति"।

सोऽयं दृढामिसन्धवताममीषां दृढोऽभिनिवेशः कथं नु कालान्तरे चरितार्थतामगाहत ? इ नातितिरोहितं पुरतः प्रेक्षावतां विदुषाम्।

अथामी महानुभावाः परिसमाप्याध्ययनविषयं, समधिगत्य च आयुर्वेदानुशीलनपाट स्वकुलपरम्पराप्राप्तां चिकित्साक्रियां कलकत्तानगर्यामेव समारप्सत। क्रमेण चिकित्सा याममी तथा कुशलाः संभूता यथा वङ्गदेशीयवैद्यगणेषु मुख्यां कक्षामध्यरुहन्, कालान्तरे समस्तेऽपि भारतवर्षे एतेषां कीर्तिः प्रससार, अतएव चैतेषां लोकोत्तरगुणेषु मुग्धा वि स्तासु तासु आयुर्वेदीयपरिषत्सु समागन्तुमेतान् सुबहुमानपुरस्सरं निमन्त्रयामासुः, तत्र—

१९११ ई० मिते वत्सरे प्रयागनगरे यदखिलभारत मभूत् तस्य सभापतिपदं श्रीगणनाथमहोदया एव पर्यभूषयन्। एतेषां सभापतित्वे तदायुर्वेदीयमहामण्डलं तथा साफल्यप्रशस्तिं प्रापत् यथा तस्मिन् कालेऽमी 'विद्यावतंस' पदवी-प्रदानेन सम्मानिताः। एभिः 'आयुर्वेदीयशल्यशास्त्रे यन्त्रशस्त्रसंपद् (Surgica instruments in Ayurveda)' इत्यमुं महद्गवेषणाजटिलं विषयमधिकृत्य या भाषणशैली दर्शिता, तामद्यापि के न मुदा शिरो धुन्वानो बहु प्रशंसन्ति ? एतस्मि एतद्रचितः 'सिद्धान्त निदानम्' इति नामधेयो ग्रन्थोऽपि प्रकाशितोऽभूत्।

एवमेव १९२० ई० वर्षे इन्दौरनगरे एकादशतमस्याखिलभारतवर्षीयायुर्वेद-महामण्डल स्याप्यमी एव सभापतिपदं मण्डयामासुरिति।

समग्रेऽपि भारतवर्षे नानाप्रदेशेषु स्थिताः काः काः सभाः श्रीगणनाथपण्डितवराणां गभीर तमैर्भाषणैः प्राज्यैश्च कार्यकौशलैः तद्गुणस्तुतिवन्दिन्यो न कृताः ? के वा विद्वांसो परःसहस्रैर्भावैरभ्यनन्दयन् ?

पण्डितपुङ्गवानामेतेषां भिषग्गणेष्वेव ख्यातिर्नाभूत् परन्तु सकलेष्वेव विद्वत्समाजेषु, तथा च—

वाराणसीस्थभारतधर्ममहामण्डलस्याध्यक्षमहोदयैरमी १९१५ मिते वर्षे स्वकीयाधिवेशने सुबहुमानं समाहूताः, सत्कृताश्च 'विद्यासरस्वती'ति उपाधिवितरणेन।

श्रीकविराजगणनाथमहाभागानां गुणगणवीणारवो-भारतशासकानामपि श्रुतिशष्कुलीम-पूरयत्। तत एव चैते १९१६ ई० वर्षे भारतशासकमहोदयैः 'महामहोपाध्याय' इति महतो-पाधिना सत्कृताः।

भारतवसुन्धरायामायुर्वेदस्यावनतिं दर्शं दर्शं कविराजगणनाथसेनमहाभागानां सदैव चेखिद्यते स्म चेतः। 'कथं नु भारते पुनरप्यायुर्वेदस्य प्रचारः स्यात् ?' इति महती चिन्ता नित्यमेतान्

क्षोभयति स्म । अथ कालान्तरं सतत प्रयत्नपरैरेभिः कलकत्तानगर्यां स्वकीयस्य 'कल्पतरु आयुर्वेदिक-वर्क्स (Kalpataru Ayurvedic works) इति कृताभिधेयस्यायुर्वेदीयभैषज्य-कल्पनालयस्य स्थापना कृता, यत्र चाऽऽयुर्वेदीयान्यद्भुतान्यौषधानि निर्मापयन्तः सर्वत्रैवायुर्वेद-विजयपताकामदूधुनन् । अतएव सरगुजा जयपुरनरेश प्रभृतिभिरेते सत्यामपि सुनिपुण-पाश्चात्यचिकित्सकानामुपस्थितौ स्वकीयचिकित्साक्रियार्थं नियोजिताः, यस्यां चामी लील्यैव साफल्यमासादयन्त आयुर्वेदस्य पुरः सर्वानेव चिकित्साविधीन् नतमस्तकान् कृतवन्तः ।

आयुर्वेदीयविज्ञानान्वेषणकार्येऽपि सुधीवराणामेतेषामाबाल्यादेव परम उत्साह आसीत, पाश्चात्यविज्ञानमनुसृत्याऽऽयुर्वेदस्य दुर्ज्ञेया विषया एभिरन्वेषिताः, अस्मिन् कार्येऽप्यमीषां यशः सुदूरान् दिगन्तान् चन्द्रिकेव शुभ्रीकुर्वन् आस्ते । एते हि १९२१ ई० हायने 'Aurvedic enquiry Committee of govt. of Bengal' इत्यस्याः समितेः सदस्यपदमध्यतिष्ठन्, अथ च मैसूरट्रावङ्कोरप्रान्तेषु आयुर्वेदान्वेषणकार्याय निमन्त्रितीभूय प्रतिनिधित्वेन गताः, तत्र च महदन्वेषणपूर्णानि यानि कार्याण्यकुर्वन् तानि कैर्न सहृदयैरद्यापि प्रशस्यन्तेतराम् ?

एतस्मिन्नेवावसरे एतद्रचितस्य 'प्रत्यक्षशारीरम्' इति ग्रन्थस्य द्वितीयोऽपि भागो नर्तन-भूषाविभूषित आयुर्वेदीयरङ्गस्थले नट इव अनीनृतत् ।

पूर्वतएवासीत् गणनाथपण्डितपुङ्गवानां आयुर्वेदीयशिक्षाप्रचारणाय बलवती प्रवृत्तिः, परोपकारप्रवणतयैभिः 'अष्टाङ्गायुर्वेदीयविद्यालयस्य कलकत्तापुर्यां कविराज श्रीयुतयामिनीभूषणराय-महोदयस्य सहयोगेन निर्माणं विहितम्, विद्यालयस्यास्य निर्मापणार्थं च पञ्चाशत्सहस्रतोऽप्यधिकं द्रव्यं दत्तम्, इत्यहो एतेषामायुर्वेदविषये भक्तिः । एतावतैवामी स्वात्मनः सन्तोषं न मेनिरे, किन्तु १९३२ वर्षे कलकत्तानगर्यामेव स्वपितृपादानां स्मारकरूपं द्वितीयमपि 'विश्वनाथमहा-विद्यालयं' स्थापितवन्तः, अनेनैभिर्यदायुर्वेदस्योपकृतं तत् कः खलु विस्मर्तुं शक्नुयात् ? इति ।

आयुर्वेदविषयेऽमीषां परमं पांडित्यं प्रगाढां भक्तिं परं च कार्यकौशलं सबहुमानं निरीक्ष्य भारतमौलिमुकुटायमानैर्महामान्यैः पण्डितवर मदनमोहनमालवीयमहोदयैरमी काशी हिन्दूविश्व-विद्यालयान्तर्गतायुर्वेदमहाविद्यालयस्य 'डीन आफ दी फैकल्टी (Dean of the faculty)' इति पदे सादरं प्रतिष्ठापिताः ।

नैतावतैव गुणग्राहिणां विदुषां सन्तोषोऽभूत्, १९३१ तमे ईसवीये वर्षे एते महाभागाः महीशूरनगरे पुनरपि साग्रहं सबहुमानं निखिलभारतीयवैद्यसंमेलनस्याध्यक्षपदे प्रतिष्ठापिताः । तत्र चैभिरायुर्वेदोन्नतिकृते विधिविशेषप्रतिपादन पुरस्सरं यादृशं भाषणं कृतं तन्नाविदितं विदुषाम् ।

सोऽयमस्माकं चरितनायकः सकलगुणसनाथः श्रीगणनाथः १९३५ मिते वर्षे काशी हिन्दू विश्वविद्यालयस्य पवित्रभूमौ संपन्नायाः 'त्रिदोषसंभाषपरिषदो'ऽपि सभापतिपीठं सादरम-मण्डयत् ।

'त्रिदोषसंभाषापरिषदः कियत् कार्यमेभिरनुष्ठितम्' इति नाविदितं विदुषाम्, नातिचिरमेव च विवरणमपि अस्याः प्रकाशीभूय पाठकगणानां पुर उपस्थास्यतीत्याशास्यते ।

त्रिदोषसंभाषापरिषदियं नानाशास्त्रनाथेन गणनाथनायकेन सनाथिता विविधविद्योज्ज्वल-कोविदकुलालंकारालंकृता नायिकेव नवीना कथं नु सर्वेषां चेतांसि चमत्कृतवतीति प्रत्यक्षमेवाभूत् प्रेक्षावतां जनानाम् ।

आयुर्वेदक्षेत्रे कविराजगणनाथमहाभागैर्यानि कार्याणि समनुष्ठितानि तानि सकलान्येव भिषजां कुलं सोरस्कारं सप्रेम च प्रशंसतितरां प्रार्थयते चैतेषां दीर्घायुष्ट्वं भगवतो विश्वनाथा-दिति शम् ।

पुरी } कविराज पूर्णचन्द्ररथ आयुर्वेदाचार्यः; व्याकरण-स्मृतितीर्थः ।



21

Presidential Address

21st All-India Ayurvedic Conference,
Mysore, 1930,

(President Mahamahopadhyaya Kaviraj Gananath Sen Sharma, Saraswati, Vidyasagar, Pranacharya, M. A., L. M. S. Calcutta.)

Comrades and friends,

It was with no little diffidence that I accepted the Presidential chair of this august body at the request of the learned Reception Committee of Mysore. I had suggested to them another name, the name of a very worthy person, but the Committee insisted on having my humble services. So I am here to render such services to you once more as I am capable of in the present state of my health which has suffered from a serious break-down on account of ailments and bereavements during the last six years. I thank you for your formally electing me President to-day and I crave your indulgence for my deficiencies. I request you to give me your whole-hearted co-operation.

At the outset, I consider it my duty to express my heartfelt sorrow at the sad death of some eminent Ayurvedic practitioners during the last year *viz* : Pandit Ramshankar of Lahore, Pandit Deva Krishna of Hydrabad (Sindh) and Pandit Mohanlall of Agra. I must also mourn the demise of the learned scholar Major B. D. Basu I. M. S. of Allahabad whose great contribution to Ayurveda—"Indian Medicinal plants"—is well-known as a standard work. We are indeed much the poorer for the loss of these friends. But we hope, more workers of fresh blood will come forward to take up their work and embellish our ranks at no distant date.

I must also express my sincere regret for the political incarceration of such devoted workers and scholars as Pandit's Jagannath Prasad Shukla of Allahabad, Shivanarayan Misra and Raghubardayalu

Bhatta of Cawnpore and some other Vaidyas of high professional attainments who have devoted themselves to the country's cause. How gloomy must we all feel that even such towering personalities as Mahatma Gandhi, Pandit Madan Mohan Malaviya, the Patel brothers, Pandit Motilal Nehru and Jawaharlal Nehru and other patriots are all holocausted in the flames of Government wrath which threatens to make the very existence of the Indian Nation miserable at the present moment. I have never been a politician in my life and have always considered the *Seva* of Ayurveda as the sole object of my humble existence. Neverthless, I share in full measure the sorrow which now fills the hearts of the people of India. May the Giver of all good in his kind providence shower his blessings once more on this *tapasya* of India and make our rulers realize the ju tice of our cause and the meaning of our sacrifices. Progress in these circumstances is bound to stagnate and I venture to advise that followers of Ayurveda should devote more attention to the cause of Ayurvedic advancement than to political propaganda in the near future. My humble conviction is that scientists should, so far as possible, keep away from politics unless they are forced to jump into the political din and bustle. We are anxious to have these great friends back in our midst for we greatly miss their radiant faces here to-day and badly need their sound advice in these troubled days.

I am glad to have this opportunity of meeting and addressing you again for I am not sure if my life will be spared for many more years to serve you and to fulfil the task I have set before myself from the early days of my career. Great changes have occured since I had the honour and privilage to preside at the third All-India Ayurvedic Conference at Allahabad in 1913 when I strove to work out elaborately with Ayurvedapanchanan Pandit Jagannath Prasad Shukla—the first General Secretary of the Standing Committee—the constitution of this great body. Since then, the working of the Conferrence and its Standing Committee, the Ayurveda Mahamandal, and the great learned body under it—the All-India Ayurveda Vidyapith—have been more fully and constitutionally organised and regulated by their able secretaries, Pandit Jagannath Prasad Shukla of Allahabad, Pandit Duraiswami Ayengar of Madras, Pandit Rameshwar Misra Shastri, Kishori Dutta Shastri, Raghubardayalu Shastri and Shiva Narain Misra (all of cawnpore) coming into office one after another and working with untiring energy and selfless devotion. The rules and regulations of the conference and its standing bodies have been repeatedly sifted and revised in several sessions of the All-India Ayurvedic Conference and set on a sound footing. The syllabus of subjects for

the Examinations of the All-India Ayurveda Vidyapith have been enlarged and revised since the time when, assisted and guided by such learned scholars as Pandit Jadavji Tricumji of Bombay, Pandit Krishna Shastri Kavade of Poona, Pandit Lakshmiram Swami of Jaipur, the late Pandit Gopalacharlu of Madras, Vaidyaratna Kaviraj Jogindra Nath Sen, M. A. and the late Kaviraj Jamini Bhushan Ray, M. A. M. B. of Calcutta and other renowned scholars, I devoted my humble services for framing it in view of our present needs. According to this syllabus, examinations in three grades are now held all over India simultaneously in over twenty centres from year to year under the careful supervision of eminent controllers and the excellent organisation of the standing Committee having their office formerly at Madras and now at Cawnpore. The resolutions of this Conference have also been honoured not only by the Ayurvedic paractitioners and other learned men but also by the Legislative Councils and the Provincial Governments and various local selfgoverning bodies under them. Ayurvedic Colleges and schools have been started under direct or indirect Government protection as in Patna, Hardwar and Madras with decent grants both from the Governments and from the local bodies. A large number of charitable despensaries and a few indoor hospitals have also been started not only in the great cities of India but also in many of the small towns. The Hindu University of Benares has now under the newly created Faculty of Ayurveda a fully equipped Ayurvedic College in a large compound with an excellent Ayurvedic garden and a hospital giving efficient surgical and medical aid to numerous patients. The teaching of anatomy and Pathology with the aid of dissectiön and post-mortem examinations have been started there and in many other Ayurvedic institutions. In Bengal, we have three Ayurvedic Colleges in Calcutta which endeavour to give a sound training—theoritical and practical—in Ayurveda, but which have so far received no pecuniary aid from the Government of the Province. The Calcutta Corporation gives substantial yearly grants only to the hospital attached to them. The Ayurveda Sabha, Calcutta is also running eight Ayurvedic charitable despensaries under substantial grants from the Calcutta Corporation. The Prabhuram Ayurvedic College of Bombay and the Ayurvedic College of Madras . founded by our late friend Pandit D. Gopalacharlu of hallowed Memory as also the Govt. College of Indigenous Medicine in Madras are doing excellent work. In the States also, particularly in Mysore & Travancore, Ayurvedic Colleges & Hospitals and numerous Ayurvedic charitable dispensaries are run with good efficiency under State control. All these institutions are doing excellent work in their own spheres.

All this is valuable work well-begun. The public have shown some appreciation but we must not belittle the fact that our progress has been very slow and often disappointing as to efficiency and progress partly through lack of whole-hearted encouragement from the public and the Government and partly through difficulties created by ourselves. Unreasoning conservatism has often stood in our way. Ignorance and indifference to the rapid progress of the medical science in the world have frequently kept us—at least a section of us—bound down to the great traditions of the past to an undersirable degree. We have repeatedly sung the achievements of the past but taken little account of the present. Our outlook has not been sufficiently wide and farsighted. It is also deplorable that too rigid democracy—the octopus of foreign indent—has often held some institutions in its tight grip and checked their progress to a considerable extent. The Executive Committees of these institutions—often a medly of laymen and professionals having no knowledge of the needs of reform in Ayurvedic Educations—have marred the progress of Ayurveda. Experts have been denied full scope for reforms. The necessity of the restoration and of the development of Ayurveda have not been fully understood yet by a large section of laymen and Ayurvedic practitioners who have played to the tune of public superstitions. Almost all of them realise the first necessity but the second necessity, I am afraid, is understood only by a few. In every day practice, they encounter difficulties every now and then as regards the accuracy of their methods of diagnosis and the potency of treatment. They fail to inspire confidence in the public in cases of midwifery and surgical need. It is admitted that Ayurveda should be taught in its eight sections comprehending all branches of the Healing Art, yet full stress is not given on the teaching of Surgery and Midwifery. Many yet would not stir out of the old grooves and explore "fields and pastures new." It was high time they opened their eyes and saw for themselves how the West was progressing. The Western world of medical men are constantly trying to evolve better methods of diagnosis and sounder methods of treatment and to forge weapons of precision to combat disease. They do not shrink from experimenting with or obsorbing in their practice whatever good medicinal agents are available in other countries or systems. *Kutaja & Arjun* are not 'untouchable' with them as Cinchona & Digitalis are with the Vaidyas. It seems they follow more than we do the great maxim of Charaka "तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते" ("Whatever is conducive to the cure of diseases is the proper remedy.")

Once again, therefore, I feel it my duty to stress the point that

our progress has been impeded greatly by blind conservatism and intertia in some of our so-called orthodox colleagues. They would have us believe that what is found in the relics of Ayurveda is sufficient to make a fully qualified Ayurvedic physician, that the Rishis of old reached perfection of knowledge and that no additions or improvments are desirable or possible without seriously affecting the integrity of Ayurveda. It is a great pity that even some learned laymen have been duped by this theory and have believed in the shibboleth of "Pure or unmixed Ayurveda." Pure Ayurveda, if it implies un-supplemented Ayurveda, is a misnomer, for Ayurveda does not mean half-a-dozen mouldy books alone which have been handed down to us in disintegrated and thrice-redacted form. Ayurveda means the great Healing Art of India which was once the ideal of the world but of which considerable portions—even some elementary portions—have been lost irrecoverably. Ayurveda unsupplemented therefore means Ayurveda deficient and mutilated. And I venture to assert that unless we boldly assimilate the truths from the modern developments of Chemistry, Anatomy, Physiology, Pathology, Medicine, Surgery, Ophthalmology, Dentistry etc., Ayurveda of the future will lag sadly behind in the race of scientific progress and may be wiped out or relegated to the archæological museum, all our best efforts notwithstanding.

To make a long story short, I now propose to make a clear statement of the needs and deficiencies of Ayurveda with a view to initiate the much-needed reforms. To start with, let us once for all, rid our minds of the idea that the Rishis were omniscient (सर्वज्ञ) Ominiscience is possible only in one - the Great Ishwara (the God of all creeds) Hindu Philosophy is unequivocal on this point. The Rishis undoubtedly realized Truth but not all the truths of the world. If they had done so, we would not have heard such statements as "वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्"। There would not have been so many Systems of Philosophy and so many cults of religious teaching amongst the Hindu population of India. We hear in Charaka (Sutra, Ch. I) that the Rishis held a great conference on the heights of the Himalaya where, finding their own knowledge inadequate for the relief of suffering Humanity, they deputed the great Rishi Bharadwaja to learn the healing art from Indra, the king of the gods. We also learn from the opening chapter of Charaka, chikitsasthan, that the health of the Rishis had broken down in their kindly endeavour to carry *succur* to the ailing people of the plains of India and they again went up to Indra to have themselves restored to health. In other chapters of Charaka we find tho

Rishis discussing various problems of physiology and medicine and advancing theories of their own often diametrically opposed to one another, All theories were eventually reconciled by the great sage Punarvashu Atreya. These facts appear to prove that the Rishis did not consider themselves ominiscient and they were always amenable to reason and correction. Their advice about आप्तोपदेश (trust-worthy or inspired writing) has been very nicely expressed in the following passage of Charaka—"आप्तागमस्तावद् वेदो यश्चान्योऽपि कश्चिद्वेदार्थाचविपरीतः परीक्षकैः प्रणीतः शिष्टानुमतो लोकानुग्रहप्रवृत्तः शास्त्रवादः—स चाप्तागमः इति (च० सू० ११ अ०) । Of course, it is also said about the Rishis in the same place in Charaka :—

"रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्तपोज्ञानबलेन ये, येषां त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहतं सदा ।
आप्ताः शिष्टा विबुद्धास्ते तेषां ज्ञानमसंशयम् सत्यं वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तमाः ॥"

This passage no doubt supports the theory of the infallibility of the truths advanced by the Rishis but does not establish their omniscience. I think, it is only an instance of *Artha-vada* (अर्थवाद) or pardonable exaggeration—to use an expression of *Purva Mimansa*—and it should not be taken too literally. The real object of the passage is clear in the last sentence which states that the Rishis could speak no untruth as, being free from *Rajas* and *Tamas*, they could have no possible motive for telling a lie. It must be remembered that whatever may be the object of the above passage the action of the Rishis pointed out above belie the theory of their omniscience. The Patanjal Darshana says clearly, speaking of Ishwara, "तत्र निरतिशयं सर्व्वज्ञताबीजम्" ("It is only in Him that absolute omniscience is possible.") The final conclusion therefore must be that the Rishis came to know and expound many great truths, their knowledge and devotion were of the highest order, but *they were not ominiscient*.

Next we must also remember the fact that the present day Charaka and Susruta are not the works of the Rishis Agnivesha and Susruta in their original form. I have shown in the Sanskrit introduction of my work. *Pratyaksha-Shariram* that passages of the original Susruta Sanhita (वृद्धसुश्रुत) quoted by trustworthy and ancient commentators like Chakrapani, Shivadas etc. do not occur in the present-day Susruta, and that there are several passages in the current Susruta which are at variance with well-known truths. It is admitted by all commentators that the current Susruta Sanhita is a work redacted (प्रतिसंस्कृत) by Nagarguna or somebody else. From internal evidences also, we find that the last half of Susruta was an abridgement of the works of Vidheha and other authors. Who probably flourished long

after Dhanwantari, the devine Guru of Susruta. As to Charaka, the very name Charak Sanhita implies that the work is a redaction of Agnivesha Sanhita by Charaka. At the end of every chapter we read–अग्निवेशकृते तन्त्रे चरक-प्रतिसंस्कृते" ("In the work of Agnivesha as redacted by Charaka".) I may also point out that from a long chain of evidences collected by me I have established the identity of Charaka and Patanjali who flourished in the first or second century A. D. It appears further that even this redacted edition of Charaka became partly extinct and deformed with age five or six centuries later, when Kashmir Pandit known as *Dhriraval* made a further redaction and *freshly wrote out* the *last seventeen chapters of Chikitsa-sthan and all the chapters of Siddhi-sthan and Kalpa-sthan.* This fact is clearly stated as follows:–

"अस्मिन् सप्तदशाध्यायाः कल्पाः सिद्धय एव च, नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्य तन्त्रे चरकसंस्कृते।
तानेतान् कापिलबलिः शेषान् दृढबलोऽकरोत्, तन्त्रस्यास्य महार्थस्य पूरणार्थं यथायथम् ॥"
(Charaka)

The conservative Pandits usually forget all these points and contend that every passage of the present-day Charak and Susruta is sacrosanct. This is an unfortunate as it is unreasonable. To them I point out the following as instances of incongruity in the current Susruta and Charaka Samhitas

I. In Susruta :

1. "अस्मिंस्तु शास्त्रे पञ्चमहाभूत-शरीरिसमवायः पुरुष इत्युच्यते। तस्मिन् क्रिया सोऽधिष्ठानम्। कस्मात्? लोकस्य द्वैविध्यात्"—इत्यादि—(सूत्र० १म अध्याय)

The reason given here in the underlined passage does not serve its purpose (if it is not absurd altogether.) The commentatorial ingenuinity of the old annotators does not clear this point. Probably the true reading was लोकस्य तद्विधेयत्वात्।

2. "प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसां च। स षट्सु रसेष्वायत्तः। रसाः पुनर्द्रव्याश्रयाः, द्रव्याणि पुनरोषधयः। तास्तु द्विविधाः स्थावरा जङ्गमाश्च। तासां स्थावराश्चतुर्विधाः—वनस्पतयो वृक्षा वीरुध ओषधयश्चेति" (सुश्रुत० सूत्र० १म अ०)

Here the word औषधि has been used in a novel and unprecedented sence to imply both vegetable and animal matter and the division made as स्थावराश्चतुर्विधाः is not only overlapping but also incomprehensive. The addition of "पार्थिवाः सुवर्ण-रजत-मणि-मुक्ता-मणःशिला-मृत्कपालादयः" at a later stage does not improve the position.

3. शोणितकफप्रसादजं हृदयं, यदाश्रया हि धमन्यः प्राणवहाः। तद् विशेषण चेतनास्थानम्, अतस्तास्मिंस्तमसावृते सर्वप्राणिनः स्वपन्ति। भवति चात्र—

"पुण्डरीकेण सदृशं हृदयं स्यादधोमुखम्।
जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतश्च निमीलति ॥

(सुश्रुत० शारीर—४र्थ अध्याय)।

This is a puzzling passage which so far cannot be explained any strech of imagination. The हृदय as the muscular pump is con founded here with हृदय as the seat of consciousness. I have prove the existence of the latter in the brain by unequivocal evidences.

4. "आमुखात् सलिले न्यस्तः पार्श्वेभ्यः पूर्यते नवः ।
घटो यथा तथा विद्धि वस्तिमूत्रेण पूर्यते ॥"

(सुश्रुत० निदान०. ३य अध्याय)

This passage gives a strange and impossible theory for the formation of urine which cannot be reconciled with facts unless radical emendations are made in the passage. As the existence of the ureters is clearly indicated in the Atharva Veda and also in Susruta itself mentioning "मूत्रवस्तिमभिप्रपन्ने मूत्रवहे द्वे" (the two urinary ducts), the passage under consideration must be an unintelligent interpolation or a vitiated reading.

5. The hopelessly confounded use of the words *Sira* and *Dhamini* (शिरा, धमनी) in Susruta, sharirasthan is also an example of muddling by somebody innocent of anatomy. I have given numerous instances of this muddle in the sanskrit introduction (उपोद्घात) of my Pratyaksha Shariram and I would not repeat them here. I think all attempts of learned scholars to clear up the mist so far have been futile as they did not take into account all the instances quoted by me. Nevertheless even some lettered people have been led to believe that the anatomy of Susruta is 'fairly complete' and unquestionable.

6. The description of the eye as occuring in the first chapter of the Uttaratantra of Susruta is also a puzzle very difficult to slove.

Those who have made a keen study of the Shrirasthan of Susruta and such stray fragments of Anatomy would readily admit that little anatomical knowledge can be gained from them. The Sharirshan of Susruta has only four or five little chapters dealing with anatomy proper. Susruta, no doubt, enjoins dissection of the body as the *sin qua non* of Anatomical knowledge yet we find in the current Susruta is only the shadow of Anatomy. I wonder how those who show great reverence for this Anotomy of Susruta would meet the charge that it is meagre, puzzling and unfit to be taught. For very good reasons, I have always held that the ancient and real Susruta Samhita is now lost in many places and what now passes as Susruta is only a bad redaction of the relics of the missing great work. Such of my friends, therefore, as demand the head of the author of Pratyaksha Shariram on a charger for making the bold statement "शारीरे सुश्रुतो नष्टः" (said in reference only to current Susruta) are hardly rational and discriminative.

II. In Charaka :

Some internal evidences unmistakably showing the extent of mutilation of the current Charaka Sanhita have been already cited. There are also many instances where quotations from the original Agnivesha Sanhita made by old commentators do not occur in the body of Charak Sanhita. I may also add to this an instance of interpolation or irrelevantc ollation by somebody in Charaka (Vimansthan, Ch. 8.) This chapter was originally written with the purpose of discussing the causes leading to pestilences and epidemics. But at the close of this chapter we find the discourse suddenly turning on the benefits of warm water in fever cases without any reason mentioned or implied. We cannot therefore blame Acharya Bagbhata or his learned commentator Arunadutta for calling Susrutta and Charaka by the name *Anarsha* (अनार्ष or not written by the Rishis) in the following passages:—

ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ ।
भेलाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद्ग्राह्यं सुभाषितम् ॥

(अष्टाङ्गहृदयम्० उत्तर ४० अ०) ।

This passage is explained by Arundutta as follows : "अतश्चरकसुश्रुतवद्अनार्षमपीदं गुणवत्त्वान्मतिमद्भिर्ग्राह्यमेव" इति । (अष्टाङ्गहृदयटीका) ।

This is conclusive evidence which cannot be refuted. Vijaya Rakshit, the commentator of Madhava Nidan, also quotes psssages from Charaka and ascribes them to Dridhavala as यथाह दृढबलः &c. The readings of important passages also vary greatly in the various editions of Charaka now obtainable. Thus the evidences of mutilation of Charaka Sanhita are clear.

It is fortunate however that considerable valuable material has been preserved in Charaka Sanhita. The unearthing and publishing of Chakrapani's commentary, thanks to the efforts of my learned friend Pt. Vaman Shastri Datar, has also been very helpful in unravelling the meanings of various difficult passages. Correct editions however, are badly wanted.

The same thing may also be said of Susruta. Even in its mutilated and supplemented form the current Susruta Sanhita is a vast treasury of knowledge in other subjects. We should try to find out and publish the ancient commentaries of Susruta by Chakrapani. Gayadas and Jaiyat (or Jejjarh) which I hope would lead to correction and proper interpretation of many puzzles.

In this connection I must thank the Calcutta University for publishing Bhela Sanhita in its original mutilated form. It tells the tale of the depradations of time and fire and is an excellent example of

the mutilations suffered by the other Sanhitas, including Charaka and Susruta The emandations suggested by the editor who is not a Vaidya also show in some instances how right words could be wrongly altered. If the editor had lived thousand years ago, he would have very probably written out (as perhaps Nagarjun did) the missing chapters according to his own notions. These would have passed now as the writings of the Rishi Bhela. Be that as it may, I must admit that I have obtained at least two very valuable informations from Bhela Sanhita. They are so valuable because their parallel passages cannot be found in the current Charak and Susruta and they supply a missing link in the physiology of the Nervous System.

Any one studying the ancient commentaries of Ayurvedic works with a keen eye would readily discern that most of the Sanhitas of the Rishis are quoted from by old commentators but practically none of these is available at the present day. I have shown that at least thirty ancient Sanhitas of the most authoritative order existed one thousand years ago. These covered various fields of the healing art and some allied subjects *e, g.* Medicine, Surgery, Midwifery, Diseases of the Eye, Ear, Nose, and Throat, Mental diseases, Diseases of Children, and the Science and Art of rejuvenation. All these subjects are dealt with very briefly now in the current Susruta Sanhita, Charaka Sanhita and the two works of Bagbhata,—Ashtanga Sangraha and Ashtang Hridaya.

As the original monographs of the Rishis are now lost to us, we cannot possibly guage fully the depth of the ancient knowledge on these subjects. But any one who keeps himself abreast of the times would readily see that they are not quite adequate.

So far I have probed into the sources of diseases that are eating into the vitals of Ayurveda. Praises of ancient Ayurveda have been sung *ad libitum* by all presidents of the Conference (including myself) and others. Ayurveda is now too well-founded to need such praises. It is high time therefore that we changed our methods and made some introspection with the searching eye of a scientific observer.

There is no doubt that thousands of years ago, when Indian culture was the cynosure of all eyes in the world Ayurveda shone in its full glory and attracted scholars from Egypt, Arabia, Rome and Greece. It was then the great fountain-head of medical knowledge. This has been now fully eastablished once for all, by the diligent researches of keen-sighted and impartial historians. But the various vicissitudes of fortune that befell India during the last two thousand years have reduced the great edifice of Indian culture almost to ashes and relics. It is wonderful to note how through the hand of kind

Providence, so much scientific knowledge, preserved in the present day Ayurveda, has survived the shock. The practical application of the sound principles af pathology and treatment as also the scientific formulæ of the sages, still give immence relief to millions of people in India. But the limitations of Ayurvedic practice are now many and one must not forget them. If Ayurveda is to be the National Medical System of Hindustan, it has to be remodelled and supplemented to cope with the rival systems of the healing art. It has to enthrone itself in the hearts of the people and the scientific men of the world before it is fully recognised and honoured.

Let us then be convinced that it will not avail us much to sing the sweet eulogy of Ayurveda for all time. It may tickle our vanity but it will not satisfy our present needs. Let us then take up our up-hill work in right earnest and try again to reach the peak of excellence as our ancestors did in the palmy days of India.

Here then are the remedies I venture to suggest for the restoration and development of Ayurveda.

1, Correct and carefully revised editions of Charaka and Susruta Sanhitas and other standard works should be published by a special publication department under the ægis of the All India Ayurveda Mahamandal and the Hindu University. Doubtful readings of ancient works should be scrutinised with an open mind and emendations for them should be suggested by authoritative scholars. New text books should be written according to the syllabuses laid down by the All India Ayurveda Vidyapith. Rewards, medals and certificates of honour should be announced for the best text-books on these subjects.

No doubt some attempts have been made in this direction but the responses have not been satisfactory. There should be a well-constituted Text-Book Committee to examine the text-books. These should be written either in Sanskrit or in Hindi. I prefer Sanskrit text-books because they may be read as standard work in all parts of India. Hindi text-books should come next as it is now admitted on all hands that Hindi is the *lingua franca* of India. I do not object even to liberal translations of such excellent works as Hill's Physiology, Tweedy and Wrench's Practical Obstetrics, Dr. D. N. Banerjee's Pathology etc, provided sanskrit nomenclature as prescribed by a Nomenclature Committee of experts is used in preference to nomenclature coined differently by different authors.

It is also necessary that such works should be supplemented with all that is best in the respective subjects of Ayurvedic literature, for Ayurveda can still give many valuable suggestions which may be worked out by the scientific world.

II. A thorough re-organisation of the A. I. Vidyapitha examination is also the crying need of the hour. More and more stress should be now laid on practical examinations in each subject, the standards of efficiency should be raised gradually but not too slowly, The number of examination centres should be reduced if the chances of abuse are to be prevented. It may be contended that there is a dearth of good colleges and hospitals to teach upto the standards laid down by the A. I. Vidyapith, But I believe that once the proper ideals are placed before the profession and the public, more and better colleges and hospitals will not be late in coming.

III. This brings us to the subject of the necessity of founding model Ayurvedic Colleges and Hospitals. Considering the indispensability of a large army of fully qualified Ayurvedic teachers and practitoners for giving efficient training to students and relief to suffering Humanity, the number of teaching intitutions is at present very meagre and in-adequately equipped for the purpose.

In every sphere of education, the old *Tole* sustem and the apprentice system under which the students lived, learnt or worked with their porfessors under the same roof in an irregular manner has now given place to colleges and universities with a far better organisation. The direct touch of students with their teachers under the old system was a very important point which cannot be ignored. Unfortunately, the old system is dying out fast because the irregular standards of their teaching have proved futile and deceptive and unfit to survive the acid test of the modern conditions of life. We must therefore have not only good colleges but residential colleges, more after the ideals of the East than of the West. Until this is practicable, the existing Ayurvedic Colleges should be re-organised and brought up to higher standards of efficiency. Another important point is that the teaching should be fundamentally practical, books being taught in scientific manner and not as *kavyas* are taught. In hospital practice, clinical training should be based more on experiments, observations and inference than merely on the rule of thumb. Many diseases have changed in their phases, and many new diseases have been evolved since the days of Charaka and Susruta. The identification of many valuable drugs mentioned in them have been forgotten. We must know them thoroughly. Clinical diagnosis should also be verified by reference to the pathologist now and then and by post-mortem examinations when possible. In every large institution, there should also be a department for post-graduate training and the practitioners should understand that there is no shame or disgrace in joining these departments and learning what

has not been learnt in the early days of pupilhood. Remember the old sage Bharadwaja going to Indra to learn. Also note how numbers of modern medical men are going to foreign countries to acquire fresh knowledge.

There is another very important matter. Each institution should be placed under the absolute control of an expert who should be held the sole authority for administration and development. The meddlesome attitude of laymen should always be deprecated. Unless and until there is a whole-hearted co-operation between the authorities of the executive and the expert administrative head of any institution, there can be no growth of science and no advancement of high ideals through that institution.

It is also high time when a uniformity of standards should be established in the teaching of Ayurvedic Institutions so as to establish a uniformity in the standards of competency. Unfortunately at the present moment, every institution has a standard of its own and there is no real loyalty to the All India Ayurveda Vidyapitha shown by any of them. This state of things is deplorable. I appeal to them all to realise the importance of such loyalty without which the highest ideals can never be realised and great achievements can never be expected. If the Vidyapitha needs reform, I ask the dissenters to come into the arena of the Conference and propose the reforms desired. It is very probable that the reforms needed will be carried out in the proposed or amended form.

As to clinical training, we must remember that just now there is not a plethora Ayurvedic hospitals in India though there is no dearth of Ayurvedic charitable dispensaries multiplying in every province, thanks to the untiring efforts of the lovers of Ayurveda. It is a dismal outlook that much clinical material is being wasted in these despensaries and in such indoor hospitals as have been founded. This training pre-supposes the existence in the teacher as well as in the student a sound knowledge of anatomy, physiology and pathalogy and when these are wanting there can be no clinical teaching of a rational order. Empirical training that is sometimes given in these institutions is not of much value.

IV. Introduction of better methods of diagnosis is also desirable. In order to achieve the degree of exactitude necessary for the acquisition of scientific knowledge, it is high time that better methods of diagnosis were introduced in Ayurvedic practice. The teachings of the ancient Authors found in the hoary works of Charaka,. Susruta, Bagbhata on this subject place a very high ideal before us. They have advised the full use of the senses,—all the senses according to

investigators like Col. Kirtikar, Pandit Jadavji Tricumji and Degvekar and the late Dr. Desai and Indraji have already done some good work. Recently the Rev. Father Caius and Dr. Mhaskar have taken great pains to investigate a few drugs like *Arjuna, Kutaja* and *Shringi* in a masterly manner. All this, is only a beginning and much work remains to be done.

Research in the action of indigenous drugs both from the Ayurvedic and the Pharmacological point of view require much devotion, great patience and concerted action by many workers. Col. Chopra Dr. S. Ghose and other workers in the Tropical School of Medicine and Dr. Mhaskar and father Caius in the Hopkin Institute of Bombay have given us some very valuable informations by their researches. Such institutes should be founded by the Ayurveda Vidyapitha in and the Ayurvedic Colleges when possible, and Vaidyas, pharmacologists, chemists, botanists and clinicists should combine in team-work to carry out successful researches in indigenous drugs. It is my firm conviction borne out by many experiments and observations that the materia medica or *Dravyaguna-shastra* of Ayurveda is very sound and the properties of the drugs as indicated therein are capable of demonstration. The key of this materia medica, however, has to be acquired by fully understanding the *Tridosha* theory and its pratical application as also the highly technical terminology extensively used in Ayurveda in the descriptions of properties of drugs

Correct samples of herbs and minerals should be collected and exhibited in every Ayurvedic institution and like the Text-book Committee, there should be a Drugs Indentification Committee appointed by the Conference to advise all Vaidyas on the correctness or otherwise of drugs sent to them by the workers. The Hindu University has now started a museum of drugs but it is still in nebulous order. With vast laboratories at its disposal there should not be much difficulty in the indentification and working out of the drugs there. A pharmacological department should also be added to that institution.

VI. It has been suggested to me by many Ayurvedic physicians that a number of Western drugs should be incorporated in the Materia Medica of Ayurveda. This appears to be a delicate subject to handle but I see no reason why the question should not be discussed in the Conference. All other countries of the world are drawing upon our medicinal resources to enrich their medicinal treasuries. Why should we, remembering the great maxim of Charaka (तदेव युक्तं भैषज्यम् &c) as our guide object to use Quinine, Morphine, Bromides, Antimony etc., when the necessity becomes urgent ? Many pros and cons

may be advanced on this subject but I venture to think that the time has come when this question should not be shelved any more. It is well-known at least amongst ourselves that some Ayurvedic physicians, even of the most orthodox type, use a few Western medicines under grab of Ayurvedic names. I disapprove this action as such physicians have not made a full and regular study of the action of these drugs. Let us learn before we prescribe and be honest and frank and have the courage to openly advice our patients to take a few doses of Quinine where quinine is necessary or an injection of Morphine and Atropin when the patient's pain must be immediately relieved.

I touch this subject at some risk to my reputation amongst the lay people in the hope that the Vaidyas will calmly think over this necessity and do the needful with the sanction of the All India Ayurvedic Conference and with full knowledge of the action of such drugs. Many Yunani drugs have been taken into our Pharmacopea by Bhavamisra and other authors during the last three or four centuries. Why should we not follow their example?

VII. The last point I should like to bring to your notice is the need of raising professional ideals and framing a code of medical ethics amongst the Vaidyas. From the great original ideal of the Rishis enjoining the Vaidyas to treat suffering Humanity without demanding any remuneration, the modern medical men of all creeds have now fallen to the depth of shop-keeping, overtly or covertly. We, the followers of the great Rishis, should rise above this practice as soon as practicable. The Saraswat Brahmans of India, specially a sect of them known as Vaidyas in Bengal, followed the noble practice of the Rishis even fifty years ago. This ideal may be difficult to follow because of modern conditions of life. But the ideal should be there and considering present conditions of life only rasonable fees and prices of medicine may be taken from those that can afford. Giving free relief to the poor populace, however, should always be the supreme duty of every Vaidya. Fortunately numerous Vaidyas yet follow this call of duty in their home as far as their means permit. But I stress this point because the happy ideal is vanishing fast with the advent of foreign culture and manners.

Further, it is a disgrace that reckless and exaggerated advertisements are sometimes indulged in by some Ayurvedic practitioners. I do not find adequate words to condemn this practice. Intelligent advertising without extravagant claims is made by Western firms. The Vaidyas when they at all advertise for the sale of their medicines should advertise in similar manner. The distinction between the quack and the regular physician lies in the manner of advertising

and it must not be forgotten that a physian should not lower himself to the rank of a mere drug-seller. The ideal of course is that of large and well-organised firms preparing medicines on a large scale under strict supervision of experts. The Vaidyas and their patients should have their requirements and perscriptions served by such firms. But it would be long before this ideal is realised although such firms have already arisen in Bengal, Gujrat, Bombay and Madras Presidencies. Above all, the physicians should do nothing that is beneath the dignity of the profession.

Co-oprration and fellow-feeling amongst the Vaidyas should also make their mutual relations more sweet and sincere. Vilification of one another as also of practitioners of other systems should cease immediately among those that are in the habit of indulging in this deplorable practice.

Ladies and gentlemen, I have said my humble say. Perhaps I have wounded the feelings of some and the delicate susceptibilities of others in my anxiety to see my profession flourish in the near future. Somebody must sacrifirce himself to say what is unpalatable truth and I gladly give myself as an offering to the displeasure of my friends whom I want to pause and think. I sincerely hope that you will not misunderstand me. I beseech you to combine and co-operate according to the Vedic Mantra—

"सं गच्छध्वं सं वदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्"

"Unite and confer and know the
minds of each other."

In conclusion, I wish to state that I have suggested these reforms because I have always adored Ayurveda for very good reasons. I adore Ayurveda, not because it had a great past, but because it has still a great future. Ayurveda with its literature fully re-edited and replenished can still give to the world what other Systems have so far failed to give. The truths of Endocrinology recently discovered are certainly on a higher plane than the truths of elementary Physiology. Yet higher stands the great *Theory of Thridosha* which supplies the key not only to all physiological and pathological phenomena known to us but also to the principles of Pharmacology and Practical Thearapeutics. The existence of the three Doshas or essential principles (Vata. Pitta and Kapha) pervading the Dushyas (or tissues, secretions and excretions) and guiding healthy and diseased conditions is not a myth. It is anything but the Humoral theory of the ancient Greeks and Romans. The action of foods nnd drugs also is determined by the influence they exert on these essential physiological principles according to their Rass (taste). Virya (general

effect until it is eliminated) and Vipaka (the chemical changes undergone in the metabolism) and their Gunas (special physiological action). Specific action in disease, known as Prabhava, is also a very important factor determining the therapeutic uses of the substance. Such then, in a nutshell, is a bare indication of the great Theory which, properly understood, cannot fail to impress any scientific man with an open mind. To restore Ayurveda to its full glory, this Theory must be understood and explained to the world. It is not the existence of certain Potent indigenous drugs merely or certain effective methods of treatment alone that glorify Ayurveda. It is the Scientific Basis that stands as the bedrock of Ayurvedic practice which is now guided by the formulæ laid down by the sages of yore. Unless there is a full and all-round revival of Ayurveda, you can not demonstrate this scientific basis and improve the methods of medical treatment now in vogue in all countries. With this object in view, I request you to look around and forward and to take your right place on the dais of the scientists of the world. May *Dhanvantari*, the great incarnation of Vishnu, help you to achieve this object for the sake of suffering Humamity. May the World reap the full benefits of Ayurveda, shining like the newly risen glorious orb in the horizon.

सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विना वधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥



॥ श्रीधन्वन्तरिर्विजयतेतराम् ॥

निखिलभारतवर्षीयद्वाविंशतितमवैद्यसंमेलनस्य सभापतेरायुर्वेदमार्तण्ड,

श्रीयुत वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य महोदस्य

अभिभाषणम् ।

अश्विना सारघेण मा मधुनाऽक्तं शुभस्पती ।
यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥
प्रजादक्षाश्विदेवेन्द्रानायुर्वेदप्रवर्तकान् ।
रसागमप्रवक्तारं प्रणमामि च भैरवम् ॥

परसम्माननीयाः स्वागतसमित्यध्यक्षाः, धन्वन्तरिकल्पा वैद्यप्रवराः, उपस्थिताश्च सभ्यमहोदयाः !

वर्षेऽस्मिन् संमेलनस्यास्य अध्यक्षपदकृते आसन्निर्वाचिताः सर्वसंमत्या अस्मत्परमसुहृदो वयोज्ञानवृद्धाः पण्डितप्रकाण्डा वैद्यवर्याः श्रीहरिप्रपन्नशर्माणः । पण्डितवर्यैर्विरचितः सुमहान्निबन्धो रसयोगसागर एव प्रकटयति पाण्डित्यप्रकर्षं श्रीमताम् । ग्रन्थस्यास्य निर्माणेन ऋणीकृतो वैद्यसमाजः श्रीमद्भिः । सभापतिपदमलङ्कर्तुं पण्डितवर्यान् श्रीमतो हरिप्रपन्नाचार्यान् सादरमभ्यर्थ्य वैद्यवरैरपि दर्शिता स्वीया निर्वाचननिपुणता गुणग्राहकता च । परं तु वक्तव्यमेतद्भवति सखेदं यत् पण्डितप्रवरैर्बहूनां भिषग्वर्याणामन्येषां च मित्राणां सत्यपि सुमहत्याग्रहे स्थानमेतदलङ्कर्तुं नैव प्रदत्ता स्वीकृतिः । यदि चेत् पण्डितप्रवरा अलमकरिष्यन् सभापतिपदं, तदा सर्वेऽपि भिषजोऽभविष्यन् सागरगर्भितोपदेशामृतपानभाजः । पण्डितश्रीहरिप्रपन्नजीकृते कृतायां प्रार्थनायां विफलायां मम सुहृद्वरा जयपुरनिवासिनः पण्डितवर्याः श्रीलक्ष्मीरामस्वामिनः, कलिकातानगरवास्तव्याः सुगृहीतनामधेयाः कविराजश्रीश्यामादासवाचस्पतयः, श्रीकाशीक्षेत्रनिवासिनो विद्यावयोवृद्धाः सुप्रसिद्धाः श्रीत्र्यम्बकशास्त्रिणः सभापतिपदमलङ्कर्तुं क्रमशः प्रार्थिता अपि अस्वास्थ्यादिकारणवशान्न स्वीकृतिं दत्तवन्त इति प्रतिकूलं मन्ये भागधेयम् । सत्सु प्रोक्तेषु भिषग्वरेषु अपरेषु च बहुषु योग्येषु चिकित्सकधुरीणेषु

अस्मन्मित्रेषु संप्रति नो पश्याम्येतत्पदकृते संभावितमात्मानम्। तथाऽप्यायुर्वेदमहामण्डलाध्यक्षाणां महामहोपाध्यायकविराजश्रीगणनाथसेनमहोदयानां, आयुर्वेदमहामण्डलमन्त्रिणां च 'कवडे' इत्युपनामभाजां मित्रवर्याणां वैद्यपञ्चाननश्रीकृष्णशास्त्रिणां मित्राणाञ्चान्येषामन्यथाविधातुमप्रभुरनुरोधमिति एतत्पदस्वीकारं परमकर्तव्यं मन्ये आत्मनः। एतच्च सर्वथा सत्यं, यद् योग्यतमानां सुधियां प्रतिष्ठायोग्ये पदे मां प्रतिष्ठापयद्भिर्भवद्भिर्वृद्धिं नीयते मम गौरवम्। कृते चैतस्य श्रीमतः प्रति कृतज्ञताप्रकटनं मन्ये मम कर्तव्यम्। यद्यपि पदमेतदङ्गीकृतं मया, तथाऽपि कर्तव्यनिर्वाहस्य भवतां महानुभावानां सहयोगसहचारित्वे एव संभव इत्यभ्यर्थये तत्रभवतां श्रीमतां सहायताम्।

एतच्चास्माकं परमं शोकस्थानं यत् प्रागेवास्मात्संमेलनाधिवेशनसमयात् परित्यक्तोऽयमसारः संसारो राजमातृभिः राजकार्यसंपादनसमर्थाभिः शासनसंचालकसभाध्यक्षाभिः 'चिनकुराजासाहिबा सिन्धिया' इति सुगृहीतनामधेयाभिः। श्रीमतीनां राज्यशासनकाले ग्वालियरराजस्य राजकार्यं सुचारुरूपतया संपादितमभवदित्यत्रास्ति सर्वेषामेव राजकार्यधौरेयाणामैकमत्यम्। श्रीमतीनां सुव्यवस्थाया एवैतत् फलं यत्—ग्वालियरराज्यप्रजाभिर्विस्मृता इवाभवन् महाराजश्रीमाधवरावजी सिन्धियामहोदयाः प्रकृतिरञ्जनैकवृत्ता अतिथयः स्वर्लोकस्य। एतदपि मम ज्ञातमस्ति यत् श्रीमतीनां शासनकाले आयुर्वेदीयानां विद्यालयानां चिकित्सालयानां चाभिवृद्धिः साधु संपन्नेति। श्रीमतीनामात्मा, लाभेन सद्गतेः प्रसीदत्विति प्रार्थये परमपितरं भगवन्तं भवानीपतिम्। स एव परमात्मा महाराजश्रीजयाजीरावसिन्धिया आलीजाह बहादुर महोदयाय वितरतु तादृशमात्मबलं येन महाराजाः सह परिवारगणैः क्लेशस्यास्य प्रसहने भवेयुः समर्था इति।

'वैद्यरत्न एम्. ए. विद्याभूषण' इत्याद्यनेकबिरुदभाजां कविराजश्रीयोगीन्द्रनाथसेनमहोदयानामकालमरणमपि दुःखाकरोत्यस्मान्। श्रीमद्भिः कानपुरनगरे सिंहलद्वीपे (सिलोन) च संमेलनस्यास्य सभापतिपदमलङ्कृतमासीत्। श्रीमद्भिश्चरकसंहिताया उपस्कारनाम्नी लिखिता महीयसी व्याख्येति विदितमेवासीद्भवताम्। नानाप्रान्तेभ्यो लिखितपुस्तकानि संगृह्य तेषां साहाय्येन चरकसंहिताया मूलपाठसंशोधनेऽप्यनुष्ठितः सुमहान् यत्नस्तैः। उपस्कारव्याख्यासहिता चरकसंहिता वर्तते मुद्रिता चिकित्सास्थानस्य त्रयोदशाध्यायपर्यन्ता। अवशिष्टोऽपि भागो लिखित एवास्ते कविराजमहोदयैः। तस्यापि मुद्रणमल्पेनैव कालेन संपादयिष्यति तेषां सुपुत्र इत्याशास्महे। स्वर्गतानां कविराजानामात्मनः सुखित्वे नास्ति संदेहस्य लेशोऽपि, तथाऽपि शान्तिलाभाय प्रार्थयामहे प्रणतजनार्तिहारिणं परमेश्वरम्।

आयुर्वेदस्य प्राचीनता, ऐतिहासिकी महत्ता, लब्धपूर्वगुरुता च साधु दर्शिता संमेलनस्यास्य भूतपूर्वाध्यक्षमहोदयैः; आर्यवैद्यकशास्त्रं वैज्ञानिकतत्त्ववञ्चितमिति इतरैः कृतस्याक्षेपस्य समीचीनमुत्तरमपि तैरेव प्रदत्तमिति तानेव विषयानधिकृत्य शब्दान्तरेण तेषामेव वर्णनेन श्रीमतां व्यर्थं मन्ये कालस्य क्षेपम्। आयुर्वेदीयानां गूढवैज्ञानिक-

तत्त्वानां चर्चाविधानेऽपि नाहमस्मि संमतः। यतो विषयाणामेषां चर्चाकृते संमेलनेन सह पण्डितानां तद्विषयसंभाषाणां कृता विद्यते योजना। इदानीमायुर्वेदशासनं कथमुन्नतिपथमारोहेदिति विषयमधिकृत्यैव विचारकल्पमात्मनो महानुभावानां समक्षमिच्छामि प्रस्थापयितुम्। तत्र च भविष्यन्ति भवन्तो दत्तावधाना इत्यत्र नास्ति संशयस्य कणिकाऽपि।

प्रथमं तावदायुर्वेदस्य प्राचीनां वर्तमानां च परिस्थितिमधिकृत्यैवाभिधीयते मया किंचित। आयुर्वेदोऽस्माकं द्विसहस्रवत्सरेभ्यः पूर्वमासीत् परमोन्नतिमारूढो गुरुस्थानीयश्चान्यदेशीयचिकित्साशास्त्राणाम्। अधिगम्य चास्माद्देशाच्चिकित्साशास्त्रस्य गूढानि तत्त्वानि स्वदेशे प्रचारयन्ति स्म देशान्तरवासिनो विद्वांसः। परं वैदेशिकभूपतीनां भारतभूमिमधिकर्तुं प्रवृत्तानामनवरताक्रमणेन, अहिंसाधर्मातिरेकेण, गृहकलहैः, धर्मे राज्ये च वारं वारं संभूयमानक्रान्ति (विप्लव) जनितया अशान्त्या, अन्यैश्च कारणान्तरैः आरभ्यत मन्दता आयुर्वेदशास्त्रप्रगतेः, नवनवतत्त्वान्वेषणस्य च। ततश्चार्वाचीनसमये तु रसशास्त्रं योगसंग्रहं च विहाय नान्येष्वायुर्वेदविषयेषु संजाता कथनार्हा प्रगतिः। चरकसुश्रुतयोर्बहूनामध्यायानां दर्शनादवगम्यते यत् पुराकाले महर्षयः शास्त्रतत्त्वान्वेषणाय देशाद्देशान्तरं विहरन्ति स्म। समेताश्च ते तत्त्वविनिश्चयाय, यतन्ते स्म तद्विद्यसंभाषाभिः। प्रमाणैः स्वमतस्थापनं परमतदूषणं च कुर्वन्ति स्म; स्वयं ज्ञानवन्तोऽपि ज्ञानवृद्धानभिगम्य तदुपदेशान् शृण्वन्ति स्म। समनन्तरमार्षकालात् पूर्वप्रतिपादितकारणैः क्रमशो हीयमानैवाभून्नवतत्त्वान्वेषणप्रवृत्तिर्वैद्यानाम्। यथा अदृष्टफले धर्मे तन्निर्णयार्थमाप्तवचनानामेव प्रामाण्यं न तर्कादीनामिति मतमासीत् धर्मपराणां भारतीयानां, तथा दृष्टफले चिकित्सितेऽपि आर्षवचनान्येव प्रमाणानि तर्कानुभावादयस्त्वकिंचित्करा इति प्रवृत्तिरासीद् भारतीयवैद्यानाम्। ततश्च स्थगितैवासीन्नवतत्त्वान्वेषणप्रवृत्तिरस्मद्देशे। इति तु न जाने कथं विस्मृतमिति तत्त्वं तात्कालिकैर्वैद्यैर्यदस्माकं प्रमेयं विशेषतः प्रत्यक्षावगमं, कथमस्माभिरुदास्यते नवनवतत्त्वाविष्कारादिति। एतच्चास्माकं हर्षस्थानं यत् स्थगितायामपि वृद्धौ प्राचीनानामायुर्वेदप्रवर्तकानां महर्षीणां चिकित्साशास्त्रे प्रतिपादिताः शाश्वताः सिद्धान्ताः सुगमाश्च चिकित्सापद्धतयोऽधर्षणीया विद्यन्ते। यद्बलादद्यापि वैद्याः कष्टसाध्यरोगचिकित्सायामपि यशस्विनो भवन्ति। महर्षिभिर्विहिता आरोग्यशास्त्रनियमाश्चैवंविधाः समीचीना वर्तन्ते याननुपालयतां जनानां रोगोत्पत्तिरेव न भवति अन्यत्रातिप्रबलाद् दुर्दैवात्। आयुर्वेदीयौषधनिर्माणक्रियायां च नापेक्ष्यते सुमहतां यन्त्राणां साहाय्यं, न च मृग्यं भवति बहु मूल्यं, न च विद्यते सुमहान् प्रयासः, पाकस्येव तस्य संपादने गृहस्था एव प्रभवन्ति वैद्याः। पाश्चात्यवैद्यानामिव भारतीयवैद्यानामौषधावाप्तये न विद्यते परदेशीयमुखावलोकिता, परकीयमञ्जूपापोषकता, विवशतया पराधीनता च। गतयूरोपीयमहासमरसमये अनुभूतमेव सुमहत्कष्टमौषधावाप्तये डॉक्टरमहोदयैः। महर्षिभिराविष्कृता चिकित्सा-

पद्धतिरपि सरला, निराडम्बरा, कांश्चिदपवादभूतप्रयोगान् विहाय अल्पमूल्या, वैद्यप्रमादेऽपि नातिव्यापत्करीत्यत्र नास्ति कस्यापि संदेहः। महर्षिभिः स्वीयाविरत-प्रयाससंभवानुभवैराविर्भाविताः प्रयोगाः कष्टसाध्येऽपि रोगे प्रभवन्ति। ग्रहण्यां पाण्डुरोगे च पर्पटीयोगाः, उदरे शोथे चारोग्यवर्धिनी, प्रलापिसन्निपाते तगरादिकपायः, इत्यादीनि सन्ति शतशोऽत्र निदर्शनानि। फेनाश्म (सोमल-शंखिया) हरितालवत्स-नाभादिभयङ्करप्राणहारिणां विषाणामपि भारतीयैर्वैद्यैराविष्कृताः शोधनादिसंस्कारा ईदृशाः सन्ति, ये विषाणामेतेषां मिथ्यायोगजनितानिष्टपरिणामावरोधे शक्नुवन्ति। यं हि वत्सनाभं पाश्चात्यचिकित्सका हृदयावसादकं मन्यन्ते, तमेव गोमूत्रे गोदुग्धे च शुद्धं भारतीयवैद्या हृदयबलाधानाय प्रयुञ्जन्ते। पारदजनितविकारप्रतीकारकस्य पारद-सहचरस्य गन्धकयोगस्याविष्कर्तारो भारतीया रससिद्धा एव। भारतीयायुर्वेदचिकित्सा यथा प्रभवति जीर्णरोगे न तथा तरुणरोगे इति जनसमाजे समेधमानो भ्रमोऽमूल एव। चिकित्सेयं सर्वत्रैव समानं प्रभवति रोगे। अत्र च नासिकवैद्यसंमेलनसभापति-भिर्मद्रासराजकीयायुर्वेदशालाध्यक्षैः पण्डितवरैः कॅप्टन. जी. श्रीनिवासमूर्तिमहोदयैः स्वीयायामाध्यक्षवैखर्यामभिहितम् "आभ्यन्तरातुरशालायामपि टैफायिड्, न्युमोनिया-प्रभृतयो दारुणा रोगा अपि सम्यगुल्लाविताः' इति। एतदेव च प्रमाणं परमं मन्ये जनताभ्रमापनोदनाय। अत्र तु नास्ति किमपि वक्तव्यं यज्जीर्णे रोगे भारतीया चिकित्सापद्धतिरतिशेतेऽन्यां चिकित्सापद्धतिमिति। गुणपक्षपातिनो डॉक्टरमहोदया अपि जीर्णकष्टसाध्यरोगेषु एलोपेथीचिकित्सां विफलां पश्यन्त आर्यचिकित्सां विधेया-मुपदिशन्ति मकरध्वजादीन् प्रयोगांस्तु स्वयमप्युपयुञ्जन्ति।

वर्तमानाया आयुर्वेदपाठ्यप्रणाल्या विमर्शः।

इदानीं भारतवर्षस्य प्रान्ते प्रान्ते द्वित्राणामीदृशानामायुर्वेदविद्यालयानां दृश्यते-ऽस्तित्वं, यत्र प्राच्यवैद्यकशिक्षणेन सह दीयते प्रतीच्यवैद्यकस्यापि शिक्षणम्। अत्र नियुक्तैरध्यापकैरार्यवैद्यकज्ञैः पाश्चात्यवैद्यकज्ञैश्च भवितव्यं, भवितव्यं च विशेषत आ-युर्वेदभक्तैः। परंतु उभयायुर्वेदविदोऽध्यापका न संप्रति सुलभा इति विदितप्रायं सर्वेषाम्। त्वरितमुभयायुर्वेदविदां विदुषां निर्माणाय विधातव्यः प्रबलः प्रयत्नः। संप्रति निर्दिष्टानामायुर्वेदविद्यालयानां वर्तते ईदृशी दशा—यत्र वैद्या आर्यवैद्यकं डॉक्टराश्च पाश्चात्यवैद्यकमध्यापयन्ति। विद्यार्थिनश्चोभयत्र वर्तमानमापातविरुद्धं किमपि विधान-मधिगम्य भ्राम्यन्ति, कथयन्ति च—एकस्मिन्नेव विषये एकस्य गुरोरपर उपदेशः, अन्यस्य चान्य इत्यनयोर्मध्ये तथ्यः खलु कस्योपदेशोऽस्माभिर्मन्तव्य इति। विद्या-लयेष्वेतेषु च प्रविविक्षूणां विद्यार्थिनामाङ्ग्लभाषाज्ञानं यथा परीक्ष्यते न तथा संस्कृत-भाषाया ज्ञानम्। अर्थादाङ्ग्लभाषायां मध्यमास्थानीयायां मेट्रिकपरीक्षायामुत्तीर्णानां तत्समानबोधवतां वा प्रवेशो मन्यते उचितः, संस्कृतज्ञानां तु येषां केषांचिदेवानुमन्यते

प्रवेशः ।। चरकाद्याकरग्रन्थावबोधसामर्थ्यशालिनां काशिकसंस्कृतविद्यालयमध्यमादि-परीक्षासूत्तीर्णानां तत्समबोधवतां वा प्रवेशो विधेय इत्याग्रहस्तु न तत्र विद्यते। परिणामश्चेदृश उद्भवति यत्—संस्कृतभाषाविहीना एव प्रविशन्ति छात्राः, प्रविष्टानां चेदृशामन्तेवासिनां संस्कृतभाषाग्रन्थानां भवति मर्मावबोधो दुर्बोधः। पाश्चात्यायुर्वेद-विषयाश्चातिविस्तृतैराङ्ग्लभाषाग्रन्थैरेवाध्याप्यन्ते, तेषामध्ययने एव विद्यार्थिनां भृशं याति समयः, अत आर्यवैद्यकग्रन्थानामध्ययनाय न लभ्यत एव तेषां पर्याप्तः समयोऽपि। विद्यार्थिनां प्रत्यक्षानुभवकृते यथा यतन्ते पाश्चात्यवैद्यकाध्यापका डॉक्टरा, न तथा यतन्ते आर्यवैद्यकाध्यापका वैद्याः। एभिर्हेतुभिर्विद्यार्थिनो यथा भवन्ति पाश्चात्य-वैद्यके निपुणास्तदनुरागिणश्च न तथा भारतीये वैद्यके; हीनं च मन्यन्ते आर्यवैद्यकम्। विशिखानुप्रविष्टाश्च प्रायो विदेशीयौषधव्यवहारपरा भवन्ति। प्रभूताश्चैतेषु डॉक्टर-ख्यात्याऽऽत्मानं बहुमन्यन्ते। परिणामेन चानेन, ईदृशायुर्वेदविद्यालयस्थापकानां तत्र-भवतां भारतीयायुर्वेदभक्तानां विपरिणमति सर्वथा उद्देश्यः—विद्यालयेष्वेतेषु उपयुक्त-पाश्चात्यायुर्वेदज्ञानोपबृंहिता भारतीयायुर्वेदविद्वांसः समुत्पद्येरन्निति रूपः। नहि ईदृशेषु विद्यालयेषु पाश्चात्यायुर्वेदज्ञानसंपन्ना डॉक्टरा एव समुत्पद्येरन्निति तेषां मनीषितोऽपि भवत्युद्देशः। इति तु तेऽपि जानन्त्येव यत् पाश्चात्यायुर्वेदाध्यापनार्थं वर्तन्त एव विद्या-लया महाविद्यालयाश्च राजकीयाः प्रान्ते प्रान्ते। अतोऽस्तमितोद्देशानामायुर्वेदद्वयपाठ-शालास्थापकानां निकटे ममेदृशी संप्रार्थना—यत्—काशिकराजकीयसंस्कृतमध्यमादि-परीक्षोत्तीर्णास्तत्समबोधवन्तो वाऽन्तेवासिन एव प्रविविक्षवः स्वीक्रियन्ताम्। ये च नवाविष्कृता विषया भारतीयवैद्यके नोपवर्णिताः, वर्णिता अप्यतिसंक्षेपतया दुरवबोधाः, त एव विषयाः पाश्चात्यपद्धतिमनुसृत्य पाठ्यन्ताम्। ते च विषया यूरोपदेशीयविद्या-र्थिनामर्थे लिखितेभ्योऽतिविस्तृतेभ्य आङ्ग्लभाषाग्रन्थेभ्यो न पाठ्याः, किं तु आयुर्वे-दीयविद्यार्थिनां कृते उपयुक्तान् नातिविस्तृतान् देशीय (प्रान्तीय) भाषायां संस्कृत-भाषायां वा निबन्धान् निर्माय त एव पाठ्यन्ताम्। परीक्षायां प्राधान्यमार्यवैद्यकस्य स्थापनीयम्, अन्यथा परीक्षार्थिनो यथा पाश्चात्यवैद्यके परिश्रमं कुर्वीरन् न तथाऽऽर्य-वैद्यके। पाश्चात्यनिदानस्य तच्चिकित्सायाश्चाध्ययनमायुर्वेदीयनिदानचिकित्सयोः साधु मर्मज्ञानानन्तरमेव विधेयम्। विद्यालयस्थेषु धर्मार्थदातव्यौषधालयेषु आतुरालयेषु च भारतीयौषधव्यवहारायैव विधीयतामाग्रहः। विद्यालये चेदृशेऽध्यापकपदभाजां वैद्यानां निकटेऽपि मेऽस्त्यभ्यर्थना, यत्-भवन्तः पाठने, औषधद्रव्याणां परिचायने, भेषज-कल्पनिर्माणे, निदाने, चिकित्सायां च, संपादने प्रत्यक्षज्ञानस्य पाश्चात्यवैद्यानां कुर्वन्त्वनु-कृतिम्। येन भवत्पादान्तेवासिनोऽपि आर्यवैद्यकरहस्यज्ञाः प्रत्यक्षज्ञानसंपन्नाश्च जायेरन्।

आयुर्वेदविद्यालयेषु सर्वेषामायुर्वेदाङ्गानां शिक्षणमावश्यकम्।

संप्रत्यायुर्वेदविद्यालयेषु प्रायः कायचिकित्साप्रधानमेव भवत्यध्यापनम्। शल्य-

शालाक्यप्रसूतितन्त्रादीन्यायुर्वेदाङ्गानि प्रायो नैवाध्याप्यन्ते। शल्यादीनामन्येषामप्यायुर्वेदाङ्गानां ज्ञानमावश्यकमेव संप्रति वैद्यानाम्। शस्त्रचिकित्सायामज्ञतया शस्त्रचिकित्सासाध्यरोगवतां चिकित्सार्थमागतानां रोगिणामारोग्यविधानमस्माभिरशक्यमिति भवन्ति प्रेषणीयास्ते शस्त्रचिकित्सानिपुणानां दक्षतराणां निकटे। एकैकवैद्यसमावेशार्हेषु सार्वजनिकधर्मार्थौषधालयेषु जनतेच्छायाः सत्त्वेऽपि वैद्यानां निर्वाचनं न भवति, तत्रापि कारणमस्माकं शस्त्रचिकित्सादीनां ज्ञानाभाव एव। अत आयुर्वेदविद्यालयेषु सर्वेषामप्यायुर्वेदाङ्गानामुपदेश आवश्यक एव। एतच्च कार्यमायुर्वेदविद्यालयसंचालकानामित्येतद्विषये तैरवश्यमेव देया दृष्टिः। संप्रति वैद्येष्वेवंभूता विरला एव वैद्या ये योग्या (कर्माभ्यास) पूर्वकमध्यापयेयुः शल्यशालाक्यादीन्यप्यङ्गानि। तथाऽपि क्रियामाणे यत्ने स्वल्पेनैव समयेन भवेदेतादृशानामपि वैद्यानां समुपलब्धिस्तावत् सर्वत्रैवंविधैव भवति व्यवस्था। आरम्भे तु कर्माभ्यासपूर्वके शल्यतन्त्रादीनामध्यापने शस्त्रचिकित्सानिपुणानां डॉक्टराणां सहायता भवदपेक्षिता। कुत्रापि चिकित्सापद्धतौ व्याधिभेदेन शस्त्रप्रयोगभेदो नास्त्येव, परंतु तत्रोपयुज्यमानानां द्रव्याणामस्ति भेदः। आयुर्वेदविद्यालयेषु शस्त्रचिकित्साध्यापकानां डाक्टरमहोदयानां सविधे इयमस्ति मेऽभ्यर्थना—यत्ते निर्भयाः सन्तः शस्त्रचिकित्सायामायुर्वेदक्रमसिद्धानामग्निपक्वानां घृततैलकषायप्रभृतीनामेव व्यवहारं कुर्वन्तु। सिद्धास्तैलकषायादयोऽग्निपक्वत्वात् पूयोत्पादककृमिरहिता भवन्ति। निर्माणे चैषां प्रयुज्यमानानि द्रव्याण्यपि भवन्ति कीटाणुनाशकानि शोधनरोपणादिगुणसंपन्नानि च। शस्त्रचिकित्सायामग्निसंतप्तानामेव द्रव्याणामुपयोगविधानमस्ति प्रतिपादितमार्याणां वैद्यकशास्त्रे। 'शुचिसूक्ष्मदृढाः पट्टाः कवल्यः सविकेशिकाः। धूपिता मृदवः श्लक्ष्णा निर्वलीका व्रणे हिताः' इति। (वाग्भट, सूत्रस्थान, अध्याय २९, श्लोक २९)। (अत्र 'धूपिताः' इति 'धूप संतापे' इत्यस्य रूपम्)। "सुश्रुतेऽपि" "अग्नितप्तेन शस्त्रेण छिन्द्यात्" (चि. स्था. अ. २ श्लो. ४६) इति प्रतिपादितम्। 'अतप्तच्छेदने पाकभयं स्यात्' इति तट्टीकायां डल्हणः। रसरत्नसमुच्चये सूचिकाभरणप्रयोगे च 'सूच्याऽतिसूक्ष्मया तोयस्विन्नयाऽतिप्रयत्नतः' इत्यस्ति लिखितम्। 'शस्त्रचिकित्सायामपेक्षितानि यावन्ति द्रव्याण्यग्निसंतप्तान्येवोपयोक्तव्यानि, अन्यथा व्रणे पाकः संभवति' इति लॉर्डलिस्टरमहोदयस्य नव्यमाविष्कारं मन्यन्ते प्रतीच्यवैद्याः। परमाविष्कारोऽयमार्याणां सहस्रतो वत्सरेभ्यः प्रागपि संज्ञात आसीदिति दत्तैः प्रमाणैः स्पष्टमेव प्रतीयते।

आयुर्वेदीयग्रन्थप्रकाशनम्।

अद्यापि बहूनां लिखितानाममुद्रितानां प्राचीनवैद्यकग्रन्थानां संग्रहः समुपलभ्यते पुस्तकालयेषु भिषजां गृहेषु च। प्रकाशनमपि तेषां कर्तव्यमेव वैद्यानाम्। सर्वेषां च तेषां मुद्रणं बहुधनसाध्यं दीर्घकालसाध्यं च। सर्वेषां च तेषां प्रकाशने न बहुलाभं

पश्यामः । प्रभूताश्च समानविषयका निबन्धा अत्यल्पविशेषभाजो दृश्यन्ते; यतः समानास्त एव विषयास्तैरेव पदैः शब्दान्तरैर्वा निवेशितास्तेषु तेषु निबन्धेषु । अतस्तेषां सर्वेषामपि प्रकाशनं गौरवपराहतम् । अस्मन्मते तु शारीरनिदानादिविषयविशेषानधिकृत्य तेषु तेषु निबन्धेषूपलभ्यमानान् तद्विषयकान् वचनविशेषान् संगृह्य, यथा अस्मत्परममित्रैर्वैद्यवरैः पण्डितश्रीहरिप्रपन्नमहानुभावैर्मुद्रितानाममुद्रितानां च प्राय एकशतग्रन्थानां योगानेकत्र संगृह्य रसयोगसागरे ते संनिवेशितास्तथा मुद्रितानाममुद्रितानां च निबन्धानां विषयान् संगृह्य कषाययोगसंग्रहः, आसवारिष्टयोगसंग्रहः, वटिकावटकयोगसंग्रहः, स्नेहयोगसंग्रहः, अवलेहयोगसंग्रहः, परिभाषासंग्रहः, शारीरसंग्रहः, निदानसंग्रहः, चिकित्सासूत्र संग्रहः, द्रव्यगुणसंग्रहः, पञ्चकर्मसंग्रहः, शस्त्रक्रियासंग्रह इत्यादयो निबन्धा निर्मातव्या मुद्रयितव्याश्च । एषां निर्माणेन दूरीभवेद्बहूनां ग्रन्थानां संग्रहप्रयासः, विनश्येच्च तदवलोकनश्रमः, अपचीयेत च प्रभूततरो धनव्ययः । सिद्धये चैतस्य कार्यस्य प्रथमं तावद्यथालाभं हस्तलिखितानां मुद्रितानां च ग्रन्थानां संग्रहः कर्तव्यः । तेषु च प्रतिग्रन्थं यावान् विद्यते विशेषोंऽशस्तस्यैव पूर्वोक्तेषु संग्रहग्रन्थेषु सन्निवेशो विधेयः । संगृहीतानां च तेषां विषयाणां कस्माद् ग्रन्थादयं विषयः संगृहीत इति ज्ञानार्थं मूलग्रन्थनिर्देशोऽपि प्रकरणसहितो विधेयः । संपन्नेषु च मनीषितग्रन्थसंग्रहेषु समग्रायुर्वेदसारजिज्ञासूनामेकस्यैव विषयस्य दर्शनायानेकपुस्तकावलोकनक्लेशोऽनावश्यको भविष्यति, आङ्ग्लपारसीकप्रभृतिभाषानिबद्धनिबन्धेभ्यः संस्कृतानुवादं देशभाषानुवादं च निष्कर्षतां विदुषामस्मिन्नर्थे अस्यैव संज्ञाशब्दस्य पूर्वजैः कृतः प्रयोग इति ज्ञानं विधीयमानसंग्रहग्रन्थेभ्यो भविष्यति सुकरम् । आयुर्वेदस्य पूर्णकृते नवग्रन्थनिर्माणमपेक्षमाणानां वैद्यानामियमपि जिज्ञासा सुसंपन्ना भविष्यति ईदृशेभ्य एव संग्रहग्रन्थेभ्यो यत्—इमे विषया वर्तन्ते प्राचीनेषु निबन्धेषु, न च सन्त्येते, एषां च संयोगेऽयं विषयो भविष्यति परिपूर्ण इति । निर्दिष्टानां संग्रहग्रन्थानां निर्माणं प्रकाशनं च सुदुष्करं, तदृते एकस्यैव कस्यचित् परिश्रमस्तु न पर्याप्तः, एकस्यैव निबन्धस्य संपादने प्रचुरपरिश्रमधनव्ययकर्तारस्तु पण्डितप्रवरहरिप्रपन्नशर्मसदृशा विरला एव सन्ति सुमहत्यपि वैद्यसमाजे । आयुर्वेदीयग्रन्थानां प्रकाशनकार्यं यथा सुखतः संपद्येत तथैका योजना मया फलेहपुरवैद्यसंमेलनस्य समक्षमुपस्थापिता; परंतु स्वीकृताया अपि तस्याः कार्यं परिणतिस्तत्फलक उद्योगो वा न विहितः । सा च योजना पुनरिहावृश्यते—संभूयसमुत्थानेन एका आयुर्वेदप्रकाशनसमष्टिर्विधीयताम् । तत्र च मूलधनं पञ्चाशत्सहस्रपरिमितं पञ्चशतसंख्याकैर्भागैः संगृह्यताम् । संस्थायाश्चास्या मुख्यं ध्येयं—यावतां हस्तलिखितानां यत्र कुत्रापि वर्तमानानामायुर्वेदग्रन्थानां संयोजनं प्रथमम्, एषां च ग्रन्थानां तान्दिदृक्षुभ्यो वैद्येभ्यः प्रदानं निर्दिष्टसमयेन कर्तव्यम्; चरकसुश्रुतातिरिक्तानामार्षग्रन्थानां तथा चरकसुश्रुतयोः सर्वासां टीकानां यथोपलब्धि संशोध्य प्रकाशनं द्वितीयम्; केनचिल्लिखितस्य योग्यस्य नवनिबन्धस्य स्वत्वाधिकार-

ग्रहणपूर्वकं प्रकाशनं तृतीयम्; अन्यत्र मुद्रितानामायुर्वेदग्रन्थानां विक्रयणं चतुर्थं, पूर्वोक्तप्रकारेण संग्रहग्रन्थानां निर्माणं प्रकाशनं च पञ्चम, शारीरशिक्षोपयोगिनां समग्रशरीरतदवयवचित्राणामायुर्वेदसंमतसंज्ञाशारीरवर्णनयुक्तानां निर्माणं प्रकाशनं च षष्ठम् ।

आयुर्वेदोपबृंहणयोजना ।

२ पुरा मुद्रणकलाया अविद्यमानत्वान् ग्रन्थानां कण्ठस्थीकरणसौकर्याय च दर्शनान्तराणामिव आयुर्वेदस्यापि विषयाः संक्षेपत एव समुपदिष्टास्तन्त्रकृद्भिः । इदानीमायुर्वेदेऽतिसंक्षेपेणोपदिष्टाः शारीरादिविषया नालं ज्ञानाभिवृद्धये छात्राणाम् । समयेऽस्मिन प्रत्यक्षज्ञानसाधनानामणुवीक्षणयन्त्रादीनामाविष्कृत्या वैद्यके बहवो नवीनतयाऽऽविष्कृतास्तत्त्वा अन्वेषकैः । अत आर्यवैद्यकस्य मूलभूतान् सिद्धान्ताननुसृत्यैव आर्यवैद्यके संक्षेपतयोपदिष्टाः शारीरादिविषयाः संप्रति यथा विद्यार्थिनां ज्ञानाभिवृद्धये पर्याप्ताः स्युस्तथा विस्तरेण लेख्याः । इमं चाभिप्रायमनुसृत्य महामहोपा-यायैः श्रीगणनाथसेनमहोदयैः संस्कृतभाषायां प्रत्यक्षशारीराख्यो निबन्धो व्यरचि । निबन्धमिमं निर्माय प्रकाशयद्भिर्दर्शिता च दिक् कर्तव्यविधानस्य । निबन्धस्यास्य भागद्वयं मुद्रितम्, अवशिष्टस्तु चरमो भागः । सानुरोधं च प्रार्थये कविराजमहाभागान् यन्निबन्धस्यास्य कार्यान्तराण्यतिपात्यापि कुर्वन्तु पूर्तिमिति । अन्यथाऽध्यापनकाले कांश्चिद्विषयान्निबन्धादस्मान् कांश्चिच्च निबन्धान्तरेभ्यः संगृह्य पाठयतामध्यापकानां तदध्येतॄणां च भवति सुमहान् क्लेशः । नेत्रचिकित्साख्यं निबन्धं संस्कृतभाषायां लिखद्भिर्भारतविख्यातैर्नागपुरवास्तव्यैः 'डॉ. बालकृष्ण शिवराम मुंजे' महोदयैर्नेत्ररोगावगमे बहूपकृतो वैद्यसमाज इत्यर्हन्त्यस्माकं धन्यवादान् डॉक्टरमहोदयाः । अस्यापि ग्रन्थस्य प्रथम एव भागः प्रकाशितो वर्तते । भागद्वयस्यापरस्यावशिष्टमस्ति प्रकाशनम् । मन्येऽल्पेनैव कालेनावशिष्टं भागद्वयमपि प्रकाशयिष्यन्ति मुञ्जेमहोदयाः । इति तु जानन्ति मुञ्जेमहाभागा यदेतादृशस्य तैरारब्धस्य निबन्धस्य पूर्तिर्नान्येन सुकरा वैद्येन । आर्यवैद्यकस्य त्रिदोषसिद्धान्तानुसारिणः स्थानविकृतिप्रतिपादकस्य नवाविष्कृतरोगनिदानसहितस्य निदानग्रन्थस्यापि विद्यते परमापेक्षा । त्रुटिमेनां पूरयितुमस्मत्सुहृद्भिः श्रीगणनाथसेनमहोदयैर्लिखितः सिद्धान्तनिदानाख्यो ग्रन्थः । अस्यापि ग्रन्थस्य प्रथम एव भागो मुद्रितः, भागद्वयमवशिष्टम् । अस्यापि ग्रन्थस्याचिरेणैव पूर्तिं विधास्यन्ति गणनाथसेनमहोदया इत्याशासे । द्रव्यगुणशास्त्रे (निघण्टुषु) पठितानां वनस्पतीनां तद्रचनानुसारि प्रधानगुणानुवर्ति च वर्गीकरणमावश्यकं भाति । निघण्टुषु वर्णितास्वोषधिषु काश्चिन् संदिग्धा दुष्प्रापा भेषजयोगेष्वप्रयुज्यमानाश्च सन्ति, तासां पाठ्यपुस्तकेषु सन्निवेशोऽनावश्यक एव प्रतिभाति । अतस्तासां पाठ्यपुस्तकेभ्यो निष्कासनमेव युक्तम् । औषधानां तेषु तेषु शरीरावयवेषु प्रभवतां (जायमानानां) स्थानीयकर्माणां निर्णयोऽप्यवश्यं सन्निवेश्यो निघण्टुषु । औषधद्रव्याणामिदानीन्तनजनोपयोगिमात्रानिर्देशो-

ऽप्यवश्यं विधेयो निघण्टुषु । निघण्टुग्रन्थेषु 'इदमौषधं प्रमेहघ्नं, इदं च कृमिहरम्' इति सामान्येन कृतं गुणवर्णनम्; आयुर्वेदे आविष्कृता विंशतिविधाः प्रमेहाः कृमिजातयश्च । तत्र विद्यते व्याख्यानविशेषापेक्षा—अस्मिन् प्रमेहे अस्यां कृमिजातौ चेदमुपयुक्तं भेषजमिति । देशान्तरचिकित्साप्रसिद्धानां विशेषगुणप्रदानां डिजिटेलिस सिंकोनाप्रभृतीनां भेषजद्रव्याणां जातिगुणरसवीर्यविपाकप्रभावानायुर्वेदसमयेन परीक्ष्य तेषां निघण्टुनिबन्धेषु परिशिष्टरूपेण संग्रहोऽवश्यं विधेय इति मे मतम् । एवं च नवाविष्कृतरोगाणां फलप्रदचिकित्सायाः, ग्रन्थेष्वदृष्टानामपि वर्तमानवैद्यैर्बहुशोऽनुभूतानां योगानां च चिकित्सानिबन्धेष्ववश्यं कर्तव्यः समावेशः ।

आयुर्वेदविषयेष्वन्वेषणस्यावश्यकता ।

आयुर्वेदीयेषु रसशास्त्र-द्रव्यगुणशास्त्र-चिकित्सादिविषयेषु संशोधन (अन्वेषणं-रिसर्च) मपेक्षितं भाति । तथा हि निदर्शनं रसशास्त्रीया लोहानां भस्मनिर्माणपद्धतिः । भस्मविधानात् प्राक् तेषां संशोधनमभिहितमस्ति रसतन्त्रेषु; तत्रान्वेष्यं—रसशास्त्रप्रक्रियया संशोधितेषु लोहेषु किं किं भौतिकं (फिजिकल) रासायनिकं (केमिकल) च परिवर्तनं जायते । गन्धकादिपार्थिवद्रव्याणां तेषां तेषां च वनस्पतीनां योगतो लोहानां भस्मानि विधीयन्ते; तेषु च किं किं जायते परिवर्तनम् । भस्मनां निरुत्थीकरणं मित्रपञ्चकयोगतो लिखितमस्ति, तत्क्रियदवधि संपद्यते । भस्मनां परीक्षणविधिः रसग्रन्थेषु निर्दिष्टोऽस्ति, ततोऽन्याऽपि विद्यते काचन पाश्चात्यवैज्ञानिकपद्धतिर्न वा । शरीरे भस्मनां परिपाकः केन प्रकारेण जायते । शरीरस्य तत्र तत्रावयवे कस्कः संदृश्यते भस्मनां प्रभावः । तेषां मिथ्यातियोगाभ्यां का का जायते विक्रिया ।—इत्यादिविषयाणामन्वेषणं रासायनिकप्रयोगशालासु आतुरालयेषु च प्राच्यप्रतीच्योभयविधवैज्ञानिकरीत्या कर्तव्यम् । अन्यदप्युदाहरणं मल्लसिन्दूरस्योपादीयते-अत्र प्रसिद्धे पाठे रसस्य ९ भागाः, रसकर्पूरस्य ९ भागाः, फेनाश्मनः (शंखिया इत्याख्यस्य) ४॥ भागाः, गन्धकस्य ५॥ भागा दातुं लिखिताः । तत्र संपन्नेऽस्मिन् रसे पाश्चात्यरसशास्त्रस्य परीक्षणविधिमलम्ब्येति द्रष्टव्यं यत्—संपन्नेस्मिन् रसे किं किं द्रव्यं पाकतो गतं, किं चावशिष्टं वर्तते, किं किं च तत्र जातं परिवर्तनं, अवसाने च किंस्वरूपः संपन्नो योगः । यत्रायुर्वेदविद्यालयेन सहातुरालयोऽपि वर्तते तत्र सर्वत्र चिकित्साकार्यं सूक्ष्मान्वेषणदृष्ट्यैव विधातव्यम । तत्र रोगचिकित्सा कुशलैरार्यवैद्यैरेव कार्या । रोगिणां निदानचिकित्सापत्रकमार्यवैद्यकपाश्चात्यवैद्यकयोर्द्वयोः संमतमेव पूरणीयम् । आर्यवैद्यकमतेन दोषदूष्यप्रकृत्यादयस्तत्र निर्देष्टव्याः । रोगिणां मलमूत्रजिह्वानेत्रादीनां लक्षणानि च तथैव निर्देष्टव्यानि । पाश्चात्यवैद्या अपि स्वमतेन निदानचिकित्सापत्रकं लिखन्तु । रोगिणामवस्थासु आर्यवैद्यकचिकित्सातो जायमानं परिवर्तनं चिकित्साफलं च पाश्चात्यवैद्या अपि निजपद्धत्या रक्तमलमूत्रकफादीनि परीक्ष्य लिखन्तु । चिकित्सायां

जायमाने फले अवगताया विशेषतायाः प्रकाशनं संमेलपत्रिकादौ वैद्यानामवबोधाय कुर्वन्तु । द्रव्यगुणशास्त्रदृष्टितोऽप्यातुरालयेषु विधीयमानचिकित्सायामन्वेषणपद्धतिरवलम्बनीया । आयुर्वेदोक्तानां तत्तद्गुणविशेषयुक्तानां द्रव्याणां कस्मिन् कस्मिन् रोगे किं किं फलं भवतीतिसम्यगनुभूय तेषां निर्णयः प्रकाशयितव्यः । येनास्य द्रव्यस्य ग्रन्थलिखिता गुणा अनुभूताः, अस्य च द्रव्यस्योद्दिष्टा गुणा न तथाकृता इति विदितं भवेत् सर्वेषाम् । भारतसम्राड्नियोगेन कलिकातायां श्रीयुत डॉ. चोपरममहोदयः, मुम्बय्यां च डा. के. एस्. म्हसकरमहोदयश्च पाश्चात्यवैज्ञानिकपद्धतिमनुसृत्य कुरुतो द्रव्यगुणान्वेषणकार्यम् । डाक्टरम्हसकरमहोदयेन उदरकृमिषु तन्नाशकद्रव्याणां प्रयोगान् विधाय इति निर्णीतं यत्—आयुर्वेदोक्तक्रिमिघ्नद्रव्याणि सर्वाणि न सर्वजातीयोदरकृमिषु प्रभवन्ति; किंतु, द्रव्यविशेषः कृमिविशेष एव प्रभवति । तथाहि—विडङ्गं दाडिमूलत्वक् क्रमुकं च अन्नाकारेषु क्रिमिषु (टेपवर्म), पलाशबीजानि गण्डूपदाकारेषु कृमिषु (राउन्डवर्म), यवानीसत्त्वं रूढधान्याङ्कुराकारेषु कृमिषु (हुक्वर्म) स्वीयं प्रभावं दर्शयन्ति । इक्षुमेहे मेषशृङ्गी (गुड़मार) निम्बपत्रयोः प्रयोगे रक्तगतशर्करा न्यूनतामापद्यते । पारिजात (हारसिंगार) पत्राणां प्रयोगेण विषम (मेलेरिया) ज्वरोत्पादककृमीणां विनाशो भवति । एवं बहूनां विषयाणामन्वेषणं कृतं क्रियते चातः परमपि । अस्य परिश्रमस्य कृतेऽर्हन्ति धन्यवादान् डॉ. म्हसकरमहोदयाः । म्हसकरमहोदयस्यानेनान्वेषणफलेन वैद्यैरपि गृहीतलाभैर्भवितव्यम् । हस्तगतं च कर्तव्यं कार्यमेतद्भारतवर्षस्य प्रतिप्रान्तस्थैरायुर्वेदमहाविद्यालयैरातुरालयानुगतैः । संपादनाय चैतस्य कार्यस्य स्वीये वार्षिकव्यये निर्दिष्टं किञ्चिद्द्रव्यं पृथगेव संस्थाप्यं विद्यालयसंचालकैः ।

आयुर्वेदीयसर्वमान्ययोगसंग्रह (फर्माकोपिया) निर्माणावश्यकता ।

सुमहान् विद्यते योगसंग्रह आयुर्वेदे । भिषक्प्रवरैः पण्डितहरिप्रपन्नशर्मभी रसयोगसागरे प्रसिद्धिं नीतानां रसयोगानामेव संग्रहोऽतिक्रामति पञ्चशतीसहचरीं चतुःसहस्रीं संख्याम् । अपरेषां कषायासवलेहादियोगानां विधीयमानो भवेद्योगसागरः संग्रहः । ग्रन्थकारैरनुभूता एव निर्दिष्टा यावन्तो योगाः, तेषु च ममापि समानोऽस्त्यादरः, तथाऽपि मम मनीषायां विद्यार्थिनां वैद्यानां च सौकर्यायैकस्य सर्वमान्ययोगसंग्रहरूपस्य ग्रन्थस्येदृशस्य निर्माणमावश्यकं प्रतिभाति, यत्र क्रियायां सुकराणां सुलभद्रव्याणां वर्तमानवैद्यानुभूतफलानामाविष्कृतयावद्रोगचिकित्सानुगुणानामेव योगानां कृतो भवेत्संग्रहः । एष च योगसंग्रहो धर्मार्थदातव्यौषधालयानामायुर्वेदीययोगविक्रेतॄणां चाप्युपकाराय कल्पिष्यते । ब्रिटिशफर्माकोपियानिर्माणाय तत्रत्यानां प्रधानवैद्यानां कतिपयैः पैरेका समितिः समवैति । या यूरोपामेरिकादिदेशीयवैद्यानां चिकित्साक्रमं तत्फलं च निरीक्ष्य तत्रत्यान् कांश्चन योगान् संस्करोति, कांश्चिच्च हीनगुणान् बहिष्करोति, विशिष्टगुणांश्च कांश्चित् संगृह्णाति । ईदृशी च समितिरस्मद्देशेऽप्यपेक्ष्यते

तत्तत्प्रान्तीयविशिष्टवैद्यानाम्। कार्यं च तस्याः समित्या अनया रीत्या सरलं संपत्स्यते; तथा हि—सर्वतः प्रथममायुर्वेदमहामण्डलस्य विद्यापीठस्य च मन्त्रिमहानुभावाः साहाय्येन केषांचिद्वैद्यानां वैद्यसंमेलनपत्रिकायां सर्वमान्ययोगसंग्रहे समावेशार्हाणां योगानामेकां सूचीं निर्माय प्रसिद्धिमापादयेयुः। तत्तत्प्रान्तीयाः सदस्या अपि स्व-स्वप्रान्तीयवैद्यानां साहाय्येन तत्प्रान्ते विशेषेण प्रचलितानां योगानां सूचीं निर्माय वैद्यसंमेलनपत्रिकायां प्रसिद्ध्यर्थं प्रेषयेयुः। यदि तु न शक्नुयुस्ते एवंविधां सूचीं विधाय प्रेषयितुं, तदा स्वप्रतिनिधीन् संप्रेष्य महामण्डलमेव तत्तत्प्रान्तानां सूचीं निर्मापयतु। प्रतिनिधयश्चैते सहैव सूचीविधानकार्येण संमेलनस्य प्रचारकार्यमपि कुर्युः संपादयेयुश्च आयुर्वेदमहामण्डलस्य सदस्यानां वृद्धिकार्यम्। कार्याय चास्मै अस्य वर्षस्य भाविव्यये द्रव्यस्यानुमतिरपि संपादनीया। अस्मिन् समग्रे भारतवर्षे प्रचलितानामातुरालयानां धर्मार्थदातव्यौषधालयानां च सविधेऽपि एवंविधायाः सूचेः संप्रेषणाय प्रार्थयेयुः। प्राप्तास्वेवंविधासु सूचीषु तन्निर्णयाय समितिं संपाद्य प्राप्तानां सूचीनामुपरि सम्यग्विचारं कृत्वा सर्वसंमता एका सूची विधेया। तस्यां च भेषजयोगानां निर्माणपद्धत्यनुपानमात्रादीनां निर्णयोऽपि विधेयः, तदनन्तरं तदनुकूलं ग्रन्थं प्रणीय, प्रसिद्धिं नेयः स ग्रन्थः।

वैद्यसंमेलनेनावश्यं संपादनीया वैद्यानां रजिस्ट्रेशन-(नामावलीसंग्रह) व्यवस्था।

ये खलु वैद्या आयुर्वेदविद्यापीठपरीक्षोत्तीर्णा आयुर्वेदविद्यापीठसंमतपरीक्षोत्तीर्णा वा, ये च प्राचीना वैद्या अनुत्तीर्णपरीक्षा अपि अधिगतायुर्वेदीयग्रन्था विद्वांसस्तेषां सर्वेषामपि रजिस्टरे (नामावल्यां) नामोल्लेखो नितरामावश्यकः। रजिस्टरोल्लिखित-वैद्यैरेव चिकित्सा कर्तव्या नान्यैरितीमं नियममपि कदाचिद्राजशासनसभा समुद्घोषयेदिति संभाव्यते। मुंबईप्रांतीयेषु केषुचिद्भावनगर—पोरबंदर—राजकोटादिराज्येषु इतः पूर्वमेव विहितो दृश्यते एवंविधो नियमस्तत्प्रचारः। विधीयते च सांप्रतमेवंविधो नियमो वटोदरा (बरोडा) महाराजैः। संभाव्यते चास्य विधेः प्रचारः सर्वत्र भारते आङ्गलराज्ये देशीयराज्येष्वपि च कालेन स्यादिति। तस्मिंश्च समयेऽवश्यमेवायं प्रश्न उत्पत्स्यते यत् कस्य नाम्न उल्लेखो रजिस्टरे (नामावल्यां) विधेयः कस्य वा नेति, तथा चैतच्छोभनमेव स्याद्यद्वयमेव महासंमेलनद्वारा प्रांतीयसंमेलनद्वारा च भिषजां रजिस्टरे नामोल्लेखस्य प्रारम्भाय यतेम इति। विषयेऽस्मिन् सर्वैरप्यवश्यमेव दत्तचित्तैर्भवितव्यं, नास्योपेक्षाया अवसरः। संप्रत्येव संयुक्तप्रान्तीयानामार्यवैद्यानां हकीमपदभाजां यवनवैद्यानां च रजिष्टरीया नियमावली संप्राप्ता। तत्र रजिष्ट्रीकृतानां वैद्यानां हकीमानां च कृते दत्ता अधिकारा न्यूनतराः सन्ति। वैद्यानां हकीमपदभाजां च कृते त एवापेक्ष्यन्तेऽधिकारा ये खलु सन्ति दत्ततरा-(डाक्टरा) णां रजिस्टरीकृतानाम्।

आयुर्वेदीयानां संज्ञाशब्दानां निर्णयः ।

महामहोपाध्यायैः कविराजश्रीगणनाथसेनैर्विरचितस्य प्रत्यक्षशारीरस्य प्रसिद्ध्यनन्तरं वैद्यसमाजे विशेषतो महाराष्ट्रीये वैद्यगणे कलासिराधमन्यादीन् कतिपयान् संज्ञाशब्दानादाय संप्रवर्तते महान् कोलाहलः । अतो विनिर्णीय तान् संमेलनेन शान्ति नेतव्योऽयं विवादः । मम तु इदं मतं यत्—आयुर्वेदमार्तण्डाः पण्डितवरा लक्ष्मीरामस्वामिनः, श्रीमन्तः कॅप्टन जी. श्रीनिवासमूर्तिमहोदयाः, रावलपिण्डीवास्तव्याः पण्डितमस्तरामशास्त्रिणः, इति त्रयो महाभागा विषयस्यास्य निर्णयेऽधिक्रियन्तामिति । उभयोरपि पक्षयोः समर्थकैः स्वीयं स्वीयं वक्तव्यमेकदैवोल्लिख्य आयुर्वेदमहामण्डलन्त्रिणे प्रेषणीयमिति निवेदनीयास्ते । तथा चास्मिन् विषये यं खलु निर्णयं प्रकटयेरन् निर्णायकमहाभागाः स एव चरमो निर्णय इति संमेलनेन स्वीकर्तव्यम्; ततः परमस्य विवादस्य संमेलने समुपस्थितिर्नैव विधेया ।

नूतनसंज्ञाशब्दनिर्मातृभ्यो निवेदम् ।

नवीनसंज्ञाशब्दनिर्माणमुद्दिश्य किंचित् प्रोच्यते, आयुर्वेदीयविद्यालयमहाविद्यालयान्तेवासिनां कृते पाश्चात्यायुर्वेदविषयान् आङ्ग्लादिभाषानिबद्धेभ्यो ग्रन्थेभ्यः संगृह्य नवीनं निबन्धं लिखतां तद्भाषाशब्दानां संस्कृतपर्यायालाभे नवीनानां शब्दानां तत्पर्यायाणामन्वेषणमावश्यकं भवति, तत्र लेखकमहोदयानां निकटे अस्तीदं वक्तव्यं यत्ते यावच्छक्यं प्राचीनानेवान्वेषन्तु संज्ञाशब्दान्; नवीनशब्दप्रयोगाय मा त्वरन्तु । कृते भूरिशः प्रयासे तादृशशब्दानामलाभे उत्पन्नानामन्वर्थकानां समानार्थानां प्राचीनसरणिमनुसरतामेव शब्दानां निर्माणाय यतन्ताम् । अर्थहीनानामव्युत्पन्नानां विमतानां च कल्पनायै मा विदध्युः साहसम् । ईदृशशब्दप्रयोगाद्वरं प्रयोगः प्रचलितानां परकीयभाषाशब्दानामेव । भाषान्तरशब्दानामेव संस्कृतपर्यायशब्दव्यवस्थापनं प्रचुरपाण्डित्यपराधीनं; आङ्ग्लभाषाप्रधानविद्यालयमहाविद्यालयेषु गौणतया दीयमानं संस्कृतशिक्षणं न पर्याप्तमिति मत्वा कर्मण्यत्र संप्रदायेनाध्यापयतां व्याकरणकोषसाहित्यवैद्यकसांख्यन्यायादिविषयविदुषां साहाय्यमवश्यं ग्राह्यम् । उभयविदुषां सहयोगेन निष्पन्नाः शब्दा भवेयुर्विशेषेण सुनिश्चिताः । एवं निर्धारितानां शब्दानां सर्वव्यापकतां विधातुं समाचारपत्रादिषु प्रसिद्धिर्विधेया । ततो विधीयतां प्रयोग ऐकमत्येन लेखकमहाभागैः । दुर्बोधानां कपोलकल्पितानामेकस्मिन्नेवार्थे प्रभूतानां पर्यायाणां प्रयोगस्त्वनुचितो वाक्यार्थावगमे ।

आयुर्वेदीयौषधनिर्माणशाला (फार्मसी) संचालकानां निकटे निवेदनम् ।

संप्रत्यायुर्वेदीयभेषजकल्पान्निर्माय तद्विक्रयकृते समुद्भूता दृश्यन्ते तेषु तेषु प्रान्तेषु बह्व्यो भेषजनिर्माणशालाः । तत्संचालकानां निकटेऽस्तीदं मे निवेदनं—यत्ते महानुभावा निजनिर्मितप्रयोगाणां प्रामाण्याय तत्र तत्र इति निर्दिशन्तु 'यदयं प्रयोगः अस्य

ग्रन्थस्य, इमं पाठमनुसृत्य निर्मितः'। प्रयोगनिर्माणं च शास्त्रीयपाठानुसृत्यैव कुर्वन्तु। तत्र च नवानामकृत्रिमाणां च द्रव्याणां विदधतु सन्निवेशम्। स्पर्धार्थमल्पं मूल्यं विधायापकृष्टद्रव्याणामुपयोगं मा कार्षुः, यच्चौषधं कालवशाद्धीनवीर्यतामापन्नं तेषां विक्रयाद्विरमन्तु। स्वानुभवमनुसृत्य निजयेच्छया शास्त्रीयपाठे कृतं परिवर्तनं निर्दिशन्तु स्पष्टमौषधसूचीपत्रादौ। कृते चैवं वैद्यानां जनतायाश्च वर्धेत विश्वासस्तैर्निर्मितेष्वौषधेषु, तेन प्रभूततरश्च स्यात्तेषां विक्रयः।

विशुद्धानां भेषजद्रव्याणां समुपलब्धये योजना।

यत्रौषधयोगे समुपयुज्यन्ते द्रव्याणि नवानि विशुद्धान्यकृत्रिमाणि च, स खलु भवति योगः शास्त्रोक्तगुणयुक्तः। योगगुणो हि ओषधिगुणपराधीनः। परन्त्वत्र विषयेऽस्माकं दशा विद्यते महती शोचनीया। प्रसिद्धेष्वपि नगरेषु नूत्नानामकृत्रिमाणां चौषधद्रव्याणां समुपलब्धिर्विद्यते दुर्लभा। तद्वणिजा (पण्यसारकेण) दीयमानैरेव सद्भिरसद्भिर्वा द्रव्यैर्विधीयमानो भवति निर्वाहः। परिहाराय चैतस्य विप्लवस्य तत्र तत्र नगरे नगरे ग्रामे ग्रामे च भेषजभाण्डागारस्थापनायावश्यमेव विधेयो वैद्यैरायुर्वेदानुरागिभिश्च धनिभिः सुमहान् यत्नः। तत्र च संग्राह्यौषधानां स्वीकृतिरपि विधेया पराधीना वैद्यानाम्। संप्रति मुम्बईनगरे आयुर्वेदानुरागिणा 'शूरजी वल्लभदास' इति प्रसिद्धनामधेयेन श्रेष्ठिना समुद्घाटितोऽस्त्येक औषधभाण्डागारः। यत्र वैद्यपरीक्षितानां विधीयते संग्रह औषधानाम्। अनुकरणं चैतस्य सर्वत्रापि विधेयं भिषग्भिरायुर्वेदानुरागिभिर्धनिभिश्चेत्यस्ति साग्रहा मे प्रार्थना। भारतवर्षस्य कस्मिन् कस्मिन् प्रदेशे केषां केषां गुणसंपन्नानामौषधद्रव्याणामुत्पत्तिः समुपलब्धिश्च भवतीत्येतस्याधिगमाय एकां सूचीं निर्माय सा प्रकाशनीया वैद्यसंमेलनपत्रिकायां; येन वैद्यानां सुगमा भवेत्समुपलब्धिरौषधद्रव्याणाम्।

आयुर्वेदोत्कर्षाय विधेयाः केचनोपायाः।

(१) आयुर्वेदशास्त्रस्योत्कर्षविधानाय, नृपस्य प्रजानां चापेक्षितस्य सहयोगस्य प्राप्तये, संपादनाय च राजमान्यताया विद्यावृद्धानामनुभवजुषां परिचितराजभाषाणां च विदुषां सर्वासु नियमोपनियमविधात्रीषु राजसभासु जनतानिर्वाचितसदस्यत्वेन प्रवेश आवश्यकः। तत्कृते च यतितव्यं सावहितैरस्माभिः। (२) आयुर्वेदीयविद्यालय-महाविद्यालयातुरालयाशुल्कौषधालयाद्युद्घाटनं प्रतिप्रान्तं यथा भवेत्तदर्थं सानुरोधं सम्राट्प्रतिनिधयो राजानो राजकल्पा धनवन्तश्च कर्तव्या अनुकूलाः। (३) आयुर्वेदप्रकर्षहेतूनामायुर्वेदशिक्षादीक्षितानां परिचारक-परिचारिकाप्रसाविकोपवैद्यानां निर्माणमपि कर्तव्यमन्यतमं संमेलनस्य। एतच्च कार्यमातुरालयोपबृंहितेषु काशीस्थविश्वविद्यालयीयायुर्वेदमहाविद्यालयादिषु तादृशशिक्षाविधायकपृथग्विभागविधानेन सुखतः संपद्येत। एतेषां पाठ्यक्रमस्य पाठ्यपुस्तकानां च व्यवस्था नि. भा. आयुर्वेदविद्यापीठो विदधातु। (४) ये खलु विद्वांस आयुर्वेदोन्नतिमुद्दिश्य नवीनान् निबन्धान् लिखन्ति,

हस्तलिखितान् प्राचीनान् निबन्धान् संपाद्य संशोध्य निजव्ययेन मुद्रापयन्ति, प्राचीन-निबन्धोपरि व्याख्यां लिखन्ति, नवान् विषयानाविष्कुर्वन्ति, आयुर्वेदस्य वैज्ञानिकत्वं पाश्चात्यवैज्ञानिकरीत्याऽपि प्रमाणीकर्तुमन्वेषणकार्यं कुर्वन्ति, ते सर्वेऽपि महोदयाः संमेलनेन पदवीपारितोषिकादिप्रदानेन संमाननीया इति मे मतम्। येनान्येषामपि विदुषां समेधेतोत्साह ईदृशानामायुर्वेदोत्कर्षकार्याणां संपादनाय।

नि. भा. आयुर्वेदविद्यापीठस्य नियमेष्वपेक्षितं परिवर्तनम्। तत् कीदृशं कस्मिन्नंशे किमर्थं च कर्तव्यमित्यादिकं सर्वमायुर्वेदमहामण्डलायुर्वेदविद्यापीठयोर्मन्त्रिणौ निवेदयिष्यतः, तत्र दृष्टिपातं विधाय वस्तुतोऽपेक्षिते परिवर्तने सहमतैर्भाव्यमस्माभिः। अनुत्तीर्णो विद्यार्थी सति संदेहे नियतशुल्कं दत्त्वा पुनरपि प्रभवति स्वलिखितोत्तर-पत्राणां परीक्षाविधाने, इति नियमो विद्यते विद्यापीठस्य संप्रति। अनुभूयन्ते च बहवो दोषा अस्मिन् नियमे। अतः प्रथमेनामवरुध्य वर्षे वारद्वयं परीक्षा गृह्यताम्। गृह्यते चैवं वर्षे वारद्वयं परीक्षा पाश्चात्यवैद्यकविद्यार्थिनाम्।

स्नातकसंमेलनम्।

नासिकनगरे स्नातकमण्डलमुद्दिश्य संपन्न ऊहापोहः। एतस्य कराचीनगरे प्रथम-संमेलनमपि संपन्नम्। कराचीसंमेलनविषयनिर्वाचिनीसभायां विशिष्टपरामर्शानन्तरं निर्णीतं यत्—भवन्ति स्नातका अपि वैद्या एव न वैद्येतराः, अतस्तेषां पृथङ्मण्डल-संस्थापनमनावश्यकमिति। सदस्यशुल्कमपि चैतेषां कृते प्रतिवर्षं रूप्यकत्रयमेव स्थापितं वर्षत्रयपर्यन्तम्, यद्गृह्यतेऽन्यवैद्येभ्यो रूप्यकपञ्चकम्। इति स्थितावपि तेषां पृथङ्मण्डलविधानं तद्द्वारा च वैद्यस्नातकयोर्मध्ये भेदभावविधानं नोचितं नापि सप्रयोजनं, प्रत्युत वैद्यसंमेलनस्य हानिकरमेतद्भविष्यतीति मे भयम्। फलाफलनिरूपणे निपुणाः स्नातका व्यवसायमिमं स्वीयं पुरस्कृत्य भूत्वा च निर्विकारचेतसश्चिन्तयन्तु सुदूरगामिन्या दृष्ट्या परिणामं भाविनम्। विरमन्तु च स्नातकानां पृथङ्मण्डल-निर्माणात्, तत्कृते पृथक् शुल्कग्रहणाच्च। सत्यां बलवत्यामिच्छायां संमेलनेन सहास्मिन्नेव मण्डपे कुर्वन्तु स्नातकसंमेलनम्।

मदीयैतद्भाषणसमाप्तेः पूर्वं सर्वेश्वरान् प्रार्थयेऽहं यद्—भगवान् ग्वालियरनराधिपं श्रीमन्तं जयाजीराव सिन्धिया आलीजाह बहादुरं चिरायुषं यशस्विनं च करोतु। महाराजाश्च पूर्वजाननुकुर्वन्तो देशशासनं तथा संपादयन्तु यथा तत्प्रजाः धर्मो देशश्च सुखिनः शान्तिशालिनश्च भवेयुः। श्रीमद्राज्ये आयुर्वेदस्य, आयुर्वेदीयचिकित्सालयानां, आयुर्वेदविद्यानां चोन्नतिरस्तु। तथा महाराजबाल्यकाले राजमाता 'श्रीमती गजराराजा-साहिबा सिन्धिया' इत्येतस्याः शासनसमयः प्रजानां हितकरो लाभवर्धकश्चास्तु।

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम्।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम्॥





श्रीमान डॉ. प. लक्ष्मीपति बी. ए. एम् बी. सी. एम् मद्रास।
अध्यक्ष, नि भा. व २३ वैद्यसंमेलन बीकानेर, (राजपुताना) १९३३ ई.
अध्यक्ष, आन्ध्रप्रान्तीय ३ वैद्यसंमेलन, विसाईनगरम् (स, १९१९);
८ वैद्यसंमेलन, नांधाल (सन १९२६),
११ राजमहेन्द्री १४ वैद्यसंमेलन टुनी. (सनं १९३१)।

Life Sketch of Dr. A. Lakshmipati,

B. A. M. B. & C. M. Bhishagratna.

Lakshmipati. Dr. A.B.A.& C.M. born on 28th March 1880 at Madhavaram, West Godavary near Nidadavole. Education in Rajahmundry College and Presidency College, Madras, with a strong desire to learn Ayurvedic medicines. He became an apprentice under Pandit C. H. Seeta Ramayya of Rajahmundry, who is renowned for curing diseases incurable by even Western Doctors. He then joined Medical College, Madras as a scholarship student of the Godavary Dt. Board, and throughout, had a successful career, and passed M. B. & C. M. with certificates of honour in many subjects, and began allopathic Practice in 1909, which he continued for nearly ten years. Afterwards, finding that Ayurvedic System of treatment was tabooed by the introduction of Madras Medical Registration Act and that injustice was done to indigenous medical Practitioners, he joined the Madras Ayurvedic College conducted by Pandit D. Gopalacharlu, as a student and Hony. Professor of Surgery, in 1918. He was subsequently Principal of the College. Several Municipalities and Taluak Boards are supplied with Ayurvedic Physicians from this College. He is the founder of the Andhra Ayurvedic Pharmacy Ltd. 1920, where Ayurvedic Medicines are prepared on a large scale and on strictly sastric lines, with the aid of ancient and modern appliences, to be available to the Public at cheap cost. A Nationlist in Politics. Conducts a health resort at Avadi, known as "Arogya Ashram" where up-to-date open-air and natural treatment is given for all chronic ailments. He was selected President of all India Ayurvedic Conference held at Bikaner in December 1933. He published numerous popular medical Books on "Hundred Useful Drugs" "Degeneration of National Health", 'Secrets of Long Life", Vyayama Sastra", "Massage, and Bath", in English and Telugu.

Editor, Andhra Medical Journal, and Dhanvantri.

(Copy From "Who is Who" with some Corrections.)

२३

निखिलभारतीयत्रयोविंशतितमवैद्यसम्मेलनाधिवेशन वीकानेरके सभापति,

भिषग्रत्न, डाक्टर श्री ए० लक्ष्मीपति महोदय

बी० ए०, एम बी० एँड सी० एम०, मद्रासका

अभिभाषण ।

नमामि धन्वन्तरिमादिदेवं सुराऽसुरैर्वन्दितपादपद्मम् ।
लोके जरारुग्भयमृत्युनाशं दातारमीशं विविधौषधीनाम् ॥
रागादिरोगान् सततानुषक्तानशेषकायप्रसृतानशेषान् ।
औत्सुक्यमोहारतिदाञ्जघान योऽपूर्ववैद्याय नमोस्तु तस्मै ॥

यह सम्मान वा गौरव जो स्वागत-कारिणी-समितिने मुझे प्रदान किया है, उसके लिए मैं चिर-कृतज्ञ हूँ और अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ। किन्तु यह संकोच भी अवश्य है कि इस महान् उत्तर-दायित्वपूर्ण कार्यको यथावत सम्पादन कर सकनेमें मैं कहाँ तक समर्थशील हूँ।

हमलोग अपने परमादरणीय शासक श्री महाराजाधिराज वीकानेरके पूर्ण कृतज्ञ हैं, जिन्होंने भारतीय विद्या और विज्ञानके प्राकृतिक प्रेमसे प्रेरित होकर निज छत्र-च्छायामें हमें यहाँ सम्मिलित होनेका यह स्वर्णमय सुयोग प्रदान किया है।

हमारे जो भाई वैज्ञानिक विषयोंमें विशाल आलोकके लिए अभिलाषा कररहे हैं, और जो भीति या प्रीति की चिंता न करके अपनी सम्मति प्रकट करनेके लिए कटिबद्ध हैं, उनकी सराहनीय चेष्टाओंके प्रति गुण-ग्राहकताके भाव प्रकट करना भी हमारा कर्तव्य है।

हम आशा करते हैं कि वर्तमान आयुर्वेद-महा-विद्यालय चिकित्सा-विज्ञानको, वैदिककालके प्राचीन विद्यापीठोंके उस आदर्शसे प्रेरित होकर सिखलावेंगे; जिसके अनुसार सत्यकी खोज करनेवाला विश्वास और श्रद्धाके साथ निज गुरुवरके पाद-पंकजके पास बैठता था और उसके हृदयमें न तो वर्ण या जातिकी भेद-भावना रहती थी और न देश या परदेशका विचार रहता था; किन्तु सत्य और ज्ञानकी प्राप्ति ही एकमात्र लक्ष्य होता था।

आयुर्वेदकी चिकित्सा-प्रणालीके उन दोषोंकी विवेचना करनेका समय अब नहीं रहा। किसी समय आयुर्वेदके जो कट्टर शत्रु थे, वे भी भारतीय औषधियोंके निर्माणमें जो द्रव्य काममें लाये जाते हैं, उनमेंसे बहुतसीकी उपयोगिताको अब मानने लगे हैं। देशभरमें बहुतसा रुपया लगाकर अपनी प्रणालीके अनुसार अन्वेषण प्रयोगशालाएँ स्थापित की गई हैं; ताकि भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें वैद्य जिन द्रव्योंका औषधोंमें प्रयोग करते हैं, उनके मूल गुण अन्वेषण-द्वारा मालूम कर लिये जायँ। मेरी तुच्छ सम्मतिमें उनके अन्वेषणके ढंग एकपक्षीय हैं और उनका श्रीगणेश ही त्रुटिपूर्ण है। आवश्यकता तो इस बात की है कि रोगोपचारमें वैद्य जिस पद्धतिपर चलते हैं, उसका विधिपूर्वक और भलीभाँति अवलोकन किया जाय, न कि केवल मात्र औषधके द्रव्योंका व्यवच्छेद किया जाय। अन्वेषणकी वर्तमान-प्रणाली व्यय-साध्य ही नहीं; किन्तु आयुर्वेदके सिद्धान्तके अनुसार वैज्ञानिक भी नहीं है। जो औरोंको कुवैद्य पुकारते हैं, वे स्वयं कुवैद्य हैं; क्योंकि वे भारतीय-औषधोंके द्रव्योंके प्रयोगका तो बहाना करते हैं; परन्तु भारतीय-सिद्धान्तके अनुसार उनके प्रयोगकी पद्धति और प्रयोजनसे नितान्त अनभिज्ञ हैं। अन्वेषणकी इन चेष्टाओं-द्वारा पहिलेसे ही अति भाराक्रान्त अंग्रेजी औषध-शास्त्रमें कुछ द्रव्य और बढ़ जाय; परन्तु भारतके वैद्यों या वैद्य-शास्त्रके लिए निकट भविष्यमें तो वृथा हैं।

आधुनिक एलोपैथिक डाक्टरोंकी इस प्रणालीको भी दुश्चिकित्सा ही कहना चाहिये कि व्यापारियोंके केवल विपुल विज्ञापनोंसे प्रभावित हो करके ही भारत या विदेशोंमें बनी हुई दवाइयोंका अधिकतर प्रयोग, उनके तत्त्वोंको जाने बिना ही किया जा रहा है और यह अत्यन्त निन्दनीय है। प्रतिवर्ष बाजारमें नवीन औषधोंका प्रवेश होता है और दूसरे वर्ष वे तो भुला दी जाती हैं और वैज्ञानिक कहलाई जानेवाली नई-नई दवाइयें चलने लगती हैं। आयुर्वेदज्ञ कमसें कम यह तो पूर्णतया जानते हैं कि वे औषधिमें किन द्रव्योंका प्रयोग कर रहे हैं, अतएव बहुत कम हानि होनेकी संभावना रहती है। चरकमें कहा है:—

यथा विषं यथा शस्त्रं यथाग्निरशनिर्यथा।
तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं यथा॥ (चरक, सूत्र०, १ अ०)

मेरा अनुभव है कि आयुर्वेदिक चिकित्साकी महत्ता केवल औषधियोंमें नहीं है; किन्तु वैद्यकी वैज्ञानिक पद्धतिमें है; जिसके अनुसार रोगके कारण और लक्षणोंकी एक-एक बातकी सूक्ष्म परीक्षा करके निश्चित निदानपर पहुँचकर तब उपचारोंका प्रयोग किया जाता है। ये उपचार तीन प्रकारके हैं:—(१) औषध, (२) अन्न और (३) विहार।

दूष्यं देशं बलं कालं, अनलं प्रकृतिर्वयः।
सत्वं सात्म्यं तथाऽऽहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः॥

सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषधनिरूपणे ।
यो वर्तते चिकित्सायां नस स्खलति जातुचित् ॥

जो वैद्य रोगोंके कारण, लक्षण और विकारोंकी सूक्ष्म-समीक्षा कर लेता है, वह चिकित्सा करनेमें कभी भयभीत नहीं होगा। उसे दूष्य, देश और कालकी निम्न-लिखित बातोंको रोगीकी चिकित्सामें जाँच लेना चाहिये।

दूष्यमें तमाम धातुओंकी परीक्षा सम्मिलित है और यह धातु मुख्यतया सात हैं, यथा—रस, रक्त, माँस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र, और तमाम मलोंकी भी परीक्षा की जाती है, जो मुख्यतया विष्ठा, मूत्र, स्वेद इत्यादि हैं। धातुओंकी यथावत् क्रिया और मलोंका यथावत् उत्सर्ग ही स्वास्थ्य है और इसीसे अन्यथा होना ही रोग है।

देशके विचारमें रोगीके शरीरकी जो रोगका विषय होता है, परीक्षा की जाती है, और जिस देशमें वह रहता है उसकी जलवायुके सम्बन्धमें अनुसन्धान किया जाता है।

बलमें रोगीकी स्वाभाविक शक्ति और सहिष्णुताकी क्षमतापर विचार किया जाता है तथा रोगका बल और उसकी हीन, मध्य और अधिक अवस्थाओंकी परीक्षा की जाती है। शारीरिक बल तीन प्रकारका होता है:—

(१) सहज, (२) कालज अर्थात् सर्द या गरम मौसम इत्यादि और युवाऽवस्था या वृद्धावस्था इत्यादिके कारण, (३) युक्तिज, अर्थात यथावत् आहार-विहारके द्वारा उत्पन्न शक्ति।

काल—समयको कहते हैं। यथा वर्षका समय, रोगीकी अवस्था और नक्षत्रोंकी गतिपर निर्भर रहनेवाली समस्त ऋतु सम्बन्धी बातें।

अनल—अर्थात् जठराग्निकी अवस्था मन्द, तीक्ष्ण और विषम होती है।

प्रकृति—रोगी वात-प्रकृति, पित्त या अन्य प्रकृतिवाला होता है। आयुर्वेदमें इस विषयकी विशद विवेचना की गई है और वात, पित्त या कफकी प्रधानताके अनुसार मुख्यतया तीन प्रकृति मानी गई हैं। स्वास्थ्य और रोगोंमें मनुष्यकी सारी जीवन-क्रियायें उसकी सहज प्रकृतिपर निर्भर रहती हैं। मनुष्यकी प्रकृतिका सम्यक् निदान करनेके लिए उसकी शारीरिक और मानसिक अवस्थाका विश्लेषण सावधानीसे किया जाना चाहिये।

वय—तन्दुरुस्ती या बीमारीमें शरीरकी संजीवनी शक्तिपर पुरुषकी अवस्थाका अधिक प्रभाव पड़ता है।

सत्त्व—मानसिक बल या ओजको कहते हैं।

सात्म्य-उपशय-अर्थात्—कतिपय पुरुष एक प्रकारके खान-पान और रहन-सहनके आदी होते हैं, और रोगोपचारमें इन बातोंका बड़ा प्रभाव पड़ता है। जो औषध कठिन परिश्रमी श्रमजीवीके लिए हितकर होती है, वह सुकुमार राजकुमारके लिए उपयुक्त नहीं हो सकती है।

आहार—भिन्न देशोंके लोगोंको जो भोजन रुचिकर हैं, उनका वर्णन चरकने किया है। इससे सिद्ध होता है कि किसी विशेष आहारके रुचिकर या अरुचिकर होनेके सम्बन्धमें उसने कितना सूक्ष्म निरीक्षण किया था। गेहूँ, माष, माध्विकमदिरा, शल्यचिकित्सा और अंगराग, वाह्लीक (मध्यएशिया-निवासी), पह्लव (फारसवाले), चीनी (चीन-निवासी), शुलीक (इंडोचायनावाले), यवन (अरब-रोम या ग्रीसवाले) और शक (सीदियन) लोगोंके लिए अधिक हितकर हैं। प्राच्य लोगोंके लिए दूध; सैन्धवों (सिन्धु निवासियों) के लिये मछली; आश्मकों (मध्य भारतवालों) और अवन्तिकों (मालवा देशवालों) के लिये तेल और घी; और जो लोग विन्ध्याचल और मलय पर्वतोंमें निवास करते हैं, उनके लिए कन्द, मूल और फल अधिक उपयुक्त हैं। दक्षिण देशवाशियोंके लिये पतली कांजी, और उत्तर-पश्चिम दिशामें रहनेवालोंके लिये घीमें बने हुए प्रगाढ़ रसेवाले पदार्थ और मध्यप्रदेशवासियोंके लिए गेहूँ, जौ और दूधसे निकाला हुआ मक्खन अधिक हितकर है। अतएव प्रत्येक वर्गके पुरुषोंकी आदतों और रिवाजोंके अनुसार आहार-विहारादि होना चाहिये। औषधियोंके अतिरिक्त उपचारके विधानोंका आयुर्वेद-शास्त्रकी पुस्तकोंमें विशद वर्णन है, और ऐसे उपायोंसे बड़ी सरलता और शीघ्रतासे इलाज हो सकता है। औषधोपचार तो चिकित्साका बहुत ही गौण अंग है।

अतएव अपने इस भाषणमें मुख्यतया औषधोंके अतिरिक्त मैं ऐसेही उपचारोंका वर्णन करना चाहता हूँ, जिनके विषयका अद्यपर्यन्त न तो डाक्टरोंने और न वैद्योंने पूर्ण महत्त्व समझा है। हमें इस बातका बहुधा अनुभव होता है कि कतिपय रोगोंमें अन्य नैसर्गिक उपाय ही औषधोंसे अधिक लाभदायक सिद्ध होते हैं। उदाहरणके लिये राजयक्ष्मामें खुली हवा, अच्छा भोजन, और शुष्क जलवायु अत्यन्त आवश्यक है। मधुमेहमें अधिकतर क्रमानुगत शारीरिक व्यायाम रोगीके लिए जितना हितकारी होता है, उतनी पौर्व्य और पाश्चात्य औषध-शास्त्रकी समस्त औषधियें नहीं हो सकतीं। उदाहरणके लिये मैं बतलाना चाहता हूँ कि मधुमेहकी चिकित्सामें जो उपचार अब प्रयोगमें आते हैं, वे भारतके महान ग्रन्थकारोंके उपचारोंसे भिन्न हैं। प्रमेहकी चिकित्सामें (मधुमेह प्रमेहका एक प्रकार है) चरक बतलाता है कि इस रोगका कारण दिनभर बैठे रहना और सब समय सोते रहना, दही-दूधका अधिक सेवन, ग्राम्य पशुओंके माँस या शोरबेका सेवन, नया धान्य यथा चावल और गेहूँ तथा नई मदिराका सेवन करना है।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि, ग्राम्यौदकाऽनूपरसाः पयांसि।
नवान्नपानं गुड़ वैकृतञ्च, प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम्॥ (चरक)

चरक कहता है कि इस बीमारीका कारण अधिक भोजन और परिश्रमका अभाव है। अतएव मिताऽऽहार और व्यायाम-द्वारा रोगीकी चिकित्साकी जानी चाहिये।

व्यायामयोगैर्विविधैः प्रगाढैरुद्वर्त्तनःस्नानजलावसेकैः ।
सेव्य त्वगेलाऽगुरुचन्दनाद्यैर्विलेपनाद्याशु न सन्ति मेहाः ॥ (चरक)

विविध प्रकारके कठिन व्यायाम, उद्वर्तन, जलावसेक खस, इलायची, दालचीनी, अगरु, चन्दन इत्यादि पदार्थोंका तथा अन्य उपचारोंसे, जो शरीरकी चर्बीको दूर करते हैं, यह रोग शीघ्र मिटता है ।

सुश्रुतमें विस्तारपूर्वक वर्णन है कि किस प्रकारकी व्यायाम किस पुरुषके लिए उपयुक्त है ।

वयोबलशरीराणि देशकालाऽशनानि च ।
समीक्ष्य कुर्याद् व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात् ॥ (सु० चि० २४ अ०)

किसी रोगीके लिए व्यायाम नियत करनेमें निम्नलिखित बातोंका विचार करना आवश्यक है—वय (उम्र), बल, शरीर (शरीरिक प्रवृत्तियाँ), देश (जिस देशमें वह रहता है, और शरीरके जिस अंगकी वृद्धि करनी है), काल (वर्षकी ऋतु और भोजन) ऐसा न करनेसे व्यायाम नया रोग उत्पन्न कर देता है ।

सुश्रुतमें निम्नलिखित व्यायाम मधुमेहके उपचारमें बतलाये गये हैं:—

अधनस्तु अबान्धवः पादत्राणाऽऽतपत्रविरहितो भैक्ष्याशी ग्रामैक रात्रानुवासी मुनिरिव-संयतात्मा योजनशतमधिकं वा गच्छेत् ।

धन और बन्धवोंसे विरहित हों कर और नंगे पैर तथा छातेके विना सौ योजन या अधिक चलना चाहिये । भिक्षा माँगकर उदर-पूर्ति करनी चाहिये और प्रत्येक ग्राममें एक रातसे अधिक निवास नहीं करना चाहिये, और मुनिके सदृश संयम रखना चाहिये ।

महाधनो वा श्यामकनीवार वृत्ति रामलककपित्थतिन्दुकाश्मन्तक फलाऽऽहारो मृगैः सहावसेत् तन्मूत्रशकृद्भक्षी सततमनुव्रजेद् ग्राम्, ब्राह्मणो वा शिलोञ्छवृत्तिर्भूत्वा ब्रह्मचर्य-मुपाचरेत् । पठेत् सततम् ।

यदि वह महाधनी हो, तब भी उसे जंगली-जानवरोंके साथ रहना, जंगली अन्न यथा सामक और नीवार खाना, कपित्थ, तिन्दुक, आमलक और अश्मंतकके सदृश जंगली फलोंका सेवन करना चाहिये । यदि ब्राह्मण हो, तो उसे गौके पीछे-पीछे जहाँ वह जाय वहाँ जाना चाहिये, और जहाँ वह विश्राम करे, वहाँ विश्राम करना चाहिये, और खुली हवामें रहना चाहिये, खलिहानमें जो अन्न अवशिष्ट रह जाय, उसीसे अपना निर्वाह करना चाहिये, गौमूत्रका पान और गोबरका सेवन करना चाहिये, सतत अध्ययन करते रहना चाहिये, ब्रह्मचर्यका आदर्श बनाना चाहिये । यदि वह इतर वर्णवाला हो, तो उसे अपने हाथोंसे कूआ या तालाब खोदना चाहिये । यदि इस प्रकारका व्यायाम करनेमें शरीर दुर्बल होने लगे, तो विश्राम और पौष्टिक आहार द्वारा अपने बलकी रक्षा सावधानीसे करनी चाहिये । 'सुश्रुत' हमें विश्वास दिलाता है

कि यदि कोई रोगी अपने वैद्यके आदेशानुसार इस उपचारका निःसंकोच व्यवहार करनेको कटिबद्ध होजाय, तो पहले नहीं, तो सालके अन्ततक उसे अवश्य आराम हो जायगा।

अधनो वैद्य सन्देशा देवं कुर्वन्नतन्द्रितः।
सम्वत्सरा दन्तराद्वा प्रमेहात् प्रतिमुच्यते ॥
प्रवृद्धमेहास्तु व्यायाम क्रीड़ा गजतुरगरथपदाति-
चर्य्या परिक्रमणा नन्याश्रयो पाश्रयान् वा सेवेरन्।

मधुमेह बढ़जाने पर भी व्यायाम, नियुद्ध, खेलकूद, हाथी-घोड़े या रथकी सवारी, पैदल चलना, तलवार और पट्टेका खेल और अन्य प्रकारके व्यायाम किये जाने चाहियें।

'सुश्रुत' में व्यायामकी परिभाषा इसप्रकार की गई है—

शारीरायासजननं कर्म व्यायाम संज्ञितम्। (सु० चि० २४ अ०)

जिस कर्मसे शरीरमें थकावट आजाय, उसे व्यायाम कहते हैं। सुश्रुतके टीकाकारोंने निम्नलिखित परिभाषा की है—

तुलभ्रम गुणाकर्ष धनुराकर्षणादिभिः; आयामो विविधाङ्गाना व्यायाम इति कीर्तितः।
सर्वदिग्भागभागेषु हस्त्यश्वरथपत्तिषु, शस्त्रास्त्रैर्यस्तु संयोगः सचर्येति प्रकीर्त्यतेः ॥

तुलको (जिसे मुद्गर कहते हैं, जो ५ या १० सेर वजनमें होता है) घुमाना, रस्सा खींचना, धनुष खींचना, शरीरके भिन्न-भिन्न अङ्गोंको झुकाना—इनको 'व्यायाम' कहते हैं।

तुलभ्रम संभवतः मुद्गरका पर्य्यायवाची है। यह मुद्गर पत्थर या हाथीकी लीदसे मिश्रित मिट्टीको छायामें सुखाकर बनाये जाते हैं, और आधुनिक समयमें भी इस देशमें "डम्बल" की तरह इनका व्यवहार होता है। हरेकका वजन घुमानेवाले व्यक्तिकी शक्तिपर निर्भर होता है। एक तुल कलिङ्गदेशमें ४०० रुपये भर होता है, और मगधमानके अनुसार ८०० रुपये भर होता है।

चर्याकी परिभाषा व्यायामका अभ्यास है—जिसमें शस्त्र और अस्त्र चलाना भिन्न-भिन्न दिशाओंमें हाथी-घोड़े या रथपर सवारी करना या पैदल चलना होता है। 'सुश्रुत' ने व्यायामकी, जो परिभाषा की है, वह बहुत ही सरल प्रतीत होती है; क्योंकि किसी कर्म या अङ्गसंचालनसे, जिसमें रक्तकी गति तीव्र हो उठे और श्वास-प्रश्वासका वेग बढ़ जाय, शरीरमें थकावट हो जाना ही पर्याप्त माना गया है।

हृदिस्थानस्थितोवायुर्यदावक्त्रं प्रवर्त्तते।
व्यायामं कुर्वतो जन्तोस्तद्बलार्धस्य लक्षणम् ॥

जब व्यायाम करते समय मुखसे साँस लेना पड़े, तब समझ लेना चाहिये कि आधी शक्तिका ह्रास हो गया।

परन्तु 'चरक' का कथन है कि व्यायामका अर्थ ऐसी कसरतोंसे है, जिनसे मनमें उत्साहका संचार हो और अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें बल और स्थिरताकी वृद्धि हो। इन कसरतोंको अपने बलकी मात्राके अनुसार करना चाहिये।

शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्थं बलवर्द्धिनी।
देहव्यायाम सङ्ख्याता मात्रया तां समाचरेत्॥ (च० सू०, ६ अ०)

आजकल अखाड़ोंमें जो लोग व्यायाम सिखलाते हैं, वे इस कलाके सिद्धान्तोंसे जिनके अनुसार तरह-तरहके दाँव-पेंच काममें लाए जाते हैं, चाहे परिचित न हों; तथापि यह कला विज्ञानका एक जीता-जागता उदाहरण है। इन ग्रन्थोंमें विज्ञान, तो सुषुप्तिकी अवस्थामें है, परन्तु कला जागृत है।

संसारका सर्वोत्तम पहलवान आजकल एक भारतीय है। क्या इससे ही पूर्णतया सिद्ध नहीं होता कि ऐसे महान् पहलवानको उत्पन्न करनेवाली भारतीय व्यायाम-पद्धति ही अन्य पद्धतियोंसे अधिक वैज्ञानिक है?

जेविस्को, भारतीय पहलवान 'गामा' की प्रशंसा करते हुए कहता है कि "ये हिन्दू लोग संसारके सबसे अधिक विचित्र पुरुष हैं।"

उसके लिए हिन्दू और मुसलमान समान हैं। समस्त भारतीय विज्ञान वास्तवमें हिन्दुओंकी रचना हैं, और मुसलमानोंने तो उन्हींके विज्ञानका ज्ञान प्राप्त करके उन्नति प्रदर्शित की है।

उन्तीस जनवरी सन् १९२७ की घटनाका वर्णन इस प्रकार है, "भगवान् भास्करने शामके ४ बजे आरम्भ होनेवाले मल्लयुद्धको और भी रोचक बना दिया, अतएव दर्शकोंके समूहके समूह रङ्गविरङ्गी सुसज्जित रङ्गभूमिमें लगातार चले आरहे थे। गामा-जेविस्कोका मल्लयुद्ध आरम्भ होते समय ४०००० दर्शकोंके बैठने योग्य वह महान् स्थान खचाखच भर गया था। इस विचारसे कि कदाचित् कुश्ती बहुत देरतक होती रहे और लगभग इस प्रकार रात्रिका समय हो जावे, दो सर्चलाइट और एक दर्जन तेज रोशनीवाले बिजलीके लैम्पोंका आयोजन अखाड़ेमें कर दिया गया था। दर्शकोंकी श्रेणीमें श्रीमान् पटियालानरेश, सर हारकोर्ट बटलर और बहुतसे नरेश और शिमला-पहाड़ीके राजागण उपस्थित थे। दोनों पहलवान सन्ध्या चार बजे रङ्गमञ्च पर पधारे, और जनताने दीर्घकाल तक करतलध्वनि करके उनका सोत्साह स्वागत किया। जेविस्कोने जब अपने चोगेको उतार डाला तब उसका बलिष्ट शरीर और भुजदण्ड प्रकट हुए। गामा बहुत पतला दिखाई पड़ता था और अपने प्रतिद्वन्द्वीके सामने कुछ जँचता नहीं था।

कुश्तीका श्रीगणेश ही हुआ था कि गामाने बड़ी चतुराईसे जेविस्कोको दे मारा और उसको बिलकुल दबा लिया। वे जमीनपर ३० सेकन्ड तक ही जोर करने पाये थे कि इतनेहीमें विद्युत् सरीखे वेगसे गामाने इस पोलेन्ड देशके पहलवानको चित

कर दिया, और स्वयं उसकी छाती पर बैठ गया। उपस्थित जनता को बड़ा विस्मय हुआ कि संसार-विख्यात यह कुश्ती इतनी शीघ्र समाप्त होगई।

इधर गामा तो महाराजा पटियालाके पास दौड़कर गया और उनको साष्टाङ्ग दण्डवत् की, उधर जेबिस्कोने नितान्त निराश होकर अपने एकान्त स्नानागारकी शरण ली। उसने घोषित किया कि "गामा खिलाड़ियोंमें शेर है।" उपर्युक्त अवतरणसे भलीभाँति विदित होगा कि हमारी जातिका अन्य विषयोंमें चाहे कितनाही अधःपतन क्यों न हो गया हो, इस कलामें तो दिग्दिगन्तमें हमारी यशःपताका फहरा रही है।

जर्मन और अमरीकन भारतीय व्यायामकी पद्धतिके रहस्योंको हमसे सीखनेके लिए चेष्टा कर रहे हैं; परन्तु हमारे हृदयमें अपनी इस कलाके प्रति सम्मानका भाव नहीं है, और यह फैशनसा हो चला है कि शरीरको स्थूल और विशाल बनाया जावे और इसका परिणाम यह है कि राजयक्ष्मा-सरीखो कराल-कालके गालमें कवलित करनेवाली बीमारियोंके पंजेमें लोग पड़ते जा रहे हैं।

अब लोग यह मानने लगे हैं कि भारतकी दण्ड-कसरत सबसे सरल और इससेही शरीरके अंग-प्रत्यंगका विकास होता है। अमरीकाके एक सामयिक पत्रका अवतरण इस प्रकार है—"दण्डोंके सर्वोत्तम होनेका कारण वैज्ञानिकदृष्टिसे यह है कि किसीन किसी प्रकारसे शरीरके जिन अंगोंमें शक्तिका केन्द्र है, उनको आयास प्राप्त होता है।"

उदाहरणके लिए दण्डोंसे शरीरके जिन विशेष अङ्गोंको आयास होता है, वे यह हैं:—शरीरके मध्यभागके पुट्ठे यथा गुदी और रीढ़ जो स्नायुमण्डलके विशाल केन्द्र हैं, उदरके पुट्ठे, दोनों पार्श्वोंके पुट्ठे, कुल्हे और जङ्घायें और शरीरके मर्म्मस्थानोंके समस्त पुट्ठे। मनुष्यकी शक्तिका केन्द्र न तो विशाल भुजाओं और कन्धोंमें है और न प्रशस्त वक्षस्थलमें ही है; उसका निवासस्थान तो शरीका मध्यभाग है और इसी भागको हिन्दुओंकी दण्ड-कसरतसे पूर्ण आयास प्राप्त होता है। "यदि पुरुष औरोंकी अपेक्षा अधिक बलवान होना चाहे, तो उसे विशेषतः अपनी ग्रीवा और जंघाओंको पुष्ट करना चाहिये।"

यही कारण है कि भारतीय व्यायाम पद्धति सहस्रों वर्षोंसे शरीरके इन्हीं मुख्य अंगोंका विकास करती रही है, और कदाचित् इस पद्धतिकी महत्ताका यही रहस्य है। इसीलिये अंग्रेजोंने भारतीय कसरतोंको सीख लिया है, और वे इन्हें यूरुपकी कसरतों के साथ-साथ प्रयोगमें लाते हैं।

हमारे प्राचीन पुरुष प्रतिदिन नियमित रूपसे शारीरिक व्यायाम करके अपने बलकी वृद्धि और संरक्षण करते थे। सुन्दर और बलिष्ट शरीर बनानेके लिए दण्ड-बैठक और भारतीय मुद्गर ही पर्य्याप्त हैं और इनके निर्माणमें खर्चभी बहुत कम

होता है। सांसारिक संवन्धोंसे विरक्त संन्यासीके लियेभी नित्यके अभ्यासके लिये योगके आसन नियत हैं।

व्याधयोनोप सर्पन्तिसिंहं क्षुद्रमृगाइव। (च० सू० ६ अ०)

जिस प्रकारसे सिंहके पास क्षुद्र पशु नहीं फटकने पाते, उसी प्रकार व्यायाम करनेवालेसे रोग दूर भागते हैं।

वयो रूपगुणैर्हीनमपि कुर्य्यात् सुदर्शनम्।

वय-रूप और गुणसे हीन पुरुपभी व्यायाम करनेसे सुन्दर दीखने लगता है।

व्यायामंकुर्वतो नित्यं विरुद्धमपिभोजनम्।
विदग्धमविदग्धंवा निर्दोषं परिपच्यते॥ (सु० सू० २४ अ०)

जो पुरुप नित्य व्यायाम करता है; वह विरुद्ध, अतिपक, या कच्चे भोजनको भी पूर्णतया पचा सकता है।

नचाऽस्तिसदृशं तेन किञ्चित्स्थौल्याऽपकर्षणम्।

शरीरके मोटापनको मिटानेके लिए व्यायामके बराबर और कोई उपाय नहीं है।

नचव्यायामिनंमर्त्यमर्दयन्त्यरयोभयात्।

व्यायाम करनेवाले मनुष्यके निकट शत्रु भयके मारे नहीं।

नचैनंसहसाऽऽक्रम्य जरासमतिरोहति। (सु० चि० २४ अ०)

ऐसे पुरुपको वृद्धाऽवस्था भी सहसा नहीं आती। शरीरको सुरूप, और पुट्ठोंको बल, और गठन, प्रदीप्तजठराग्नि, अङ्गस्फूर्त्ति, निरालसता, कठिन-परिश्रम और मानसिकश्रम करनेकी शक्ति और भूख-प्यास और शीतोष्णता सहन करनेकी क्षमता प्रदान करनेमें शारीरिक व्यायामसे बढ़कर और कोई चीज नहीं है। संक्षेपतः व्यायामसे ही शरीर सर्वथा स्वस्थ रहता है।

मैं यह जाननेके लिये लालायित हूँ कि समस्त भारतवर्पमें कोई ऐसा भी वैद्य, डाक्टर या अन्य चिकित्सक है, जो वास्तवमें अपने बीमारोंका व्यायामके विज्ञानके द्वारा जिसकी उन्नति करनेमें हमारे पूर्व पुरुपोंने इतना ध्यान प्रदान किया था, लाभान्वित करनेकी चेष्टा करता है? यह तो निस्सन्देह सत्य है कि डाक्टर सुबह या शाम मील-आधमील घूमने फिरनेके लिये अपने बीमारोंको उपदेश करता है; परन्तु यह पता लगानेका कष्ट नहीं उठाता कि उसका उपदेश कार्यरूपमें परिणत होता है या नहीं। यह तो सचमुच बहुतही सुलभ है कि गोलियों या अर्ककी बोतल सेवन करनेके लिए कह देना और शारीरिक व्यायाम करनेके लिए उपदेशका वचनाऽमृत रोगीको पान करादेना; परन्तु इन बातोंका परिणाम यह होता है कि अल्पकालके लिए रोगीको लाभ भले ही होजावे; किन्तु ऐसा उपचार वैज्ञानिक न होनेके कारण रोगको समूल नष्ट नहीं कर सकता। उपर्युक्त व्यायामों-द्वारा चिकित्सा करनेकी पद्धतिमें व्यय बहुतही कम होता है, यद्यपि चिकित्साके लिए ऐसा करनेमें बहुत

सर खपाना पड़ता है। अब मैं प्राचीन ग्रन्थकारों-द्वारा बतलाए हुए रोग निवारणके अन्य उपचारोंका वर्णन करूंगा, जिनका उपयोग यदि किया जावे, तो हमारे अस्पतालोंका कार्य्य बहुत ही हलका हो जावेगा।

रोगनिवारण।

साधु वास्वानीका कथन है कि शरीरका निर्माण राष्ट्रका निर्माण है। प्रत्येक भारतीय चिकित्सक राष्ट्रके निर्माणका उत्तरादायित्व रखता है। जिससे स्वास्थ्यके विषयमें सर्वज्ञानसंपन्न होनेकी आशा की जाती है, उसे तो अपने व्यक्तित्व-द्वारा शक्तिका आदर्श उपस्थित करना चाहिये, और अपने ही उदाहरणको सर्वनागरिकोंके समक्ष प्रस्तुत करके उनका पथप्रदर्शक होना चाहिये।

चरकने सदाचारके सिद्धान्तोंपर विशेष ध्यान दिया है; क्यों कि विद्यार्थीकी शारीरिक उन्नतिका स्रोत इसी तत्त्वमें है, और इसी कारण चरकने आयुर्वेदके विद्यार्थीकी शिक्षाके पाठ्यक्रममें इस विषयको विशेष महत्व दिया है। समस्त भारतवर्षमें आचारके नियमोंकी सहायतासे प्रचार होता था, और सभी वर्गोंके लोग धार्मिक उत्साहके साथ उनका पूर्णतया पालन करते थे। पुरोहित घर-घरमें उनका प्रचार करता था और न्यायाधीश सामाजिक या स्वास्थ्य-सम्बन्धी साधारण नियमोंके भङ्ग करनेवाले अपराधियोंको दण्ड देता था; क्यों कि ऐसा कृत्य अधर्म था, जिसके लिए इतना घोर दण्ड होता था कि आधुनिक समयमें हमारे लिए यह असङ्गतसी बात प्रतीत होगी कि किसी आम जगहमें थूकने या पेशाव करने-सरीखे साधारण अपराधको इतना गुरुतर माना जाय! धर्मके इस कठिन अनुशासनका ही अद्भुत परिणाम था कि हमारा भारतवर्ष संसारभरमें परम पवित्र राष्ट्र था और सभ्यतामें सवका शिरोमणि था।

आयुर्वेदके अध्ययनका उद्देश्य केवलमात्र, वैद्यकशास्त्र और शल्यशास्त्रको प्रयोगमें लानाही नहीं था; किन्तु जीवनमें अधिकसे अधिक सुख-समृद्धिकी प्राप्ति करना था—'धर्मोऽर्थ सुखसाधनम्।' सप्तमवर्षके उपरान्त प्रत्येक विद्यार्थीकी शिक्षाके पाठ्यक्रममें औषधशास्त्रका अध्ययन अनिवार्य था। रोग निवारणका अध्याय निम्नलिखित श्लोकसे प्रारम्भ होता है:—

नित्यं हिताहारविहारसेवीसमीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दातासमः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥

सदा नीरोग वही पुरुष रहता है, जिसका आहारविहार सर्वदा नियमित है, जो सोच-विचारकर कार्य्य करता है, जो विषय-भोगोंमें आसक्त नहीं है, जो दाता, सब प्राणियोंके साथ समताका व्यवहार करनेवाला सत्य-शील और क्षमावान् है, और जो कुछ प्राप्त हो, उसी पर सन्तोष करनेवाला है।

हित, आहार-विहार, इन तीन शब्दोंमें प्रातःकाल शय्यात्यागसे लेकर रात्रिको शयनपर्य्यन्त स्वस्थजीवन व्यतीत करनेसे समस्त सिद्धान्तोंका सार भरा हुआ है। निम्नलिखित चार उदाहरण ऐसे लोगोंके हैं, जो किसीन किसी रोगसे, पीड़ित बनेही रहते हैं। जैसे—श्रोत्रिय, राजकर्मचारी, वेश्या और दुकानदार। क्योंकि उनका कामही ऐसा है कि न तो समयपर भोजन कर पाते हैं और न नियत समयपर शौचादि-क्रियाही कर सकते हैं, और न उनका चित्तही शान्त रहता है।

सदाऽऽतुरा श्रोत्रियराज-सेवकास्तथैव वेश्या सहपण्य जीविभिः।
द्विजोहि शिष्याऽध्ययन व्रताह्निकक्रियादिभिर्देह हितं न चेष्टते॥
नृपोपसेवीनपचितरक्षणात्पराऽऽतुराधाद्दहुचिन्तनाद्भयात् ।
नृचित्त वर्त्तिन्युपचार तत्परा मृजाऽभिभूपानिरता पराङ्गना॥
सदासनादत्यनुबद्धविक्रय-क्रयादि लोभादपिपण्यजीविनः।
(च० सिद्धि० अ० ११)

मालिश, स्नान और भिन्न ऋतुओंके अनुसार दिन और रातमें काम और विश्रामके सम्बन्धमें जो नियम दिए गये हैं, वे हमारे आजकलके जलवायुके वातावरणके इतने अनुकूल सिद्ध होते हैं कि परमछिद्रान्वेशी आधुनिक वैज्ञानिकभी उनकी प्रशंसा किये विना नहीं रह सकता।

अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं सजराश्रमवातहा।
दृष्टि प्रसाद पुष्ट्यायुः स्वप्नसुत्वक्त्वदार्ढ्यकृत्॥

प्रत्येक स्वस्थ मनुष्यको तैलकी मालिश सदा करानी चाहिए जिससे वृद्धाऽवस्था, शरीरमें थकावट और दर्द दूर हो जाते हैं। मालिशसे दृष्टि बढ़ती है, और शरीर पुष्ट होता है। इससे नींद अच्छी आती है, शरीर गौरवर्ण और वलिष्ठ हो जाता है। संक्षेपतः इससे दीर्घजीवी हो सकता है।

यदि दुबले मनुष्यको मोटा और मोटेको दुबला बनानेका कोई उपाय हो सकता है, तो वह मर्दन व तेलकी मालिश है। मोटे मनुष्यकी चरबी, रक्तकी गति उन्नत होनेसे दूर हो जाती है और दुबला मनुष्य त्वचा और पुट्ठोंकी पुष्टि प्राप्त होनेसे हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। तैलकी मालिश सौन्दर्य्यवर्द्धक और नवयौवन प्रदान करनेवाली रसायन है। जर्मन लोगोंने पुनर्यौवन प्रदान करनेके लिए जो उपचार निकाले हैं, उनके लिये असंख्य द्रव्य व्यय करना पड़ता है। यदि आप पुनर्यौवनके लिये कोई वैज्ञानिक उपचार चाहते हैं तो वह नित्य तैलकी मालिश है। तामिलमें एक कहावत है कि "लोग जो कुछ वैद्यको देते हैं, वह तैल मलनेवालोंको देदिया जावे, तो वैद्यकी आवश्यकता ही न पड़े।"

शारीरिक व्यायाम समाप्त करनेके पश्चात् समस्त शरीरका मर्दन करे। "तंकृत्वा-ऽनुसुखं देहंमर्दयेच्च समन्ततः।" भारतीय पहवान बहुत वृद्ध होनेपर भी अपनी शक्ति बनाए रखते हैं, इसका रहस्य यही है।

मर्दन तीन प्रकारका होता है—(१) मर्दन–व्यायाम सम्बन्धी मर्दन, (२) संवाहन–या चिकित्सा सम्बन्धी मर्दन, (३) उत्सादन और केश मर्दन–अर्थात् स्वास्थ्य संबन्धी मर्दन । व्यायाम संबन्धी मर्दनका उद्देश्य यह है कि पुट्ठोंकी स्फूर्ति प्राप्त हो, शक्ति और सहिष्णुता बढ़े और व्यायामके पश्चात् आराम और विश्राम प्राप्त हो । इसमें अङ्गको जोरसे मसलते हैं । और इस प्रकार पुट्ठोंका संकोचन-प्रसारण होता है । चिकित्सा सम्बन्धी मर्दनका प्रयोजन यह है कि रोगीको आराम मिले, उसकी रक्तकी गति उन्नत हो और शोथ या दाहकारक रक्तग्रन्थियोंका विलयन हो हो जावे । इससे निद्रा आती है, स्थूलता और पीड़ा दूर होती है, और थकावट मिटती है । इसमें अङ्गोंमें तेल बहुत हलके हाथ लगाया जाता है, और ताड़न इत्यादि क्रियाएँ बड़ी ही सुखद रूपसे की जाती हैं । यह मर्दन अधिकतर बाह्य होता है; किन्तु व्यायाम सम्बन्धी मर्दन आन्तरिक होता है । स्वास्थ्य सम्बन्धी मर्दनका उद्देश्य त्वचाको साफ करना और स्नायुमण्डलको स्फूर्ति देना है । मर्दनकी इस कलामें अनेक क्रियाएँ होती हैं, जिनमें कतिपयकी परिभाषा इस कलाको समझनेके लिए की जाती है ।

(१) अनुलेपन—अर्थात् अङ्गों पर तैल को धीरे-धीरे लगाना और इसमें प्रायः दोनों हाथोंसे काम लिया जाता है । (२) घर्पण—शरीरको ऊपर-नीचे दाएँ-बाएँ अल्प ताड़नके साथ रगड़ना । (३) उद्धर्पण—साधारण घर्पणकी अपेक्षा इसमें अधिक बल और दबावके साथ घर्पण किया जाता है । कन्डू अर्थात् खुजलीमें खरउद्धर्पण उन अंगोंपर किया जाता है, जिनमें कन्डूके कण या मण्डल (चकत्ते) होते हैं । इष्टिका (ईंटके टुकड़े) का भी इस रोगमें विशेष प्रयोग होता है । विष या मूर्छासे आक्रान्त होनेके कारण निद्रित पुरुषको जाग्रत रखनेके लिए भो यह उपचार किया जाता है । इसमें खेद, पिपासा क्लान्तिकी शान्ति होना माना गया है । मृदु-उद्धर्पणमें इस बातका खयाल रक्खा जाता है कि घर्पण करनेसे पहले त्वचाको तनिक स्निग्ध कर दिया जावे । अन्यथा उसके छिल जानेकी आशङ्का रहती है । (४) उत्सादन—इसमें थोड़े तैलसे या तैलमें हल्दी या चनेका महीन आटा मिलाकर धीरे-धीरे शरीरपर घर्पण किया जाता है । यह घर्पण अधिक दबावके साथ ऊपरकी ओर किया जाता है । यथा हृदयकी ओर, कलाईसे कन्धेकी ओर, पैरसे नितम्बकी ओर ।

उत्सादनात् भवेत्स्त्रीणां विशेषात् कान्तिमद्वपुः ।
प्रहर्ष सौभाग्यमृजा लघ्वादिगुणान्वितम् ॥

उत्सादनसे स्त्रियोंके शरीरको विशेषतः कान्ति प्राप्त होती है । यह मनमें उल्लास उत्पन्न करता है, स्वरूप बढ़ाता है, त्वचाको शुद्ध करता है शरीरमें हलकापन लाता है ।

उद्वर्त्तन—इसमें चिकनाईके साथ मृदु या खरपदार्थोंको बत्तीसी बनाकर त्वचापर हथेलीसे शनैः-शनैः मालिशकी जाती है ।

उद्वर्त्तनं कफहरं मेदसः प्रविलापनम्।
स्थिरीकरणमङ्गानांत्वक्प्रसादकरं परम् ॥

उद्वर्त्तनसे कफ दूर होता है, चर्बी कम होती है, अङ्गोंमें स्फूर्ति आती है, और त्वचा चमकने लगती है।

स्वेदन—इसमें सारे शरीरको या शरीरके किसी अंगको पसीना दिलाते हैं। इसके दो प्रकार हैं। (१) साऽग्निस्वेद (२) निरग्निस्वेद। साऽग्निस्वेदके १३, और निरग्निस्वेदके १० भेद होते हैं। चरकमें वर्णित स्वेदकी यह क्रियाएँ भिन्न-भिन्न प्रकारके स्नानोंपर निर्भर प्रतीत होती हैं, जोकि कालान्तरमें रोम और तुर्कीके इतिहासोंमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुए थे। चरकने ऐसे रोगोंकी सूची दी है जो स्वेदसे नष्ट हो जाते हैं। उनमेंसे मुख्य ये हैं। जैसे—नासाऽभिष्यन्द, गलायु, खासी, हिक्का, श्वासरोग, शिरश्शूल, अर्दित (लकवा), उदररोग, मूत्राऽऽघात, मूत्रग्रन्थी, सन्धिवात, त्वक्शून्यता, और अङ्गविकृति।

कतिपय रोगोंके उपचारमें हाथीकी पाँच प्रकारकी गतियोंके निम्नलिखित भेदोंसे बड़ी सफलता प्राप्त होती है। जैसे—ज्ञतावेष्टन, पिधान, अवपिधान, उद्वेष्टन, मन्थन, परिपिधान, सन्धिचालन, सन्धिमोक्ष, हर्षक, प्रहनन, छेदन, ताड़न, संपुटकम्, वादन, आस्फालन, मार्जन और केशमर्दन।

स्वास्थ्यके विचारसे स्त्री-पुरुषके सङ्गमको मार्यादाबद्ध करनेकी शिक्षा देनेमें शास्त्रकारोंने किसीप्रकारका संकोच नहीं किया। और मानव जीवनकी अवधिको ४ नियमित आश्रमोंमें विभक्त किया। ताकि समाजकी पूर्णसेवाके साथ-साथ ज्ञान और सुखकी परम-वृद्धि हो। नष्ट शक्तिको पुनः प्राप्त करने और वाजीकरणके उपाय यथा—स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु, और सुरम्यदृश्योंवाले आश्रमोंकी खुली हवामें निवास और स्नेह एवं स्वेदकर्म, जो आजकलके टर्किशबाथ (हम्मामका स्नान), स्वास्थकर व्यायाम, और पौष्टिक भोजन, ऐसे सरल और प्राकृतिक हैं कि पाश्चात्यजगतके विख्यात चिकित्सक जो गिल्टी इत्यादि अप्राकृतिक उपचारों-द्वारा जीवन रसायन प्रदान करना चाहते हैं उनका पूर्णतया सुविधापूर्वक अनुकरण कर सकते हैं। हमारा विज्ञान अधिकतर दो बातों पर निर्भर है। (१) प्राणायामसे अन्तःस्फूर्ति और (२) व्यायामसे स्वेदन।

वाजीकरणके रामबाणसरीखे निम्न पदार्थ गहन अनुशीलन और अन्वेषण करने योग्य हैं। (१) पशुओंकी ग्रन्थिसे उत्पन्न पदार्थ—कस्तूरी और गोरोचन, जो त्वचाको नवीन बल देनेमें विशेश प्रभाव रखते हैं। (२) वनस्पतिसे उद्भूत रङ्गीन पदार्थ। जैसे—केशर और मंजीठ। (३) दीपन पदार्थ। जैसे सरसों व कर्पूर। (४) माप और बला शामक हैं। (५) कीट नाशक पदार्थ। जैसे—नीमकी शाखा और हल्दी। (६) उत्तेजक तैल और लेप इत्यादि।

सेवेतकामतः काम वृष्यो वाजिकृतां हिमे।
त्र्यहाद् वसन्त शरदोः पक्षाद्वर्षानिदावयो॥

रसायनके अध्यायमें चरकका कथन है कि कर्मनिष्ठ नागरिकको अनेक कार्यों और झंझटोंके कारण अपने स्वास्थ्यपर ध्यान देनेका समय नहीं मिलता—

"नहिकिञ्चिद्रसायनम्—ग्राम्याना मन्य कार्य्याणा सिद्धयन्ति प्रयतात्मनाम्।"

(च० चि० ३ पाद)

स्वास्थ्यके लिये जो स्थान या कुटी बनाई जावे, वह सुन्दर सुभूमिमें होनी चाहिए, और नगरसे इतनी दूर न हो कि निज जीवन और सम्पत्तिका पूर्ण संरक्षण न हो सके। वह विशाल, हवादार, और ऊँची होनी चाहिए और ऐसे स्थानपर उसकी स्थिति होनी चाहिए कि समस्त ऋतुओंमें सुखदायक हो और रोगोत्पादक वायु वहाँ न आने पावे। उसकी दीवारें मोटी होनी चाहिएँ, जिसमें सर्दी व गर्मीसे रक्षा हो और वह पूर्णतया स्वच्छ और मनोहर होनी चाहिए। इस कुटीमें एकके भीतर एक ऐसी-ऐसी कोठड़ी होनी चाहियें, जिससे दुर्गन्ध कोलाहल और धूलि वहाँ न पहुँच सके। इस कुटीका निवासी अपने मित्रों, सलाहकारों, वान्धवों, गुरुओं और परम विख्यात और निजमान्य गृहचिकित्सकके साथ वहाँ जावे; क्योंकि ऐसा पुरुष रोगग्रस्त होकर वहाँ नहीं जाता है; किन्तु अपना वल वढाने और अपनेको वृद्धावस्थासे वचानेके लिए ऐसे स्थानकी शरण लेता है। निर्जनताके कारण उसके चित्तका उचाटन न होने पावे, और वहाँकी प्रत्येक वस्तु शुभ होनी चाहिए। रसायन सेवनके समयमें वहाँ स्त्रियें नहीं होनी चाहिएँ, परन्तु अन्य उपचारोंमें रोगीकी शय्याके पास स्त्रियोंके लिए निषेध नहीं है। मैं जानता हूँ कि योरुप और अमरीकाके आधुनिक स्वास्थ्यस्थानोंमें इस प्रकारका आयोजन नहीं है और इस बातकी आवश्यकता है कि दोनों प्रणालियोंको अनुभवकी कसौटीपर चढ़ाकर परस्पर परिवर्त्तन किया जाय। संभव है कि जिनकी विषयेन्द्रिय थककर अशक्त हो गई हो, ऐसे स्त्री या पुरुषोंको कुछ कालतक एक दूसरेसे पृथक रहना ही परम वाजीकरण हो। मैंने सुना है कि अन्य देशोंमें यह व्यवहारिक अनुभव किया जा रहा है कि छुट्टियोंमें ऐसे स्थानोंपर जानेवाले स्त्री-पुरुषोंको भिन्न-भिन्न सङ्गतिमें रक्खा जावे, जिससे दम्पतिके दैनिक साहचर्य्य एवं घनिष्ठ सम्बन्धके कारण एक दूसरेके प्रति जो अरुचि उत्पन्न हो जाती है कुछ समय तक परस्पर वियोग हो जानेके कारण वह दूर की जा सके। किन्तु यह विषय विवादग्रस्त है। उपकल्पनीयाऽध्यायमें इस बातका वर्णन किया गया है कि धनिक रोगीको चिकित्साके लिए क्या आयोजन होना चाहिए। यह बतलाया गया है कि निम्नलिखित वस्तुएँ पहलेसे ही तैयार होनी चाहिएं :—

दण्डनिवातप्रवातैकदेशं सुख प्रविचारं धूमातपजलरजसामनभिगमनीयं अनिष्टानंचशब्दस्पर्शरूपरसगन्धम्।

स्थान दृढ़ और निवात, खुला हुआ और हवादार होना चाहिए। वह इतना विस्तृत होना चाहिये कि सुविधापूर्वक घूमा-फिरना हो सके। वह किसी ऊँचे या विशाल-भवनके निकट न होना चाहिए। धूआँ, धूप और धूलका प्रवेश न होना चाहिए और न कोई ज्ञानेन्द्रियको आघात पहुँचानेवाली वस्तु पहुँचे।

शीलशौचाचाराऽनुरागदाक्ष्य, प्रादक्षिण्योपपन्ना नुपचारकुशलान्, सर्वकर्मसुपर्य्यवदातान्, सूपौदनपाचकस्नापकसंवाहकोत्थापक संवेशकौषधपेशकांश्चपरिचारकान् सर्वकर्मस्वप्रतिकूलान्, वादित्रोल्लासकश्लोकगाथाऽऽख्यायिकेतिहासपुराणकुशलानभिप्रायज्ञाननुमतांश्चदेशकालविदः पारिषद्यान्, तथा लावकपिञ्जलशसहरिणैण कालपुच्छकमृगमातृकोरभ्रान् गांदोग्ध्रींशीलवतमिनातुराम् जीववत्सां प्रविहिततृणशरणपानीयाम्। (चरक. सूत्र०)

रोगीकी सेवाके लिए ऐसे परिचारक रक्खे जायँ, जो शीलवान शुद्धआचारवाले, अनुराग रखनेवाले चतुर और दयावान हों। जो सेवा रोगी करना चाहे उसमें कुशल हों। जैसे—नहलाना, धुलाना, अंगोंपर मालिश करना, रोगीको उठाने, या घूमने-फिरनेमें सहायता देना, शय्याको सजाना या साफ करना, औषध तैयार कराना। वे सावधान और धैर्य्यवान, रोगीकी सेवामें कुशल और आज्ञाके अनुसार प्रत्येक काम करनेको तैयार होने चाहिएँ। उनमेंसे कुछ ऐसे भी होने चाहियें, जो गाने-बजाने, भजन, प्रसन्न करनेवाले श्लोक, गाथा, आख्यायिका, इतिहास और पुराण इत्यादि सुनानेमें कुशल होवें। वे अभिप्रायको समझनेवाले, देश-कालको जाननेवाले और अपने सभ्यव्यवहारके कारण साथी होनेके योग्य होने चाहियें।

रोगीके भोजनके लिए वन्यपशुओं और पक्षियोंकी बहुतायत होनी चाहिए, और ऐसी गौ होनी चाहिए जो स्वस्थ और शान्त स्वभाव हो और खूब दूध देवे और उसके सब बच्चे जीवित हों। उसे खूब खिलाना-पिलाना चाहिए। स्वच्छ शालामें उसे रखना चाहिए।

उपर्युक्त वर्णनसे विदित होता है कि आधुनिक सुसज्जित चिकित्सालय, रोगीके उपचारके लिए जो वस्तुएँ और भिन्न-भिन्न प्रकारके मनोविनोद आवश्यक समझे गये हैं, उनका आयोजन करनेमें प्राचीनकालकी तुलना नहीं कर सकते।

आयुर्वेद-शिक्षाका पाठ्यक्रम

आजकल सर्वत्र यह प्रयत्न हो रहा है कि येनकेनप्रकारेण आयुर्वेदके छात्रका पाठ्यक्रम कम किया जावे और यह अनुभव किया जा रहा है कि पूर्णसुधारका समय अब आ गया है। प्रत्येक वैज्ञानिक विषयके मुख्य सिद्धान्तोंके अध्ययनके लिए अनेक विभाग स्थापित किए गये हैं, जिनमें पारंगत होनेके लिए ४–५ वर्ष तक पढ़ाई करनी पड़ती है। किसी भी विज्ञानके केवल अंशमात्रसे अधिक किसी विद्यार्थीको सिखलाना हमारे लिए असंभव है। प्राचीन भारतमें भी यही भावना थी कि आयुर्वेद-

शास्त्रकी अनेक शाखाओं और विशाल साहित्यका किसी छात्रको पूर्ण ज्ञान कराना संभव नहीं था। शल्यतन्त्रकी चर्चा करते हुए चरक कहता है। पराऽधिकारेणन-विस्तरोक्तिः। अर्थात् इस विषयकी चर्चा मैं विस्तारपूर्वक नहीं करूँगा; क्योंकि यह पराऽधिकारके अन्तर्गत है। अतएव यह विचार हुआ कि केवल धर्म, अर्थ और काम इन तीन शास्त्रोंके मुख्य सिद्धान्त विद्यार्थीको सिखलाए जावें। आदर्श यह था कि अपने विषयका पूर्ण ज्ञान होना चाहिए; परन्तु अन्य विषयोंकी भी कुछ जानकारी होनी चाहिए, और तभी आयुर्वेदज्ञ रणक्षेत्रमें ध्वजाके समान सुशोभित होता है।

स्वतन्त्र कुशलश्चाऽन्य शास्त्रार्थेष्ववहिष्कृतः।
वैद्य, ध्वजाद्दवाऽऽभाति नृप तद्विधपूजितः॥

आयुर्वेदशिक्षाका यह मुख्य ध्येय होना चाहिये कि व्यवहार कुशल चिकित्सक तैयार किए जाएँ।

यह प्रयत्न करना तो असंभव है कि तमाम शास्त्रोंका कुछ ज्ञान विद्यार्थीको कराया जावे और साथही किसी एक शास्त्रका पूर्ण ज्ञान करानेका दावा किया जावे। हो तो केवल इतना ही सकता है कि शिष्यको यह सिखलाया जाय कि वह किस प्रकार ज्ञान प्राप्तकर सकता है। किसी विषयका पूर्ण ज्ञान तो उसे आधार ग्रन्थोंकी सहायता से प्राप्तकर लेना चाहिये।

आयुर्वेदके अध्यापनकी भारतीय प्रणाली तो निराली ही थी। यद्यपि औषधशास्त्रके औषध, प्रसूति, शल्य इत्यादि आठ भाग थे। तथापि आधुनिक डाक्टरीके समान रोगनिरोधक और रोगनिवर्त्तक प्रक्रियाके रूपमें दो नियमित विभाग नहीं थे। छात्रको परम अनुभवी और विख्यात अपने अध्यापकके साथ जिनके संग सदा रहता था, रोगीकी परिचर्य्यामें एकदमही लगना पड़ता था, परिणाम यह होता था कि अपनी पाठ्यपुस्तकोंके अध्ययनके लिये तो दिनमें थोड़ासा समय मिलता था; परन्तु रोगीकी परिचर्य्यामें ही अधिक समय विताना पड़ता था। पहले-पहल तो छात्र जो कुछ देखता था, उसकी महत्ताको समझ नहीं पाता था; परन्तु दिन-प्रतिदिन ज्यों-ज्यों उसका ज्ञान वढ़ता था, त्यों-त्यों जो कुछ उसने पहले सीखा था, उसको समझना सरल हो जाता था। शिक्षाकी इस अवनत अवस्थामें भी हमारे देशके अधिकांश वैद्य रोगीकी परिचर्य्यामें विश्वविद्यालयके नवशिक्षा प्राप्त किसी डाक्टरकी अपेक्षा अधिक निपुण सिद्ध होंगे। इसका कारण यह है कि आधुनिक डाक्टरकी अपेक्षा जिसका समय प्रयोगशालामें विशेषतया व्यतीत होता है वैद्यका सम्पर्क रोगी-के साथ अधिक होता है। डाक्टरीके आधुनिक विद्यार्थियोंको ६ सालकी अवधिमें जिस महान् पाठ्यक्रमको पार करना पड़ता है, वह बहुत अपर्य्याप्त है। शारीरिक शिक्षा व्यक्तिगत और सामाजिक स्वास्थ्यके नियम इस प्रकारके व्यावहारिक महत्ताके विषयोंकी सर्वथा अवहेलना की जाती है। मेरी सम्मति है कि अब शिक्षा-प्रणालीमें

पूर्ण परिवर्तन होना चाहिए। जैसे—शक्तिमन्तंज्ञात्त्वा विद्यांग्राहयेत्। स्वास्थ्यकी जिस अवनत अवस्थाने प्रत्येक बातमें हमारी राष्ट्रीय उन्नतिको रोक रक्खा है, उसका कारण यह है कि हमारे विद्यार्थी स्कूलके बन्द कमरोंमें अपना अधिकांश समय ऐसी शिक्षाकी प्राप्तिमें बिताते हैं, जिससे न तो उनके स्वास्थ्य और शारीरिक बलमें उन्नति होती है और न उनकी आर्थिक अवस्था सुधरती है। पूर्ण स्वास्थ्यकी प्राप्तिही शिक्षाका मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

पढ़नेके लिये भेजनेसे पहले छात्रकी शारीरिक और मानसिक योग्यताकी परीक्षा अवश्य करनी चाहिये। सर्वप्रथम उसे व्यक्तिगत और सामाजिक स्वास्थ्यके नियम सीखने चाहिएँ, और अपने स्थानकी किसी सामान्य व्याधिके कारण, अनुक्रम और उपचारसे अवगत होना चाहिए। वास्तवमें प्रत्येक छात्रको अपने सप्तम वर्षसे आयुर्वेदका अध्ययन करना चाहिए; क्योंकि आयुर्वेदका अर्थ है, अपने जीवनका विज्ञान। उसे किसी आयुर्वेदविद्यालयमें इस शिक्षा प्राप्तिकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।

मेरी यह दृढ़ सम्मति है कि इस देशमें प्रत्येक विद्यालय आयुर्वेद विद्यालय होना चाहिए, जिसमें शारीरिक शिक्षाका व्यावहारिक ज्ञानके रूपमें अध्यापन होना चाहिये। प्रत्येक विद्यार्थीके शरीरको स्वस्थ और सुगठित बनानाही ऐसी संस्थाका उद्देश्य होना चाहिये। प्रत्येक विद्यार्थीको स्वस्थ और सबल बनानेके आदर्शको सदा ध्यानमें रखकर और उसकी योग्यता तथा वंश प्रवृत्तिके अनुसार भिन्न-भिन्न कलाओं, उद्योगों और विज्ञानकी शिक्षा ऐसे विद्यालयमें गौण रूपसे प्रदानकी जानी चाहिये।

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्॥

अन्य सब बातोंको तिलाञ्जलि देकर आपको निज शरीरकी रक्षा करनी चाहिए; क्योंकि यदि आपका शरीर ही न रहे, तो आपके लिए 'आप मरे जगप्रलय' वाली कहावतके अनुसार कुछ भी नहीं रह जाता। स्वास्थ्यके बिना संसारमें धन, यश या पद निरर्थक है। आयुर्वेदके विद्यार्थीके पाठ्यक्रममें भी शारीरिक विषयका जो विस्तृत ज्ञान २ सालमें प्राप्त किया जाता है वह अन्तिम वर्षमें प्रवेश करनेसे पहले ही विस्मृति वारिधिमें विलीन होजाता है। अतएव विस्तारकी बातोंको छुड़ा देना चाहिये। उन्हीं विषयोंपर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, जिनसे विद्यार्थीको वास्तविक वैद्य बननेमें व्यावहारिक सहायता प्राप्त हो। उसे विस्तारपूर्वक तो ऐसी बातें जानना चाहिए जैसे रक्त या अन्य किसी धातुकी परीक्षा, जो ऐसी प्रयोगशालामें की जानी चाहियें जहाँ सब प्रकारके उच्चकार्य्यके लिए विशेषज्ञ प्राप्त हो सकें। विद्यार्थीको यहभी जानना चाहिए कि जिस रोगको विशेषज्ञके पास भेजना चाहिए, उसका उपचार करनेकी चेष्टामें क्या-क्या आपत्तियें हैं। विद्यार्थीको इस बातका भी अनुभव कराया जाना चाहिये कि अपने अज्ञान या असावधानीके कारण

रोगीकी यातनाओंको बढ़ा देना, यदि पाप नहीं तो महान् अपराध तो अवश्य है।

आयुर्वेदकी शिक्षाका ऐसा आयोजन होना चाहिए कि तीन श्रेणीके वैद्य तैय्यार हो सकें। जैसे (१) औषधशास्त्रके साधारण वैद्य, (२) शल्य, प्रसूति और अन्य रोगोंके विशेषज्ञ और (३) प्रोफेसर जो अन्वेषण और अध्यापनकी सुविधाएँ संपन्न करें। केवल इसी कारणसे कि किसी चिकित्सकको कदाचित् रणक्षेत्रमें कार्य करना पड़े, यह अनावश्यक है कि प्रत्येक चिकित्सकको उन्नत शल्यशास्त्रका विस्तारपूर्वक ज्ञान कराया जाय; क्योंकि संभव है कि सारे जीवनभर शल्यकी छुरी हाथमें लेनेका अवसर पड़े।

संसारके प्रत्येक देशके चिकित्सकोंकी संख्याके जो अंक प्राप्त हुए हैं, उनसे पता चलता है कि जनसंख्याके अनुसार डाक्टरोंकी संख्या वृद्धि को प्राप्त हो रही है। उदाहरणके लिए विलायतमें १००० हजार जनसंख्याके पीछे डाक्टरोंकी संख्या १ से अधिक है, और अमरीकामें ८०० के पीछे एक। मद्रास प्रान्तमें गत ३ मनुष्यगणनाके अंकोंसे प्रगट होता है कि १७०० के पीछे १ चिकित्सक हैं। ऐसे चिकित्सकोंमें गवर्नमेन्टकी सनदवाले तो थोड़ेसे ही हैं और अधिकतर तो विना सनदके ही हैं, और इनमेंसे कतिपय ही चिकित्सामात्रसे ही अपना जीविकोपार्जन करते हैं और दूसरे ऐसे हैं जिनका मुख्य साधन तो अन्य व्यवसाय है और चिकित्सा का कार्य्य गौणवृत्तिके रूपमें करते हैं। आधुनिक शिक्षासे चिकित्सक अपने समाजमें परोपजीवी बन जाते हैं। देशकी आर्थिक समृद्धिकी वृद्धि करनेमें किञ्चिन्मात्रभी सहायता देनेमें असमर्थ होता है। परन्तु भारतीय प्रणालीमें वैद्यके लिये सम्मानपूर्वक जीविका निर्वाह करके लिये कुछ साधन होता था, और चिकित्साका कार्य तो केवल परोपकारके लिए होता था उसे राज्यका आश्रय भी प्राप्त होता था। अतएव वह वैद्यवृत्तिके गौरवको अक्षुण्ण रखता था।

समस्त देशोंमें इस व्यवसायमें आवश्यकतासे अधिक चिकित्सक होनेकी पुकार है। यद्यपि भारतवर्षमें डाक्टरोंके विषयमें इस पुकारकी शिकायत है; तथापि यह कभी अनुभव नहीं होता कि वैद्यभी आवश्यकतासे अधिक हैं; इसका कारण स्पष्ट है, अपनी दैनिक आवश्यकताओंके लिये वैद्यको निजवृत्तिकी आयपर निर्भर नहीं रहना पड़ता, अपने कुटम्बकी आवश्यकतापूर्त्ति वह परम्परागत व्यवसायकी आयसे कर लेता है। मेरी सम्मति है कि अपने समयके कुछ अंशमें वैद्यवृत्ति करनेकी प्रणाली यथासंभव चालू रक्खी जानी चाहिये और केवल कॉलेजोंके प्रोफेसरों और विशेषज्ञों-को जिनका सारा समय अन्वेषणके कार्य्यमें व्यतीत होता है, राज्यकी ओरसे अपना समस्त समय इसी कार्य्यमें लगानेके निमित्त वेतन-प्रदान किया जाना चाहिए। अन्य सर्वकार्य्य न्यूनाऽधिक रूपमें अवैतनिक प्रणालीपर संचालित होना चाहिए।

चिकित्सकके सैनिट्री ऑफिसर (स्वास्थ्य सम्बन्धी निरीक्षण करनेवाला

कर्मचारी), शारीरिक-शिक्षा-विशारद और समाजसेवक होनेपर भी नगर या ग्राममें कार्य्य वास्तवमें इतना पर्य्याप्त नहीं होता कि वह अपना सारा समय लगा सके। यदि वह इस व्यवसायमें अपने समयका कुछ अंश लगावे, तो परिणाम यह होगा कि चिकित्साके कार्य्यको लोकहितके लिए आनन्दमय कर्त्तव्य समझेगा।

अन्य देशोंकी अपेक्षा भारतके चिकित्सकोंका उत्तरदायित्व गुरुतर है। वे उस प्राचीन सभ्यताके रक्षक हैं, जिसमें औषधशास्त्रके महान् सत्यसिद्धान्तोंका ऐसा भव्यभण्डार है, जिसका अन्वेषण लोकहितके लिए होना आवश्यक है। यह इन्हींका मुख्य कर्त्तव्य है कि इस प्रच्छन्न रत्नराशिको करतलगत करके उसकी दिव्यज्योतिसे समस्त संसारको एक विचित्र चमत्कार दिखला दें। अबतक तो हमारे शास्त्रोंके प्रति उदासीनता रखनेके लिये अंग्रेजशासकोंपर दोषारोपण किया जाता था; किन्तु अब अपने शास्त्रोंके उद्धारके लिये कार्य्यकरनेका समय भारतवासियोंके लिये आगया है। अतएव अब हमारे सिवाय और कोई दोषका भागी नहीं होगा।

आयुर्वेदीय ग्रन्थोंका साहाय्य उपलब्ध होनेके कारण वर्त्तमान पाठ्यपुस्तकोंमें प्रत्येक रोगका इतिहास पुनः लिखा जाना चाहिये। निष्पक्षपात पाश्चात्य चिकित्सक रोगोपचारकी प्रणालीमें भी हमारी अनेक बातें सीख सकता है। आयुर्वेदज्ञको भी अपने रोगीके हितार्थ और अपनी प्रवीणता और प्रख्याति अभिवृद्धिके निमित्त पाश्चात्यजगतके डॉक्टर भाइयोंसे सीखनेके लिए तत्पर रहना चाहिये। विद्याके सीखनेमें देश और जातिकी कोई बाधा नहीं है—यत्र-यत्र विद्या तत्र-तत्र वाराणसी। शत्रुसे भी विद्या ग्रहण करनी चाहिये।

अमित्रस्याऽपिधन्यंयशस्यंआयुष्यंपौष्टिकंलौक्यं अभ्युपदिशतोवचः श्रोतव्यमनुविधातव्यञ्चेति।

(च० सू०)

यदि शत्रुके वचन प्रशंसनीय, यशोवर्द्धक, आयुष्य स्वास्थ्य और बुद्धिमत्ता देनेवाले हों, तो उन्हें सुनना चाहिये और सुनकर और आचरण करना चाहिये।

यद्यपि चिकित्सा-विभागके अंग्रेज अफसरोंकी धारणा थी कि भारतीय औषधोंके पुनरुद्धारके आन्दोलनमें सहयोग देनेसे उन्नतिका वेग डेढ़ सौ वर्ष पीछे पिछड़ जाता, तथापि इस प्रकारके राजनैतिक कारणोंसे हमारा उनके प्रति पृथग्भाव नहीं होगा। अब तो समय आगया है कि सर्वत्र सच्चे विज्ञानवेत्ता मिलजुलकर और जातीय या राजनैतिक भेदभावनाओंको भूलकर चिकित्साशास्त्रकी उन्नतिके निमित्त कार्य्य करें।

अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे भी भारतीय भूमिपर भारतमें बनी औषधियोंका प्राधान्य होना चाहिए। हममेंसे प्रत्येका यह प्रयत्न होना चाहिये कि येनकेनप्रकारेण हमारी आर्थिक अवस्था उन्नत होवे, और पूर्ण आशा है कि यह समय समीप है, जब वनस्पतिकी खान रत्नगर्भा भारतभूमिसे औषधियोंकी प्रचुरराशि अन्य देशोंको भेजी जायगी।

मेरी सम्मति है कि यहाँ और अन्य देशोंमें कानूनके द्वारा पेटेन्ट दवाइयोंके व्यापारको निषिद्ध कर दिया जावे। आजकल वैद्योंका उत्तरदायित्व अत्यधिक है; क्योंकि पहले तो दूसरोंको उनकी ज्ञानगरिमाका पता नहीं था और अब भारतीय औषधशास्त्रके विशालक्षेत्रमें प्रत्येक अन्वेषणके लिए उनकी सहायता अत्यन्त आवश्यक होगी। इसी महान् कार्य्यके द्वारा अतीत और नवीन स्नेहमयसूत्रमें ग्रथित होंगे।

परम प्रशंसनीय आदर्श और उद्देश्यके पोषक निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामण्डलके यत्किंचित् सेवा करनेका यह शुभअवसर प्रदान करके आप सज्जनोंने मेरा जो सम्मान किया है, एतदर्थ मैं आपको पुनः धन्यवाद देता हूँ। परिवर्त्तनशाली समय और वर्त्तमान सरकारके द्वारा भारतीय चिकित्साशास्त्रका उत्तरोत्तर मान बढ़नेके कारण हमारे महामण्डलके उत्तरदायित्वकी सीमा परमविस्तृत हो गई है। ऐसी संस्थाका आयुर्वेदाचार्य्य जिस किसी समाजमें विलास करे, उसका शिरोभूषण बनकर सुशोभित हो। हमारी भिषक् परीक्षाका यह आदर्श होना चाहिये कि देशके दूर-दूरके गाँवोंमें हमारे वैद्यकी संजीवनीशक्ति कामकरे और देशीभाषाओंके माध्यम-द्वारा यह परीक्षा लोकप्रिय बनाई जाय भारतवर्षकी समस्त भाषाओंमें हमारे महामण्डलकी देखरेखमें ऐसी पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित की जायँ, जो चरकके विचारके अनुसार "अक्लिष्टशब्द" "आशु प्रबोधक" और कुशाग्रबुद्धिसे लेकर मन्दबुद्धितकसे शिष्यकी समझमें आजायँ। वैद्यके लिये योग्यताका प्रमाण निर्दिष्ट कराना हमारे ही उत्तर-दायित्वके अन्तर्गत है।

जिन महत्त्वशाली, पूर्वजोंके कीर्तिकलापका हमको पद-पदपर परम अभिमान है, उनके उच्च आदर्शोंसे प्रेरित होकर हमसब मानवसमाजकी सेवाके निमित्त आइये, सब एक होकर कार्य्य करनेके लिए कटिबद्ध हो जायँ। नाऽर्थार्थमर्थकामार्थमत-भूतदयां प्रति—

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम्।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राऽभिलाषिणाम्॥



Brief sketch of the life of Kaviraj Pratap Sinha

Rasayanacharya Kaviraj Pratap Sinha Bhishagmani. who is the compiler of this book belongs to an old Jagirdar Brahmin family of Udaipur state, of the three sons of Rao Gumani Ram he is the middle one. He was born in the year 1892, and from his very childhood he showed signs of extraordinary intelligence great perseverance, and versatile brain. His father had great attachment for him and seeing the extraordinary mental powers of the child, sent him to Maharja's School Udaipur, from where he passed the School Final Examination in sanskrit with great credit, standing first among all the candidates who had appeared for that particular examination that year. In fact through out his school period his career was very brilleant and he was always standing first and winning merit scholarships in his class.

But this does not mean, by any means that he was a bookworm, because he had very great love for all manly sports like riding, hunting, wrestling and shooting. After finishing his school education the showed great eagerness to join Madras Ayurvedic College in order to study Ayurvedic under such an emminent person as Pt. D. Gopalcharya Vaidy Ratan Madras Ayurvedic College was the only institution (Ayurvedic) in the country in those days which was run on most modern lines and in which surgery was also taught.

Here this is interesting to mention that his father was not at all keen on his going there and therefore he refused to pay his expenses if he went. However, Pratap Sinha was a man of great determination, nothing could cow him down. So, inspite of his father's opposition he left for Madras using his Scholarship money which, he had collected most carefully all these years, as his railway fare. Though he spent quite a number of years on his studies, after that he never took a single pie from his father. During his two years stay in Madras he earned quite enough money throug tuitions and scholarships to meet his expenses there; and when he shifted from there to Calcutta he kept up the same old tradition of meeting his requirements through tuitions and scholarships.

It might be added here that his father felt much regret afterwards for having refused to comply with the noble ambitions of his son and sent him money at Madras but this proud young lad, at first absolutely refused to accept it, but later on being advised by his Prin-



श्रीमान् कविराज प्रतापसिंह रसायनाचार्य, भिषङ्मणि बनारस।
अध्यक्ष नि. भा. व. २४ वैद्यसंमेलन शिकारपुर (सिन्ध) (स. १९३४ ई.)।
अध्यापक आयुर्वेद कालेज व. हि. युनिवर्सिटी।

cipal took it but deposited it quite separately in the bank, and returned the whole amount with interest to his father when he went home from Madras. Thus we can see that he is an absolutely self-made man.

Throughout his stay in Madras he always stood first in his class and won several merit scholarships. He passed "Bhishagkat" examination there from the College and also appeared successfully at Ayurveda Visharad examination of the All India Ayurveda Vidyapith, the same year. In both these examinations he topped the list and won a gold medal. Although there was fair amount of surgery in the College Course it was not enough to satisfy him Consequently, to learn it more thoroughly he wanted to join the Medical College there. However, the European Principal there refused to admit him. and at a protest this independent spirited youth left Madras and went to Calcutta, where he spent another five years in completing his education. Here, he passed Bhishagmani examination with his traditional merit of standing first and, in accordance, with the advice of his Guru Mahamahopadhyaya Kaviraj Gananath Sen, Saraswati M. A., L. M S. he joined the College of Physicians and Surgeons Bengal. Studying for full two years. Anatomy, Physiology, Pathology and Materia Medica. In order to get comparative knowledge of both the systems he worked with the Mahamahopadhyaya as well, during this period.

Thus he began his professional carrer, in 1914, as a fully equipped Vaidya and there is no wonder that he rose to prominence very soon.

He was a young man of hardly 23 years when he concluded his studies and yet because of his brilliant career he was at once offered a very handsome job at Rishikesh by the Baba Kali Kamliwala and a sum as big as Rs. 50, 000 was put at his disposal to start a pharmacy and organise a College. This was done with exemplary success. Here besides managing the pharmacy and hospital he was preparing students for Ayurvedacharya examination.

After being there for 5½ years, in 1920, his services were requisitioned by Raja Lalita Prasad of Pilibhit, to manage his College (Lalit Hari Ayurvedic and Sanskrit College, Pilibhit) and start a Pharmacy. There also unqualified success was in store for him in the College, as well as, in the sales department. The pharmacy here began to yield so much profit that the Raja Saheb was pleased to offer him 25% of the net profit. While on the College side he was rugularly preparing students for Ayurvedacharya and Vaidyaraj examinations.

He worked there for nearly 6½ years. Then at the express desire of Pandit Madan Mohan Malviya his services were transfered to the Benares Hindu University where he has been serving since 1925. Here he has been working in the capacity of the superintendent of Ayurvedic Pharmacy; Superintedent of Ayurvedic Gardens; Phvsician-in-charge of the outdoor and in-door dispensary of Sir Sundar Lal Hospital and a professor of Pharmacy.

The Pharmacy which was reorganised by him with the generous donation of Rs 1000 from Shrimati Bhagwan Devi, sister of Seth Jugulkishore Birla prospered so much under his guidance and supervision that it has yielded nearly Rs two lacs in cash and stock upto this time and has grown into quite a big concern.

But this is that all. His Services in the cause of Ayurveda are multifarious. While at Pilibhit, he was made a nominated member of the Government on the Committee appointed to invertigate and report on the indigenous system of medicines.

He has been a nominated member of the Board of Indian Medicines U. P., since its inception, in 1927. He is on the Advisary Committee of the Government Ayurvedic College. Patna since its start. Also he is a member of Faculty of Medicine and Surgery (in Ayurveda) and Faculty of Oriental Learning of the Benares Hindu University.

Other local institutions also have not failed to make a claim on his precious time. He is on the managing Committees of Sri Lakchmi Narain Marwari Hospital and Jagdamba Ayurveda Maha Vidyalaya Mangla Prasad T. B. Sanatorium, Sarnath, an institution started by the late Raja Sir Moti Chand in the memory of his deceased brother is also in his charge and he is an honorary physician there.

He has been sending botanical and mineral exhibits to nearly all the All India Ayurvedic exhibitions since 1918 and has won several medals and certificates of merit. Because of this, he is considered an authority on plants and minerals, in Ayurvedic world.

A research in medicinal minerals also has been a great hobby with him and he spends most of his leisure time in studying the properties of various important minerals. He has published as many as ten papers and theses so far dealing with his researches. Besides he has written one very important technical book "खनिज विज्ञान" on the subject. It deals particularly with the qualities and properties of Mercury (पारद). This book has been so much appreciated by the people working in that particular time that there has been a great demand for its second part as well, which is also being expected to come out, shortly.

All this important work of his was so much valued by the public that in 1929, he was graced with the presidentship of the All India Rasayan Sambhasha Parishad, held at Karachi. In the early part of the same year he was also honoured with the title of "Rasayanacharya", by the All India Pandit Parishad, held at Benares.

But this is not the only book written by him. There are four others. Some of which are of great technical importance like "प्रसूति परिचर्य्या" and "जच्चा", while others are of much public utility like "आरोग्य सूत्रावली" and "विष विज्ञान".

Again he is connected practically with all the important Ayurvedic institutions of the country. They all consult him from time to time about their courses of studies and other important points and matters concerning Ayurveda.

He is an examiner of the highest degree examinations of the following institutions:—Ayurvedic College, Benares Hindu University Ayurvedic College, Patna; D. A. V. Ayurvedic College, Lahore; Sanatan Dharma Ayurvedic College, Lahore : Tibbi, Unani, and Ayurvedic College Delhi, Lalit Hari Sanskrit and Ayurvedic College Pilibhit; Banwari Lal Mahavidyalaya, Delhi; Rishikul Ayurvedic College Hardwar, All India Ayurvedic Vidyapith, Poona ; C. P. Ayurveda Vidyapith Nagpur and Hindi Vishwavidyalaya, Allahabad.

All these services of his were duly recognised by the Ayurveda world and in 1934, he was elected a president of the All India Ayurvedic Conference held at Shikarpur, Sindh ; and he is a president of the All India Ayurveda Mahamandal ever since; excepting one or two honourable instances, he is perhaps the youngest aspirer who has achieved that coveted honour.

So far, we have only touched upon his activities in the sphere of Ayurveda, but now we must divert a little and have a few words about his personal character and his professional achievements as without these two his life sketch can not be complete.

It will suffice to say that wherever he has been he has proved a very popular and successful private practitioner. People from far and near have flocked to him for advice and treatment. Several Rajas and Maharajas also have come under his treatment and have benefitted greatly.

As many as, 60 to 70 thonsand people are treated in his outdoor department, of Sir Sundar Lal Hospital, every year. A large majority of people who cannot come to him personally for treatment receive the benefit of his advice by post in attending to which he is very prompt. His success in thysis and heart cases is particularly note worthy.

Rich and poor, all, equally get the advantage of his professional advice because he sees patients irrespective of any fees. If they can affor to pay well and good and if they cannot it does not matter in the least. He always says that he does not work for money but he works to vindicate the honour of Ayurveda which is most dear to his heart.

In his private life he is a man of very high ambitions but of very simple and clean habits. His motive is "plain living and high thinking." There is nothing beating about the bush in him ; he always pufers frankness and straightforwardness of character in a person. His love for his duty is proverbial. He is ready to sacrifice any thing, his comfort , his pleasure, his money for the sake of his duty. In preformance of his duty no detail is too small for him. He is also a very hard working person. He works from 14 to 16 hours a day and his subordinates often wonder how he can turn out so much work and how he can work such long hours. Though he is considered a very proud person, he is humblest of the humble if need be. He is always ready to admit his mistakes of commissions and omissions and is ready to correct them. Tenderness of heart is something absolutely quite unimaginable in him. Any sad incident or any pathetic story brings profuse tears in his eyes.

He has married thrice. His third wife belongs to a highly respectable, very advanced and exceedingly cultured family of the Punjab, and she herself also is very highly educated. This last marriage was contracted in 1931.

So here is a story of a man who has risen to prominence by his own efforts and ability. His example must be a guiding star for many a young man.



२४

ॐ नमो ब्रह्म-प्रजापति-बलभिद्-धन्वन्तरि-सुश्रुत-प्रभृतिभ्यः ।

निखिलभारतीय चतुर्विंशतितम वैद्यसम्मेलनाधिवेशनसभापतेः

कविराज श्री प्रतापसिंह रसायनाचार्य महोदयस्य

अभिभाषणम् ।

निःस्वार्थं जनतोपकारकरणे, दत्तैकचित्ताः सदा
प्राणाचार्यवराः पुरा समभवन् ये वह्निवेशादयः ।
कालेऽस्मिन्नपि सन्ति ये बहुगुणा वैद्याः क्वचित्तादृशा
वन्द्यास्तान्नियतं नुमो न खलु तान् स्वार्थैकसंसाधकान् ॥

वन्द्य वैद्यवृन्द, स्वागताध्यक्षमहोदय, समागत-सभ्यवर्ग, आर्य महिलागण, सज्जनाश्च !

विदितमेव विदितवेदितव्यानां श्रीमतां विविध-विषय-विमर्शनपटूनां यदयमेवास्माकमार्यावर्तः संसारस्य विद्यागुरुरासीत् । अनेनैव जगद्गुरु-समुत्पादन-सौभाग्यमवाप्तमासीत् । प्राचीन-सभ्यतायाः संस्कृतेश्च प्रधानं केन्द्रं भारतं वर्षमेव चिकित्साशास्त्रोद्गमस्थानमपि । विविध-ज्ञान-विज्ञान-निधयः प्राचीनतमा वेदा एव सन्ति । अन्यैश्च प्रत्यन्तपण्डितैरियमेव चिकित्सापद्धतिस्तत्तद्देशकालानुरूपं तत्र तत्र देशेषु जनरक्षार्थं प्रचारितेति न तिरोहितमितिहासविदां विदाम् । भारतीय-गौरवगानेनैव नास्माकं काप्युपकृतिः सेत्स्यति । 'सर्वो हि लोको बुद्धिमतामाचार्यः, शत्रुश्चाबुद्धिमताम्'इत्याचार्यचरकोपदेशमनुसरद्भिरस्माभिरिदानीं कर्मक्षेत्रे समवतीर्य भारतीयायुर्विज्ञाने सर्वासामेव चिकित्सासरणीनां समन्वयः सम्पादनीयः । निखिलेऽपि भूमण्डले भारतीय-चिकित्सासरण्या जनतोपयोगित्व-सम्पादनाय तत्प्रचाराय च ग्रामं ग्रामं प्रचारो विधेयः ।

वयं भरतीयाः, भारतमस्माकं देशः । भारतवासिनां स्वास्थ्यरक्षार्थं तदुपायचिन्तनं प्रयतनञ्च प्रधानतनं जीवनलक्ष्यमस्ताकमिदानीं वर्तते । स्वस्थातुर-परायणस्य आयुर्वेदस्यैकदेश आतुर-सेवारूपस्तु साम्प्रतं स्वार्थसाधनाय व्यवसायरूपेण संसाध्यतेऽस्माभिः, परं जनतायाः स्वास्थ्य-सम्पादनविषये वयं भृशमुदासीनाः स्मः । भारतीयजनतायाः स्वास्थ्यमपि साम्प्रतं वैदेशिक-चिकित्सा-स्वास्थ्य-संरक्षण-नियमानुसारम-

प्राकृतमिव प्रतिभाति । अस्माकमेव कार्यं यद् वयं जनतायां स्वीयां चिकित्सापद्धतिं स्वीयाँश्च स्वास्थ्यसम्बन्धिनो नियमान् प्रचारयामः । अस्माभिः प्रतिप्रान्तम्, प्रतिजनपदम्, प्रतिनगरम्, प्रतिग्रामम्, प्रतिपल्लि, प्रतिव्यक्ति सर्वत्रैव स्वास्थ्यनियमाः, स्वीया चिकित्सासरणिश्च महता समारम्भेण प्रचारणीया । विश्वासयितव्या चास्माभिर्भारतीया जनता प्राकृतिकचिकित्सायामस्याम् । प्रतिविद्यालयम्, प्रतिमहाविद्यालयम् भ्रामं भ्रामं स्वीयाः स्वास्थ्यसम्बन्धिन उपदेशा उपदेष्टव्याः । पत्रिका-पुस्तक-चित्र-समाचरपत्रादिभिर्विविधैरुपकरणैर्जनतयां जनपदविध्वंसनीय-कारणानि प्रतिबोधनीयानि, तेषामुपायाश्च प्रत्यक्षं प्रदर्शनीयाः, येन जनसमाजे समादरः, आकर्षणम्, लाभश्च भवेत् । स्वोद्योगेन, विज्ञानेन, गवेषणाभिः सेवाप्रावीण्येन चास्माभिर्जनता तथा विश्वासयितव्या, येनाऽस्माकं साफल्यं समुन्नतिश्च सुतरां सम्भाव्येत ।

एतत्तु निःसंशयमेव यद् भारतीयानां कृते भारतीयचिकित्सासरणिः सर्वथा समुपयुक्ता भवेदिति । शीतप्रधानदेशीयानां वैदेशिकानामाहारविहार-सरणिः सर्वथाऽनुपयुक्तैव ।

भारतीया वेदा एव सकलविद्यानामायतनभूताः प्राचीनतमाः सन्ति । तत एव भारतीयस्यायुर्विज्ञानशास्त्रस्यापि जनिः समजनीति नात्र कस्यापि वैमत्यम् । इत एवायुर्वेदागमं विदित्वा विविधैर्विद्वद्भिरन्यान्येषु देशेषु जनताया महानुपकारः कृत आसीत् । परं प्राचीन-गौरवस्मरणमात्रेण गुण-गानेन वा नास्माकं कोऽप्युपकारः सेत्स्यति दासत्व-निगड-निबद्धानाम् । अस्माभिस्तु—

'सर्वो हि लोको बुद्धिमतामाचार्यः, शत्रुश्चाबुद्धिमताम् ।'

इत्याचार्याग्निवेशोपदेशं संगमयद्भिरस्माभिः कर्मभूमाववतीर्य दिग्दिगन्तेषु जनतोपकारिण्या आयुर्वेदविद्यायाः सर्वोपयोगित्वसम्पादनाय कठोरव्रतधारणं विधेयम् ।

अस्माकं दयनीयां दुरवस्थितिं दर्शं दर्शं राजसाहाय्य-सम्पन्ना वैदेशिक-चिकित्सा-पद्धतिपतिताश्चिकित्सका अङ्गुलिनिर्देशं कुर्वन्तीति नितरां खेदजनकमेतत् । विगतेष्वेव दिवसेषु संयुक्त-शासन-विधान-महासभा-समितौ स्वीयं मन्तव्यं प्रकाशयद्भिः कैश्चन भूतपूर्वाङ्गलचिकित्सकैरभिहितं यद् भारतीयचिकित्सा-समुन्नतौ धनव्ययो हि दुरुपयोग एव धनस्य । एवं तेऽस्माकं भारतीयां चिकित्सापद्धतिं समूलमुन्मूलयितुं बद्धपरिकराः सन्ति । परं वयं त्रपुजतुभ्यां कर्णौ पूरयित्वा सुखं स्वपाम इति महल्लज्जास्पदमस्माकम् । अस्माकं समुन्नतौ तेषां चिकित्सा-व्यवसायः शैथिल्यं भजेदिति ते सर्वदा बिभ्यति । अस्माकमुन्नत्यभिलाप एव तेषां भयकारणम् । तेषां भीतिरेवास्माकं भारतीयचिकित्सापद्धतिसमुन्नतेर्लक्षणम् । सुप्रसिद्धो देशभक्तः श्रीमान् डा० अन्सारीमहोदयोऽस्माकं धन्यवादपात्रम् । तेन साम्प्रतमेव मोहमयीस्थ-मेडिकल-कान्फ्रेसनाम्नि पाश्चात्यवैद्यसम्मेलने स्वीये सभापतिभाषणे यत्स्वदेशीयचिकित्सा-प्रेम प्रदर्शितम्, तत्सभाज-

नीयं विद्यते। नायं स्वार्थ-साधन-समयः। साम्प्रतं तु देशहितायैव यद्भवेत् तत्सर्वेषां कर्तव्यम्, अन्यथा पाश्चात्ताप एव हस्ते पतिष्यति।

स्व-व्यवसायस्य परा समुन्नतिः सम्पादनीया। अस्माभिः स्वीयबौद्धधर्मावलम्बिनः पार्श्ववर्त्तिनो जयपण्यस्य (जापानं) शिक्षा ग्रहीतव्या येन स्वदेशे विदेशीय-व्यवसाय-स्यावकाश एव न भवेत्। दैनिकव्यवहार्य-द्रव्याणां सुलभ-सुन्दरसुदृढ़-समुपयुक्तता-सम्पादनाय सफल-प्रयत्नविधानमेव देशोन्नतौ प्रधानं कारणम्।

आयुर्वेदस्याष्टाङ्गानां पूर्तौ सततं प्रयत्नो विधेयः। प्राचीनार्यसरणिमनुसृत्य "परीक्षकैर्बहुभिः परीक्षितमाप्तवाक्यम्" इति सिद्धान्तमादर्शीकृत्य चिकित्सासूत्राणां पुनः परीक्षणं विधाय संसारस्य चिकित्सा-व्यवसाये प्रमुखस्थानग्रहणाय च भगीरथ-प्रयत्नो विधेयः।

चिकित्सा-प्रणाली न कस्याप्येकस्यैव देशस्य स्वतन्त्रा विद्यते। तस्यास्तु प्राणि-मात्रेण सम्बन्धः। अमुमेव व्यापकभावं लक्ष्यीकृत्य आयुर्वेदागमाचार्यैरायुरक्षणोपाय-सम्बन्धिन्यां विद्यायामेवायुर्वेदशब्दस्य शक्तिरभिहिता विद्यते। यतो यत आतुरसंरक्षणाय चिकित्साज्ञानं लभ्येत ततस्ततः संग्रहणमप्यस्माकमेकान्तलक्ष्यं भवेत्। महर्षिप्रवरस्याग्नि-वेशस्य निम्नोक्तवाक्यानि चिकित्सकानां प्रातः स्मरणीयानि सन्ति—

स एव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्, तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।
नात्मार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति, वर्तते यश्चिकित्सायां स सर्वमतिवर्तते।
कुर्वते ये तु वृत्त्यर्थं चिकित्सा-पण्य विक्रयम्, हित्वा ते काञ्चनं राशिं पांशुराशिमुपासते।

अमूल्यमिममुपदेशं ध्यायं ध्यायं यदि वयं स्व-व्यवसाय-समुन्नतौ प्रवर्त्तामहे, तदा का नाम शक्तिरस्मान् कर्तव्यपथात्प्रच्यावयितुं प्रभवेदिति न प्रतीमः। भगवतश्चरकस्य पद्यमिदं मया स्वप्रसादशिखराग्रे समुट्टङ्कितमस्ति—

विद्या वितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परता क्रिया, यस्यैते षड्गुणास्तस्य नासाध्यमतिवर्तते।

यद्युक्तपद्योक्ता गुणा अस्मासु भवेयुस्तदा किं खल्वसाध्यमतिवर्तेत? अस्माभिरवश्य-मेव विमर्शनीयं यद् वयं दीनाः, हीनाः, पराधीनाश्च, राजसाहाय्यं नाममात्रमेव, देशस्य धनपतयोऽपि विदेशीय-चिकित्सा-समुन्नतौ स्वीयं धनव्ययं विदधते, अस्माकं हृदयेषु सङ्कीर्णतायाः साम्राज्यं वर्वर्ति, देश-दशा प्रतिक्षणं क्षीयत एव, देशस्य कला-कौशलं शिक्षा-दीक्षा-विधानं विदेशीय-सत्ताधीनमेवास्ते। हन्त! पदे पदे समुन्नतिपथं कण्टका-कीर्णमेवावतिष्ठते। एवं सर्वथा प्रतिकूलायामपि परिस्थितौ स्थाणुभूताः किं कर्तव्य-विमूढा एव स्थास्यामस्तदा कृतमस्माकं जीवनेन। प्राचीनकवीनामादेशं हृदि निधाय दारिद्र्यं दूरीकर्तुं प्राणपणेनापि प्रयतनीयमस्माभिः।

यथा—

अभिमान-धनस्य गत्वरैरसुभिः स्थास्नु यशश्चिचीषतः।
अचिरांशुविलास-चञ्चला ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम्॥

यशोऽधिगन्तुं सुखलिप्सया वा मनुष्य-संख्यामतिवर्तितुं वा ।
समुत्सुकानामभियोगभाजां समुत्सुकेवाङ्कमुपैति लक्ष्मीः ॥
उत्साहसम्पन्नमदीर्घ-सूत्रं, क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम् ।
शूरं दृढज्ञं कृतसौहृदञ्च, लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः ॥

मा विधत्तधनचिन्ताम् ! स्वकीय-ध्येय-सिद्धौ दृढप्रतिज्ञाः, यथालाभसन्तुष्टा आयुर्वेदाभिवृद्धौ संसृजध्वम् स्मरत च महर्षेर्वशिष्टस्य स्वर्णाक्षरलेख्यं वचनम्—

यो यमर्थं प्रार्थयते यमर्थं यतते च यः ।
सोऽवश्यं तमवाप्नोति न चेच्छ्रान्तो निवर्तते ॥

जगति तदेव मानवजीवनं सफलं यद् विज्ञान-शौर्य-विभवादिगुणैः प्रथितं भवेत् । प्राणपरिपोषणन्तु प्राणिमात्रेण विधीयत एव ।

उक्तञ्च केनापि—

यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यैर्विज्ञान-शौर्य-विभवार्य-गुणैरुपेतम् ।
तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति सन्तः काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते ॥

व्यष्टिसमुन्नतावेव समष्टिसमुन्नतिर्भवति । अस्माभिरपि विशिष्टनैपुणीनिर्माणाय सततामिनिवेशो विधेयः प्रतिरोगं तच्चिकित्सा नैपुण्याधिगमाय वैशिष्ट्यमधिगन्तव्यम् । एको मस्तिष्करोग-गवेषणायां प्रयतश्चेदपरेण कर्ण-नेत्रादिशालाक्यतन्त्रे वैशिष्ट्यमापादनीयम्, इतरेण च षडङ्गशारीरस्य गहनतत्वान्वेषणाय जीवनं यापनीयम् । तदा द्रष्टव्यं यदनुमानान्धकारः प्रत्यक्ष-प्रकाशे कथं निलीयत इति । प्रत्यक्ष-प्रामाणाभावादेव सम्प्रतिके वैद्यसमाजे महान् मतभेदः, भूयाँश्च कोलाहलो बोभूयते । वयं साहित्य-ग्रन्थानिवायुर्वेदग्रन्थानधीमहे, येनास्माकं ज्ञानमेकपक्षीयमपूर्णमेवावतिष्ठते, एवं विशिष्टाध्यवसायसापेक्षा शल्य-शालाक्य-पञ्चकर्म-चिकित्सापद्धतिः सर्वथा विलुप्त-प्रसरा वैदेशिकानां हस्तपतिता नितान्ततान्तमातनोति स्वान्तम् । प्राचीनानां शिक्षापद्धतिरुभयनिष्ठासीत् ।

यथाः—

प्रत्यक्षतो हि यद् दृष्टं शास्त्रदृष्टञ्च यद्भवेत्, समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्द्धनम् ।

अन्यच्च—

अध्यापयन्ति यदि दर्शयितुं क्षमन्तेसूतेन्द्रकर्मगुरवो गुरवस्त एव ।
शिष्यास्त एव रचयन्ति पुरो गुरूणांशेषास्तथा तदुभयाभिनयं भजन्ते ॥

चतुर्विंशतिवर्षादारभ्य निखिल-भारतीयायुर्वेदमहामण्डलं यथाशक्ति आयुर्वेदसमुद्धाराय प्रयतते । विद्यापीठद्वारा सर्वसम्मतं परीक्षा-प्रबन्धं विधाय प्रतिवर्षं शतशश्छात्रेभ्यश्शिक्षाप्रदानस्यायोजनं विदधाति, परं धनाभावात् केन्द्रीयं महाविद्यालयं स्थापयितुं न प्रभवति । विविध-सम्भारपूर्ण-महाविद्यालयं विना क्रियात्मक-शिक्षा न सम्भवेदिति निश्चितमेव । इमामावश्यकतां सर्व एव अध्यापकाः प्रत्यहमनुभवन्ति ।

अस्माभिः सर्वैरपि वैद्यैः सम्भूयादर्शमहाविद्यालयसंस्थापने सर्वाः शक्तीर्विनियोजनीयाः, तत एवास्माकं मनोरथः संसिद्ध्येत। वयमनायासेनैवौषधीनां संग्रहालयं स्थापयितुं प्रभवामः। नवीनमातुरालयं संस्थाप्य पञ्चकर्मणामनुभवं प्राप्तुं प्रभवामः। एवमायुर्वेदीय-विविध-विषयाणामनुसन्धानं कर्तुं च पारयामः। एवमेव प्रसूतितन्त्र-कौमारभृत्य-रसायन-वाजीकरण-प्रभृतिविषयेषु वैशिष्ट्य-सम्पादनाय गवेषणालयस्थापन-प्रबन्धो विधेयः। मम मते तु नास्त्यत्र प्रचुरधनावश्यकता। उच्चपरीक्षोत्तीर्णच्छात्रेभ्यो भोजनयोग्यवृत्तिदानद्वारैव गवेषणकार्यं प्रचलितुं शक्यते। योग्यानामुत्साहिनां युवकानामत्रविषये नियोगो विधेयः। सम्मेलन-पत्रिकाद्वारा गवेषणानां प्रचारो विधेयः। एवमेव कुटीप्रावेशिक-जेन्ताक स्वेदादिविधिसम्पादनाय गृहनिर्माणं विधायानुभवो विधेयः। विशिष्टरोगाणां विशिष्ट-परिज्ञानाय वैशिष्ट्यं सम्पादनीयम्। तस्य विशिष्ट-शिक्षाप्रचारोपायाश्च चिन्तनीयाः। राजकीयानां साधारणानाञ्च महाविद्यालयानां पाठ्यक्रमे सामञ्जस्यं विधेयम्। उपाधि-प्रमाणपत्र-पदकपुरस्कारादिष्वपि सर्वत्र साम्यमेव स्यात्। समासतः सर्वत्रैव भारतीया चिकित्सा-पद्धतिः समानैव कर्तव्या। आयुर्वेदीय-शिक्षा-सामञ्जस्याय, एतद्व्यवसायस्य च नियमनाय राजकीय-विधानद्वारा नियन्त्रणं विधेयम्। यावद्राजकीयं नियन्त्रणं न भविष्यति तावदराजकत्वमेव स्यादायुर्वेद-संसारे। यावद्राजनियमो न भवति तावन्महामण्डलेनैव नियन्त्रणकार्यं विधेयम्।

जगदीश्वरानुकम्पया, नवीनशासन-प्रणाल्याः प्रभावेण च युक्तप्रान्त—विहार-मद्र-प्रभृतिप्रान्तेषु तत्प्रान्तीयशासनसभाभिस्तत्रायुर्वेदशिक्षाप्रबन्धो विहितः। युक्तप्रान्तीयाः शासका आयुर्वेदशिक्षणाय, आतुरालयप्रबन्धाय च लक्षार्धं प्रतिवर्षं हिन्दूविश्वविद्यालयीयायुर्वेदमहाविद्यालयाय ददति। एतावदेव च विश्वविद्यालयेन स्वीयं व्ययीक्रियते। एवमेकलक्षं प्रतिवर्षं व्ययीभवति हिन्दूविश्वविद्यालये। समस्तेऽपि भारते अयमेव विद्यालयो विश्वविद्यालयीयो विद्यते। इयमेवैका संस्था, या केन्द्रत्वेन प्रतिग्रहीतुं शक्या। अनेनैवास्माकं मनोरथाः साफल्यं लप्स्यन्ते। हिन्दूविश्वविद्यालयसञ्चालकानां भारतगौरवानां पूज्यपादानां महामान्य श्रीमदनमोहनमालवीयानामायुर्वेदशास्त्रे वर्तते प्रगाढं प्रेम। एतेषामाश्रयेण विद्यालयः समुन्नतिपथमधिरूढो विद्योततेतराम्। अष्टाङ्गायुर्वेदीयं सर्वमप्युपकरणजातमत्र बीजरूपेणावतिष्ठते। भारतीया धनिनो धनिनश्च वैद्याः, विभिन्नविषयाध्यापकनियुक्त्या, विविधछात्रवृत्तिप्रदानेन वा समेधयेयुश्चेदेनं तदा सर्वाङ्गपूर्णमिदं महान्तमुद्धारं साधयेदायुर्वेदस्य। अत्रायुर्वेदीय विविधानुसन्धान-सम्पादनाय गवेषणा-समितिरपि भवेदत्रान्तेवासिनो भविष्यति जीवनसंग्रामे सुस्थिरा योद्धारः सम्पद्येरन्। प्रतिप्रान्तञ्च प्रान्तीयशासनपरिषद्द्वारेण राजकीयायुर्वैदिकसङ्घसंस्थापनान्दोलनं विधेयम्। युक्तप्रान्तीय शासनपरिषदाऽस्य समुचितः प्रबन्धो विधीयते। युक्तप्रान्तीयाः शासकाः प्रतिवर्षं सार्धलक्षमुद्राः १,५०,००० व्ययीकुर्वन्ति केवलमायुर्वेदशिक्षा-प्रचाराय। सङ्घसभापतय अस्मिन् विषये समुत्साहवन्त उद्योगिनश्च

विद्यन्ते । तेषामेव प्रयत्नेन वैद्यानां राजेष्टितिनियमोऽपि निर्मितः । प्रान्तस्य सहस्रशोवैद्याः साम्प्रतं राजेष्टिताः सन्ति, क्रियन्ते च । तत्तन्मण्डल-प्रबन्ध-समितिषु (जिला बोर्ड), प्रान्तीयशासनपरिषत्सु (कौंसिल) च वैद्यप्रतिनिधयो गच्छेयुस्तत्र च खलु रक्षार्थे महदान्दोलनं विदध्युः ।

देशपरिस्थितिः क्रमशः क्षीण-क्षीणा, दीन-दीना च विद्यते । भारतीय-दरिद्र-जनतायां वैदेशिक-प्रभावेण सह तेषामेवापातरमणीया चिकित्साचमत्कृतिरपि प्रभुत्वं भजते । पवित्रतमानां निसर्गरमणीयानां स्वदेशीयौषधीनामलाभेन विदेशीयौषधसेवनं प्रत्यहं परिवर्धत एव । अस्माकमपरिमितं धनं विदेशीयौषधप्रचारे लगति । भारतीया विपण्यः किर्मीरैरौषधिभाण्डैः सुसज्जिता दृश्यन्ते । भारतीया एवौषध-विक्रेतारः सुलभमूल्येन ता एव प्रतिपल्लि, प्रतिगल्लि प्रचारयन्तः प्रत्यक्षीक्रियन्तेऽस्माभिः । स्वल्पतमैर्देशोद्धारकैः प्रेरिता अपि शिक्षिता भारतीया वहिः स्वदेशीयरूपं प्रदर्शयन्तोऽपि मनसा पाश्चात्य–सभ्यताम्, संस्कृतिम्, चिकित्साञ्च प्रोत्साहयन्तः पाश्चात्य–प्रभावाभिभूता एव ,सन्ति । एतादृशे महति व्यतिकरे विविधसङ्कटापन्ना भारतीया वैद्यवर्याः कर्णेषु तैलं निक्षिप्य शेरतेतराम् । हन्त !

अयि वैद्य-प्रवराः ! 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' साम्प्रतं सम्भूय भारते विपुल-विपुला औषध-निर्माण-शाला स्थापनीया । प्रतिप्रान्तं चेद् वैद्याः स्वल्पस्वल्पेनैव द्रव्यभागेनैकां निर्माणशालां स्थापयेयुस्तदा शोभनतरं सुसंग्रन्थितं कार्यं भवेत् । एतस्मिन् विषये भारतीया वैज्ञानिकप्रवराः श्रीप्रफुल्लचन्द्रराय (सर् पी० सी० राय) महोदया अस्माकमादर्शभूताः सन्ति । यैर्वङ्गप्रान्ते 'बंगाल केमिकल एण्ड फर्मास्युटिकल वर्क्स' नाम्नीं निर्माणसंस्थां संस्थाप्य वैदेशिकौषधिप्रतियोगितायां महत्कार्यमनुष्ठीयते, समुपार्ज्यते च द्रव्याणां कोटीः । चिकित्साव्यवसायैर्भूयान् लाभः कर्तुं शक्यते । एतदपि महदाश्चर्यं यदस्माकं सस्यश्यामलायां भारतावनौ समुत्पन्नानि विविधानि द्रव्याणि संगृह्यन्ते, विदेशेभ्यश्च संस्कृतानि तानि भूयोऽत्रैव स्वल्पमूल्येन भारतीयानां शिरसि पतितानि वैदेशिकान् धनिकान् कुर्वते । वयञ्च तानेव व्यवहरन्तः प्रचुरतरं द्रव्यं विदेशेषु निक्षिपामः । भूयस्यो वनस्पतयो भारत एव प्रादुर्भवन्ति, वयं न ताः परिचिनुमः, न च तासां गुणान् जानीमः, परं विदेशीयौषधद्वारा प्रत्यहं तेषामुपयोगं कुर्मः । तेषु केचन नामतो निर्दिश्यन्ते । बहूनां तु भारतीयनामान्यपि नोपलभ्यन्ते । यथा—डिजिटेलिस, बेलाडोना, किरमानी अजवायन, आरटीमिजिया मैरिटीमा, कालचीकम् (सुरंजानतलक), ईफ्रेडावलगेरिया (श्वासौषधिः), जैन्शियन, जूनियर आयल, रैन्वालफिया, सरपैन्टीना (सर्पगन्धा), ऐन्ड्रोमा आगोटा [उलट कमल], सिनकोना, सिलाइण्डिका (वन-पलाण्डु) विन्टर ग्रीन-प्रभृतयः । एतासां भारतीयानां वनौषधीनां भारतीयनामानि, उपयोगश्चापि न लभ्यते ।

अस्माभिश्चिकित्सोपयोगिनां विविधद्रव्याणां संशोधनमन्वेषणपरीक्षणञ्च विधाय

भारतीयनिघण्टौ समावेशो विधेयः। ओषध्यो हि नाम वैद्यानां रोगनाशकाः शरा इव वर्तन्ते। यावन्तः शरा अस्माकं तूणीरे भविष्यन्ति, तावन्त एव विजयिनो भविष्यामश्चिकित्सा-संग्रामे।

रसागमो हि खलु अस्माकं गौरवस्याप्रधानं साधनम्। अस्योन्नतावपि विशिष्टसाधनानामावश्यकता वरीवर्तते। एतदर्थं धातूनामुपधातूनामन्वेषणम्, तत्प्रभावपरिज्ञानम्, उपयोग इतीदं सर्वमनुसन्धेयमेवास्ति। प्राचीनै रसतन्त्राचार्यैः पारदस्यानेके संस्काराः समुल्लिखिताः सन्ति, येषां रासायनिक-परिवर्तन-परिज्ञानायाधुनिकं रसायनशास्त्रमपर्याप्तमेव। भस्मनिर्माण-नैपुण्यन्त्वेतादृशं विद्यते, येन वज्रादपि कठोराणि खनिजानि रोगनाशकानि, प्राण-सञ्चारकाणि जायन्ते। स्वर्ण-ताम्र-वैक्रान्तादि-प्रयोगेषु रसचिकित्सका यावत्साफल्यं लभन्ते, न तावदन्यासु चिकित्सासु कुत्रापि पश्यामः। वैदेशिका अपि राजयक्ष्मणि मुक्ता-स्वर्ण-प्रयोगं कुर्वन्ति, परं मृगाङ्कमुक्तापञ्चामृतादिनिर्माणे नाद्यापि साफल्यं प्राप्तैः। आर्य-चिकित्सकाः सहस्रवर्षेभ्यः क्षयकारणानि विज्ञाय स्वर्ण-मुक्ता-शङ्ख-वराटादीनां शतशः प्रयोगान् व्यवहृतवन्तः, व्यवहरन्ति च। शरीर-दार्ढ्याय, पुनर्यौवनाय, दीर्घजीवनाय च रसायनप्रयोगा यथाऽस्माकं रसग्रन्थेषु वर्णिताः सन्ति, न तथा कुत्रापि स्वप्नेऽपि समालोक्यन्ते। साम्प्रतं प्रयोगानामेतेषां वैज्ञानिकरीत्याऽध्ययनं विधाय क्रमशः संसारस्य सम्मुखमुपस्थापनमत्यावश्यकं वर्तते।

विंशोऽयं शतकः प्रयोग-कालः। प्रत्येकस्य द्रव्यस्य सहस्रशः प्रयोगान् विधाय तस्य क्रमबद्ध-परिणाम-प्रकाशनेनैव विज्ञानवदिनां सम्मतिः समुपलभ्येत। ये प्रयोगाः प्रत्यक्षं न सिद्ध्यन्ति, ते हेयाः। यथा पिनाक-नाग-मण्डूर-जातीयाभ्रकेष्वेव विचारणीयम्। अस्माभिरभ्रकस्य बह्वो भेदाःसमालोकिताः, परमेतज्जातीयं खनिजं न कुत्राप्यवलोकितम्। एवमेव कान्तलौहविषयेऽपि विद्यते।

यथा:—

पात्रे यस्य प्रसरति जले तैलबिन्दुर्न लिप्तं गन्धं हिंगु त्यजति च तथा तिक्ततां निम्बकल्कः।
पाके दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमौ कान्तं लौहं तदिदमुदितं लक्षणोक्तं च नान्यत् ॥

रसरत्न-समुच्चयोक्त-पद्यानुसारि-कान्तलौहं प्रचुरतरप्रयत्नेनापि भूमण्डले नासादितं मया। यद्यपि सर्वतोमुखमेकमुत्तमजातीयं खनिजं लब्धम्, परं न तत्रांशतोऽपि पद्यमिदं संघटते। अस्यामवस्थायां किं विधेयमिति भवन्त एव विमृशन्तु। वैक्रान्त-चपलाञ्जन-तीक्ष्णलौहभेदानां विषये विचारः परमावश्यक एव। मया "आयुर्वेदीय-खनिजविज्ञान" नाम्नि स्वनिर्मितपुस्तके स्वीयाविचाराः प्रकटीकृताः सन्तिः। तस्य रस-गन्धात्मकः प्रथमो भागोऽपि प्रकाशितः। इदानीं सम्मेलने सम्मिलितानां वैद्यानां पुरः प्रार्थयामि यत्ते गहन-जटिलानेतादृशान् विषयान् परीक्ष्य निर्णयाय बद्धपरिकरा भवन्तु, येनास्माकं प्रत्यक्षशास्त्रे संशयलेशोऽपि न प्रतीयेत, नच कश्चिदङ्गुलिं प्रदर्शयितुं प्रभवेत्।

मया द्रुतिप्रभृतय अनेके विषयाः साम्प्रतं परित्यक्ताः। रसायन-संभाषा-समये किमपि स्वाध्याय-संकटं प्रकटयामि। इदानीं यावन्मया यदनुसन्धानककार्यं कृतं तत्सङ्ग्रहः प्रदर्शनालये स्थापितः। यद्यपि रसोपरसानाम्, धातूनामधातूनाम्, रत्नोपरत्नानाञ्च यथा भारतीयचिकित्सापद्धतावुपयोगोऽस्ति, न तथान्यत्र। परं नैतावतैव सन्तोष्टव्यम्। अद्यत्वे यान्यन्यान्यपि खनिजानि समुपलब्धानि तेषामपि व्यावहारविशेषेणानुभवो विधातव्यः,। अस्मिन् विषये निम्नलिखिता धातवः, रत्नानि, खनिजानि समुल्लेख्यानि विद्यन्ते। यथा—

धातवः—प्लैटनिम्, मैंगनीज़, निकल, कोबाल्ट, टँगस्टन, यूरे नियम्, वैनेडियम्, क्रोमियम्, मोलीब् डैनम्।

रत्नानि—कुरुविन्दः, ओपल एगेट, जैस्पर, जैरकोन, टर्कोयज, वेरिल, गारनेट, ओलिवियन, आइडोक्रेज, एपिडोट, अम्बर,

अन्यखनिजानि—फ्लावरस्पर, कैल साइट, आरेगोनाइट, सिलेस्टाइट, जिप्सम, ऐस्कालटम, कोल, ग्रेफाइट।

उक्तद्रव्येषु वहूनि द्रव्याणि भारते प्रचुरपरिमाणेन लभ्यन्ते, परमस्माकं वैद्यानां तज्ज्ञानप्राप्तौ नाद्यावधि दरीदृश्यते समुत्साहः। गवेषणया एतेषां नामानि, जातयः, गुणाश्चाप्रकाशिते ग्रन्थभण्डारे लभ्येरन्नित्यपि सम्भाव्यते। यदि नोपलभ्यन्ते तदास्माभिरेव भावमिश्रादिवदेतेषामुपयोगं विधाय नूतन-रसग्रन्थ-निर्माणं विधेयम्। कविकुल-गुरोः कालिदासस्य पद्यार्थो हृदये निवेशनीयः—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेय-बुद्धिः॥

खनिजद्रव्याणां निर्णये केवलं स्वरूपमेवावलम्बनं भवत्यस्माकम्। परं प्राणिनामिव खनिजेष्वपि वर्ण-प्रकाश-भङ्गुरगति-अपेक्षित-गुरुत्व-कठोरता प्रभृतयो विशिष्ट-परिचायकाः सन्ति। अस्य सविस्तरं वर्णनं 'माडर्न मिनरालोजी' नाम्नि पुस्तके द्रष्टव्यम्। खनिजानां सत्त्वपातनव्यवस्था रस-ग्रन्थेषु सर्वत्रैवालोक्यते परमिदानीं तद्व्यवहारो लुप्तप्राय एव। अस्य पुनः प्रचारे रसवैद्यैः श्रीउमियाशङ्कर-मोतीशङ्कर-महोदयैः अहमदाबादनिवासिभिर्महान् प्रयत्नः कृत आसीत्। तेषां सत्त्वानि समीचीनानि सन्ति। सत्त्वभस्मनामस्माकं शास्त्रे विद्यते महान् महिमा, तस्य पुनरनुभवो गवेषणादिकञ्च विधेयम्।

प्रचलितचिकित्सोपयोगिनां वनौषधीनामुद्यानमिर्माणम्, सरलसरण्या वनौषधीनां निघण्टु-निर्माणं च विधेयम्, येन वैद्यानां तत्तद्ग्राह्याङ्गज्ञानं सत्वरं भवेत्। साम्प्रतमनिश्चिताभिरनुपयुक्ताभिः कृत्रिमाभिर्वनौषधिभिरापणानि सम्भृतानि विद्यन्ते। कुष्ठ-रास्ना-पुष्करमूल-प्रियङ्गु-प्रभृतीनां जीवनीयानां द्रव्याणां का नाम दुर्दशा विद्यते।

अस्योपायः केवलं वैद्यानामत्र स्वयं प्रवर्त्तनमेव । वनौषधीनां तत्तत्प्रान्ततः संग्रहणं संग्रहालय-निर्माणञ्ज नितरामावश्यकम् ।

स्वदेशीय-चिकित्सा-प्रणयिनामिदानीमावश्यकं कर्तव्यमिदमेव वर्तते यत् ते दत्तावधाना भवन्तु । कायचिकित्सकाः, शल्यचिकित्सकाश्च पुनः संग्रन्थनं विधाय चिकित्सासमुन्नतावचतरन्तु । केचन चिकित्साव्यवसायिनां कृते समपेक्षितसम्भारसङ्ग्रहणे संलग्ना भवन्तु, केचन केवलमौषधनिर्माणे, अपरे चाध्यापने, इतरे गवेषणायामेव संलग्ना भवन्तु । एक एव चिकित्सकः संग्रहे, निर्माणे, चिकित्सिते, अध्यापने सर्वत्रैव विषये कार्यं करोति । नैकत्रापि साफल्यं लभते । अस्यैव परिणामो यत् शास्त्रीयौषधानां निर्माणं सम्यङ् न सम्पद्यते । यथाकथमपि यत्किमप्यौषधं निर्माय केवलं प्रवञ्चनामात्रं क्रियतेऽस्माभिः । औषधनिर्माणकार्यं राजकीयनियमानुसारं नियन्त्रितं भवतु । परीक्षिता एवौषध्यो वैद्यानां सविधे तिष्ठन्तु । एतत्सर्वमान्दोलनं महामण्डलेन विधेयम् । नहि सर्वः सर्वं जानातीति तत्तद्विशिष्टवैज्ञानिकैस्तत्तत्कार्यं सम्पादनीयम् । अन्यथा प्रतिक्षणं 'ह्रासदर्शनतो ह्रासः सम्प्रदायस्य मीयताम्' इति दार्शनिकनियमानुसारं ह्रास एव स्यात् । अस्तु—आशास्महे, यदस्माभिर्निवेदितं कटुकषायरससम्वलितं धाष्टर्यं तत्सर्वथा क्षन्तव्यं श्रीमद्भिः ।

नो मत्सराच्च मनागपि दर्पभावान्नो द्वेषमात्रपरिदूषणनैपुणाद्वा ।
स्वत् प्रार्थना-प्रणयभङ्गभियेव किन्तु श्रीमन्मया स्वमतितः किलकिञ्चिदुक्तम् ॥

अस्मिन् वत्सरे माननीयैः श्रीमद्भिः स्वामिलक्ष्मीराममहोदयैर्जयपुरनिवासिभिः स्वीया सम्पत्तिरायुर्वेदसेवायां सादरं समर्पितेति वैद्यसमाजस्तेषां कृतज्ञताभारं नितान्तमावहति । तेषामयमादर्शत्यागः सर्वैरेवानुकरणीयः । आशास्महे, अन्येऽपि सज्जना आयुर्वेदोद्धारे आदर्शत्यागमिममुरीकरिष्यन्ति, धन्यवादभाजनानि च भविष्यन्ति ।

भाषणलेखनावसरे आयुर्वेदविज्ञाने दुःखदसमाचारोऽयं समाकर्णितो यत् पनवेलस्थ—धूतपापेश्वर—कार्यालयाध्यक्षाः पुराणिक श्रीरामाभाऊ महोदया मोहमय्यां कथाशेषतां गता इति । सपरिवारैरेभिरायुर्वेदसेवायां स्वीयं जीवनमेवोत्सृष्टम्, स्वीया समस्ता सम्पद्यायुर्वेदोद्धारे समुत्सृष्टेति भारतीयो वैद्यसमाजस्तत्कुटुम्बिभिः समं निजां वेदनामावेदयन् परमेश्वराद् दिवङ्गतानां तेषामात्मशान्तिं कामयते ।

अन्ते च पुनः सर्वेभ्यः स-हृदयं धन्यवादान् साधुवादाँश्च वितरामि यैर्मम भाषण—समाकर्णने कृपा विहिता । आशासे च मदीयं स्खलनं सदयं मर्षयिष्यन्ति त इति ।

किम्बहुना, कालिदासीयेन पद्येन स्वीयमन्तिमं निवेदनं निवेदयामि ।

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ॥

किमधिकं विज्ञेषु ।

निखिल भारतीय आयुर्वेद महामंडलका इतिहास



पूर्वपरिस्थिति—आजसे कोई पचास-साठ वर्ष पहले आयुर्वेद-संसारका कोई पूछ करनेवाला भी नहीं था। उसपर आयी हुई आपत्तियों और आक्षेपोंका निवारण करनेवाला भी नहीं था। वैद्य लोग जहाँ तहाँ अपना काम कर रहे थे; किन्तु उनका कोई संगठन न होनेके कारण उनकी कोई कार्यपद्धति सुव्यवस्थित नहीं होती थी। विपक्षी लोग खुल्लमखुल्ला आयुर्वेदपर प्रहार करते, उसकी खिल्ली उड़ाते और उसे अवैज्ञानिक कहनेमें जरा भी संकोच नहीं करते थे। राजदरबारमें भी उसका पक्ष लेनेवाला कोई नहीं था। कौंसिलोंमें भी उसका पक्ष लेकर समर्थन करनेवाला कोई नहीं था। हमारे वैद्यसमाजके आदरभाजन प्रातःस्मरणीय आयुर्वेद महोपाध्याय पण्डित शंकरदाजी शास्त्री पदेके उद्योगसे संवत १९६३ में नासिकमें गायकवाड़ श्रीसयाजीराव महाराजके नामसे एक आयुर्वेदविद्यापीठकी स्थापना हुई। गायकवाड़ श्रीसयाजीराव महाराज केवल आयुर्वेद-हितैषी ही नहीं, शास्त्रीजीके कामोंमें बराबर सहायक रहा करते थे। साथ ही श्रीमान् दरभंगा नरेश सर रमेश्वरसिंहजीको आपने इसका सभापति बनाया।

प्रथम वैद्यसम्मेलन—संवत् १९६४ में नासिकमें स्वर्गीय शंकरदाजी शास्त्री पदेके द्वारा एक वृहत आयोजना हुआ। जिसमें नि० भा० वैद्यसम्मेलनके साथही सनातनधर्मसम्मेलन और ब्राह्मणसम्मेलन भी किये गये। इसमें वैद्योंके सिवाय सर्वसाधारण देशहितैषियोंकी उपस्थिति और सहयोगका अच्छा सुभीता हुआ। २४ मई शुक्रवार सन् १९०७ को वैद्योंकी सभामें ९ विषयोंपर आये हुए वैद्य-डाक्टरोंके लिखे निबन्धोंपर विचार हुआ। बाद आयुर्वेदविद्यापीठ और वैद्यसम्मेलनके संस्थापक और नियामक आयुर्वेदमहोपाध्याय पण्डित शंकरदाजी शास्त्री पदेने अपने उद्योगोंका प्रारम्भिक वर्णन किया और बतलाया कि अपने उद्योगोंको व्यवस्थित रूप देनेके लिये सन् १८८६ से औषधालय खोलकर हमने प्रारम्भिकसाधन संग्रह करने आरम्भ किये। हिन्दीमें "सद्वैद्यकौस्तुभ" नामक मासिकपत्र सन् १९०४ से निकाल रहे हैं। इस सम्मेलनके सभापति कुंवर सरयूप्रसाद नारायणसिंहजी हुए थे। आपके भाषणका कुछ अंश यों था—जिस नासिकक्षेत्रमें भगवान राघवेन्द्रने धर्मकी रक्षाके लिये धनुपबाण धारणकर दुष्टोंका दलन और शिष्टोंका संरक्षण किया था, उसी पवित्रक्षेत्रमें आजका 'श्रीसयाजीराव आयुर्वेदविद्यापीठ और राष्ट्रीयवैद्यसम्मेलनका" आयोजन आनन्ददायक है। इसकी नितान्त आवश्यकता थी। जिस प्रकार सनातनधर्मको भलीभाँति सम्पादन करनेके लिये ज्योतिषशास्त्र एक प्रधान अंग है, उसी प्रकार आयुर्वेदशास्त्र भी है। क्योंकि "धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यंमूलमुत्तमम्। आयुर्वेदो-



श्रीमान् वैद्यरत्न-वैद्यभूषण पं. एम्. दुरैस्वामी अय्यङ्गार आयुर्वेदाचार्य मद्रास।
भूतपूर्व प्रधानमंत्री आयुर्वेद महामण्डल; संपादक आयुर्वेदकलानिधि, (तामिल मासिकपत्रिका)
अध्यक्ष, द्रविडप्रान्तीयवैद्यसंमेलन, त्रिचनापल्ली. (सन १९३४ ई)।

पदेशेषु विधेयः परमादरः" ऋषिवाक्य है। इसी कारण जगत्पिता जगदीश्वरने "आयुर्वेद" नामसे इस शास्त्रका नामकरण किया है। हमारे सुविज्ञमित्र लोकमान्य श्रीशंकरदाजी शास्त्री पदेने यह सर्ववादिसम्मत धर्म और जाति तथा हिन्ददेशके कल्याणके लिये बीजारोपण किया है। कहनेके लिये सभी, लीडर—लेखक—वक्ता आदि हैं; पर वास्तवमें वे ही सर्वश्रेष्ठ लोग हैं, जो लोकमें कुछ करके दिखला सकें। और ऐसे ही सात्विक, प्रतिष्ठाप्राप्त सार्वजनिक पदाधिकारी पूज्य महाशयोंसे सर्वसाधारणका हित होता भी है। राजाप्रजाद्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त श्रीमान् बड़ोदानरेशने इसे बल और गौरव लाभ कराया है और अंग्रेजी वैद्यकके प्रसिद्ध विद्वान् दक्षतर डाक्टर सर भालचन्द्रकृष्ण भाटवडेकर नाइटने इसकी स्वागतकारिणीका भार लिया है एवं वेलनकर-जैसे अनुभवी वृद्ध वैद्यराज इसमें सहयोग कर रहे हैं, यह सब सम्मेलनके लिये शुभलक्षण हैं। शस्त्रचिकित्साभाग आयुर्वेदका यद्यपि लोपसा हो गया है, तथापि इस सम्मेलनमें ए० ए० विर्लेकर महाशयकी उपस्थिति विशेष आनन्द दे रही है; जो आयुर्वेदोक्त साधारण चिकित्साके साथ साथ आयुर्वेदोक्त शस्त्रचिकित्सामें भी पूर्णरूपेण कुशल हैं। इस प्रकार प्रत्येक पक्षसे इसमें सहयोगिता और सहकारिता मिलते जानेके प्रमाण मिल रहे हैं। आयुर्वेदशास्त्रकी उत्कृष्टता और उपयोगिताके विषयमें इतना कहना बस होगा कि ईसापूर्व सवातीनसौ वर्ष पहले यूनानके बादशाह सिकन्दर आज़मको यहाँ से अपने देशको वैद्य ले जानेकी आवश्यकता और औचित्य बोध हुआ था। डाक्टर सर भालचन्द्रकी सहयोगिता आयुर्वेदकी आकर्षक उपयोगिताका प्रमाण है। अभी हालमें "पायोनियर"में एक अंगरेजने इस बातका समर्थन किया है कि जिन मलेरिया आदि जटिल तथा विषाक्त रोगीको डाक्टर सिविलसर्जन जवाब दे देते हैं, उन्हें उड़ीसाके वैद्य और साधु आराम कर देते हैं, सर्पविषका प्रयोग कर ये मरते हुओंको जिलाकर खड़ा कर देते हैं।

यह बड़े और आनन्द और सन्तोषकी बात है कि इस पहले सम्मेलनके अधिवेशनमें भारतवर्षके सभी प्रान्तोंसे प्रतिनिधि पधारे हैं। हम देखते हैं कि संयुक्तप्रदेश, बंगाल, मध्यप्रदेश, राजपूताना, पञ्जाब आदि दूरवर्ती प्रान्तोंके लोगोंने भी इसमें योग देनेका कष्ट और व्ययभार सहन कर हमें अनुगृहीत किया है; एतदर्थ वे धन्यवादके पात्र हैं। इस अधिवेशनमें जो लक्ष्य और उद्देश्य निश्चित हुए हैं और जो कुछ कार्यवाहियाँ हो रही हैं, वह श्री गणेश करनेके लिये निश्चिय ही अलम और सराहनीय हैं। परीक्षाकी जो विधि आपने स्थिर की है और मानपत्र-उपाधि-पदवी एवं पदक इत्यादि देनेका जो नियम किया है वह बड़े अवसर और प्रयोजनकी बात हुई है। पढाईके दर्जे सदा उच्चसे उच्च होते रहेंगे और विद्यार्थियोंका (उनके लाभके लिये) उत्साह-साहस और उच्चाभिलाषा प्रशंसनीय प्रतिद्वन्द्विताके साथ बढ़ती रहेगी। अन्तमें सर्वसाधारणको उनकी योग्यतासे लाभ उठानेमें प्रदत्त मानपत्रके प्रमाणपर

सन्देह करनेका अवसर भी नहीं मिलेगा। भारतके सभी प्रान्तों और बड़े नगरोंमें आयुर्वैदिक पाठशालाएँ खुलनी चाहियें तभी हमारा अभाव दूर होगा। शंकरशास्त्री जीने नासिक, बम्बई और नागपुरमें ऐसा कर मार्गप्रदर्शन किया है। इस कार्यमें हमारे भाई धनसे सहायता करते रहें तो यह काम सफल हो सकता है। इस वृटिश शान्तिकालमें आप लोग परिश्रम करके अनुसन्धान पूर्वक इस आयुर्वेदको उन्नति करें। आपकी सदिच्छाओंको गवर्नमेंटसे भी सहायता मिल सकती है। विदेशीय भाइयोंने विज्ञान और चिकित्साशास्त्रमें जो उन्नतियाँ की हैं, उपयोगानुकूल यथावश्यक उनसे भी सहायता लें।......, हमलोग पूरे परिश्रमसे अपने काममें कटिबद्ध रहें तो कोई कारण नहीं कि हमलोग ईश्वरकृपासे कृतकार्य न हों। अस्तु, सर्वतोभाव अभीष्टसिद्धिकी इच्छा रखते मैं अपने निवेदनको यहीं बस करता हूँ।

द्वितीय वैद्यसम्मेलन—कोलाबा जिलेके पनवेल स्थानमें १७ से २० अप्रेल सन् १९०८ ईस्वीमें हुआ था। बम्बईके प्रसिद्ध नागरिक और युनिवर्सिटीके वाइस-चांसलर सेठ त्रिभुवनदास मंगलदास जे० पी० के द्वारा आयुर्वेदिक प्रदर्शिनीका उद्घाटन किया गया। १८ अप्रेलको जयपुर आयुर्वेदकालेजके प्रधानाध्यापक आयुर्वेदविद्यानिधि पं० गंगाधरशास्त्री भट्टके सभापतित्वमें अधिवेशन हुआ।

इसी बीच स्वर्गीय हकीम अजमलखाँ ने "वैद्यकएण्डयूनानी तिब्बी-कानफरेंस" स्थापित की और उसका आन्दोलन भारतव्यापी करनेकी योजना भी उन्होंने आरम्भ की। इस उद्देश्यकी पूर्तिके साधन सुलभ करनेके लिये संवत् १९६६ के आसाढ़से ही मैंने "सुधानिधि" मासिक पत्र निकालना आरम्भ कर दिया था। उस समय हिन्दी संसारमें अन्य कोई वैद्यकपत्र नहीं था। अतएव इसके आन्दोलनका प्रभाव वैद्यक संसारमें पड़ने लगा। हकीम साहबके आन्दोलनको लेकर प्रयागमें भी वैद्यों और हकीमोंकी सभा हुई। इसी बीच प्रयागमें द्वितीय हिन्दीसाहित्य सम्मेलन करना स्थिर हुआ। कुछ समाचापत्रोंमें लेख निकले कि इसी समय वैद्योंका भी एक सम्मेलन किया जाय।

तृतीय वैद्यसम्मेलन—कविराज गणनाथसेन सरस्वती, एम० ए०, एल० एस० एस० विद्यानिधि, कविभूषण महोदयके सभापतित्वमें २६, २७ और २८ सितम्बर सन् १९११ को हुआ। इसके पहले सम्मेलनकी सारी व्यवस्था और प्रबन्ध करनेका भार "आयुर्वेदविद्यापीठ" पर रहता था। इस सम्मेलनने आयुर्वेदकी शिक्षा और परीक्षा सम्बन्धी व्यवस्थाके लिये अलग समिति बनायी जो "आयुर्वेदविद्यापीठ" कहलायी और सम्मेलनके प्रतिनिधिरूप बराबर काम करते रहनेके लिये "एक स्थायीसमितिका" निर्माण हुआ जिसका नाम आयुर्वेदमहामण्डल रखा गया। विद्यापीठमें भारतके सुप्रसिद्ध विद्वान वैद्य, पहले १६ फिर २५ और अब ५० संख्यामें रखे जाने लगे और "आयुर्वेदमहामण्डल" में भारतके सभी प्रान्तोंके

मिलाकर १०१ प्रतिनिधि रखना निश्चित हुआ। सम्मेलनकी सारी व्यवस्था इसीके अधीन सौंपी गयी। इस तरह सम्मेलनको बिलकुल सार्वजनिक और प्रातिनिधिक स्वरूप दिया गया।

चतुर्थ वैद्यसम्मेलन—कानपुरमें वैद्यरत्न कविराज योगीन्द्रनाथ सेन ए० ए० के सभापतित्वमें हुआ। आपका भाषण बहुत प्रभावोत्पादक और समयोचित हुआ। इस वर्ष सम्मेलनके साथ एक छोटी वैद्यक प्रदर्शिनी भी हुई। सम्मेलन २९, ३० और ३१ दिसम्बर सन् १९१२ तदनुसार मार्गशीर्ष कृष्ण ५, ६, ७ संवत १९६९ को हुआ। इसमें लगभग ढाईसौ प्रतिनिधि और हजारोंकी संख्यामें जनता इकट्ठी होती थी। इसी वर्षसे सरकारने पहले पहल वैद्योंको "वैद्यरत्न" पदवी देना आरम्भ किया था। वैद्योंको प्रतिष्ठा प्रदान करनेके लिए सरकारको धन्यवाद दिया गया।

पंचम वैद्यसम्मेलन—मथुरा नगरमें २०, २१, २२ और २३ दिसम्बर सन् १९१३ ईस्वीको डाक्टर लेफ्टिनेंट कर्नल कान्होबा रणछोड़दास कीर्तिकर आई. एम. एस. महोदयके सभापतित्वमें हुआ। आपका वनस्पति ज्ञान और विषौषधियोंका अनुभव भारतप्रसिद्ध था। प्रतिनिधियोंकी संख्या इस सम्मेलनमें लगभग साढ़ेचार सौ थी। वैद्योंके उत्साह, कर्तव्यप्रेम और उन्नति कामनाका विश्वास क्षण-क्षणमें होता था। अबतककी प्रदर्शनियोंमें मथुराकी प्रदर्शिनी सर्वोत्तम और विशेष रूपसे प्रबन्धके साथ हुई थी। प्रदर्शनीका उद्घाटन मथुराके जज महोदयने किया था। इसके लिये वहाँके सिविलसर्जन श्रीयुक्त बंकिमचन्द्रजी सन्यालने अच्छा परिश्रम किया था। सभापतिका भाषण छोटा किन्तु महत्वपूर्ण और आयुर्वेदकी उत्कृष्टता एवं प्राचीनता बतलाते हुए वनस्पतिशास्त्र सम्बन्धी बहुतसी जानने योग्य नयी बातोंसे पूर्ण था।

षष्ठ वैद्यसम्मेलन—आयुर्वेदमार्तण्ड पण्डित लक्ष्मीरामजी स्वामी जयपुरनिवासीके सभापतित्वमें कलकत्तेमें ९, १०, ११, १२ जनवरी १९१४ को हुआ। स्वागतकारिणीके सभापति वैद्यरत्न कविराज योगीन्द्रनाथसेन थे। कितनेही राजा-महाराजा-युवराज, कौंसिलकी कार्यकारिणी सभाके सभासद, हाईकोर्टके जज और बंगाल गवर्नमेंटके सहानुभूति सूचकपत्र और तार आये थे। सभापति महोदयका भाषण महत्वपूर्ण और ओजस्वी हुआ। उसमें पञ्चमहाभूत तथा वात-पित्त-कफकी विवेचनाकर आयुर्वेदकी वैज्ञानिकता प्रतिपादित की गई थी।

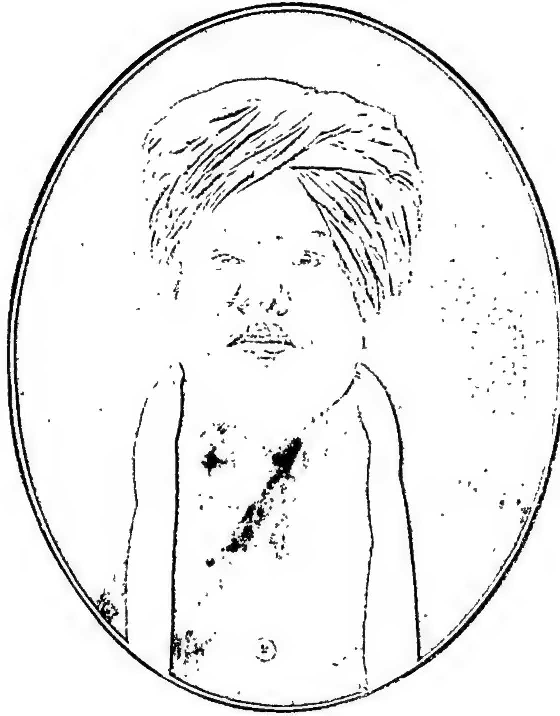
सप्तम वैद्यसम्मेलन—कविराज यामिनीभूषणराय एम० ए० के सभापतित्वमें मद्रासमें सन् १९१५ ई० को हुआ। सभापतिका भाषण बड़ा ही ओजस्वी और प्रभावोत्पादक हुआ। इस सम्मेलनकी सफलताका पूर्ण श्रेय वैद्यरत्न श्रीयुत डी० गोपालाचार्लु महोदयको है। आप हीके सदुद्योगसे यह सम्मेलन मद्रासमें हुआ। इसमें भी कई उपयोगी प्रस्ताव पास हुए।

अष्टम वैद्यसम्मेलन—कोचीनाधिप महाराजा सर श्रीरामवर्माके सभापतित्वमें पूनामें सन् १९१६ ई० को हुआ। आपका भाषण बड़ा ही महत्वपूर्ण हुआ। केवल प्रान्तीय वैद्योंकी विशेषताका बड़ा ही खोजपूर्ण निदर्शन इसमें था। उपस्थित विद्वान् वैद्य प्रतिनिधियोंने आपके भाषणकी प्रशंसा की। सफलताकी दृष्टिसे यह सम्मेलन बहुत अच्छा हुआ। अनेक उपयोगी प्रस्ताव पास हुए।

नवाँ वैद्यसम्मेलन—वैद्यरत्न पण्डित डी० गोपालाचार्लूके सभापतित्वमें लाहौरमें २६, २७, २८, २९, ३० अप्रैल सन १९१८ ई० को हुआ। तद्विध सम्भाषापरिषदके ढंगपर वैज्ञानिक विषयोंके विचारके लिये इस सम्मेलनमें एक विभाग अलग रखा गया। इस सम्मेलनमें तिब्बी कानफरेंसके प्रवर्तक हाजिकुलमुल्क हकीम अजमलखां साहब भी पधारे थे। सम्मेलनके साथ एक प्रदर्शिनी भी हुई थी, जो हकीम अजमलखां साहबके हाथों खोली गई थी। सन्दिग्ध औषधियोंके विचारके लिये वैद्यरत्न कविराज योगीन्द्रनाथसेनके सभापतित्वमें एक बैठक हुई।

दशम वैद्यसम्मेलन—कविराज श्री उमाचरणजी भट्टाचार्य कविरत्नके सभापतित्वमें देहलीमें सन् १९१९ ई० को हुआ। स्वागतसमितिके आपसकी फूटके कारण निमंत्रण-पत्र भी सब जगह नहीं पहुँच सका था। पहले देहलीवालोंने निमंत्रण दिया था; किन्तु लाहोरमें उसका निश्चय न हो सका था। अन्तमें मद्रासके आफिसने देहलीवालोंको अपनी स्वीकृति दे दी। लेकिन भाग्यवश वहाँ ऐसी फूटका बीज बपन हुआ कि कोई काम समयपर न हो सका। फिर भी गोस्वामी गोपीरमणजी और पं० भगीरथ स्वामीके अथक परिश्रमसे सम्मेलन बड़ी सफलतापूर्वक हुआ। स्वागताध्यक्ष श्री अजमलखां साहबने अपना भाषण खड़े होकर कह दिया। और सभापति महोदयने भी अपना भाषण योंही जो कुछ वक्तव्य था, कह डाला। कौंसिलके मेम्बर, अनेक महामहोपाध्याय, पूज्य मालवीयजी आदि अनेक मान्य व्यक्ति पधारे थे। स्वागताध्यक्ष और सम्मेलनाध्यक्ष दोनोंके भाषण सुन्दर थे। सभापतिने अपने भाषणद्वारा आयुर्वेदके वैज्ञानिकताकी; उदाहरण देकर परिपुष्टि की।

एकादश वैद्यसम्मेलन—ग्यारहवाँ वैद्यसम्मेलन महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेन सरस्वतीके सभापतित्वमें ३१ मार्च तथा १, २, ३ अप्रेल सन् १९२० को इन्दोर नगरमें हुआ। स्वागत सभापति इन्दौरके प्रधान डाक्टर पण्डित सरयूप्रसादजी तिवारी थे। स्वागत-जलूस और प्रबन्धमें राज्य-सहायताकी स्पष्ट छाप दिखती थी। इसीसे सम्मेलन खूब ठाटके साथ हुआ। पिछले दो सम्मेलनोंमें प्रतिनिधियोंकी संख्या कम थी; किन्तु इस बार अच्छी संख्यामें वैद्य उपस्थित हुए थे। सभापति महोदयका भाषण स्वभावतः महत्वपूर्ण था। आयुर्वेदिक प्रदर्शिनी भी सफलतापूर्व-हुई। कुछ बढ़िया निबन्ध भी पढ़े गये। डाक्टर देसाईने इनफ्लुएन्जापर ९ भाषण किया।



श्रीमान राजवैद्य पं. किशोरीदत्तजी शास्त्री कानपुर।
संपादक, चिकित्सक (हिन्दीमासिक पत्र)।
अध्यक्ष, युक्त प्रान्तीय ५ वैद्यसंमेलन कानपुर (सन १९२८)।

विदाईका भाषण करते हुए सभापति महोदयने मर्मस्पर्शी शब्दोंमें वैद्योंसे कहा "जाना है, परन्तु भूल नहीं जाना है। फिर सबको मिलना और औरोंको मिलाना है। यह सम्मिलन नहीं सम्मेलन है, वैद्यों और सर्वसाधारणके प्राणोंका। परस्पर द्वेष-मत्सर छोड़ सगे भाईके भावसे मिलना। दोषोंको दूर करना चाहिये, किसीको बुरा नहीं कहना चाहिये।"

द्वादश वैद्यसम्मेलन—कविराज हाराणचन्द्र चक्रवर्तीके सभापतित्वमें ६, ७ और ८ अप्रेल सन् १९२१ ई० को बम्बई नगरमें हुआ। सभापतिका निर्वाचन कुल ३ दिनोंके भीतर तार द्वारा हुआ था। पाँच-छः दिन पहले तक स्थायी समितिके प्रधान मन्त्री को भी पता न था कि सभापति कौन होंगे। जब तक प्रधान कार्यालयके लोग मद्राससे बम्बई पहुँचे, तब तक सम्मेलन ३ दिन समाप्त कर चुका था। संयुक्तप्रान्त, बिहार, पंजाब, बंगाल और मद्रासके प्रतिनिधि नहीं पहुँच सके। प्रतिनिधियोंकी फीस स्वागत समितिने अपनी इच्छासे नियमविरुद्ध १५) ली। आयुर्वेद महाविद्यालयके प्रधान मन्त्री कविराज गणनाथसेन जीने विद्यालय सम्बन्धी अपने विचार लिखकर भेजे थे; किन्तु उनपर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं हो सका। लगनसे काम करनेवालोंमें एक पं० हनुमत्प्रसाद जोशी वैद्य ही थे। स्वागत सभापति डाक्टर पोपट प्रभुरामने हस्तलिखित भाषण पढ़ा। सभापति महोदयका भाषण भी लिखा हुआ ही था।

कांग्रेसने आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सापद्धतिके विशेष प्रचारका प्रस्ताव पास किया था। इसलिये प्रसन्नता प्रकट की गयी। बम्बईके डाक्टर दादा चानजीने अपनी पुस्तक "छुपा सांघातिक दुःखदर्दो" में आयुर्वेद और वैद्योंके प्रति घृणित आक्षेप किये हैं, इसके प्रति तिरस्कार प्रकट किया गया। स्वर्गीय डी० गोपालाचार्लूने सम्मेलन और आयुर्वेदविद्यापीठ तथा आयुर्वेदशास्त्रकी जो आजीवन सेवाकी है, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की गयी।

तेरहवाँ वैद्यसम्मेलन—वैद्यपंचानन पण्डित कृष्णशास्त्री कवडेके सभापतित्वमें राजमहेन्द्रीमें ५, ६, ७, ८ अगस्त सन् १९२२ ई० को हुआ। उत्तरभारतके प्रतिनिधि बहुत कम पहुँचे थे। सभापति महोदयका भाषण अच्छा ही हुआ।

चौदहवाँ वैद्यसम्मेलन—वैद्यरत्न कविराज योगीन्द्रनाथसेन महोदयके सभापतित्वमें सीलोनके कोलम्बो नगरमें सन् १९२३ ई० को हुआ। सभापति महोदयका भाषण अंग्रेजीमें हुआ था। यह भाषण भी बड़ा ही महत्वपूर्ण था। इतनी दूर होते हुए भी सम्मेलनने अच्छी सफलता प्राप्त की थी।

पन्द्रहवाँ वैद्यसम्मेलन—आयुर्वेदमार्तंड वैद्य यादवजी त्रीकमजी आचार्यके सभापतित्वमें हरद्वारमें सन् १९२५ ई० को हुआ। सभापतिका भाषण बड़ा सुन्दर हुआ। आपने आयुर्वेदकी त्रुटियोंकी ओर वैद्यसमुदायका ध्यान आकृष्ट किया। यह सम्मेलन भी बड़ी सफलतापूर्वक समाप्त हुआ। कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव भी स्वीकृत हुए।

सोलहवाँ वैद्यसम्मेलन—पूज्य पं० मदनमोहनजी मालवीयके सभापतित्वमें सन् १९२६ ई० को जयपुरनगरमें हुआ। स्वागताध्यक्ष रायबहादुर सर पं० गोपीनाथजी सी० आई० ई० थे। स्वागताध्यक्षके भाषणके बाद पूज्य मालवीयजीका एक घंटा तक हिन्दीमें भाषण हुआ। आपने चरक इत्यादिके अनेक उद्धरण देकर महत्वपूर्ण भाषण किया। आयुर्वेदके प्रति अपनी प्रगाढ़ भक्तिका भी संकेत किया। यह सम्मेलन आयुर्वेदमार्तण्ड श्री पं० लक्ष्मीरामजी स्वामीके उद्योगसे बड़ा सफल हुआ। प्रतिनिधियोंके घुमाने-फिराने और जयपुरके समीपस्थ सुरम्य एवं ऐतिहासिक स्थानोंके दिखाने तथा उनके आरामकी सभी सुविधाओंका पूर्ण प्रबन्ध था। सफलताकी दृष्टिसे यह सम्मेलन अपूर्व था। कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव भी पास हुए।

सत्रहवाँ वैद्यसम्मेलन—आयुर्वेदपंचानन पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्लके सभापतित्वमें पटना नगरमें १६, १७ और १८ अप्रैल सन् १९२७ ईस्वीको हुआ। सम्मेलनका स्थान निश्चित करनेमें बहुत विलम्ब हो गया था इसलिये विहारप्रान्तीय वैद्योंको केवल दोही महीने सम्मेलनकी तैयारीके लिये मिले थे। किन्तु स्वागताध्यक्ष पं० व्रजविहारी चतुर्वेदी आयुर्वेदरत्नाकरके प्रभाव और मन्त्री वैद्यभूषण पं० रामावतारमिश्र और पं० श्रीकान्त शर्मा काव्यतीर्थके परिश्रमसे सब काम उत्तमतासे हुआ। सरकारी आयुर्वेद विद्यालयके भवनमें प्रदर्शिनी भी बहुत बढ़िया हुई थी, जिसे मिनिस्टर सर गणेशदत्तसिंहजीने खोला था। स्वागताध्यक्ष महोदयका भाषण विद्वत्तापूर्ण हुआ।

अठारहवाँ वैद्यसम्मेलन—श्री० प० कृष्णशास्त्री देवधरजी नासिक निवासीके सभापतित्वमें फतेहपुर (शेखावाटी) में सन् १९२८ ईस्वीको हुआ। सभापति महोदयका भाषण छोटा; किन्तु प्रभावशाली था। इस सम्मेलनमें कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए।

उन्नीसवाँ वैद्यसम्मेलन—श्रीयुत कैप्टन जी० श्रीनिवासमूर्ति, बी० ए०, बी० एल्०, एम० बी० ऐंड सी० एम०, वैद्यरत्न प्रिंसिपल गवर्नमेंट इन्डियन मेडिसिन स्कूल आफ मद्रासके सभापतित्वमें नासिकमें सन् १९२९ ईस्वीको हुआ। सभापति महोदयका भाषण बड़ाही महत्वपूर्ण हुआ। आपने आयुर्वेदकी शिक्षापद्धति, औषधनिर्माणक्रिया, और चिकित्साशास्त्रकी त्रुटियोंपर अच्छा प्रकाश अपने भाषण-द्वारा डाला। अनेक सामयिक और उपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुए। इस सम्मेलनकी स्वागतसमितिने त्रिदोष विषयपर सर्वोत्तम निबन्ध लिखनेवाले विद्वानके लिए ५००) पुरस्कार देना निश्चित किया।

बीसवाँ वैद्यसम्मेलन—वैद्यरत्न श्रीयुत प० रामप्रसादजी शर्म्मा राजवैद्यपटियालाके सभापतित्वमें कराची नगरमें सन् १९३० ईस्वीको हुआ। आपने अपना छपा हुआ हिन्दी भाषाका भाषण पढ़ा। आपका भाषण छोटा था; किन्तु उसके-द्वारा



श्रीमान् चिकित्सक चूडामणि वैद्यकुलभूषण पं. रामेश्वरमिश्र वैद्यशास्त्री कानपुर।
भूतपूर्व प्रधान मंत्री, आयुर्वेद महामंडळ।
,, अध्यक्ष, सं. प्रां. वैद्यसंलन।
पूर्व सदस्य बोर्ड ओफ इन्डियन मेडीसिन यु. पी.

आयुर्वेदकी पूर्णता पर अच्छा प्रकाश पड़ता था। सफलताकी दृष्टिसे यह सम्मेलन बहुत अच्छा हुआ। अनेक सामयिक और उपयोगी प्रस्ताव भी स्वीकृत हुए।

इक्कीसवाँ वैद्यसम्मेलन—महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन सरस्वती एम० ए०, एल० एम० एस० विद्यासागर, कलकत्ता निवासीके सभापतित्वमें मैसोर राज्यमें सन् १९३१ ई० को हुआ। आपने अपना भाषण अंग्रेजीमें पढ़ा था। यह भाषण बड़ाही सुन्दर था। श्रीयुत सेन महोदयकी विद्वत्ताके अनुरूपही यह भाषण हुआ। कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव भी पास हुए।

बाइसवाँ वैद्यसम्मेलन—आयुर्वेदमार्तंड श्रीयुत वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य महोदयके सभापतित्वमें ग्वालियर राज्यमें सन् १९३२ ई० को हुआ। आपने संस्कृत भाषामें अपना भाषण पढ़ा। आपका भाषण आपकी स्पष्टवादिताके अनुरूप हुआ। भारतवर्षके अनेक विद्वान और प्रतिष्ठित वैद्य तथा डाक्टर मस्कर आदि भी इस सम्मेलनमें उपस्थित थे। प्रतिनिधियोंकी संख्या भी अधिक थी। अनेक सामयिक और उपयोगी प्रस्ताव पास हुए। डाक्टर मस्करने प्रसूतितंत्रपर अपना एक विशद निबन्ध संस्कृतमें पढ़ा।

तेइसवाँ वैद्यसम्मेलन—भिषग्रत्न श्रीयुत डाक्टर ए० लक्ष्मीपति बी० ए०, एम० बी० ऐंड सी० एम० मद्रास-निवासीके सभापतित्वमें बीकानेरमें सन् १९३३ इस्वीको हुआ। सभापति महोदयने अपना भाषण अंग्रेजीमें पढ़ा था। आपका भाषण आयुर्वेदके अनेक विषयों तथा स्वास्थ्यके अनेक अंगोंपर विशेष रूपसे प्रकाश डालनेवाला था। इस सम्मेलनका सम्पूर्ण प्रबन्ध महाराजाधिराज बीकानेरकी ओरसे था। महाराजा बहादुरने सम्मेलनमें उपस्थित सम्पूर्ण वैद्योंको एक पार्टी दी और कहा कि इस सम्मेलनसे मुझे विश्वास हो गया कि आयुर्वेद एक प्रतिष्ठित और मान्य चिकित्सा पद्धति है। मैंने एकबार जयपुरनिवासी श्रीयुत स्वामी लक्ष्मीरामजी राजवैद्यकी औषधिकी थी और उससे मुझे बड़ा लाभ हुआ था। यह सम्मेलन बड़े ठाटका हुआ। इसमें भी अनेक सामयिक और उपयोगी प्रस्ताव पास हुए। अन्तमें श्रीयुत महाराजाधिराजके आयुर्वेद-प्रेमकी प्रसंशाकी गई, और महाराजाबहादुरको धन्यवाद दिया गया।

चौबीसवाँ वैद्यसम्मेलन—भिषङ्मणि कविराज प्रतापसिंहजी रसायनाचार्य, सुपरिन्टेन्डेन्ट आयुर्वेदिक फार्मेसी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटीके सभपतित्वमें शिकारपुर (सिंध) में सन् १९३४ ईस्वीको हुआ। सभापतिका जलूस बड़े ठाटका निकला। ऐसा जलूस शायद ही किसी वैद्यसम्मेलनके सभापतिका निकला हो। सभापतिका भाषण छोटा; किन्तु बड़ा गम्भीर और ओजपूर्ण हुआ। सम्मेलनमें उपस्थिति अच्छी थी। प्रतिनिधिगण भी अधिक संख्यामें पहुँचे थे। इस सम्मेलनसे सिंधप्रांतमें आयुर्वेदका अच्छा प्रचार हुआ। इसके पूर्व वैद्य शब्द भी अधिकांश जन समुदायने

नहीं सुना था। इस सम्मेलनमें सबसे बड़ी विशेषता यह हुई कि हजारोंकी संख्यामें रोगी-समुदाय रोगनिर्णय एवं औषधोपचारके निमित्त पहुँचा। उस समय स्वागत-समितिने प्रत्येक रोगीसे इस कार्यके लिए द्रव्य लिया और तब वे वैद्य प्रतिनिधियों तथा सभापति महोदयसे अपना निदान तथा औषध-व्यवस्था करा सके। इसी सम्मेलनके प्रभावसे शिकारपुरके नगर-सेठ श्रीमान लुणिन्दासिंहजीने एक लाख रुपए देकर एक धर्मार्थ औषधालय और एक आयुर्वेद विद्यालयका उद्‌घाटन कराया।

दारागंज, प्रयाग

जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य, आयुर्वेदपंचानन
भू० पू० प्र० मंत्री, नि० भा० आ० म० मण्डल





श्रीमान भिषगाचार्य पं. त्र्यम्बकशास्त्री आपटे पुना।
मंत्री, नि. भा. व. आयुर्वेदविद्यापीठ।

निखिलभारतीयायुर्वेदविद्यापीठस्य

पंचविंशतिवत्सरात्मको वृत्तान्तः

अयि भोः सकलसद्वैद्यवन्दितपादपद्माः सभापतिमहोदयाः, महामहिमशालिनः पण्डितप्रकाण्डाश्च सभास्ताराः, श्रीमद्धन्वन्तरिकृपांकुरितलोचनसमीक्षितेऽस्मिन् भारतवर्षे अथ युवानामवत्सरे अथवा वैक्रमीय-व्ययनामसंवत्सरे पौषे मासि तथा च ऐशवीय-विंशशतकस्य पंचत्रिंशत्तमेऽब्दे डिसेंबरमासि गुर्जरदेशे धन्वन्तरिकल्पैः वैद्यवर्यैः सनाथीकृतेऽस्मिन्नहमदावादनगरे निखिलभारतीयायुर्वेदविद्यापीठस्य पंचविंशतितमे वर्षे रजतजयन्त्युत्सवसमारम्भे जन्मनः प्रभृति अद्ययावत् आक्रान्तासु तासु तास्ववस्थासु आयुर्वेदाध्ययनाध्यापनस्य कियदिव उपबृंहणं यत् समजनि तदेव श्रीमतां पुरस्तात् निवेदयितुं सत्यमेव मामेति मे चेतः ।

१ पूर्वेतिहासः

श्रेष्ठाः, प्रागेव शतकपादात् स्वर्गतानां महामहोपाध्यायानां आयुर्वेदीयान्दोलन-प्राणभूतानां स्वनामधन्यानां "शंकरशास्त्रि पदे" महोदयानां अतुलप्रयत्नैः प्रतिसंवत्सरं निखिलभारतीयवैद्यमहासंमेलनं प्राचलत् । तदनु अब्दद्वितयादनन्तरं विद्यापीठस्यापि जनुरभवत् । तदाप्रभृति एतावत्कालपर्यन्तं यत्किल- कार्यजातं कुर्वत् विद्यापीठं तिष्ठति तदेव अत्रभवतां पुरतः नातिसंक्षेपविस्तरमुपस्थाप्यते ।

अयि मान्याः, आसीत्खलु इयं भारतभूमिर्यथार्थत्वेन सुवर्णभूमिः । आसेतुहिमाचलं सुजला, सुफला, सर्वसस्याढ्या, विपुलरत्नोपरत्नगर्भा, आदर्शशिल्पविरचितोत्तुंगप्रासाद-नगरा, फलधान्यसमृद्धिसन्तुष्टखेटका, विद्वच्छिरोमणिवृन्दजननी, धर्मभूमिः श्रीराम-कृष्णयुधिष्ठिरादीनां नृपसत्तमानां, कर्मभूमिर्व्यासवाल्मीकिशंकराचार्यप्रमुखानां वैदिक-मार्गप्रवर्तकानां, मर्मभूमिः सकलसम्पदाम्, शर्मभूमिश्च सकलापत्यानां इत्येवंविधं नातिप्राचीनभरतभूवर्णनं न कांचिदपि कूटोक्तिकोटिमाटीकते । किन्तु हन्त ते हि नो दिवसा गताः ।

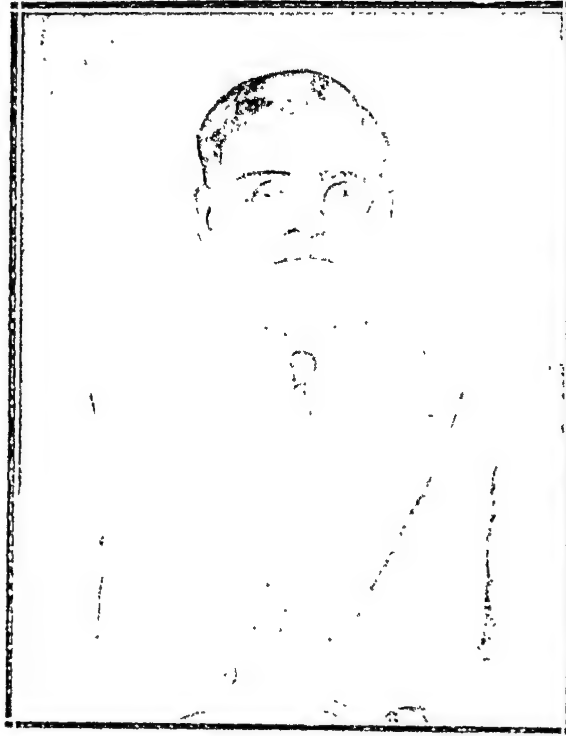
साम्प्रतं तु तस्याः कीदृशी दुरवस्था संवृत्तेति विलोकयतामस्माकं नितरां खिद्यते चेतः । संप्रति हि अतिवृष्ट्यनावृष्टिभिर्विलयं गता सा सस्यसंपत । रत्नोपरत्नानि चास्याः परद्वीपस्थानां नृपाणां मुकुटानभिभूषयन्ति । नगराणि पुनश्चास्याः अहर्निशसेवाकर्म-निरतानां दूषितवायूदकोपसेविनां कदन्नं भुंजानानां अस्थिचर्मावशिष्टानां विविधाधिव्या-धिपंकमग्नानां नरसूकराणां आक्रन्दनैराक्रान्तानीव संदृश्यन्ते । खेटकेषु तु क्षुधाव्या-कुलान् निर्वसनान् वन्यपशुजीवनादपि हीनदीनतरं जीवनं धारयतोऽवलोक्य रंकान्

कृपीवलान् नितान्तं चेखिद्यते स्वान्तम्। विद्यच्चा पुनरस्याः भूमेः शार्मण्यादिदेशान्तरमाश्रितवती। परकीयैः सत्यमेव पादाघातक्षुण्णांगप्रत्यंगायाश्चास्याः कुतः पुनरपि रामराज्यसंदर्शने प्रत्याशा। प्राचीना धर्मप्रवर्तकास्तु अधर्मनिरतानां भारतपुत्राणां स्मृतिशेषतां गताः। हा धिक् कष्टम्। "सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः"। एवं च परद्वीपस्थैः साम्राज्यचालकैः समाक्रान्तेषु तेषु तेषु भारतभूमिभागेषु साकमेव स्वातन्त्र्यलोपेन अस्मत्संस्कृतिलोपोऽपि अवश्यंभावित्वेन समजनि। प्राचीनानि शास्त्राणि चास्मदीयानि न केवलं प्रतिरुद्धप्रगतिपथानि अपि तु लुप्तपराक्रमाणि छिन्नांगप्रत्यंगानि च समभूवन्। एवञ्चायुर्वेदोऽपि नैकविधामापदं अवाप्नोत्।

बहव एव आयुर्वेदग्रन्थाः सर्वंधस्मरस्य कालस्योदरे विलीनाः। याः काश्चन संहिता अवाशिषन् तासामपि कानिचिदंगानि छिन्नभिन्नानि कानिचित्तु जीर्यमाणानि जीर्णशीर्णानि चेति पुनः प्रकल्पितानीति दृश्यन्ते। 'कायबालग्रहोर्ध्वांगशल्यदंष्ट्राजरावृषानिति' अष्टौ अंगानि आयुर्वेदस्य पुरातनानि। तेषां मध्यात् शल्यशालाक्यतन्त्रं बौद्धराजशासनस्य अहिंसैकतत्त्वानुचरस्य काले प्रायो विनष्टम्। शारीरज्ञानार्थमपि कृतस्य मृतशरीरव्यवच्छेदनस्य 'हिंसा' इति संज्ञां प्रापितस्य कृते महानेव राजदण्ड आसीदादिष्टः दंष्ट्राचिकित्सापि नवीनागतेन राजाधिराजेन पुत्रीकृतस्य पाश्चात्यवैद्यकस्य प्रसारात् आर्यवैद्यहस्ताद्गलिता। इतराण्यपि अंगानि कालप्रातिकूल्याद्वा वैद्यानां औदासीन्याद्वा विस्मृतिपथं गतानि। एकमेवावशिष्यते तस्यायुर्वेदस्यांगं कायचिकित्सेति, येन खल्वायुर्वेदवणाः संप्रति कामपि वृत्तिं लभन्ते। तदेतत्साम्प्रतिकानां वैद्यानां एतावदेव वैभवं यच्चैः सामान्यतः केषांचित्कायिकानामेव रोगाणां वमनविरेचनात्मकैरुपायैरुपद्रवान् क्लेशकरान् दूरीकृत्य स्वास्थ्यं प्रतिष्ठाप्यते। या हि आयुर्वेदस्य विविधांगी चिकित्सा तास्ताः सूक्ष्मसूक्ष्मा अवस्थाः समवलोक्य क्रियमाणा पूर्ववैद्यानां यशोदायिनी समभवत्तस्याः सूक्ष्मतरं ज्ञानं अनुबन्धप्रणाशाद्विलुप्तप्रायम्। प्रागेवास्य चिकित्साकार्यस्य, आदौ तावदुपक्रम्यस्य रोगस्य यथावन्निदानं करणीयं भवति। निदानं त्वायुर्वेदान्तर्गतं सर्वथा त्रिदोषज्ञानायत्तम्। ते च त्रिदोषाः कथं कदा कुत्र च प्रादुर्भवन्ति, किं स्वरूपाः, कथं च तेषां कार्याणि सकलशारीरचेष्टाव्यापकानि भवन्ति, विकृताश्च ते कथं कुत्र च प्रतीयन्ते, विषयेऽस्मिन् निखिलभारतीयवैद्यानां तु का कथा, एकप्रान्तीयानाम्, एकग्रामस्थानां वा, किं बहुना सतीर्थ्यानामपि आयुर्वेदवणानामैकमत्यं न दृश्यते। अत एव सत्स्वपि आसेतुहिमाचलं चिकित्साकर्मकुशलेषु पण्डितप्रकाण्डेषु आयुर्वेदमार्तंडेषु चिकित्सापद्धतिरेषा न निश्चितफलवती भवति, न चापि शास्त्रसंज्ञामर्हतीत्येवंविधा आक्षेपाः सर्वत्र वैद्यमहोदयानामभिमुखमुपस्थाप्यन्ते।

२ विद्यापीठ-स्थापना

एतादृशेऽस्मिन् करालकलिकाले, परदास्यनिमग्ने च भारते वर्षे छिद्यमाने च



श्रीमान् पं. एन. माधव मिनोन आयुर्वेदाचार्य, मद्रास।
भूतपूर्व मन्त्री, नि. भा. व. आयुर्वेदविद्यापीठ।
अध्यापक, गवर्नमेन्ट स्कूल ऑफ इन्डियन मेडिसिन, मद्रास।

भारतीये वैभवे, निःशस्त्रीकृते च आर्यशास्त्रजाते, अस्तंगते चायुर्वेदकीर्तिगभस्तिमालिनि यैर्महोदयैरप्रार्थितस्वार्थैरायुर्वेदोन्नतिनिरतैर्भरतखण्डव्यापि आन्दोलनं सकलवैद्यवर्याणां संघटनं कर्तुं वैद्यमहासंमेलनस्योपक्रमो व्यधायि ते पदेकुलावतंसाः महामहोपाध्यायाः स्वर्गीय शंकरशास्त्रि-महाभागाः अद्यतनीयानां सकलवैद्यानां हार्दिकधन्यवादानर्हन्ति । तेषामसीमप्रयत्नैः (१९०७) ईसवीय वर्षे गोदावरी तीरे नासिकक्षेत्रे प्रथमं निखिलभारतं वैद्यमहासंमेलनं सुमहोत्सवेन समजायत ।

पण्डिताः ! द्विविधं किल भवति कार्यं आयुर्वेदपरिपाटीपरिपालनार्थं विधेयम् । प्रथमं तावत् आयुर्वेदशास्त्रपद्धत्या व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्य रक्षणं चेति । द्वितीयं तु तस्यैव शास्त्रस्य पठनपाठनपूर्वकं परंपरारक्षणमिति । द्विविधमिदं कार्यं भारतवर्षीयाः सर्वेऽपि वैद्याः कुर्वन्ति स्म अद्ययावदपि च कुर्वन्ति । किन्तु चिकित्साकर्मप्रवीणानां तेषां पारस्परिकमैकमत्यं न कदापि दृष्टिपथमागतं न चापि तैरध्यापितानां छात्राणां ज्ञाने एकसूत्रता दृष्टा । अथ प्रचलिते च सर्ववैद्यानां संमेलने पारस्परविचारविनिमयेन शास्त्रचर्चया चानुभूतयोगानां कथनश्रवणेन चैतेषामेकवाक्यता भवितुं प्रभवेदित्यासीदाकांक्षा तत्प्रवर्तकानां मनसि । तथा च वैद्यविद्याव्यवहारे नूतनत्वेन प्रविविक्षूणां छात्राणां आयुर्वेदज्ञाने कथमेकसूत्रता स्यादिति चिन्तयतां तेषां संमेलनधुरीणानां तत्र तत्र प्रचलितानां आयुर्वेदाध्यापनपद्धति विशेषाणां तस्मिन् समये एकीकरणं अशक्यप्रायमिति दृष्ट्वा ईदृशी मतिरभवत् तत् आयुर्वेदछात्राणां परीक्षाग्रहणार्थं समुत्तीर्णेभ्यश्च पदवीप्रमाणपत्रादिवितरणार्थं निखिलभारतीयमेकं विद्यापीठं प्रतिष्ठापनीयमिति विचारमेनमनुसृत्य संवत्सरद्वितीयान्तरे अद्यतनीयस्य निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठस्य प्राणप्रतिष्ठापनं कृतम् । सुयोग्यमेकं पाठ्यक्रमं सुनिपुणतया निश्चित्य यथासर्वेषां कर्णपथं गच्छेत्तथा तस्य उद्घोषणमपि कृतम् । तदनुसारेण १९१२ ईसवीये संवत्सरे कर्णपूरसंमेलनप्रसंगे छात्रस्यैकस्य (श्री० चतुरसेनवर्मा देहली) आयुर्वेदविशारदपरीक्षा गृहीता । विद्यापीठस्य प्रथमस्नातकोऽयं प्रथमश्रेण्यामुत्तीर्य स्वर्णपदकमप्येकमलभत । १९१४ चेसवीयवर्षे अल्पसंस्कृतज्ञानां हितकारिणी मातृभाषालेखनानुमोदिनी "प्राकृत वैद्यपरीक्षा" प्रचलिता । आयुर्वेदाचार्यपरीक्षा तु १९१५ वत्सरे समारब्धा । स्नातकचतुष्टयं च तस्यां समुत्तीर्णम् । अनया रीत्या धृतमूलस्य विद्यापीठवृक्षस्य पंचविंशतिवत्सरात्मके काले कियानेव विस्तारः संजात इत्येतद्दृष्ट्वा प्रमोदनिर्भरं भवति चेतः । द्वादशे वर्षे एको विशारद एव विद्यापीठतः समुत्तीर्णः । त्रयोदशे तु तेषां पंचकं संजातम् । चतुर्दशे वत्सरे विशारदानां नवकेन सह नवीन-प्रचलितायां प्राकृतवैद्यपरीक्षायां चत्वारश्छात्राः समुत्तीर्णाः, एवं च त्रयोदश स्नातका अभवन् । पंचदशे चास्मिन्नब्दे चत्वार आचार्याः, षोडश विशारदाः, चतुर्दश वैद्याश्च एवं चतुस्त्रिंशत् स्नातका विद्यापीठतो निष्क्रान्ताः । इत एव प्रारब्धं विद्यापीठस्य परीक्षात्रैविध्यं यद्याद्ययावत् प्रचलति । अथ प्राकृत "वैद्य" परीक्षायाश्चास्या (१९२२) संवत्सरात्प्रभृति

"आयुर्वेदभिषक्" इति नामान्तरं संजातम्। विद्यापीठस्नातकेभ्यश्च त्रिविधेभ्यः पदवीवितरणेन साकमेव प्रमाणपत्रमपि तत्तत्परीक्षायाः पृथक् पृथक् दीयते। प्रमाणपत्राणां चैतेषां, मूललिपिः आदितस्तदानींतनैः विद्यापीठसभापतिमहोदयैः महामहोपाध्यायेत्याद्यनेकप्राच्यपाश्चात्त्योच्चपदवीविभूषितैः श्रीगणनाथसेन सरस्वती महोभागैर्विनिर्मिता, सैव अद्ययावत् प्रचलति। वार्षिकीस्नातकसंख्या तु विद्यापीठस्य संप्रति (पंचदशवत्सरापेक्षया) दशगुणा संजाता। विद्यापीठ कार्यक्षेत्रमपि साधारण्येन निखिले भरतखण्डे प्रसृतमिति दृश्यन्ते।

३ वैद्यसंमेलनपत्रिका

निखिलभारतवैद्यमहासंमेलनस्य मुखपत्रमिति वैद्यसंमेलनपत्रिकाख्यस्य संमेलनवार्तापुस्तकस्य जनुः प्रयागक्षेत्रे (१९१५) ई० वत्सरे समभूत्। ततः प्रभृति पत्रिका चैषा नियतकाले "संमेलनस्थायिसमितिः"—इत्याख्यस्य 'आयुर्वेदमहामण्डलम्" इत्यपरनामधेयस्य तथा आयुर्वेदविद्यापीठस्य च कार्यालयतः प्रकाश्यते। महामहोपाध्यायाः परमश्रद्धेयाः पदेशास्त्रिणस्त्वस्याः पितृपदे स्थिता आसन्। पण्डितवरेण्याः किशोरीदत्तशास्त्रिणः, वाजपेयि सूर्यप्रसादशास्त्रिणः, जगन्नाथप्रसादशुक्लाश्च सम्पादकत्वेनैनामलमकुर्वन्। ततश्च काले काले बहूनां पण्डितानां सम्पादकत्वे स्थितायाश्चैतस्याः पत्रिकायाः। अद्य यावत् प्रकाशनं भवति। आरम्भकालेत्वे तस्याः त्रैमासिकं रूपमासीत्। अनन्तरं च संवत्सरद्वयादब्दत्रयपर्यन्तं द्वैमासिकी अभवत्। (१९२०) ई० संवत्सरादारभ्य च अद्ययावत् सा मासिकी संजाता। अस्यामेव पत्रिकायां सर्वोऽपि विद्यापीठीयो वृत्तान्तः साधारण्येन प्रकाशं नीयते काले काले च इतराण्यपि पुस्तकानि स्वतन्त्रतया मुद्राप्यन्ते। तथापि यथा महामण्डलस्य तथैव विद्यापीठस्यापि इयमेव मुखपत्रिकेति संज्ञामर्हति।

४ विद्यापीठकार्यालयः

वार्षिकपरीक्षाणां पूर्वोत्तरकार्यप्रबन्धः, परीक्षोदर्कनिर्माणं, तत्प्रकाशनं चेत्येवमादिकं यत्कार्यजातं विद्यापीठ कर्तव्यत्वेन निश्चितं तन्निर्वाहार्थं विद्यापीठकार्यालयस्य स्थापना विहिता। स च कार्यालयः आदितः (१९१८) ई० संवत्सरं यावत् प्रयागक्षेत्रे व्यवस्थित आसीत् अनन्तरं च स मद्रपुरमगमत्। तत्र च षट्समावधि स्थित्वा (१९२४) वत्सरे च कर्णपूरं प्राप्तः। संवत्सरसप्तकं च तत्र तस्य व्यतीतम्। तदनन्तरं (१९३०) ई० वत्सरे एकविंशे च वैद्यमहासंमेलने महीशूरनगरे सर्वसम्मत्या निश्चितं यत् तेषु तेषु प्रान्तेषु विद्यापीठकार्यप्रचारः सम्यक्तया भवेदिति कार्यालयस्य संक्रमणमावश्यकमिति। अथ महाराष्ट्रे प्रत्यक्षतस्तु पुण्यपत्तने तस्य स्थापना करणीयेत्यत्र सर्वेषां सम्मत्या तदानींतनैः सम्मेलनसभापतिभिः महामहोपाध्यायश्रीगणनाथसेनमहाभागैर्निर्णीतम् विद्यापीठकार्यनिर्वाहणाय च सकलद्वैद्यसेव-

कोऽयं जनः मंत्रिपदे नियोजितोऽद्यावधि एतत्कार्ये व्यापृतोऽस्मि । विद्यापीठस्य अध्यक्षोपाध्यक्षादयश्च ये चान्येऽपि पदाधिकारिणः अद्यतनीया भूतपूर्वाश्च सन्ति तेषां नामावलिः १ परिशिष्टे द्रष्टव्या ।

५ विद्यापीठपरीक्षाः

विद्यापीठस्य किल परीक्षात्रितयं विद्यते । तत्रादितः 'वैद्य' परीक्षार्थं स्वास्थ्य-विज्ञानं, निदानं, शारीरं, निघण्टुः, चिकित्सा रसशास्त्रंचेति षड्विषया नियुक्ता आसन् । विशारदपरीक्षार्थिनां कृते तु विषयषट्कमेतदासीदेव । चिकित्साविषयके च प्रश्नपत्रे कौमारभृत्यरसायनवाजीकरणानामपि आसीदन्तर्भावः । अपि च शल्यशाला-क्यागदतन्त्राणां पत्रद्वितयं आधिक्येन दीयते स्म । आचार्यपरीक्षाविषयास्तु स्वास्थ्य-विज्ञानं, रोगनिदानं, कौमारभृत्यं, प्रसूतितन्त्रं, कायचिकित्सा, रसशास्त्रं, शल्यशा-लाक्यं, मानसरोगाधिकारश्चेति अष्टौ प्रकल्पिता आसन् । वाक्परीक्षास्तु प्रारम्भतः सांप्रतं यावद्विद्यन्त एव । 'वैद्य' परीक्षा च आयुर्वेदभिषगित्यपरनामधेया अनन्तरं शल्यतन्त्रागदतन्त्राभ्यामुपबृंहिता । आचार्यपरीक्षायां व्यवहारायुर्वेद (Medical juresprudence) विषयस्य उपयुक्तता सर्वेषामेव प्रतीता आसीत्, किन्तु तद्वि-षयप्रधानग्रन्थस्याभावे आदौ तत्परीक्षणमशक्यप्रायमभूत् । परन्तु विरचिते चैत-द्विषयके पुस्तके विषयस्यास्यापि परीक्ष्यत्वेन संग्रहो जातः । ततोऽपि आयुर्वेदाचार्य-परीक्षेयं सर्वासां वरिष्ठा, उत्तीर्णाश्च आयुर्वेदाचार्याः, आयुर्वेदप्रवीणा इत्येवं सर्वजन-सम्मानार्हा भवेयुरिति कृत्वा याः किल आयुर्वेदस्य मूलसंहिताः 'बृहत्त्रयी' इत्याख्या-तास्तास्वपि विद्यापीठस्नातकैः पारंगतैर्भाव्यमिति मनसि निधाय विद्यापीठाभिमानिभिः चरकसुश्रुताष्टांगसंग्रहेषु तिस्रः प्रश्नपत्रिकाः, आचार्यपरीक्षायां आवश्यकत्वेन प्रवेशिताः ।

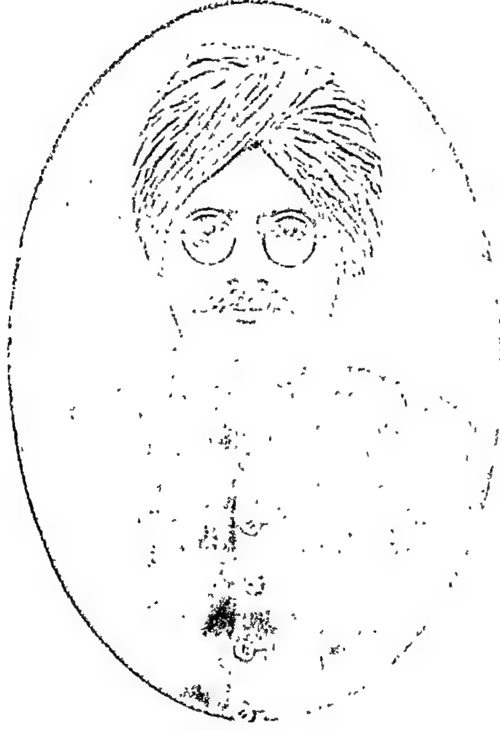
आयुर्वेद-भिषक्-परीक्षायां स्वकीयप्रान्तीयभाषायामुत्तरलेखनमादौ प्रकल्पितं तत्तथैव अद्य यावत प्रचलति । विशारदाचार्ययोरपि छात्राः कंचित्कालं संस्कृतेतर-भाषायामपि उत्तराणि लिखितुं प्रभवन्ति स्म । परं तु (१९१८) ई० वर्षतः संस्कृत-भाषामवलम्ब्यैव उत्तरं लेखनीयमिति विद्यापीठेन नियमः कृतः । अत्रापि स्त्रीपरीक्षा-र्थिनां कृते हिंदीभाषालेखनं कंचित्कालं स्वीकृतमासीत् , कालान्तरे तदपि परिवर्तितम् । ततः प्रभृति सर्वेषामेव आचार्यविशारदानां गीर्वाणभाषयैव लेखनं निरपवादमावश्यक-मस्ति । किं बहुना सांख्यकारिकातर्कसंग्रहयोरपि सम्यगध्ययनं विद्यापीठस्य उपस्नात-कानां आवश्यकमिति एकोनविंशे संमेलने (१९२८ ई० वत्सरे) निश्चित्य सांख्य-कारिकातर्कसंग्रहसंस्कृतभाषाज्ञानं चेत्ययं नवीनो विषयः विशारदपरीक्षायां दशमः समावेशितः । स च (१९३२) ई० वत्सरात्प्रभृति कतिपयेषु विषयेषु प्रागु-त्तीर्णानां चापि विशारदपरीक्षार्थिनां कृते अवश्यमेव दीयमानो जातः । वाचिकपरी-क्षायां तु प्रान्तीयभाषायामुत्तराणि साम्प्रतमपि स्वीक्रियन्ते, तथापि उपरिनिर्दिष्टया योजनया छात्राः संस्कृतभाषायामपि मुख्यत उत्तराणि दातुं प्रभवन्तीति दरीदृश्यते ।

६ विद्यापीठस्नातकाः

अधुनैव कृतान्निर्देशाज्ज्ञायते किल यत् विद्यापीठेन यद्यपि परीक्षाकार्यं (१९१२) ई० वर्षे प्रारब्धं तथापि तिसृणामपि परीक्षाणां कार्यं (१९१५) ई० वत्सरात्प्रभृति प्रतिसंवत्सरं यथोचितं प्रचलितमिति। एतावत्कालपर्यन्तं विद्यापीठात्पंचदश विशारदाः, चत्वारश्च भिषजः, एवमेकोनविंशतिश्छात्रा एव स्नातकत्वेन बहिर्निर्गता आसन्। अतोऽनन्तरं यावदष्टादशवत्सरं विद्यापीठेन प्रयागक्षेत्रे वसतिः कृता। निर्गते च तत्क्षेत्रात् विद्यापीठकार्यालये (१८) अष्टादश आचार्याः (९५) पंचनवतिर्विशारदाः, (८५) पंचाशीतिश्च भिषजः, एवं पूर्वान् एकोनविंशतिस्नातकान् संयोज्य (२१७) सप्तदशाधिकं शतद्वयं स्नातकानामपि निर्गतम्। ततस्ततः मद्रपुरीये पंचवत्सरात्मके काले आचार्यविशारदभिषजो यथाक्रमं (४७ + १७४ + २३४) एवं निर्दिष्टाः (४५५) पंचपंचाशदधिकचतुःशतं निष्क्रान्ताः। स्नातकयोगस्तु (६७२) द्विसप्तत्यधिकषट्शतपरिमितोऽभूत्। ततः परं कर्णपुरे स्थापितेन विद्यापीठकार्यालयेन त्रिविधेभ्यः (१०७ + ३२२ + ५९५ = १०२४) चतुर्विंशत्यधिकदशशतसंख्याकेभ्यः स्नातकेभ्यः जनुः प्रदत्तम्। प्राग्जनितैश्च सह मिलित्वा स्नातकसंख्या (६७२ + १०२४ = १६९६) साधारण्येन सप्तदशशतमिता कृता। अतोऽनन्तरं विद्यापीठकार्यालयः पुण्यपत्तनं पुण्यतरमकरोत्। तत्र च सः (१९३१) अब्दं प्रारभ्य अद्यावधिकालं (१९३५) उषित्वा पंच वर्षाणि, कार्यं समपादयत् स्नातकांश्च (५२ + २८७ + ७१२ = १०४५) सामान्यतः सार्धदशशतमितान् पदवीप्रमाणपत्रवितरणपूर्वकं समभावयत्। अद्यतनीया पुनर्विद्यापीठस्नातकसंख्या (२७४१) सप्तविंशतिशतादपि अधिका वर्तते।

७ विद्यापीठपरीक्षाकेन्द्राणि

विद्यापीठस्य प्रथमे परीक्षावर्षे (१९१२) परीक्षादित्सूनां सप्ताष्टानां छात्राणां आवेदनपत्राणि समागतानि। परं च एक एव छात्र उपस्थितोऽभूत्। स च यथाविधि लिखितवाचिकपरीक्षां दत्त्वा यथानियममेव प्रथमश्रेण्यां उदतरत्। तत्कृते एकमेवाद्वितीयमासीत्केन्द्रस्थानम्। अनन्तरं च यथा यथा परीक्षार्थिनां भिन्नभिन्नस्थानगतानां संख्या परिवृद्धा तथा तथा विद्यापीठेनापि विभिन्नस्थानेषु केन्द्राणि स्थापितानि। छात्राणां सौकर्यार्थं नियमोऽप्येवंविधो व्यधायि यद्दशाधिकानां छात्राणामुपस्थितिसंभवे तत्स्थाने केन्द्रमेकं व्यवस्थापयित्वा परीक्षाप्रबन्धः कार्य इति। एवं च केन्द्रसंख्यावृद्धिः संजाता। साम्प्रतं यानि केन्द्राणि विद्यन्ते तेषां मध्यात् कानिचित् आदित एव निर्मितानि, अन्यानि कानिचिन्नवीनानि सन्ति। कानिचित्तु प्राङ्निर्मितान्यपि कालान्तरे कारणान्तरैरपावृतानि सन्ति। केन्द्रनामावलिः ३ परिशिष्टे द्रष्टव्या। प्रतिसंवत्सरं प्रतिकेन्द्रं नियुक्ते परीक्षासप्ताहे प्रत्यहं प्रातः सायमिति कृत्वा प्रश्नपत्रद्वितयं प्रदीयते। अन्ते च वाचिकपरीक्षा गृह्यते। प्रचलितायां च लेखनपरीक्षायां विद्यापीठनिर्वाचिता



श्रीमान् आयुर्वेदमार्तण्ड पं. रघुवरदयालु भट्ट कानपुर।

भूतपूर्व मंत्री नि. भा. व. आयुर्वेदविद्यापीठ।

निरीक्षका अवेक्षणकार्यं कुर्वन्ति, तथा अन्यदपि आवश्यकं साहाय्यं केन्द्राध्यक्षाय प्रददति। वाचिकपरीक्षा च केन्द्राध्यक्षः स्वयं अन्यैश्च मुखपरीक्षकैः सह गृह्णाति। एवं च केन्द्रव्यवस्थायां केन्द्राध्यक्षस्यैव वर्तते सर्वाधिकारः। तस्य कार्यजातमपि बहुविधं वर्तते। परीक्षासप्ताहे तथा प्राक्पश्चाच्च केन्द्राध्यक्षः विद्यापीठकार्यव्यापृतो भवति। एवंप्रकारेण यैः किल विद्यापीठस्य तेषु तेषु केन्द्रस्थलेषु सर्वमपि प्रबन्धं कृत्वा परीक्षाकार्यं प्रतिवर्षं यथावत्संपाद्य विद्यापीठं नितान्तमुपकृतं ते अतीव धन्यवादार्हाः, यतो हि सर्वमेतत्साहाय्यं विनामूल्यमपि सशरीरक्लेशमपि आयुर्वेदप्रेम्णैव कृतवन्तः कुर्वन्ति च। तेषां नामावलिः २ परिशिष्टे मुद्रितास्ति।

८ विद्यापीठस्य परीक्षणकार्यम्

विद्यापीठस्य तिसृणां परीक्षाणां (क्रमशः ११+१०+८) एकोनत्रिंशत् प्रश्नपत्रकाणि साम्प्रतं विद्यन्ते। तेषां च कृते प्रतिवर्षं सुयोग्यास्तत्तत्प्रान्तललामभूताः परीक्षका निर्वाच्यन्ते, तेषां कृते विद्यापीठविहिताः परीक्षणनियमास्तत्फलप्रकाशनादिनियमाश्च पूर्वप्रकाशितायां विद्यापीठ नियमावल्यां द्रष्टव्याः। योऽयं विशेषोऽस्मदीये विद्यापीठे दृश्यते यश्च नान्यत्र क्वचिदपि विश्वविद्यालयेषु दृष्टिपथमायाति सोऽपि विद्यापीठनियमावल्यां (७ नियमस्य 'व'—अंशे) द्रष्टव्यः। विद्यापीठस्य सर्वेऽपि परीक्षकाः विद्यापीठपरीक्षकत्वं शास्त्रभक्त्या एव स्वीकुर्वन्ति। न किमपि दक्षिणारूपेण तेभ्यो दातुं विद्यापीठं प्रभवति। उत्तरपुस्तकसंख्या तु साम्प्रतं प्रतिविषयं त्रिशतस्यापि समीपं गच्छति। अतश्चैतेषां परीक्षकमहाभागानामुपकृतिभरान् कैः शब्दैः प्रकटीकुर्यामिति नाहं जानामि। एतेषां च शुभनामानि ४ परिशिष्टे प्रदर्शितानि सन्ति।

९ विषयप्रधानग्रंथाः

प्राचीने काले गुरव एव स्वशिष्येभ्यः अन्नवस्त्रप्रदानपूर्वकं विद्या वितरणं कुर्वन्ति स्म। अनन्तरं तु तत्कठिनं अनुदिनम कठिनतरं संजातम्। साम्प्रतं विद्याप्राप्त्यर्थं शुल्कप्रदानप्रचारः सर्वत्रापि दृश्यते। प्रभवन्ति च शिष्याः शुल्कं प्रदातुम्। निःशुल्का च विद्या न समीचीनतया दीयते स्वीक्रियते चेति सार्वजनिकं मतं दरीदृश्यते। अतो व्यक्तिशः संघशो वा आयुर्वेदाध्यापकैः महाविद्यालयाः विद्यालयाः पाठशालाश्च कश्चित् स्थापिताः, स्थाप्यन्ते च प्रत्यब्दं काश्चिन्नवीनाः। एतद्देशेषु विद्यावितरणमंदिरेषु श्रमविभागेनैव विद्याप्रदानं क्रियते, युज्यते च तदेव कर्तुम्। अथ यदा सकलमायुर्वेदशास्त्रमध्यापयितुं नैके आचार्या अध्यापका वा नियुज्यन्ते तदा विषयप्रधानेनैव अध्यापनेन सर्वेषां सौकर्यं भवति। आर्षसंहितासु एकैकस्यां सर्वेऽपि विषयाः संगृहीताः सन्ति। अतस्तस्य तस्य विषयस्य कृते तासु संहितासु अन्येषु च ग्रंथेषु ये ये पाठ्यमानाः योग्याः भवेयुः तांस्तांश्च ततस्ततः संकलय्य स्वकीयां टिप्पणपुस्तिकां निर्माय तदनुसारेण अध्यापकः पाठयति। अनया च रीत्या बहुतिथं कालं

अध्यापनकार्यं कुर्वतां आचार्याणां एतादृशीः टिप्पणपुस्तिकाः सर्वा एकीकृत्य तस्य तस्य विषयस्य स्वतन्त्रं ग्रंथं निर्मातुं सुशकं भवति। एतादृशाः केचन विषयप्रधाना-ग्रंथाः गीर्वाणभाषायां प्रान्तीयभाषासु वा निर्मिताः संगृहीताश्च सन्ति। यथा—व्यवहारायुर्वेदः पं. किशोरीदत्तशास्त्रिणां आयुर्वेदमार्तण्डनां, योनिव्यापत्तन्त्रं कौमारभृत्यं प्रसूतितन्त्रं च डॉ. म्हसकर महोदयानां, शल्यतन्त्रं पं. धर्मानन्दशास्त्रिणां आयुर्वेदाचार्याणां, स्वस्थवृत्तं पं. राजेश्वरदत्तशास्त्रिणां आयुर्वेदाचार्याणां, अन्यदपि स्वस्थवृत्तं डॉ. भा. गो. घाणेकरमहाशयानां आयुर्वेदाचार्याणां, प्रत्यक्षशारीरं म. म. श्रीगणनाथसेनसरस्वतीमहोदयानां, तथा च विषतन्त्रं नानलशास्त्रिणां आयुर्वेदाचार्याणाम्। अन्यांश्चाप्येतादृशान् विषयप्रधानान् ग्रंथान् निर्मातुं संग्रहीतुं च केचन विद्वांसः प्रयतमानाः सन्ति। आशास्यते च नातिदूरस्थे भविष्यति काले सर्वेष्वेव आयुर्वेदीयविषयेषु स्वतन्त्राः ग्रंथा भवेयुः अध्यापनसुलभाः।

१० विद्यापीठपदवीप्रमाणपत्राणि

मान्याः, सुविज्ञातमेव सर्वेषां यद्विद्यापीठपरीक्षोत्तीर्णेभ्यः आयुर्वेदभिषक्, आयुर्वेदविशारदः, आयुर्वेदाचार्यः, इत्येवंविधास्तिस्रः पदव्यः समर्प्यन्त इति। निखिलभारतायुर्वेदविद्यापीठस्य प्रतिष्ठापनायाः पूर्वमेव काश्चन आयुर्वेदाध्यापनसंस्था आसन्। आनन्तरिके च काले काश्चिन्नवीनाः संस्थापिताः सन्ति। सर्वाभिरेताभिः स्वकीयपाठ्यक्रमानुसारं समुत्तीर्णेभ्यश्छात्रेभ्यः स्वकीयाः पदव्यः समर्प्यन्ते प्रमाणपत्राणि वा वितीर्यन्ते। विद्यापीठपरीक्षास्तु सकलभारतीयवैद्यसम्मतपाठ्यक्रमानुसारेण भवन्ति, अतः परीक्षाणामेतासां किमपि वैशिष्ट्यं विद्यते इति सर्वे मन्यन्ते। तत्तत्प्रान्तीयेभ्यः पाठशालाविद्यालयेभ्यः तत्तत्प्रान्तस्थेभ्यो वा व्यक्तिशो गुरुभ्यः छात्राः समागत्य विद्यापीठपरीक्षां ददति पदवीश्च प्राप्नुवन्ति। परारि (१९३३) ई० वर्षस्य मार्चमासि संयुक्तप्रान्तीयया 'बोर्ड ऑफ इंडियन् मेडिसिन्" इत्याख्यया राजशासनसंस्थया निखिलभारतीयविद्यापीठपदवीप्रमाणपत्राणि सम्मानितानि। अन्यप्रान्तीयाश्चापि राजशासनसंस्थाः एवमेव अचिरान् कुर्युरिति सुस्पष्टं प्रतिभाति। मद्रपुरे तु सुमहानेक आयुर्वेदविद्यालयः राजकीयधनव्ययेन प्रचाल्यते। अथ भविष्यति काले सर्वाभिरनेकाभिर्वा प्रान्तीयराजकीयसंस्थाभिः सम्मानितासु विद्यापीठपदवीषु विद्यापीठपरीक्षाणां वैशिष्ट्यं अधिकतरत्वेन मन्यमानाः निखिलभारतीयाश्छात्राः विद्यापीठीया एव पदवीः कामयमानाः भिषग्विशारदाचार्यपरीक्षास्तितीर्षवो विशेषतो भविष्यन्ति। अखिले भारते वर्षे आयुर्वेदाध्यापनपद्धतिरेकसूत्रा भवितुमर्हतीति सम्यग् विचार्य तत्तदायुर्वेदशिक्षणसंस्थानां कथमेकीकरणं विधेयं, विद्यापीठेन सह तासां सम्बद्धता च कथं करणीया इत्येतद्विषये विद्यापीठेन उपक्रमः कृत एव। तस्मिन्नेव यथापूर्वं किन्तु दीर्घतरप्रयत्नैः प्रचाल्यमाने कश्चन एतादृशः कालः उपस्यते यदा सर्वा अपि आयुर्वेदशिक्षण-

संस्थाः विद्यपीठेन सह सम्बद्धा भवेयुः, सर्वत्र च एक एव पाठ्यक्रमः प्रचलेत्, विद्यापीठनिर्मितानि च पदवीप्रमाणपत्राणि सर्वमान्यानि भवेयुः। भिन्नभिन्नसंस्थानां स्वकीयोपाधिवितरणलोभोऽपि तदा नश्येत्। क्षुद्रहेतुं मनसि निधाय याभिः संस्थाभिः साम्प्रतं पदवीप्रमाणपत्राणां विक्रय इव क्रियते तासां तु तत्कर्म यद्यैव विद्वज्जनतिरस्कृतं संजातं तत्तदानींतने काले अवश्यमेव उपहास्यतां गच्छेत्। याश्च संस्थाः विद्यापीठेन संबद्धाः सन्ति, याभिश्च अधुनैव सम्बद्धता प्रार्थिताऽस्ति, तासां नामावलिः ८ परिशिष्टे द्रष्टव्या।

'श्रीधूतपापेश्वर आयुर्वेदट्रस्ट पनवेल' इत्याख्यया संस्थया स्वकीयनियमानुसारेण एवं निश्चितं तदनुरोधाच्च उपक्रमोऽपि व्यधायि यद्विद्यापीठस्य तिसृषु परीक्षासु प्रतिवत्सरं ये स्नातकाः सर्वप्रथमा भवन्ति तेभ्यश्च आचार्यविशारदभिषग्भ्यः क्रमेण १ श्रीधूतपापेश्वर पारितोषिकं (२५ मुद्रात्मकं) २ कै. विष्णुशास्त्रिपुराणिक पारितोषिकं (२१ मुद्रात्मकं) तथा च ३ कै. कृष्णशास्त्रिपुराणिक पारितोषिकं (१५ मुद्रात्मकं) वितरणीयम्। एवं संस्थया चानया गतसंवत्सरत्रितयं स्वकीयप्रशस्तिपत्रप्रदानपुरःसरं वैद्यमहासम्मेलनसभापतिहस्तेनैव एतत्पारितोषिकप्रदानं नियोजितम्। तदर्थं च संस्थेयं नितरां धन्यवादार्हा। तथा च यैः किल विद्यापीठस्नातकेभ्यः स्वर्णरौप्यपदकानि प्रदत्तानि तेषामपि नैकसज्जनानां उपकारभरं विद्यापीठं शिरसि धारयति। तेषां च तालिका ५ परिशिष्टे दर्शिता।

११ विद्यापीठोत्कर्षोपायाः

पण्डितवरेण्याः, परिस्थितिमेतादृशीं विद्यापीठीयां समवलोक्य यान् खलु उत्कर्षोपायान् प्रदर्शयितुं उद्युंजते मनः, तेषां दिग्दर्शनमेव क्रियते।

१ पूर्वेतिहासो विद्यापीठस्य परमोज्ज्वल इति नास्त्यत्र कोऽपि संशयलेशः। किन्तु भारते वर्षे नवनवीनानां समागतानां शास्त्रीयत्वादेव प्रसारं प्राप्तवतीनां आयुर्वेदेतरचिकित्सापद्धतीनां प्रमुखतोऽपि आयुर्वेदोत्कर्षचिकिर्षूणां वैद्यानां एतदवश्यं करणीयं वर्तते यत्तैः अन्येषु चिकित्साशास्त्रेषु यत्किंचिदुपयुक्ततरं भवेत्तत्सर्वं आत्मसात् करणीयम्। तथा च प्रयतेत यथा आयुर्वेदः सर्वेषां प्रत्ननूत्नानां व्याधीनां प्रतीकारं कर्तुं प्रभवेत्।

२ आदित एव विद्यापीठेन आयुर्वेदछात्राणां केवलं परीक्षाग्रहणमेव अंगीकृतम्। परं च विद्याप्रसारार्थं तस्य प्रमुखं कर्तव्यमेतदेव विद्यते, यत्तेषु तेषु प्रान्तेषु विद्यापीठाधिकृताः आयुर्वेदाध्यापनसंस्थाः संस्थापनीयाः प्रचालनीयाश्च। स्वाधिकारिविद्यालयाभावे सम्बद्धविद्यालयेनापि अंशतः कार्यं भवेत्। अतस्तदर्थमचिरादेव कश्चित् दृढतरः प्रयत्नो विधेयः।

३ 'वैद्यसम्मेलनपत्रिका' नियमेन प्रतिमासमेव प्रकाशनीया, तथा च तस्यां आयु-

वेदसंशोधनात्मकं आयुर्वेदोपबृंहणात्मकं च विषयजातं विवेचनीयं नान्यत्किंचित् चर्वितचर्वणं पिष्टपेषणं धूलिप्रक्षेपणं वा ।

४ विद्यापीठकार्यस्य सम्यक् सम्पादनार्थं कार्यालयस्य चिराय एकस्थलस्थापनमेव वरम् । वारंवारं च तस्य संक्रमणेन नित्यस्यैव कार्यस्य सम्पादने अधिकारिणां नवीनत्वेन संयोजितानां शक्तिह्रासो भवति विशेषं किमपि कार्यं कर्तुं नावसरोऽवशिष्यते । तेषु तेषु प्रान्तेषु व्यवस्थितानां पाठशालाविद्यालयानां प्रत्यक्षत एव सम्यगवलोकनं कृत्वा तेषां एकीकरणार्थं प्रयतमानस्य विद्यापीठमन्त्रिणः, समितेर्वा एतदर्थं नियुक्तायाः, सर्वविधं सौकर्यं यथा भवेत्तथा करणीयम् ।

५ विद्यापीठपरीक्षास्तु एवंविधाः करणीयाः पाठ्यक्रमश्च एतादृशो रक्षणीयः, यत् स्नातकैः आयुर्वेदपारंगतैरपि केवलमेव एकं शास्त्रमधीयानैः, अत एव एकाक्षैरिव न कदापि भाव्यं, प्रत्युत यतो हि प्राणिनां जीवनमरणसंलग्नं आयुर्वेदशास्त्रं सर्वेषां शास्त्राणां मूर्ध्नि तिष्ठति तस्मात् तदनुयायिभिर्भिषग्भिर्वैद्यैः यत्सत्यं बहुश्रुतैर्भाव्यम् ।

६ अनुदिनं वर्धत एव विद्यापीठस्नातकानां संख्या । नियतं सा इतोऽप्यधिकतरां वृद्धिं यास्यति । प्रतिवर्षं विद्यापीठपरीक्षाः कठिनतरा जायन्ते इति केचिद्वदन्ति । केचित्तु तासां इतोऽपि काठिन्यं वाञ्छन्ति भवतु नाम किंचित्काठिन्यं वा सौलभ्यं वा, किन्तु स्नातकाः सर्वे स्वकर्मकुशलाः ज्ञानविज्ञानयुक्ताश्च भवेयुः, इत्येवंविधा विद्यते विद्यापीठस्य अपेक्षा । दातव्यौषधालयाः, रुग्णालयाः, औषधिनिर्माणशालाः, रसशालाः, विद्यालयाः, अन्ये चापि एतादृशाः कार्यालयाः राजकीयधनव्ययेन, अथवा लोकलबोर्ड, म्युनिसिपालिटी इत्याख्याभिर्लोकनिर्मिताभिः संस्थाभिः प्रचालिता वा बहवः सन्ति सर्वेषु प्रान्तेषु । ऐतेषु स्थानेषु यथा विद्यापीठस्नातका एव नियोजिता भवेयुस्तथा विद्यापीठेन प्रयतितव्यं तेन च तेषां वृत्तिलाभो भवेत्, लभ्येत च तैः स्वकर्मकुशलतां प्रकटयितुमवसरः ।

७ केन्द्रस्थानानि विद्यापीठपरीक्षाणां साम्प्रतं यावन्ति सन्ति तानि प्रायः सर्वासामेव परीक्षाणां कृते निर्मितानि सन्ति । तन्माऽभूत् । भिषक्परीक्षार्थं नियमानुसारेण यद्यपि बहूनि केन्द्राणि भवेयुस्तर्हि न कापि हानिः । किन्तु विशारदाचार्यपरीक्षयोः कृते विशिष्टान्येव केन्द्राणि रक्षणीयानि । येषु नगरेषु अत्युच्चशिक्षणव्यवस्था भवेत तेषु एव नगरेषु आचार्यपरीक्षा ग्राह्या । नान्यत्र । केन्द्रव्यवस्था च विद्यापीठेन सर्वत्र विनापि दक्षिणां क्रियते सा न चिराय कार्यकारिणी भवेत् ।

८ विद्यापीठस्य परीक्षकाः सर्वेऽपि विनामूल्यमेव परीक्षणकार्यं कुर्वन्ति । सर्वेऽपि प्रायः विपुलव्यवसायिनो वैद्याः सन्ति । अस्तैरेतत्परीक्षणकार्यं स्वकीयव्यवहारसम्पादनादनन्तरं यथावसरमेव क्रियते । किन्तु बहुधा विद्यापीठेन नियोजिते कालावसरे एतत्परीक्षणं न समाप्तिं गच्छति । केचन परीक्षकाः उत्तरपुस्तकानि निरीक्ष्यापि गुणपत्रके गुणांकलेखनं गुणांकयोजकस्य लेखकस्यैवैतत् कर्म इति मत्वा उपेक्षन्ते ।

उत्तरपुस्तकानां प्राप्तये परीक्षकाः नैकवारं मन्त्रिणा सांञ्जलिवद्धं दण्डवत् प्रणिपत्य च पुनः सूचनापत्रद्वारा प्रार्थ्यन्ते। तथापि कानिचिदुत्तरपुस्तकानि परीक्षाफलप्रकटन-दिवसे एव कार्यालयं प्राप्तानीति वर्तते अनुभवः। इतरविद्यापीठानि यथा कुर्वन्ति तथैवैतत्कार्यं यदि दक्षिणाप्रदानपूर्वकं क्रियेत तर्हि तद्यथानियमं सम्पद्येत इति दृश्यते।

९ विषयप्रधानग्रंथाभावे आयुर्वेदाध्यापनं सर्वत्र त्रुटितं भवति। एतावत्काल-पर्यन्तं यानि खलु एतादृशानि पुस्तकानि विरचितानि सन्ति तानि न विद्यपीठस्या-पेक्षामनुसृत्य कृतानि चापि पर्याप्तानि सन्ति। ये किल विद्वांसः एतत्कार्यं कर्तुं प्रभवन्ति तेभ्यो विद्यापीठेन इत उत्तरं अधिकतरं प्रोत्साहनं प्रदेयम्।

१० आदौ तावत् विद्यापीठेन स्वकीयपाठ्यक्रमः। सर्वथा कार्यक्षमो यथा स्यात्तथा प्रयतितव्यम्। अनन्तरं च आयुर्वेदसंस्थाः तास्ताः स्वसम्बद्धाः करणीयाः। सम्बद्धता-विषये नवीना निश्चिता नियमा अवश्यमेव विधातव्याः। अतोऽनन्तरं इतरसंस्थाभिः पदवीप्रमाणपत्रवितरणं न करणीयं इति नियमः कर्तुं युज्यते। अनेनैव मार्गेण विद्या-पीठीयान्येव पदवीप्रमाणपत्राणि भारतवर्षे सर्वमान्यानि भवेयुः।

श्रेष्ठाः, एतावन्तं विद्यापीठस्य पंचविंशतिवत्सरात्मकं वृत्तान्तं श्रीमतां पुरस्तात् प्रतिष्ठाप्य आयुर्वेदोद्धारपरान् वैद्यवरान् नमस्कृत्य "उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमव-सादयेत्" इति श्रीमद्भगवदुक्तेः स्फूर्तिदायिनीं स्मृतिं कृत्वा विरम्यते।

पूना } भिषगाचार्यः, त्र्यम्बक शास्त्री आपटे



पदाधिकारिणः*

(प्रथमं परिशिष्टम्)

१९१७ सभापति—वैद्यरत्न पं० डी० गोपालाचार्लु मद्रास ।

उपसभापति—१ आयुर्वेदमार्तंड पं० लक्ष्मीरामस्वामी जयपुर। २ वैद्यरत्न कविराज योगीन्द्रनाथसेन एम० ए० विद्याभूषण कलकत्ता ।

उपमंत्री—१ पं० गिरिजाशंकरशर्मा वैद्य प्रयाग । २ डॉ० लक्ष्मीकांतमणि वैद्य एल० एम० पी० प्रयाग ।

मंत्री—चि० चू० पं० ठाकुरप्रसादमणि वैद्य, प्रयाग ।

१९१९-१९२४ सभापति—वैद्यरत्न कविराज योगींद्रनाथसेन विद्याभूपण ए० ए० कलकत्ता ।

उपसभापति—आयुर्वेदमार्तंड लक्ष्मीरामस्वामी जयपुर। २ वैद्य पं० जगन्नाथ-प्रसाद शुक्ल, प्रयाग ।

उपमंत्री—१ आयुर्वेदभूषण ए. दुरायस्वामी अयंगार एम. एस. सी. मद्रास । २ राजवैद्य ए. सुब्रह्मण्य अय्यर, बी. ए. एम. बी. बी. एस. मद्रास ।

मंत्री—आयुर्वेदाचार्य एन० माधव मेनन. आयुर्वेदभूषण एम. एस. सी. मद्रास ।

१९२६-२७—उपमंत्री पं० प्रसादीलाल झा, कानपुर ।

मंत्री—पं० किशोरीदत्तशास्त्री, कानपुर ।

१९२७ उपमंत्री—सत्यदेवपांडेय वैद्यरत्न आयुर्वेदाचार्य, वेदान्तशास्त्री ।

१९२९ उपमंत्री—पं० सत्यनारायणमिश्र ।

मंत्री—पं० रघुवरदयालुभट्ट काव्यतीर्थ वैद्यशास्त्री ।

१९३० उपमंत्री—पं० सत्यदेवपांडेय ।

वर्षम् १९३१ वत्सरस्य कृते महीशूर संमेलने निर्वाचिताः—सभापतिः पं० यादवजी त्रिकमजी आचार्य आयुर्वेदमार्तण्ड बम्बई ।

उपसभापतिः—१ पं० कृष्णशास्त्री देवधर प्राणाचार्य नासिक । २ पं० गणेश-शास्त्री जोशी वैद्यभूषण पूना ।

विद्यापीठोपमंत्री—१ पं० वामनशास्त्री दातार वैद्यभूषण नासिक । २ पं० अनंतशास्त्री जोशी आयुर्वेद-विशारद पूना ।

वर्षम् १९३२ ग्वालियर संमेलने निर्वाचिताः सभापतिः—पं० कृष्णशास्त्री देव-धर प्राणाचार्य नासिक ।

---

* विद्यापीठ मंत्री-द्वारा प्राप्त यह सूची अपूर्ण है ।

उपसभापतिः—१ पं० गंगाधरशास्त्री गुणे वैद्यपंचानन अहमदनगर। २ पं० गणेशशास्त्री जोशी वैद्यभूषण पूना।

विद्यापीठोपमंत्री—१ अनंतशास्त्री जोशी आयुर्वेदविशारद पूना। २ पं० भास्करशास्त्री धर्माधिकारी वैद्यराज, पाचोरा।

वर्षम् १९३३ बीकानेर संमेलने निर्वाचिताः सभापतिः—पं० लक्ष्मीरामस्वामी आयुर्वेदमार्तण्ड, जयपुर।

उपसभापतिः—१ पं० रामप्रसादजी वैद्यरत्न राजवैद्य पटियाला। २ पं० गंगाधरशास्त्री गुणे वैद्यपंचानन, अहमदनगर।

विद्यापीठोपमंत्री—१ पं० अनंतशास्त्री जोशी आयुर्वेदविशारद, पूना। २ पं० भास्करशास्त्री धर्माधिकारी पाचोरा (खानदेश)।

वर्षम् १९३४ शिकारपूर संमेलने उपरिनिर्दिष्टा एव निर्वाचिताः।

वर्षम् १९३५ संमेलन न संजातम्। गतसंवत्सरीया एव पदाधिकारिणः।

द्वितीयं परिशिष्टम् केंद्र व्यवस्थापकाः

डॉ. ए. लक्ष्मीपति भिषग्रत्न बी. ए. एम. बी. सी. एम., मद्रास। पं. किशोरीदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, कानपूर। पं. कृष्णविनायक फडके एम. ए., कानपूर। पं. कृष्णशास्त्री कवडे बी. ए. वैद्यपंचानन, पूना। पं. केशव अय्यर, मंगलोर। पं. के. सुब्रह्मण्य शास्त्री, नंद्याल। पं. ख्यालीराम द्विवेदी, इंदोर। कविराज म. म. गणनाथसेन सरस्वती विद्यासागर एल. एम. एस., कलकत्ता। पं. गणेशदत्तशास्त्री, ग्वालेर। पं. गंडीकोटा श्रीनिवासराव वैद्य, राजमहेंद्री। प. गा. हनुमच्छास्त्री, नेल्लोर। पं. गोवर्धनशर्मा छांगाणी वैद्यभूषण भिषक्केसरी, नागपूर। पं. गोपालजी कुवरजी ठक्कर, कराची। पं. चावलीराम मूर्तिशास्त्री आयुर्वेदाचार्य, राजमहेंद्री। पं. जगन्नाथप्रसाद शुक्ल आयुर्वेदपंचानन, प्रयाग। पं. जानकीरामराव, राजमहेंद्री। पं. जे. लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री, शिमोगा। पं. टी. रामभद्रय्या, नंद्याला। पं. ठाकुरदत्तवर्मा मुलतानी राजवैद्य, लाहोर। पं. त्र्यंबक भिकाजी हर्डीकर एम. ए., पूना। पं. दयानिधि स्वामी आयुर्वेदाचार्य, बनारस। पं. नारायणदत्त वैद्यराज, देहली। पं. नोरीरामशास्त्री ए. के. ए. सी. आयुर्वेदभूषण, बेजवाडा। पं. पंढरीनाथ दामोदर मुळे, अमरावती। प. प्रतिवादी भयंकर श्रीनिवासाचार्य, राजमहेंद्री। पं. पाध्ये शास्त्री, हैद्राबाद। प्रिंसिपल डूंगर कॉलेज, बीकानेर। पं. बी. एल. सार्नेलिस सिल्वा आयुर्वेदभूषण, कोलम्बो। पं. बी. एल. सासोमन सिल्वा बी. एस्-सी., कोलम्बो। पं. भिकाजी विनायक डेंगवेकर, एम्. ए. एल-एल. बी. एम्. एस्-सी, जबलपूर। पं. मगूनि मिश्र, पुरी। पं. म. शं. गोडबोले एम. ए., पूना। पं. मस्तरामशास्त्री आयुर्वेदाचार्य, रावलपिंडी। पं.

महाकाली सुब्रह्मण्य पंतुलु, राजमहेंद्री। प० मुरलीधर मिश्र व्याकरणाचार्य, मथुरा। प० रघुवरदयालु भट्ट आयुर्वेदाचार्य, कानपूर। प० रविशंकर त्रिवेदी राजवैद्य, अहमदाबाद। प० रामनारायण मिश्र आयुर्वेदभूषण, लखनऊ। प० रामचंद्रजी साहब राजवैद्य, अजमेर। प० रामप्रसादजी राजवैद्य आयुर्वेदाचार्य, मथुरा। प० रामदयालु शर्मा राजवैद्य, अजमेर। प० रामेश्वरशास्त्री शुक्ल आयुर्वेदाचार्य, ग्वालेर। प० रंगलाल ओझा, कराची। प० व्रजविहारी चतुर्वेदी आयुर्वेदरत्नाकर, वाँकीपूर। प० वामनशास्त्री दातार वैद्यभूषण, नासिक। प० वासुदेवशास्त्री ऐनापुरे प्राणाचार्य, मुंबई। डॉ० वाय पार्थनारायण पंडित, शिमोगा। प० श्याममनोहर मिश्र, कराची। प० श्रीपादशास्त्री हसूरकर काव्यव्याकरणवेदान्ततीर्थ, इंदोर। प्रो० शंकर वामन दांडेकर एम० ए०, पूना। प० सेवाराम चतुर्भुज, कराची।

तृतीयं परिशिष्टम् (केंद्राणि)

पुरातनकेंद्राणि—१ अकोला, २ आजमगढ़, ३ अवोहर, ४ अमृतसर, ५ अम्वाला, ६ अलीगढ़, ७ इस्लामनगर, ८ गढ़मुक्तेश्वर, ९ गोहाना, १० चंदौसी, ११ जम्भू, १२ जाफना, १३ पीलीभीत, १४ पुरी, १५ वदायूं, १६ वरेली, १७ वलिया, १८ बुलंदशहर, १९ महेंद्रगढ़, २० मिश्रिक, २१ मुजफ्फरनगर, २२ मुरादाबाद, २३ मैनपुरी, २४ रायगढ़, २५ लुधियाना, २६ सांवरलेक, २७ हरिद्वार, २८ हाथरस, २९ हिसार, ३० हैद्राबाद (सिंध)

प्रचलितकेंद्राणि—१ अजमेर, २ अमरावती, ३ अहमदाबाद, ४ इंदोर, ५ कराची, ६ कलकत्ता, ७ कानपूर, ८ कोलम्बो, ९ ग्वालियर, १० जवलपूर, ११ देहली, १२ नागपूर, १३ नासिक, १४ पूना, १५ प्रयाग, १६ वंगलोर, १७ वनारस, १८ वम्बई, १९ वांकीपूर, २० वीकानेर, २१ वेजवाड़ा, २२ मथुरा, २३ मद्रास, २४ राजमहेंद्री, २५ रावलपिंडी, २६ लखनऊ, २७ लाहोर, २८ शिलोन, २९ हृषीकेश।

उपकेंद्राणि—१ नेल्लोर, २ नंयाला, ३ हैद्राबाद (सिंध)

चतुर्थपरिशिष्टम् (परीक्षकाः)

पं० अनंत यज्ञेश्वरजोशी आयुर्वेदाचार्य, पूना। पं० अनंताचार्य आद्य-काव्यतीर्थ, विजापूर। पं० अमृतलाल प्राणशंकर पट्टणी वैद्यराज, लिमडी। पं० अंबाशंकरजी त्रिवेदी राजवैद्य, अहमदाबाद। डॉ० आसानंद एम. वो. वी. एस., लाहोर। पं० उपेंद्रनाथ दास आयुर्वेदाचार्य, देहली। डॉ० ए. लक्ष्मीपति भिषग्रत्न वी. ए.

एम. बी. सी. एम., मद्रास। डॉ० एल. रामकृष्ण; मद्दीशूर। पं० एम. दुराई स्वामी आयुर्वेदभूषण, मद्रास। डॉ० ए. रामन् आयुर्वेदाचार्य, कलकत्ता। डॉ० एम. आर. स्वामी एम. डी. पी. एच. डी, बंगलोर। डॉ० एन. माधव मेनन ए. एम. ए. सी. आयुर्वेदाचार्य, मद्रास। प० कन्हैयालाल आयुर्वेदाचार्य, मुंबई। प० किशोरीदत्तशास्त्री आयुर्वेदाचार्य, कानपूर। प० कृष्णशास्त्री कवडे बी. ए. वैद्यपंचानन, पूना। प० कृष्णशास्त्री देवधर प्राणाचार्य, नासिक। प० कृष्णलालजी वाजपेयी, मेरठ। प० कृष्णाजी बलवंत रिसबूड, ब्रह्मावर्त बिठूर। प० कृ. श्री. म्हसकर एम. ए. बी. एस-सी. एम. डी. डी. पी. एच. डी. टी. एम. एच., मुंबई। प० ख्यालीराम द्विवेदी आयुर्वेदाचार्य, इंदोर। डॉ० ग. द. आपटे एम. बी. बी. एस., पूना। प० गणेश-शास्त्री जोशी वैद्यभूषण, पूना। कविराज गणनाथसेन सरस्वती, विद्यासागर महा-महोपाध्याय, एल. एम. एस, कलकत्ता। प० गोपालजी कुवरजी ठक्कर, कराची। प० गोविन्दप्रसाद शास्त्री, जबलपूर। प० गंगाधरशास्त्री गुणे वैद्यपंचानन, अहमद-नगर। प० गोवर्धनशर्मा छांगाणी वैद्यभूषण भिषक्केसरी, नागपूर। प० गंगाविष्णु पांडेय विद्याभूषण, जबलपूर। प० घनानंदपंत वैद्य साहित्याचार्य, देहली। प० चावलीराममूर्ति शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, राजमहेंद्री। प० चंद्रशेखरशास्त्री, कानपूर। प० छोटेलालजी वैद्य, कराची। प० जी० श्रीनिवासमूर्ति कॅप्टन. बी. ए. बी. एल. एम. बी. सी. एम., मद्रास। प० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल आयुर्वेदपंचानन, प्रयाग। प० जगन्नाथप्रसाद वाजपेयी, बनारस। डॉ० जे. डी. ध्रुव. एफ. आर. सी. एस्., बम्बई। प० ठाकुरदत्तवर्मा मुलतानी वैद्यराज, लाहोर। प० त्र्यंबकशास्त्री आपटे भिषगाचार्य, पूना। प० दत्तात्रय अनंत कुलकर्णी आयुर्वेदाचार्य एम. एस. सी., बनारस। प० दामोदरप्रसाद वैद्यराज, मुंबई। प० दुर्गाप्रसादजी, जयपूर। प० दुर्गाशंकर के. शास्त्री, मुंबई। प० दुर्गादत्तशास्त्री आयुर्वेदशास्त्राचार्य, बनारस। डॉ० दुर्गाप्रसादजी दवे एम. बी. बी. एस., मुंबई। प० नरसिंह नरहर जोशी, रुड़ीहळी। प० नानकचंदशर्मा आयुर्वेदाचार्य, लाहोर। प० नारायणशंकर देवशंकर वैद्यशास्त्री प्राणाचार्य, अहमदाबाद। प० नारायणदत्तजीशर्मा, देहली। प० नोरीराम-शास्त्री ए. के. ए. सी. आयुर्वेदभूषण, बेजवाड़ा। प० नागरलाल मोहनलाल पाठक आयुर्वेदाचार्य, पाटण। प० नारायणशास्त्री वाडीकर, पूना। प० पुरुषोत्तमशास्त्री नानल आयुर्वेदाचार्य, पूना। श्री प्रतापसिंहजी कविराज रसायनाचार्य, बनारस। प० पोपटप्रभुराम, मुंबई। प० बलदेवशास्त्री आयुर्वेदाचार्य, लाहोर। प० बी. एल. सार्नेलिससिल्वा आयुर्वेदभूषण, कोलंबो। डॉ० बालकृष्ण अमरजी पाठक एम. बी. बी. एस, अहमदाबाद। प० भागीरथस्वामी महामहोपाध्याय रसायनाचार्य आयुर्वेदाचार्य, कलकत्ता। प० भगवानलाल त्रिभुवन भट्ट, मुंबई। प० भि. वि. डेगवेकर एम. ए. एल. एल. बी. एम. एस. सी, जबलपूर। डा० भा. गो.

घाणेकर एम. बी. बी. एस. आयुर्वेदाचार्य, बनारस। प० भानुशंकर निर्भयराम, भावनगर। प० मनोहरलाल वैद्यराज, देहली। प० मगूनि मिश्र, पुरी। डॉ० म. वि. आपटे एम. बी. बी.' एस. बी. एस्-सी., पूना। प० मणिशंकर नानालाल आयुर्वेदाचार्य, मुंबई। प० मणिशंकर मूवजी शास्त्री, मुंबई। प० मनीराम शर्मा आयुर्वेदाचार्य, रामगढ़। प० महाशंकर नरोत्तम वैद्यराज, भूज। प० मूलशंकर मोतीराम वैद्यराज, ध्रांगध्रा। प० मस्तराम शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, रावलपिंडी। प० माधवप्रसाद एन. शास्त्री विद्याभूषण, अहमदाबाद। प० माधवजी गोपालजी दवे, मुंबई। प० यादवजी त्रिकमजी आचार्य आयुर्वेदमार्तंड, मुंबई। प० योगी रामनाथ शास्त्री, रावलपिंडी। प० रघुनाथशास्त्री जोशी, पूना। प० रामेश्वरशास्त्री शुक्ल आयुर्वेदाचार्य, ग्वालेर। प० रामनारायण मिश्र वैद्यशास्त्री, लखनऊ। प० राजेश्वरदत्त शास्त्री, बनारस। प० रंगलाल ओझा, कराची। प० रामशास्त्री शिकरकर, येवले। प० रामनारायण घनशाम, बड़ोदा। प० रामशंकर मालवीय राजवैद्य, बनारस। प० लक्ष्मीराम स्वामी आयुर्वेदमार्तंड, जयपूर। प० लक्ष्मीशंकर रामकृष्णशास्त्री आयुर्वेदाचार्य, अहमदाबाद। प० ब्रजविहारी चतुर्वेदी आयुर्वेदरत्नाकर, पटना। प० वामनशास्त्री दातार वैद्यभूषण, नासिक। प० वामदेवजी मिश्र, पटना। प० वामनदीनानाथ वैद्य, मुंबई। डॉ० वाय लक्ष्मी नरसिंहशास्त्री आयुर्वेद भिषक् चूडामणि एल. एम. बी., मैसूर। डॉ० वि. म. भट बी. ए. एम. बी. एस., येवले। प० विद्यारत्न त्रिपाठी आयुर्वेदाचार्य, हर्दोई। प० शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्य, लाहोर। प० शिवशर्मा, पटियाला। प० शिवचंद्र शर्मा, मुजफ्फरपूर। प० शिवकंठजी मिश्र आयुर्वेदाचार्य, कानपूर। प० श्याम मनोहर मिश्र रसवैद्य, कराची। प० शालिग्राम शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, लखनऊ। प० श्रीदत्त वैद्यराज, भिवानी। प० सुखरामदास टी. ओझा प्राणाचार्य, कराची। प० सुरेंद्र मोहन बी. ए. आयुर्वेदाचार्य, लाहोर। प० हरिप्रपन्नजी वैद्यराज, मुंबई। प० हरिशंकर शर्मा, हरिद्वार। प० हरिदत्तजी पांडेय वैद्यरत्न, पिलीभीत। प० हरीशास्त्री पराडकर, अकोला। प० हरीरंजन मजुमदार एम. ए., देहली। प० हाराणचंद्र चक्रवर्ती कविराज, कलकत्ता। प० हरीनारायण शर्मा कविराज, काव्यतीर्थ आयुर्वेदाचार्य, प्रतापगढ़। प० हजारीलाल शुक्ल, पटना। प० ज्ञानेन्द्रदत्त त्रिपाठी, सीतापुर।



पंचमं परिशिष्टम्

अद्यावधि दत्तानां पदकानां पारितोपिकानां च तालिका

	आचार्येभ्यः		विशारदेभ्यः		भिषग्भ्यः		
ईशवीयः वत्सरः	स्वर्ण	रौप्य	स्वर्ण	रौप्य	स्वर्ण	रौप्य	
१९१२	...	...	१	...	...	...	
१९१३	...	...	...	२	...	...	
१९१४	...	...	१	२	...	१	
१९१५	...	...	१	४	...	१	
१९१६	१	...	१	१	...	१	
१९१७	...	...	१	१	...	१	
१९१८	...	...	...	...	...	...	
१९१९	१	...	...	...	२	...	स्वर्णपदद्वयं स्त्रियोरेवदत्तम् ।
१९३१							
१९३२							
१९३३	१		१		१		श्रीधूतपापेश्वर पारितोपिकानि ।
१९३४	१		१		१		
१९३५	१		१		१		



षष्ठं परिशिष्टम्

ईशवीय १९१२ वर्षदारभ्य अद्यावधि (१९३५) विद्यापीठस्य विविधासु परीक्षासु प्रविष्टानां परीक्षार्थिनां तथा उत्तीर्णानां स्नातकानां च संख्या विवरणम् ।

		आचार्य		विशारद		भिषक्	
क्रम	वर्षम्	उपस्थिताः	उत्तीर्णाः	उपस्थिताः	उत्तीर्णाः	उपस्थिताः	उत्तीर्णाः
१	१९१२	...	...	१	१	...	...
२	१९१३	१	...	१६	५	...	...
३	१९१४	२	...	१४	९	९	४
४	१९१५	८	४	४८	१६	३५	१४
५	१९१६	१०	८	७७	४०	४४	१३
६	१९१७	२०	४	६०	३२	७९	४५
७	१९१८	३३	२	५३	७	९७	१३
८	१९१९	२७	६	६२	११	१०१	१५
९	१९२०	४६	१४	९०	२०	१८९	४८
१०	९१२१	२७	११	१०९	२८	१८१	३९
११	१९२२	२५	३	१२३	३९	१७४	५५
१२	१९२३	४१	१३	१६५	७६	२०१	७७
१३	१९२४	६८	११	१८५	७३	२५६	७३
१४	१९२५	७२	१७	१२७	४५	२२४	७१
१५	१९१६	७४	१४	१४९	२३	२५२	९७
१६	१९२७	८०	१५	२०७	३९	२८९	८६
१७	१९२८	६२	२१	१९३	४६	३०७	७३
१८	१९२९	६०	१५	१८९	३९	३१७	६७
१९	१९३०	८३	१४	२६९	५७	३८३	१२८
२०	१९३१	५९	५	२४६	३७	३४४	८४
२१	१९३२	७७	६	२७९	३४	३७६	१०५
२२	१९३३	६०	९	३१४	६४	४४९	१५८
२३	१९३४	८३	१७	३४०	६७	५६४	१११
२४	१९३५	१०५	१५	३२२	७९	७३७	२५४
		११२३	२२४	३६३८	८८७	५६०८	१६३०

सर्वे उपस्थिताः १०३६९ सर्वे उत्तीर्णाः २७४१

स्थानाभावके कारण विद्यार्थियोंकी नामावली नहीं दी जा सकी है ।

सप्तमं परिशिष्टम्

उत्तीर्णानां परीक्षार्थिनीनां संख्या

वत्सरः	विशारद	भिषक्
१९१९	...	२
१९२०	...	२
१९२३	२	२
१९२४	३	१
१९२५	...	१
१९२७	१	१
१९२८	१	१
१९३०	...	१
१९३१	१	३
१९३२	...	१
१९३३	...	४
१९३४	...	१
१९३५	...	४
	८	२४

विद्यापीठसंबद्ध संस्थाः, अष्टमं परिशिष्टम्

१ बाबा कालीकमलीवालेका आयुर्वेदविद्यालय, हृषीकेश। प० दयानिधिस्वामी, आयुर्वेदाचार्य।

२ बनवारीलाल आयुर्वेदविद्यालय, देहली। प० सूरजनारायण।

३ मोहता आयुर्वेदविद्यालय, बीकानेर। प० चंद्रशेखरशर्मा आयुर्वेदाचार्य।

४ आयुर्वेदविद्यालय, अजमेर। प० लक्ष्मीनारायणशर्मा आयुर्वेदभूषण।

५ संस्कृतमहाविद्यालय, इंदोर। न्याय-व्याकरण-वेदान्ततीर्थ प० श्रीपादशास्त्री हसूरकर।

६ आयुर्वेदपाठशाला, लक्ष्मीदासस्ट्रीट, कराची। प० कृष्णदास ओझा।

७ विदर्भ आयुर्वेदविद्यालय, अमरावती। प० पंढरीनाथदामोदरमुवे वैद्य।

८ वाशिष्ट आयुर्वेदविद्यालय, कराची। चि० चू० प० होरामशर्मा वाशिष्ट।

९ गंगाराम छबीलदास आयुर्वेदविद्यालय; येवलें। डा० वि. भ. भट, बी. ए. एम. बी. बी. एस.।

१० आयुर्वेदमहाविद्यालय, अहमदनगर। वैद्यपंचानन गंगाधरशास्त्री गुणे।

११ आयुर्वेदविद्यालय, इतवारी, नागपूर। क० लक्ष्मीकांतदामोदर पुराणिक।

१२ आयुर्वेदविद्यालय कर्नलगंज, कानपूर। प० युगलकिशोरशास्त्री आयुर्वेदाचार्य।

१३ वेद संस्कृत कलाशाला आयुर्वेदशाखा, नेल्लोर। प० जी. हनुमच्छास्त्रीगारु।

१४ बी. एस. ए. केमिकल कॉलेज गोंदिया सी. पी.। राजवैद्य प० शिवबालक-द्विवेदी वैद्यशास्त्री।

१५ तक्षशिला अष्टांगायुर्वेदविद्यालय, रावलपिंडी। प० मस्तरामशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य।

१६ महाराष्ट्र आयुर्वेदविद्यालय कांदावाड़ी, मुंबई। वैद्य रा. म. पुराणिक।

प्रार्थितविद्यापीठसम्बद्धताः संस्थाः

१ आयुर्वेदविद्यालय राजुला। राजवैद्य धीरजराम दयारामशास्त्री।

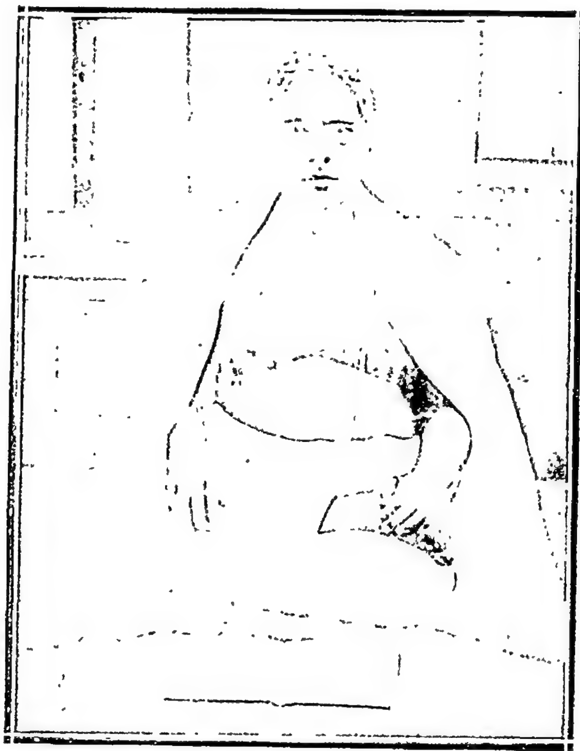
२ विश्वनाथ आयुर्वेदविद्यालय मेस्ट्रीट, कलकत्ता। म. म. क. गणनाथसेन सरस्वती विद्यासागर एम. ए. एल. एम. एस.।

३ निखिलभारतवर्षीय सं० साहित्य विद्यापीठ महादारुएस्ट्रीट, जालंधर। प० वेदव्यासशर्मा।

४ संस्कृतपाठशाला पचपुखरा, फर्रुकाबाद। प० हीरालालशास्त्री आयुर्वेदाचार्य।

५ आयुर्वेदविद्यापीठ बेलगाँव (कर्नाटक लिंगायत एजुकेशन सोसायटी)। प० एन्. सी. नंदीमठ।

६ शिवकैलाश आयुर्वेदविद्यालय बागेश्वर, अलमोडा। डॉ० के. डी. तलवीयन्. एच्. एल. एम. एस.।



श्रीमान् स्वर्गीय महामहोपाध्याय कविराज श्रीद्वारिकानाथसेनजी कलकत्ता ।

भारत-सरकार-द्वारा सम्मानित वैद्य

भारतवर्षमें जबसे ब्रिटिश राज्य स्थापित हुआ है, तबसे आयुर्वेदके प्रति राज्य-की सदा उदासीनता ही रही है। राज्यका चिकित्सा-विभाग पाश्चात्य चिकित्सकोंके हाथमें होनेके कारण समय-समयपर आयुर्वेदकी उन्नतिका प्रलोभन देकर मेडिकल कालिजोंके लिये चन्दे एकत्र किये गये। और कहीं-कहीं आयुर्वेद पढ़ानेकी आयोजना भी की गई। किन्तु अवसर मिलते ही सब बाद कर दिये गये। और मेडिकल रजिस्ट्रेशन ऐक्ट बनाया गया। उसमें आयुर्वेद संस्थाओंके साथ कार्य करनेवाले पाश्चात्य चिकित्सक भी अयोग्य समझे गये। एवं उसके फलस्वरूप आयुर्वेदीय संस्थामें कार्य करनेवाले डाक्टरोंको राज्यके न्यायालयोंकी शरणमें जाकर अपने सम्मानकी रक्षा करनी पड़ी। उसके बाद कुछ राज्यकी नीतिमें परिवर्तन हुआ। और वैद्योंके सम्मान करनेकी योजना व्यवहारमें आने लगी। इसका वर्णन आगे किया जावेगा।

यह अवश्य है कि वैद्योंने जहाँ तहाँ चिकित्सामें अत्यन्त प्रतिभा प्रकाशित की है। और उपरोक्त नीतिके परिवर्तनके पूर्व भी कलकत्तेके प्रसिद्ध कविराज स्वर्गीय द्वारकानाथसेन महोदयको महामहोपाध्यायकी पदवी प्रदान कर सरकारने सम्मानित किया था। कविराज विजयरंजनसेनको भी महामहोपाध्यायकी पदवी प्रदान की थी। आप भारतमें सर्वख्याति प्राप्त चिकित्सक थे। आप इतने लोकप्रिय थे कि आपके दिवंगत होनेपर कलकत्ताकी जनताने विडन् स्कायरमें आपकी संगमरमरकी मूर्ति स्थापित कर आपके यशको चिरस्थाई किया। आपके परिवारमें परम्परागत वैद्यक व्यवसाय चला आ रहा है। आपके सुपुत्र श्रीमान् कविराज योगीन्द्रनाथसेन एम. ए., महोदयको भी "वैद्यरत्न" की पदवी प्रदान कर सम्मानित किया।

बंगालमें इस समय जगत प्रसिद्ध कविराज गणनाथसेन सरस्वती, विद्यासागर, प्राणाचार्य, एम. ए., एल. एम. एस. महोदयको महामहोपाध्यायकी पदवी प्रदान कर सम्मानित किया है।

महामहोपाध्याय कविराज द्वारकानाथसेन महोदयस्य प्रतिमूर्तिः।
जन्मतिथिः—भाद्रपद शुक्ला अष्टमी वै० सं० १९००।
स्वर्गवासतिथिः—माघ कृष्णा षष्ठी वै० सं० १९६४।

आयुर्वेदैकदीक्षागुरुरमलमतिर्मन्दरः शास्त्रसिन्धोः
शिष्येषु स्नेहपूर्णः सुविमलचरितः कोविदानाम् वरेण्यः।
पृथ्वीप्रख्यातकीर्तिर्गुणिगणसहितः पुण्यकारुण्यराशि-
रासीत् सद्वैद्यवृन्दामलमुकुटमणिर्द्वारकानाथ सेनः॥१॥

प्रतिमूर्तिरियं तस्य स्मृत्यै प्रस्तर-निर्मिता।
स्थापिता गुण संमुग्धैर्भक्त्या तद्देशवासिभिः ॥२॥

निम्नलिखित वैद्योंको भी "वैद्यरत्न" की उपाधिसे सम्मानित किया गया है—

श्रीमान् प० डी. गोपालाचार्लु महोदय प्रिंसिपल, मद्रास आयुर्वैदिक कालेज—(स्वर्गीय)।

श्रीमान् प० गोपालाचार्लु महोदय, वहरामपुर, मद्रास प्रेसिडेंसी।

श्रीमान् कैप्टन जी० श्रीनिवासमूर्ति महोदय, प्रिंसिपल गवर्नमेंट स्कूल आफ इण्डियन मेडिसिन, मद्रास।

श्रीमान् वैद्यभूपण प० दुरै स्वामी अयंगर महोदय, मद्रास।

श्रीमान् ब्रह्म श्री मांगूनी मिश्र महोदय, पुरी (उडीसा, स्वर्गीय)।

श्रीमान् प० रामप्रसादजी राजवैद्य महोदय, पटियाला स्टेट (पंजाव)।

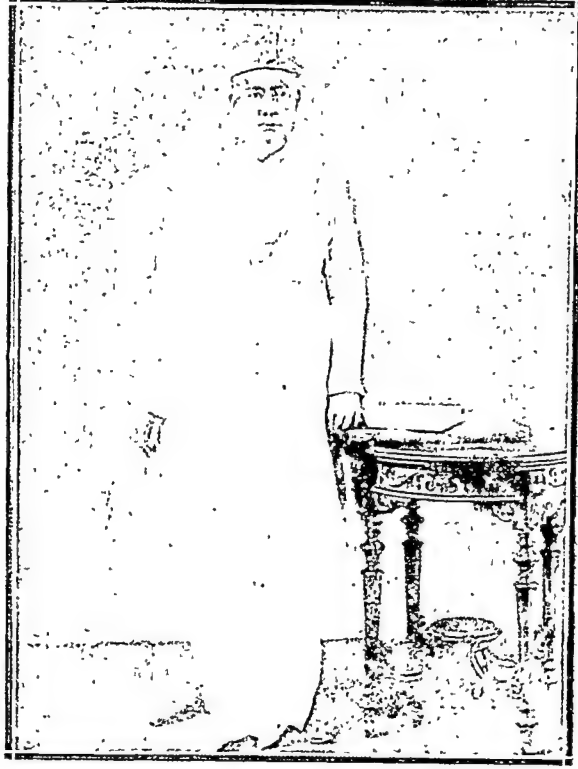
श्रीमान् कविराज कालिदास सेन महोदय, कलकत्ता।

श्रीमान् प० त्र्यम्बकजी शास्त्री महोदय, काशी।

श्रीमान् प० रामरतनजी वैद्यराज महोदय, स्यालकोट।

श्रीमान् प० टी. परमेश्वरन् मूसः कोडाकरम्, दक्षिण मलावार।





श्रीमान् स्वर्गीय महामहोपाध्याय कविराज श्रीविजयरत्नसेनजी कलकत्ता ।



श्रीमान् वैद्यरत्न पं. त्र्यम्बकशास्त्रीजी
काशी।

प्रान्तीय वैद्यसम्मेलनोंका वृत्तान्त

संयुक्तप्रान्तीय वैद्य सम्मेलन

निखिलभारतवर्षीयवैद्यसम्मेलन स्थापित होनेके बाद विहार, बंगाल, आन्ध्र और द्रविड़ प्रान्तोंमें भी प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन स्थापित हो गये; किन्तु संयुक्तप्रान्तमें संवत १९७५ के पहले स्थापित नहीं हो सके।

प्रधान सम्मेलनका कार्यालय बदलनेके बाद संयुक्तप्रान्तका ध्यान प्रान्तिकसम्मेलन करनेकी ओर भी आकर्षित हुआ। अतएव संयुक्तप्रान्तका प्रथम सम्मेलन कानपुर नगरमें हुआ। प० रघुवरदयालुभट्ट वैद्यशास्त्री और प० सत्यदेवपाण्डेय आयुर्वेदाचार्यने मन्त्रीके रूपमें इस प्रान्तिकसम्मेलनको बराबर उन्नतदशामें पहुँचाया है।

संयुक्तप्रान्तीय वैद्यसम्मेलनका प्रथम अधिवेशन—पौष कृष्ण ५ रविवार सं० १९७५ तदनुसार २२ दिसम्बर सन् १९१८ से तीन दिनों तक काशीके सुप्रसिद्ध विद्वान् चिकित्सक पण्डित गणेशदत्तजी शास्त्रीके सभापतित्वमें हुआ। सम्मेलन बड़ी सफलता और उत्साहसे तथा ठाठके साथ हुआ। स्वागतकारिणीके सभापतिकी वक्तृता संयुक्तप्रान्तीय वैद्यक कार्योंका दिग्दर्शन करानेवाली और प्रधान सभापतिकी वक्तृता समयोचित और विद्वत्तापूर्ण थी। कई अच्छे निवन्ध पढ़े गये। संयुक्तप्रान्तीय म्युनिसिपलवोर्ड और डिस्ट्रिक्टवोर्डोंमें आयुर्वेदिक औषधालय खोलने, वैद्योंके सार्टिफिकेट स्थानिक संस्थाओं और सरकारी विभागोंमें मान्य कर, संयुक्तप्रान्तमें एक अष्टांगआयुर्वेदविद्यालय खोलने, रियासतों और श्रीमानों द्वारा आयुर्वेदिकऔषधालय खोलने, म्युनिसिपल-हेल्थकमिटियोंमें वैद्योंको भी सम्मिलित करने आदिके कई प्रस्ताव स्वीकृत हुए। इसकी स्वागतकारिणीके सभापति प० कालकाप्रसाद तिवारी वैद्य कानपुर थे। कानपुर म्युनिसिपलवोर्डने अपनी हेल्थकमिटीमें अव वैद्य लेना आरम्भ कर दिया है। इलाहाबाद म्युनिसिपलवोर्ड भी मेडिकल रिलीफ कमिटीमें वैद्य और हकीम लेता है। इसी अवसरपर सम्मेलन सभापतिके करकमलों द्वारा आयुर्वेदविद्यालय कानपुरका भी उद्घाटन हुआ।

संयुक्तप्रान्तीय वैद्यसम्मेलनका दूसरा अधिवेशन—हरदोईमें सं० १९७६ पौष कृष्ण १४ तदनुसार २१ दिसम्बर सन् १९१९ ईस्वीमें तीन दिनों तक बड़े उत्साहके साथ हुआ। स्वागतसभापति वहाँके सिविलसर्जन सुप्रसिद्ध डाक्टर वङ्किमचन्द्र सान्याल थे। नगर और जिलेके रईस, जमीन्दार तथा ताल्लुकेदारोंकी खासी उपस्थिति थी। पण्डित मूलचन्द्रत्रिपाठी राजवैद्यके अथक परिश्रम और उद्योगसे सम्मेलन बहुत ही शानदार हुआ। स्वागतसभापतिका भाषण आयुर्वेदप्रेम और आयुर्वेदकी महिमा

वर्णन करनेवाला था। आपने अस्पतालोंमें भी देशी औषधियोंके व्यवहारकी सलाह दी थी। सम्मेलनके सभापति श्री जगन्नाथप्रसादशुक्ल थे। इस सम्मेलनमें विशेष जोर इस वातपर दिया गया कि सम्मेलनकी ओरसे जो आयुर्वेदविद्यालय वने वह इसी प्रान्तमें वने। मद्रास सरकारकी इस नीतिका विरोध किया कि वह डिस्ट्रिक्टवोर्ड और म्युनिसिपलवोर्डोंको आयुर्वेदिक औषधालयोंको सहायता देनेसे रोकती है। इस सम्मेलनने इण्डियन नेशनल कांग्रेसके पास एक तार भेजा कि देशी चिकित्सापद्धतिके प्रति सरकारी नीति वहुत घातक और हानिकारी होरही है। अतएव कांग्रेस इस विषयको अपने हाथमें ले। इसके परिणामस्वरूप कांग्रेसने पहले पहल देशी चिकित्सापद्धतिके सम्वन्धमें प्रस्ताव पास किया। उस सालकी कांग्रेसका २९ वां प्रस्ताव यों था "(क) यह कांग्रेस आयुर्वेदिक और यूनानी ढंगकी औषधियाँ और चिकित्सापद्धतिका महत्व तथा उपयोगिता वैसेही निश्चित साधनोंका अवलम्वन करे जैसा कि वह पश्चिमी ढंगकी औषधियों और चिकित्सापद्धतिकी रक्षा और प्रचारके लिये करती है। (ख) यह कांग्रेस विगत वर्षके शिमला इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके इस निर्णयको कि औषधियोंके सन्तोषजनक ढंगपर प्रचारके लिये स्थानीय सरकारोंकी सम्मति ली जाय, तव तक स्थगित रखनेका विचार प्रकट करती है जवतक कि सरकारसे निर्वाचित वैद्यों-हकीमों तथा आयुर्वेदके अनुभवी विद्वानोंकी एक कमिटी इस विषयमें पूर्ण तरहसे अनुसन्धान न करले।" इसके वाद और भी एक अधिवेशनमें कांग्रेसने देशी चिकित्सापद्धतिका समर्थन किया है।

संयुक्तप्रान्तीय तृतीय वैद्यसम्मेलन—उन्नाव नगरमें लखनऊके वैद्यराज पण्डित रमापति वापेयीके सभापतित्वमें १२ और १३ फरवरी सन् १९२१ में हुआ। स्वागताध्यक्ष पण्डित विश्वम्भरनाथ वाजपेयी वकील थे। स्वागतसभापतिने कहा कि वैद्योंको एक अपना वड़ा विद्यालय अवश्य खोलना चाहिये। यदि उद्योग करें तो हमारे औषधालय वड़े वड़े अस्पतालोंसे कहीं अधिक उपयोगी ठहर सकते हैं।

संयुक्तप्रान्तीय चतुर्थवैद्यसम्मेलन—हरिद्वारमें जव नि. भा. वैद्यसम्मेलनका पन्द्रहवाँ अधिवेशन सन् १९२५ ईस्वीमें हुआ उसी समय संयुक्तप्रान्तीय वैद्यसम्मेलनका चतुर्थ अधिवेशन हरिद्वारमें ही लखनऊके राजवैद्य पण्डित रामनारायण मिश्र आयुर्वेद-भूषणके सभापतित्वमें हुआ। इस सम्मेलनमें प्रस्ताव पास हुआ कि संयुक्तप्रांतीय सरकार देशी चिकित्सापद्धतिकी जाँचके लिये एक इनकायरी कमिटी वना रही है। उसमें वैद्यसम्मेलनका भी प्रतिनिधि होना चाहिये। इस जाँच कमेटीके सभापति स्वर्गीय जस्टिस पण्डित गोकर्णनाथ मिश्र थे। आप देशी चिकित्सापद्धतिके प्रेमी थे। सम्मेलन अपने उद्योगमें सफल हुआ, और श्रीजगन्नाथप्रसाद शुक्ल सम्मेलनके प्रति-निधिरूप इस कमिटीमें सम्मिलित हुए। कमिटीकी रिपोर्टमें आयुर्वेद और यूनानी पद्धति पूर्णरूपसे वैज्ञानिक प्रतिपादित की गयी। इनकी उन्नतिके लिये आयुर्वेद-

विद्यापीठके पाठ्यक्रमके आधारपर पाठ्यक्रम तैयार हुआ। एक स्थायी बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन्सकी स्थापना हुई। जिसमें अबतक वैद्यसम्मेलनका प्रतिनिधि लिया जाता है।

संयुक्तप्रान्तीय पञ्चम वैद्यसम्मेलन—बरेली नगरमें १९२६ में पीलीभीतके ललितहरि आयुर्वेदविद्यालयके आयुर्वेदाध्यापक आयुर्वेदभूषण पण्डित हरिदत्त पाण्डेय वैद्यराजके सभापतित्वमें हुआ।

संयुक्तप्रान्तीय वैद्यसम्मेलनका छठा अधिवेशन—ऋषिकुल हरिद्वारके वार्षिक उत्सवके समय पं० नारायणदत्तजी शर्मा वैद्यराजके उद्योगसे हरिद्वारमें ज्येष्ठ शुक्ल १० सं० १९८५ तदनुसार २९ मई सन् १९२८ ईस्वीको हुआ। इसके सभापति चिकित्सक-सम्पादक कानपुरके पण्डित किशोरीदत्त वैद्यशास्त्री हुए थे। सभापति महोदयने संभाषाविधिको उत्तेजन देकर आयुर्वैदिक चर्चाका विस्तार करनेपर जोर दिया। ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सापद्धतिकी ओर वैद्योंको विशेष ध्यान देनेके लिए उत्साहित किया गया। वैद्यसम्मेलनके पाठ्यक्रममें उपवैद्य (कम्पौडर) श्रेणीका पाठ्यक्रम रखना और परीक्षाका प्रबन्ध करना आवश्यक बतलाया गया। इसी तरह परिचारक और धात्री शिक्षाके पाठ्यक्रम और परीक्षापद्धति प्रचलित करनेपर भी जोर दिया गया। ऐसी परीक्षाओंके लिये उपयुक्त पुस्तकें तैयार करनेकी ओरभी लेखकोंका ध्यान आकर्षित किया गया।

संयुक्तप्रान्तीय सप्तमवैद्यसम्मेलनका अधिवेशन—आगरा नगरमें सन् १९२९ ईस्वीमें हुआ। आगरेके वैद्यराज पण्डित ब्रह्मानन्दजी दीक्षित आयुर्वेदालंकार आयुर्वेदाचार्यके उद्योगसे यह सम्मेलन बहुत सफल और धूमधामके साथ हुआ। इसके सभापति कानपुरके चिकित्सक चूड़ामणि पण्डित रामेश्वरमिश्र वैद्यशास्त्री थे। आपने इस बातपर जोर दिया कि वैद्यलोग अपनी चिकित्सापद्धति सरल और सबके लिये सुलभ बनानेका प्रयत्न करें। कौमारभृत्यकी शिक्षा और चिकित्साप्रणालीका नये ढंगसे प्रचार करना आवश्यक बतलाया।

संयुक्तप्रान्तीय वैद्यसम्मेलनका आठवाँ अधिवेशन—सीतापुर नगरमें फाल्गुन शुक्ल १ संवत १९८९ में हुआ। इसके लिये सीतापुरके पण्डित मधुसूदनजी दीक्षित वैद्यराजने बड़ा उद्योग किया था। इसके सभापति काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके आयुर्वेदाध्यापक पण्डित जगन्नाथप्रसाद बाजपेयी बी. ए. (अब एम. ए.) हुए थे। हिन्दीमें आवश्यक विषयोंकी पुस्तकोंका निर्माण क्रमशः हो रहा है, इसपर सन्तोष प्रकट किया।



विहारप्रान्तीय वैद्यसम्मेलन ।

विहार प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन २० वर्षोंसे विहारमें स्थापित है। आजतक भिन्न-भिन्न स्थानोंमें उसके १३ वार्षिक अधिवेशन हो चुके हैं। अधिवेशनोंके स्थान, सभापति तथा प्रधान मन्त्रीके नाम निम्न निर्दिष्ट हैं—

प्रथम अधिवेशन—वेदरत्न विद्यालय, मुस्तफापुर, पो० खगौल पटना। सभापति—आयुर्वेद पंचानन पं० श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल भिषङ्मणि, सुधानिधि—सम्पादक—प्रयाग।

द्वितीय सम्मेलन—पटना। सभापति—श्रीमान रायवहादुर कृष्णसहायजी साहव पटना।

तृतीय सम्मेलन—आरा। सभापति—श्रीमान जस्टिस ज्वालाप्रसाद साहव जज हाइकोर्ट पटना।

चतुर्थ सम्मेलन—गया। सभापति—श्रीमान राजा हरिहरप्रसादनारायण सिंहजी अमावाँ नरेश।

पंचम सम्मेलन—मुजफ्फरपुर। सभापति—श्रीमान् महाराजाधिराज सर रमेश्वर सिंहजी, जी. सी. आई. ई., के. बी. ई., वहादुर दरभंगा।

षष्ठम सम्मेलन—डाल्टनगंज, (पलामू)। सभापति—भिषगाचार्य प० व्रज-विहारी चतुर्वेदीजी आयुर्वेद-रत्नाकर, पटना।

सप्तम सम्मेलन—गया। सभापति—श्रीमान् कविराज प० शारदाचरण सेनजी, दरभंगा।

अष्टम सम्मेलन—वाढ़ (पटना)। सभापति—प० देवताचरण मिश्रजी वैद्यरत्न, गया।

नवम सम्मेलन—मुंगेर। सभापति—प० शिवचन्द्र मिश्रजी आयुर्वेदाचार्य का० सां० तीर्थ, मुजफ्फरपुर।

दशम सम्मेलन—पटना। सभापति—श्रीमान् प० श्यामनारायण चतुर्वेदीजी, वैद्यराज, प्रोफेसर संस्कृत कॉलेज छपरा।

एकादश सम्मेलन—छपरा। सभापति—भिषङ्मणि प० हरिनारायण चतुर्वेदीजी आयुर्वेदाचार्य, प्रिंसिपल, गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज पटना।

द्वादश सम्मेलन—हाजीपुर। सभापति—कविराज प० विधुभूषण सेन आयु-र्वेदाचार्य, कविभूषण, व्याकरणतीर्थ—प्रोफेसर गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज पटना।

त्रयोदश सम्मेलन—आरा। सभापति—विद्यालंकार, वैद्यरत्न, चिकित्सा चूड़ा-मणि प० चंद्रशेखरधर शर्मा मिश्र कवीन्द्र-रत्नमाला-वगहा चम्पारन।

प्रधानमंत्री—प्रथमसे दशम विहार प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन तक वैद्यभूषण प०

रामावतारजी मिश्र ही प्रधानमंत्री पदपर बराबर कार्य करते थे। एकादशसे त्रयोदश विहार प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन जहाँ तकका विवरण प्राप्त है; प्रधानमंत्री पदपर वैद्यरत्न प० श्रीकान्तजी मिश्र कार्य करते हैं।

यह संस्था आयुर्वेद महामण्डलसे सम्बद्ध है। सम्प्रति इसका कार्यालय कदमकूंवा, पो० बाँकीपुर (पटना) में हैं। विद्यालय, धर्मार्थ औपधालय, वैद्यक वस्तु प्रदर्शनी, पत्रिका और पुस्तक प्रकाशन तथा समयानुकूल आयुर्वेद विपयक व्याख्यानादि द्वारा प्रान्तमें आयुर्वेद प्रचार तथा वैद्योंका पारस्परिक संगठन करना संस्थाका प्रधान उद्देश्य है। उद्देश्यानुसार बराबर कार्य होता आया है और हो रहा है। सम्प्रति सदस्योंकी संख्या लगभग ३०० की है। वर्त्तमान कालिक सम्मेलनके पदाधिकारी निम्न निर्दिष्ट हैं—

सभापति—विद्यालंकार, वैद्यरत्न चिकित्सा चूड़ामणि प० चंद्रशेखरधर शर्म्मा मिश्र कवीन्द्र, रत्नमाला, वगहा (चम्पारन)।

उपसभापति—(१) भिषगाचार्य प० ब्रजविहारी चतुर्वेदीजी आयुर्वेद रत्नाकर रत्नाकर औपधालय (पटना)। (२) कविराज प० विधुभूषण सेनजी आयुर्वेदाचार्य काव्य-व्याकरणतीर्थ कविरत्न।

मन्त्री—काव्यतीर्थ प० श्रीकान्त शर्म्माजी वैद्यरत्न, कदमकूंवा (पटना)।

संयुक्त मन्त्री प० सिद्धेश्वरनाथोपाध्यायजी आयुर्वेदाचार्य, वैद्यरत्न प्रोफेसर, आयुर्वेदिक कालेज पटना।

औडिटर—बा० सुखराम प्रसादजी आयुर्वेदाचार्य बी. एस. सी., प्रोफेसर ग० आयुर्वेदिक कालेज पटना।

Andhra Provincial Ayurvedic Conferences. held from 1917 to 1935 with their Names of Presidents. Places Etc.

No.	Year	Place	President's Name with their addresses.
1	1917	Bezwada	Vaidyaratna Pandit D. Gopalacharlu Garu. Ayurveda Marthanda. Bhishagmani. Madras.

(१) बंगाल—दुःख है, बंगालके किसी प्रान्तीय वैद्यसम्मेलनका विवरण प्राप्त नहीं हुआ।

(२) द्रविड़—खेदके साथ लिखना पड़ता है कि द्रविड़ वैद्यसम्मेलनोंका विवरण भी उपलब्ध नहीं हुआ।

2	1918	Coconada	1 Rajavaidya Kompalli. Chenchuvamayya Garu Kalhasti.
3	1919	Vizainagaram	Dr. A. Laksmipaty Garu B. A. M. B. & C. M. Madras.
4	1920	Chicacole	2 Ayurveda Bhushana Nori. Ramasastri Garu AK. AC. Bezwada.
5	1921	Tenali.	3 Vidwan K. Seshasastri Garu Sringeri.
6	1924	Nellore	4 Kaviraj P. Kristnamacharlu Garu Ellore.
7	1925	Madras.	5 Vaidyaraja D. S. Aradhanulu Garu L. C. P. & S. Madras.
8	1926	Nandyala	Dr. A. Lakshmipaty Garu B. A. M. B. & C. M. Bhishagratna. Madras.
9	1927	Guntur	Vaidyaratna G. Srinivasamurty B. A. B. L. & M. B. & C. M. Madras.
10	1929	Masulipatam	Ayurvedacharya N. Madhava Menon A. M. A. C.
11	1931	Rajahmondry	Dr. A. Lakshmipaty Garu B. A. M. B. & C. M. Madras.
12	1933	Tanuku.	6 Dr. P. V. Kristna Rao Garu M. B. & C. M. Madras.
13	1934	Bhimanaram	Vaidya Panchanana Kristnashastri Kaude B. A. Poona.
14	1935	Toni	Dr. A. Lakshmipaty B. A. M. B. & C. M. Bhishagratna Madras.

Provincial Karnatak Ayurvedic Conferences held.

No.	Year	Place	President
1	1924	Belgaum	Capt. G. Srinivasmurti Madras.
2	1926	Bangalore	Dr. H. V. Savanur, L. M. & S. Belgaum.
3	1927	Bijapur	Ayurveda-Bhushan M. V. Sastri, Manglore.

4	1928	Manglore	Ayurveda-Panchanan Gangadhar Shastri Gune Ahemednagar.
5	1929	Dharwar	Dr. C. B. Ram Rao, B. A., M. D., Retd. Surgeon, Bangalore.
6	1930	Mysore	Dr. S. Venkoba Rao, B. A. B., M. D., Bangalore.
7	1934	Hubli	Ayurvedacharya Bhikaji Vinayak Degvekar M. A., M. Sc., LL. B., Jubbulpore.

गुजरात-कच्छ-काठियावाड़ प्रान्तीय वैद्यसंमेलन

इस प्रान्तमें अवतक ५ प्रान्तीय वैद्यसंमेलन हुए हैं। प्रथम संमेलन सन् १९२५ के दिसम्बरमें ता० २६, २७, २८ को अहमदाबादमें हुआ। अध्यक्षका आसन वंबईके प्रसिद्ध आयुर्वेदप्रेमी डॉ० पोपट प्रभुरामने ग्रहण किया था।

द्वितीय अधिवेशन वंबईमें वैद्यशास्त्री नारायणशंकर देवशंकर प्राणाचार्य अहमदाबादके सभापतित्वमें हुआ। तृतीय अधिवेशन सूरतमें स्वर्गीय वैद्यराज त्र्यम्बकलाल त्रिभुवनमुनि वंबईकी अध्यक्षतामें और चतुर्थ अधिवेशन वरोदामें वे. शां. स. लक्ष्मीशङ्कर नरोत्तम भावनगरके सभापतित्वमें हुआ। इसके वाद पञ्चम अधिवेशन वसईमें हुआ जिसके सभापति अहमदावादके राजवैद्य एस. एम. शर्माजी हैं। अव षष्ठ अधिवेशन निखिलभारतीयवैद्यसंमेलनके साथही अहमदावादमें पुनः होनेवाला है। इस प्रान्तमें प्रान्तीय संमेलनके द्वारा बड़ी जागृति पैदा हुई है और इस प्रान्तके वैद्य एक सूत्रसे आवद्ध होकर आयुर्वेदोन्नतिके लिये उत्साहपूर्वक सतत प्रयत्नशील होरहे हैं।

वरार-मध्यप्रान्तीयवैद्यसंमेलन

निखिलभारतायुर्वेदमहामण्डलके वैद्यसंमेलनों द्वारा भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें आयुर्वेदकी पताका फहराने लगी। मध्यप्रान्त और वरारपर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा। वरार और मध्यप्रान्तके लिए भिन्न भिन्न मन्त्रियोंकी नियुक्ति हुई। मध्यप्रान्तीय वैद्योंने मिलकर सन् १९३१ के नवम्बरमें मध्यप्रान्तीय वैद्यसंमेलनकी स्थापनाकी और उसका प्रथम अधिवेशन प्रयागनिवासी आयुर्वेदपञ्चानन श्रीजगन्नाथप्रसादजी शुक्लकी अध्यक्षतामें जवलपुरमें हुआ। दूसरा अधिवेशन नागपुर-वैद्यमंडल एवं विशेषतः वैद्यभूषण श्रीगोवर्धनजी शर्मा छांगाणी भिषक्केसरीके अथक उद्योगसे नागपुरमें बड़े समारोहसे हुआ। अध्यक्ष थे लखनऊके विद्यावाचस्पति, वैद्यभूषण श्रीशालग्रामजी-शास्त्री साहित्याचार्य। आपका भाषण "वेदोंमें त्रिधातुवाद" विषयपर बड़ाही मौलिक

रहा। तृतीय अधिवेशन छिन्दवाड़ामें नागपुरीय वैद्यभूषण प० गोव
छांगणी महोदयकी अध्यक्षतामें और इसी प्रकार इसका चतुर्थ अधिवेशन
वैद्यभूषण पुरुषोत्तमशास्त्री हिर्लेकर (अमरावती) की अध्यक्षतामें हुआ।
अधिवेशन अमरावती बरारमें होगा। उक्त संमेलन पहिले मध्यप्रान्तीय वैद्य
नामसे ही था; किन्तु बरार एवं मध्यप्रान्तीय कई वैद्यबन्धुओंके अनुरोधसे
अधिवेशनमें बरार भी संमिलित कर लिया गया और तबसे यह संमेलन श्री
मध्यप्रान्तीय वैद्यसंमेलनके नामसे भारत सरकार द्वारा रजिस्टर्ड हो चुका है।
पहिले तीन वर्ष कुछ सुपुप्तावस्थामें था किन्तु हर्षका विषय है कि छिन्दवाड़ा
श्रीबरार-मध्यप्रान्तीय वैद्यसंमेलन बड़े वेगके साथ कार्य कर रहा है। बरार
मध्यप्रान्तमें संमेलनकी ३६ शाखासभा स्थापित हैं और वे संमेलनद्वारा प्र
कार्यरूपमें लानेका प्रयत्न कर रही हैं। जबलपुर अधिवेशनके प्रस्तावानुसार
अपने विद्यापीठकी स्थापना भी इसी वर्ष कर चुका है। उसके प्रथम प्रस्ता
सी. पी. कौंसिलमें भी यू. पी. की तरह 'बोर्ड आफ मेडिसन'को सरकारने
कर लिया है। आशा है, थोड़ेही समयमें सरकार एवं वैद्यबन्धुओंके सहयोगसे बो
स्थापना होकर कार्य भी प्रारम्भ हो जायगा। संमेलन नि. भा. आयुर्वेदमहा
भी संबद्ध है।

पंजाब प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन

सन् १९२८ में लाहौरके वैद्योंमें विशेष उमङ्ग पैदा हुई अतएव उन्होंने प
वैद्यसमुदायको एकत्रित कर सामूहिक रूपसे आयुर्वेद प्रसारके लिये 'पञ्जाब
वैद्यसंमेलन' की स्थापना की। जिसका प्रथम अधिवेशन पटियालाके वैद्यरत्न
रामप्रसादजीकी अध्यक्षतामें लाहौरमें ही हुआ। स्वागताध्यक्ष सर गोकुलचन्द
थे। फलस्वरूप पञ्जाब गवर्नमेंट तथा लाहौर म्युनिस्पलिटीका ध्यान देशी चि
और देशी शिक्षा संस्थाओंकी ओर आकर्षित हुआ।

द्वितीय संमेलन रावलपिण्डीमें १९२९ के मई मासमें हुआ। पण्डित
दत्तजी अमृतधारावाले अध्यक्ष थे। इस अवसरमें प्रदर्शिनीका प्रबन्ध उत्तम
वैद्यरत्न प० रामप्रसादजीने ५०) रुपया दान देकर धन्वन्तरि कोषकी स्थापना
जिसका उद्देश्य चिकित्सा मार्गमें आनेवाली आपत्तियोंके अवसरमें वैद्योंकी स
करना था।

तृतीय संमेलन मोगामें लाहौरके वैद्य ठाकुरदत्तजी मुलतानीके सभापति
हुआ। मोगा ऐसे पाश्चात्य चिकित्साविधि प्रधान स्थानमें आयुर्वेद संमेलन होना
एक विशेषता थी।

चतुर्थ संमेलन वैद्य पञ्चानन पण्डित मस्तरामजी शास्त्रीके सभापतित्वमें अम्बालामें हुआ। सभापतिका जुलूस पटियाला राज्यके सजे हुए हाथी पर निकाला गया।

पञ्चम संमेलन दिल्लीके वैद्यभूषण प० मनोहरलालजी की अध्यक्षतामें भिवानीमें हुआ।

षष्ठ संमेलन जालन्धरमें हुआ। सभापतिका आसन लाहौरके कविराज नरेन्द्रनाथ मित्रने ग्रहण किया था।

सप्तम संमेलन लुधियानामें राय साहब पण्डित श्रीदत्तजी वैद्यराज, आनरेरी मजिस्ट्रेट एवं सबजज भिवानीके सभापतित्वमें हुआ। इस संमेलनकी चहल-पहल अपने ढंगकी निराली थी।



आयुर्वेद विद्यालय।



देशमें आयुर्वेद पढ़ानेकी प्राचीन प्रथा थी गुरुमुखसे शास्त्रका अध्ययन और अभ्यास करके छात्र चिकित्साक्रममें प्रवृत्त होते थे। सुश्रुतके उपदेशानुसार विदित होता है कि शास्त्रका अध्ययन कर राज्याज्ञा प्राप्त करनेके बाद ही वैद्य, चिकित्सा करनेके अधिकारी होते थे।

नालन्दा और तक्षशिला आदि विश्वविद्यालयोंमे चिकित्साशास्त्र पढ़ानेकी ऐसी सुन्दर व्यवस्था थी कि भारतेतर देशके लोगकी चिकित्साशास्त्र पढ़नेके लिये यहाँके विश्वविद्यालयोंमें आया करते थे। किन्तु कालकी कराल गतिसे भारतपर दुर्दैवका आक्रमण हुआ; और भीतरी कलह व बाहरी आततायियोंके आक्रमणोंसे देशकी दुर्व्यवस्था हो गई, और यहाँके ज्ञान-कला-कौशलकी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। एवं विद्वानोंने प्राणोंपर खेलकर बड़ी कठिनाईसे पाठ कण्ठस्थ कर प्राचीन विद्याकी रक्षाके लिये प्रयत्न किया। उसका फल यह है कि परम्परागत विद्या भग्नांशमें आज भी देशके गौरवको स्थिर रखनेमें समर्थ हो रही है।

आयुर्वेदके पठन पाठनकी शैली प्रायः सर्वत्र वैद्य परिवारोंमें परम्परासे चली आ रही है। बंगाल, और दक्षिण भारतमें चरक और वाग्भट (अष्टाङ्ग हृदय) के अध्यन अध्यापनका अच्छा प्रचार रहा। गत शताब्दीमें बंगालमें अच्छे-अच्छे विद्वान् हुए, और उन्होंने प्राचीन लुप्तप्राय ग्रन्थोंका संशोधन अभिवर्धन और प्रकाशन किया। माधव निदान, रसेन्द्रसार संग्रह, आदि ग्रन्थोंके संग्रह प्रकाशित किये। और चरक-सुश्रुत आदि संहिताओंपर विशेष टीकायें लिखी गईं। अनेक चक्रदत्त, वंगसेन आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गये। और यह लेखन परम्परा अबतक चली आ रही है। जिससे भैषज्य रत्नावली, आयुर्वेद विज्ञान, वनौषधि दर्पण, आयुर्वेद संग्रह, वैद्यक शब्दसिन्धु, प्रत्यक्ष शारीर, सिद्धान्त निदान, शतशः उपयोगी ग्रन्थ तैयार हुए, और हो रहे हैं। अन्य प्रान्तोंमें भी इसी प्रकार आयुर्वेदके ग्रन्थका प्रकाशन, लेखन और संशोधनका कार्य अच्छी तरहसे हुआ। जिससे आयुर्वेदीय ग्रन्थरत्न, तथा रसयोग सागर, रसरत्न समुच्चय, रसार्णव, योगरत्नाकर, शार्ङ्गधर, भावप्रकाश, रसतरङ्गिणी आदि अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए। किन्तु अध्ययन-व्यवस्था विद्यालय औषधालय के रूपमें चलती रही है। सर्वाङ्ग आयुर्वेद पढ़ानेका उत्तम प्रबन्ध कहीं नहीं था। केवल महाराजा संस्कृत कालेज जयपुरमें शिक्षा व्यवस्थाके रूपमें नियमित रूपसे होने लगी। एवं अन्य राजस्थानोंमें भी उसी तरहकी व्यवस्था शुरू हुई। व्याकरण, न्याय, काव्य, मीमांसाकी तरह आयुर्वेदशास्त्र भी पढ़ाया जाने लगा। और वैद्यशास्त्री

आयुर्वेदाचार्य आदि उपाधियाँ देनेकी व्यवस्था हुई। वृहत्रयी (चरक, सुश्रुत, वाग्भट) लघुत्रयी (माधव निदान, शार्ङ्गधर संहिता, भावप्रकाश) के पण्डित अधिकांशमें अपनी अष्टांग आयुर्वेदकी शिक्षाकी अपूर्णताका अनुभव करने लगे। और वैद्यसम्मेलनमें सबसे पहिले विद्यापीठकी पाठ्यप्रणालीको पूर्ण रूपसे व्यवहारोपयी बनानेके लिये अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय बनानेकी चर्चा हुई। और धन संग्रह करनेके लिये महाराजाधिराज रीवाँ नरेशकी प्रेरणासे निम्नलिखित विद्वान् वैद्योंका एक डेपुटेशन सम्वत् १९७४ के शीतकालमें दिल्ली गया; और वहाँ देशके राजामहाराजाओंसे मिला। इस डेपुटेशनोंमें प्रायः सब प्रान्तोंके प्रसिद्ध वैद्य सम्मिलित हुए थे।

डेपुटेशनके सदस्योंकी नामावली

१ श्रीमान् पं० डी. गोपालाचार्लु, मद्रास।
२ ,, पं० जटाशंकर लीलाधर त्रिवेदी, अहमदाबाद (गुजरात)।
३ ,, स्वामी लक्ष्मीराम जी, जयपुर (राजपूताना)।
४ ,, पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा, लाहोर (पंजाब)।
५ ,, वैद्यरत्न पं० रामप्रसादजी शर्मा, पटियाला (पंजाब)।
६ ,, महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेनजी, कलकत्ता (बंगाल)।
७ ,, वैद्यरत्न कविराज योगेन्द्रनाथसेनजी ,,
८ ,, कविराज ज्ञानेन्द्रनाथसेनजी ,,
९ ,, ,, सुधीन्द्रनाथसेनजी ,,
१० ,, डा० प्रसादीलालजी झा, कानपुर।
११ ,, पं० रघुवरदयालजी भट्ट ,,
१२ प० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल, प्रयाग।

इस डेपुटेशके उद्योगसे कुछ धन संग्रह हुआ। और प्रयागराजमें विद्यालय खोलनेकी एक आयोजना भी हुई। किन्तु विघ्नबाधाओंके उपस्थित हो जानेसे उक्त आयोजना कार्यरूपमें परिणित न हो सकी। पर इस प्रयत्नका फल यह हुआ कि विद्यापीठकी पाठ्यप्रणालीके अनुसार सर्वत्र पाठन शैलीका सूत्रपात हो गया। और देशमें इस समय अनेक आयुर्वेदविद्यालय हैं, जो प्राच्य-प्रतीच्य चिकित्साशास्त्रके सहयोगसे अष्टांग आयुर्वेदकी शिक्षा देनेमें अग्रसर हो रहें हैं। इधर प्रान्तीय सरकारोंने भी भारतीय चिकित्साशास्त्रोंकी उन्नतिके लिये आश्रय देना प्रारम्भ किया।

इस समय आयुर्वेदविद्यालय पाँच श्रेणीमें विभक्त किये जा सकते हैं।

१ प्रान्तीय सरकारोंसे संचालित आयुर्वेदविद्यालय।

२ प्रान्तीय सरकारोंसे सहायताप्राप्त और मान्य (Recognised) आयुर्वेदविद्यालय।

३ म्युनिस्पेलिटी और कार्पोरेशनसे सहायता प्राप्त आयुर्वेदविद्यालय
४ देशी राज्योंद्वारा संचालित आयुर्वेदविद्यालय ।

प्रान्तीय सरकार द्वारा संचालित आयुर्वेद विद्यालय

सिलोन—में दो कालेज हैं ।
१ कालेज आफ इण्डिजिनस मेडिसिन कोलम्बो (सीलोन)
२ लंका आयुर्वेदिक मेडिकल कालेज जफना (सीलोन)
३ मद्रास—स्कूल आफ इण्डियन मेडिसन मद्रास ।
४ पटना—गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज पटना ।
५ बिहार—आयुर्वेदविभाग संस्कृत कालेज मुजफ्फरपुर ।
६ उडीसा—आयुर्वेदविभाग संस्कृत कालेज पुरी ।

प्रान्तीय सरकारोंसे सहायताप्राप्त तथा स्वीकृत आयुर्वेद विद्यालय

१ आयुर्वेदिक कालेज, बनारस हिन्दूयुनिवर्सिटी, बनारस ।
२ ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, हरद्वार ।
३ डी. ए. वी. आयुर्वेदिक कालेज लाहौर (पंजाब) ।

म्युनिस्पेलिटी और कारपोरेशनसे सहायताप्राप्त आयुर्वेद विद्यालय

१ यामिनीभूषण अष्टांग आयुर्वेदविद्यालय, कलकत्ता ।
२ गोविन्द सुन्दरी फ्री आयुर्वेदकालेज, कलकत्ता ।
३ विश्वनाथ आयुर्वेद महाविद्यालय, कलकत्ता ।
४ वैद्यशास्त्रपीठ, कलकत्ता ।
५ म्युनिसिपल आयुर्वेद स्कूल नेलोर (मद्रास) ।

देशी राज्योंके द्वारा संचालित तथा सहायता प्राप्त आयुर्वेद विद्यालय

१ मैसूर आयुर्वेद विद्यालय मैसूर ।
२ ट्रावनकोर गवर्नमेंट आयुर्वेद कालेज ट्रावनकोर । तथा यहाँ सहायता प्राप्त चार और भी आयुर्वेदिक हाईस्कूल हैं ।
३ मोहता आयुर्वेद विद्यालय बीकानेर ।
४ आयुर्वेद विभाग संस्कृत कालेज जयपुर ।
५ आयुर्वेद विभाग संस्कृत महाविद्यालय बड़ौदा ।
६ उ० पी० आयुर्वेद महाविद्यालय पटना ।
७ राजकीय आयुर्वेद विद्यालय भरतपुर ।
८ राज संस्कृत महाविद्यालयका आयुर्वेद विभाग इन्दौर ।

उपरोक्त विद्यालयोंमें पाठनशैली भिन्न-भिन्न प्रकारकी है। इसलिये उनकी पाठ्य-प्रणालियाँ द्वितीय भागमें प्रकाशित की जायँगी यदि भारतके सब विद्वान परामर्श करके विद्यापीठकी निर्धारित पाठ्य प्रणालीको ही परिवर्तित और परिवर्धित करके सर्वत्र पढ़ाने योग्य बनालेवें तो एकही प्रकारकी पाठ्य प्रणाली और पदवीका प्रचार करनेसे आयुर्वेदका संगठन करनेमें परम सहायता प्राप्त हो सकती है।

९ सेठ जे. पी. आयुर्वेद विद्यालय भावनगर (काठियावाड़)।
१० निजाम स्टेट आयुर्वेद विद्यालय हैदराबाद दक्षिण।

५ धनीमानी जनता द्वारा संचालित आयुर्वेद विद्यालय।

१ प्रभुराम आयुर्वेद कालेज या डा० पोपट यूनीवर्सिटी आफ आयुर्वेद बम्बई।
२ ललितहरि संस्कृत आयुर्वेद कालेज, पीलीभीत।
३ बनवारीलाल आयुर्वेद कालेज देहली।
४ आयुर्वेद तिब्बी यूनानी कालेज देहली।
५ बुंदेलखण्ड आयुर्वेद विद्यालय, झाँसी।
६ वसिष्ठ आयुर्वेद विद्यालय कराची।
७ आयुर्वेद पाठशाला वार्शिग्घाट भावनगर, गुजरात।
८ नानूराम आयुर्वेद विद्यालय भिवानी (हिसार)।
९ तक्षशिला आयुर्वेद कालेज रावलपिंडी (पंजाब)।
१० आयुर्वेद विद्यालय लुधियाना (पंजाब)।
११ विदर्भ आयुर्वेद विद्यालय अमरावती।
१२ भारत आयुर्वेद विद्यालय ,,
१३ वैद्यक महाविद्यालय नागपुर।
१४ पुराणिक आयुर्वेद विद्यालय नागपुर।
१५ विशुद्धानन्द सरस्वती आयुर्वेद विद्यालय कलकत्ता।
१६ वाल्मीकि आयुर्वेद विद्यालय ग्वालियर।
१७ आयुर्वेद विद्यालय अहमदनगर।
१८ महाराष्ट्र आयुर्वेद विद्यालय पूना।
१९ आर्याङ्गल वैद्यक विद्यालय सतारा।
२० आर्य वैद्यक शिक्षा संस्था नासिक।
२१ गंगाराम छबीलदास आयुर्वेद विद्यालय पनवेल।
२२ आयुर्वेद पाठशाला बम्बई।
२३ महाराष्ट्र आयुर्वेद विद्यालय मुंभा बम्बई।
२४ हितैषिणी आयुर्वेद पाठशाला अजमेर।

२५ सिन्धमार्तण्ड आयुर्वेद विद्यालय हैदराबाद ।
२६ कृष्णदास आयुर्वेद पाठशाला कराची ।
२७ आयुर्वेद विद्यालय कानपुर ।
२८ सर्वहितैषी आयुर्वेद पाठशाला मथुरा ।
२९ वैद्यक महाविद्यालय मेरठ ।
३० बाबा कालीकमलीवालेका आयुर्वेद विद्यालय ऋषीकेष ।
३१ लक्ष्मणदास आयुर्वेद विद्यालय खुर्जा ।
३२ प्रेमगिरि सनातनधर्म आयुर्वेद कालेज लाहौर (पंजाब) ।
३३ आयुर्वेदविद्या प्रबोधिनी पाठशाला काशी ।
३४ आयुर्वेद महाविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर) ।
३५ आयुर्वेद विद्यालय राजापुर जिला रत्नागिरि ।

इनमेंसे ऐसी अनेक आयुर्वेदकी पाठशालायें हैं, जो औषधालयके साथ विर्थियोंको परीक्षाके लिये तैयार करती हैं, और यह सब प्रायः विद्यापीठके क्रमानुसार ही न्यूनाधिक रूपसे शिक्षा देती हैं । इनमें डा० पोपट युनिवर्सिटी आयुर्वेदकी विशिष्ट प्राच्य प्रणाली है । अनेक संस्थायें हैं जो अपने यहाँ परीक्षा कर पदवी प्रदान करती हैं, उनमें निम्ननिलिखित संस्थायें विशेष उल्लेख योग्य हैं ।

ऋषिकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, हरद्वार ।
आयुर्वेद महाविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी ।
वनवारीलाल आयुर्वेद महाविद्यालय दिल्ली ।
आयुर्वेद तिब्बी यूनानी कालेज देहली ।
आयुर्वेदविभाग संस्कृत कालेज जयपुर ।
ललितहरि संस्कृत कालेज पीलीभीत ।
आयुर्वेद विद्याप्रबोधिनी पाठशाला काशी ।
आयुर्वेद महाविद्यालय पूना (केवल स्त्रियोंके लिये) ।

विद्यापीठकी देखादेखी कुछ ऐसी भी संस्थायें प्रचलित हो गई हैं, जो केवल परीक्षा लेनेका ही कार्य करती है । उनमें निम्नलिखित विशेष उल्लेख योग्य हैं ।

१—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।
२—भारतधर्म महामण्डल काशी ।

अनेक प्रशंसापत्रोंके देखनेसे यह विदित हुआ है, कि बिना शिक्षा और परीक्षा लिये हुए भी धन लेकर पदवियाँ देनेवाली संस्थायें मौजूद हैं, जो व्यापारिक रूपसे आकर्षक परीक्षाकी नियमावलियाँ छापकर जनताको ठगती हैं ।



प्रान्तीय गवर्नमेन्टोंका आयुर्वेद सम्बन्धी विवरण।

१ मद्रास—जबसे आयुर्वेद महामण्डलकी स्थापना हुई है। आयुर्वेदके प्रति सरकारका भी दृष्टिपात होने लगा है। प्रतिवर्ष सम्मेलनके समय गवर्नमेंटसे सहायता पानेके लिये किसी न किसी रूपसे प्रस्ताव पास किये जाते थे। एक प्रन्तीय और केन्द्रीय धारा सभाओं (लेजिस्लेटिव कौंसिल) के सदस्योंका ध्यान भी आकृष्ट किया जाता था कि वे कौंसिलोंसे आयुर्वेदकी अभिवृद्धिके लिये प्रस्ताव उपस्थित करें, इसका फल यह हुआ मद्रास गवर्नमेंटने एक कमीशन आयुर्वेदकी परिस्थिति जाननेके लिये नियुक्त किया, जिसके सेक्रेटरी हमारे स्वनामधन्य नासिक वैद्य सम्मेलनके सभापति वैद्यरत्न कैप्टन जी. श्रीनिवासमूर्ति महोदय थे। आपने समस्त देशमें भ्रमण कर विद्वान् वैद्योंसे मिलकर परामर्श किया और उनसे लिखित वक्तव्य लेकर एक वृहदाकार रिपोर्ट तैयार की, जिसको गवर्नमेंटने स्वीकार कर स्कूल आफ इण्डियन मेडिसन नामक संस्था मद्रासमें स्थापित की। आप ही उसके प्रथम प्रिंसिपल नियुक्त किये गये। आपने अपना प्रयत्न जारी रक्खा और रजिस्ट्रेशनके नियमोपनियम बनाकर गवर्नमेंटसे स्वीकार कराकर उसे प्रचलित करा दिये। इस समय जो कार्य मद्रासमें हो रहा है, वह प्रशंसनीय है। और उसका विवरण द्वितीयखण्डमें प्रकाशित किया जायगा।

२ यू. पी.—मद्रास गवर्नमेंटकी भाँति यू. पी. गवर्नमेंटने भी जस्टिस गोकर्णनाथ मिश्रकी अध्यक्षतामें एक कमीशन नियुक्त किया, जिसने प्रान्तमें भ्रमण कर आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सापद्धतिका भलीभाँति निरीक्षण कर एक रिपोर्ट तैयार की। उसको गवर्नमेंटने स्वीकार कर हिन्दू विश्वविद्यालयके आयुर्वेद कालेजको ५००००) रु० वार्षिक तथा ऋषिकुल आयुर्वेदविद्यालयको १००००) सालाना सहायता प्रदान की। एवं रजिस्ट्रेशनके नियमोपनियम बनाकर बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन्स स्थापित कर आयुर्वेदकी विशेष शिक्षा और रजिस्ट्रेशन आदिका नियन्त्रण प्रारम्भ किया। इस बोर्डको गवर्नमेंट ५००००) (इधर अर्थसंकोचके नामपर तीन वर्षोंसे ३५ हजार ही) इस लिये देती है कि वह चलते हुए आयुर्वेदिक और यूनानी औषधालयोंको प्रतिवर्ष आर्थिक सहायता दिया करे। इसका विवरण द्वितीय खण्डमें प्रकाशित किया जायगा।

३ विहार—गवर्नमेंटने मिनिस्टरोंकी देखरेखमें एक कमेटी नियुक्तकी जिसकी रिपोर्टके अनुसार प्राच्य प्रतीच्य चिकित्साशास्त्रकी उच्च शिक्षा देनेके लिये एक विद्यालय स्थापित किया। उसका कार्य श्रीयुत प० हरिनारायणजी चतुर्वेदीकी अध्यक्षतामें सुचारुरूपसे संचालित हो रहा है। इसका ब्यौरा द्वितीय खण्डमें प्रकाशित किया जावेगा।

४ सी. पी.—सी. पी. गवर्नमेंटने वीस-वीस रुपयेकी दस छात्रवृत्तियाँ बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटीके आयुर्वेदिक कालेजमें पढ़नेवाले सी. पी. के विद्यार्थियोंको दी है।

५ कोलम्वो-सीलोन—कोलम्बोमें सीलोन गवर्नमेंट वार्षिक ५००००) रु० बोर्ड आफ इण्डिजिनस मेडिसिनको देती है। जिससे वोर्ड आयुर्वेद कालेजका संचालन करता है, और उनके दातव्य औषधालयोंको सहायता देता है। एक दूसरा कालेज भी आयुर्वैदिक मेडिकल कालेजके नामसे जफनामें है। वैद्योंके रजिस्ट्रेशनके लिये भी गवर्नमेंट विचार कर रही है।

५ वंगाल गवर्नमेंट—वंगालमें अभीतक राजकीय कोई संस्था नहीं है। गवर्नमेंटने आयुर्वेदकी स्टेट फैकल्टी वनानेके लिये आयोजना की थी; किन्तु उस रिपोर्टका अव तक प्रकाशन नहीं हुआ है। गवर्नमेंटको लिखने पर जो उत्तर मिला है वह दूसरे भागमें प्रकाशित किया जायगा।

७ आसाम—आसाम गवर्नमेंटने अवतक आयुर्वेदके लिये कोई कार्य नहीं किया है। केवल डिवरूगढ़की म्युनिस्पेलिटीको ५००) वार्षिक एक आयुर्वेदीय दातव्य औषधालयको सहायता प्रदान करनेके लिये आज्ञा दिलाई है। और दो विद्यार्थियों-को आयुर्वेद कालेजमें शिक्षा पानेके लिये सहायता प्रदानकी है।

८ पंजाव—पंजाव गवर्नमेंटने डिस्ट्रिक्टवोर्ड-द्वारा आयुर्वेद और यूनानी संस्था-ओंके संचालनके लिये सहायता प्रदान की थी, और दो वर्ष तक वरावर यह सहायता जारी रही। एक यूनानी और आयुर्वेद विद्यालयको भी सहायता देती है। डी. ए. वी. आयुर्वैदिक कालेजको २६६६।।=)८ पाई और इतना ही यूनानीको भी देती है।

९ वम्वई—वम्वई गवर्नमेंटने अवतक आयुर्वेदके लिये कुछ भी कार्य नहीं किया है।

१०—वर्मा गवर्नमेंट आयुर्वेदकी किसी भी संस्थाको सहायता नहीं करती है।



देशी राज्योंका आयुर्वेद सम्बन्धी विवरण ।

१ बड़ोदा—राज्यमें चार आयुर्वैदिक दातव्य औषधालय हैं, जिनका प्रबन्ध स्टेट मेडिकल डिपार्टमेंट और लोकलबोर्ड करता है। राज्यमें दो शिक्षा संस्थायें हैं। एकका नाम सेठ उज्जमशी पीताम्बरदास आयुर्वैदिक कालेज है। इसका वार्षिक व्यय १२०००) है। आधा राज्य देता है और आधा स्वर्गीय सेठ उज्जमशी पीताम्बरदास पाटन निवासीके एक लाख रुपयेके दानके व्याजसे दिया जाता है। यह दान उक्त सेठजीने सन् १९२१ ई० में दिया था। दूसरी संस्था राजकीय संस्कृत महाविद्यालय-के नामसे है। इसमें अन्य पुराण, ज्योतिष आदि विषयोंके साथ आयुर्वेद भी पढ़ाया जाता है। और इसका प्रबन्ध राज्यका शिक्षा विभाग करता है।

दानी सज्जन आयुर्वैदिक दातव्य औषधालय खोलनेके निमित्त उचित मात्रामें धन देकर राज्यसे प्रार्थना करें, तो उनकी उचित प्रार्थनापर विशेष ध्यान दिया जाता है।

२ बीकानेर—राज्य २४०३ रु० मासिक तीन आयुर्वैदिक दातव्य औषधालयों पर व्यय करता है। और १२२॥) मासिक मोहता आयुर्वेद पाठशालाको सहायता करता है।

३ किशनगढ़—राज्यमें कोई आयुर्वेदकी संस्था नहीं है।

४ जयपुर—राज्यमें संस्कृतमहाविद्यालयके साथ आयुर्वेदकी शिक्षाका भी प्रबन्ध है। उसका समस्त व्यय राज्य और शिक्षा विभाग करता है। महाराजाके प्राइवेट सेकरेटरीको तथा होम मेम्बरको पत्र लिखे गये; किन्तु कोई विवरण प्राप्त नहीं हुआ।

५ उदयपुर—उदयपुर मेवाड़ राज्यमें छः आयुर्वेदकी संस्थायें हैं। उनमें फतह भोपाल महाविद्यालय नामक संस्थाके आयुर्वेदके क्लासोंके लिये १२९५) वार्षिक व्यय किया जाता है। इस संस्थाके विद्यार्थी निखिल भारतवर्षीय विद्यापीठकी परीक्षामें सम्मिलित होते हैं और उत्तीर्ण विद्यार्थी राज्यके प्रधान-प्रधान स्थानोंपर विशेष वेतनपर वैद्य और शिक्षक नियुक्त किये जाते हैं।

६ ग्वालियर—ग्वालियर राज्यमें एक वृहद् फार्मेसी है। इसे राज्यकी अच्छी सहायता मिलती है। राजवैद्य है, और भी संस्थायें हैं किन्तु राज्यकी ओरसे कोई विशेष विवरण प्राप्त नहीं हुआ है।

७ कोटा स्टेट—राज्य ८०) वार्षिक पाँच आयुर्वैदिक दातव्य औषधालयोंको सहायता करता है।

८ पटियाला—राज्यकी तरफसे कई एक औषधालय हैं, और उनकी देखरेखके

लिये स्वनाम धन्य पं. रामप्रसादजी वैद्यरत्न नियुक्त हैं। राज्यको अनेक वार भी कोई विशेष विवरण प्राप्त नहीं हुआ।

९ कपूरथला—८५) मासिक कई एक वैद्योंको राज्य सहायता देता है।

१० नाभा—दो वैद्य राज्यकी तरफसे नियुक्त हैं।

११ कोल्हापुर—१५००) रु० वार्षिक व्ययसे सन् १८९६ ई० से देशी दवाखानाका संचालन करता है।

१२ कोचीन—राज्यमें एक सौ इक्यानवे आयुर्वेदकी संस्थायें हैं। इनमें शिक्षाका कार्य करती हैं। सत्रह वैद्यशालाओंका प्रबन्ध ग्राम्य पंचायतें करती हैं सर्प दंश और अन्य विषोंकी चिकित्साके लिये छः संस्थायें हैं, और इन संस्थाओंको निःशुल्क औषधि देनेके लिये एक केन्द्रीय औषधि निर्माणशाला है। कुष्ट रोगियोंके लिये एक स्वतंत्र औषधालय है। और दो जनरल आयुर्वेदिक हास्पिटल हैं।

जो छः औषधालय गाम्य पंचायतोंके अधीन हैं, उनको राज्यकी तरफसे ६००) रु० वार्षिक प्रति औषधालय दिया जाता है। विष चिकित्साके लिये जो औषधालय हैं, उनको ३००) रु० वार्षिक प्रति औषधालय दिया जाता है। केन्द्रीय निर्माणशाला-का समस्त व्यय राज्य करता है। कुष्ट चिकित्साके औषधालयको भी ६००) वार्षिक सहायता मिलती है।

दो हास्पिटल जो ऊपर लिखे गये हैं, उनमें एकका सम्पूर्ण व्यय राज्यकी तरफसे दिया जाता है। और दूसरा प्राइवेट है। उसको ३००००) रु० देना सरकारने स्वीकार किया है। उसमेंसे आधेसे अधिक दिया जा चुका है। इसके अतिरिक्त ग्राम्य-वैद्य और स्काउट मास्टरोंको प्रारम्भिक चिकित्सा और विष चिकित्साकी शिक्षाका प्रबन्ध प्रतिवर्ष राज्यकी ओरसे किया जाता है। इस प्रकारसे शिक्षित व्यक्तियोंको राज्यकी तरफसे निःशुल्क औषधियाँ वितरणके लिये दी जाती हैं।

१३ ट्रावनकोर-स्टेट—राज्यमें २६२ आयुर्वेदिक संस्थायें हैं।

१ आयुर्वेदिक हास्पिटल	१
२ आयुर्वेदिक फार्मेसी	१
३ राजकीय सहायता पानेवाले आयुर्वेदिक हास्पिटल	३
४ राजकीय सहायता पानेवाले आयुर्वेदीय दातव्य औषधालय	१२७
५ स्वीकृत आयुर्वेदिक दातव्य औषधालय	१२५
६ गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज	१
७ सहायता प्राप्त आयुर्वेदिक हाई स्कूल	४
	२६२

राज्यने आयुर्वेदिक साइन्सकी उन्नतिके लिये अर्ध शताब्दीसे एक स्वतंत्र विभाग संस्थापित कर रक्खा है। इस विभागने अच्छी उन्नति की है। और इसका कार्यक्षेत्र

प्रतिवर्ष विस्तृत होता जा रहा है। इस विभागकी उन्नतिके लिये प्रतिवर्ष राज्य अधिकाधिक व्यय करनेकी व्यवस्था करता जाता है।

इस विभागकी दो शाखायें हैं—

१ चिकित्सा विभाग।

२ शिक्षा विभाग।

उक्त दोनों विभाग स्वतंन्त्र अधिकारियोंके अधीन हैं।

चिकित्सा विभाग

चिकित्सा विभागके अधीन राज्यके प्रधान नगरमें एक अस्पताल है। जो प्रतिवर्ष लोकप्रिय होता जा रहा है। इण्डोर और आउटडोर रोगीसंख्याकी प्रतिवर्ष अभिवृद्धि हो रही है। इसके अतिरिक्त तीन सहायता प्राप्त अस्पताल और १२७ दातव्य औषधालय हैं। स्वीकृत १२५ दातव्य औषधालय अन्य प्रान्तोंमें कार्य कर रहे हैं। उक्त तीन सहायता प्राप्त अस्पतालों को ५०) रु० मासिक राज्य सहायता देता है। एवं १२७ सहायता प्राप्त दातव्य औषधालयोंमेंसे ४ को ३०) मासिक, ९ को २५) मासिक, ३४ को २०) मासिक और ८० को १५ मासिक प्रत्येकको दिया जाता है।

राज्यमें अत्यन्त प्राचीन कालसे अनेक प्रसिद्ध चिकित्सक हैं। दलित जातिकी स्त्री और पुरुष चिकित्सकोंको राज्य विशेष रूपसे सहायता देकर उत्साहित करता है।

राज्यकी तरफसे परस्परागत वैद्य परिवारोंको आनरेरियम और सिविल-पेंशन देकर उत्साहित किया जाता है।

साधारण चिकित्साके अतिरिक्त वालचिकित्सा, मर्मचिकित्सा, विषचिकित्सा और नेत्रचिकित्साके विशेषज्ञ हैं।

सिद्ध और यूनानी चिकित्सकोंको भी राज्य उत्साहित करता है।

राज्यकी म्युनिस्पलटियाँ भी अपने-अपने अधिकृत स्थानोंमें अपने फण्डसे आयुर्वेदिक संस्थाओंको उत्साहित करती हैं।

राज्यने एक आयुर्वेदिक फार्मेसी भी संस्थापित कर रक्खी है, जो औषधियाँ तैयार कर गवर्नमेंट अस्पतालोंको पहुँचाती है, और आयुर्वेदिक कालेजके विद्यार्थियों-को औषधि निर्माणकी शिक्षा देती है। गत छः माससे विक्रय विभाग भी खोला है। जिससे उत्तम और अल्प मूल्यमें औषधियाँ जनताको प्राप्त हो सकती हैं। राज्य, कठिनतासे प्राप्त होनेवाली औषधियोंकी रक्षाके लिये एक आयुर्वेद-उद्यान लगानेकी व्यवस्था कर रहा है। जिसमें आयुर्वेद कालेजके विद्यार्थियोंको वनस्पतियोंके स्वरूप ज्ञानका विशेष अवसर मिलेगा।

राज्यके आयुर्वेद विभागकी देखरेखके लिये राज्यने इन्सपेक्टर नियुक्त कर रक्खा है।

शिक्षा विभाग

आयुर्वेदीय शिक्षा विभागमें एक राजकीय कालेज राज्यके प्रधान नगरमें है। और चार सहायता प्राप्त हाईस्कूल राज्यके भिन्न स्थानोंमें संस्थापित हैं। चारों हाई-स्कूलोंको प्रतिमास ३० सहायता प्रत्येक स्कूलके हिसावसे दी जाती है। उनका सम्वन्ध कालेजके साथ है।

आयुर्वेद-विद्याकी उन्नतिके लिये ४० छात्रवृत्तियाँ आयुर्वेद कालेजके विद्यार्थियों-को पाँच वरस तक दी जाती हैं। आयुर्वेद कालेज, सवसे उच्च डिगरी आयुर्वेदाचार्यकी देता है। तथा आयुर्वेद कलानिधि नामक डिप्लोमा भी देता है।

आयुर्वेद शास्त्रके अनुसार सफल चिकित्सापर निवन्ध लिखने वालेको स्वर्णपदक देता है।

राज्यके वाहर आयुर्वेदकी उच्च शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियोंको छात्रवृत्ति दी जाती है। इस समय राज्यकी तरफसे वनारस हिन्दू युनिवर्सिटी आयुर्वेद कालेजमें पढ़नेके लिये एक छात्रको छात्रवृत्ति दी जाती है। वर्तमानमें दुष्प्राप्य हस्तलिखित ग्रन्थोंका संग्रहकर राज्यके व्ययसे प्रकाशित करनेकी व्यवस्था की गई है, और चिकित्सामंजरी नामक पुस्तक वैद्योंके लाभार्थ प्रकाशित की गई है।

राज्यके आयुर्वेदीय शिक्षा संस्थान आयुर्वेद कालेजके प्रिंसपलके अधीन हैं।

१५ जोधपुर—ज्ञात हुआ है कि राज्यकी तरफसे कुछ आयुर्वैदिक दातव्य औषधालय हैं; किन्तु कोई विशेष समाचार प्राप्त नहीं हुआ है।

१६ काश्मीर—राज्यने देशी चिकित्साके लिये १५००) रु० वार्षिक स्वीकृत किया है।

१७ नेपाल—श्रीमान् नरपति शर्माजी आयुर्वेदशास्त्राचार्य (B. H. U.) के द्वारा ज्ञात हुआ कि नैपाल राज्यमें गवर्नमेंटका एक आयुर्वेद विद्यालय है तथा सात दातव्य औषधालय हैं।



म्युनिस्पल बोर्डों-द्वारा संचालित आयुर्वेदिक संस्थायें

यू० पी० म्युनिस्पल बोर्ड सन् १६३४-३५ ई०

१ लखनऊ—दो आयुर्वेदीय दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है।

२ प्रतापगढ़ (अवध)—बोर्डकी कोई आयुर्वेदीय संस्था नहीं है।

३ सीतापुर—एक वैद्यको धर्मार्थ औषधि वितरणके लिये नियुक्त किया है।

४ सुलतानपुर (अवध)—बोर्डकी कोई आयुर्वेदीय संस्था नहीं है।

५ रायबरेली— " "

६ शाहजहाँपुर— " "

७ बरेली—एक आयुर्वेदीय दातव्य औषधालय है। जिसपर सन् १९३३-३४ ई० में १८४३) रु० व्यय किया है।

८ बदायूँ—बोर्डकी कोई आयुर्वेदीय संस्था नहीं है।

९ बनारस—चार आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। ८५००) रु० वार्षिक व्यय इसके लिये स्वीकृत है। औषधालय बहुत ही लोकप्रिय हैं। एक वर्षमें नवीन रोगी ४२८१८, और पुराने ८१७७७, कुल १२४६२५ रोगियोंने सन् १९३३-३४ में लाभ उठाया।

१० जौनपुर—बोर्डकी कोई आयुर्वेदिक संस्था नहीं है।

११ गोंडा— " "

१२ अल्मोड़ा— " "

१३ नैनीताल— " "

१४ देहरादून— " "

१५ मेरठ—दो आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। जिसमें एकको ६००) दूसरेको २००) वार्षिक सहायता करता है।

१६ मथुरा—सेवासमितिके आयुर्वेदिक औषधालयको २५) मासिक सहायता देता है।

१७ कानपुर—एक आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयका संचालन करता है। तथा २०) मासिक एक आयुर्वेदिक विद्यालयको सहायता देता है। ५३०) मासिक एक आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयको सहायता देता है। प्रान्तीय महामण्डलको नाममात्र शुल्कपर वनस्पति उद्यान लगानेके लिये जमीन दी है। गत वर्ष विद्यालयको मकान बनवानेके लिये ५००) सहायता की थी।

१८ आगरा—दो आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयका पूर्ण रूपसे संचालन करता है, तथा एक औषधालयको १५) मासिक सहायता देता है। दो और औषधालयोंको सहायता देना पीछेसे स्वीकृत हुआ है। एकको २५) रु., दूसरेको २०) रु. मासिक।

१९ विजनौर—वोर्ड का कोई आयुर्वेदिक दातव्य औषधालय नहीं है।

विहार और उड़ीसा म्युनिसिपलवोर्ड सन् १९३४-३५ ई०

१ पटना—यहाँपर गवर्नमेंट आयुर्वेदिक स्कूल कार्य करता है। किन्तु वोर्ड उसको किसी प्रकारकी सहायता नहीं करता। अन्य आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंकी सूची कार्यालयमें प्राप्त नहीं है। वोर्डने स्वयं आयुर्वेदके लिये अब तक कुछ नहीं किया है।

२ भागलपुर वोर्डका कोई दवाखाना नहीं है।

३ हजारीवाग— ,,

४ गया— ,,

५ गोहाटी— ,,

६ कटक— ,,

७ पुरी— ,,

८ छपरा— ,, किन्तु विद्यालयको वनस्पति उद्यान वनानेके लिये जमीन दी है।

वंगाल म्युनिसिपलवोर्ड सन् ११३४-३५ ई०

१ हुगली—यहाँपर वोर्डका आयुर्वेदीय कोई औषधालय नहीं है।

२ नारायणगंज— ,,

३ सूरी— ,,

४ वाँकुरा— ,,

५ ढाका— ,,

६ वर्दवान— ,,

७ अश्शोर—डिस्ट्रिक्ट वोर्डका एक आयुर्वेदीय दातव्य औषधालय है। जिसको वोर्ड ५०) रु० वार्षिक सहायता करता है।

कलकत्ता कारपोरेशन—सन् १३३-३४ ई० में कारपोरेशनने नीचे लिखी संस्थाओंको सहायता प्रदान की—

१—यामिनीभूषण, अष्टांग आयुर्वेद विद्यालयको	२३७५०)
२—गोविन्द सुन्दरी आयुर्वेद चिकित्सालयको	९६५०)
३—विश्वनाथ आयुर्वेद महाविद्यालय	१४३७५)
४—स्वर्णमयी प्रमदा सुन्दरी आयुर्वेद दातव्य औषधालय	२२५)
५—कलकत्ता आयुर्वेद सभा	५०००)
६—वैद्यशास्त्रपीठ चिकित्सालय	१२४५०)
	६५४५०)

मद्रास प्रेसीडेंसी सन् १९३४-३५ ई०

१ बरहमपुर—एक औपधालयका संचालन करता है।
२ मेंगलोर— ,,
३ उटकमण्ड— ,,
४ करनूल— ,,
५ कोयम्बटूर— ,,
६ वतुरा— ,,

७ मदुरा—१००००) रु० वार्षिक व्ययसे दो आयुर्वेदीय दातव्य औपधालयोंका संचालन करता है।

८ टिन्नवेली—बोर्डके इलाकेमें तीन आयुर्वेदीय दातव्य औपधालय हैं। इनको ३००) रु० वार्षिक सहायताके लिये स्वीकृत हुये हैं, जो गवर्नमेंटकी स्वीकृति आनेपर द्वितीय भागमें दिये जावेंगे।

९ ट्रिचनापल्ली—बोर्डका कोई आयुर्वेदीय दातव्य औपधालय नहीं है।

१० वेलारी—एक आयुर्वेदीय दातव्य औपधालयका संचालन १०००) रु० वार्षिक व्ययसे करता है।

वम्बई प्रेसिडेंसी—सन् १९३४-३५ ई०

१ वम्बई—दो आयुर्वेदीय दातव्य औपधालयोंको ९००) और ६००) वार्षिक रुपया सहायता करता है।

२ नासिक—एक आयुर्वेदीय दातव्य औपधालयका संचालन करता है, और एक दातव्य औपधालय खोलनेका विचार कर रहा है।

३ थाना—यहाँपर बोर्डका कोई आयुर्वेदीय दातव्य औपधालय नहीं है।

४ भड़ोच ,,

५ सोलापुर—दो आयुर्वेदकी संस्थायें हैं। एक आयुर्वेदका दातव्य खोलनेका विचार कर रहा है।

६ कराची म्युनिसपल कार्पोरेशन—वर्तमान समयमें बोर्डका कोई आयुर्वेदीय दातव्य औपधालय नहीं है। कुछ समय पूर्व १६००) रु० वार्षिक एक औपधालयको सहायता रूप देता था। किन्तु विशेष परिस्थितिके कारण वन्द करनी पड़ी। किन्तु पुनः जारी करनेका विचार कर रहा है। आयुर्वेद और यूनानी संस्थाओं के दो विद्यार्थियोंको छात्रवृत्ति निम्नलिखित क्रमसे देता रहा है। और द्वितीय वर्षमें ३०) रु०, तृतीय वर्षमें ३५) रु०, चतुर्थ वर्षमें ४०) मासिक प्रत्येकको देता रहा।

कार्पोरेशनके सामने आयुर्वेदीय और यूनानी औषधालय खोलनेका एक प्रस्ताव भी उपस्थित है।

सी. पी. म्युनिस्पलबोर्ड सन् १९३४-३५ ई०

१ जबलपुर—तीन आयुर्वेदीय संस्थायें कार्य कर रही हैं। बोर्ड ४३५०) रु० सालाना व्यय करता है। इनमें एक संस्था पढ़ानेका कार्य करती है। औषधालय अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

२ बिलासपुर—३०००) वार्षिक व्ययसे सन् १९३१ ई० से आयुर्वेदीय दातव्य औषधालयका संचालन कर रहा है।

३ दमोह—यहाँपर बोर्डका कोई आयुर्वेदका औषधालय नहीं है। किन्तु एक औषधालय खोलनेका विचार कर रहा है।

४ छिंदवाड़ा—यहाँपर बोर्डका कोई आयुर्वेदीय दातव्य औषधालय नहीं है।

५ बालाघाट— ,,

६ बुरहानपुर— ,,

७ वर्धा—२५०) रु० वार्षिक मारवाड़ी सेवा समाजके आयुर्वेदीय औषधालयको सहायता देता है।

८ सतारा—यहाँपर एक आयुर्वेदकी संस्था है जिसको बोर्ड ३००) वार्षिक सहायता करता है।

९ धुबरी—बोर्डका कोई आयुर्वेदीय औषधालय नहीं है।

१० बेतूल— ,,

११ भण्डारा— ,,

पंजाब म्युनिस्पलबोर्ड सन् १९३४-३५ ई०

१ शिमला—पाँच आयुर्वैदिक और यूनानी दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। इसके लिये २५९९) रु० सन् १९३३-३४ ई० में व्यय किया। और भविष्यमें अभिवृद्धि होनेकी सम्भावना है; क्योंकि औषधालय लोकप्रिय हो रहे हैं।

२ लाहौर—यहाँ पर बोर्ड इस समय किसी प्रकारका आयुर्वेदीय दातव्य औषधालयका संचालन नहीं कर रहा है। किन्तु ५००) वार्षिक डी. ए. वी. आयुर्वैदिक कालेज और अंजुमन हिमायत इस्लाम तिब्बिया कालेजको भी ५००) रु० वार्षिक सहायता देता है। बोर्डने सन् १९३५-३६ के बजटमें १०००) रु० आयुर्वैदिक और यूनानी दातव्य औषधालय खोलनेके लिये स्वीकृत किये हैं।

३ रावलपिंडी—यहाँ पर बोर्डका कोई आयुर्वेदीय दातव्य औषधालय नहीं है।

४ सियालकोट—एक वैद्यकी नियुक्ति की है। जिसको ३०) मासिक दातव्य औषधालयके लिये सहायता देता है।

५ डेराइस्माइलखाँ—यहाँपर बोर्डका कोई दातव्य औषधालय नहीं है।

६ कोहाट— ,,

७ अमृतसर—आयुर्वेदिक और यूनानी औषधालय सन् १९३० ई० से कार्य कर रहा है। म्युनिसिपलिटी १०४३५) रु० वार्षिक व्यय करती है। सन् १९३३-३४ ई० में ४२९१० रोगियोंने लाभ उठाया।

८ हैदराबाद सिन्ध—५६०० के व्ययसे एक आयुर्वेदीय दातव्य औषधालयका संचालन कर रहा है।

९ शिकारपुर सिंध—बोर्डका कोई आयुर्वेदीय औषधालय नहीं है।



डिस्ट्रिक्टबोर्डों-द्वारा संचालित आयुर्वैदिक संस्थायें।

यू. पी. डिस्ट्रिक्टबोर्ड सन् १९३४-३५ ई०

१ बनारस—यहाँपर बोर्डके तीन औषधालय हैं। प्रत्येकके लिये १०००) रु० वार्षिक व्यय होता है। एक औषधालय खोलनेकी और आयोजना हुई। इसके लिये भी १०००) वार्षिक स्वीकृत है।

२ बलिया—आठ आयुर्वैदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। इनमें तीनका सम्पूर्ण व्यय बोर्ड करता है। शेषको पाँचसे पंद्रह रुपया तक मासिक वैद्योंको वेतनमें सहायता देता है। और पाँच रुपया मासिक औषधियोंके लिये प्रत्येक औषधालयको सहायता देता है। इस प्रकार २८१५) रु० वार्षिक व्यय होता है। बोर्ड प्रतिवर्ष जिलेके वैद्योंका एक सम्मेलन भी करता है और इसके साथ प्रदर्शन आदि करके वैद्योंके ज्ञानकी अभिवृद्धि करता है।

३ आजमगढ़—यहाँपर बोर्डका कोई औषधालय नहीं है।

४ गाजीपुर—चौदह आयुर्वैदिक और यूनानी दातव्य औषधालयोंको प्रति औषधालयके हिसाबसे १०) मासिक सहायता देता है।

५ गोरखपुर—छः आयुर्वैदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। प्रत्येक औषधालयपर ३७॥) मासिक व्यय होता है।

६ मिरजापुर—एक आयुर्वैदिक दातव्य औषधालयका संचालन करता है। इसमें २५) मासिक वैद्यका वेतन तथा १००) वार्षिक औषधिके लिये देता है।

७ जौनपुर—चार औषधालयोंका संचालन करता है और इनका समस्त व्यय अपने पाससे देता है।

८ रायबरेली—दो आयुर्वैदिक दातव्य औषधालयोंकी सहायता करता है। एक वैद्यको ३०) मासिक वेतन और १५) मासिक औषधके लिये देता है। दूसरे को २०) मासिक वेतन, १०) मासिक औषधके लिये सहायता करता है।

९ सुलतानपुर—एक वैद्यको ५०) मासिक सहायता करता है।

१० लखनऊ—४०००) वार्षिक व्ययसे तीन आयुर्वैदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है, और एकको ३९०) रु० वार्षिक सहायता देता है। सन् १९३३-३४ ई० में ५२९४९ रोगियोंकी चिकित्सा इन औषधालयोंमें हुई है।

११ प्रतापगढ़—एक आयुर्वैदिक दातव्य औषधालय तथा विद्यालय है। उसमें ३०००) वार्षिक व्यय होता है, जो चन्दासे एकत्रित किया जाता है।

१२ बस्ती—५०१६) रु० के व्ययसे तीन आयुर्वैदिक दातव्य औषधालयोंका

संचालन करता है। और २०) मासिक दो आयुर्वेदीय और एक यूनानी दातव्य औषधालयको सहायता देता है। सदरमें एक रसायन शालाका भी संचालन करता है। एक औषधालयको नवीन मकान देनेकी व्यवस्था की है।

१३ फैजाबाद—तीन आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। दो का सम्पूर्ण व्यय बोर्ड देता है। एकको २०) मासिककी सहायता देता है।

१४ सीतापुर—एक औषधालयका सम्पूर्ण व्यय देकर संचालन करता है। एक को ५) रु० मासिक सहायता देता है।

१५ फतेहपुर—सात आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। और भी अनेक औषधालयोंके खोलनेकी व्यवस्था कर रहा है। एक निरीक्षक भी नियुक्त किया है।

१६ अलीगढ़—यहाँ बोर्डकी कोई औषधालय नहीं है।

१७ मुजफ्फरनगर— ,,

१८ झाँसी—यह बोर्ड छः आयुर्वेदिक और एक यूनानी दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। आयुर्वेदिक दातव्यके औषधालयों पर ४४५१) रु० वार्षिक व्यय करता है। ७१५) यूनानीके दो औषधालय पर व्यय करता है, और १८०) रु० वार्षिक एक अन्य यूनानी दातव्य औषधालयको सहायता देता है। इस प्रकार कुल ५३४६) रु० देशी औषधियोंपर व्यय करता है। बोर्ड और भी औषधालय खोलकर जिलेकी सेवा करना चाहता है। बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन २००) वार्षिक बोर्डको सहायता देता है।

१९ आगरा—सात आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका सम्पूर्ण व्ययसे संचालन करता है, और २०३६) रु० वार्षिकसे १९ औषधालयोंकी सहायता करता है।

२० एटा—सोलह आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका और तीन यूनानी दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। इस कार्यके लिये ४७००) रु० बजटमें बोर्डने रक्खा है।

२१ बिजनौर—दस आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। ६ वैद्यों तथा चार हकीमोंको १०) मासिक सहायता देता है। पाँच वैद्योंको पाँच-पाँच रुपया मासिक की सहायता देता है। एक वैद्यको चार रुपया मासिक सहायता करता है।

२२ देहरादून—एक आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयका संचालन करता है।

२३ सहारनपुर—पाँच आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंकी सहायता करता है। इसमें दो औषधालयोंके साथ विद्यालय भी हैं।

विहार डिस्ट्रिक्टबोर्ड सन् १९३४-३५ ई०

१ पटना—नौ आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। सात

औषधालयोंको ५१०) रु० वार्षिक प्रति औषधालयको सहायता करता है। और दो औषधालयोंका समस्त व्यय डिस्ट्रिक्टबोर्ड करता है।

२ भागलपुर—२०००) रु० वार्षिक व्ययसे एक आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयको 'सुखण्ड' में संचालित करता है और 'निर्मली' में ८००) रु० वार्षिक सहायता करता है।

३ मुजफ्फरपुर—पाँच आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन सम्पूर्ण व्यय देकर करता है।

४ दरभंगा—पाँच आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका समस्त व्यय करता है। एक औषधालयको ३०) रु० मासिककी सहायता देता है।

५ मुंगेर—पाँच आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंकी सहायता वार्षिक ५००) रु० की औषधियाँ एवं ३५) रु० मासिककी वृत्ति प्रत्येक वैद्यको देकर करता है।

६ वालासोर—एक आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयको २५) रु० मासिककी सहायता करता है।

७ कटक—एक आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयका संचालन समस्त व्यय देकर करता है। एक औषधालयको सहायता करता है।

८ राँची—यहाँ कोई दवाखाना नहीं है।

बंगाल-डिस्ट्रिक्ट बोर्ड सन् १९३४-३५ ई०

१ अलीपुर (चौबीस परगना)—एक विद्यार्थीको १०) मासिक अष्टांग आयुर्वेद विद्यालयमें पढ़नेके लिये छात्रवृत्ति दी जाती है।

एक कविराजको नियुक्त कर आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयकी व्यवस्था कर रक्खी है। मासिक या वार्षिक व्यय कितना किया जाता है, इसकी सूचना प्राप्त नहीं हुई है।

२ मुर्शिदाबाद—४०) मासिक एक आयुर्वेदिक संस्थाको प्रदान करता है। जिसका नाम प्राप्त पत्रमें अङ्कित नहीं है।

३ वीरभूमि—एक विद्यार्थीको १०) मासिक छात्रवृत्ति कलकत्ता आयुर्वेद विद्यालयमें पढ़नेके लिये दी जाती है।

४ नदिया—६००) वार्षिक व्ययसे एक आयुर्वेदीय दातव्य औषधालय चलता है, और १५) रु० मासिककी छात्रवृत्ति वैद्यशास्त्रपीठ कलकत्ताको देता है।

५ हवड़ा—दो छात्रवृत्तियाँ स्वीकृत आयुर्वेद विद्यालयोंमें दी जाती हैं। छात्रवृत्तियोंका व्यय प्राप्त पत्रमें अंकित नहीं है।

६ ढाका—६८०) रु० वार्षिक व्ययसे एक दातव्य आयुर्वेदिक औषधालय संचालित करता है।

७ जैसोर—१८२३) रु० वार्षिक व्ययसे एक दातव्य आयुर्वेदिक औषधालय का संचालन करता है।

८ खुलना—२५५६) रु० वार्षिक व्ययसे दो आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। और १८०) रु० वार्षिक की सहायता एक आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयको प्रदान करता है।

९ मिदनापुर—कोई आयुर्वेदिक दातव्य औषधालय नहीं है।

आसाम बोर्ड सन् १६३४-३५ ई०

१ गोहाटी—यहाँ कोई आयुर्वेदिक दातव्य औषधालय नहीं है।

मद्रास डिस्ट्रिक्टबोर्ड सन् १६३४-३५ ई०

१ कृष्णा—सोलह आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। कई एकको ५००) रु० वार्षिक भी देता है और कुछको चालिससे सत्तर रु० मासिक तक की सहायत देता है। और भी अनेक आयुर्वेदिक औषधालयोंके खोलनेकी व्यवस्था कर रहा है।

२ नार्थ आर्कोट—छः आयुर्वेदिक दातव्य औषधालय हैं। पचास फी सदी गवर्नमेन्ट सहायता करती है। शेष सारा खर्च बोर्ड अपनी तरफसे करता है।

३ मैंगलोर—सात आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। इसमें चार औषधालयोंको ३६०) वार्षिक प्रत्येक औषधालयको देता है। एक औषधालयमें ५००) रु० साल चिकित्सक वेतनमें सहायता करता है। और ३६०) रु० साल औषधियोंके लिये देता है। एक औषधालयके व्ययकी सहायताके लिये पत्र व्यवहार हो रहा है। शेषका व्यय मुंडाजे संघके फण्डसे दिया जाता है। इस व्ययमें ५००) रु० साल प्रान्तीय सरकार भी सहायता करती है।

४ मलाबार—पाँच आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका प्रबन्ध करता है। प्रत्येक औषधालयको प्रान्तीय सरकार ५००) रु० सहायता करती है। एक औषधालयके वैद्यको ४०) रु० मासिक देता है। चालिस से सत्तर रु० मासिक तक ३) रु० वार्षिक वृद्धिके हिसाबसे करता है। दो वैद्योंको पचीस-पचीस रुपया मासिक देता है। एवं प्रत्येकको ३६०) रु० सालाना की औषधि देता है। और अपने प्रान्त-वाले दो तीन छात्रोंको १५) रु० और २५) रु० मासिककी छात्रवृत्तियाँ स्कूल आफ इण्डियन मेडिशन मद्रासमें पढ़नेके लिये देता है।

५ मथुरा—यहाँपर केवल एक सिद्ध समुदायका आयुर्वेदीय दातव्य औषधालय है, जिसका संचालन बोर्ड करता है।

६ निर्लोर—अठारह आयुर्वेदीय दातव्य औषधालयोंका नियमित रूपसे संचालन करता है। तथा सातको सहायता देता है। अन्य भी कई एक औषधालयोंको

औषधियाँ धर्मार्थ बाँटनेके लिये देता है। और भी औषधालय खोलनेकी चेष्टा कर रहा है।

७ उटकमण्ड—यहाँपर बोर्डका कोई औषधालय नहीं है

बंबई डिस्ट्रिक्ट बोर्ड सन् १९३४-३५ ई०

१ कुलाबा—२०००) रु० वार्षिक व्ययसे दो आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है।

२ अहमदाबाद—दस आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। प्रत्येक औषधालयका वार्षिक व्यय १०००,१२०० रु० के लगभग होता है।

३ भड़ोच—यहाँ बोर्डका कोई आयुर्वेदिक दातव्य औषधालय नहीं है।

४ पूना—९०००) रु० वार्षिक व्ययसे छः आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन होता है।

५ सूरत—यहाँ पर बोर्डका कोई आयुर्वेदिक दातव्य औषधालय नहीं है।

सी. पी. डिस्ट्रिक्टबोर्ड सन् १९३४-३५ ई०

१ बीजापुर—यहाँपर बोर्डकी तरफसे कोई आयुर्वेदिक औधालय नही है।

२ सतारा—छः आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंका संचालन करता है। ४००) रु० वार्षिक आर्याङ्गल वैद्यक विद्यालयको सहायता देता है।

३ रत्नागिरि—दो आयुर्वेदिक दातव्य औषधालयोंको ४००) रु० वार्षिक सहायता देता है।

४ धुवरी—यहाँपर बोर्डका कोई आयुर्वेदिक औषधालय नहीं है।

५ धारवार— ,,

६ हुंशागार— ,,

७ सागर— ,,

८ चाँदा— ,,

९ भण्डारा—यहाँपर आयुर्वेदकी पेटेंट औषधियाँ खरीदकर बाँटी जाती हैं। गवर्नमेंटने आयुर्वेदीय चिकित्सकोंको सहायता देनेकी सूचीमें सम्मिलित नहीं किया, इसलिये बोर्ड सहायता देनेमें विवश है।

१० छिंदवाड़ा—यहाँपर बोर्डका कोई आयुर्वेदीय औषधालय नहीं है।

११ बेतूल— ,,

१२ नागपुर— ,,

१३ जबलपुर—यहाँपर बोर्डका कोई आयुर्वेदीय औषधालय नहीं हैं। किन्तु मिडिल स्कूलोंमें धर्मार्थ वितरणके लिये औषधियाँ रक्खी जाती हैं।

पंजाब डिस्ट्रिक्टबोर्ड सन् १९३४-३५ ई०

१ जालन्धर—यहाँपर बोर्डका कोई आयुर्वेदीय औषधालय नहीं है। किन्तु डी. ए. वी. आयुर्वैदिक कालेजको एक छात्रवृत्ति देता है।

२ मुल्तान—तीन वैद्योंको नियुक्त किया है। जिसमें एकको २५) रु० मासिक दिया जाता है। और दोको तीस-तीस रुपया मासिक दिया जाता है।

पञ्जाबप्रान्तीय अन्य जिला बोर्डोंके समागत पत्रोंसे ज्ञात हुआ है कि वहाँ उनकी ओरसे कोई आयुर्वेदीय औषधालयोंका संचालन नहीं हो रहा है।

३ कराची—यहाँ पर बोर्डकी तरफसे कोई आयुर्वैदिक संस्था नहीं है।

४ हैदराबाद—६००) रु० वार्षिक आयुर्वैदिक दातव्य औषधालयोंको सहायता देता है।



प्रान्तोंका आयुर्वेद सम्बन्धी विवरण ।



देशका कोई प्रान्त ऐसा नहीं है । जहाँ पर वैद्य व्यवसायी, जनताकी सेवा न करते हों। यद्यपि सहस्रशः पत्र लिखने पर भी पर्याप्त रूपसे दातव्य औषधालयोंके विवरण प्राप्त नहीं हुए हैं। जितने विवरण आये हैं उनको देखनेसे ज्ञात होता है कि वे अत्यन्त अल्प हैं। आशा है कि द्वितीय भागमें देशके समस्त धर्मार्थ औषधालयोंका विस्तृत विवरण समाविष्ट हो सकेगा।

प्रान्तीय वैद्य मण्डल अपने-अपने कार्यालयोंमें दातव्य औषधालयोंकी एक सूची बनाकर रख लें तो सहजमें ही महामण्डलको दातव्य औषधालयोंकी संख्याका पता लग सकता है।

दातव्य औषधालयोंसे आयुर्वेदका बड़ा प्रचार हुआ है। प्रत्येक वैद्य व्यवसायी अपने औषधालयमें विक्रयके साथ-साथ दीन रोगियोंकी चिकित्सा धर्मार्थ ही करता है। इसलिये जब तक सम्पूर्ण भारतवर्षके वैद्योंकी सूची तैयार न हो जावे तबतक रोगियोंकी संख्या तथा धर्मार्थ कार्यका अन्दाजा लगाना असम्भव ही है। वैद्यगण अपने यहाँ दातव्य औषधालयके कार्यका रजिष्टर रक्खें और उनकी मासिक रिपोर्ट वैद्य सम्मेलन पत्रिकामें भेजा करें। तब सारे देशका रिकर्ड एकत्रित हो सकता है। जब तक वैद्य समाज इस तरहका रिकर्ड रखनेका प्रबन्ध न करेगा तबतक उसको अपनी शक्तिका अन्दाजा नहीं लग सकेगा। अब समय आ गया है कि सरकारको यह दिखा दिया जाय कि राज्य संचालित पाश्चात्य चिकित्सा पद्धतिके चिकित्सालय कितना कार्य करते हैं, और देशी चिकित्साके अनुयायी भी जनताकी कितनी सेवा करते हैं। और उसमें कितना अल्प व्यय होता है। यू. पी. बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिनकी रिपोर्टसे पता चलता है कि ३५०००) की वार्षिक सहायता पानेवाले वैद्य और हकीमोंने एक सालमें ३६ लाख रोगियोंकी सेवा की। इधर यू. पी. सरकारका लगभग ३० लाख रुपया व्यय होनेपर भी लगभग ६० लाख रोगियोंकी सेवा हुई। पाठक स्वयं विचार करें कि भारत ऐसे गरीब देशमें देशी चिकित्साके प्रचारसे कितने अल्प व्ययमें कितना जनसेवा-कार्य किया जा सकता है।

संयुक्तप्रान्त

इस प्रान्तमें आयुर्वेदको राज्याश्रय मिलनेसे इस समय अच्छा कार्य हो रहा है। यद्यपि यहाँके प्राचीन त्यागी वैद्योंने ट्रस्ट आदि बनाकर आयुर्वेदकी सेवाकी है। जिसमें बाबा कालीकमलीवाले रामनाथजीका नाम अग्रगण्य है। आपने कई

लक्षकी सम्पत्ति आयुर्वेद सेवा समिति, विद्यालय और औषधालयको देकर अमरकीर्ति प्राप्तकी है। इस संस्थाका प्रधान कार्यालय ऋषीकेषमें है। सहारनपुरसे लगाकर बद्रीनाथ तक आपके औषधालय धर्मार्थ कार्य कर रहे हैं।

३—आनरेबुल लाला सुखबीरसिंहजी मुजफ्फरनगर निवासीने ऋषिकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके संस्थापनमें भगीरथ प्रयत्न किया था। आपने परिश्रमकर आयुर्वेद विद्यालयके संचालन-निमित्त धन संग्रह कर स्थायी कोषकी स्थापनाकी, और यू. पी. गवर्नमेंटसे वार्षिक सहायता लेकर विद्यालयकी उन्नतिका मार्ग परिष्कृत किया। इस समय विद्यालय गवर्नमेंटसे लगभग दस हजार रुपया सहायता पाता है। और बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिनकी निर्धारित पद्धतिसे शिक्षा देता है। इस विद्यालयमें दो प्रकारकी शिक्षा दी जाती है। एक विभाग बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिनसे सम्बद्ध है। और दूसरे विभागकी परीक्षा विद्यालय स्वयं लेता है। इस समय यह विद्यालय कविराज ज्ञानेन्द्रनाथ सेन आयुर्वेदाचार्य बी. ए. की अध्यक्षतामें कार्य कर रहा है। कविराजजी स्वर्गीय महामहोपाध्याय कविराज द्वारकानाथजी सेन कलकत्ता निवासीके वंशज तथा शिष्य हैं।

हरद्वारमें पं० शिवचन्द्रजी राजवैद्यका सेनोटोरियम भी बन रहा है। एवं अन्य कई दातव्य औषधालय भी कार्य कर रहे हैं।

हरद्वारके पास गुरुकुल कांगडीकी बृहत् आयोजना है। यहाँ भी आयुर्वेदकी शिक्षाका उत्तम प्रबन्ध है। गत वर्षसे यहाँ वनस्पति वाटिका बनानेका भी उद्योग हो रहा है। यहाँको अन्तिम उपाधि आयुर्वेदालंकार है। यहाँपर प्राच्यप्रतीच्य चिकित्साशास्त्रकी तुलनात्मक शिक्षा दी जाती है।

यू. पी. के अनेक जिलोंमें आयुर्वेदके अनेक दातव्य औषधालय हैं, किन्तु प्रान्तीय सम्मेलनके मन्त्रीकी रिपोर्ट प्राप्त न होनेसे विशेष ब्यौरा नहीं लिखा जा सकता। द्वितीय भागमें विशद विवरण दिया जावेगा।

तीन दातव्य औषधालय उल्लेख योग्य हैं।

१—श्रीराम लक्ष्मीनारायण मारवाड़ी हिन्दू अस्पताल बनारसका आयुर्वैदिक विभाग।

२—कानपुरका दिगम्बर जैन आयुर्वेदीय पवित्र औषधालय।

३—रस्तोगी ट्रस्ट दातव्य औषधालय लखनऊ।

इन औषधालयोंमें लाखोंकी संख्यामें रोगी प्रति वर्ष लाभ उठाते हैं।

कानपुर आयुर्वेद विद्यालय और श्रीललित हरि संस्कृत आयुर्वेद कालेज पीलीभीत आदि संस्थायें शिक्षा और चिकित्सा द्वारा चिरकालसे आयुर्वेदकी सेवा कर रही हैं।

काशीमें महिलाओंको आयुर्वेदकी शिक्षा देनेके लिये एक जगदम्बा आयुर्वेद विद्यालय नामक संस्था है। इसका कार्य एक ट्रस्टके द्वारा संचालित होता है।

काशीमें स्वर्गीय आयुर्वेद मार्तण्ड अर्जुन मिश्रजीकी स्थापित 'आयुर्वेद विद्या-प्रबोधिनी पाठशाला' है। जिसके निमित्त आप अपना उपार्जित धन ३००००) हजार के लगभगकी चल-अचल संपत्ति समर्पण कर एक ट्रस्ट कर गये हैं। इस ट्रस्टके द्वारा पाठशाला और उसके साथ एक औषधालयका संचालन होता है। इस पाठशालाकी परीक्षाएँ पाठशालाके निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार स्वतन्त्र हैं। स्वर्गीय वैद्यजीने १५०००) के करीब धनका एक ट्रस्ट छात्रवृत्तिके लिये भी किया है, जिसके द्वारा उक्त पाठशालामें छात्रोंको वृत्तियाँ भी दी जाती हैं।

विहार और उड़ीसा प्रान्त

विहार-उड़ीसामें आयुर्वेदका बड़ा उत्तम प्रचार है। गवर्नमेंट एक आयुर्वेद विद्यालयका संचालन करती है। विहार-उड़ीसा संस्कृत कालेजमें भी उच्चतम शिक्षा की व्यवस्था है। श्रीमान् आयुर्वेद रत्नाकर पं० ब्रजविहारीजी चतुर्वेदीके सदुपयोगसे विहारमें बड़ा प्रचार हुआ है। आपका विहारमें सबसे बड़ा दवाखाना है।

विहार-उत्कलकी जो रिपोर्ट प्रान्तीय वैद्य सम्मेलनके मन्त्रियोंकी आई है वह द्वितीय भागमें प्रकाशित की जायगी।

वंगाल प्रान्त

वंगालमें आयुर्वेदका बहुत ही उत्तम प्रचार है। वहाँ ऐसे भी ख्यातनामा आयुर्वेदिक चिकित्सक हैं जो १०००) रुपया प्रति दिनकी फीसपर बाहर जाते हैं। अपने स्थान-पर ६४) रुपया तक रोगी निरीक्षण फीस लेते हैं। आयुर्वेद साहित्यके प्रचार और प्रकाशनमें भी वंङ्गालके वैद्योंके नाम अग्रगण्य हैं। प्राचीन और अर्वाचीन आयुर्वेदीय ग्रंथोंका संकलन और प्रकाशन वंगालमें हुआ है। इस समय भी वंगालमें बड़े बड़े विद्यालय आयुर्वेदकी उच्च शिक्षा देनेका कार्य कर रहे हैं।

वंगालके प्रान्तीय मंत्रियोंकी कोई विशेष रिपोर्ट न प्राप्त हो सकी, अतएव वह नहीं दी जा सकी।

मद्रास प्रान्त

मद्रास प्रान्तकी सरकारी और देशी राज्योंके नरेश आयुर्वेदके प्रचार, उद्धार और अभिवृद्धिके लिये अच्छी सहायता प्रदान कर रहे हैं। मद्रास शहरमें आयुर्वेदके प्रसिद्ध विद्वान्, नासिक निखिलभारतवर्षीय आयुर्वेद महामण्डलके सभापति वैद्यरत्न कैप्टन जी. श्रीनिवास मूर्तिकी अध्यक्षतामें समस्त सम्प्रदायके सिद्ध सम्प्रदाय, यूनानी और आयुर्वेदकी पढ़ाईका अच्छा प्रबन्ध है।

मद्रास आयुर्वेद कालेज ग्रेजुयेट एसोसियेशन भी भूतपूर्व आयुर्वेद कालेजके

विद्यार्थियोंका संगठन उत्तम रीतिसे कर रहा है। इसका वर्तमान कार्यालय कोथा पट्टम जिला गण्टूर है। पण्डित एन० केशवमाचार्लु एम. एस. सी. प्रधान मन्त्री हैं।

मद्रास आयुर्वेद कालेज सन् १९०५ में प्रारम्भ हो कर सन् १९२९ ई० तक कार्य करता रहा १६३ विद्यार्थी उत्तीर्ण होकर कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए हैं। इस कालेजके जन्मदाता आयुर्वेदके प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् पं० डी० गोपालाचार्लु थे। आपने दक्षिण भारतमें आयुर्वेदका अच्छा प्रचार किया था।

कोकोनाड़ामें आन्ध्र आयुर्वेद विश्वविद्यालय नामक एक संस्था भी कार्य करती है। इसके रजिष्ट्रार श्रीयुत वैद्यरत्न डा. पी. सुब्बारावजी B. Sc. F. C. P. S. आयुर्वेदाचार्य हैं।

इस समय श्रीरंगम, जिला ट्रिचनापल्लीमें द्राविड़ वैद्य मण्डलके जनरल सेक्रेटरीका आफिस है। इसके अधिकारी निम्नलिखित सज्जन हैं।

प्रधान—आयुर्वेदाचार्य पं० एम. दुरई स्वामी आयंगर वैद्यरत्न।

१ उपप्रधान—पं० डी० नारायण अय्यर वैद्य भास्कर।

२ उपप्रधान—हकीम, ए. जेड् मुहम्मद लतीफउद्दीन।

प्रधान मन्त्री—डॉ. वी. सुब्रह्मण्यम्।

सहयोगी मन्त्री—डॉ. पलानी येण्डी पिल्लाई,

सहकारी मन्त्री—के. ए. वेंकटाचल शास्त्री गल वैद्य विशारद।

कोषाध्यक्ष—वी. वी. नटराज शास्त्री गल।

कर्नाटक प्रान्त

मद्रास प्रान्तके कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेशसे जो आयुर्वेदकी सेवाका विवरण प्राप्त हुआ है, वह अविकल प्रकाशित किया जाना इस समय कठिन है। कर्नाटक वैद्य मण्डलने कर्नाटक प्रान्तीय वैद्योंकी एक सचित्र डाइरेक्टरी प्रकाशित की है। वह अत्यन्त अनुकरणीय है। मैं आशा करता हूँ कि प्रत्येक प्रान्तीय सम्मेलनोंके अधिकारी इसका अनुकरण करके अपने अपने प्रान्तोंकी वैद्योंकी डाइरेक्टरी तैयार कर आयुर्वेदकी सेवा करेंगे।

मद्रास प्रेसीडेन्सी मलाबारका हिस्सा आयुर्वेदके प्रत्येक अङ्गकी चिकित्सा करनेमें अग्रगण्य है। वहाँके देशी राज्य आयुर्वेदकी पूर्णरूपसे सहायता कर रहे हैं। वहाँ जो व्योरा प्राप्त हुआ है वह द्वितीय खण्डमें प्रकाशित किया जायगा।

बम्बई प्रान्त

बम्बई प्रान्तमें प्रधान कार्य करनेवाली संस्था "बम्बई वैद्य सभा" है। इस सभा के प्रधान मन्त्री राजवैद्य हरिजी जीवरामजी हैं।

इस सभाके प्रमुख कार्य कर्तागण निम्नलिखित हैं।

प्रधान—श्रीयुत प्राणाचार्य डॉ. पोपट प्रभुरामजी।

उपप्रधान—१ श्रीयुत आयुर्वेदमार्तण्ड वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य।

,, २ ,, डॉ. के. एस्. मस्कर एम. ए., एम. डी., बी. एस्. सी., डी. पी. एच्., डी. टी. एम्. एच्.।

प्रधान मन्त्री— ,, राजवैद्य हरिजी जीवरामजी।

सहायक मन्त्री—,, वैद्यराज भगवानलाल त्रिभुवनजी भट्ट।

कोषाध्यक्ष— ,, राजवैद्य जयशंकर हरजीवनजी भट्ट।

आडीटर— ,, वैद्यराज जेठालाल देवशंकरजी दवे।

यह सभा ४४ वर्षसे भी अधिक समयसे कार्य कर रही है, और इस प्रान्तमें निम्नलिखित विद्यालय कार्य कर रहे हैं।

१ प्रभुराम आयुर्वेद विद्यालय	बम्बई
२ महाराष्ट्र आयुर्वेद विद्यालय	,,
३ मुंबई आयुर्वेदीय पाठशाला	,,
४ बिरला आयुर्वेदीय औषधालय	,,
५ मारवाड़ी आयुर्वेदीय औषधालय	,,
६ सेठ रामनारायण रुइया आयुर्वेद औषधालय	,,
७ हीराबाग आयुर्वेद औषधालय	,,
८ दिगम्बर जैन मन्दिर आयुर्वेद औषधालय	,,
९ श्रीबालकृष्ण आयुर्वेदीय औषधालय	,,
१० श्रीधन्वन्तरि नरसिंह होम	,,

विशेष विवरण द्वितीय भागमें प्रकाशित किया जायगा

महाराष्ट्र प्रान्त

इस प्रान्तसे आयुर्वेद सभाओंका कोई विवरण प्राप्त नहीं हुआ। किन्तु नासिकके स्वनामधन्य वैद्य वामनशास्त्री दातारने जो विवरण भेजा है, वह स्थानाभावसे इस खण्डमें प्रकाशित करना संभव नहीं है।

अहमदनगरमें आयुर्वेदका प्रचार उत्तम रीतिसे हो रहा है। नीचे लिखी संस्थाओं-के कारण महाराष्ट्रमें आयुर्वेदकी बड़ी सेवा हो रही है।

१ आयुर्वेद विद्यालय	अहमदनगर
२ आयुर्वेद सेवासंघ	,,
३ आयुर्वेदाश्रम फार्मेसी लिमिटेड	,,
४ आयुर्वेद महाविद्यालय	पूना २

५ महाराष्ट्र आयुर्वेद विद्यालय पूना २
६ ,, ,, बम्बई ४
७ अर्याङ्गल वैद्यक विद्यालय सातारा
८ विदर्भ आयुर्वेद विद्यालय अमरावती
९ आयुर्वेद विद्यालय ,,
१० सेठ गंगाराम छबीलदास आयुर्वेद विद्यालय तथा चिकित्सालय यवोला (Yeola) नासिक
११ सेठ ताराचन्द्र रामनाथ आयुर्वेद हास्पिटल पूना
१२ वैद्यमंडल ,,

मध्यप्रान्त और बरार

इस प्रान्तका विवरण श्रीमान् भिषग्-केसरी पं० गोवर्धनजी शर्मा छांगाणी ने भेजा है। पर वह स्थान संकोचके कारण यहाँ प्रकाशित नहीं किया जा सका। इस प्रान्तमें नागपुर, जबलपुर, इटारसी, अमरावती, यवतमाल, हिंगनघाट आदि नगरोंमें आयुर्वेदकी अच्छी सेवा हो रही है।

सेन्ट्रल इण्डिया

मध्यभारतमें भी जितने राज्य हैं, उनमें प्राय: वैद्योंकी अच्छी प्रतिष्ठा है। जैन सम्प्रदायके लोगोंने अनेक दातव्य औषधालयोंका संचालन कर रक्खा है। इन्दौरके धनकुबेर राज्यभूषण रायबहादुर रावराजा सर सेठ स्वरूपचन्द्रजी हुकुमचन्द्रजी केटी, का नाम उल्लेख योग्य है। आपने प्रिंस यशवन्तराव आयुर्वेदिक जैन औषधालय संचालित कर रक्खा है। इस औषधालयके भवन-निर्माणमें दो लाख इकतीस हजार रुपया व्यय किया गया है। यह औषधालय गत पन्द्रह वर्षसे कार्य कर रहा है। इस औषधालयसे प्रतिवर्ष ३५ से ४० हजार तक रोगी लाभ उठाते हैं। सर स्वरूपचन्द्र हुकुमचन्द्र दिगम्बर जैन महाविद्यालयमें भी आयुर्वेद पढ़ानेकी व्यवस्था है।

मालवा प्रान्तिक दिगम्बर जैन औषधालय बड़नगरमें उक्त सेठ साहबकी अध्यक्षता तथा आर्थिक सहायतासे अच्छा कार्य कर रहा है। इस प्रान्तकी अन्य संस्थाओंका विवरण प्राप्त नहीं हो सका।

राजस्थान

राजस्थानमें प्राय: प्रत्येक राज्यमें राजवैद्य रखनेकी व्यवस्था देखी जाती है। किन्तु अनेक बार लिखने पर भी बहुतसे राज्योंने उत्तर ही नहीं दिया। अत: वैद्योंका सप्रमाणवृत्त लिखना सम्भव नहीं। प० मणिरामजी शर्मा आयुर्वेदाचार्य प्रधाना-

ध्यापक हरनन्दराय रुइया संस्कृत कालेज रामगढ़ने जो विवरण भेजा है, वह संक्षिप्त है। पूरा विवरण प्राप्त होनेपर द्वितीय खण्डमें प्रकाशित किया जायगा।

देहली

देहली सदा ही राजधानी रही है। यवन राज्यकालमें यूनानी चिकित्साका वहाँ प्राधान्य रहा है। मसीउलमुल्क हकीम अजमल खां साहबने यूनानीके साथ आयुर्वेदके उद्धारका भी संकल्प किया और अपने प्रभाव और प्रयत्नसे आयुर्वैदिक और यूनानी तिब्बी कालेजकी संस्थापना की। इस विद्यालयमें प्राचीनशास्त्रोंके साथ पाश्चात्य चिकित्साकी शिक्षाका भी समुचित प्रबन्ध है। इस विद्यालयका एक स्थायी कोष भी है। स्वर्गीय हकीम साहबने अपने जीवन कालमें ही एक ट्रस्ट बनाकर उसके प्रबन्धका भार सुपुर्द कर दिया। आप आजीवन इस संस्थाकी उन्नति करनेमें लगे रहे। इसमें एक संशोधन विभाग भी खोला गया है। जिसमें आयुर्वैदिक और यूनानी चिकित्सामें काम आनेवाली औषधियोंपर विशेष कार्य हो रहा है। चिकित्सा जगत इसके फलको जाननेके लिए उत्सुक है। इस संस्थासे 'आचार्य धन्वन्तरि' नामक एक पत्र भी निकलता है।

देहलीमें बनवारीलाल आयुर्वेद विद्यालय नामक एक प्राचीन संस्था है। इसमें प्राचीन पद्धतिके अनुसार आयुर्वेद पढ़ानेका सुप्रबन्ध है। इसका भी एक स्थायी कोष है। पं० मनोहरलालजी वैद्य इसके प्रधानाध्यापक हैं।

देहलीमें अनेक आयुर्वेदके धर्मार्थ औषधालय भी अच्छा कार्य कर रहे हैं।

देहलीमें निखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलनका महाधिवेशन भी काशीनिवासी श्रीयुत स्वर्गीय कविराज उमाचरणजी भट्टाचार्यकी अध्यक्षतामें हो चुका है।

ऐसा ज्ञात हुआ है कि देहलीमें एक वैद्य सभा भी है। निखिलभारतवर्षीय वैद्य सेवा समितिका कार्यालयभी यहीं है। वैद्यराज पं० नारायणदत्तजी इसके जीवनाधार हैं।

भिवानीमें रायसाहब पण्डित श्रीरामजी वैद्यराज आनरेरी मैजिस्ट्रेट व सबजजके प्रयत्नसे बड़ा काम हो रहा है। आपने एक नेत्रचिकित्सालय खुलवाया है, जिसके द्वारा संतोषजनक सेवा हो रही है। इस चिकित्सालयमें धन व्यय करनेवाले जालान परिवारकी उदारता अनुकरणीय है।

पंजाब

पंजाबमें डी. ए. वी. आयुर्वेद कालेज तथा प्रेमगिरि सनातनधर्म आयुर्वैदिक कालेज, दोनों अच्छी सेवा कर रहे हैं। आयुर्वेदका प्रचार दिनों दिन पंजाबमें अभिवृद्ध हो रहा है। पंजाबके वैद्य बड़े कर्मशूर हैं। निखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलनका

अधिवेशन लाहोरमें हो चुका है। प्रान्तीय वैद्य सम्मेलनका कार्य भी नियमित रूपसे होता है। धर्मार्थ औषधालय और चिकित्सालय (हास्पिटल) भी अच्छे कार्य कर रहे हैं। कई एक ग्रन्थोंके भाषानुवाद और नवीन ग्रन्थोंका लेखन व प्रकाशन भी हुआ है। भिवानीमें किशनलाल जालानका आई हास्पिटल भी श्रीयुत पी. डी. गिरधर वैद्यवाचस्पति जैसे उत्साही कर्मठ वैद्यके अधिकारमें है। आपने नेत्र चिकित्सामें अच्छी ख्याति प्राप्त की है। पंजाबमें कई प्रसिद्ध विद्वान् वैद्य हैं।

सिन्ध

सिन्ध—सिन्धके विषयमें वैद्य तेजभान पो. पुरोहितजी की लिखी हुई रिपोर्ट प्राप्त हुई है। यद्यपि इस प्रान्तमें आयुर्वेदका प्रभाव अन्य प्रान्तोंको अपेक्षा अल्प है। तथापि इस प्रान्तके वैद्य अल्प संख्यक होनेपर भी परम पुरुषार्थी हैं। सिन्धमें अल्प समयमें भी निखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलनके दो महाधिवेशन हो चुके हैं।

कराची, हैदराबाद, शिकारपुर, सक्खरमें आयुर्वेदका प्रचार बढ़ रहा है।

कराचीमें आयुर्वेदोद्धारक सभा कराची, सन् १९२४ ई० से स्थापित है। इसके प्रमुख कार्यकर्ता निम्नलिखित हैं।

सभापति—श्रीयुत वैद्य सुखरामदासजी टी. ओझा प्राणाचार्य।
उपसभापति— ,, वैद्य प्राणाचार्य सेवाराम चतुर्भुजजी ओझा।
मन्त्री— ,, वैद्य छोटेलाल विश्वनाथजी।
कोषाध्यक्ष— ,, वैद्य कल्याणजी नारायणजी।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित सज्जन भी समय-समय पर इस सभाके प्रधान, उपप्रधान, मन्त्री और कोषाध्यक्ष आदिके स्थान पर कार्य करते रहे हैं।

श्रीयुत वैद्य गोपालजी कुंवरजी ठक्कुर।
,, ,, रंगलालजी ओझा।
,, ,, मगनलाल दीपचन्द्रजी शर्मा।
,, ,, मगनलाल जटाशंकरजी।
,, ,, लक्ष्मीशंकर नागरदासजी आचार्य।

इस प्रान्तका भी विशेष विवरण द्वितीय भागमें प्रकाशित किया जायगा।

सिन्ध प्रान्तिक आयुर्वेदप्रचारिणी सभा—इस सभाके प्रधान श्रीयुत वैद्य टोपनलालजी शर्मा हैं। आप बहुत पुरुषार्थ और प्रेमसे आयुर्वेदका प्रचार कर रहे हैं। इसी वर्ष अप्रैल मासमें सिन्धप्रान्तीय आयुर्वेद सम्मेलन समारोहके साथ हुआ। उसके अध्यक्ष थे श्रीयुत डॉ. गणेशदत्त दत्तात्रेय आपटे M. B., B. Sc.। एवं निखिल भारतवर्षीय वैद्यसम्मेलनके प्रधान मन्त्री श्रीयुत वैद्यपंचानन कृष्णशास्त्री कवडे बी. ए. भी सम्मिलित हुए थे। सम्मेलन अच्छे समारोहके साथ समाप्त हुआ।

इस समय श्रीयुत वैद्यराज ज्येष्ठाराम नरसिंहदास पेड्या द्वितीय सिन्ध प्रान्तीय वैद्य-सम्मेलनके मन्त्री हैं।

शिकारपुर—यहाँके उत्साही वैद्य पं० भवानीदत्तजी शर्मा हैं। आप निखिल भारतवर्षीय चौबीसवें वैद्यसम्मेलनके प्रधान मन्त्री भी रह चुके हैं। शिकारपुरमें कई एक औषधालय हैं। जिसमें उत्तम, सेठ छुखिन्दासिंह नारायण सिंहजीका औषधालय और विद्यालय है। आपने वैद्यसम्मेलनके समय एक लाखका स्थायी कोष बनाकर इसका उद्घाटन कराया था।

श्रीयुत सेठ दयाराम आहूजा रंगवालेका भी एक औषधालय है। और भी एक दो औषधालय कार्य करते हैं।

सक्खर—यहाँ स्वामी १०८ हरनामदासजीका बड़ा प्रभाव है। आपके साधु-बेला तीर्थमें आयुर्वेदीय औषधियोंका अच्छा प्रचार है। आप हिन्दी भाषा और आयुर्वेदके प्रचारमें उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं।



आयुर्वैदिक क्षयरोग स्वास्थ्यशाला

इस समय देशमें पाश्चात्य पद्धतिके अनुसार क्षयरोगकी चिकित्सा करनेके लिये सेनोटोरियम मौजूद हैं, और प्रत्येक प्रान्तीय सरकार प्रचुर धनसे उनकी सहायता भी करती है।

अब आयुर्वेदके प्रति जनताका विश्वास प्रतिदिन बढ़ रहा है। उसके फल स्वरूप क्षयरोगकी चिकित्साके लिये क्षयरोग स्वास्थ्यशालायें भी खुल गई हैं। उनमेंसे चार निम्नलिखित उल्लेख योग्य हैं।

१—बनारसके समीप सारनाथके पवित्र स्थानमें स्वर्गीय राजा सर मोतीचन्दजी सी. आई. ई. ने अपने स्वर्गीय लघुभ्राता मंगलाप्रसादजीकी स्मृतिको स्थिर रखनेके लिये एक लाखका दान देकर श्री मंगलाप्रसाद क्षयरोग स्वास्थ्यशाला लगभग दस वर्षसे स्थिर कर रक्खी है। इसके दो विभाग हैं। आयुर्वैदिक और एलोपैथिक।

आयुर्वेद विभाग श्रीमान् रसायनाचार्य कविराज प्रतापसिंहजी सुपरिंटेंडेंट आयुर्वेदिक फार्मेसी बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटीकी अध्यक्षतामें कार्य कर रहा है। नर्स-कम्पाउण्डर आदिका सुप्रबन्ध है। इस समय यहाँ तीस रोगी तक रक्खे जा सकते हैं। यहाँका जलवायु बड़ा स्वास्थ्यप्रद है। स्थान सुन्दर-सुखद और रम्य है।

२—खुरजाके प्रसिद्ध साधुराम तुलाराम गोइनका फर्मके स्वामी और उनके भ्रातव्य श्रीमान् सेठ गौरीशंकरजी गोइनकाने संस्कृत विद्याके प्रचारके लिये दस लाख रुपयेकी सम्पत्ति दान की है। आपने आयुर्वेदकी और भी प्रचुर सेवा की है। आपका "साधुराम तुलाराम गोइनका मारवाड़ी राजयक्ष्मा सेनोटोरियम गढ़खल" (शिमला हिल्स) एक विशेष संस्था है। यहाँ केवल आयुर्वेदके अनुसार ही चिकित्सा होती है। इसका विशेष विवरण द्वितीय भागमें प्रकाशित किया जावेगा। स्थान अत्यन्त स्वास्थ्यकर, शीतल, उष्णकालमें निवास योग्य और नयनानन्ददायक है।

आयुर्वेदिक सेवा समितियाँ

१—इस समय जहाँ तक ज्ञात हुआ है, देशमें अनेक सेवासंघ हैं। समय-समय पर आवश्यकतानुसार लोक-सेवाका कार्य आयुर्वेदकी चिकित्सा द्वारा करते हैं। किन्तु उन सबका व्यौरा प्राप्त नहीं हुआ है। केवल निम्नलिखित दो सेवासंघोंका विवरण प्राप्त हुआ है। वह यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

१—आयुर्वेद सेवासंघ—अहमदनगर।

२—श्री १०८ बाबा कालीकमलीवालेकी आयुर्वेद सेवा-समिति ऋषीकेष।

यह भी ज्ञात हुआ है कि प्रयाग सेवासमिति आयुर्वेदके अनेक औषधालय खोलकर विशेष-विशेष स्थानोंपर सेवा कर रही है।

श्रीमान् पं० नारायणदत्तजी वैद्यराज दिल्लीनिवासी भी अनेक वर्षोंसे कुम्भ आदि बड़े-बड़े मेलोंके अवसरपर औषधालय आदि खोलकर चिकित्सासे जनताकी सेवा करते हैं।

कलकत्ताकी मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी भी आयुर्वेदका एक वृहद् दवाखाना खोलकर जनताकी बड़ी सेवा कर रही है। इस सोसायटीका वृहत् विक्रय-विभाग भी है। उसमें लाखों रुपयेका व्यापार होता है।

ट्रस्ट और छात्रवृत्तियाँ

आयुर्वैदिक संस्थाओंको स्थायी रूपसे संचालित करनेके लिये देशके उदार प्रसिद्ध धनी-चिकित्सकोंने तथा देशके धनी मानी करुणापारायण पुरुषोंने अपनी सम्पत्तिका दान देकर जो सुव्यवस्था की है, उसमें अग्रगण्य निम्नलिखित महानुभाव हैं।

१—स्वर्गीय कविराज यामिनीभूषण रायजी एम. ए., एम. बी., संस्थापक अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय कलकत्ता।

२—महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेनजी सरस्वती एम. ए., एल. एम. एस. संस्थापक विश्वनाथ आयुर्वेद महाविद्यालय, कलकत्ता।

३—आयुर्वेदमार्तण्ड श्रीयुत स्वामी लक्ष्मीरामजीने एक लक्ष रुपयेकी स्थाई सम्पत्तिसे एक ट्रस्ट स्थापित किया है, उसमें आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये निम्नलिखित रीतिसे ४५ हजार रुपया पृथक किया है।

१—श्री धन्वन्तरि औषधालय जयपुरके लिये १००००)
२—श्री धन्वन्तरि आतुरालय जयपुरके लिये १५०००)
३—आयुर्वेदकी पुस्तकोंके प्रकाशनके लिये २००००)

४—श्रीमद् दयानन्द ऐंगलो वैदिक कालेज ट्रस्टने भी दयानन्द आयुर्वेद कालेज लाहौरकी स्थापना सन् १९०१ ई० में की है, इसका प्रबन्ध इस ट्रस्टकी प्रबन्धकारिणी सभा लाहौरके हाथमें है। इस ट्रस्टके पास २११७६८४॥।≈) ४ पाई है।

५—श्री धूतपापेश्वर आयुर्वेद ट्रस्ट २७ मार्च सन् १९३३ ई० को स्थापित हुआ है। श्रीमान् पं० गंगाधरविष्णु पुराणिक और पण्डित महादेवविष्णु पुराणिक वैद्य बन्धु महोदयोंने ७५ हजारकी लागतका एक बंगला और ५० हजार नगद दान देकर यह ट्रस्ट स्थापित किया है।

६—तिब्बी यूनानी आयुर्वेद कालेज ट्रस्ट—इसके संस्थापक स्वर्गीय मसीह-उल-मुल्क हकीम अजमल खां साहब थे। इसका विशेष ब्यौरा प्राप्त नहीं हुआ है।

७—श्रीयुत बनवारीलाल आयुर्वेद विद्यालय ट्रस्ट देहली। इसका भी विशेष विवरण प्राप्त नहीं हुआ।

८—स्वर्गीय कविराज हाराणचन्द्र भट्टाचार्य ट्रस्ट कलकत्ता। इसका भी विवरण प्राप्त नहीं हुआ है।

९—ललितहरि संस्कृत आयुर्वेद कालेज ट्रस्ट पीलीभीत।

१०—श्री बाबा कालीकमलीवालेका आयुर्वेद सेवासमिति ट्रस्ट ऋषीकेष।

११—ऋषिकुल आयुर्वेद महाविद्यालय ट्रस्ट हरद्वार।

१२—श्री जगदम्बा आयुर्वेद विद्यालय ट्रस्ट काशी।

१३—श्रीराम-लक्ष्मीनारायण मारवाड़ी हिन्दू अस्पताल ट्रस्ट काशी।

१४—आयुर्वेद विद्या प्रबोधिनी पाठशाला ट्रस्ट काशी।

१५—श्री विशुद्धानन्द सरस्वती आयुर्वेद विद्यालय हास्पिटल ट्रस्ट कलकत्ता।

१६—श्री भगवानदास बागला हास्पिटल ट्रस्ट कलकत्ता।

१७—श्री मंगलाप्रसाद क्षयरोग स्वास्थ्यशाला ट्रस्ट सारनाथ काशी।

१८—श्री साधुराम तुलाराम गोइनका मारवाड़ी ट्युबर क्लोसिस सेनोटोरियम ट्रस्ट गढ़खल शिमला।

१९—श्रीनाथ चन्द्रावत ट्रस्ट जगदीशपुर गोरखपुर।

२०—श्री गंगाराम छबीलदास वैद्यशाला ट्रस्ट तथा आयुर्वेदविद्यालय यओला, नासिक। श्रीमुरलीधरजीने इस कार्यके लिए ४ लाख रुपया पृथक किया है।

२१—श्री प० डी० गोपालाचार्लु आयुर्वेदाश्रम ट्रस्ट मद्रास।

२२—ताराचन्द रामनाथ आयुर्वेद चिकित्सालय ट्रस्ट पूना।

ऊपर जितने ट्रस्ट और सोसायिटियोंके नाम लिखे गये हैं, वे मैंने अपनी स्मृति और श्रुत-ज्ञानके बलपर लिखे हैं। मुझे केवल पाँच ट्रस्टोंके ही कागजात मिले हैं। इसमें श्रीमद् दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज ट्रस्टकी रिपोर्टमात्र ही मिली है। सभी ट्रस्टोंका ब्यौरा द्वितीय भागमें प्रकाशित किया जायगा।



आयुर्वेदिक औषधनिर्माणशाला।

देशमें आयुर्वेदकी जागृतिके चिह्न स्वरूप नवीन विधानसे औषध निर्माण पद्धति-का प्रचार भी होने लगा, और अनेक कम्पनियें व्यवसाय रूपसे इस कार्यमें अग्र-सर हुई हैं। इस समय तक अनेक कम्पनियाँ देशमें कार्य कर रही हैं, और अच्छा लाभ उठा रही हैं।

इस समय नीचे लिखी हुई कम्पनियाँ लिमिटेड हैं।

१ झण्डू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड वम्बई।

यह आयुर्वेदकी औषधियाँ बनानेका सबसे बड़ा कारखाना है, और यह ७५००००) के मूलधनसे काम करती है। इसमें १५० मजदूर, २५ क्लर्क, ५ उच्चा-धिकारी कार्य करते हैं। इसने सन् १९१० ई० में कार्य प्रारम्भ किया, और सन् १९२० में कानूनी नियमके अनुसार लिमिटेड कराई गई। इसकी कार्यपद्धति बहुतही सुन्दर और अनुकरणीय है। जुगतराम एण्ड कम्पनी सेक्रेटरी, खजांची और एजेंट हैं। यह ५९६०) रुपया सरकारको इन्कमटैक्स देती है।

२ आंध्र आयुर्वेदिक फार्मेसी लिमिटेड मद्रास।

यह कम्पनी तीन लाखके मूलधनसे सन् १९२० ई० से प्रारम्भ की गई है। सन् १९३४ ई० के अन्त तक १८४२६०) रु० संग्रह हुआ है। इसमें २० मजदूर और ६ पदाधिकारी कार्य करते हैं। जहाँ तक मुझे विदित हुआ है, दक्षिण प्रान्तमें एक ही लिमिटेड कम्पनी है।

३ आयुर्वेदाश्रम फार्मेसी लिमिटेड अहमदनगर।

यह कम्पनी दस वर्षसे कार्य कर रही है। किन्तु यह सन् १९३३ ई० में एक लाखके मूल धनसे लिमिटेड करा दी गई। इसमें अब तक ८६५००) रुपया संग्रह हुआ है। ७५०००) रुपया वार्षिककी विक्रय होती है। इससे जो लाभ होता है, उसमेंसे पचास फी सदी विद्यालयको देते हैं। इस कम्पनीका मुख्य उद्देश्य विद्यालय और दातव्य औषधालय-द्वारा आयुर्वेदका प्रचार करना है। यह कम्पनी एक हजार वार्षिक गवर्नमेंटको इन्कमटैक्स देती है। इसमें १० उच्चाधिकारी तथा ९० स्त्री-पुरुष बालक कार्य करते हैं।

आयुर्वेद सेवासंघ नामक संस्था इस फार्मेसीकी मैनेजिंग डाइरेक्टर है। इसमें औषधि निर्माणका सब कार्य प्राचीन पद्धतिके अनुसार ही होता है। वैद्य गंगाधरजी शास्त्री गुणे इस संस्थाके जन्मदाता और संचालक हैं।

४ ढाका आयुर्वेदीय फार्मेसी लिमिटेड।

यह पाँच लाखके मूल धनसे ढाकामें कार्य करती है। इसका मैनेजिंग एजेंट दी ढाका ओरिएएटल एजेंसी लिमिटेड है। इसके-द्वारा आयुर्वेदीय औषधियोंके प्रचारका अच्छा प्रयत्न हो रहा है।

ढाकाकी कम्पनियोंने संजीवनी सुधाके नामसे लाइसेंस लेकर 'मृतसंजीवनी-सुरा' का अच्छा प्रचार किया है, जो अन्य कम्पनियोंके लिये अनुकरणीय है।

५ आयुर्वेद रसशाला लिमिटेड पूना। मूल धन १००००)

६ आयुर्वैदिक फार्मास्युटिकल कम्पनी लिमिटेड लाहौर।

यह कम्पनी सन् १९०५ ई० में ४००००) रुपएसे प्रारम्भ की गई। यह लिमिटेड है। इसकी वार्षिक आय ४६०००) रु० है और खर्च ४४५००) रु० है। यह गवर्नमेंटको ३५०) रु० वार्षिक इन्कमटैक्स देती है। यह वैद्य और क्लर्कोंपर ६४२०) रु० वार्षिक व्यय करती है। और कम्पाउएडर, पैकर और मजदूरोंपर २५९२) रु० खर्च करती है। यह हिसाब उद्धृत किया गया है।

७ प्रताप आयुर्वेद फार्मेसी लिमिटेड, अजमेर।

यह कम्पनी गत वर्षसे ही प्रारम्भ हुई है, और अभी इसका विशेष व्यौरा उपलब्ध नहीं है।

८ सी. के. सेन आयुर्वेद फार्मेसी, लिमिटेड कलकत्ता।

यह लिमिटेड फार्मेसी बहुत दिनोंसे आयुर्वेदकी सेवा कर रही है; किन्तु इसका विवरण प्राप्त नहीं हुआ है।

९ एन. एन्. सेन आयुर्वेद फार्मेसी लिमिटेड कलकत्ता।

यह फार्मेसी आयुर्वेदकी सेवा बहुत समयसे कर रही है। इसका भी विवरण प्राप्त नहीं हो सका।

१० आयुर्वेद रससाला लिमिटेड पूना।

यह कम्पनी दो लाखके मूल धनसे प्रारम्भ की गई। इसके डाइरेक्टर निम्न-लिखित हैं।

१ सेठ सूरजी वल्लभदास मर्चेन्ट बम्बई, चेयरमेन।

२ डा० रामकृष्ण हरी भड़कम्कर एम. ए., एम. डी. पूना, वाइस चेयरमेन।

३ वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य आयुर्वेदमार्तण्ड, बम्बई।

४ आर. वो. सेठ, हम्मन्त्रम् रामनाथ, मर्चेन्ट पूना।

५ आर. बी. आर. आर. कलै, एम. एल. सी., बी. ए. एल. एल. बी., ऐडवोकेट सतारा।

६ श्रीयुत आर. बी. केलकर, एम्. ए., एल. एल. बी. प्लीडर पूना।

७ डा० वी. सी. लगू ए. बी. बी. पूना।

८ वैद्य पी. जी. नानल आयुर्वेदाचार्य पूना।

९ डा० के. यस. म्हस्कर एम. ए., एम. डी. वम्बई, एक्स आफिसिओ डाइरेक्टर।
१० वैद्य आर. वी. जोशी, आयुर्वेद विशारद, पूना ,,
सेक्रेटरी ट्रेज़रर और एजेंट

दी राष्ट्रीय शिक्षण मण्डल पूना—

देशमें अनेक ऐसी भी फार्मेसियाँ हैं, जो लिमिटेड नहीं है; किन्तु उनका व्यापार वहुत अच्छा है। उनमें निम्नलिखित उल्लेख योग्य है।

१ कल्पतरु आयुर्वेदिक वर्कस् कलकत्ता—संस्थापक महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेनजी सरस्वती।

२ मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटीका आयुर्वेद औषधालय कलकत्ता।

३ विशुद्धानन्द सरस्वती मारवाड़ी विद्यालयका आयुर्वेद-विभाग कलकत्ता।

४ साधना औषधालय ढाका—संस्थापक कविराज योगेन्द्रचन्द्र घोष एम. ए. एफ. सी. एस. (लन्दन)।

५ रत्नाकर औषधालय पटना (विहार) संस्थापक श्रीयुत वैद्य व्रजविहारीजी चतुर्वेदी।

६ वनारस हिन्दू युनिवर्सिटी आयुर्वेदिक फार्मेसी—सुपरिंटेडेंट श्रीयुत कविराज प्रतापसिंहजी रसायनाचार्य।

७ धन्वन्तरि औषधालय विजयगढ़, अलीगढ़—व्यवस्थापक वैद्य बाँकेलालजी।

८ वावा कालीकमलीवालेका औषधालय हृषीकेश।

९ आयुर्वेद फार्मेसी आयुर्वेद महाविद्यालय ऋषिकुल।

१० गुरुकुल आयुर्वेदिक फार्मेसी गुरुकुल कांगड़ी।

११ श्रीकृष्ण आयुर्वेद फार्मेसी अमृतसर।

१२ पंजाव आयुर्वेद फार्मेसी अमृतसर—व्यवस्थापक—स्वामी हरशरणानंदजी।

१३ योगेन्द्र आयुर्वेद फार्मेसी अमृतसर।

१४ अमृतधारा आयुर्वेद फार्मेसी लाहौर—इस फार्मेसीकी अमृतधारा जगत प्रसिद्ध है। संस्थापक श्रीठाकुरदत्त शर्मा वैद्य। ३ हजारसे पाँच हजार तक गवर्नमेंटको इन्कमटैक्स देती हैं।

१५ मकरध्वज फार्मेसी लाहौर—यह फार्मेसी प० शिवशर्माजी की अध्यक्षतामें अच्छा कार्य कर रही है।

१६ श्रीमान् ठाकुरदत्तजी वैद्य मुलतानीका औषधालय भी अच्छी ख्याति प्राप्त कर रहा है।

१७ डी. ए. वी. आयुर्वेदिक फार्मेसी लाहौर—व्यवस्थापक कविराज सुरेन्द्रमोहनजी वी. ए. आयुर्वेदाचार्य।

१८ जगद्भास्कर औषधालय कानपुर—व्यवस्थापक भूतपूर्व सम्पादक निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ—राजवैद्य किशोरीदत्तजी शास्त्री।

१९ प्रकाश औषधालय कानपुर। व्यवस्थापक—भूतपूर्व मन्त्री नि० भा० आयुर्वेदमहामण्डल, प० शिवनारायणजी मिश्र।

२० जैन औषधालय कानपुर—व्यवस्थापक वैद्य कन्हैयालालजी जैन।

२१ मृत्युंजय औषधालय लखनऊ—व्यवस्थापक श्रीमान् प० शालग्रामजी शास्त्री। भूतपूर्व अध्यक्ष बरार मध्यप्रान्तीय वैद्यसम्मेलन।

२२ सुधानिधि औषधालय प्रयाग—व्यवस्थापक आयुर्वेद पंचानन प० जगन्नाथ प्रसादजी शुक्ल भू० पू० सभापति नि० भा० आयुर्वेदमहामण्डल।

२३ स्त्री औषधालय प्रयाग—व्यवस्थापिका श्रीमती यशोदादेवीजी।

२४ वैद्यराज फार्मेसी कलकत्ता—संस्थापक स्वर्गीय कविराज यामिनीभूषणराय एम. ए., एम. बी.; भूतपूर्व सभापति नि० भा० आयुर्वेदमहामण्डल।

२५ सुखसंचारक कम्पनी मथुरा—व्यवस्थापक प० क्षेत्रपालजी शर्मा।

२६ राजस्थान औषधालय अजमेर—व्यवस्थापक राजवैद्य प० रामचन्द्रजी शर्मा।

२७ सिन्ध आयुर्वेद फार्मेसी कराची—व्यवस्थापक श्रीमान् गोपालजी ठक्कर आयुर्वेदाचार्य।

२८ ऊँझा आयुर्वेद फार्मेसी ऊँझा (अहमदाबाद)।

२९ गुजरात आयुर्वैदिक फार्मेसी अहमदाबाद (गुजरात)—संस्थापक स्वर्गीय वैद्यराज जटाशंकरजी त्रिवेदी। यह प्रचलित औषधालयोंमें अच्छी ख्याति प्राप्त औषधालय है।

३० रसशाला औषधालय गोंडल—यह काठियावाड़का प्रसिद्ध औषधालय है। संस्थापक, राजवैद्य जीवराम कालिदासजी शास्त्री।

३१ श्रीधूतपापेश्वर औषधि कारखाना पनवेल (बम्बई)—यह भी एक प्रसिद्ध शास्त्रीय औषध बनानेका कारखाना है। व्यवस्थापक वैद्य गंगाधरजी पुराणिक।

३२ आयुर्वैदिक यूनानी फार्मेसी देहरादून यू० पी०।

३३ दी हिन्दू सिस्टम आफ मेडिशिन कलकत्ता। इसके व्यवस्थापक श्रीमान् भिषग्भूषण कविराज ए. सी. विशारद एम. आर. ए. एस. (लण्डन)।

३४ आयुर्वेदीय औषध प्रयोग निर्माणशाला कनखल यू० पी०।

३५ ढाकाशक्ति औषधालय ढाका (बंगाल)।

३६ पूना आयुर्वेदिक फार्मेसी पूना।

३७ आयुर्वेद रसशाला कोल्हापुर।

३८ सान्डू आयुर्वेदीय औषधि कार्यालय।



श्रीमान् वैद्यभूषण पं. गोवर्धनशर्मा छांगाणी, नागपुर।
अध्यक्ष, राजपूताना प्रान्तीय ३ वैद्यसंमेलन बीकानेर।
तथा श्रीबरार-मध्यप्रान्तीय ३ वैद्यसंमेलन छिन्दवाडा।
प्रधान सम्पादक वैद्यसंमेलन पत्रिका।

आयुर्वेदके समाचार-पत्र

सम्मेलन-पत्रिका

महामण्डल और विद्यापीठके लिये यह आवश्यक था कि एक सामयिक पत्र द्वारा आयुर्वेदके समाचार देशके कोने कोनेमें पहुँचाये जावें। इसके लिये कानपुर वैद्य सम्मेलनके समय यह निर्णय हुआ कि संस्कृत और हिन्दीमें एक पत्र प्रकाशित किया जाय; किन्तु अनेक कारणोंसे यह विचार कार्यरूपमें परिणित न हो सका। सन् १९१४ ई० में फिर इसका प्रयत्न हुआ और सम्मेलन-पत्रिकाके नामसे त्रैमासिक रूपमें यह प्रकाशित हुई, और चार वर्ष तक त्रैमासिक रूपसे ही चलती रही। उसके अनन्तर मासिक रूपसे प्रकाशित हो रही है। इस समय इसके सम्पादक निम्नलिखित सज्जन हैं।

वैद्यभूषण पं० गोवर्धन शर्मा छांगाणीजी नागपुर।

आयुर्वेदाचार्य वैद्यराज मस्तराम शास्त्री रावलपिंडी।

आयुर्वेद शास्त्राचार्य पं० दुर्गादत्तजी शास्त्री बनारस।

आयुर्वेदाचार्य कविराज पं० गणेशदत्त सारस्वत, बी. ए., कवितिलक, हरद्वार।

इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपया है। नि. भा. वैद्य सम्मेलनके सदस्योंको बिना मूल्य दी जाती है।

जर्नल आफ आयुर्वेद

सम्पादक, श्रीमान् डा० सी. एन. मुकर्जी।

सहायक सम्पादक, श्रीमान् कविराज शिवनाथ सेन, बी. ए., एम. बी.।

" " कविराज ए. रमन, आयुर्वेदाचार्य।

वार्षिक मूल्य १०)। चिकित्सक, छात्र, और उपचारिकाओंसे ५) वार्षिक।

पता—नं० २ हरकुमार टेगोर स्कायर कलकत्ता।

यह पत्र सन् १९२४ ई० से स्वर्गीय क० ए. सी. विशारदके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हुआ। अंगरेजी भाषा द्वारा यह आयुर्वेदकी अच्छी सेवा कर रहा है। आपके स्वर्गवास होनेपर डा० गिरीन्द्रनाथ मुकर्जीने इस भारको अपने ऊपर लिया। दुखके साथ सुना गया है कि आप भी स्वर्गवासी हो गये हैं। आशा है कि आपके सहकारी इसका सम्पादन यथापूर्व करते रहेंगे।

धन्वन्तरि

यह मासिक पत्र मलाबार कोट्टाकलसे श्रीमान् पी. एस. वारियर महोदयके

सम्पादकत्वमें प्रकाशित होता है। इसके सम्पादकने संस्कृतमें शारीरका एक बृहद् ग्रन्थ "अष्टाङ्ग शारीर" के नामसे सचित्र प्रकाशित किया है। इसके अन्दर प्राचीन-अर्वाचीन सिद्धान्तोंका अच्छी तरह समन्वय किया है। ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय है।

ई. पी. कृष्ण वारियर महोदय, कोट्टाकल (Kottakal) से प्राप्त होता है।

आयुर्वेद विज्ञान सम्मिलिनी

यह पत्र श्रीयुत क० इन्दुभूषणसेन आयुर्वेदशास्त्रीके सम्पादकत्वमें बंगला भाषामें प्रकाशित होता है।

पता—आरोग्य निकेतन १९१ बहुबाजारस्ट्रीट,
कलकत्ता।

ज्ञात हुआ है कि बंगालसे निम्नलिखित पत्र भी प्रकाशित होते हैं। किन्तु इनका विवरण प्राप्त नहीं हुआ।

१ आयुर्वेद विकाश।
२ आयुर्वेद प्रकाश।
३ आयुर्वेद।
४ भैषज्य।
५ आयुर्वेद प्रबोधिनी।
६ आयुर्वेद प्रभा।

जीवन विज्ञान

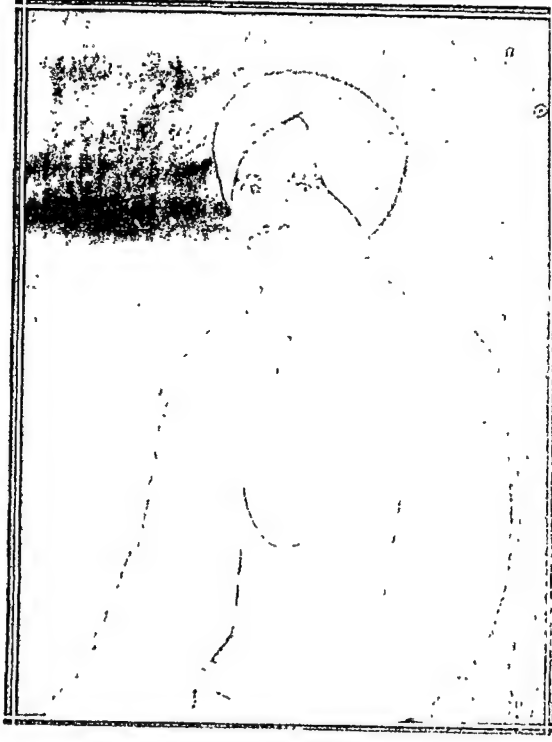
यह मासिक पत्र श्रीमान राजवैद्य हरिवृक्ष जोशी, काव्य-सांख्य-स्मृति-तीर्थके सम्पादकत्वमें श्री. वि. स. मारवाड़ी अस्पताल कलकत्ताके प्रबन्धमें लगभग एक साल से प्रकाशित हो रहा है।

पता—जीवन-विज्ञान कार्यालय,
श्री० विशुद्धानन्द सरस्वती मारवाड़ी अस्पताल, कलकत्ता।

आयुर्वेद-विज्ञान

यह पत्र बम्बईसे प्रकाशित होता है। वैद्य दुर्गाशंकर के. शास्त्री इसके सम्पादक हैं। चार सौ प्रतियाँ इसकी प्रतिमास प्रकाशित होती हैं। गुजराती भाषा-द्वारा यह आयुर्वेदकी अच्छी सेवा करता है। इसके लेख उच्चकोटिके होते हैं।

पता—मैनेजर 'आयुर्वेद-विज्ञान',
झंडू फार्मेस्युटिकल वर्क्स लिमिटेड, बम्बई।



श्रीमान् पं. दुर्गादत्तजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, बनारस।

संपादक वैद्यसंमेलनपत्रिका.

प्रधान चिकित्सक, आयुर्वेद विभाग श्रीराम लक्ष्मीनारायण मारवाड़ी हिन्दु होस्पिटल, बनारस।

आयुर्वेद रहस्यार्क

यह हस्तलिखित ग्रन्थोंको प्रकाशित करनेवाला गुजराती भाषाका मासिक पत्र है। इसका सम्पादन कार्य श्रीमान् राजवैद्य जीवराम कालिदासजी शास्त्री करते हैं। यह सम्वत् १९७१ से प्रकाशित हो रहा है। इसकी किसी समय ५ हजार तक ग्राहक संख्या थी। इसका नाम कई वार परिवर्तित हुआ है। वार्षिक मूल्य २॥), विदेशके लिये ३) है।

पता—व्यवस्थापक—'आयुर्वेद रहस्यार्क',
श्री रसशाला औषधालय, गोंडल, काठियावाड़।

भिषग्भारती

यह गुजराती भाषामें उजमशी पीताम्बर आयुर्वेद महाविद्यालय पाटन बड़ोदा राज्यका अर्धवार्षिक मुखपत्र है। यह सम्वत १९९० से प्रकाशित हो रहा है। इसका मूल्य १) रुपया वार्षिक है। इसके सम्पादक, श्रीमान् मणिशंकर पण्ड्या तथा श्रीमान् प्रभुलाल त्रिवेदीजी हैं।

पता—व्यवस्थापक—'भिषग्भारती',
उजमशी पीताम्बर आयुर्वेद महाविद्यालय, पाटन, बड़ोदा स्टेट।

वैद्य-कल्पतरु

यह मासिकपत्र सन् १८८४ ई० से गुजराती भाषामें अहमदाबादसे प्रकाशित हो रहा है। इसका वार्षिक मूल्य ३) है। उपहारकी पुस्तकें विना मूल्य देता है। श्री स्वर्गीय जटाशंकर लीलाधरजी त्रिवेदी आयुर्वेदपंचानन इसके जन्मदाता तथा सम्पादक थे। इस समय इसके सम्पादक उनके सुपुत्र वैद्य रविशंकर जटाशंकरजी त्रिवेदी हैं।

पता—व्यवस्थापक—'वैद्यकल्पतरु',
अहमदाबाद फार्मेसी, अहमदाबाद (गुजरात)।

आरोग्य-सिन्धु

यह मासिकपत्र गुजराती भाषामें कराचीसे चौदह वर्षसे प्रकाशित हो रहा है। इसके सम्पादक वैद्य गोपालजी कुवरजी ठक्कर हैं। इसका अपना निजका प्रेस है। इसका वार्षिक मूल्य २) है। इसने सिन्ध प्रान्तमें आयुर्वेदका अच्छा प्रचार किया है। इसके सम्पादक, आरोग्य-सिन्धु ग्रन्थमाला भी प्रकाशित करते हैं। यह सिन्ध आयुर्वेद फार्मेसीका मुखपत्र है।

पता—'आरोग्यसिन्धु' कार्यालय;
सिन्ध आयुर्वेद फार्मेसी, कराची।

रत्नाकर

यह मासिकपत्र चार वर्षसे प्रकाशित हो रहा है। इसके ग्राहक लगभग पाँच हजार हैं। इसके सम्पादक श्रीमान् बाबू छोटेलालजी जैन आयुर्वेदाचार्य हैं। इसका वार्षिक मूल्य १) है। इसमें सम्पादक महोदयके औषधालयका सूचीपत्र भी सामयिक लेखोंके साथ प्रकाशित होता है।

पता—व्यवस्थापक—'रत्नाकर'
रत्नाकर औषधालय, इटावा यू० पी०।

अनुभूत योगमाला

चिकित्सक चूड़ामणि वैद्यराज पं० विश्वेश्वरदयालुजी शास्त्री हैं। इनका निजका प्रेस भी है। इसमें अनुभूत प्रयोग विशेष प्रकाशित होते हैं। पहले मासिक; बादमें पाक्षिक रूपसे प्रकाशित हो रही है। इसने रोग विशेषपर समय-समयपर अनेक बृहत् विशेषांक भी प्रकाशित किए हैं। इसने आयुर्वेदके प्रचारमें विशेष सहायता की है।

पता—व्यवस्थापक—अनुभूत योगमाला,
श्रीहरिहर औषधालय, बरालोकपुर, इटावा यू० पी०।

आयुर्वेद प्रचारक

यह मासिकपत्र सात वर्षसे प्रधान सम्पादक श्रीशांडिल्य त्रिवेदीजीके सम्पादकत्वमें काशीसे प्रकाशित हो रहा है। यह आयुर्वेदिक अनुसंधान भवनका मुखपत्र है। इस पत्रके स्त्री-विभागकी सम्पादिका श्रीमती कृष्णा त्रिवेदीजी हैं। इसका वार्षिक मूल्य २) है। धार्मिक संस्थाओं, विद्यालयों, स्त्रियों और विद्यार्थियोंसे १।।) है।

पता—'आयुर्वेद प्रचारक'
आयुर्वेदिक अनुसन्धान भवन, बनारस सिटी।

आरोग्यदर्पण

यह मासिकपत्र लगभग पाँच वर्षसे नागरी भाषामें प्रकाशित हो रहा है। इसके सम्पादक श्रीमान् भिषग्रत्न वैद्य गोपीनाथजी गुप्त हैं। यह ऊँझा आयुर्वेद फार्मेसीका मुखपत्र है। इसका वार्षिक मूल्य २) है।

पता—व्यवस्थापक, अरोग्य-दर्पण,
ऊँझा आयुर्वेदिक फार्मेसी, ऊँझा, अहमदाबाद (गुजरात)।

आयुर्वेद

यह मासिकपत्र लगभग २२ वर्षसे महाराष्ट्र भाषाके द्वारा आयुर्वेदकी सेवा कर रहा है। यह पत्र श्रीमान् वैद्य आप्पा शास्त्रीजी साठेके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य १॥=) है।

पता—व्यवस्थापक—'आयुर्वेद'
काकड़ी वाड़ी, नं० ४ बम्बई।

आंध्रप्रान्तसे निम्नलिखित पत्र-पत्रिकायें आयुर्वेदकी निकलती हैं। उनका विशेष परिचय प्राप्त न हो सकनेके कारण उनके केवल नाम ही लिखे जा सके हैं। द्वितीय भागमें विशेष परिचय दिया जा सकेगा।

१—'धन्वन्तरि' मासिक पत्र।
सम्पादक—श्रीमान् डॉ. ए. लक्ष्मीपति एम. बी., सी. एम.
आंध्र आयुर्वेदिक फार्मेसी, मद्रास।

२—'आन्ध्र प्रकाशिका' मासिक पत्र।
सम्पादक—श्रीमान् ए. अपैय्या रय्या जी
परिदेवी, जिला—चिंगलपेट।

३—'आंध्र-आयुर्वेद-सम्मेलन'—मासिक पत्र।
सम्पादक—श्रीमान् नौरीराम शास्त्रीजी,
राममोहन आयुर्वेद कलाशाला, बेज़वाड़ा।

४—'आयुर्वेद'—मासिक पत्र।
सम्पादक—श्रीमान् अग्निहोत्रम् जी विजयसारथी आयुर्वेदाचार्य।
मन्त्री—आंध्र आयुर्वेद सम्मेलन—मछलीपट्टम्।

५—'भिषग्विलास'—मासिक पत्र।

यह पत्र आयुर्वेद सेवासंघ अहमदनगरसे प्रकाशित होता है। आयुर्वेद सेवासंघ अहमदनगरका मुखपत्र है।

धन्वन्तरि

यह मासिकपत्र बारह वर्षसे प्रकाशित हो रहा है। सन् १९२३ ई० के प्रारम्भ में इसका जन्म हुआ था। उसी वर्ष इसने अपना एक विशेषांक भी निकाला। इसका वार्षिक मूल्य ३) है। विशेष विवरण द्वितीय भागमें प्रकाशित किया जायगा।

पता—व्यवस्थापक—'धन्वन्तरि'
धन्वन्तरि औषधालय, विजयगढ़, अलीगढ़।

राकेश

यह मासिकपत्र लगभग सात वर्षसे पं० रूपेन्द्रनाथजी द्विवेदी शास्त्रीके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हो रहा है। इसके प्रोप्राइटर श्रीमान् पं० राजकुमारजी दुवे रईस हैं। इसका मूल्य ३) वार्षिक है।

पता—व्यवस्थापक—'राकेश'
राकेश-भवन, वराल्लोकपुर, इटावा यू. पी.।

वैद्य

यह शंकरलालजी गुप्तके सम्पादकत्वमें १८ वर्षसे प्रकाशित हो रहा है। आयुर्वेदके प्रचार और प्रसारमें इसने वास्तविक बड़ी सहायता की है। समय-समयपर अनेक उपयोगी लेख इसमें प्रकाशित हो चुके हैं। अब भी इसकी विशेषता सम्पूर्ण आयुर्वेदिक समाचार पत्रोंसे निराली है।

पता—व्यवस्थापक, 'वैद्य'
मुरादाबाद यू० पी०।

चिकित्सक

यह मासिकपत्र लगभग १८ वर्षसे श्रीमान् राजवैद्य पं० किशोरीदत्तजी शास्त्रीके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हो रहा है। वार्षिक मूल्य १।) है।

पता—व्यवस्थापक, 'चिकित्सक'
नयागंज, कानपुर।

वनौषधिदर्पण

यह मासिकपत्र श्रीमान् पं० मंगलदत्तजी शुक्लके सम्पादकत्वमें लगभग एक वर्षसे प्रकाशित हो रहा है। इसका वार्षिक मूल्य ॥।) है।

पता—व्यवस्थापक—वनौषधिदर्पण,
हरद्वार, यू० पी०।

सुधानिधि

यह मासिकपत्र श्रीमान् आयुर्वेद पंचानन पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल इलाहाबादके सम्पादकत्वमें घाटा सहकर भी चिरकाल तक निकलता रहा। किन्तु दुख है कि अब वह बन्द कर दिया गया।

आयुर्वेद-संदेश

यह डी० ए० वी० आयुर्वैदिक कालेज लाहोरका मासिकपत्र है। यह आयुर्वेदका उत्तम पत्र है, तथा आयुर्वेदकी अच्छी सेवा कर रहा है। विशेष विवरणके लिये सम्पादक महोदयकी रिपोर्ट इस ग्रंथके द्वितीय भागमें प्रकाशित की जायगी।

पता—व्यवस्थापक—'आयुर्वेद संदेश'
डी० ए० वी० आयुर्वेदिक कालेज, लाहोर।

अश्विनीकुमार

यह लगभग दो वर्षसे श्रीमान् पं० हरिदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्यके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हो रहा है। इसके साथही इसका इङ्गलिश सप्लीमेंट भी रहता है। इसके सम्पादक श्रीमान् प्रोफेसर शिवशर्माजी आयुर्वेदाचार्य लाहौर हैं। इसका वार्षिक मूल्य ३) है।

पता—व्यवस्थापक, 'अश्विनीकुमार'
श्रीसनातनधर्म प्रेमगिरि आयुर्वेदिक कालेज लाहोर।

आचार्य धन्वन्तरि

यह आयुर्वैदिक सम्भाषा परिषद् आयुर्वेद एण्ड यूनानी तिब्बी कालेज दिल्लीका मासिक मुखपत्र है। इसके प्रधान सम्पादक भिषगाचार्य श्री उपेन्द्रनाथदास काव्य-व्याकरण सांख्यतीर्थ प्रो० आयुर्वेद यूनानी तिब्बी कालेज देहली है। यह लगभग दो वर्षसे प्रकाशित हो रहा है। इसका वार्षिक मूल्य २॥) है।

पता—व्यवस्थापक 'आचार्य धन्वन्तरि'
आयुर्वेदिक एंड यूनानी तिब्बी कालेज, देहली।

जीवन सुधा

यह लगभग पाँच वर्षसे प्रतिमास श्रीमान् राजवैद्य पं० महावीरप्रसादजी रसायनशास्त्रीकी अध्यक्षतामें तथा श्रीमान् प्रोफेसर पं० भगवद्देव शर्मा आयुर्वेदाचार्यके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हो रहा है। इसका वार्षिक मूल्य २) है।

पता—व्यवस्थापक, 'जीवन-सुधा'
चाँदनीचौक, देहली।

विहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन-पत्रिका

यह त्रैमासिक पत्रिका विहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन द्वारा पटनासे प्रकाशित होती है। इसके निम्नलिखित पदाधिकारी हैं।

१—संरक्षक—श्रीमान् भिषगाचार्य पं० व्रजविहारीजी चतुर्वेदी आयुर्वेदरत्नाकर।

२—प्रधान सम्पादक—आयुर्वेदाचार्य पं० श्री विधुभूषणसेन का० व्या० तीर्थ कविराज ।

३—सम्पादक—आयुर्वेदाचार्य गोस्वामी भैरवगिरिजी का० सांख्यतीर्थ कविरत्न ।

४—सम्पादक—पं० सुखरामप्रसादजी बी. एस. सी ।

५—सम्पादक—श्री पाठक प्रमोदचरणशर्मा चिकित्सक ।

इसका वार्षिक मूल्य १)

पथप्रदर्शक अर्थात् वैद्य भूषण

यह मासिक पत्र लाहौरसे निकलता था । इसके प्रकाशक तथा सम्पादक श्रीमान् राजवैद्य धर्मदेवजी कविभूषण वैद्यरत्न लाहौर थे । इसका वार्षिक मूल्य १) है ।

वनौषधि

यह मासिक पत्रिका श्रीयुत पं० केदारनाथजी शर्मा सारस्वतके सम्पादकत्वमें कुछ समय तक निकल कर बन्द हो गयी । यह पत्रिका चरक-अनुसन्धान भवन काशीसे बड़े अच्छे रूपमें प्रकाशित हुई थी ।

बूटीदर्पण

यह मासिकपत्र बूटीदर्पण कार्यालय लाहोरसे श्रीयुत रूपलालजी वैश्यके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हो रहा था परन्तु कुछ समय बाद बन्द हो गया । यह पत्र बड़ा उपयोगी था ।

स्वास्थ्य

यह सचित्र पत्र मथुरासे प्रकाशित होता है । इसके अध्यक्ष श्रीमान् लाला जगन्नाथ दासजी सुन्दरश्रृंगार कार्यालय मथुरावाले हैं । वर्तमान सम्पादक श्रीयुत कविराज श्रीगोपालप्रसादजी हैं । वार्षिक मूल्य २)

पता—'स्वास्थ्य' कार्यालय,
सुन्दरश्रृंगार कार्यालय, मथुरा, यू० पी० ।

आयुर्वेदिक साहित्य और वनस्पतियाँ

सामयिक पत्रोंका विवरण ऊपर प्रकाशित किया गया है । इसके साथही प्रकाशित और अप्रकाशित आयुर्वेदीय ग्रन्थोंकी सूची तथा राज्योंके सुरक्षित वनोंकी वनस्पतियोंकी सूची भी देनेकी व्यवस्था की गई थी, पर स्थान और समयके अभावसे न दी जा सकी । द्वितीय भागमें यह सम्पूर्ण सामग्री प्रकाशित की जावेगी ।



काशीकी पंचमहाभूत और त्रिदोषपरिषत्के समय लिया हुआ चित्र.



बांई ओरसे १ पं. जगन्नाथप्रसाद वाजपेयी. २ वै. वामनशास्त्री दातार. ३ वै. पं. कृष्णशास्त्री कवडे. ४ वै. जादवजी आचार्य. ५ के. जी. श्रीनिवासमूर्ति. ६ पं मदनमोहनमालवीयजी ७ म. म. क. गणनाथसेनजी. ८ पं. व्रजविहारी चतुर्वेदी. ९. आ. मा. लक्ष्मीरामजी स्वामी. १० क. प्रतापसिंहजी. ११ वै. त्र्यंबकशास्त्री आपटे.

श्रीवाराणसीक्षेत्रे प्रवर्तिता

पंचमहाभूतत्रिदोषचर्चापरिषद्

(लेखकः–वैद्यभूषण वामनशास्त्री दातार)

इयं परिषद् गतनवंबरमासे ता० २ तः ८ पर्यंतम् (सप्तदिनान्यवधीकृत्य) वाराणस्यां काशी हिंदूविश्वविद्यालये महता उत्साहभरेण संजाता। अस्याः परिषदो द्वौ भागौ आस्ताम्। एकश्च पंचमहाभूतचर्चाभागः, द्वितीयश्च त्रिदोषादिचर्चाभागः। एकस्याः परिषदःसभापतयो महामहोपाध्यायाः पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषण-महाभागा आसन्। द्वितीयायाःपरिषदःसभापतयो महामहोपाध्यायाः कविराज गणनाथसेन-सरस्वतयोऽभूवन्। स्वागताध्यक्षास्तु भारतश्रेष्ठाः पं० मदनमोहन मालवीया अवर्तन्त। उपाध्यक्षाश्च कविराज प्रतापसिंह महाशया अभवन्। मंत्रिणस्तु पं० यादवजी त्रिकमजी आचार्या आसन्। सहमंत्रिणः—पं० वामनशास्त्री दातार, पं० दुर्गादत्त-शास्त्री, कविराज उपेन्द्रनाथदासमहाभागा आसन्। मंत्रिवर्यैःसहमंत्रिसाहाय्येन परिषत्कार्यं सुचारुरूपेण पारितम्।

परिषन्निमित्तं समाहूतानां सार्धत्रिशतानां भारतीयपंडितदार्शनिकभिषग्वरदत्ततराणां मध्ये सार्धशतसंख्यकाः, पंडिताः समुपस्थिता आसन्। वाराणसीक्षेत्रस्थैः प्रसिद्ध-पंडित–दार्शनिक–वैज्ञानिकभिषग्भिश्च सुमहत्साहाय्यं प्रदत्तम्। म० म० प० फणिभूषण तर्कवागीश, म० म० गिरिधरशर्मचतुर्वेदी, पंडितप्रवर मधुसूदन विद्यावाचस्पति, पं० लक्ष्मीराम स्वामी, आयुर्वेदाचार्य पण्डित नन्दकिशोर राजवैद्य, पं० व्रजविहारी चतुर्वेदी, पं० गुणे, पं० नानल, प्रो० राणे, प्रो० जोशी, प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा, डॉ० वर्मा, प्रो० रामदास गौड, डॉ० घाणेकर, प्रो० कुलकर्णी प्रभृतयः अनेके पंडित-प्रवरा उपस्थिता अभूवन्।

प्रथमं चतुर्दिनपर्यंतम् पंचमहाभूतविषये चर्चा समजनि। पंचमहाभूतानां कल्पना अर्थकामाप्तये निष्प्रयोजना, आधुनिकी द्विनवतिसंख्याकानां एलिमेंटसंज्ञकानां तत्त्वतया-भिमतानां सरणिरेव प्रत्यक्ष मूलत्वात् अर्थकामप्रदत्वाच्च सत्येति एकंमतमुपस्थितमभूत्। यथा श्रीमतां द्विनवतिसंख्याका एलिमेंटसंज्ञकासरणिरर्थकामाप्तये सप्रयोजना तथैवाऽस्माकं पंचभूततत्त्वपद्धतिरपि अर्थकामाप्तये तथा च धर्ममोक्षाप्तये अपि सप्रयोजना। श्रीमतां द्विनवति एलिमेंट संज्ञका तथा इलेक्ट्रॉन् प्रोटान् संज्ञका अपि सरणिः अस्मत्पंच-महाभूततत्त्वांतर्गता स्यात्। अतः अस्मत्पंचभूतविचारोऽपि सप्रयोजनः सत्यश्चेति द्वितीयं मतमपि प्रस्थापितमभूत्। वादिप्रतिवादिपक्षयोः स्थापकपक्षे म० म० गिरिधर-

शर्म चतुर्वेदी, न्यायरत्न वाडीकर, पं० रुद्रदेव वेदालंकार, पं० हरिनाथशास्त्री पं० वीरमणि उपाध्याय, कविराज उपेंद्रनाथ दासादिपंडितवरेण्या आसन्। आक्षेपकपक्षे प्रो० फूलदेवसहायवर्मा, प्रो० कुलकर्णी, स्वामी हरिशरणानंदादयश्चाभवन्। समन्वय-पक्षे च प्रो० रामदासगौड महाशया अभूवन्। प्रतिपक्षीयं आक्षेपकमतं पंडितप्रवर-विज्ञानाय पंडितदेवनाकाचार्यैः सम्यक्तया समुपस्थापितम्, येन सर्वेऽपि पंडित-प्रवरा वैज्ञानिकानां वैज्ञानिकाश्च पण्डितानां मतं सम्यक्तया ज्ञातवंतः। निरीक्षकाणां मध्ये डॉ० पाठक, डा० एस्. एस्. जोशी, पं० प्रवर राजेश्वरशास्त्रिद्रविडादयो वादसहायभूतं साहाय्यं दत्तवन्तः। निरीक्षका अपि म० म० गणनाथसेन सरस्वती एम. ए., एल्. एम्. एस्., केप्टन जी. श्रीनिवासमूर्ति वैद्यरत्न आई. एम. एस्, डॉ० एस्. एस्. जोशी, प्रो० ए. बी. मिश्र, आयुर्वेदमार्तण्ड पं० लक्ष्मीराम स्वामी, म० म० फणिभूषण तर्कवागीश, पं० श्रीशंकर तर्करत्न, पण्डितप्रवर मधुसूदन विद्यावाचस्पति, पं० प्रवर राजेश्वरशास्त्रि द्रविड, पं० देवनायकाचार्य, डॉ० पाठक, पण्डित सत्यनारायण शास्त्रि वैद्य महाभागाः पंचभूतचर्चासमये उपस्थिता अभूवन्। यश्च संभाषापद्धत्या विवादःसंजातस्तस्य निर्णयो निरीक्षकमहोदयैस्सह सभापतिभिर्विचार्य कृतस्तथा च त्रिदोषविषयस्यापि निर्णयः समजनि सोऽपि अग्रे प्रकाशयिष्यते।

अनंतरं च नवंवरपंचमतिथौ शरीरेषु चैतन्यमात्मजन्यमित्येतद्विषये श्रीमतां परममाननीयानां पंडित मदनमोहनमालवीयानां सुमनोहारि श्रुतिशास्त्रसिद्धं मनोद्रावक-माल्हादकरंच संभाषणमभूत्, येन सर्वेपि संशयाः छिन्ना अभूवन्। अथ च तस्यामेव तिथौ म० म० श्रीगणनाथ सेन सरस्वतीनां सभापतित्वे त्रिदोषादिचर्चापरिषदः कार्यं समारब्धम्। त्रिदोषाणां विचारस्तु प्रयोजनरहितः काल्पनिकत्वात्तेषामसिद्धत्वाच, इति पूर्वपक्षमारभ्य येचावांतरपक्षाः समभूवन् ते सर्वेऽपि चर्चिताः खंडितास्तथा शास्त्रसिद्धाः सिद्धांताः प्रस्थापिता आसन्। स्थापकाक्षेपकपक्षे यथामतं सर्वेऽपि प्रमुखा भिषजःसह-योगिनोऽवर्तंत। तथापि आक्षेपकपक्षे स्वामी हरिशरणानंद, प्रो० कुलकर्णी, डॉ० घाणेकर, कविराज प्रतापसिंह, पं० दातारशास्त्री, पं० देशपांडे इत्यादय आसन्। स्थापकपक्षेतु कविराज उपेंद्रनाथदास, पं० गणेशदत्त सारस्वत, पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री, पं० जगन्नाथ वाजपेयी, पं० मस्तराम शास्त्री, पं० सत्यदेव पाण्डेय, पं० डेग्वेकर, पं० गुणेशास्त्री, पं० आपटेशास्त्री, क० हरिरञ्जन मजुमदार प्रभृतय आसन्। सा चेयं उभयविधचर्चा-परिषत् सप्तदिनावधि प्रचलिता आसीत्। अन्तिमदिने सर्वेषां निरीक्षकाणां सभापति-महोदयैः सह यत्संजातं निश्चितं मतम् तदपराह्ववेलायामुद्घोषितम्। अंते च उभयोरपि सभापतिमहाभागयोः सुमनोहरेभाषणे संजाते। अनंतरञ्चानेकेषां विदुषां परिषदभिनंदन-पराणि भाषणानि संजातानि। मंत्रिमहोदयैः सर्वेषां कृते कृतज्ञता सादरं प्रकटीकृता। पंचवादनसमये सर्वमपि परिषत्कार्यं सानंदं सयशस्कं सोल्लासं समाप्तिमगमत्। परि-षन्निमित्तं वाराणसीस्थाः रसायनाचार्य कविराज प्रतापसिंह, पं० दुर्गादत्तशास्त्री,

प्रो० डी. ए. कुलकर्णी, एम्. एस्. सी., पं० जगन्नाथ शर्म वाजपेयी एम. ए. प्रभृतयो विद्वांसस्तथा प्रधानमंत्रिणो यादवजी आचार्या अत्यंतं श्रममकुर्वन्। तथैव पण्डित-प्रवर राजेश्वर द्रविडशास्त्रिणः, पंडितवरदेवनायकाचार्याः परिषत्कार्यं स्वकीयं गृहकार्य-मिव मन्वाना अहर्निशं दत्तान्तःकरणा बद्धपरिकराः बहुतरं श्रमिता अभूवन्। सर्वथा इयं परिषदभिनवा प्राच्यप्रतीच्यपंडितानां स्वस्वसिद्धांतसमन्वयकारिणी संभाषापद्धत्या अनेकसंशयोच्छेदिनी, प्राच्यशास्त्रसिद्धांतानां सत्स्वरूपप्रकाशनसमर्था यशस्विनी अभूतपूर्वा जातेति सत्यम्। अनयैव दिशा अतःपरं अन्याअपि परिषद एवंविधा यदि भविष्यत्काले प्रत्यब्दं भविष्यंति तदा प्राच्यप्रतीच्यशास्त्रसिद्धांतानां समन्वयः सर्वथा सुकरः स्यादिति आशास्महे।

पंचभूतत्रिदोषादिचर्चापरिषदो निर्णयाः अतः परं प्रकाशयन्ते।



नवम्बर सन् १९२५

काशी-हिन्दू विश्वविद्यालये

सम्मिलितायाः

पंचभूत-त्रिदोषपरिषदो र्निर्णयाः



॥ श्रीः ॥

सन् १९३५ ई० नवम्बर ता० २ से ५ तक

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें सम्मिलित पंचमहाभूत परिषद्‌के निर्णय।

काशी,
ता० ७-११-३५

तीन दिन पर्यन्त पञ्चमहाभूत परिषद्‌में पञ्चमहाभूत सिद्धान्तके सम्बन्धमें प्राच्य-प्रतीच्य विज्ञानकी दृष्टिसे जहाँतक विचारविनिमय हुआ है उससे हम लोग जिस निर्णय पर पहुँचे हैं, वह यह है कि—

(क) प्रतीच्यवैज्ञानिकोंके पदार्थवर्गीकरणका दृष्टिकोण एवं मुख्यलक्ष्य प्राचीन ऋषियोंके दृष्टिकोण एवं मुख्यध्येयसे अत्यन्त भिन्न है। ऐसा होते हुए भी परिषद्‌में होनेवाले वादविवादसे हम लोग एक ऐसी भूमिकाका अनुभव कर रहे हैं, कि आगे चलकर हम लोग ऐसे सम्मेलनके द्वारा किसी एक उपादेय निर्णयको प्राप्त कर सकेंगे, जो कि प्रत्यक्ष तथा अनुभवात्मक तर्क पर स्थित हो सकेगा।

(ख) इस समय तक प्रतीच्य वैज्ञानिकोंके द्वारा किये हुए बानवें (९२) मूलतत्त्वों एवं तन्मूलभूत विद्युत्कणोंके वर्गीकरणकी दृष्टिसे पञ्चमहाभूत वर्गीकरण सिद्धान्तका विचार करनेसे परिषद् इस निश्चित मत पर पहुँच चुकी है कि इन वर्गीकरणोंका परस्पर कोई विरोध नहीं है।

श्री प्रमथनाथ शर्मा (महामहोपाध्याय)	श्री मधुसूदन विद्यावाचस्पति
फणिभूषणतर्कवागीश (,,)	श्री गणनाथ सेन शर्मा (महामहोपाध्याय)
सत्यनारायण शास्त्री वैद्य	लक्ष्मीराम स्वामी
श्री शङ्कर तर्करत्न	श्रीधर सर्वोत्तम जोशी (प्रोफेसर)
जि० श्रीनिवासमूर्त्ति (कॅप्टन)	श्री राजेश्वर शास्त्री द्रविड़
बालकृष्ण अमरजी पाठक (डाक्टर)	श्री देवनायक आचार्य

॥ श्रीः ॥

१९३५ तमेशवीय वर्षे नवम्बर मासे ५ तः ८ पदिन पर्यन्तं

काशीहिन्दूविश्वविद्यालये सम्मिलितायाः त्रिदोषचर्चापरिषदो निर्णयाः ।

१ सर्वायुर्वेदकार्यमूलभूतत्वात् त्रिदोषज्ञानं सप्रयोजनम् ।

२ वातादीनां धातुत्वं दोषत्वं मलत्वं च अवस्थाविशेषेणाभिव्यज्यते । तच्च परस्पराविरुद्धम् ।

३–४ सर्वप्राकृतकर्मसु सकर्तृत्वनियामकत्वे सति स्वातन्त्र्येण दूषणशीलत्वं दोषत्वम् तच्च वातादिषु त्रिष्वेव नान्यत्र । तस्मात् त्रय एव दोषाः ।

५ शक्तेर्द्रव्याधिष्ठितत्वेन स्वतन्त्रावस्थित्यभावात् वातादीनां न शक्तित्वं किन्तु द्रव्यत्वमेव ।

६ पित्तकफयोरवस्थाभेदेन स्थूलत्वं (चक्षुरिन्द्रियग्राह्यत्वम्) सूक्ष्मत्वं (चक्षुरिन्द्रियाग्राह्यत्वम्) वायोस्तु पित्तकफापेक्षया सूक्ष्मत्वम्, अव्यक्तो व्यक्तकर्मा च इत्यभिधानात् । उपाधिविशिष्टस्यतु वायोर्बहिरिन्द्रियग्राह्यत्वमपि नीलं नभ इतिवत् ।

७ अदृष्टोपगृहीतानि पञ्चमहाभूतान्येव वातादीनामुपादानानि । तदुत्पत्तिक्रमस्तु चरके शारीरस्थाने ४ अध्याये निर्दिष्टः । यथा "तत्र पूर्वं चेतनाधातुः सत्त्वकरणो गुणग्रहणाय प्रवर्तते ।...... स गुणोपादानकाले अन्तरिक्षं पूर्वतरमन्येभ्यो गुणेभ्य उपादत्ते; प्रलयात्यये सिसृक्षुर्भूतान्यक्षरभूतः सत्त्वोपादानः पूर्वतरमाकाशं सृजति; ततः क्रमेण व्यक्ततरगुणान् धातून् वाय्वादिकांश्चतुरः; तथा देहग्रहणेऽपि प्रवर्तमानः पूर्वतरमाकाशमेवोपादत्ते; ततः क्रमेण व्यक्ततरगुणान् धातून् वाय्वादिकांश्चतुरः, सर्वमपि तु खल्वेतद् गुणोपादानमणुना कालेन भवति ।"

८ वातादीनां स्वरूपं (तन्मात्रविषयकधीविषयः) चरकोक्तं, वायोः "रौक्ष्यं लाघवं वैशद्यं शैत्यं गतिः अमूर्तत्वं चेति वायोरात्मरूपाणि ।" पित्तस्य "औष्ण्यं तैक्ष्ण्यं लाघवं अनतिस्नेहो वर्णश्च शुक्लारुणवर्ज्यो गन्धश्च विस्रो रसौच कटुकाम्लौ पित्तस्यात्मरूपाणि ।" श्लेष्मणस्तु "स्नेहशैत्यशौक्ल्यगौरवमाधुर्यमात्स्न्र्याणि श्लेष्मण आत्मरूपाणि भवन्ति ।" गुणाः कर्माणि च ग्रन्थोक्तान्येव ।

९ वातादीनां प्रत्येकं पञ्चविधत्वं वास्तविकम्, तच्च स्थानकार्यभेदोत्पन्नं; कार्यस्वरूपभेदस्तु तन्निबन्धन एव ।

१० रोगान् प्रति सदूष्याणां वातादीनां समवायिकारणत्वं, सूक्ष्मरूपाणान्तु निमित्त-कारणत्वम्, दोषदूष्यसम्मूर्छनायाश्च असमवायिकारणत्वम्। रोगविशेषान् प्रति कीटादीनान्तु निमित्तकारणत्वम्।

श्रीमधुसूदन विद्यावाचस्पतिः जयपुरम्
गणनाथ सेन शर्मा
जि० श्रीनिवासमूर्तिः (कॅप्टन)
बालकृष्ण अमरजी पाठकः (डाक्टर)
सत्यनारायण शास्त्री वैद्यः
लक्ष्मीराम स्वामी
श्री राजेश्वर शास्त्री द्राविडः
श्री देवनायक आचार्यः

सभाया विस्तृतेतिवृत्तं तु शीघ्रमेव पृथक् संमुद्र्य प्रकाशयिष्यते।

यादवजी त्रिकमजी आचार्यः
मन्त्री।

शीघ्रही प्रकाशित होनेवाले

जयन्ती ग्रंथके द्वितीय भागकी विषय सूची ।

१—अवशिष्ट निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलनके सभापतियोंके भाषण, चित्र और चरित्र ।

२—प्रान्तीय वैद्य सम्मेलनोंका विवरण और सभापतियोंके चित्र ।

३—प्रान्तीय सभाओंका विशद विवरण ।

४—राजकीय सम्मानित वैद्योंके चित्र और चरित्र ।

५—प्रान्तीय प्रसिद्ध वैद्योंका परिचयात्मक विवरण ।

६—प्रान्तीय आयुर्वेद महाविद्यालयोंकी पाठ्यप्रणालियाँ और विशेष ज्ञातव्य विषय ।

७—प्रान्तीय (यू० पी०, मद्रास और सीलोन) इंडियन मेडिसिन बोर्डोंका सम्पूर्ण विवरण ।

८—वैद्योंके प्रान्तीय सरकारों-द्वारा रजिस्ट्री करानेके नियमोपनियम ।

९—प्रान्तीय सरकारी आयुर्वेदीय परीक्षाओंकी पाठ्यप्रणाली ।

१०—प्रान्तीय दातव्य औषधालयोंका विवरण ।

११—प्रान्तीय आयुर्वेदिक ट्रस्ट और छात्रवृत्तियाँ ।

१२—प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रंथोंकी वृहत् सूची ।

१३—प्रान्तीय रिजर्व फारेस्टसे निकलनेवाली वनस्पतियोंकी वृहत् सूची ।

१४—देशी राजोंके वनोंकी सुरक्षित वनस्पतियोंकी सूची ।

१५—आयुर्वेद सम्बन्धी अनुसंधानोंका विवरण ।

इस सूचीके अतिरिक्त वैद्यगण और आयुर्वेद-प्रेमी सज्जन इसके अतिरिक्त जो उपयोगी सामग्री और भी भेजेंगे, वह सहर्ष इस ग्रंथमें प्रकाशित की जावेगी ।